Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

LIB. G K V



Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय



विषय संख्या R 80
पुस्तक संख्या प्र ८८ ९ स
आगत पंजिका संख्या मा० २३
पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें। ३८९७

112888

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

[illegible] १९८४-१९८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

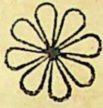
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८०
प्र टटैस
भा० 23
खं० १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112888
३८१



सरस्वती





सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग २३, खण्ड १

जनवरी-जून

१९२२

1973
सर०
२३ (१-६)



सम्पादक

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०

सहायक सम्पादक—देवीदत्त शुक्ल



पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

वार्षिक मूल्य पाँच रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-सूची।

रङ्गीन चित्र।

सादे चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह पुस्तक वितरित न की जाय।

विश्राम।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उमा की तपस्या ।

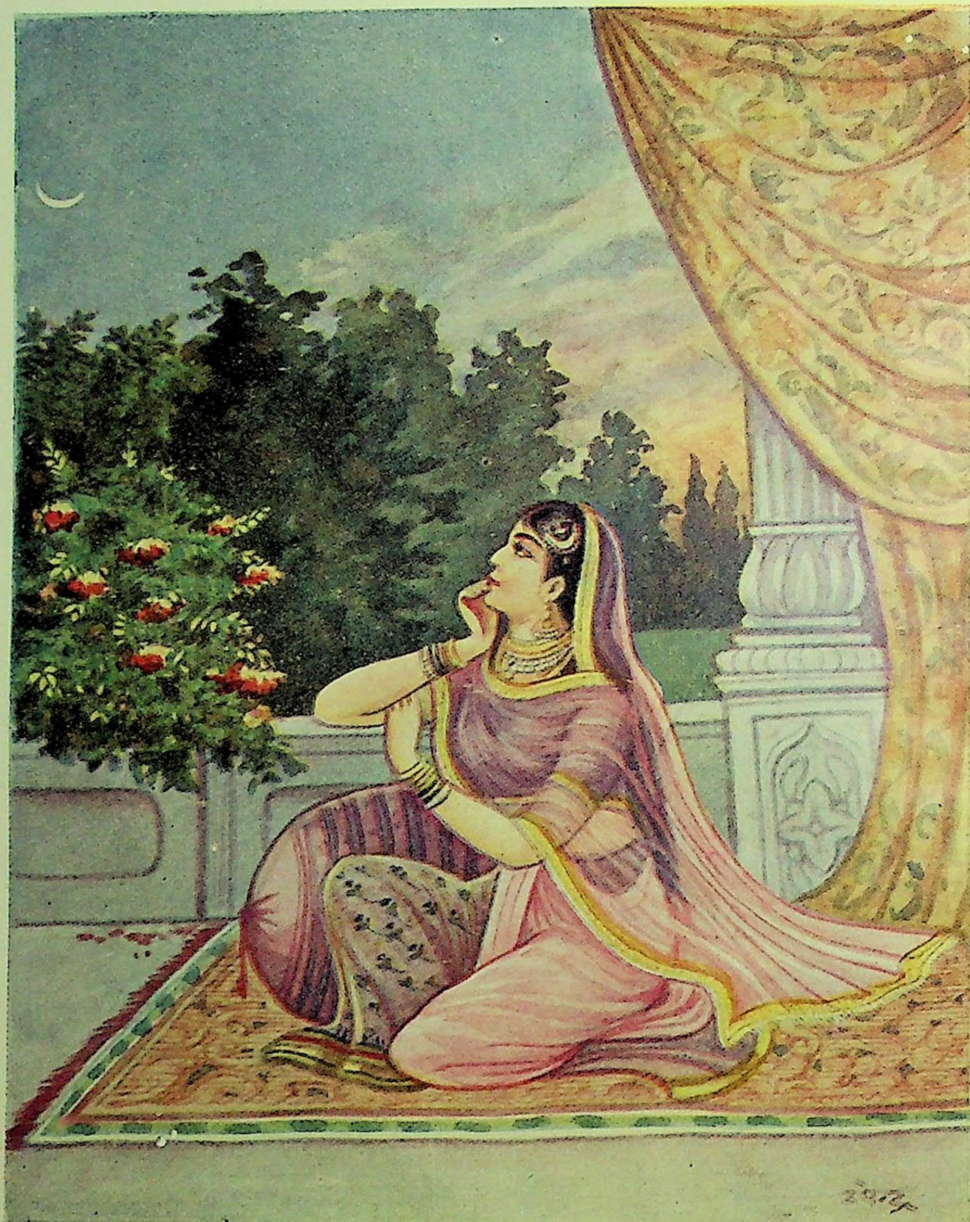
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चन्द्र-दर्शन ।

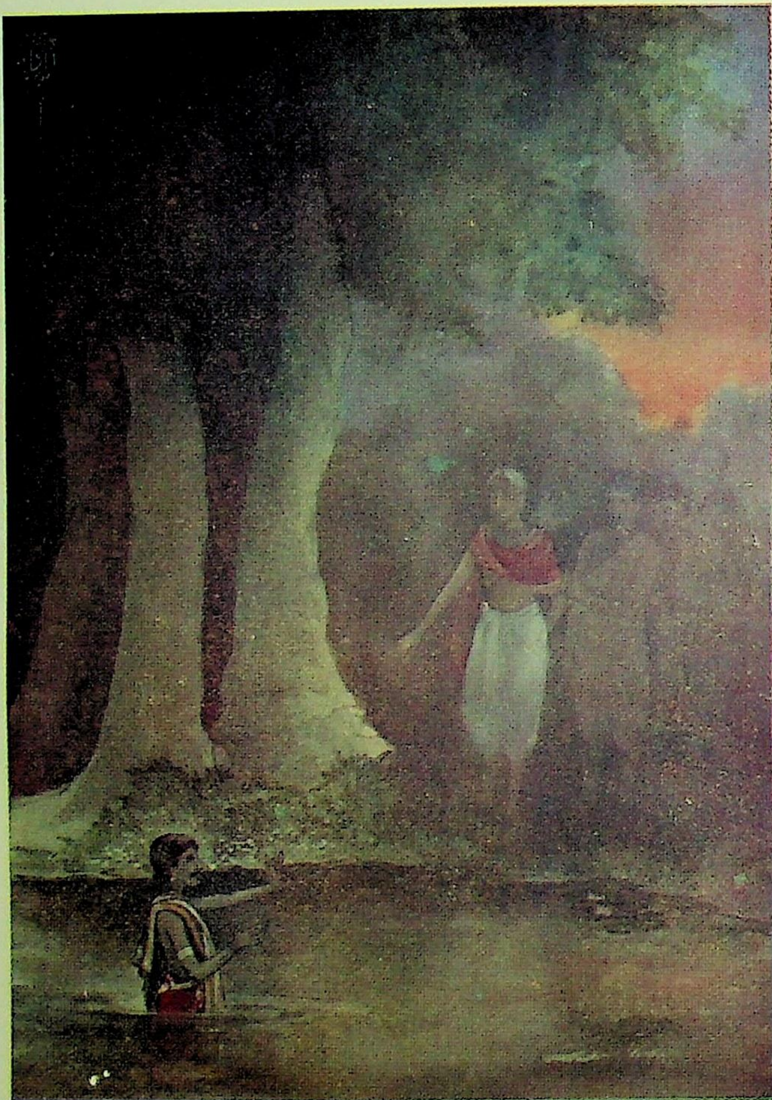
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दुर्योधन और युधिष्ठिर।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विसर्जन ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जेव्-उन्निसा।

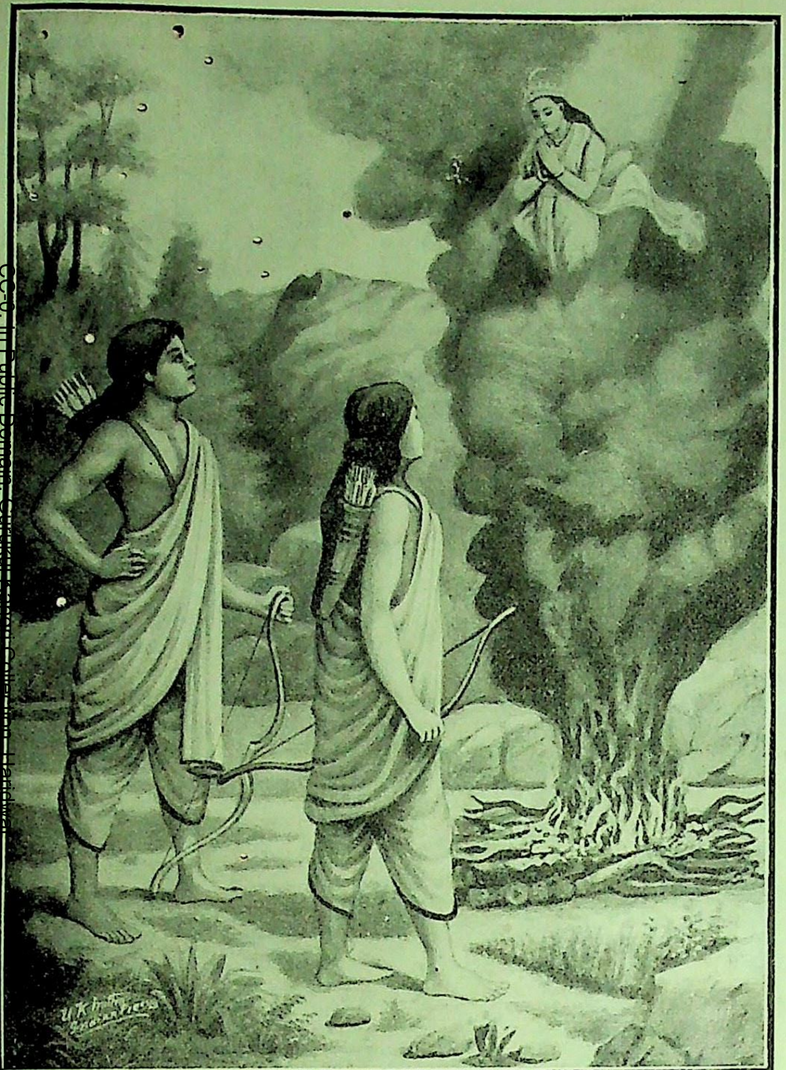
श्रीयुक्त अवनीन्द्रनाथ ठाकुर अङ्कित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विराध-संहार।

वन-पथ पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



डायना ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विलास।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अपत्य-स्नेह ।



शिशु ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भाग २३, खण्ड १] जनवरी १९२२—पौष १९७८ [संख्या १, पूर्ण संख्या २६५

साहित्य में उपयोगितावाद।

आज-कल सभी देशों में साहित्य का स्वरूप बड़ा विशाल होगया है। ग्रन्थों की गगनस्पर्शी राशि देख कर हम अनुमान कर सकते हैं कि ज्ञान का शिखर कितना ऊँचा है। हिन्दी-साहित्य की अभी उन्नत दशा नहीं है। तो भी उसके ग्रन्थों की संख्या अगण्य है। प्रतिवर्ष ग्रन्थों की संख्या बढ़ती ही जाती है। कहा जाता है कि पुस्तकों से ज्ञान की वृद्धि होती है। कभी भारतवर्ष में पुस्तकों की संख्या से ही ज्ञान का अनुमान किया जाता था। जिसने दस पुस्तकें पढ़ी थीं वह पाँच पुस्तकों के पढ़नेवाले से अधिक ज्ञानवान् समझा जाता था। अभी तक हिन्दी में ऐसे विज्ञान-विशारद हैं जिनको इसका गर्व है कि उनके हाथों के नीचे से हज़ारों ग्रन्थ निकल चुके हैं। परन्तु क्या हज़ारों ग्रन्थों के पन्ने उलटनेवाले विज्ञान-विशारदों के ज्ञान का अनुमान उनकी पुस्तकों से ही किया जा सकता है? यदि यही बात होती तो आज जगह जगह न्यूटन ही दिखलाई देते। न्यूटन ने विज्ञान की उतनी किताबें देखी तक न होंगी जितनी किताबें हिन्दी के एक ही विज्ञान-विशारद के हाथों के नीचे से निकल चुकी हैं। बात यह है कि सभी पुस्तकों का उद्देश ज्ञान-वृद्धि नहीं है। अँगरेज़ी में लार्ड बेकन के समय में पुस्तकों की इतनी वृद्धि नहीं हुई थी जितनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज-कल हो रही है। तो भी उन्हें यह उपदेश देना पड़ा था कि सभी पुस्तकें उदरस्थ करने लायक़ नहीं होतीं। कुछ को चखना चाहिए, कुछ को चबाना चाहिए और कुछ को निगलना चाहिए। आज-कल साहित्य की वृद्धि होने से कुछ पुस्तकें ऐसी भी हैं जिन्हें सिर्फ़ छूना चाहिए और कुछ तो दर्शनीय मात्र हैं।

साहित्य की श्री-वृद्धि से समालोचना का काम दुष्कर हो गया है। जब सभी पुस्तकों का उपयोग होता है तब उनकी उपयोगिता में कौन सन्देह कर सकता है। अब प्रश्न यह होता है कि जब हम किसी ग्रन्थ को महत्त्व-पूर्ण कहते हैं तब उसकी परीचा किस कसौटी पर की जाती है? क्या ग्रन्थ का महत्त्व उसकी उपयोगिता पर है? यदि यही बात हो तो हमें उपयोगिता की स्पष्ट व्याख्या करनी पड़ेगी। निरुपयोगी तो कोई ग्रन्थ है ही नहीं। तब क्या उपयोगिता को श्रेणी-बद्ध करना पड़ेगा? यह तो सभी जानते हैं कि वही वस्तु उपयोगी है जो मनुष्य के अभावों की पूर्ति करती है। मनुष्यों के अभाव कुछ तो शारीरिक होते हैं और कुछ आध्यात्मिक। मनुष्यों के हृदय में जो स्वाभाविक ज्ञान-लिप्सा है उसका सम्बन्ध शरीर से नहीं, आत्मा से है। साहित्य का उद्गम मनुष्यों की इसी ज्ञान-लिप्सा से हुआ है। ज्ञान की इस इच्छा से मनुष्यों की सुख-लिप्सा विदित होती है। ज्ञान की प्राप्ति से उनके सुखों की वृद्धि होती है। इसी लिए मनुष्य ज्ञान का इच्छुक है। अब हम साहित्य की परीचा के लिए उपयोगिता-वाद का प्रयोग करते हैं। जो ग्रन्थ अधिकांश मनुष्यों को अधिकतम सुख दे वही सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है। इस सिद्धान्त के अनुसार हम कह सकते हैं कि हिन्दी में रामचरित-मानस सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है, क्योंकि उससे अधिकांश लोगों को सबसे अधिक सुख मिलता है।

इस सिद्धान्त के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि इसमें लोक-प्रियता ही ग्रन्थ की सच्ची कसौटी मानी गई है। जो ग्रन्थ सबसे अधिक लोक-प्रिय है वही सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण होगा। आज-कल मेरी कुरेली के उपन्यास खूब लोक-प्रिय हैं, अतएव उन्हें भी महत्त्व-पूर्ण मानना पड़ेगा। हिन्दी में चन्द्रकान्ता ने कभी अधिकांश लोगों का खूब मनोरञ्जन किया। तब उसकी भी महत्ता हमें स्वीकार करनी पड़ेगी। इधर ऐसे भी बड़े बड़े ग्रन्थकार हैं जिनकी महत्ता में किसी को सन्देह नहीं, पर उनके ग्रन्थ को कोई पढ़ता ही नहीं। यदि पाठकों की संख्या पर ग्रन्थ की उत्तमता अवलम्बित रहे तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। संसार में विशेषज्ञों की संख्या कम है, अल्पज्ञ ही अधिक हैं। अतएव छोटे छोटे लोक-प्रिय ग्रन्थकार ही बाज़ी मार ले जायँगे और श्रेष्ठ ग्रन्थकार मुँह ताकते रह जायँगे। कालिदास ने लिखा है—आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्। यही बात दूसरे लोगों ने भी कही है। साहित्य का मर्मज्ञ विद्वान ही साहित्य की उत्तमता का निर्णय कर सकता है।

उपर्युक्त बात को हम भी मानते हैं। तो भी हम यही कहेंगे कि ग्रन्थ का महत्त्व पाठकों की संख्या पर भी अवलम्बित है। यह सम्भव है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी विशेष समय में कोई किताब लोक-प्रिय हो जाय। परन्तु यदि उसमें महत्ता नहीं है तो वह अधिक काल तक लोक-प्रिय भी नहीं रहेगी। यदि भवभूति के समय में उसके नाटकों के पाठक दस ही पाँच थे तो आज तक उसके नाटकों की क़द्र करनेवाले पाठकों की संख्या लाखों के ऊपर पहुँच गई होगी। छोटे ग्रन्थकार काल के सामने नहीं टिक सकते। अतएव हमारा सिद्धान्त भ्रामक नहीं हो सकता।

हमारे सिद्धान्त के विरुद्ध विज्ञान के प्रेमी यह कह सकते हैं कि गम्भीर विषयों के प्रेमी सभी काल में अल्प-संख्यक होते हैं, पर इससे उसका महत्त्व कम नहीं होता। गणित, रसायन-शास्त्र, पदार्थ-विज्ञान आदि विषयों के ग्रन्थ महत्त्व-पूर्ण होते हैं, पर वे थोड़े ही लोगों को अधिकतम सुख दे सकते हैं। डार्विन के प्रेमी पाठकों की संख्या उतनी कभी नहीं हो सकती जितनी डिकन्स के प्रेमियों की है। तो क्या किसी उपन्यास का महत्त्व वैज्ञानिक ग्रन्थ से अधिक है? यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिए कि वैज्ञानिक ग्रन्थ का महत्त्व हमेशा अस्थायी होता है, पर उसके सिद्धान्त का प्रभाव स्थायी होता है। यदि न्यूटन के समय में वर्तमान विज्ञान की प्रारम्भिक पुस्तकें भी प्रकाशित होतीं तो न्यूटन का भी दिमाग़ चक्कर खा जाता। इसका कारण उस ग्रन्थ का महत्त्व नहीं है, पर उसके सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण है। पचास वर्ष पहले वैज्ञानिक-साहित्य में जो ग्रन्थ सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण था उसका महत्त्व अब घट गया है। आज तक कितने ही नये नये सिद्धान्त स्थिर हो गये हैं। तब वैज्ञानिक ग्रन्थों का महत्त्व किससे निश्चित किया जाय? जिस ग्रन्थ के सिद्धान्तों का प्रभाव संसार में सबसे अधिक पड़ा है वही सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रभाव मनुष्यों की सुख-वृद्धि ही के लिए होता है। अतएव यहाँ भी हम उपयोगिता-वाद का प्रयोग कर सकते हैं। जिस वैज्ञानिक ग्रन्थ से अधिकांश लोगों को अधिकतम सुख प्राप्त हुआ है वही सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है।

अब हमें सुख की भी व्याख्या करनी होगी। शराबियों को शराब से सुख मिलता है, परन्तु वह सुख हानिकर होता है। वही श्रेष्ठ सुख है जिससे सुखों की वृद्धि होती जाय। कितने ही लोगों को गन्दे और अश्लील उपन्यासों में सबसे अधिक आनन्द मिलता है। परन्तु ऐसे उपन्यासों का प्रभाव उनके चरित्र पर बड़ा बुरा पड़ता है। फल यह होता है कि ऐसे मनुष्यों को अन्त में दुःख ही सहना पड़ता है। जिस ग्रन्थ से पवित्र भावों का उद्रेक हो वही अधिक सुख दे सकता है। अतएव काव्यों में वही काव्य श्रेष्ठ हैं जो मनुष्यों को उदार और उन्नतहृदय करते हैं। नख-शिख के वर्णन में अथवा स्त्रियों के भिन्न भिन्न मनोभावों के चित्रण में कवित्व-कला की पराकाष्ठा दिखलानेवाले कवियों की गणना श्रेष्ठ कवियों में नहीं हो सकती। सौन्दर्य-सृष्टि में भारतीय कला-कोविदों की असाधारण क्षमता थी। तो भी वे सौन्दर्य के विकास-मात्र से कभी सन्तुष्ट नहीं होते थे। उनकी सौन्दर्य-सृष्टि में धर्मादर्श की सूक्ष्म व्याख्या प्रच्छन्न रहती थी।

अब उपयोगिता-वाद के सिद्धान्त में 'श्रेय' और और 'प्रेय' का झगड़ा नहीं हो सकता। जो 'श्रेय' है वही यथार्थ में 'प्रेय' है। यदि यह बात नहीं है तो उससे मनुष्यों की तत्कालीन कुरुचि सूचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है। यह कुरुचि चिरकाल तक नहीं रह सकती।

साहित्य में उपयोगिता-वाद का सिद्धान्त मानने से भाव प्रधान हो जाता है और भाषा गौण। लोक-प्रिय वही हो सकता है जो सभी लोगों के लिए बोधगम्य हो। साहित्य का क्षेत्र दो ही चार विद्वानों का विहारस्थल नहीं रह जाता। उसमें सर्व-साधारण को भी प्रवेश करने की अनुमति रहती है। सबसे बड़ी बात यह कि जो साहित्य-धुरन्धर ज्ञान के उच्च शिखर पर बैठ कर अनन्त में विहार किया करते हैं उन्हें पृथ्वी पर आकर अपनी विद्या का परिचय देना पड़ता है। अतएव साहित्य की भाषा देववाणी नहीं होगी, मनुष्य-वाणी होगी। जो लोग अनन्त की अस्पष्ट छाया का दर्शन कर अपनी कृति को छायात्मक बना डालते हैं उन्हें अपने काव्य का कुहासा दूर करना पड़ेगा।

प्रासादगुण का अर्थ सरलता है, परन्तु सरलता ग्रामीणता का सूचक है, और ग्रामीणता दोष मानी गई है। साहित्य में ग्रामीण क्यों दोषों के आकर समझे जाते हैं, यह हमारी समझ में नहीं आता। हम सरलता को तो महत्त्व देंगे, पर सरलता की साक्षात् मूर्ति ग्रामीणों को उससे अलग रक्खेंगे। उपयोगिता-वाद में ग्रामीणों का भी स्थान है। जो हिन्दी कभी गँवारों की बोली समझी जाती थी उसका भी अब आदर होने लगा है। दान्ते ने शिष्ट जनों की भाषा का तिरस्कार कर ग्रामीण भाषा में अपने महाकाव्य की रचना की और तुलसीदास ने देववाणी की उपेक्षा कर ग्रामीणों की भाषा को अपनी रचना से अलङ्कृत किया। अतएव ग्रामीणता दोष नहीं है। जब तक ग्रामीण भाषा में पवित्रता है तब तक वह दूषित नहीं और तब तक ग्रामीण भाषा का भी साहित्य पठनीय है।

साहित्य में उपयोगिता-वाद मानने से यही लाभ है।

नवीनचन्द्र

जर्मनी का धनकुबेर ह्यूगो स्टिनीज़।

ह्यूगो स्टिनीज़ का जन्म सन् १८७० में रूर प्रदेश के मुलहीम नाम के स्थान में हुआ था। उसके पितामह मैथियस स्टिनीज़ ने पहले पहल व्यापार का कार्य प्रारम्भ किया था। मैथियस ने अपने उद्यम से अपने प्रदेश के व्यापारियों में शीर्ष-स्थान ग्रहण किया था। वह कई एक कोयले की खानों का स्वामी हो गया था। इसके सिवा राइन नदी में सर्व-प्रथम उसी ने स्टीम-बोट प्रचलित किया था। इस समय भी रूर प्रदेश के निवासी उसे 'वृद्ध मैथियस' के नाम से स्मरण करते हैं। उसके तीन पुत्र थे, जिनमें कनिष्ठ पुत्र का नाम हरमन ह्यूगो था। यही व्यक्ति ह्यूगो स्टिनीज़ का पिता था। अतएव उसका जन्म एक समृद्धिशाली व्यापारी परिवार में हुआ था।

ह्यूगो स्टिनीज़ केवल विशाल पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी ही नहीं है। उसमें उसके पूर्वजों का आचार-व्यवहार एवं शील-स्वभाव भी पूर्णरूप से विद्यमान है। उनके सारे गुण उसमें भी ज्यों के त्यों मौजूद हैं। अपनी युवा अवस्था में उसने कभी मद्य-पान नहीं किया है। जब वह बालक ही था तब इसे 'जिमनाज़ियम' की शिक्षा दी गई। इसके बाद वह काबलेंज़ के कार्यालय में व्यापार की शिक्षा ग्रहण करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भेजा गया। कोयले का धन्धा पैतृक हो जाने के कारण उसके पिता ने इस बात पर ज़ोर दिया कि बालक हूगो कोयले की खानों में काम करके उसके सम्बन्ध में अथ से लेकर इति तक सब प्रकार की बातों का ज्ञान प्राप्त करे। अतएव उसे कोयले



हूगो स्टिनीज़।

की खान में काम करना पड़ा। वहाँ वह लगभग एक वर्ष तक काम करता रहा। और काम भी कैसा, साधारण मज़दूरों की तरह खान के भीतर जाकर फावड़े से कोयला खोदना। युवा अवस्था में उसकी कमर के झुक जाने का कारण यही कोयले का खोदना ही कहा जाता है। इसके बाद सन् १८८९ में वह बर्लिन के खानों के शिक्षालय में भरती हुआ। एक वर्ष बाद वह अपने कारख़ाने में शामिल हुआ। यह कारखाना उसके पितामह ने स्थापित किया था। दो वर्ष तक अपने इस प्राचीन कारख़ाने में काम करके उसने व्यापारसम्बन्धी पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया।

जब हूगो का वय २३ वर्ष का हुआ तब वह अपने स्वतंत्र स्वभाव का परिचय देने लगा। उसे ४५,०००) अपने पिता से उत्तराधिकार-स्वरूप प्राप्त हुए थे। इसी धन को लेकर बालक हूगो अपने पैरों पर खड़ा हुआ। उसने अपना स्वतन्त्र कारबार छेड़ दिया। भाग्यवश प्रारम्भ ही में उसने आश्चर्य-जनक सफलता प्राप्त की और उसका कारबार उत्त-रोत्तर समुन्नत ही होता गया। यहाँ तक कि कोई २० वर्ष के भीतर उसने १,८७,५०,००० के लगभग की सम्पत्ति उपार्जन कर ली। इस तरह गत योर-पीय युद्ध के प्रारम्भ होने के पहले ही हूगो अपने निज के अध्यवसाय से करोड़पति हो गया।

योरपीय महाभारत के छिड़ जाने पर हूगो को अपने व्यवसाय को और भी समुन्नत करने के लिए बढ़िया अवसर प्राप्त हो गया। यद्यपि युद्ध के कारण जर्मनी के दूसरे व्यवसायियों के कारबार एक प्रकार से बन्द हो गये थे, पर इस अवसर में उसने अपनी बुद्धि का जैसा परिचय दिया वह निस्सन्देह अतुलनीय है। जिस आपदा के आ जाने से दूसरे बड़े बड़े व्यवसायी हाथ पर हाथ रख कर बैठ गये थे उसमें उसने अपनी कार्यशीलता के कारण भारी धन ही नहीं उपार्जन कर लिया, किन्तु जर्मन-साम्राज्य के व्यापारियों के बीच शीर्ष-स्थान भी ग्रहण कर लिया। लोहे और कोयले के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोज़गार में उसको बहुत ही भारी लाभ हुआ। जर्मन-युद्ध-विभाग के जनरल स्टाफ़ के अध्यक्ष लुडेनडार्फ़ के सहयोग से उसने साम्राज्य के सारे व्यवसायी कारख़ानों को युद्ध-सम्बन्धी माल प्रस्तुत करनेवाले कारख़ानों में परिणत करने के लिए पूर्ण प्रयत्न किया था। यही नहीं बेलजियम और फ़्रांस के अधिकृत देशों के कारख़ानों को भी जर्मनी से कल-पुर्ज़े ले जाकर उसने युद्ध-सम्बन्धी माल तैयार करने-वाले कारख़ानों में परिणत करवा दिया था।

युद्ध-काल में ह्यूगो ने अपने सारे लाभ को माल को इधर उधर ठीक समय पहुँचाने तथा दूसरे व्यावसायिक कामों में लगा कर ख़ूब लाभ उठाया। इसी समय क़ैसर ने अपने व्याख्यान में कहा था कि जर्मनी का भविष्य जल पर निर्भर है। अतएव सन् १९१६ में ह्यूगो ने 'वारमन' और 'जर्मन पूर्वी अफ़्रीका स्टीमशिप कम्पनी' को ख़रीद लिया। इसके सिवा 'हैम्बर्ग-अमरीका' और 'नार्थ जर्मन लायड लाइन' नाम की जहाज़ी कम्पनियाँ भी उसने अपने हाथ कर लीं। सन् १९१७ में उसने एच० डब्ल्यू० हीडमैन के फ़र्म को भी ले लिया। इस फ़र्म के मिल जाने से वह जहाज़ों, घाटों और गोदामों का भी स्वामी हो गया। इसी साल उसने ह्यूगो स्टिनीज़ ओशन नेवीगेशन और ट्रेडिङ्ग नामक एक कम्पनी खोल दी। इस नई कम्पनी को खोल कर उसने यह बात प्रकट कर दी कि अब मैं संसार के व्यापारियों के बीच शीर्षस्थान ग्रहण करने की महत्त्वाकांक्षा रखता हूँ। यह कम्पनी जहाज़ चलाने और बनाने, नये कारख़ाने खोलने, गोदाम तैयार करने, माल ढोने की गाड़ियाँ प्रस्तुत करने आदि तरह तरह के छोटे बड़े व्यवसाय-सम्बन्धी सैकड़ों तरह के ऐसे नये नये काम छेड़ सकती है जिनकी कुछ गिनती नहीं। इस समय इसका काम उसके ज्येष्ठ पुत्र के निरीक्षण में चलता है। इसका प्रधान कार्यालय हैम्बर्ग में है। सन् १९१८ में ह्यूगो हैम्बर्ग की जर्मन अमरीकन पेट्रोलियम कम्पनी का हिस्से-दार हो गया। इसके सिवा वहाँ के कई होटल भी उसने ख़रीद लिये। इसके बाद कोनिग्सबर्ग और ब्रीयरहेवेन में भी उसने कई एक फ़र्म ख़रीद किये। और फिर बाल्टिक नेवीगेशन कम्पनी को भी उसने मोल ले लिया। इसके बाद अपने कारख़ानों का बना माल दूसरे देशों में भेजने के लिए वह १२ नये जहाज़ बनवाने लगा। इस तरह उस घोर युद्ध के समय ही ह्यूगो ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से अपने कार्य-क्षेत्र को विराट् आयोजन से विस्तृत किया।

जब ह्यूगो एक कम्पनी के बाद दूसरी कम्पनी और एक फ़र्म के बाद दूसरा फ़र्म धड़ाधड़ ख़रीद रहा था तब उसकी निगाह अपनी दूसरी आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर भी लगी थी। उसने युद्ध-काल ही में पूर्वी जर्मनी में एक विशाल जङ्गली भूभाग ख़रीद लिया। अपनी खानों तथा अन्यान्य दूसरे कामों के लिए उसे पर्याप्त और आवश्यक लकड़ी मिल सके, इसी लिए उसने इस जङ्गली प्रदेश का क्रय किया था। लड़ाई बन्द होने के कुछ ही पहले उसने Rhenish Lignite industry का स्वत्व प्राप्त कर लिया। उसने अपनी विलक्षण बुद्धि से पहले ही अनुमान कर लिया था कि युद्ध के बाद कोयले का व्यवसाय कम कर दिया जायगा।

जब युद्ध समाप्त हो गया और जर्मनी का परा-जय हुआ तब ह्यूगो के प्रतिद्वन्द्वी व्यवसायियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवाले निकल गये। यहाँ तक कि हैम्बर्ग अमरीका लाइन के डायरेक्टर बैलिन ने हताश होकर आत्म-हत्या कर ली। परन्तु इस परिवर्तित अवस्था में भी हूगो अनुपमेय ही निकला। जो हूगो अभी तक राजतन्त्रवादी था उसने अपना रूप बदल कर अपने को प्रजातन्त्र के अनुकूल बना लिया। उसने साम्राज्य के व्यवसाय-मण्डल में इस बात की घोषणा तुरन्त प्रकाशित कर दी कि मैं Profit sharing programme के सिद्धान्त को मानता हूँ। इस तरह 'ट्रेड्यूनियन' नामधारी व्यावसायिक समूहों से मैत्री का सम्बन्ध स्थापित करके उसने अपनी प्रतिपत्ति में किसी प्रकार की बाधा न आने दी।

जर्मनी में राष्ट्र-विप्लव हो जाने पर जब क़ैसर को सिंहासन परित्याग करना पड़ा और राजतन्त्र के स्थान में वहाँ प्रजातन्त्र की स्थापना हुई तब हूगो अपनी सदा की विलक्षण बुद्धि के अनुसार अपने कारबार की वृद्धि के विचार से कार्यक्षेत्र में पहले से भी अधिक उत्साह से अवतीर्ण हुआ। युद्ध-काल में ही वह एक प्रकार से जर्मन-साम्राज्य के प्रधान व्यवसायियों में शीर्षस्थान ग्रहण कर चुका था, उसके हाथ कोयले और लोहे की खानों के सिवा कई बड़े बड़े फ़र्म और जहाज़ी कम्पनियाँ आ गई थीं, अतएव शान्ति स्थापित हो जाने पर वह अपने इन पूर्व-प्राप्त साधनों से अपने कारबार को और भी अधिक समुन्नत करने को कटिबद्ध हो गया। 'ट्रस्ट' का कारबार करने का निश्चय कर चुकने के बाद उसे कई एक समाचार-पत्रों को अपने अधीन करने का विचार सूझा। अतएव उसने 'ड्यूश अलज़िमीन ज़ीटुंग' नामक जर्मन अर्ध-सरकारी पत्र ख़रीद लिया। इसके सिवा उसने म्यूनिच तथा दूसरे स्थानों के भी कई एक समाचार-पत्र अपने अधिकार में कर लिये। कागज़ की दुर्लभता के कारण उसने अपने कई पत्रों के सञ्चालन में घाटा देख कर कुछ कागज़ बनानेवाले कारख़ाने भी मोल लिये। जब उसे यह मालूम हुआ कि इन कारख़ानों का कार्य लकड़ी के गूदे के अभाव से ठीक नहीं चल रहा है तब उसने इसके लिए कई एक जङ्गल ख़रीद किये। इस तरह समाचार-पत्र प्रकाशन के कार्य को नख से लेकर शिख तक प्रबन्ध करके उसने उसे दृढ़ता के साथ अपने क़ब्ज़े में किया। यही नहीं, इस समय उसके अधिकार में जर्मनी का एक प्रसिद्ध पुस्तक-प्रकाशन का कार्यालय भी आ गया है।

ऊपर के विवरण से मालूम हो सकता है कि जिस व्यवसाय में हूगो लग जाता है उसे वह किस ढँग से करता है। जर्मनी के कौन कौन व्यवसाय उसके हाथ में हैं उनकी गिनती गिनाने तक के लिए यहाँ स्थान नहीं है, उनके वर्णन करने की बात तो अलग ही है। इस समय जर्मनी का एक भी ऐसा व्यवसाय नहीं है जिसे वह न करता हो। शहरों में चलनेवाली गाड़ियों से लेकर अनेक जहाज़ी कम्पनियों तक का वह स्वामी है। मोटर गाड़ियों, रङ्ग, गैस, युद्ध-सामग्री आदि के अलग अलग कारख़ाने वह चलाता है। तेल, मछली मारने का काम, जहाज़ों के बन्दरगाहों के निर्माण का प्रबन्ध अलग ही करता है। जर्मनी का ऐसा कोई विरला ही कारबार होगा जिसे हूगो न करता हो। यही क्यों आस्ट्रिया का वह स्थान उसने प्राप्त कर लिया है जहाँ कच्चा लोहा ख़ूब निकलता है। इस स्थान के उसके हाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लग जाने से लोहे के व्यापार में उसका प्राधान्य समस्त पूर्वी योरप पर हो गया है। यहाँ ही क्यों, स्वीडेन, डेनमार्क, इटली, स्पेन और ब्रैज़िल में भी उसने अपने कारबार छेड़ दिये हैं। अभी हाल ही में उसने 'डचइंडीज़' में भी अपने 'रीन-यल्बयूनियन' की एक शाखा खोली है। इसके सिवा संयुक्त-राज्य, अमरीका और इँग्लेंड में भी अपने पैर जमाने के लिए वह अवसर ढूँढ़ रहा है। यही क्यों, वह फ़्रांस से कोयले और लोहे के व्यवसाय में सहयोग करने को भी प्रयत्न-शील हुआ है।

इन सब बातों को देखने से मालूम पड़ता है कि ह्यूगो संसार का प्रधान व्यवसायी बनने के लिए विराट् आयोजन कर रहा है। उसके कार्य-कलाप को देख कर यही कहना पड़ता है कि वह दैवीशक्ति से काम कर रहा है। वह अपने सारे कार्यों की देख रेख स्वयं करता है। कहाँ कितना ख़र्च होता है और कहाँ कितनी आमदनी होती है, उसे पाई पाई की ख़बर रहती है। वह प्रत्येक मद को अपनी आँखों से देखता है। वह अपने कार्य में इतना लीन रहता है कि उसे एक मिनट की फ़ुर्सत नहीं रहती। आज यहाँ है तो कल वहाँ है। इतनी बड़ी सम्पत्ति का अधिकारी होकर भी उसका रहन-सहन और खाना-पीना बिलकुल सीधा सादा है। वह स्पष्टवादी और उसका व्यवहार खरा है। एक दिन उससे किसी ने पूछा कि आप यह परिश्रम किस लिए कर रहे हैं। इसके उत्तर में ह्यूगो ने कहा कि अपने बालबच्चों के लिए। यह संक्षिप्त परिचय जर्मनी के उस धन-कुबेर का है जिसकी तूती इस समय जर्मन-साम्राज्य के व्यवसायीमण्डल में बोल रही है और जिसका विराट् आयोजन देख कर संसार के भिन्न भिन्न प्रसिद्ध व्यवसायी शङ्कित हुए हैं।

विद्याधर पाण्डेय

प्राचीन भारत की शिक्षा-प्रणाली।

किसी देश की शिक्षा-प्रणाली का विचार करते समय सदा दो बातों का ध्यान रखना ज़रूरी है। मनुष्य जन्म के समय निरा असहाय, परावलम्बी रहता है। अतएव शिक्षा के द्वारा वह कहाँ तक स्वावलम्बी हो सकता है, कहाँ तक इस संसार के कार्यों को करने में समर्थ हो सकता है? दूसरे, उसके अथवा उसके समाज के निश्चित किये हुए ध्येय की प्राप्ति उसे शिक्षा के द्वारा कहाँ तक हो सकती है? किसी भी शिक्षा-पद्धति की जाँच इन दो परीक्षाओं से अच्छी तरह हो सकती है।

जब हम प्राचीन भारत का विचार करते हैं तब कुछ बातें स्पष्ट रीति से ध्यान में आ जाती हैं। एक तो उस समय, देश धन-धान्य से पूर्ण था, लोग अपनी जीविका अच्छी तरह चलाते थे, दरिद्रता के कष्ट लोगों को बहुत कम सहने पड़ते थे, लोग सब तरह सुखी थे। उस समय इस देश में 'जीवन-सङ्ग्राम' का प्रश्न न उठा था, यदि उठा भी हो तो अधिक गम्भीर स्थिति को न पहुँचा होगा। इसका मुख्य कारण इस देश की उर्वरता है। दूसरी बात जो दीख पड़ती है वह यह है कि लोगों के उद्योगों का झुकाव पारमार्थिक लाभ की ओर रहा है। ज्योतिष, न्याय, विज्ञान आदि अनेक शास्त्रों की उत्पत्ति हुई, परन्तु पहले पहल इनकी स्थिति वैसी महत्त्वपूर्ण न थी, ये सब धर्म के सहायक-मात्र थे। धर्मविषयक विचार का कितना प्रचार और विस्तार हुआ, इसका कुछ पता ही नहीं। 'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति' के समान सब आचार-विचार अन्त में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष धर्म के ही आचार और विचार में लीन हो जाते थे। और इतनी धार्मिक उन्नति इसी देश में सम्भवनीय थी। जहाँ 'जीवन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सङ्ग्राम' के प्रश्न स्वयं प्रकृति ने ही तय कर दिये थे, वहाँ मनुष्यों को 'सङ्ग्राम' में पड़ कर अपना अधिकांश समय लगाने और श्रम करने की क्या आवश्यकता थी? प्राचीन भारत की शिक्षा-प्रणाली का विचार करते समय इन दो बातों को ध्यान में रखना परम आवश्यक है।

प्राचीन भारत की शिक्षा-प्रणाली की नींव जाति-भेद पर रक्खी गई है। संसार की प्राचीनतम अथवा असभ्य अवस्था के समय शायद प्रत्येक मनुष्य भले ही आत्म-निर्भर रहा हो, पर ज्यों ज्यों सभ्यता की मात्रा बढ़ती है, त्यों त्यों 'श्रमविभाग' का तत्त्व समाज में स्पष्ट दीखने लगता है। कोई आश्चर्य नहीं कि यह तत्त्व आर्य-समाज में सबसे पहले ही दीखने लग गया था। अब जाति-भेद का इतना ही अर्थ रह गया है कि एक जाति के लोगों को दूसरी जाति के लोगों से रोटी और बेटी का व्यवहार न रखना चाहिए। परन्तु प्राचीन काल में यह बात न थी। उस समय के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नामक भेद केवल श्रमविभाग की बुनियाद पर ही रचे गये थे। समाज-रथ सुचारु रूप से चलने के लिए सब आवश्यक कामों का होना आवश्यक था। समाज में 'सङ्ग्राम' छेड़ने के बदले कुछ लोगों ने धर्म के आचार और विचार का भार लेना शुरू कर दिया, कुछ लोगों ने समाज की रक्षा का भार ले लिया तो कुछ लोगों ने अर्थोत्पादन का बोझा उठा लिया और कुछ लोगों को इन सबकी चाकरी करनी पड़ी। इस व्यवस्था में किसी प्रकार के श्रेष्ठत्व अथवा हीनत्व का विचार प्रारम्भ में न था। मूल कल्पना यह थी कि 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः'। वैसे तो 'सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः', परन्तु 'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्, स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।' इसलिए 'सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।' जाति-भेद की कल्पना का ध्येय समाज के रथ को सुरक्षित और सरलता से चलाना था। जातिगत कार्यों से न कोई उच्च हो जाता था और न कोई नीच। और इस अर्थ का जाति-भेद दुनिया के अन्य देशों में भी रहा है। जिस समय समाज-रक्षा के साधन आज-कल के शस्त्रास्त्र न थे, जिस समय अर्थोत्पादन और उसके वितरण के विधान प्रारम्भिक अवस्था में थे, जिस समय ज्ञान की वृद्धि और दान के लिए छापाखाने, डाक, तार, रेल आदि की योजना न थी, उस समय केवल 'परम्परा' शिक्षा का साधन थी। माता-पिता से ही अधिकतर शिक्षा मिलती थी। विद्या और कला वंशपरम्परागत थी। इसके सिवा यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि इसी देश में नहीं, किन्तु अन्य देशों में भी विद्या का धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसका मुख्य कारण यह था कि धर्म ही के द्वारा मनुष्य-जीवन का ध्येय निश्चित होता था। सदा से शिक्षा का यही उद्देश्य रहा है कि उसके द्वारा मनुष्य-जीवन के ध्येय सिद्ध हों। आज भी यही बात घटित होती है। जब कभी शिक्षा के परिणाम और मनुष्य-जीवन के ध्येय में अन्तर पड़ जाता है तब शिक्षा-प्रणाली के विरुद्ध पुकार मचने लगती है। फिर कोई आश्चर्य नहीं कि प्राचीन भारत की शिक्षा-प्रणाली में उस समय के मनुष्यों के अन्तिम ध्येय की प्राप्ति का ही उद्देश्य रक्खा गया हो। इस कारण 'विद्या' के नाम से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जो शिक्षा पाते थे उसमें मनुष्य-जीवन के अन्तिम ध्येय की प्राप्ति की ही व्यवस्था की गई थी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आर्य लोग यह न जानते थे कि ऐहिक सुख शान्ति के लिए क्या आवश्यकता है। ऐसा होता तो वे सबके सब धर्म-कर्म में लग जाते। फिर कर्म-भेद और तदनुसार जाति-भेद करने की कोई आवश्यकता न पड़ती। फिर क्षत्रियों को धनुर्विद्या की, वैश्यों को अर्थोत्पादन और उसके वितरण की और शूद्रों को नौकरी-चाकरी की कोई आवश्यकता न होती। इससे स्पष्ट है कि वे भले प्रकार जानते थे कि पारमार्थिक उन्नति के लिए ऐहिक उन्नति अत्यन्त आवश्यक है। ऐहिक उन्नति की शिक्षा के साधनों का होना अत्यन्त आवश्यक है। उस समय वंश-परम्परा के सिवा कोई विशेष साधन शक्य न था, और इसके लिए वंशपरम्परागत कर्म-भेद की आवश्यकता हुई। इसी के साथ, श्रमविभाग के एक परिणाम पर भी दृष्टि देना आवश्यक है। एक ही कार्य करने से मनुष्य उसमें कुशल हो जाता है और नई नई बातें भी ढूँढ़ सकता है। प्राचीन भारत में भी यही बात हुई। पारलौकिक विचारों में आर्य लोग तो बढ़े ही, परन्तु ऐहिक उन्नति में भी वे किसी प्रकार दुनिया के तत्कालीन लोगों से कम न थे। उस समय के जो अवशेष अब यत्र तत्र दिखलाई पड़ते हैं, या ग्रन्थों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐहिक पदार्थों के जो उल्लेख हैं, वे इस बात के साक्षी हैं। वंशपरम्परागत शिक्षा के परिणाम का प्रभाव प्राचीन भारत की ऐहिक उन्नति पर काफ़ी पड़ा है।

सारांश, जाति-भेद से उस समय विद्या और कला की रक्षा, वृद्धि और प्रचार काफ़ी तौर से हुए हैं। उस समय शिक्षा का यही सबसे बड़ा साधन था। जिसको जिस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता थी उसको उस प्रकार की शिक्षा वंशपरम्परागत मिलती रही और इस प्रकार समाज का कार्य ठीक ठीक चलता रहा।

इसका यह अर्थ नहीं कि प्राचीन भारत में शिक्षा, विद्या और कला की प्राप्ति के प्रत्यक्ष साधन न थे। यह तो स्वीकार करना ही होगा कि आज-कल की पाठशाला, कालेज या विश्वविद्यालय जैसी शिक्षा-संस्थायें उस समय न थीं। परन्तु यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि इन आधुनिक संस्थाओं के पूर्वरूप धीरे धीरे भारत में भी अवश्य दिखलाई पड़ने लगे थे। ऋषि, मुनि, यति और योगी जङ्गलों में रह कर भी समाज की शिक्षा का बड़ा भारी कार्य कर रहे थे। उनके चारों ओर शिष्यवृन्द सदा बना रहता था और वे उसे अपनी विद्या की शिक्षा 'निःशुल्क' दिया करते थे। उस समय राजा की ओर से कोई 'शिक्षा-विभाग' न बना था, परन्तु राजाओं का प्रथम कर्तव्य था कि वे इन ऋषि, मुनि, यति और योगियों की रक्षा करें और उनकी ऐहिक आवश्यकताओं की पूर्ति में उन्हें सहायता दें। सर्व-साधारण भी अपनी ओर से उनकी यथाशक्ति सेवा किया करते थे। जिस समय सांसारिक आवश्यकतायें बहुत कम थीं, जिस समय जङ्गलों के फलों से शरीर-पोषण काफ़ी तौर से हो सकता था, उस समय 'शुल्क' वग़ैरहः के प्रश्न उठने का कोई कारण न था। प्राचीन भारत में 'शुल्क' की कल्पना कहीं दिखलाई ही नहीं पड़ती थी। विद्या-दान के बदले शुल्क लेना विद्या का बेंचना है। और उस समय विद्याविक्रय की कल्पना अत्यन्त गर्हित समझी जाती थी। भारत में इस समय भी इसका थोड़ा-बहुत प्रभाव विद्यमान है।

समय की गति के अनुसार धीरे धीरे यह प्रथा हो गई कि बालक गुरु की कुटी में रह कर विद्याध्ययन करें। इसी के साथ चतुर्वर्णाश्रम पद्धति की प्रथा भी बढ़ती गई। बहुधा पाँच वर्ष की अवस्था हो जाने पर बालक को अपनी बीस वर्ष की अवस्था तक गुरु के पास रह कर विद्याध्ययन करना पड़ता था। ये गुरु धार्मिक विद्या के सिवा थोड़ी बहुत ऐहिक विद्या भी सिखलाते थे। विशेष करके, वे क्षत्रियों को धनुर्विद्या अवश्य सिखलाते थे। इसके उदाहरण खोजने की आवश्यकता नहीं। सब लोगों को विदित ही है कि द्रोणाचार्य ने पाण्डवों और कौरवों को, और वशिष्ठ मुनि ने रामादि भ्राताओं को धनुर्विद्या की शिक्षा दी थी।

इतिहास से इस बात का भी पता लगता है कि प्राचीन भारत में किसी समय व्यवसायियों के संघ भी थे, जिन्हें 'श्रेणि' कहते थे। उनके नियम भी थे। उन्हें 'श्रेणि-धर्म' कहते थे। 'श्रेणि' का कोई पुरुष इन नियमों का उल्लङ्घन न कर सकता था। सीखनेवालों को यहाँ उम्मेदवारी करनी पड़ती थी। सारांश, 'श्रेणि' के द्वारा भी वैश्यों को अपने व्यवसाय और कला की प्रत्यक्ष शिक्षा मिलती थी।

इस प्रकार की शिक्षा-पद्धति भारत में बहुत काल तक चलती रही। इस शिक्षा-पद्धति के गुण-दोषों का विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

ऊपर कह ही चुके हैं कि हिन्दू-शिक्षा-प्रणाली में विचार प्रधान रहा है। धर्म-सम्बन्धी तत्त्वज्ञान और आचार की शिक्षा तो मिलती ही थी, पर सबसे बड़ी बात यह थी कि उससे नैतिक और शारीरिक विकास परम-सीमा तक पहुँच सकता था। गुरु की कुटी में रहने से सांसारिक संसर्गों से बालक बचता तो था ही, परन्तु मुख्य बात यह थी कि गुरु और शिष्य के परस्पर सम्बन्ध की धार्मिक कल्पना के कारण शिष्य को सदा गुरु-वचन के अनुसार चलना पड़ता था। उसे आत्म-संयमन के इतने अधिक मौक़े आते थे और वहाँ की परिस्थिति सदा ऐसी रहती थी कि नीति के नियमों के अनुसार चलने के सिवा और कोई उपाय ही न था। आज-कल नीति-नियमन का प्रश्न इतना टेढ़ा हो गया है कि कुछ कहा ही नहीं जा सकता। आज-कल शिक्षक बहुधा वेतन पर नियत किया जाता है और वह एक स्थान से दूसरे स्थान को बदला भी जा सकता है। इस कारण शिक्षकों को इस बात की परवाह नहीं रहती कि बालक घर पर अथवा शाला के बाहर किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार रहते हैं। शाला में शिक्षक का बतलाया उन्होंने सुन लिया कि हो गया! इसके परे, शिक्षक का कुछ भी कर्तव्य नहीं! परन्तु भारत की प्राचीन शिक्षा में यह बात न थी। बालक को सब स्थानों में एकसा नैतिक बर्ताव रखना पड़ता था और गुरु तथा माता-पिता की उस पर सदा दृष्टि बनी रहती थी। पुस्तकस्था विद्या की अपेक्षा नैतिक विकास पर ही अधिक ज़ोर दिया जाता था। उस समय आचरण ही मुख्य बात थी। और धर्म से आचरण का इतना घनिष्ट सम्बन्ध था कि इन दोनों को अलग नहीं कर सकते थे। एकत्र निवास के लाभ आज-कल की अपेक्षा उस समय अधिक दिखलाई पड़ते थे। जितने शिष्य रहते वे सब एक कुटुम्ब के लोगों के समान रहते थे। इस कारण, स्वार्थत्याग, सहकारिता, परस्पर सहायता, परस्पर नियमन आदि के मौक़े अधिक आते थे और इन कल्पनाओं की ख़ूब वृद्धि होती थी। सारे समाज में इस बात की दृढ़ धारणा थी कि गुरु की आज्ञा का उलङ्घन करना घोर पाप है। इस कारण किसी शिष्य की कभी हिम्मत न होती कि वह गुरु की आज्ञा को भङ्ग करे। उसके हृदय में इसका विचार ही न उठता था। इसके विपरीत, गुरु की आज्ञा सब दशा में पालनीय समझी जाती थी। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि उस समय अनेक शिष्यों ने अपने गुरु के लिए अपने प्राण जोखिम में डालने से ज़रा भी नहीं हिचके। ऐसी दशा में नैतिक विकास का प्रश्न सरल न होता तो कब होता? आज-कल के बालक नीति के नियम बहुत से जानते तो अवश्य हैं, पर उनका आचरण उन नियमों से बहुत भिन्न रहता है। उस समय शिष्य गुरु के मुख से नीति के नियम केवल सुन ही न लेते थे, वरन् उन्हें तदनुसार आचरण भी करना पड़ता था, आदतें डालना पड़ती थीं। आदतों के मनोविज्ञान के अनुसार उस समय पूरा पूरा काम होता था। फिर उस समय के गुरु और आज-कल के शिक्षकों की तुलना कीजिए। कहाँ धर्म-परायण, शीलवान्, निर्लोभी, निःस्पृह, निःसंग, कर्तव्य-तत्पर उस समय का गुरु और कहाँ, वेतन-भोगी, धर्मोदासीन, शीलोदासीन, नित्य बढ़ती की इच्छा करनेवाला, कामों की अधिकता का आडम्बर रच कर शिष्यों को टालनेवाला आज-कल का शिक्षक! ज़मीन और आसमान का अन्तर! यदि आज-कल के बालक नीतिहीन, शीलहीन, धर्महीन, कर्तव्यहीन, लोभी, स्वार्थी और समाजकंटक निकलें तो कोई आश्चर्य्य नहीं! शिक्षक का नमूना बालकों के सामने है और उसी की वे नक़ल किया करते हैं! सारांश, केवल ज्ञान के द्वारा ही नहीं किन्तु प्रत्यक्ष आचरण द्वारा, उस समय के बालकों को धर्म, नीति, शील, समाज-सेवा, सहकारिता, स्वार्थत्याग, आत्मसंयमन आदि की शिक्षा मिलती थी। कोई आश्चर्य नहीं कि चीनी यात्रियों ने इन गुणों के लिए हिन्दुओं की इतनी तारीफ़ की है!

इस बड़े भारी लाभ के सिवा एक दूसरा लाभ शारीरिक विकास का भी था।

आज-कल की भाँति उस समय विद्यार्थियों को पाँच छः घण्टे शाला में और दो-तीन घण्टे घर पर बैठे बैठे पढ़ना न पड़ता था। उस समय का विद्याभ्यास केवल प्रातःकाल दो तीन घण्टे हुआ करता था। बैठ कर काम करने में केवल इतना ही समय ख़र्च होता था। इस कारण बैठ कर काम करने के बुरे परिणामों का कहीं पता न था। कुटी बहुधा खुली हवा में होती थी और वह भी बहुधा पर्ण-कुटी ही रहती थी। इस कारण प्रकाश और वायु को कोई रोक-टोक नहीं थी। फिर बालक खुली हवा में समिधा, भिक्षा आदि के निमित्त घूमते रहते और अनेक शारीरिक कार्य किया करते थे। नदियों पर जाकर स्वच्छ जल में स्नान करते थे। इसलिए बालकों के शरीर ख़ूब हृष्ट-पुष्ट हुआ करते थे। बेंच अमुक प्रकार की होनी चाहिए, डेस्क की रचना ऐसी चाहिए, कमरे अमुक प्रकार के बनने चाहिए, उनमें इतना प्रकाश होना चाहिए। इत्यादि प्रश्नों के विचार की उस समय आवश्यकता न थी। यदि स्वच्छता के बिगड़ने की सम्भावना उस समय थी तो केवल जङ्गलों के पत्तों से। अन्यथा, आज-कल के समान सांसर्गिक रोगों का कोई डर न था। आज-कल के बालक बहुधा शहरों में रहते हैं, और इस कारण संसर्गज रोगों का सम्बन्ध शाला से भी स्थापित हो जाता है। इस कारण शिक्षकों को इनका भी थोड़ा-बहुत ज्ञान रखना पड़ता है और शहर में कौन सी बीमारियाँ है यह जानना पड़ता है। प्राचीन गुरुजनों को ये प्रश्न न सताते थे। पाठशाला से सम्बन्ध रखने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले आरोग्य और स्वच्छता के नियमों को पढ़ कर आज-कल के शिक्षक सहसा कह बैठते हैं कि इसके बदले शिक्षा न मिलती तो अच्छा होता! ऐसा मौक़ा उस समय आने का कोई कारण ही न था। प्रत्युत, उस समय के गुरु बालकों के शारीरिक विकास के लिए उन्हें अनेक तरह की शारीरिक कलायें सिखलाते थे। इनमें धनुर्विद्या प्रधान होती थी।

शारीरिक विकास के योग्य एक और बात उस समय थी जिसका इस समय लोप हो चुका है। ऊपर कह ही चुके हैं कि उस समय विद्याभ्यास प्रातःकाल होता था। इस कारण, जल्दी जल्दी कच्चा पक्का भोज्य पेट में भर कर शाला को एक मील भागते जाने, फिर पाँच छः बजे तक बिना भोजन के रहने अथवा खोंचेवालों से सड़ी-गली चीज़ें खाने, भूखे पेट खेलने और कसरत करने की ज़रूरत न होती थी और इन कारणों से भी स्वास्थ्य की हानि का कोई डर न रहता था।

इसके सिवा एक यह भी लाभ था। आज-कल की शिक्षा सामुदायिक पद्धति की है। बीस-पच्चीस बालक एक ही वर्ग में एक ही विषय पढ़ते हैं। इसके कई बुरे परिणाम होते हैं। बुद्धिमान् लड़कों का भरपूर विकास नहीं हो सकता। उनकी गति में दूसरे बालकों के कारण रुकावट होती है। इस कारण वे किसी निश्चित काल में जितनी उन्नति कर सकते उतनी नहीं कर पाते। दूसरी ओर वर्ग में कुछ मन्दबुद्धि अथवा दुर्बल बालक भी रहते हैं। उन पर मानसिक श्रम का भार उचित से अधिक पड़ता है। इस कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। फिर यह भी ख़याल रखना चाहिए कि सभी बालकों की रुचि सब विषयों में एक सी नहीं हो सकती। परन्तु जो विषय एक बार निश्चित हुए उन्हें सबको पढ़ना ही पड़ता और उनमें कुछ आवश्यक उन्नति दिखलाना ही पड़ती है। परिणाम यह होता है कि रुचिप्रद विषय में काफ़ी उन्नति नहीं होती। सारांश में यह कह सकते हैं कि आज-कल की शिक्षा सबको एक ही ढाँचे में ढालती है, व्यक्ति की विशिष्ट रुचि या बुद्धि का विचार नहीं करती। इससे व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों तरह की हानि होती है। क्योंकि व्यक्ति की मानसिक उन्नति से समाज को नाना प्रकार का लाभ पहुँचता करता है। इस कारण शिक्षण-कला के ज्ञाता अपनी पुस्तकों में बतलाया करते हैं कि व्यक्तिगत विकास पर काफ़ी ध्यान देना चाहिए। प्राचीन भारत की शिक्षा-पद्धति ही ऐसी थी कि किसी को ऐसा बतलाने की आवश्यकता न पड़ती थी। प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने मानसिक और शारीरिक श्रम के अनुसार अभ्यास करता था। इस कारण न गति रुकने का डर था और न आवश्यकता से अधिक बढ़ने का ही। बुद्धि और रुचि के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के अभ्यास का क्रम जारी रहता था, और इस कारण व्यक्तिगत विकास रुकने और उससे समाज का नुक़सान होने का अधिक डर न था।

परन्तु हमारा यह कहना नहीं है कि उस पद्धति में दोष न थे। आज-कल के शास्त्र के अनुसार पहला और सबसे भारी दोष पाठन-पद्धति में था। रटने की प्रथा उस समय काफ़ी से अधिक थी। वैसे तो रटने की आवश्यकता अब भी है। परन्तु किसी बात को समझ कर रटने की बात अलग है और न समझ कर रटना अलग है। उस समय व्याकरण और कोश के रटवाने की जो प्रथा थी उस पर आज-कल के शिक्षण-कला के मर्मज्ञ बहुत भारी आक्षेप किया करते हैं। यह आक्षेप शायद पूर्णरूप से सत्य न हो, तथापि यह मानना ही होगा कि उसमें बहुत कुछ सत्य अवश्य है। यदि यह भी मान लें कि उस पद्धति से ज्ञान की बहुत वृद्धि होती थी, तो भी रटने का दोष दूर नहीं होता। मानसिक श्रम से ज्ञान की वृद्धि तो होनी ही चाहिए, परन्तु बौद्धिक विकास भी होना चाहिए। पाठन-पद्धति में इन दोनों हेतुओं को स्थान मिलना चाहिए। इतना ही नहीं किन्तु श्रम और समय की भी बचत होनी चाहिए। ये बातें तभी सम्भव हैं जब पाठन-पद्धति की इमारत मनोविज्ञान की भूमि पर रची जाय। भारत में मनोविज्ञान की नींव रची जा चुकी थी और वह भी काफ़ी पहले। कपिल के सांख्य-शास्त्र में इसका बहुत कुछ विचार हुआ है। और जब उस प्राचीन काल का विचार मन में आता है तब भारत की उन्नति के विषय में आश्चर्य भी होता है। तथापि यह बात स्पष्ट है कि उस मनोविज्ञान का उपयोग पारलौकिक विचार के लिए ही अधिक होता था, पाठन-पद्धति के लिए कम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस पद्धति का जो दूसरा दोष दीख पड़ता है वह यह है कि विद्या बहुत ही सङ्कुचित थी। क़रीब क़रीब वही पुस्तकें और वही विषय सदा बने रहते थे। विषय की विभिन्नता बहुत कम थी। परन्तु यह दोष सर्वथा ही स्वीकृत नहीं किया जा सकता। छान्दोग्योपनिषद् के सातवें अध्याय के प्रारम्भ में नारद और सनत्कुमार का संवाद है। नारद ने सनत्कुमार के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजन-विद्यामेतद्भगवोऽध्येमि। चारों वेद, इतिहासपुराण, व्याकरण, श्राद्ध, गणित, दैव, महाकालादि शास्त्र (निधि), तर्कशास्त्र (वाकोवाक्यं), नीतिशास्त्र (एकायनं), निरुक्त (देवविद्या), ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, धनुर्विद्या, ज्योतिष, सर्पविद्या और नृत्य, गीत, वाद्य, शिल्पादि विद्याओं का इस उत्तर में उल्लेख है। उस समय की ओर देखते हुए यह सूची बहुत विस्तृत मालूम होती है। इससे यह नहीं कह सकते कि प्रत्येक विद्यार्थी इतनी विद्यायें सीखता था। परन्तु यह भी बात इससे स्पष्ट है कि यदि कोई चाहे तो उसके लिए उस समय उपाय थे। विद्याप्रेमी भिन्न भिन्न गुरुजनों के पास जाकर अनेक प्रकार की विद्याओं की शिक्षा प्राप्त कर सकता था। हाँ, सबके लिए ऐसी योजना पहले पहल न थी। आगे जब 'दीक्षागुरु' और 'शिक्षागुरु' भिन्न भिन्न हो गये तब अनेक विद्याओं का सीखना और भी सुलभ हो गया। क्योंकि यह सदा ही कम सम्भव रहता है कि एक ही पुरुष अनेक प्रकार की विद्यायें समुचित रीति से जानता रहे। अनेक स्थानों से विद्या-प्राप्ति करने में श्रम और समय अवश्य अधिक लगता था। परन्तु शिक्षा की सारी कल्पना ही भिन्न थी। इस कारण आज-कल की तरह एक ही संस्था में अनेक प्रकार के शास्त्रों का पढ़ाना सब जगह सम्भव न था। धीरे धीरे भिन्न भिन्न विद्याओं और कलाओं के सिखलाने के अनेक स्थान बन गये थे, और जिसे जिस विद्या और कला से रुचि होती वह वहाँ जाकर अपनी इच्छा के अनुसार उसे सीख सकता था। इसके बाद 'परिषदों' की सृष्टि हुई, जिनसे आज-कल के कालेजों का बहुत कुछ काम निकल जाता था।

इन शिक्षा-साधनों के सिवा आज-कल की तरह के कई विद्यापीठ भी थे।

आर्य लोग वायव्य दिशा से भारत में आये थे। इस कारण सबसे प्रथम इसी दिशा में विद्यापीठ स्थापित हुए थे। तक्षशिला का नाम बहुत दिनों तक प्रसिद्ध रहा। छठीं सदी से तो इतिहास में उसका नाम स्पष्टरूप से मिलता है। कहते हैं कि यहाँ विद्या के सोलहों अङ्गों का अभ्यास होता था। उनमें से कुछ मुख्य अङ्गों के नाम एक इतिहासकार ने बतलाये हैं। वे ये हैं:—चारों वेद, षड्-वेदाङ्ग, दर्शन, धर्मशास्त्र, भैषज्य, मन्त्रविद्या, ज्योतिष, धनुर्विद्या, इतिहास-पुराण, गणित, छन्दःशास्त्र, और व्याकरण। यहाँ रँगने की, शिल्प की, मूर्त्ति बनाने की, और तरह तरह की दस्तकारी की अनेक पाठशालायें थीं। कहते हैं कि प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि और प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चाणक्य ने यहीं शिक्षा पाई थी। इस विद्यापीठ का नाम भिषग्विद्या के लिए विशेष प्रसिद्ध था। मगध के राजा बिम्बसार को जिस वैद्यवर जीवक ने नीरोग किया था उसने अपनी विद्या यहीं सीखी थी। सात साल विद्या सीखने पर उसे आज्ञा मिली कि तक्षशिला के इर्द गिर्द में पन्द्रह मील तक जितनी वनस्पतियाँ हों उन सब का आयुर्वेदीय उपयोग वह सीख ले। सम्राट् अशोक के समय में इस विद्यापीठ की अत्यन्त प्रसिद्धि थी। प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ ने लिखा है कि उत्तर हिन्दुस्तान के सब वर्गों के लोग, क्या छोटे क्या बड़े, क्या ब्राह्मण क्या वैश्य, सारे के सारे यहाँ नाना विद्या और कला सीखने को आया करते थे।

बौद्ध धर्म के प्राबल्य-काल में विद्या-पीठों की बहुत भारी उन्नति हुई। प्रत्येक विहार छोटा मोटा विद्यापीठ बन गया था। इनमें से कुछ तो इतिहास में बहुत ही प्रसिद्ध हैं। विदर्भ देश के श्रीधन्यकटक का नाम ब्राह्मणीय और बौद्ध दोनों विद्याओं के लिए ख़ूब विख्यात था।

नालन्द का नाम मामूली लड़कों को भी मालूम है। जब योरप अविद्या के अन्धकार से आवृत था उस समय यहाँ कुछ नहीं तो दस हज़ार विद्यार्थी विद्या-लाभ किया करते थे। प्रसिद्ध चीनी प्रवासी हुएन सङ्ग के आने से सात सदी पहले नालन्द का विद्यापीठ बना था। शका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दित्य, बुद्धगुप्त, तथागतगुप्त और बालादित्य नामक चार राजाओं ने इसको समुन्नत करने में भरसक प्रयत्न किये और उन्होंने यहाँ अनेक नई नई इमारतें बनवाईं। बालादित्य के समय अर्थात् पाँचवीं सदी के उत्तरार्ध से इसकी खूब उन्नति हुई। मुख्य विद्याभवन बीच में था और उसके चारों ओर और नौ भवन थे। उसके बाद बौद्ध-भिक्षुकों के रहने के स्थान थे। इनके बीच में वेधशाला थी। इन भवनों में से रत्न-सागर, रत्नदधि और रत्नरञ्जक बहुत ही प्रसिद्ध थे। रत्नदधि नामक भवन नौ मञ्ज़िला था और उसी में वह विशाल पुस्तकालय था जो उस समय भारत भर में सबसे बड़ा गिना जाता था। यहाँ धार्मिक और ऐहिक दोनों तरह की शिक्षा दी जाती थी। धर्म में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें ही नहीं, किन्तु वेदादि ग्रन्थ भी पढ़ाये जाते थे। जो मुख्य विषय पढ़ाये जाते थे उनके नाम ये हैं :—व्याकरण, न्याय, भिषग्विद्या, दर्शन और अध्यात्म-शास्त्र। इनके सिवा, दूसरे कई विषय भी सिखलाये जाते थे। पाली और संस्कृत भाषाओं के गद्य और पद्य दोनों भागों का अभ्यास होता था। यह विद्यापीठ न्याय-शास्त्र के लिए बहुत ही प्रसिद्ध था। यहाँ बौद्ध-भिक्षुकों को ही बहुधा विद्या-दान किया जाता था। भोजन वस्त्रादि भी मुफ़्त मिलते थे। यहाँ चीन, तिब्बत, मध्यएशिया, बुख़ारा, कोरिया आदि दूर दूर के देशों से लोग विद्या सीखने को आया करते थे। किसी विषय का भरपूर ज्ञाता ही उस विषय का अध्यापक होता था। और आज-कल के विद्यापीठों के अध्यापकों की भाँति वह बहुधा एक ही विषय पढ़ाया करता था। इस कारण प्रत्येक विषय का बड़ा गम्भीर ज्ञान यहाँ मिल सकता था। नवीं सदी के अन्त तक इस विद्यापीठ का काफ़ी नाम रहा है। यह स्थान गया से ईशान की ओर, पाटलिपुत्र से आग्नेय प्राचीन राजगृह के उत्तर में था।

इन विद्यापीठों के सिवा भारत के इतिहास में दूसरे कई विद्यापीठों के भी नाम मिलते हैं। इनमें विहार के उदन्तपुरी और विक्रमशिला के नाम उल्लेख योग्य हैं। विक्रमशिला नालन्द की गिरती अवस्था में प्रसिद्ध हुई। उदन्तपुरी का निर्माता वङ्ग-देश का राजा गोपाल या लोकपाल था। इसके पुत्र धर्मपाल ने विक्रमशिला का निर्माण करवाया था। नवीं सदी में नालन्द के समान ही यह विद्यापीठ प्रसिद्ध हुआ था। कन्नौज और बनारस के विद्यापीठों का नाम सबको मालूम ही है। वंगदेश के सेन राजाओं के समय अर्थात् बारहवीं सदी में मिथिला और नवद्वीप (आधुनिक, नदिया) विद्या के बड़े भारी पीठ थे। भाग्य से नवद्वीप (नदिया) मुसलमानों के आक्रमण के बाद भी बना रहा। चैतन्य ने यहीं विद्या प्राप्त की है। यहाँ न्याय-शास्त्र, स्मृति-शास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण, काव्य और तन्त्र का अभ्यास होता था। विशेषकर यह न्याय-शास्त्र के लिए अधिक प्रसिद्ध था। दक्षिण में विजयनगर भी एक प्रसिद्ध विद्यापीठ था।

प्राचीन विद्यापीठों में से नदिया और बनारस थोड़े बहुत अंश में अब तक अपना नाम बनाये हुए हैं।

हमने अब तक स्त्रियों की शिक्षा के विषय में कुछ नहीं कहा है। इससे यह कोई न समझ ले कि स्त्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध प्राचीन काल में न था। अनेक उदाहरणों और उल्लेखों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में स्त्रियों का अधिकार पुरुषों के समान ही था। वे पुरुषों के साथ सब धर्म-कार्यों में सम्मिलित होती थीं। वे विद्या सीखती थीं। वेदकालीन स्त्रियों में देवहूति, अदिति, अपाला के नाम उल्लेखनीय हैं। विश्ववरा जैसी कई स्त्रियों ने ऋग्वेद की कई ऋचायें भी बनाई हैं। याज्ञवल्क्य मुनि और उनकी पत्नी मैत्रेयी का संवाद बृहदारण्यकोपनिषत् में दिया हुआ है। इसी उपनिषत् में एक और उदाहरण है। वह वचक्नू कन्या गार्गी का है। ये दोनों कई दृष्टि से विचारणीय हैं। पहली बात जो स्पष्ट है वह यह कि स्त्री अपने को पुरुष की पूर्णतया अर्धाङ्गिनी समझती थी। इस कारण उसे भी पुरुषों के बहुतेरे अधिकार प्राप्त थे। दूसरी बात यह कि पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी विद्या में ख़ूब दख़ल रखती थीं। इतिहास से इस बात का अच्छी तरह पता लगता है कि बौद्धकाल में स्त्रियाँ लिखना-पढ़ना और अनेक कलायें जानती थीं। शङ्कराचार्य और मण्डन मिश्र की पत्नी के वादविवाद की बात सभी को मालूम है। कहते हैं कि भोज के समय कन्याओं के लिए अलग पाठशालायें थीं। कालिदास और विद्योत्तमा की कहानी बालक तक जानते हैं। सारांश, प्राचीन भारत में स्त्रियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शिक्षा अनुचित अथवा हीन न समझी जाती थी। बहुधा स्त्री-शिक्षा का कार्य घर ही पर होता था।

'ते हि नो दिवसा गताः'—अब वे दिन नहीं रहे। अब भीषण जीवन-सङ्ग्राम के दिन आये हैं। पाश्चात्य सभ्यता के संसर्ग के कारण हम शरीर के बहुत ही अधिक प्रेमी हो गये हैं। यहाँ तक कि हम अब अपने प्राचीन सद्गुणों को बिलकुल ही भूल गये हैं। हमारे इतिहास से हमारी शिक्षा का कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। मानों हम हिन्दुस्तान से उठा कर एक-दम योरप में रख दिये गये हैं! इससे हमारा यह मतलब नहीं है कि उस समय की शिक्षा-प्रणाली का ज्यों का त्यों पुनरुद्धार होना चाहिए। यह तो न कभी हुआ है और न कभी आगे ही होगा। गये दिन सदा के लिए चले जाते हैं। दुनिया परिवर्तनशील है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि एक-दम परिवर्तन करना भी ठीक नहीं। इससे लाभ के बदले हानि ही होती है। धर्म के बन्धनों के शिथिल होते ही नीति के बन्धन भी शिथिल हो गये हैं। जिस भारत में आचार पर इतना ज़ोर था, जहाँ आचरण ही शिक्षा की सार बात थी, वहाँ आचरण की ओर बिलकुल ही ध्यान न रह गया! इससे अधिक खेद की बात कौन सी हो सकती है? हम अब इतने सांसारिक हो गये हैं कि उचित-अनुचित का भी विचार भूल गये! किसी भी उपाय से क्यों न हो, भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति और भोग हमारा ध्येय हो गया है! स्वार्थत्याग, सहकारिता, परस्पर सहायता, नीति के नियम, इत्यादि बातें हमें सुनाई तो खूब जाती हैं, पर हमारी कृति में कुछ भी नहीं दीख पड़ता! 'समता, बन्धुता और स्वतन्त्रता' की चिल्लाहट शब्दों में तो खूब हुआ करती है, पर देखने में कहीं कुछ नहीं आता! शालायें, कालेज और विश्वविद्यालय सबके लिए खुले हैं, तथापि वास्तविक शिक्षा पाये हुए लोगों की—जिनके मन शिक्षा के द्वारा संस्कृत और विकसित हुए हैं—संख्या अँगुलियों पर ही गिनी जा सकती है! देश और देव का विचार हमारे मन से बिलकुल निकल गया है, देह ही हमारा व्यक्तिगत ध्येय हो गया है। परिणाम यह हुआ है कि कुछ लोगों को छोड़ कर बाक़ी लोग देह की भी सेवा ठीक तौर से नहीं कर सकते! हमें मालूम ही नहीं कि व्यक्ति और समाज की उन्नति परस्परावलम्बी है! हम समझने लग गये हैं कि समाज की उन्नति किये बिना ही हम अपनी उन्नति कर सकते हैं! परन्तु इस भूल का संशोधन किये बिना हमारे समाज की व्यक्तिगत अथवा सामाजिक किसी प्रकार की उन्नति कभी न होगी। इसलिए हमें अपने इतिहास की ओर नज़र देकर शिक्षा-प्रणाली का निश्चय करना चाहिए। हमारे प्राचीन गुरुकुलों से जैसे छात्र निकलते थे, वैसे लोग जब तक नहीं निकलते तब तक सर्टिफ़िकेट देनेवाले विश्वविद्यालयों से बहुत लाभ नहीं होगा। समाज की सुदशा या दुर्दशा कुछ थोड़े ही लोगों के हाथों में रहती है। हमें उन लोगों को ढूँढ़ कर शिक्षा देनी चाहिए और उनके द्वारा अपने समाज को ठीक रास्ते पर लाना चाहिए। हम अपने प्राचीन इतिहास से लाभ न उठा सके तो हम कुछ भी करने के योग्य न रहेंगे। समाज के लिए ही नहीं किन्तु व्यक्ति के लिए भी इतिहास ही मार्गदर्शक होता है। जिससे समाज-सेवा, देश-सेवा, स्वार्थत्याग, सहकारिता, आत्मसंयम, परस्पर सहायता और अत्युच्च धार्मिक विकास के ध्येय पैदा हों ऐसी शिक्षा भौतिक शिक्षा के साथ हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है।

गोपाल दामोदर तामस्कर

सेनापति और शीतकाल।



कविवर सेनापतिजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गंगाधर दीक्षित था। सेनापतिजी का बनाया केवल "कवित्व-रत्नाकर" नामक ग्रन्थ प्राप्त है। यह ग्रन्थ अभी तक नहीं छपा है। इसकी रचना संवत् १७०६ विक्रमीय में हुई है। इसमें साढ़े तीन सौ के लगभग पद्य होंगे। छन्दों में कुण्डलियाँ तथा दो चार छप्पयों को छोड़ कर शेष सब घनाक्षरी छन्द हैं। इन्होंने सवैया छन्द का बिलकुल ही प्रयोग नहीं किया है और प्रायः सभी पद्यों में अपने नाम का प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। इनके अनेक पद्यों में श्लेष की अच्छी बहार है। 'कवित्त-रत्नाकर' का एक तरङ्ग का तरङ्ग श्लिष्ट पद्यों से ही परिपूर्ण है। इन्होंने शान्त और शृङ्गार इन दोनों ही रसों को सफलता-पूर्वक अपनाया है। सेनापतिजी केवल कवि थे। ये आचार्य नहीं थे अर्थात् इन्होंने काव्य-शास्त्र-सम्बन्धी लक्षण-लक्ष्य संयुक्त ग्रन्थ नहीं बनाये। इनकी भाषा विशुद्ध व्रजभाषा है। अपने जीवन के अन्तिम काल में क्षेत्र-संन्यास लेकर ये वृन्दावन में ही रहने लगे थे। इनकी वर्णन-शैली सालंकार, सरस, मधुर अथ च प्रौढ़ है। इनकी कविता प्रायः मौलिक है। इन्होंने अपने 'कवित्त-रत्नाकर' के एक तरङ्ग में ऋतुओं का भी वर्णन किया है। काव्यशास्त्र में रस-परिपोषक उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत ऋतुओं का वर्णन किया जाता है। ऐसे वर्णन से और आलम्बन-विभाव से पूरा सम्बन्ध रहता है। इस कारण प्राकृतिक शोभा के प्रभाव का परिचय तो भरपूर मिलता है, पर स्वयं प्राकृतिक शोभा के सम्पूर्ण वर्णन की ओर कवियों का लक्ष्य कम रहता है। सेनापतिजी के ऋतु-वर्णन में यह विशेषता है कि इन्होंने प्राकृतिक शोभा का चित्र बहुत ही अच्छे ढँग से खींचा है। हमारे वर्तमान हिन्दी-साहित्य-सेवियों में अनेक लोगों का यह मत है कि प्राचीन व्रजभाषा-साहित्य दूषित नायिकाभेद को छोड़ कर और कोई काम की चीज़ नहीं है। इस मत के कारण अनेक नये साहित्य-सेवियों को व्रजभाषा-काव्य के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई है। यह बड़े ही दुःख की बात है।

प्राचीन व्रजभाषा के साहित्य-कोष में बहुत ही अमूल्य रत्न एकत्र हैं। पर घृणा करने से वे प्राप्त नहीं हो सकते हैं। आज पाठकों के लिए सेनापतिजी के प्रकृति-शोभा-सम्बन्धी कई पद्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। शीतकाल होने से हमने इसी समय की शोभा का वर्णन सङ्कलित किया है। शीत में हमने शरद्, हेमन्त और शिशिर भी सम्मिलित कर लिया है। यथाशक्ति प्रत्येक पद्य का भावार्थ समझाने का भी उद्योग किया गया है।

(१)

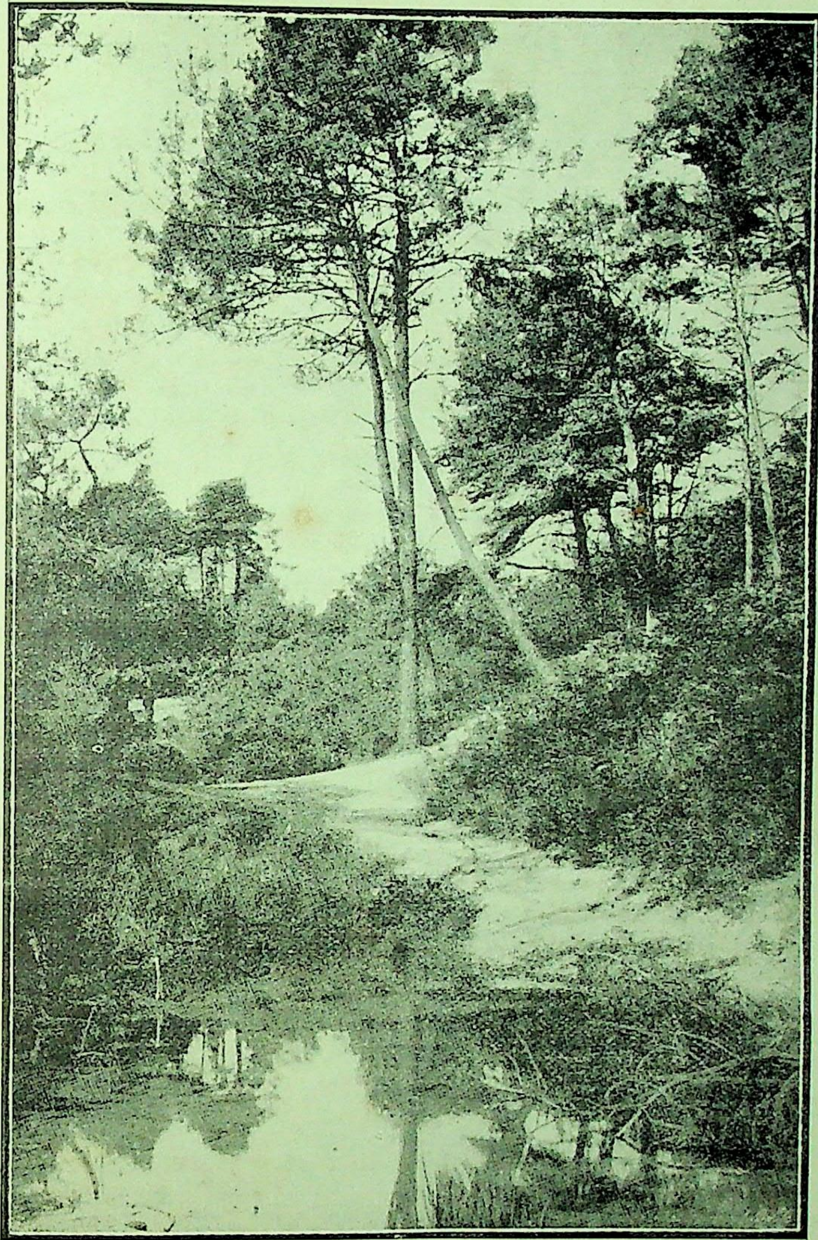
शरद्-काल की रमणीय रजनी का आदर सुकवियों ने अनोखे ढँग से किया है। कविवर सेनापति ने तो इसका ऐसा चित्र खींचा है कि बस पढ़ते ही बनता है। क्याही अलौकिक आनन्द है!

"रात्रि का समय है। शरद्-ऋतु का पूर्ण विकास है। थोड़ी थोड़ी सर्दी पड़ रही है, परन्तु वह कष्टदायक न होकर भली लगती है। सारा संसार आनन्द में मग्न है। सरोवरों में कुमुदिनी, स्थल पर मालती तथा आकाश में उडुगण ऐसे फूल रहे हैं—फूलों और नक्षत्रों का इतना आधिक्य है मानों अगणित मोती बिखरे पड़े हों। उज्ज्वल चन्द्रमा अलग ही उदित हो रहा है। शुभ्रज्योत्स्ना ऐसी छिटक रही है मानों श्रीरामचन्द्रजी की यशोधवलिमा पृथ्वीतल से आकाश तक व्याप्त हो रही हो। चारों ओर अन्धकार को नष्ट करनेवाली सफ़ेदी ही सफ़ेदी दिखलाई पड़ रही है, मानों यह संसार उज्ज्वल क्षीर-सागर में मग्न हो रहा हो।" स्वयं कवि का प्रकृति-निरीक्षण इस प्रकार से है:—

कातिक की राति थोरी थोरी सियरात सेना-
पति को सुहाति सुखी जीवन को गन है।
फूले हैं कुमुद फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे मनों मोती अनगन है।
उदित बिमल चंद चाँदनी छिटक रही,
राम को सो जसु अध ऊरध गगन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शीतकाल ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिमिर हरन भयो सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीर सागर मगन है ॥ ।

(२)

कैसी अनोखी स्वभावोक्ति है ? कैसा निर्मल प्रकृति-वर्णन है ? कैसे निर्दोष पवित्र विचार हैं ? कैसी प्राञ्जल मधुर भाषा है ? कैसे छोटे छोटे शब्दों का प्रयोग है ? कवि कौशल की प्रशंसा कहाँ तक की जाय !

हेमन्त का वृत्तान्त और भी अनूठा है। घोर शीत पड़ रहा है। गरमी का कहीं पता ही नहीं है। अग्नि देव अलग ही विकल हो रहे हैं। उनके तेज की तो सूरत भी नहीं दिखलाई पड़ती है। पहले की सारी शूरता फीकी पड़ गई है। सेनापतिजी ने 'शूर अनल' और 'शीत' के समर तथा उसमें निर्बल अनल के पराभव का भावपूर्ण वर्णन किया है। अनल बेचारा किसी गृहस्थ के एक कोने में छिपा पड़ा है, मित्र-मण्डली उसे चारों ओर से घेरे हुए है। सभी उसे अपनी छाती के छाया का आश्रय दे रहे हैं। शत्रु शीत से रक्षा करने का कैसा अच्छा उपाय है ? घर के एक कोने में गृहस्थ-कुटुम्ब के आग तापने का कैसा सुन्दर चित्र है ? आग तापते समय छाती को भी सेकने के लिए लोग जिस प्रकार उसे आग की ओर कर देते हैं उस दृश्य का और एक असहाय भगोड़े को बचाने के लिए उसे घेर कर बैठने से कितना साम्य है ? कवि की दृष्टि कितनी बारीक है ? अलाव पर बैठ कर आग तापने का जीता जागता चित्र सेनापतिजी के पद्य में मौजूद है, सो भी एक अनूठी उक्ति के साथ। सोने की अँगूठी में उज्ज्वल हीरे का नग कैसा चमकता है !

सीत के प्रबल सेनापति कोपि चढ़ो दल,
निबल अनल गयो सूर सियराय कै।
हिम के समीर तेई बरषैं विषम तीर,
रही है गरम भौन कोनन मैं जायकै।
धूम नैन रहै लोग आगि पर गिरे रहैं,
हिय सों लगाय रहे नेक सुलगाय कै।
मानौ मीत जानि महासीत ते पसारि पानि,
छतिया की छाह राख्यो पावक छपाय कै।

(३)

सूर्य देव बिलकुल निष्प्रभ हो रहे हैं। उनकी ओर देखना तो अब वैसा ही सहज है जैसा चन्द्रमा की ओर देखना। सच बात तो यह है कि सविता ने शशि का रूप धारण किया है। सूर्यातप के दर्शन भी अब चञ्चला के समान झलक-मात्र होते हैं। शीत में सहस्र गुण आधिक्य है। दिन रात्रि के समान शीतल हो रहा है। एक तो रवि का रूप ही शशि के समान हो रहा था उधर रात्रि के सब लक्षण भी दिखलाई पड़ने लगे हैं। बस चकोर, चक्रवाक, कुमुदिनी और पद्मिनी सभी को भ्रम हो गया है। इस भ्रम से एक को आनन्द है तो दूसरे को दुःख है। कैसी विषमता है ? चक्रवाक तो प्रसन्न होकर चन्द्रमा के धोखे टकटकी लगा कर सूर्य देव को देखने लगा। पर रात्रि के समय चक्रवाकी से वियोग होगा, इस भय से वह घबरा गया। उसका धैर्य छूट गया और छाती धड़कने लगी। कुमुदिनी ने सूर्य देव को कुमुदिनी-पति समझा—अपने पति के पाने का भ्रम उसके सहसा फूल उठने का कारण हुआ। वह खिलखिला कर हँसने लगी। उधर बेचारी पद्मिनी बड़ी ही शंका में पड़ी। उसका फूलना बन्द हो गया।

सच्चे प्रकृति-निरीक्षक सेनापति ने अतिशयोक्ति और स्वभावोक्ति का कैसा सम्मिलन उपस्थित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखलाया है ! एक के सुख और दूसरे के दुख की विषमता भी कैसी मधुर और लावण्यमयी है ! श्रम का क्या कहना ! वह तो पद्य का सर्वस्व ही है ! रचना की इस सुघरता पर कवि को जितनी बधाई दी जाय थोड़ी है।

सिसिर में ससि को सरूप पावै सविताऊ,
दामिनी की दुति घाम हूँ मैं दमकति है।
सेनापति होति सीतलता है सहस गुनी,
रजनी की झाँई दिन हू मैं झमकति है।
चाहत चकोर सूर ओर दृग छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धमकति है।
चन्द के भरम होत मोद है कुमोदिनी के,
ससि संक पंकजिनी फूलि न सकति है।

कवि-समय-ख्याति के अनुसार शिशिर और हेमन्त में कमल फूलने का वर्णन नहीं किया जाता है। शशि की शंका से पद्मिनी का फूलना न दिखला कर सेनापतिजी ने कवि-सम्प्रदाय की प्रथा की भी रक्षा ख़ूब की। प्राचीन काल में श्लेषात्मक रचना करने का बड़ा रवाज था। संस्कृत-साहित्य में तो ऐसे कई ग्रन्थ हैं जो सम्पूर्ण के सम्पूर्ण दो दो तीन तीन अर्थों में घटाये जा सकते हैं। इसके सिवा ऐसे फुटकर श्लोक तो बहुत से हैं जिनके दस दस बारह बारह तक अर्थ हो सकते हैं। कविता-समालोचकों की राय है कि श्लिष्ट काव्य द्वितीय श्रेणी का काव्य है। हृदयतल को हिला देनेवाले भावों की मनोमोहिनी मूर्ति ऐसे काव्य में नहीं पाई जाती है। चाहे जो हो, प्राचीन काल में श्लिष्ट कविता का आदर था। हिन्दी के बड़े बड़े कवियों ने भी श्लेषमूलक कविता की है।

कविवर सेनापति के 'कवित्तरत्नाकर' ग्रन्थ का एक सम्पूर्ण तरङ्ग ऐसी ही कविता से परिपूर्ण है। वहीं से पाठकों के मनोरञ्जन के लिए एक 'शिशिर और वर्षा' के श्लेष का उदाहरण नीचे दिया जाता है।

तीर तैं अधिक वारिधार निरधार महा,
दारुन 'मकर' चैन होत है 'न दीन' को।
होति है 'करक' अति बड़ी न सिराति राति,
तिल तिल बाढ़ै पीर पूरी बिरहीन को।
'सीकर' अधिक चारि ओर 'अंबु नीर है न',
पांवरीन विना केहूँ बनत धनीन को।
सेनापति बरनी है बरषा सिसिर ऋतु,
मूढ़न को अगम सुगम परबीन को।

वर्षा-पक्ष में इसका अर्थ यह है:—

"वारिधारा तीर से दारुण प्रतीत होती है। नदी के मगर आदि जलचर आनन्द में हैं। रात्रि में बिजली की कड़क बड़े ज़ोर से होती है। विरही-जनों को रात्रि काटने में अपार कष्ट होता है। उसका अवसान ही नहीं होता है। वह बढ़ती ही रहती है। चारों ओर जलकण छाये हुए हैं। आकाश जलमय है। धनी लोगों का भी काम 'पाँवड़ी' के बिना नहीं चलता है।"

शिशिर-पक्ष में इसका अर्थ यों है:—

"शीत के कारण जल की धार तीक्ष्ण बाण से भी अधिक कष्टदायक प्रतीत होती है। सूर्य मकर-राशिस्थित हो रहे हैं। यह समय कितना दारुण है। बेचारे दीन लोगों को इस समय में चैन कैसी ?—विरही-जनों को और भी विपत्ति है। जाड़े की बहुत बड़ी रात उनके काटे नहीं कटती है। हृदय में वेदना होती रहती है। शीत से सताये लोग चारों ओर 'सी, सी' कर रहे हैं। आकाश में जल का कहीं पता नहीं है। धनी लोगों का काम बिना 'पाँवड़ा' के नहीं चलता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकर, नदीन, करक, सीकर आदि शब्द श्लिष्ट हैं। इन शब्दों के १ मगर (जलचर) २ मकर राशि; १ नदियाँ २ न दीन (दुखिया नहीं); १ बिजली की कड़क २ पीड़ा; १ जलकण २ सीत्कार आदि दो अर्थ क्रम से वर्षा और शिशिर के पक्ष में लगते हैं।

वास्तव में यह श्लेष बहुत ही सुन्दर है। इसमें बहुत खींचातानी नहीं करनी पड़ी है। कवि के ही शब्दों में यह मूढ़ों को तो अगम, परन्तु प्रवीणों को सुगम है।

(५)

"पौष बीत गया। शिशिर का तुषार प्रत्यक्ष गिर रहा है। ठंढ के मारे हाथ पैर जकड़ रहे हैं। दिन की छोटाई का वर्णन करना कठिन है। भगवान् मरीचिमाली 'सहस्रांशु' 'सहस्रकर' आदि नामों से विख्यात थे। परन्तु इस समय तो उनके उन करों का कोई करतब नहीं दिखलाई पड़ रहा है। उनके शीतकालीन भगोड़ेपन को देख कर तो उन्हें सहस्रचरण की उपाधि देना ही उपयुक्त प्रतीत होता है। उनके उदय होकर अस्त होने में देर ही नहीं लगती है। रात में अपने जोड़े से बिछुड़ा हुआ चक्रवाक सूर्योदय होते न होते चक्रवाकी से मिलने के लिए निकला है। वह उसे ढूँढ़ रहा है। अभी सम्मिलन भी न हुआ था कि अपनी मरीचिमाला को लपेट कर सूर्य अस्ताचलगामी हुए। उस बेचारे को विफलमनोरथ होकर ही लौटना पड़ा"।

सिसिर तुषार के बुखार से उखारत हैं,
पूस बीते होत हाँथ पाँय सूने ठरिकै।
द्यौस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाय,
सेनापति पाय कछू सोचि कै सुमिरिकै।
सीत से सहस कर सहसचरन है कै,
ऐसे जात भागि तम आवत है घिरि कै।
जौलौं कोकी कोक को मिलत तौ लौं होति राति,
कोक अधबीच ही ते आवत है फिरि कै।

दिन की छोटाई का कैसा अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन है? कवि-समय-ख्याति यह है कि रात्रि में चक्रवाक और चक्रवाकी सदा बिछुड़े रहते हैं तथा दिन में एक दूसरे को मिल जाते हैं। इसी कवि-समय-ख्याति से लाभान्वित होकर सेनापतिजी ने दिन की घोर लघिमा का चमत्कार-पूर्ण वर्णन किया है।

(६)

सूर्य देव के भगोड़ेपन का हाल पाठकों ने ऊपर पढ़ ही लिया है। उनकी निष्प्रभता एवं सम्पूर्ण पराभव का वर्णन भी सेनापतिजी ने मार्के का किया है। एक पद्य का कुछ अंश आगे पढ़िए।

चित्र को सो लिखो तेजहीन दिनकर भयो,
अति सिय राम घाम गयो पतराय कै।
सेनापति मेरे जान सीत के सताए सूर,
राखे हैं सकोरि कर अम्बर छिपाय कै।

शीत के सताये सूर का अपने 'करों' को सिकोड़ कर 'अम्बर' में छिपाना कितना विदग्धता-पूर्ण है? जाड़े से पीड़ित पुरुष कपड़े में अपने ठिठुरे हुए हाथ अवश्य ही छिपा लेगा। सूर्य ने भी अपनी किरणों को आकाश में छिपा लिया है। अम्बर और कर का श्लेष कितना भावमय है। अम्बर का अर्थ वस्त्र और आकाश दोनों है। उधर कर का अर्थ भी हाथ और किरण दोनों है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के कविगण* शरद में आकाश की निर्मलता, कमलों का फूलना एवं शशि की प्रसन्नता का वर्णन करते हैं। उनके हेमन्त के वर्णन की सामग्री प्रायः बड़ी रात, छोटा दिन शीताधिक्य तथा सूर्य की विविध अवस्थायें हैं। शिशिर के अन्तर्गत होली आजाने से बहुत से शृङ्गारी कवि उक्त ऋतु के वर्णन में नाच-गान का ही उल्लेख करते हैं। सेनापतिजी के जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं उनमें ऋतु-सम्बन्धी प्रकृति-शोभावाले पद्य ही हमने उद्धृत किये हैं। शृङ्गार-रस संयुक्त भी उनके वर्णन थे, परन्तु उनका उद्धृत करना हमने ठीक नहीं समझा। हमारे इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि वे वर्णन अश्लील या सभ्य-समाज के सम्मुख पढ़े जाने के योग्य नहीं हैं। ऐसी कोई बात नहीं है। हमें इस लेख में यही दिखलाना है कि व्रजभाषा के कवि प्रकृति-शोभा के वर्णन करने में भी सिद्धहस्त थे। सूरसागर, रामचन्द्रिका, कवित्व-रत्नाकर एवं कविवर देवजी के कई ग्रन्थों में प्रकृति शोभा के बहुत ही मनोहर वर्णन मौजूद हैं। रामचरितमानस में भी ऐसे वर्णनों का अभाव नहीं है। फुटकर वर्णन ते बहुत से हैं। यदि हिन्दी-कवियों के प्रकृति-वर्णनों का सङ्ग्रह किया जाय ते शृङ्गार-रस से विरक्त हमारे प्रेमियों की व्रजभाषा-काव्य के प्रति अरुचि बहुत कुछ कम हो जाय।

कृष्णविहारी मिश्र

---

* अमल अकास प्रकास ससि, मुदित कमल कुल कास।
पन्थी पितर पयान नृप, सरद सु केशवदास॥
तेल तूल तामोल तिय, ताप हरन रविवन्त।
दीह रजनि लघु द्यौस सुन, सीत सहित हेमन्त॥
सिसिर सरस मन बरनि सब, केशव राजा रंक।
नाचत गावत रैनि दिन, खेलत रहत निसंक॥
केशवदास

तीर्थ-सलिल।



कलाधर अनन्त के वक्षस्थल पर विहार करता है। वहाँ जरा और मृत्यु का भय नहीं, मर्त्यलोक की भावना नहीं। परन्तु कलाधर की ज्योत्स्ना मर्त्यलोक को ही आप्लावित करती है। महिमा-मण्डित राजप्रासादों में और पापमय कारागारों में वह एक ही भाव से क्रीड़ा करती है। कलाधर के समान कवि भी सङ्कीर्णता से विमुक्त रहते हैं। उनकी कला देश और काल के व्यवधान को दूर कर देती है। कवि अपनी कला के द्वारा विश्वभाव को ही खोजते हैं और उसी को व्यक्त करते हैं। उनके भाव का अनुभव सभी जातियों के मनुष्य कर सकते हैं। उनकी वाणी सभी के मुख में, भाषा-रूप में, परिस्फुट हो सकती है। यह सच है कि कवि मनुष्य ही है और प्रत्येक मनुष्य में उसका व्यक्ति-गत और जाति-गत विशेषत्व होता है। भिन्न भिन्न देशों और भिन्न कालों के भिन्न भिन्न आचार-व्यवहार होते हैं। प्रत्येक भाषा की भी एक विशेषता होती है। कवि इन्हीं से अपने काव्य की रचना करता है, इन्हीं से अपनी कला के लिए उपकरण सङ्ग्रह करता है। देश और काल से पृथक् विश्व-मानव नामक किसी भी पदार्थ की कल्पना हम नहीं कर सकते। कवि की कला यही है कि वह विशेष में ही निर्विशेष विश्व को प्रकट करता है। जो देश और काल से परिमित है उसी के भीतर वह शाश्वत का रूप अभिव्यक्त करता है। वह हमें सीमा में असीम का दर्शन कराता है। अनन्त सत्य को मूर्तिमान् कर इन्द्रिय-ग्राह्य बना देता है। कला की यही कुशलता है। होमर और वर्जिल के काव्यों में अथवा रैफल और एञ्जलो के चित्रों में हम योरप का ही वेश-विन्यास पाते हैं। परन्तु उस वेश-विन्यास के द्वारा आत्मा का जो रूप लक्षित हो रहा है वह योरप का उल्लङ्घन कर अखिल विश्व में दृश्यमान है। डायना, जूनो या ईसामसीह के चित्रों में जो सत्यनिहित है उसकी अभिव्यक्ति के वे केवल उपलक्ष्य मात्र हैं। हिन्दू दान्ते और मिल्टन के महा-काव्यों में अपनी रुचि और विश्वास के विरुद्ध ऐसी बातें पा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है जो उसके लिए ग्लानिकर हो। परन्तु जब वह कथा को छोड़ कर भाव को ग्रहण करेगा, उपकरण को छोड़ कर कवि के अन्तर्जगत् में प्रवेश करेगा तब वह अपनी ही वस्तु पावेगा। कवि भले ही विदेशी नाम और रूप का वर्णन करे, वह भले ही विजातीय दृश्य को अङ्कित करे। परन्तु हम कवि के उसी अनुभव को ग्रहण करते हैं जो नाम और रूप के ऊपर है। वही कवि की मर्मवाणी है। वही कला का ध्येय है। अस्तु।

प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य-भाण्डार से कला की सृष्टि होती है। परन्तु कला प्रकृति-सौन्दर्य की प्रतिच्छाया नहीं है, वह मनुष्य के अन्तः-सौन्दर्य का बाह्य रूप है। वाल्टह्विट्मैन ने अपनी कृति के विषय में लिखा है:—

Comerado, this is no book.
Who touches this touches a man.

अर्थात् बन्धुवर, यह ग्रन्थ नहीं है। जो इसे छूता है वह एक मनुष्य को स्पर्श करता है। वाल्टह्विट्मैन का यह कथन सभी कला-कोविदों के लिए उपयुक्त है। जिस प्रकार कवि की कृति में उसकी आत्मा निवास करती है उसी प्रकार प्रत्येक चित्र में चित्रकार की आत्मा लीन रहती है। प्रत्येक कलाकोविद के अन्तर्जगत् में दैवी प्रकृति की जो आनन्ददायिनी मूर्ति है वही उसकी कला में प्रकट होती है। काव्य उसी की भाषा है, सङ्गीत उसी की ध्वनि है और चित्र उसी की छाया है। जो शिल्पकार अपने अन्तर्जगत् में उस मूर्ति का दर्शन कर लेता है उसी के शिल्प में यथार्थ सौन्दर्य रहता है। जिसका अन्तःकरण मलिन है उसकी कला में भी सौन्दर्य का विशद रूप प्रकट नहीं होगा। कला में व्यक्तित्व की यही प्रधानता है और इसी से विभिन्नता आती है। परन्तु इस विभिन्नता में भी एकता है। वह है उसका मनुष्यत्व। सभी देशों और सभी कालों में मनुष्य मनुष्य ही रहेगा। सम्राट् अपने वैभव के कारण एक दरिद्र कृषक से अवश्य बड़ा है, परन्तु मनुष्यत्व के सम्बन्ध में दोनों बराबर हैं। एक पुण्यात्मा अपने चरित्र-बल से किसी भी पतित मनुष्य से उच्च स्थान प्राप्त करता है। परन्तु मनुष्य के रूप में दोनों एक ही स्थान को ग्रहण करेंगे। यही मनुष्यत्व कला का आदर्श है। वह क्या है, यह हम नीचे बतलाने की चेष्टा करेंगे।

मनुष्यत्व का यथार्थ रूप देखने के लिए हमें उस मानस सरोवर का पता लगाना चाहिए जहाँ से सभी देशों की कला-धारायें निस्सृत होती हैं। साधारणतः कला के पाँच

112888
R
प्रदेस
मा०23



सरलता।

विभाग किये जा सकते हैं, स्थापत्य, भास्कर्य, चित्रकला, सङ्गीत और कविता। इन पाँचों में हम सौन्दर्य के दो रूप पाते हैं, एक विराट् रूप और दूसरा कोमल रूप। एक हिमाचल है तो दूसरा मन्दाकिनी है। सौन्दर्य के विराट् रूप में हम विराट् वासना, विराट् प्रतिहिंसा, विराट् क्षमता, विराट् आत्मत्याग देखते हैं और उसके कोमल रूप में हम स्नेह, दया, करुणा, ममता आदि भावों की प्रधानता पाते हैं। सभी देशों और कालों की कला में हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही बात देखेंगे। अतएव हम यह कह सकते हैं कि मनुष्यत्व में इन्हीं दो गुणों का सम्मिश्रण हुआ है, महत्ता और कोमलता। तब कला की सार्थकता मनुष्यों के इन गुणों को श्रेयस्कर पथ पर ले जाना है।

अब हम देखना चाहते हैं कि कला-कोविदों ने सौन्दर्य का आदर्श कहाँ देखा, मनुष्यों को पवित्र करने के लिए तीर्थ का सलिल कहाँ एकत्र किया। जब उन्होंने करुणा और स्नेह को मूर्तिमान् कर देखना चाहा तब उसको अन्नपूर्णा के ही रूप में देखा। जब उन्होंने प्रकाश को प्रत्यक्ष करना चाहा तब उसे डायना के ही आकार में देखा। जब उन्होंने शक्ति को साकार किया तब दुर्गा प्रकट हुई। जब उन्होंने संसार की ऋद्धि-सिद्धि, विद्या-विज्ञान, प्रेम-रूप को कहीं एकत्र किया तब उनको लक्ष्मी और सरस्वती तथा वीनस और एथेना के ही स्त्री-रूप में देखा। उसी प्रकार उन्होंने शान्ति को शिव, शौर्य को विष्णु और मृत्यु को यम के पुरुष-रूप में पाया। दयामयी पृथ्वी को उन्होंने स्त्री का रूप दिया और अनन्त-ऐश्वर्य को इन्द्र का पुरुष-रूप प्रदान किया। यह प्राचीन युग की कल्पना-मात्र नहीं है। इसमें सत्य का निगूढ़ तत्त्व विद्यमान है। वह तत्त्व क्या है, यह जानने के लिए हम विश्व-साहित्य के उच्च आदर्शों पर एक बार दृष्टिपात करते हैं। रामायण में एक ओर प्रेम है तो दूसरी ओर आशङ्का है। एक ओर शौर्य है तो दूसरी ओर प्रतिहिंसा है। होमर के इलियड में पुरुषों की उत्कट लालसा और स्त्रियों का विषाद, पुरुषों का दर्प और स्त्रियों का बलिदान, यही दो भाव एक साथ अङ्कित हुए हैं। महाभारत में जिस प्रकार शौर्य, सत्य, और धैर्य की प्रधानता है उसी प्रकार दर्प, विद्वेष और क्रूरता के भी निदर्शन हैं। शेक्सपियर के नाटकों में मानव-चरित्र का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। उसके किंग लियर में जहाँ बन्धुत्व और पितृ-स्नेह है वहाँ अज्ञान और क्रूरता भी है। हेमलेट में यदि पितृ-भक्ति और प्रेम है तो स्वेच्छाचारिता और उपेक्षा का भी भाव है। अथेलो में सरलता और शौर्य है तो जिघांसा और असूया भी है। इससे पुरुषों की महिमा का अनुमान किया जा सकता है। पुरुष विराट् भावों ही की ओर अग्रसर होता है। भगवान् बुद्धदेव की शान्ति, ईसामसीह का प्रेम, अर्जुन की शक्ति, धर्मराज का धैर्य, एकिलस का पराक्रम, ये सब विराट् रूप के ही द्योतक हैं। भव-सागर के तट पर अथवा संसार के रण-क्षेत्र में इनकी शक्ति उद्दीप्त होती है। ये दिनकर के प्रकाश के समान मनुष्यों की अन्तर्निहित शक्तियों को जागृत कर उनको कार्य-क्षेत्र में अग्रसर करते हैं। परन्तु चन्द्रकला की ज्योत्स्ना के समान स्त्रियों की कोमलता मनुष्यों के अन्तःकरण में सुधा-वर्षण करती है। यदि हम लोग पृथ्वी पर स्वर्ग का दृश्य देखना चाहते हैं तो हम मातृ-स्नेह में स्वर्गीय शोभा का अनुभव कर सकते हैं। दरिद्र की कुटी में और श्रीमानों के राज-प्रासादों में वही सबसे अधिक मूल्यवान् रत्न है। यदि मनुष्य को उसका गर्व है तो पशु को भी उसका गर्व है। मातृ-स्नेह ने समस्त पृथ्वी को आप्लावित कर रक्खा है। वहाँ जाति-भेद नहीं, वर्ण-भेद नहीं। देश और काल उसको मर्यादित नहीं कर सकते। अतएव मातृ-रूप को अङ्कित करने में सभी कला-कोविदों ने अपनी कला की सार्थकता समझी है।

मातृ-स्नेह के साथ ही अपत्य-स्नेह है। अपत्य पर पिता का उतना ही अधिकार है जितना माता का। तो भी शिशु माता ही की गोद में शोभा देता है। शिशु में जो सरलता है वह माता ही की सरलता की प्रतिच्छाया है। सरलता पवित्रता से पृथक् नहीं है। हम गौरव देख कर चकित हो जाते हैं, पर सरलता देख कर उसमें तन्मय हो जाते हैं। अपत्य के रूप में यह अमूल्य धन हमें स्त्रियों ही से मिला है। जिस प्रकार क्षुद्र शीतबिन्दु में सूर्य की अनन्त आभा स्पष्ट हो जाती है उसी प्रकार शिशु के सौन्दर्य में स्वर्ग की प्रतिमा परिस्फुट होती है। शिशु को हम पृथ्वी पर स्वर्ग का पारिजात कहेंगे, जिसने अच्छे और बुरे का ख़याल न कर सभी को अपने आमोद से प्रमुदित कर रक्खा है। जिस प्रकार वधिक के हृदय में भी 'आर्थर' पवित्र स्नेह का सञ्चार कर देता है उसी प्रकार दुष्यन्त के हृदय में सर्वदमन आशा का प्रकाश फैला देता है। मनुष्यत्व का यह रूप दोनों में एक ही भाव से व्यक्त होता है। अतएव कला में शिशु ने अपना एक पृथक् राज्य स्थापित कर लिया है।

मनुष्यत्व का तीसरा रूप उसके दुःख और दारिद्र्य में प्रकट होता है। यदि कोई भावना मनुष्य-जाति को एक करती है तो वह दुःख की भावना है। निशा के अन्धकार

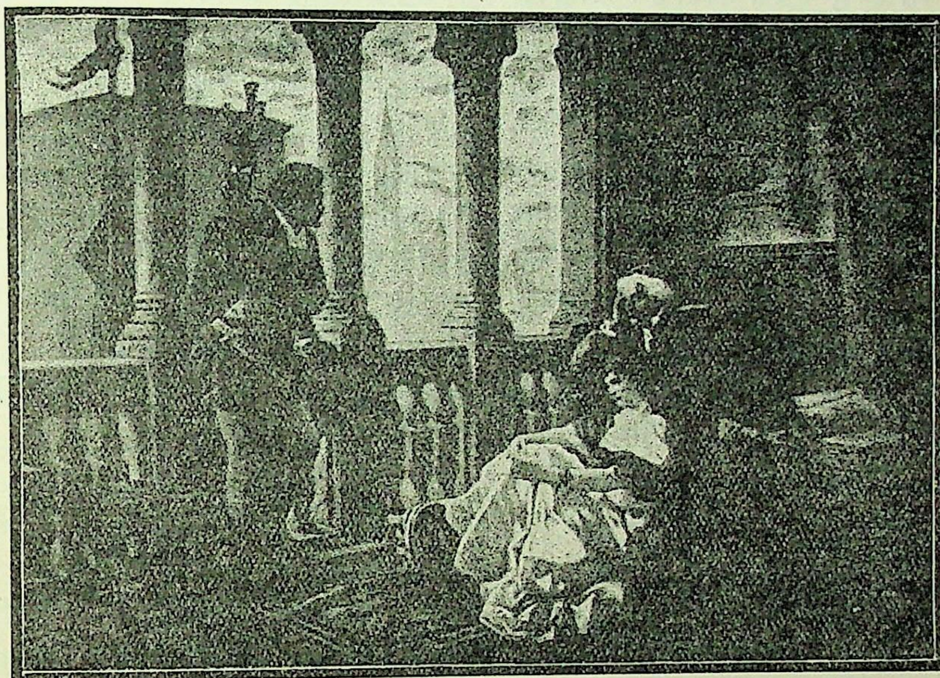
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मनुष्यों का व्यक्तिगत भेद नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार दुःख की छाया पड़ने पर सभी अपना भेद-भाव भूल जाते हैं। सुख और समृद्धि में मनुष्य मनुष्य से दूर हो सकता है, पर दुःख और दारिद्र्य में वह अपना हाथ बढ़ा कर शत्रु का भी आलिङ्गन करता है। मनुष्यों में सहानुभूति का भाव स्वाभाविक है। इसकी जागृति दुःख में ही होती है। साहित्य और कला में वेदना का जो इतना प्रबल भाव है उसका कारण यही है।

ष्यत्व के जिन तीन स्वरूपों का वर्णन ऊपर किया गया है वह प्रत्येक विश्व-कवि की कृति में विद्यमान है। यहाँ हम पाश्चात्य साहित्य पर स्थूल रीति से ही विचार करेंगे।

होमर के काव्यों में पुरुषों की विराट् वासना के अनेक चित्र हैं। सच पूछो तो विराट् प्रतिहिंसा और वासना से इलियड की सृष्टि हुई और उसी में उसका अन्त हुआ। पेरिस की वासना और ग्रीस के योद्धाओं की



ओथेलो और डेस्डेमोना।

कला का स्वरूप सर्वत्र एक ही रहेगा। चित्र-कला और काव्य के ध्येय में कोई भी भेद नहीं है। विद्वानों की सम्मति है कि भाव-पूर्ण वाक्य काव्य है। उसी प्रकार जब कोई भाव रङ्गों से पट पर व्यक्त कर दिया जाता है तब वह चित्र हो जाता है। इस दृष्टि से चित्र को हम दृश्य-काव्य कह सकते हैं। जो रसात्मक वाक्य अथवा भाव-पूर्ण चित्र हम लोगों के हृदय के रस और भाव के स्रोत को खोल देता है वही यथार्थ में काव्य या चित्र है। काव्य अथवा चित्र के रस-विधान की सार्थकता हृदय के उपभोग में है। अतएव कला के विषय में मनु-

प्रतिहिंसा से ट्राय का युद्ध हुआ और एकीलस की कामना और प्रतिहिंसा से उसका अन्त हुआ। परन्तु वासना और प्रतिहिंसा के इस भीषण दृश्य में हमें स्त्री-रूप की कोमलता का भी चित्र मिलता है। जिन्होंने इलियड पढ़ा है उन्होंने एन्ड्रोमैची की मूर्ति को प्रेम से देखा होगा। वह ट्राय के प्रसिद्ध वीर हेक्टर की पत्नी थी। वह दृश्य कभी नहीं भूला जा सकता जब हेक्टर के युद्ध-गमन के समय एन्ड्रोमैची अपने पति से वियुक्त हुई है। हम एन्ड्रोमैची के हृदय में सरल मातृ-स्नेह और पवित्र पति-प्रेम देख कर मुग्ध हो जाते हैं। इलियड में ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही कितनी स्त्रियाँ हैं जिनके चित्र हमारे हृदय-पटल में चिरकाल के लिए अङ्कित हो जाते हैं। साहित्य और कला में स्त्री-रूप का क्यों इतना गौरव है, यह हम दान्ते के महाकाव्य से समझते हैं। दान्ते के महाकाव्य में बीट्रिस ने ही उसको स्वर्ग का दर्शन कराया। दान्ते ने स्त्री के निस्स्वार्थ जीवन और पवित्र प्रेम का यह प्रभाव बतलाया है कि उसी के द्वारा मनुष्य स्वर्ग-भूमि में प्रविष्ट हो सकता है। पथ-भ्रष्ट मनुष्य को सत्पथ पर लाकर स्त्री ही उसे देव-तुल्य बना सकती है। शेक्सपियर के नाटकीय पात्रों के विषय में रस्किन ने यह बिलकुल ठीक कहा है कि उनमें नायक कोई नहीं है, नायिकायें ही हैं। उसकी कार्डिलिया, डेस्डेमोना, रोज़ालिंड, हेलेना, बर्जीलिया आदि स्त्रियों का चित्र दिव्य है। मर्चेन्ट आव् वेनिस के समान यदि किसी नाटक का अन्त सुखमय हुआ है तो वह पोर्शिया के समान स्त्रियों की बुद्धि और दया से हुआ है और यदि रोमियो और जूलियट के समान कोई नाटक दुःखान्त हुआ है तो उसका कारण पुरुष ही है। अपत्य-स्नेह, सरलता और दुःख के विषय में भी सभी कवियों ने एक ही भाव का उद्गार किया है। अतएव यही विश्वभाव है। इसी का सङ्केत कर एक कवि ने कहा है:—

Above the Olympian hill I soar,
Above the flight of Pegasian wing!
The meaning not the name I call.

जो यथार्थ कवि हैं वे देश और काल से अतीत हैं। देश और काल का आश्रय ग्रहण कर, उनमें रह कर, उन्हीं से उपकरण संग्रह कर, वे सभी देशों और सभी कालों के उपयुक्त आदर्श की सृष्टि करते हैं।

कालिदास भी विश्व-कवि थे। उन्होंने अपने काव्य में जिस आदर्श जगत् की सृष्टि की है वह मनुष्य-मात्र के लिए है। उन्होंने मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमता को देखा है और उसकी दुर्बलता की भी परीक्षा की है। क्षमता और निर्बलता को भली भाँति पहचान कर उन्होंने मनुष्य-जीवन में विश्व-भाव की प्रधानता निश्चित की है। यहाँ हम उस पर कुछ विशद रूप से विचार करना चाहते हैं।

कालिदास के ग्रन्थों में तीन काव्य सर्व-श्रेष्ठ हैं, मेघदूत, रघुवंश और अभिज्ञानशाकुन्तल। सबसे पहले हम मेघदूत को लेते हैं। मेघदूत के द्वारा कवि ने भारत के तत्कालीन वैभव का वर्णन किया है। उसमें हम दो ही बात देखते हैं, एक तो पुरुष की उद्दाम लालसा और दूसरा स्त्री का विषाद। भारत की अट्टालिकाओं और प्रमोदवनों में हमने पुरुषों की विलासिता देखी और एक कोने में विषण्णवदना स्त्री की मलिन-मूर्ति का दर्शन किया। जब कोई पार्थिव वैभव से मदोन्मत्त हो जाता तब यक्ष के समान उसका अधःपतन होगा ही। परन्तु उसके अधःपतन में स्त्रियों का विषाद भरा हुआ है। यदि स्त्री की मूर्ति विषादमयी है तो उसका कारण मनुष्य की वासना है। जब हम स्त्री की दृष्टि में विषाद की गम्भीर छाया देखते हैं तब हमें पुरुषों की पौरुष-हीनता का स्मरण हो जाता है। सभी देशों में पुरुषों की लालसा का परिणाम स्त्रियों का विषाद है। परन्तु उनके विषाद में भी पवित्रता है। संसार की मलिनता को अपने अन्तस्तल में वे चुपचाप छिपा लेती हैं और उसके बदले में वे संसार को अपने हृदय का कमल दे डालती हैं। वही यक्षपत्नी का प्रेम है।

रघुवंश में आदर्श पुरुषों का चरित्र-गौरव अङ्कित किया गया है। कवि ने उनके बाह्य रूप में जिस प्रकार उनके विशाल नेत्र, विशाल भुजा और विशाल वक्षस्थल का दर्शन कराया है उसी प्रकार उनके अन्तःकरण में विराट् वासना, विराट् प्रतिहिंसा, विराट् क्षमता, विराट् आत्मत्याग का दृश्य दिखलाया है। रघुवंश के सभी नराधिप विश्वजित् में सर्वस्व त्याग करने के लिए विश्व-विजय की कामना रखते थे। उनकी प्रतिहिंसा का स्वरूप यह था कि वे पद-दलित सर्प के समान शोणित की इच्छा से शत्रु का दमन नहीं करते, केवल अपमान का प्रतीकार करना ही उन्हें इष्ट था। उनकी क्षमता यह थी कि शत्रु को उन्मूल कर उन्हें वे फिर वैभव-सम्पन्न कर देते थे।

रघुवंश में कवि ने बतलाया है, निष्काम कर्म क्या है, यथार्थ गृहस्थ किसे कहते हैं, धर्म की जय और पाप का पराजय कैसे होता है। दिलीप, रघु और रामचन्द्र के चरित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मनुष्यत्व का गौरव प्रदर्शित किया गया और अग्निवर्ण के चरित्र में मनुष्यत्व का अधःपतन बतलाया गया है। रघुवंश के नराधिपों के द्वारा कवि ने विश्व को जो सच्चा संदेश दिया है वह उनके निम्न-लिखित श्लोकों में व्यक्त हुआ है—

त्यागार्थ सम्भृतार्थानां, सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजगीषूणां, प्रजायै गृहमेधिनाम् ।
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां, यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्धके मुनिवृत्तीनां, योगेनान्ते तनुत्यजाम् ।

इन श्लोकों में मनुष्यों का कार्यक्षेत्र निर्दिष्ट कर दिया गया है और उनका आदर्श भी बतला दिया गया है। इसी प्रकार कवि ने स्त्रियों का भी आदर्श निश्चित कर दिया है। पुरुष विराट् भावों की ओर अग्रसर होता है। दिलीप की तपस्या, रघु का पराक्रम, दशरथ का प्रेम, रामचन्द्र का प्रजानुरञ्जन, ये सब विराट् भाव के ही द्योतक हैं। संसार के रण-क्षेत्र में इनकी शक्ति उद्दीप्त होती है। ये मनुष्यों की अन्तर्निहित शक्तियों को जागृत कर उनको कार्य-क्षेत्र में प्रवृत्ति कराते हैं। परन्तु कालिदास के स्त्री-पात्र मनुष्यों के अन्तःकरण में सुधा-वर्षण करते हैं। कालिदास की स्वर्ग-सृष्टि में यदि पुरुषों की उपमा ऐरावत से दी जाय तो कल्पलता का स्थान स्त्रियाँ लेंगी। उनके दर्शन-मात्र से मनुष्यों की सभी कामनायें पूर्ण हो सकती हैं।

रघुवंश में पहला चरित्र सुदक्षिणा का है। उसमें शौर्य नहीं, तेज नहीं, क्षमता नहीं। दिलीप की वह छायामात्र है। उन्हीं का वह अनुगमन करती है। दिलीप ने अपने आश्रित के लिए आत्मबलिदान कर दिया। हम उनके पराक्रम से विस्मय-विमुग्ध होगये। सुदक्षिणा ने ऐसा भाव कहीं भी प्रकट नहीं किया। परन्तु सेवा और सहिष्णुता में, स्नेह और स्वार्थ-त्याग में, धर्मानुराग और चरित्र-विशुद्धि में वह दिलीप से हीन नहीं है। उसकी निष्काम-सेवा देख कर हम उसकी पूजा करते हैं। रघुवंश में स्त्रियों का चरित्र-वर्णन गौण है। तो भी जब हम भगवती सीता की शान्तिमयी मूर्ति का दर्शन करते हैं तब बिलकुल मुग्ध होजाते हैं। अपने देव-दुर्लभ गुणों के कारण भगवान् रामचन्द्र समस्त मानव-जाति के परमपूज्य देवता हैं, हिन्दूजाति के लिए तो वे साक्षात् ईश्वर हैं। उनका नाम-मात्र स्मरण कर मनुष्य भवसागर को उत्तीर्ण कर लेता है और स्वर्ग-लाभ कर सकता है। परन्तु सीता मूर्तिमती शान्ति और सौन्दर्य है। उनसे यह पृथ्वी ही स्वर्ग होगई है। उनका स्मरण करने से प्रत्येक गृह स्वर्ग हो सकता है, भवसागर को उत्तीर्ण करने की भी आवश्यकता नहीं रहती है। जहाँ सीता के पद-तल अङ्कित हों, जहाँ उनकी प्रतिदिन पूजा की जाती हो, जहाँ वही स्त्रियों के एक-मात्र ध्येय हों, वहाँ ऐसा कौन हतभाग्य होगा जो पारलौकिक स्वर्ग की कामना करे। स्वर्ग की कल्पलता की कामना इसी लिए की जाती है कि दुःख और दारिद्र्य न हो। दुःख और दारिद्र्य में ही कल्पलता की आवश्यकता है। पृथ्वी की इस कल्पलता की भी परीक्षा तभी होती है जब विपत्ति आती है। भगवती सीता का सौन्दर्य रघुवंश के राजप्रासादों में परिस्फुट नहीं हुआ है। उनका यथार्थ रूप भीषण अरण्य की पर्णकुटी में ही लक्षित होता है।

कालिदास ने स्त्रियों के चरित्र-चित्रण में उनके अन्तःसौन्दर्य की ओर विशेष ध्यान दिया है। कुमार-सम्भव में यह अच्छी तरह बतलाया गया है कि स्त्रियों की शक्ति उनके अन्तःसौन्दर्य के विकास में है। पार्वती के बाह्य सौन्दर्य से जो शङ्कर अजेय रहे वही उनका अन्तःसौन्दर्य देख कर उनके वशीभूत हो गये। पार्वती की तपस्या के लिए, उनके सौन्दर्य का निर्मलता रूप प्रकट करने के लिए शङ्कर आराध्यपति के रूप में विराजमान हैं। कुमारसम्भव में आदि से अन्त तक पार्वती ही की प्रधानता है। देवों से भी अजेय शत्रुओं के पराभव के लिए पार्वती का मातृ-रूप समर्थ था। यह स्त्रियों के गौरव का यथार्थ निदर्शन है। मातृ-रूप में ही स्त्रियाँ जगन्मङ्गलकारिणी होती हैं।

सीता और पार्वती जगज्जननी के रूप में हमारे हृदय-सिंहासन पर प्रतिष्ठित हैं। उनसे स्वर्ग भी पवित्र हो सकता है। परन्तु शकुन्तला के रूप में कालिदास ने जिस कल्पलता की सृष्टि की है वह पर्णकुटीर की उतनी ही शोभा-वृद्धि करती है जितनी राज-प्रासाद की। कन्या के रूप में शकुन्तला ने अपने पिता कण्व के हृदय में कितना स्थान कर लिया था, यह तभी मालूम होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब कण्व कहते हैं—बेटी, तुम्हारे लगाये हुए इन पेड़ों को देख देख कर मैं क्या कभी शान्त रह सकूँगा। जब दुष्यन्त ने उसको पत्नी-रूप में स्वीकार नहीं किया तब उसके हृदय में कितनी ग्लानि, कितनी लज्जा, कितनी वेदना हुई होगी। इसी लिए जब हम उसे पति-वियोग में तपस्विनी के रूप में देखते हैं तब वह हमारे हृदय में सदा के लिए स्थान कर लेती है। हमारी यही लालसा होती है कि हम प्रत्येक गृह में शकुन्तला देखें, कन्या के रूप में, पत्नी के रूप में और माता के रूप में।

ये सब चरित्र मनुष्य की महत्ता के सूचक हैं, पर मनुष्य में कितनी भी महत्ता हो उसमें दुर्बलता भी रहती है। यह दुर्बलता स्नेह की है। पर इसी दुर्बलता से ये मनुष्यों के हृदय में स्थान बना लेते हैं। अपने चरित्र-गौरव के कारण ये हिमालय के समान अपना मस्तक उन्नत कर अनन्त को स्पर्श करते हैं। विघ्न और बाधा से निर्भय, काल और मृत्यु से अटल ये केवल अपनी ही महिमा से स्थित रहते हैं। संसार के लिए उनकी महिमा अगम्य है। लोग उन्हें नतमस्तक हो प्रणाम कर सकते हैं, उनको ग्रहण करने का साहस नहीं कर सकते। पर उनके हृदय से स्नेह की जो मन्दाकिनी धारा बहती है वह समस्त मर्त्यलोक में व्याप्त हो जाती है। वह सभी लोगों के लिए सुलभ रहती है। सभी उसका अनुभव कर सकते हैं। दिलीप अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण पृथ्वी से बहुत ऊँचे हो गये हैं, परन्तु पितृ-स्नेह ने उन्हें पृथ्वी पर खींच लिया है। जब उन्होंने पुत्र का अङ्ग-स्पर्श कर अपत्य-स्नेह की रसज्ञता प्राप्त की तब वे नराधिप नहीं थे, सिर्फ़ पिता थे। उस समय उनका स्थान अयोध्या के किसी भी दरिद्र पिता से ऊँचा नहीं था। वैभव और क्षमता मूल्यवान् है, परन्तु यह स्नेह अमूल्य है। इसी लिए दिलीप ने पुत्र-प्राप्ति पर अपने राज-चिह्न को छोड़ सर्वस्व दे डाला। रघु ने भी अकिञ्चनता स्वीकार कर पुत्र-रत्न प्राप्त किया। अज के अचल धैर्य को बालक दशरथ के एक शब्द ने भङ्ग कर दिया। वे संसार को त्याग चुके थे, पर पुत्र की ममता को नहीं छोड़ सके। दशरथ ने पुत्र-स्नेह में प्राण-त्याग कर दिया। रामचन्द्र ने पुत्र-स्नेह से ही सीता के अन्तिम वियोग को सह लिया। कालिदास ने सर्वत्र अपत्य-स्नेह का स्वर्गीय चित्र अङ्कित किया है। उसी के द्वारा उन्होंने अपने देव-तुल्य चरित्रों को मनुष्यत्व के रूप में प्रदर्शित किया है।

कालिदास ने पशु, पक्षी और लताओं को भी अपने अक्षय परिवार में सम्मिलित किया है। उनके जगत् में प्रकृति जड़ नहीं, जीवित है। उनकी वक-पंक्ति राजा का स्वागत करती है, वृक्ष राजा पर लाज-वर्षा करते हैं। उनके पशु-पक्षी सीता के दुःख से दुखी होते थे। उनकी लतायें शकुन्तला के वियोग में अश्रु-मोचन करती हैं। प्रकृति का मनुष्य पर जैसा भाव था वैसा ही भाव प्रकृति पर मनुष्य का था। देवदारु पर पार्वती का उतना ही प्रेम था जितना कार्तिकेय पर। सीता ने वृक्षों से ही अपत्य-स्नेह का अनुभव किया। शकुन्तला तो प्रकृति की कन्या थी। उसके सभी बन्धु-बान्धव थे।

यही कालिदास की स्वर्ग-सृष्टि है। उसमें हमने देखा कि संसार मनुष्यों के लिए लीला-स्थल नहीं है, तपोभूमि है। संसार में सुख-दुःख, आशा-निराशा और उत्थान-पतन का जो चक्र चल रहा है वह मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है। उसी के द्वारा मनुष्य की आत्मा का निर्मलतम रूप उदित होता है। दुःख और दारिद्र्य में भी रत्न है जिसके लिए राज-सिंहासन को छोड़ कर नराधिप कुटी में रहता है।

विश्व का सौन्दर्य प्रच्छन्न नहीं है। वह प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्जगत् में विद्यमान है। वही परम सत्य है। कीट्स ने इसी सौन्दर्य को सत्य कहा था और उसी को हम 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' कहते हैं। हम लोग कला को कल्पना-प्रसूत समझ कर मिथ्या समझते हैं। परन्तु यह भ्रम है। जिस प्रकार शून्यता से कोई भवन निर्मित नहीं हो सकता। उसी प्रकार मिथ्या से कल्पना की उत्पत्ति नहीं हो सकती। कल्पना सत्य का परिच्छद-मात्र है। उसके भीतर सत्य का ही रूप लक्षित होता है। वह सत्य है विश्व-भावना। जो भावना विश्व में व्याप्त है वही कला का आदर्श है। विश्व से मनुष्य का जो सम्बन्ध है, विश्व मनुष्य के पास जिस रूप से प्रकट होता है, विश्व की सामग्री से वह जो आनन्द और सन्तोष, सुख और दुःख का अनुभव करता है उसी को वह कला के द्वारा व्यक्त करता है। कला के लिए समस्त वसुधा कुटुम्ब है। वहाँ उच्च और नीच का भेद नहीं है। सभी पर उसका अधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार है और सभी उसके द्वारा स्वर्गीय सुख का अनुभव कर सकते हैं।

मनोहरलाल श्रीवास्तव

अरबों की ज्ञान-चर्चा ।


ज-कल विद्या की ख़ूब चर्चा है। नित नई पुस्तकें लिखी जा रही हैं। इस ओर राज्यों का प्रयत्न भी सराहनीय है। परन्तु मुसलमानों के राज्य-काल में पुस्तकों का जितना मान था, उनके लिए जो कुछ किया जाता था, वह कुछ कम प्रशंसा-पूर्ण नहीं है। सच तो यह है कि मुसलमानों अथवा मुसलमान बादशाहों ने विद्या का जितना प्रचार किया था और प्राचीन विद्याओं की जितनी रक्षा की थी उसी का बहुत कुछ अंश इस समय के विद्या के चमत्कार में विद्यमान है।

विद्या-वृद्धि में जब तक राज्य की ओर से ध्यान नहीं दिया जाता अथवा स्वयं श्रीमान् लोग योग नहीं देते तब तक उसकी उन्नति के कपाट बन्द ही रहते हैं। इस्लामी ख़िलाफ़त के लिए एक बड़ी शर्त यह भी है कि ख़लीफ़ा साक्षर हो। इस कारण मुसलमानों के ख़लीफ़ाओं को कम से कम धार्मिक विद्या का पूर्ण परिचय अवश्य ही रहता था। परन्तु धार्मिक विद्या के सिवा वे विद्या की अन्य शाखाओं से सर्वथा शून्य नहीं होते थे। उनके विद्या-प्रेम के कारण दूसरे लोग भी विद्या से कम प्रेम न रखते थे। फलतः जब बादशाह तथा श्रीमान् लोग विद्या-व्यसनी होते थे तब वे विद्वानों को अपनी ओर झुका लेते थे।

मुसलमान बादशाहों के विद्या-प्रेम ही के कारण लाखों पुस्तकें लिखी गई हैं। हज़ारों पुस्तकालय तथा विद्यालय उन्हीं के प्रयत्न से खुले। यदि बग़दाद के बादशाह मामून को विद्या से प्रेम न होता तो यूनानी और लातीनी (लैटिन) पुस्तकों का अनुवाद अरबी में न हो सकता। उसके आदेश से प्रायः विद्वानों की परिषदें हुआ करती थीं और उनमें भिन्न भिन्न विषय विचारार्थ उपस्थित होते थे तथा उन पर शास्त्रार्थ होता था। उसी ने फ़र्रा नाम के एक प्रसिद्ध विद्वान् को व्याकरण के कुछ नियमों को एकत्र करने की आज्ञा दी थी। इस कार्य्य की समाप्ति पर उसने फ़र्रा को भले प्रकार पुरस्कृत किया था। इस प्रकार मामून की बदौलत विद्या की अच्छी वृद्धि हुई। परन्तु दर्शन-शास्त्र की जैसी वृद्धि मामून के समय में हुई वैसी शायद किसी दूसरे बादशाह के समय में नहीं हुई है।

अब्बासी राज्य-काल में बतुल हिकमत नाम्नी एक संस्था की स्थापना बग़दाद नगर में हुई थी। उसमें बहुत सी पुस्तकें एकत्र करके रक्खी गई थीं। इस पुस्तकालय में अपूर्व मौलिक पुस्तकों के सिवा बढ़िया अनुवाद-ग्रन्थ भी सङ्ग्रह किये गये थे। यही नहीं इसकी स्थापना के बाद इसमें सुरयानी, लातीनी, फ़ारसी और संस्कृत आदि भाषाओं के प्रसिद्ध ग्रन्थों का अनुवाद करने के लिए एक विभाग भी था। भारत, रोम, फ़ारस और मिस्र से भिन्न भिन्न विषयों के प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थ मँगा कर यहाँ उनका अनुवाद-कार्य होता था। इस कार्य में सहायता करने के लिए भिन्न भिन्न देशों के विद्वान् भी बुलाये गये थे। उनका बहुत सत्कार होता था। उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक विचारों में किसी प्रकार की आपत्ति न की जाती थी। यही कारण था कि हिन्दू, ईसाई और यहूदी लोग भी बग़दाद में पहुँचे और उनकी बदौलत अरबी-विद्या-भाण्डार में अपूर्व वृद्धि हुई। यहाँ तक कि अरबी-भाषा तथा उसकी विद्या की धाक सारे संसार में जम गई।

विद्या के प्रति बादशाहों का अगाध प्रेम देख कर विद्वान् लोग बादशाहों के लिए पुस्तकें लिखा करते थे। इस्हाक के पुत्र मुहम्मद ने 'किताबुल मग़ाज़ी' नाम का ग्रन्थ मंसूर बादशाह के लिए लिखा था। जब अजदुद्दौलह सिंहासन पर बैठा तब दूर दूर के विद्वान् आकर उसके आश्रित हुए। वह बड़ा विद्या-रसिक था। फलतः उसके लिए 'किताबुल ईज़ाह,' 'किताबुल हुज्जत' और 'ताजी' आदि ग्रन्थों का प्रणयन हुआ।

फ़िरदौसी ने शाहनामा सुलतान महमूद के लिए लिखा था। सुलतान ने प्रत्येक शेर के लिए एक अशरफ़ी देने का वादा किया था। फ़िरदौसी ने साठ हज़ार शेरों का शाहनामा लिखा। परन्तु समय पर सुलतान ने अपना वचन पूरा न किया। बाद को जब साठ हज़ार अशरफ़ियों की रक़म उसके लिए भेजी तब वह इस संसार से चल बसा था, लोग उस समय उसका जनाज़ा क़बरस्तान को लिये जा रहे थे।

महमूद का बेटा सुलतान मसऊद भी विद्या-प्रेमी था। इसी कारण प्रसिद्ध पण्डित अलबेरूनी ने अपने एक ग्रन्थ का नाम 'क़ानून मसऊदी' रक्खा। एक लेखक का मत है कि सुलतान ने अलबेरूनी को इस ग्रन्थ की रचना के लिए एक ऊँट भर अथवा तोल में एक हाथी के बराबर धन से पुरस्कृत किया था। अमीर ख़ुसरो ने 'मसनवी नहसिपहर' नामी एक पुस्तक लिखी थी। बादशाह ने ख़ुसरो को इस पुस्तक के लिए तोल में एक हाथी के बराबर धन प्रदान किया था। इस प्रकार जिन अनेक बादशाहों के लिए अथवा जिनके नाम पर जो ग्रन्थ रचे गये या जिन अनेक ग्रन्थों के लिए बादशाहों ने भिन्न भिन्न समयों में जो पुरस्कार लेखकों को प्रदान किये हैं उनके उल्लेख के लिए यहाँ पर्याप्त स्थान ही नहीं है।

ग्रन्थों की परख।

मुसलमान बादशाह बहुधा अच्छे विद्वान् होते थे। अतएव वे स्वयं पुस्तकों की श्रेष्ठता की परख कर सकते थे। यदि पुस्तक उपयोगी होती थी तो वे उसकी रचा करते थे, नहीं तो उसे नष्ट करवा देना ही अच्छा समझते थे। बल्कि कभी कभी लेखक को दण्ड भी देते थे। एक लेखक कहता है कि अबूबकर नाम के एक चिकित्सक ने रसायन-शास्त्र पर मंसूर के लिए एक ग्रन्थ लिखा। मंसूर ने उसे एक हज़ार अशरफ़ियाँ पुरस्कार में दीं और कहा कि आपने इसमें जिन वस्तुओं के विषय में लिखा है उनमें से कुछ बना कर दिखलाइए। अबूबकर ने जिन वस्तुओं तथा दवाइयों की आवश्यकता बतलाई वे मंसूर ने मँगा दीं। परन्तु जब अबूबकर अपने लेख के अनुसार कार्य न दिखा सका तब मंसूर ने कहा, शोक है कि तुम इतने बड़े नामी और योग्य चिकित्सक होकर सदैव के लिए एक मिथ्या बातों से पूर्ण पुस्तक लिख कर लोगों को धोखे में डाल रहे हो। मैंने तुम्हारे परिश्रम और उद्योग का पुरस्कार एक हज़ार अशरफ़ियाँ दीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर तुम्हारे मिथ्या-कार्य का दण्ड देना भी अत्यावश्यक है। यह कह कर उसने आज्ञा दी कि इसी पुस्तक से उसका सिर पीटा जाय। उसकी आज्ञा का पालन हुआ। और सिर के ऊपर पटकी जाने के कारण उस पुस्तक के टुकड़े टुकड़े हो गये। इसके बाद अबूबकर को मार्ग का व्यय देकर उसने उसे अपने यहाँ से बिदा किया।

मुसलमानों का राज्य किसी समय योरप के स्पेन तक फैल गया था। जिस समय वहाँ मुसलमानों का राज्य था उससे पहले वहाँ के बादशाह तथा श्रीमान् यद्यपि विद्वान् नहीं थे तथापि उन्हें इस बात का घमण्ड था कि हमारे यहाँ बहुत से विद्वान् हैं या हमारे नाम पर बहुत सी पुस्तकें लिखी गई हैं। वे लोग विद्वानों का बहुत सत्कार करते थे। अतएव वहाँ सदैव विद्या की चर्चा होती रहती थी। कभी कभी ऐसा भी होता था कि बहुत सा द्रव्य लेखक को भेंट किया जाता था जिसमें वह अपने ग्रन्थ का समर्पण दाता के नाम पर कर दे, किन्तु कोई कोई लेखक ऐसा करने से इन्कार भी कर देता था।

एक लेखक का त्याग।

ऐतिहासिकों का मत है कि हिजरी की पाँचवीं सदी में अबूग़ालिब नाम का एक बहुत प्रसिद्ध विद्वान् था। उसने एक अपूर्व ग्रन्थ की रचना की थी। बादशाह ने उसकी सेवा में एक सवारी, खिलत और एक हज़ार अशरफ़ियाँ भेजीं और इस बात की अभिलाषा प्रकट की कि वह अपने ग्रन्थ पर केवल इतना लिख दे कि यह ग्रन्थ मैंने अबुलजैश (बादशाह) के लिए लिखा है। पर उसने सारी वस्तुओं को वापस कर दिया। उसने अपने ग्रन्थ पर केवल यही लिखा था कि मैंने इस ग्रन्थ को सर्व-साधारण के लाभ के लिए बनाया है। जब यह समाचार बादशाह अबुलजैश को मिला तब उसने लेखक की उदारता की बहुत प्रशंसा की।

जनता में चर्चा।

बादशाहों के विद्या-प्रेम के कारण जनता में भी विद्या की ख़ूब चर्चा होती थी। रईसों और अमीरों के महलों में भी विद्वानों की बड़ी बड़ी परिषदें होती थीं। मसजिदों, विद्यालयों तथा अन्य स्थानों में भी विद्वानों के सम्मेलन होते थे और परस्पर ख़ूब शास्त्र-चर्चा होती थी।

पुरुषों के सिवा स्त्रियों और लौंडियों में भी विद्या की अच्छी चर्चा थी। वे सारा क़ुरान शरीफ़ कंठस्थ करती थीं। कविता, पिङ्गल और इतिहास आदि की शिक्षा भी उनको दी जाती थी। एक लेखक का कथन है कि बादशाह रशीद की बेगम जुबैदा के महल में सौ लौंडियाँ थीं। वे सबकी सब सारा क़ुरान शरीफ़ कंठस्थ किये थीं। उसके महल से क़ुरान शरीफ़ के पाठ के प्रत्येक शब्द इस प्रकार सुनाई देते थे जैसे शहद के छत्तों से मक्खियों की भिनभिनाहट।

उस काल में विद्या की चर्चा का परिचय इससे अधिक और क्या हो सकता है कि हिजड़ों और ज़ंख़ों के लिए भी शिक्षा का विधान था। सन् हिजरी की पाँचवीं सदी के आरम्भ में स्पेन में बहुत से ऐसे हिजड़े और ज़ंख़े थे जो अनेक विषयों में पूर्ण पण्डित थे। यहाँ तक कि उन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी हैं। ऐतिहासिक इब्न ख़लकान ने मुसलमानों के विद्या-प्रेम के सम्बन्ध में एक बड़ी अनोखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात यह लिखी है कि दमिश्क के बादशाह ने मुनादी करा दी थी कि जो मनुष्य विद्वद्वर जमख़शरी की 'मुफ़स्सल' नाम की पुस्तक कंठस्थ सुना देगा उसको सौ अशरफ़ियाँ और ख़िलत उपहारस्वरूप भेंट की जायँगी।

ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों की वृद्धि।

जब विद्या की चर्चा का यह हाल था तब ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों की संख्या का बढ़ जाना कुछ भी आश्चर्य्य नहीं था। मुसलमानी धर्म्म की उन्नति के लगभग एक हज़ार के भीतर ही भिन्न भिन्न विषयों पर जितने ग्रन्थों की रचना हो गई थी उनकी संख्या का ठीक ठीक पता लगाना कठिन नहीं बल्कि असम्भव है। 'कश्फ़ुज़्ज़नून' के लेखक को सन् हिजरी की ग्यारहवीं सदी तक के भीतर लिखे जानेवाली जिन किताबों का पता चला है उनकी संख्या वह चौदह हज़ार पाँच सौ एक लिखता है। परन्तु इनमें उन पुस्तकों को न समझना चाहिए जो टीका तथा टिप्पणी आदि के रूप में लिखी गई हैं अथवा जो परस्पर वैमनस्य के कारण जला दी गई हैं। क्योंकि इतिहासों से पता चलता है कि जो लोग दर्शन-शास्त्र को बुरा समझते थे वे दार्शनिकों के पुस्तकालयों को जला कर नष्ट कर देते थे।

मुसलमानों की उन्नति-काल के आरम्भ में जो पुस्तकें अनुवाद-रूप में थीं अथवा स्वतन्त्रता-पूर्वक लिखी गई थीं उनमें बहुत-ही कम ऐसी हैं जो इस समय मिलती हों। इससे यह बात दृढ़ता के साथ कही जा सकती है कि मुसलमानों के जितने ग्रन्थ इस समय प्राप्य हैं उनके कई गुने अधिक ग्रन्थ नष्ट हो चुके हैं। अस्तु, इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि तिबारी, इब्न असीर और मसऊदी आदि ऐसे प्राचीन लेखकों ने अपने ग्रन्थों के आरम्भ में बहुत से ग्रन्थों के नाम दिये हैं। उन्हीं में से उन्होंने बहुत कुछ लिखा था, परन्तु उनकी बतलाई हुई पुस्तकें अब बिल्कुल नहीं मिलती हैं।

सैकड़ों ग्रन्थों के लेखक।

छोटे-बड़े समस्त लोगों में असीम विद्या-प्रेम का यह फल हुआ कि कई लेखकों के ग्रन्थों की संख्या सौ से अधिक हो गई है। अबूऊबैद ने भिन्न भिन्न विषयों पर दो सौ पुस्तकें लिखीं। इब्न सुरैह ने चार सौ और इब्न हज़म नाम के एक लेखक ने भी इतने ही ग्रन्थ लिखे। इसी प्रकार कई और लेखक ऐसे हुए हैं जिनके ग्रन्थों की संख्या सौ अथवा सौ से ऊपर पहुँच गई है।

इतिहासों से ऐसा भी पता लगता है कि किसी किसी लेखक के ग्रन्थों की संख्या, सौ से भी अधिक होकर अर्थात् हज़ार तक पहुँच गई है। स्पेन के एक विद्वान् अब्दुल मलिक ने एक हज़ार पुस्तकें लिखी थीं। हाफ़िज़ जमालुद्दीन की भी पुस्तकें इतनी ही बताई जाती हैं।

मुसलमान लेखकों के ग्रन्थों की संख्या कुछ कम आश्चर्य्यजनक नहीं है, किन्तु साथ ही साथ यदि पुस्तकों के भागों तथा पृष्ठों आदि पर भी विचार किया जाय तो यह आश्चर्य्य और भी बढ़ जाता है। बहुतेरी पुस्तकें दस दस भागों में हैं, परन्तु ऐतिहासिक ग्रन्थों के भाग कहीं अधिक हैं। सब्त बिन जौज़ी की 'मिरातुज़्ज़मान' चालीस भागों में है और इब्न असाकिर की 'तीरीख़ दमिश्क' अस्सी भागों में है। ख़तीब की 'तारीख़ बग़दाद' के चौदह भाग, 'किताबुल आग़ानी' के बीस भाग, 'इब्न असीर' के बीस भाग और 'किताबुन्नबात' के साठ भाग हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इब्न असीर और आग़ानी आदि के देखने से पता लगता है कि प्रत्येक भाग लगभग दो सौ पृष्ठों का होता है, किन्तु कभी कभी इससे कम भी होता है।

बड़ी बड़ी पुस्तकों के विषय में यह भी जान लेना चाहिए कि लेखक ने उनमें केवल एक ही विषय का वर्णन नहीं किया है, बल्कि भिन्न भिन्न अनेक बातों को भी लिखा है। जैसे किताबुल आग़ानी का मुख्य विषय सङ्गीत है, परन्तु उसमें प्राचीन अरब और मुसलमानों का प्रारम्भिक इतिहास भी विस्तार के साथ लिखा गया है। इक़्दुलफ़रीद साहित्य की पुस्तक है, किन्तु उसमें ऐतिहासिक तथा शिक्षाप्रद बातें भी कम नहीं हैं। दूसरे अनेक ग्रन्थों का भी ऐसा ही हाल है, परन्तु जो कुछ मुसलमानों द्वारा लिखा गया और जितना लिखा गया उसकी महत्ता तथा उपयोगिता पर गूढ़ दृष्टि डालने से कोई भी मनुष्य उनके कार्य्य की भूरि भूरि प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।

महेशप्रसाद

देवेन्द्रनाथ ठाकुर।

जब हम किसी मनुष्य के जीवनचरित की आलोचना करने लगते हैं तब आरम्भ में उसके जीवन की कुछ घटनाओं ही पर हमारी दृष्टि पड़ती है। जीवन की रङ्गभूमि पर एक एक घटना आती है और थोड़ी देर ठहर कर अन्धकार में जा छिपती है—उसमें किसी के चेहरे पर रहती है हँसी की सुनहली छटा और किसी पर रहती है रोवा-राई की काली छाया। हास्य-रोदन से गुँथी हुई इन घटनाओं के आवागमन का मतलब ढूँढ़ निकालना कठिन हो सकता है। किन्तु इस जीवन-नाट्य का जो अधिकारी नेपथ्य में ठहर कर समूचे खेल को जमाता है उसके लिए ये घटनाएँ कुछ अटपटी नहीं हैं। सारी घटनाएँ एकत्र होकर उसके जीवन के अद्भुत तात्पर्य को प्रकट कर देती हैं। अनेक मनुष्यों के साथ एक व्यक्ति के—पारिवारिक, सामाजिक और साम्पत्तिक दृष्टि से—तरह तरह के सम्बन्ध रहते हैं; उसकी कल्पना, धर्म और कर्म आदि उसके विचित्र वेष-भूषा की भाँति हैं। असल में इसके भीतर ही असली मनुष्य छिपा रहता है, और उसका निवास है एक भावलोक में। जिसे हम दुनिया कहते हैं वह है उसका प्रकाश-क्षेत्र। वहीं पर उसके जीवन-नाट्य का अभिनय होता है। इस दुनिया के पीछे जो भावलोक है उसके पर्दे को हटा कर जो स्वयं देख सके और दूसरों को भी दिखला सके वही है मनस्तत्त्व का ज्ञाता। क्योंकि वह घटनावली पर नज़र नहीं जमाता, वह तो मन को देखता है। ऐसा व्यक्ति ही सच्चा जीवनचरित लिखता है।

वास्तविक घटनाओं की ओट में जो अदृश्य मानसलोक है उसको प्रकट करना ही जीवनचरित के लेखक का प्रधान कार्य है—यह समझना ठीक नहीं। यह सच है कि मनुष्य के मन का पता लग जाय तो बाहरी घटनाओं को समझने में सुभीता हो जाता है। क्योंकि मनुष्य का मन कुछ आधारशून्य और अवलम्बहीन वस्तु नहीं है जो हवा में अधर झूलती हो। उसके आस पास एक अदृश्य कालशक्ति लगातार काम करती रहती है। काल के उस निरन्तर घूमनेवाले पहिये के ज़ोर से बहुतेरी पुरानी बातें दूर जा पड़ती हैं और कितनी ही नई सृष्टियाँ वहाँ चिनगारियों द्वारा प्रकट होती हैं। काल का यह सुदर्शन चक्र जिसके हाथ लग जाता है उसमें संहार और सृजन की लीला एक साथ दृग्गोचर होती है।

किसी बड़े आदमी के जीवन में हम उसी सृजन-लीला को विशेष रूप से देखते हैं। उसकी जीवनी शक्ति में उसके समय का महत् अभिप्राय छिपा रहता है, जो उसके जीवन की सारी सृष्टि के बीच में प्रकट होने की चेष्टा करता है। किसी महान् व्यक्ति के जीवन में ज्योंही युग का अभिप्राय देख पड़ता है त्योंही समझ में आ जाता है कि उस जीवन को इतनी शक्ति कहाँ से प्राप्त हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह काल का अभिप्राय है एक विश्वशक्ति। जिस जीवन में यह विश्वशक्ति प्रकट होती है उसकी विशिष्ट सीमा को लाँघ कर वह विश्व की वस्तु बन जाती है,



महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर।

और उसी हालत में वह जीवन आलोचना का विषय हो जाता है। संसार में ऐसे हज़ारों-लाखों जीवन हुए और हैं कि जिनमें अनेक सद्गुण और सौन्दर्य हैं किन्तु उनके भीतर इस कालशक्ति ने अपनी सुदूर भवितव्यता को अग्रेसर करने के लिए कार्य नहीं किया, इसी से वे महापुरुष नहीं हो सके। उनके भीतर से कोई सजीव भाववस्तु अपने उद्गम से निकल कर और तट बना कर नहीं बहती, और न मनुष्य-समाज के हित के लिए वह अपने किनारों पर सोने की फ़सल उपजाती है। इसी कारण उस जीवन का कोई कीर्तन नहीं करता। ऐसे लोग एक विशिष्ट सीमा के भीतर सदा नज़रबन्द बने रहते हैं।

किन्तु यह धारणा भी ठीक नहीं। अगर उल्लिखित बात ही सोलहों आने ठीक मान ली जाय तो महान् जीवन देश और काल की खण्डता को लाँघ कर चिरन्तन सत्य को कभी आयत्त ही न कर सकेगा। महत् जीवन में देश-काल को अतिक्रम करने योग्य शक्ति छिपी रहती है। वही देश-काल के भीतर होकर अपने भावी अभिप्राय को सार्थक करने का उद्योग किया करती है। एक जर्मन दार्शनिक की राय है कि "समस्त खण्डता को लाँघ जाने का एक विशेष नियम मनुष्य में होता है और यही कहलाता है उसका व्यक्तित्व। जीव से भगवान् के मिलने का स्थान भी यही है।" हम लोग प्रायः देश-काल के भीतर होकर महत् जीवन को देखने की चेष्टा करते ही नहीं। महान् जीवन को हम लोग देश-काल से अलग करके देखा करते हैं। किन्तु असल में दोनों ओर देखना ही ठीक ठीक देखना है।

किसी महत् जीवन में हमें जो भाववस्तु मिलती है उसका स्थान चिरन्तन काल में होने और उस पर सारे विश्व का एक सा अधिकार होने पर भी उसकी उत्पत्ति और प्रकाश होता है खण्डित देश और काल के बीच। विश्वदेश और विश्वजाति के बीच अनेक रूपों में जो विश्व-मानव प्रकट होते हैं इससे उनके विश्वत्व में तनिक भी बट्टा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता। वे तो एक रूप को ग्रहण करके दूसरे को छोड़ते और एक अनुष्ठान के पश्चात् दूसरे को करते हुए अपनी विराट् यात्रा में आगे बढ़ते जाते हैं। विश्व-मानव के सम्पूर्ण भाव को कोई भी रूप पूर्णतया प्रकट नहीं कर सकता। इसी लिए उसे एक आश्रय को ग्रहण करना और फिर उसे छोड़ किसी दूसरे का सहारा लेना पड़ता है। प्रत्येक युग में विश्व-मानव की यह सृजन-प्रलय-लीला एक साथ देख पड़ती है। और इसी कारण प्रत्येक युग में नूतन और सनातन का जोड़ा बना रहता है। विश्व-मानव के जीवन में ये दोनों ही बातें रहती हैं। उनमें से कुछ तो समय के प्रवाह में बह जायँगी और कुछ समय को लाँघ करके शाश्वत अथ च सनातन बन जायँगी। हम मुश्किल से विश्वास करते हैं कि देश और काल के बीच में ही देश-कालातीत प्रकाश वर्तमान है। किन्तु किसी महत् जीवन की आलोचना करते समय हमको यह बात सत्य देख पड़ती है।

किसी एक व्यक्ति के जीवन में एक युग का समूचा अभिप्राय कभी चरितार्थ नहीं हो सकता। युगभाव तो वसन्त ऋतु की तरह है; विचित्र फूलों के विकास में ही उसकी सार्थकता है। यदि हम भौंरे की तरह किसी एक ही फूल के मधु को उजाड़ने पर तुल जायँ तो जिस का मधु सङ्ग्रह करेंगे उसी को ख़ाली करके बेकाम कर डालेंगे। इसी कारण हमें फ़्रांस के प्रसिद्ध पुरुष वाल्टेयर पर क्रोध नहीं आता जब कि वह ईसामसीह का नाम सुनते ही कहता है कि "दुहाई तुम्हारी, हमारे आगे उस आदमी का नाम मत लेना।" दुनिया में जितनी भी आध्यात्मिकता है वह एक ईसा में ही है—यदि यह सत्य-विकार पैदा किया जाय तो उसका प्रतिवाद किये बिना रहा नहीं जा सकता। क्योंकि विश्व-प्रकृति न तो केन्द्रानुग को ही एक-मात्र शक्ति होने देती है और न केन्द्रातिग को ही। यदि वह किसी एक को एकमात्र शक्ति बन जाने दे तो प्रलय हो जाय। यही हाल विश्व-मानव का समझिए। किसी युग में कोई एक व्यक्ति हर बात में सबसे बढ़कर नहीं हो सकता। यदि ऐसा हो जाय तो वाल्टेयर की तरह अवज्ञा का सूत्र-पात हुए बिना न रहे।

जीवनचरित लिखनेवाले के लिए यही तो बड़ी कठिनाई है। वह जिसका जीवनचरित लिखने बैठा है उसकी पूजा यदि वह गन्ध-पुष्प द्वारा न करे तो उसका लिखा चरित चरितामृत क्योंकर हो, और भक्ति-हीन होकर लिखा हुआ चरितामृत यदि विश्व-मानव के आगे रक्खा जाय तो वह उसे कचड़ा समझ कर अलग कर देगा। श्रद्धा का उत्ताप और आवेग न हो तो जीवनचरित क्या हो, अस्थि-विद्या का नीरस इतिहास बन जाय। उसमें रक्त-मांस की सजीवता ढूँढ़ने पर भी न मिले। चरित-लेखक के लिए अतिभक्ति और भक्ति का अभाव—ये दोनों ही एक सी कठिन पहाड़ियाँ हैं।

इससे बचने के लिए चरित-लेखक एक काम करे। किसी के जीवन की गुप्त शक्ति में वह इस बात को देखे कि उसमें युग के इतिहास का अभिप्राय किस परिमाण में सार्थक हुआ है। इसकी आलोचना करने पर अन्त में या तो व्यर्थ परिणाम देखने को मिलेगा या रमणीय सार्थकता दर्शन देगी। जीवन की भीतरी शक्ति को ढूँढ़ने के लिए मनस्तत्त्व का विश्लेषण करना होगा। उस पर बाहरी विश्वशक्ति का कैसा क्या प्रभाव पड़ा?—इसका पता उस समय के इतिहास-पट को देखने से लगेगा। इन दोनों के घात-प्रतिघात के बीच जीवन-नाटक का जो खेल जम जाय वही दिखला दिया जाय। बस, जीवन-चरित लिखने का, इस ज़माने का, यही आदर्श है।

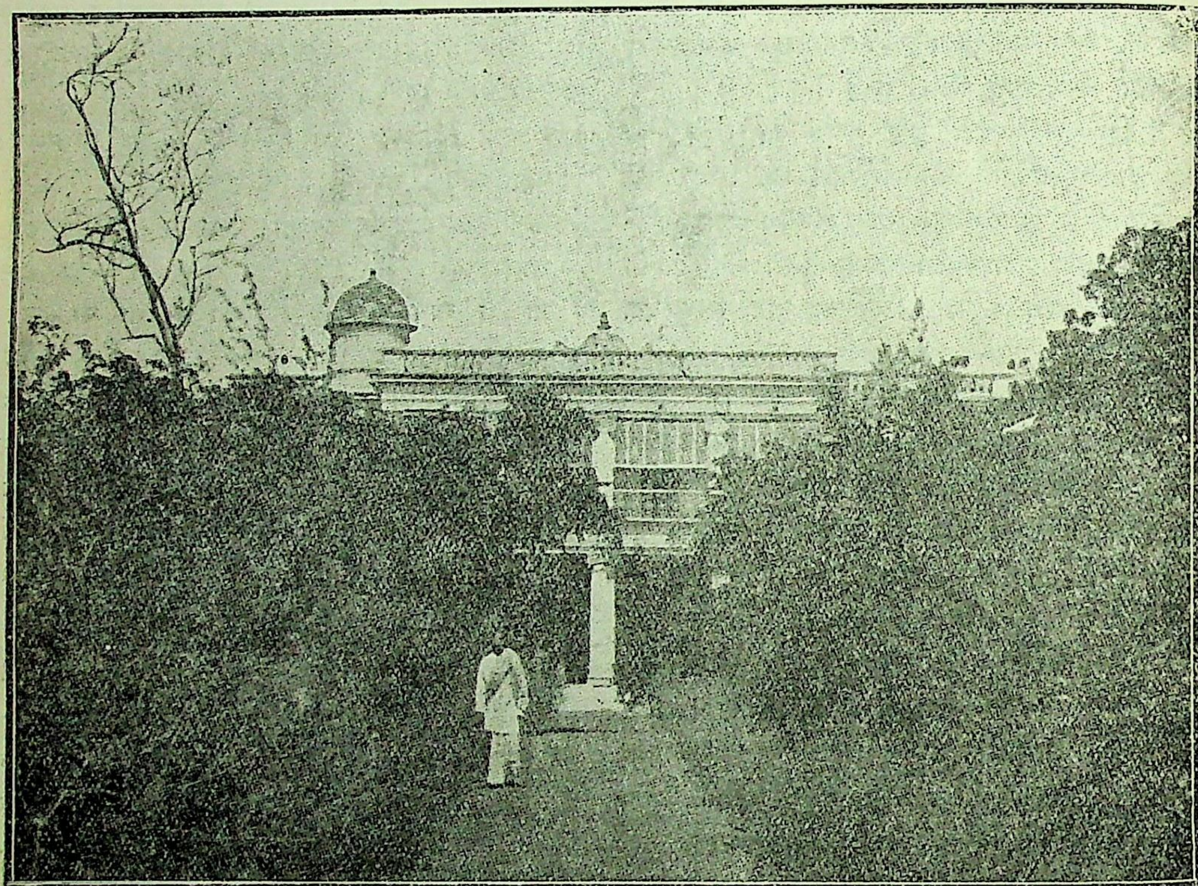
इस रीति से जिसका जीवन-चरित लिखा जाय—फिर वह ऋषि, महर्षि, ईसा और साक्षात् बुद्ध ही क्यों न हो—वह इतना महत् नहीं हो जाता कि कुछ लोगों की मण्डली उसकी प्रतिमा पूजने को बैठ जाय। उल्लिखित रीति से देखने पर स्पष्ट होगा कि महत्‌जीवनों का इतिहास कुछ कुछ पहाड़े रटने की तरह है—अर्थात् एक युग के महापुरुष हैं पिछले पाँच युगों के महापुरुषों के गुणनफल। पृथ्वी में कोई भी शक्ति नष्ट नहीं हो जाती, हाँ उसका रूपान्तर अवश्य हो जाता है—विज्ञान का यह तत्त्व अब जीवन के पक्ष में भी लागू हो सकता है, और दिखाया जा सकता है कि पृथ्वी में कोई भी युगशक्ति मर नहीं गई अथवा किसी भी युग के किसी महापुरुष का जीवन भी नष्ट नहीं हुआ—उसका सिर्फ़ रूपान्तर हो जाता है और भावी युग के लिए नई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भावना का मसाला जुटाता है। अस्तु। यहाँ हम महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के जीवन पर एक दृष्टि डालते हैं।

देवेन्द्रनाथ के मन में बचपन से ही हिन्दू धर्मान्तर्गत देव-देवियों के प्रति भक्ति का संस्कार सुदृढ़ था। उनका लालन-पालन उनकी दादी ने किया था। दादी की धर्मनिष्ठा की एकाग्रता का चित्र उनकी दृष्टि के आगे में सौन्दर्य-प्रेम की स्फूर्ति का कुछ भी अंश नहीं है। वास्तविक अनार्य द्राविड़ों में रूपोद्भाविनी शक्ति का प्रधान निदर्शन यही प्रतिमा-प्रेम है। इस पूजा-पाठ के बीच कला की जो विचित्रता है उसमें भी शिल्प-रस के ज्ञान का ख़ासा परिचय जब तब पाया जाता है। देवेन्द्रनाथ की क्या रचना, क्या बात-चीत, क्या अदब-क़ायदा और क्या घर की सजावट सभी में उनका सौन्दर्य-प्रेम और



शान्ति-निकेतन का मकान।

दिन-रात बना रहता था। यही क्यों, देवेन्द्रनाथ के पिता द्वारकानाथ ठाकुर ख़ासे शौक़ीन थे। उनकी विलासिता में निरे धन का आडम्बर न था। उसमें सौन्दर्यप्रियता, सङ्गीत और चित्र प्रभृति सुकुमार शिल्प की रसग्राहिता थी। उन्हीं से देवेन्द्रनाथ को सौन्दर्य-प्रेम और शिल्प-रस-बोध प्राप्त हुआ था। कोई कैसे कहे कि प्रतिमा-पूजन रस-बोध झलकता है। उनकी भाषा में जैसा लालित्य, सङ्गीत और संयत कलाबन्धन था वैसा उस समय के और किसी भी व्यक्ति की रचना में नहीं देखा जाता। विशुद्ध सङ्गीत और शिल्प पर भी उनका विलक्षण अनुराग था। लोक-व्यवहार और खाने-पीने तक में उनकी सौन्दर्य-प्रियता झलकती थी—वे सभी कुछ सुडौल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तरतीबवार देखना चाहते थे। इसी कारण उनके लिए प्रतिमा-पूजन का संस्कार हटाना कठिन था।

राममोहन राय सभी शास्त्रों की आलोचना करके अपने अमूल्य सत्य को संसार के सामने रख गये—वे संसार को वेदान्त धर्म का मूल सत्य समझा गये हैं। किन्तु "ब्राह्मधर्म के मत और विश्वास" को वे अलग अलग स्थिर भूमि के ऊपर प्रतिष्ठित न कर गये थे। उनके पीछे यह काम देवेन्द्रनाथ ने ही किया। अतएव धर्मतत्त्ववेत्ता की दृष्टि से उनका स्थान साधारण नहीं है। इस धर्मतत्त्व की मीमांसा करने में उन्होंने उपनिषद्-वेदान्त के मूल तत्त्वों को मत और आकार दान करते समय पश्चिम के डेकार्ट से लेकर काण्ट के दर्शन, नेचरल थियोलॉजी प्रभृति सभी शास्त्रों के उपादान कारणों की सहायता से ब्राह्मधर्म के मत और विश्वास को गठित किया था। यही तो उनका प्रधान कृतित्व है कि उन्होंने इस प्रकार वेदान्त-उपनिषद् के मत को इस ज़माने के व्यवहार करने योग्य कर दिया। एक ओर पूर्वदेश के दर्शन और साधना की धारा तथा दूसरी ओर पश्चिमी दर्शन की धारा—इन दोनों विपरीत तत्त्वों और साधनाओं की धारा को, जीवन के भीतर मिला कर, भावी युग के समीप एक जीवन्त-रूप में दान कर जाने जैसा अद्भुत काम इस युग में और किसी ने किया है अथवा नहीं, इसमें सन्देह है। इस युग में जो विज्ञान आदि आया है उसका अध्यात्मजीवन में क्या स्थान होगा? इसका बढ़िया उत्तर देवेन्द्रनाथ के जीवन में देख पड़ता है। दुनिया के कामों को जाँचने और उनकी छान-बीन करने से ईश्वर के ज्ञानमय विधान और कौशल का परिचय पाया जाता है—सारे विज्ञान की आलोचना करके वे यही परिचय सङ्ग्रह करते थे। ज्योतिषशास्त्र उन्हें बहुत ही प्रिय था। पारिवारिक उपासना के बाद वे बाल-बच्चों में बैठ कर ज्योतिर्विद्या की चर्चा किया करते थे। क्या पदार्थविज्ञान, क्या भूगोल और क्या जीवतत्त्व—सभी विज्ञानशास्त्र की उन्होंने विशेष आग्रह से आलोचना की है।

उन्होंने उतरती उम्र में जो आलोचना की थी वह उनकी धर्म और ज्ञान की उन्नति नामक पुस्तक में है। उस पुस्तक के पढ़ने से उनके मन का वैज्ञानिक कौतूहल साफ़ देख पड़ता है। यही क्यों, इससे इनके ऐतिहासिक प्रेम का भी पता लगता है। बोलपुरस्थ शान्तिनिकेतन के ग्रन्थागार में योरोपीय इतिहास और अन्यान्य देशों की इतिहास-सम्बन्धिनी वे पुस्तकें रक्खी हैं जिन्हें देवेन्द्रनाथ ने पढ़ा था। इससे स्पष्ट है कि पश्चिम के विज्ञान, इतिहास और दर्शन—सभी को उन्होंने ग्रहण किया था। पश्चिम के एक ईसाई धर्मतत्त्व को ही उन्होंने ग्रहण नहीं किया।

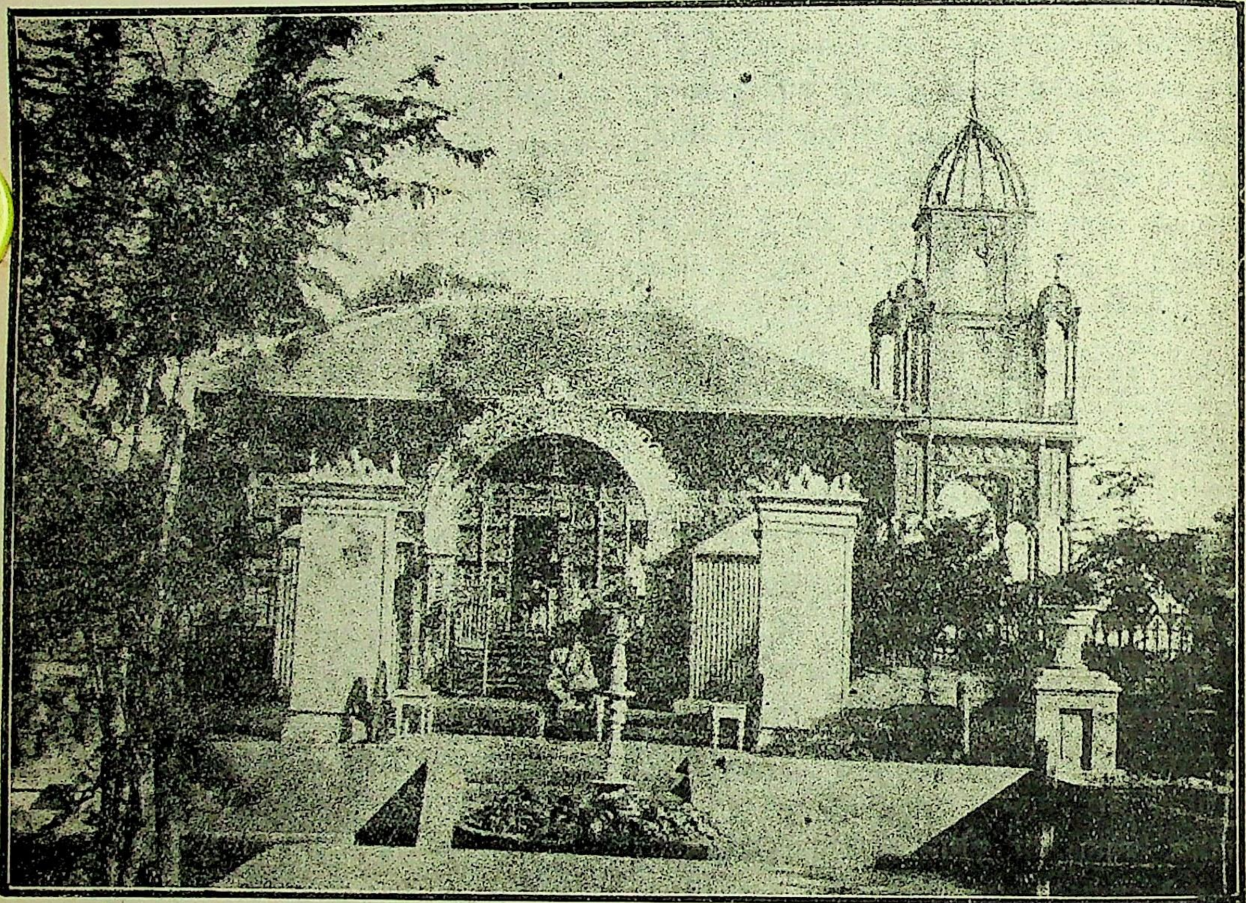
राममोहन राय और देवेन्द्रनाथ ठाकुर, दोनों ने जिस असाम्प्रदायिक विश्वजनीन उदार भित्ति पर धर्म के नित्य सत्य को चिर-प्रतिष्ठित देखा था उस उन्नत भित्ति पर समग्र जाति खड़ी नहीं हुई। बङ्गाल की मृत्तिका में वैष्णव-धर्म का रस-भाव बेतरह भर गया है। देवेन्द्रनाथ ने उस रसोच्छ्वास को अनेक दिशाओं से रोकने की चेष्टा की थी। इसी से उनका बनाया हुआ बाँध टूट कर सन् १८६६ ईसवी में देश भर में बहिया आ गई थी। बङ्गवासियों के मन में 'प्रगल्भा भक्ति' पर विशेष प्रेम है। उसे रोका जाय तो भला वह किस प्रकार रुकेगा। रस के तूफ़ान में यदि सारे शुभ प्रयत्नों की डोंगी डूबती हो तो डूबने दी जायगी। विश्व-मानव का मार्ग कुछ सरल नहीं है। मनुष्यों में द्वैत-रहस्य सदा से देखा जाता है—वह दोनों को खुश रख कर एक को चाहता है। दोनों बाज़ुओं को ठीक रखने के लिए कभी वह विश्व-मानव की ओर दौड़ जाता है और कभी अपनी ओर लौट आता है। कभी युक्ति-कृपाण लेकर वह मूढ़ संस्कारों की झाड़ी को साफ़ करता है और कभी भक्ति के रस में संस्कारों को इस तरह सरस कर डालता है कि वे झपाटे से बढ़ने लगते हैं। एक बार युक्ति का काम बहुत अच्छा हुआ था। किन्तु युक्ति ने जब भक्ति के बढ़ते हुए दबदबे को कठिन बाँध के द्वारा रोकना चाहा तब उसका रुकना तो अलग रहा, वह दस गुना बढ़ गया। इस प्रकार जो जिसका काम है उसे वही करने देना चाहिए। पीछे से महाकाल अपनी चलनी में चाल कर असार अंश को अलग कर देगा और सार अंश को विश्व-मानव के आगे रख देगा। रिफ़ार्मेशन के समीप जिस प्रकार कैथोलिक रिवाइवेल हुआ; लूथर-कैलविन के साथ ही जिस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इग्नेशियस लायोला हुआ उसी प्रकार ब्राह्मधर्म-आन्दोलन के साथ ही नव्यहिन्दू-धर्म का अभ्युत्थान और भक्ति का प्लावन हुआ। केशवचन्द्र के साथ ही तो विवेकानन्द का नाम हुआ था। केशवचन्द्र की विश्वजागतिकता के आदर्श ने जहाँ स्वजातिकता पर चोट की थी वहीं विवेकानन्द के भीतर हम उसके प्रतिघात और प्रतिक्रिया को देखते हैं। वह प्रतिक्रिया का युग अब तक नहीं हटा।

प्रस्फुटित हुआ था उसी को देवेन्द्रनाथ ने ग्रहण किया। महाकवि हाफ़िज़ ने जिस रूपक के सहारे कविता लिखी है वह सोलहों आने विशुद्ध नहीं माना जा सकता। उसमें भी संस्कार को तोड़ने की चेष्टा और विद्रोह का स्वर है। मुसलमान-धर्म 'सुरा' को अच्छा नहीं समझता पर हाफ़िज़ ने उसकी उपमा से परहेज़ नहीं किया। हाफ़िज़ अपने प्रतिमा-पूजक, दुर्नीति-परायण और मतवाले होने में



शान्तिनिकेतन का मन्दिर।

किन्तु देवेन्द्रनाथ भक्तिसाधन की दिशा से ख़ाली न थे। गौड़ देशीय वैष्णवधर्म ने पहले अवतार-वाद और फिर जिस रूपक का आश्रय लिया था उसकी स्थूलता ने, हमारी समझ में, देवेन्द्रनाथ को वीतश्रद्ध कर दिया था। यही कारण है कि उन्होंने वहाँ से भक्तिसाधन की ख़ूराक़ नहीं ली। मुसलमान सूफ़ी-धर्म के भक्तितत्त्व एवं सूफ़ी प्रभाव से कबीर और नानक आदि में जो भक्तिवाद

गौरव समझता है—सो यह प्रथागत धर्म के विरुद्ध कवि की विद्रोह-घोषणा के सिवा और क्या है। हाँ, यह सच है कि हाफ़िज़ की रचना में वैष्णवकविता की जैसी शारीरिक उपमा का प्रयोग अतिमात्रा में नहीं है। एक तो उसमें यह विशेषता है, और दूसरी यह है कि उसमें ज्ञान के साथ रस का भी थोड़ा सा संमिश्रण हो गया है। उसमें रस और तत्त्व दोनों को उचित परिमाण में स्थान दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। तीसरा गुण उसमें यह है कि भक्तितत्त्व के रूपक का सारा दारमदार प्रकृति के सौन्दर्य ही पर रक्खा गया है। इसी कारण देवेन्द्रनाथ की रुचि को ऐसी अनुकूल रस-साधना अन्यत्र न मिलती।

कबीर और नानक के पदों में प्रकृति के सौन्दर्य का रसानुभव पूरे मिक़दार में है। उसका उदाहरण देना व्यर्थ है। "गगन में थाल रवि-चन्द्र दीपक बने"—नानक के इस भजन को देवेन्द्रनाथ अमृतसर से लिख लाये थे। यह भजन उल्लिखित बात को पुष्ट करने के लिए यथेष्ट है। किन्तु हाफ़िज़ की कविता का मूल्य उनके निकट सबसे अधिक था। उसमें उनकी रस-साधना खूब तृप्त होती थी। इसका कारण यह जँचता है कि कबीर-नानक आदि में थोड़ा सा लड़ाई-झगड़े का काँटा था। इन मध्य-युग के गुरुओं में हिन्दू-मुसलमानों के चिरन्तन सत्य-साधन के उद्धार की सज्ञान चेष्टा देख पड़ती है। वे लोकाचार, शास्त्रविधि आदि तत्कालीन पचड़ों को हटा देना चाहते थे। विद्रोह का स्वर तो हाफ़िज़ में भी था पर कबीर और नानक आदि के बराबर नहीं।

जीवन के अन्तिम भाग में देवेन्द्रनाथ जिस मार्ग पर चले थे उस—ज्ञान और भक्ति के अपूर्व सामञ्जस्य के—मार्ग पर भारतवर्ष को लौट आना होगा। यही मार्ग विश्व-मानव के प्रधान मार्ग में जाकर मिल गया है।

भक्त विजयकृष्ण गोस्वामी ने एक बार देवेन्द्रनाथ से कुछ प्रश्न लिख कर पूछे थे। उनमें एक यह भी था—भूल से साधुओं को अवतार मान कर मनुष्य पूजने लग जाता है तो इसमें साधुओं का क्या अपराध है? इन साधुओं के जीवन के दृष्टान्त से यदि मन निर्मल होता हो तो धन्यवाद सहित उस दृष्टान्त को क्यों न ग्रहण किया जाय?

देवेन्द्रनाथ ने इसका उत्तर लिख भेजा—"इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मेरे मन में दुःख और कष्ट युगपत् उपस्थित होते हैं। साधु और अवतार के रूप में जिन्होंने संसार में सम्प्रदाय विशेष से श्रद्धा और पूजा प्राप्त की है उनकी निन्दा करना भी दुःखजनक है; और जो भूलें तथा असत्य ईश्वर मनुष्य के मन में विघ्न-स्वरूप उपस्थित होते हैं उनको बने रहने देना भी कष्टजनक है। संसार में कोई साधुरूप में पैदा होता है अथवा किसी विशेष गूढ़ अर्थ में साधु होता है—इसे पहले तो मैं सरलता-पूर्वक मानता ही नहीं। क्योंकि चेष्टा और साधना के बल से मनुष्य उन्नति के मार्ग पर कितना ही आगे क्यों न बढ़ जाय फिर भी वह रहेगा मनुष्य ही। संसारी आदमियों की जो प्रकृति, प्रवृत्ति, आत्मा और हृदय होता है वही प्रकृति आदि उसकी भी होती है। अन्तर यह होता है कि अन्य लोगों के हृदय में निहित महद्वृत्तियाँ—उपदेश और उपाय न किये जाने से—निद्रित रहती हैं, और जिसकी हम, साधु समझ कर, पूजा करना चाहते हैं उसकी उक्त सारी श्रेष्ठ वृत्तियाँ अवस्था की अनुकूलता पाकर अधिकांश विकसित रहती हैं अथवा अधिकतर जाज्वल्यमान रूप में लोगों को देख पड़ती हैं। साधु कौन है? यह शब्द आपेक्षिक है या उपमा-निरपेक्ष? पाप से विराग होना ही यदि साधुता का अर्थान्तर है तो उस शुद्धमपापविद्धं पूर्ण ब्रह्म के अतिरिक्त संसार में कोई भी साधु नहीं है; और यदि साधुता का अर्थ आपेक्षिक हो तो संसार में सभी लोग किसी न किसी अंश में साधु और किसी अंश में असाधु भी हैं।"

"संसार में जो लोग अवतार माने जाते हैं, और मनुष्य के हृदय में उपजे हुए ईश्वर-प्राप्य भक्ति-कुसुम का समान-भाग लेकर ईश्वर के साथ ही जिन्होंने उसका उपभोग किया है उन्होंने अपना अवतारत्व सिद्ध करने के लिए वाक्य अथवा कार्य के द्वारा चेष्टा की है या नहीं, इस विषय में कुछ कहने की मैं ज़रूरत नहीं समझता। दुनिया का इतिहास इसका साक्षी है। मोजेस, ईसा और मुहम्मद आदि का जीवन-वृत्तान्त ही इसका ख़ासा प्रमाण है। उन्हें मैं वञ्चक भी नहीं कहता और उन्हें भ्रान्ति का अपने आप बना हुआ क़ैदी कहे बिना भी नहीं रह सकता। उन्हें कदाचित् यह भ्रम हो गया था कि यदि हम अपना अवतारत्व प्रतिपन्न न करेंगे तो शायद हमारा चलाया हुआ धर्म संसार में श्रद्धा और विश्वास के साथ न माना जायगा। इसी कारण कदाचित् उन्होंने मनुष्यों की अन्धभक्ति पर झपट्टा मारा था। उनके उपदेश और दृष्टान्त में मुझे जो कुछ भला मिलता है उसे मैं आदर के साथ ग्रहण करता हूँ किन्तु अन्यान्य मनुष्यों के मुक़ाबले में उन्हें मैं किसी भी अंश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में स्वतन्त्र और साधुश्रेणी के मनुष्य नहीं समझता। ईश्वर के नाम का प्रचार करने के साथ साथ उनके नाम का भी प्रचार करना और ईश्वर-पूजा की आवश्यकता प्रतिपादन करने के साथ साथ साधुपूजा की भी आवश्यकता सिद्ध करना में कभी धर्मसम्मत तक नहीं मान सकता।"

धर्म के मामलों में जो इस प्रकार व्यक्तिगत स्वाधीनता के पक्षपाती थे वे क्या पारिवारिक और सामाजिक मामलों में भी अन्त तक व्यक्तिगत स्वाधीनता के आदर्श को मान कर चलते थे? जी हाँ, उनके परिवार में उनकी कर्तव्य-परायणता का ही ज़िक्र सुना जाता है।

जहाँ कोई पारिवारिक व्यवस्था उनके ज़िम्मे होती थी वहाँ कर्तव्य-बुद्धि से वे जो व्यवस्था कर देते उसी का पालन सबको करना पड़ता था। क्योंकि उनके चरित्र में यह नियमनिष्ठा ही तो प्रबल देख पड़ती है। जो नियम बन गया सो बन गया। किन्तु जब वे परिवार की व्यवस्था किसी और को सौंप देते थे तब उसे पूरी पूरी स्वाधीनता भी दे देते थे जिससे उसे तनिक भी अड़चन न हो। दूसरों की स्वाधीनता पर उन्हें यहाँ तक श्रद्धा थी। उनके लड़कों का मत कई बार कई प्रकार से परिवर्तित हुआ लेकिन उन्होंने इसमें कभी नाम लेने को भी हस्तक्षेप नहीं किया। उनके घर मुद्दत तक मूर्ति-पूजा होती रही पर उन्होंने उसमें भी कभी रोक टोक नहीं की। स्त्री-स्वातन्त्र्य के आन्दोलन में वे कभी प्रकट रूप से सम्मिलित नहीं हुए, परन्तु उनके घर में स्त्रियों को स्वाधीनता काफ़ी तौर पर थी। शायद उनकी मँझली बहू ही पहले पहल अपने पति के साथ बड़े लाट के भवन में गई थी। उनके घर के वयस्क लड़के और लड़कियों ने एकत्र होकर अभिनय किया था। यह सब उनकी व्यक्तिगत स्वाधीनता के आदर्श का फल था। उन्होंने अपने लड़कों को अपना सा बनाने की चेष्टा नहीं की, इस कारण उनके लड़कों की शक्ति अपनी अपनी प्रकृति के अनुरूप विकसित हुई और पिता की आध्यात्मिकता का आदर्श सभी में अपने आप काम कर गया। संसार में धर्मात्माओं के पुत्र अकसर अधर्मी देखे जाते हैं। इसका कारण यह है कि धार्मिक पिता अपने पुत्र को दबाव में डाल कर ज़बरदस्ती धर्मात्मा बनाना चाहता है और इसी से विपरीत फल होता है। देवेन्द्रनाथ ने इस प्रकार की कोई चेष्टा नहीं की और इसी लिए पिता के आदर्श की ओर पुत्र सहज ही आकृष्ट हो गये। उनके जीवन से यह एक बड़ी भारी शिक्षा मिलती है। इस ज़माने को ऐसी ही शिक्षा की ज़रूरत भी है। किन्तु इस व्यक्तिगत स्वाधीनता के आदर्श के साथ साथ राममोहन राय के जातीय भाव में सार्वभौमिक होने का आदर्श भी आवश्यक है। उसके बिना स्वाधीनता फल-प्रसू नहीं होती।*

'ललन'

——

नवीन आश्चर्य।

हज़ारों वर्ष से भिन्न भिन्न स्थानों के यात्री नील-नदी के प्रसिद्ध पहाड़ी दृश्य और ध्वंसावशेष को अवलोकन करने के लिए जा रहे हैं, परन्तु स्वप्न में भी यह बात किसी के ध्यान में नहीं आई कि उस पहाड़ी के भीतर आश्चर्य का भाण्डार बन्द है। यह बात लोगों को उस समय प्रकट हुई जब दो अरबी यात्री चट्टान में लगी हुई चौखट को खोल कर भीतर गये। उन लोगों ने वहाँ देखा कि पहाड़ी का भीतरी भाग काट कर एक सुन्दर और विचित्र मक़बरे में परिणत कर दिया गया है और उसमें मिस्र के बादशाह फेरोह सुख की नींद ले रहे हैं। चालीस शताब्दी से जो आश्चर्य-पूर्ण दृश्य मनुष्य की दृष्टि से परे था वह अरबी यात्रियों के अन्वेषण से सुलभ हो गया।

इस मक़बरे की जाँच-पड़ताल पूरी भी न हो पाई थी कि सन् १९२० के अक्टूबर महीने में वैसे ही एक दूसरी चौखट चट्टान में दिखाई दी। जो लोग चौखट को खोल कर भीतर गये थे वे वहाँ

* सङ्कलित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दृश्य देख कर आश्चर्य करने लगे। जो बात मनुष्य की कल्पना से बाहर है उसका प्रत्यक्ष दर्शन कितना कौतूहलपूर्ण होगा, यह पाठक स्वयं विचार सकते हैं। लोगों का कथन है कि जैसी विचित्र बात उस पहाड़ी के भीतर देखने में आई है वैसी संसार के इतिहास में अभी तक लिखी भी नहीं गई है।

पूर्वोक्त मक़बरे के अद्भुत रहस्यों का वर्णन करने के पूर्व तत्सम्बन्धी मिस्र का प्राचीन इतिहास यहाँ संक्षिप्त में लिख देना उपयुक्त होगा।

ईसा के दो हज़ार वर्ष पहले मिस्र की राजधानी थेबस थी। वहाँ फ़ेरोहमेन्टुहोटप राज्य करता था। उसके राजत्व-काल में जङ्गी जहाज़ों का बेड़ा बना था, मध्य अफ़्रीका से व्यापार होने लगा था और दक्षिण प्रान्त में रहनेवाले मरुभूमि के शक्तिशाली लुटेरों का बल घट चला था। इसके अतिरिक्त लालसागर तक पक्की सड़क भी बन गई थी। इसका फल यह हुआ कि सारा मिस्र देश उत्तम प्रबन्ध, पूर्ण शान्ति और समुचित उन्नति का केन्द्र बन गया।

फ़ेरोह के सम्बन्ध में हम केवल इतनी ही बात जानते हैं। इसके सिवा इतिहास में यह भी लिखा है कि इस बादशाह ने साम्राज्य की व्यवस्था का अधिकांश भार अपने मन्त्री को सौंप दिया था। इस मन्त्री का नाम मेनक्वेटर था। इस नाम का शब्दार्थ सूर्यदत्त होता है। वह सूर्य के समान पराक्रमी था। उसकी बुद्धि भी बड़ी प्रखर थी। उसके धार्मिक विचार बड़े गम्भीर थे। पूर्वोक्त आश्चर्यपूर्ण मक़बरा उसी ने बनवाया था। मक़बरे के भीतर उसकी सार्वभौम सम्पत्ति रक्खी हुई है। वह सम्पत्ति क्या है, संसार का एक ख़ासा नमूना है। उससे उसकी जीवन-चर्या, उसकी मैत्री और धार्मिक विश्वास का पूरा पूरा पता चलता है।

कहते हैं कि मेनक्वेटर का अधिकांश जीवन पारलौकिक सुख की तैयारी में व्यतीत हुआ था। फ़ेरोह के समान उसने भी अपना अन्तिम वास-स्थान पहाड़ के भीतर बनवाया। परन्तु इतना करके वह चुपचाप नहीं बैठ गया। वह एक ऐसे कार्य के सम्पादन में जुट गया जैसा कि आज तक संसार के किसी मनुष्य ने नहीं किया है। उसने संसार की इतनी बड़ी प्रतिमा बनवाई जो उसके सङ्ग क़बर के भीतर रक्खी जा सके। इससे उसका अभिप्राय यह था कि पुनर्जीवन के भव्य दिवस पर वह उस संसार का सारा दृश्य और व्यापार देख सके जिसमें वह निवास कर चुका था, जिससे उसका घनिष्ठ सम्बन्ध था और जिसके अस्तित्व पर उसका विश्वास था! क्या इससे पूर्व-कालीन धार्मिक विश्वास का पूरा पूरा पता नहीं लगता है?

मेनकेटर की क़बर बनाने के लिए सैकड़ों कारीगर वर्षों तक लगे रहे। उन लोगों ने पहाड़ी में कुछ ऊँचाई पर ढालदार मार्ग तराशा और उसके छोर पर एक चबूतरा बाँधा। चबूतरे के ऊपर एक ड्योढ़ी बनाई गई और उसमें क़ीमती पत्थर के खम्भे लगाये गये। खम्भों पर जो पच्चीकारी की गई है वह अद्वितीय है। उसमें जो रंग चढ़ाया गया है वह अब तक ज्यों का त्यों चमकता है। ड्योढ़ी से लेकर मन्त्री महाशय की क़बर तक पहाड़ी के भीतर ही भीतर घुमावदार एक और मार्ग बनाया गया। इसके अनन्तर संसार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिमा रखने के लिए क़बर से सटा हुआ एक कमरा बना कर शिल्पकारों ने अपना कार्य मन्त्री के जीवन-काल में ही समाप्त कर दिया। जब अन्त-काल आया और मेनकेटर की मृत्यु हो गई तब उसके आत्मीय जन उसे वहाँ ले गये और निद्रा देवी की गोद में सर्वदा के लिए छोड़ कर चले आये। उन लोगों ने आते समय क़बर का द्वार भली भाँति बन्द कर दिया था।

इस घटना के न जाने कितने वर्ष बाद मेनकेटर के शयनागार का पता चोरों को लग गया और वे उसके ताबूत को चुरा ले गये। अच्छा हुआ जो गुप्त चौबारे का द्वार उनको नहीं मिला; अन्यथा वहाँ का मूल्यवान् संसार लुट जाता और मिस्र के प्राचीन धार्मिक तथा सामाजिक इतिहास की सामग्री सर्वदा के लिए नष्ट हो जाती। उस दिन जब चोरों के किये हुए विध्वंस की सफाई की जा रही थी, कुलियों ने दीवार के एक पत्थर को ज्यों ही हटाया त्यों ही चौबारे का द्वार एकाएक खुल गया और विद्युत् प्रकाश के पड़ते ही उसके भीतर में रक्खा हुआ मिस्र का प्राचीन संसार प्रकाशित हो उठा।

वहाँ के विचित्र दृश्य के विषय में एक निरीक्षक ने जो कुछ लिखा है उसका भी सारांश सुन लीजिए।

"चार हज़ार वर्ष से अन्धकार में पड़ा हुआ प्राचीन संसार का नमूना विद्युत् प्रकाश के पड़ते ही एक-दम जाज्वल्यमान हो गया। मैं निर्भय होकर चमकदार रङ्गों से रञ्जित हज़ारों छोटे छोटे मनुष्यों के बीच घूम फिर कर उनका व्यापार देख रहा था। उस समय मुझे ऐसा बोध हुआ मानों मैं मेनकेटर के समय का कोई यात्री हूँ और गुप्त तथा प्रकट प्रत्येक स्थानों में मुझे आने-जाने की अनुमति है। सहसा मेरी नज़र दो ऊँची दुबली लड़कियों की ओर जा पड़ी। वे अपने सिर पर भोजन और शराब रक्खे हुए थीं। उनके देखने के ढँग से सूचित होता था कि मेरी उपस्थिति से उन्हें भय और आश्चर्य दोनों हो रहा है। एक ओर छोटे छोटे चरवाहे बैलों के समुदाय को हाँकते हुए चले जा रहे थे। कुछ अन्तर पर किश्तियों का बेड़ा दिखाई दिया। उस पर बहुत से माँझी पतवार पकड़े हुए बैठे थे। मैं जहाँ खड़ा था वहीं एक जहाज़ बन रहा था। उसके बनानेवाले बढ़ई अपने कार्य में इतने तन्मय थे कि उन्होंने मेरी ओर देखा तक नहीं। खेद है, वहाँ जो व्यापार हो रहा था उसमें चतुराई और गति बिलकुल नहीं थी।"

वहाँ के दृश्यों का फ़ोटो ले लेने के अनन्तर वे सब वस्तुएँ चौबारे के बाहर लाई और सुरक्षित स्थान में रख दी गई। मिस्र के प्राचीन धार्मिक, सामाजिक और राजकीय इतिहास की वह सामग्री खोजियों के हाथ आ लगी है जिसकी बराबरी मीलों लम्बे शिलालेख नहीं कर सकते। सच तो यह है कि प्राचीन काल के गम्भीर अन्धकार में से ऐसा जीवित तुल्य दृश्य इसके पहले कभी मिला भी नहीं था।

मेनकेटर आनन्दप्रिय मनुष्य था। उसकी यह धारणा थी कि लकड़ी और मिट्टी की ईंट से बना हुआ महल मृत्यु-पूर्ण जीवन के सदृश अल्पकालीन सुख की सामग्री है। और पहाड़ के भीतरी भाग में बेलबूटेदार क़ीमती पत्थरों से बनी हुई क़ब्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु के समान सर्वदा रहनेवाली आनन्द की सामग्री है। इसी विचार से उसने महल के बदले अपनी क़ब्र को पूर्वोक्त ढँग से बनवाया था। वह समझता था कि उसकी दो आत्मायें हैं। सूक्ष्म आत्मा प्रलय के दिन परमेश्वर के न्यायालय में उपस्थित होगी और यदि उसने संसार में सत्कर्म किया होगा तो वह स्वर्ग के अनन्त सुख में लय हो जायगी। परन्तु दूसरी आत्मा, जिसका देह से घनिष्ठ सम्बन्ध है, क़ब्र में ठहरी रहेगी और उसी प्रकार खाने-पीने तथा विषयों के उपभोग में लीन रहेगी जैसा कि संसार में रह कर वह अभ्यस्त हो गई है। इसी अभिप्राय से उसने अपने जीवन-काल से सम्बन्ध रखनेवाले स्वजनों, दृश्यों, वस्तुओं और जीवधारियों के नमूने शरीर के समीपस्थ आत्मा के सङ्ग क़ब्र में रखने के लिए बनवाये। वे उसके मरने पर उसके साथ ही साथ क़ब्र में गाड़ दिये गये।

लकड़ी के नमूनों में सुडौलपन और सुन्दरता के अतिरिक्त भाव भी खूब कूट कूट कर भरा है। देखनेवालों को ऐसा प्रतीत होता है मानों वे मन्त्र के प्रयोग से जीवित हो जायँगे। वे इस विचार से क़ब्र के भीतर रक्खे भी गये थे कि प्रलय के दिन तक वे ज्यों के त्यों स्थिर बने रहें और उस समय मृत शरीर की आत्मा की आज्ञा पाते ही जीवित होकर अपना अपना कार्य करने लगें।

वहाँ के जीविततुल्य काष्ठ-वस्तुओं, मूर्तियों और दृश्यों के समुदाय का यहाँ पूरा पूरा वर्णन करने के लिए समय और स्थान दोनों का अभाव है। अतः उनमें से केवल दो-चार दृश्यों का ही वर्णन लिख देना बस होगा।

एक दृश्य में यह दिखाया गया है कि मेन-केटर अपने ज्येष्ठ पुत्र के सहित एक भव्य महल के महराबदार ड्योढ़ी पर गद्दी लगाये बैठा है। उसके पास ही चार लेखक काग़ज़ पत्र लिये बैठे हैं। वे आँगन की ओर के कोठे में जाते हुए पशुओं का हिसाब लगा रहे हैं। इससे प्रकट होता है कि मन्त्री महाशय "स्वामी की नज़र ढोरों की तन्दुरुस्ती है" इस कहावत का अक्षरशः पालन करते थे। ये मूर्तियाँ ८, ९ इंच ऊँची हैं। और सम्पूर्ण दृश्य छः फुट वर्ग में अङ्कित किया हुआ है। इसके बनाने और क़ब्रस्तान में रखने का तात्पर्य यह था कि जब आत्मा को भूख लगेगी तब वह काष्ठ की अपनी मूर्ति में प्रविष्ट होकर प्रत्येक वस्तु को जीवित कर देगा और उत्तम उत्तम पशुओं का वध करके उसके मांस से अपनी क्षुधा शान्त करेगा।

इस दृश्य के पास ही एक क़साई-ख़ाना भी है। वहाँ क़साई अपने सहायकों के सँग बैठा है। उसके सामने एक मुंशी दावात क़लम और खाता-बही लिये हुए मांस का हिसाब लगा रहा है और प्रथम दृश्य के चार गुमाश्तों के लगाये हुए हिसाब की जाँच भी करता जाता है। इससे प्रकट होता है कि मेनकेटर, फ़ेरोह के सम्पत्ति-भाण्डार की सुव्यवस्था के लिए हिसाब-किताब रक्खे जाने और उसकी उचित जाँच होने की आवश्यकता से भली भाँति परिचित था। वह यह भी जानता था कि उसकी और बादशाह की सम्पत्ति फ़िज़ूलख़र्ची से कैसे बच सकती है।

दूसरा दृश्य खलिहान का है। वहाँ पट्टा और बही लिये हुए दो व्यापारी बैठे हैं। इनमें से एक गेहूँ की तोल करा रहा है और दूसरा हिसाब लिख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है। गेहूँ नापने और बोरे में भरने के कार्य में दो मनुष्य अलग लगे हैं। चार कुली बोरा ढोने और कोठे में रखने का कार्य कर रहे हैं। कोठे के द्वार पर एक निरीक्षक बेत की छड़ी लिये हुए बैठा है और कुलियों के काम की देख-भाल कर रहा है। कोठा ऊपर के मञ्ज़िल में है और उसके तीन बड़े बड़े खण्ड हैं। इसके अनन्तर पाकशाला और मद्य बनाने की भट्टी है। यहाँ औरत, मर्द संग ही संग काम कर रहे हैं। इनमें से कोई तो आटा पीस रहा है, कोई आटा गूँध रहा है, कोई रोटी बेल रहा है और कोई उसे चूल्हे में डाल कर सेंक रहा है। इसी प्रकार शराब की भट्टी में भी शराब बनाने का कार्य क्रमानुसार जारी है। इसके कुछ आगे बढ़ई की दूकान है। वहाँ दो तो लकड़ी चीर रहे हैं, एक चीरी हुई लकड़ी पर रंदा चला रहा है और दूसरा लकड़ी में बरमे से छेद कर रहा है। इस दूकान से सटी हुई एक और दूकान है। जहाँ लड़कियाँ चरखे से सूत कात रही हैं और औरतें करघे से कपड़ा बुन रही हैं। लड़की के हाथ की पौनी और तकुए से जुड़ा हुआ धागा मकड़ी की जाल के सूत से भी कमज़ोर पड़ गया है, परन्तु तारीफ़ यह है कि चार हज़ार वर्ष बाद भी वह ज्यों का त्यों बना हुआ है।

उचित और अल्प-व्यय-प्रिय मन्त्री को भोजन के अनन्तर साधारण व्यायाम की आवश्यकता पड़ती थी। इसलिए वहाँ उद्यान के दो नमूने रक्खे गये हैं। ये दोनों उद्यान ऊँची दीवारों से वेष्टित हैं। बाग़ के मध्य में ताम्र का सुन्दर तालाब है, परन्तु उसमें जल नहीं है। सम्भव है कि पहले पानी भरा रहा हो। बाग़ीचे में लगे हुए अञ्जीर के वृक्ष के पत्ते ऐसी कारीगरी से बनाये गये हैं कि देखते ही बनता है। डालियों में लगे हुए फलों की स्वाभाविकता पर कभी सन्देह ही नहीं हो सकता। परमरम्य आराम के पिछवाड़े मेहराबदार महल है, जो विचित्र चित्रों से चित्रित है। बाग़ और महल के देखने से यह बात प्रकट होती है कि बेबिलन के स्तूप-निर्माण के समय मिस्रवाले अपना घर कहाँ और किस प्रकार से बनाते थे। सच तो यह है कि ऐतिहासिक दृष्टि से मेनक्वेटर के क़ब्र की सामग्रियों का जो महत्त्व है वह हमूरबी के स्तूप का नहीं है।

मन्त्री महाशय को जल-यात्रा से बड़ा प्रेम था। इसी लिए उन्होंने अपनी क़ब्र के भीतर चार किश्तियाँ भी रख लेना उचित समझा, जिसमें समय आने पर उन्हें नील नदी में विहार करने का आनन्द हाथ से न जाने पावे। सबसे बड़ी किश्ती वास्तविक जलयान के दशांश के बराबर है। उसमें कमनैत, माझी और कप्तान के अतिरिक्त बारह नाविक भी हैं और ये सबके सब अपने अपने कार्य में लगे हुए हैं। कुछ मल्लाह मस्तूल से पाल बाँध रहे हैं और कुछ पाल चढ़ाने उतारने के रस्से को खींच कर पाल का दिशा-परिवर्तन कर रहे हैं, जिसमें उत्तरीय मौसमी वायु का झोंका उन पर झुके। मन्त्री हाथ में कमल पुष्प लिये हुए शामियाने के नीचे नाव पर बैठा है। वहीं उसका पुत्र भी बैठा है। सामने एक अच्छा फ़क़ीर बीन बजा कर गा रहा है। पीछे ख़ज़ाने का सन्दूक़ रक्खा है। उस पर ख़ज़ांची बैठा हुआ हिसाब लिख रहा है।

बड़ी किश्ती से जुड़ी हुई एक और नाव है। उसमें केवल रसोई का प्रबन्ध है। जल-यात्रा में भी घर के समान भोजन की व्यवस्था रखने के लिए ही यह नाव बड़ी किश्ती के संग जोड़ कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्खी गई है। उसमें एक ओर मांस टँगा हुआ है और दूसरी ओर शराब की बोतलें सिलसिले से रक्खी हुई हैं। कहीं आटा पीसा जा रहा है और कहीं ब्यालू की तैयारी की जा रही है। कहने का अभिप्राय यह है कि नाव में भी घर जैसा कार्य हो रहा है। कुछ आश्चर्य नहीं कि मेनकेटर जल-यात्रा के लिए इतनी तैयारी करता रहा हो। शेष दो नावों में शिकारी लोग बर्छी, भाला, तीर-कमान और जाल लिये हुए कोई तो बैठे हैं, कोई शिकार कर रहे हैं और कोई अपने पकड़े हुए शिकार को मन्त्री महाशय के आगे रख रहे हैं। मंत्री और उसके पुत्र की मूर्ति वहाँ भी है। वे दोनों, शिकारियों का कौतुक देख रहे हैं। इन सब नमूनों के देखने से यह भी मालूम होता है कि जीवन के दृश्यों का उप-भोग करने के लिए पिता के संग पुत्र का होना अत्यन्त आवश्यक था*।

वनमालीप्रसाद शुक्ल

रूस की सैर।

गत योरोपीय महायुद्ध के समय जो राष्ट्र-विप्लव सन् १९१७ में रूस में हुआ था उसमें वहाँ के प्रसिद्ध राजघराने की समाप्ति हो गई। रूस से ज़ारशाही का उठ जाना इतिहास की एक महत्त्व-पूर्ण घटना है। इसके समय में रूस देश ने साम्राज्य का रूप धारण किया था और उसकी गणना संसार की महाशक्तियों में हो गई थी। समर-काल में ज़ार जितनी अधिक सेना एकत्र कर सकता था उतनी सेना संसार का कोई दूसरा देश नहीं खड़ी कर सकता था। शान्ति के समय ज़ार-शाही के सैनिक बल को देख कर दूसरे समीपवर्ती देश सदा रूस से शङ्कित रहते थे। ऐसे ही रूस के विधाता ज़ार काल के गाल में समा गये। इस वीसवीं सदी की इस महान् प्रचण्ड शक्ति का विनाश सहसा हो गया। रूस के ज़ार अब इतिहास की सामग्री हो गये और समय आने पर उनके सम्बन्ध की बातें ऐतिहासिक लोग उसी प्रकार खोजेंगे जैसे इस समय भारत के मुग़ल-सम्राटों के कारनामे दिल्ली और आगरे की इमारतों में खोजे जाते हैं। इसी विचार से रूस के कुछ नगरों का वर्णन आगे किया जाता है। यही नगर अब भविष्य में ज़ार का कीर्त्ति-कलाप करेंगे।

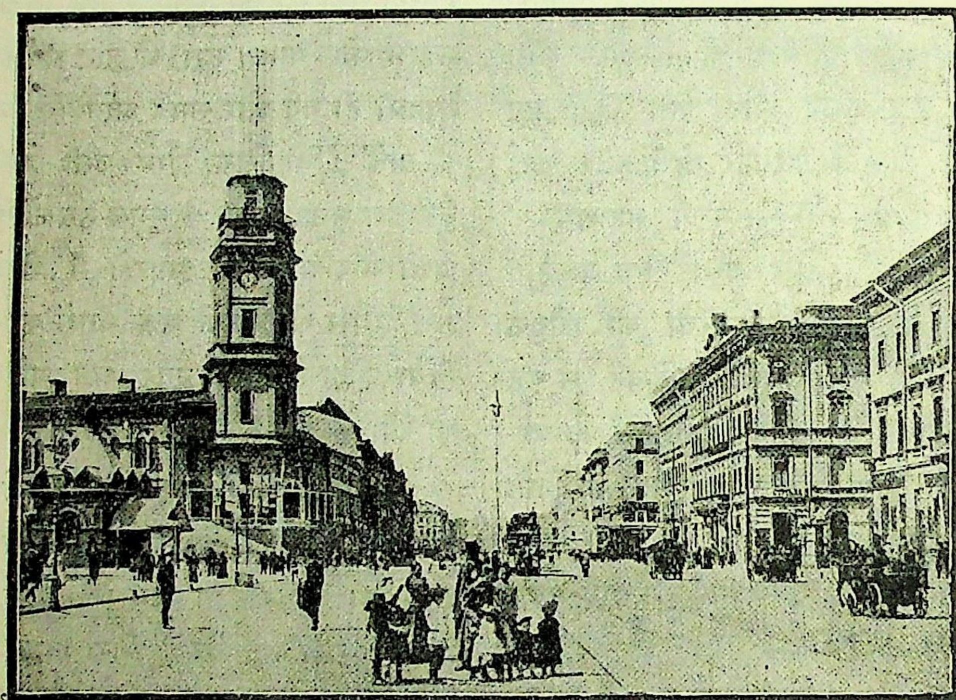
ज़ारशाही की राजधानी सेंटपीटर्सबर्ग (आज-कल का पेट्रोग्रैड) को बड़े पीटर ने बसाया था। यद्यपि ज़ारशाही के विनष्ट हो जाने से इसका पहले जैसा रोब-दाब नहीं रह गया है और विप्लव के कारण यह नगर बहुत कुछ उजड़ गया है तो भी इसका महत्त्व अभी वैसा ही बना है। योरप के सुन्दर और भव्य नगरों में इसकी गणना की जाती है। जैसी शानदार उच्चात्युच्च अट्टालिकाओं और मीनारों एवं भव्य राजप्रासादों से यह नगर अलङ्कृत है वैसी बात योरप के दूसरे नगरों में कम देख पड़ती है। पीटर ने नीवा नदी के दलदल में इसे इस कारण बसाया था जिसमें रूस का प्रत्यच सम्बन्ध पश्चिमी योरप से क़ायम हो जाय। यह नगर नीवा नदी के किनारों तथा उसके बीच में स्थित टापुओं पर आबाद है। इसकी आबादी १५ लाख के लगभग

* (एक अँगरेज़ी लेख के आधार पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी। यदि वहाँ के सेंट-इसाक के गिरजे के मीनार पर चढ़ कर इस शहर का दृश्य देखा जाय तो यही प्रतीत होगा कि सारा नगर जल के बीच में उतरा रहा है। इसके चारों ओर सुन्दर घाट और डक बने हुए हैं। बजड़ों और स्टीमरों के प्रत्येक समय चलते रहने के कारण इस नगर के



नेवस्की प्रास्पेक्, पेट्रोग्रैड ।

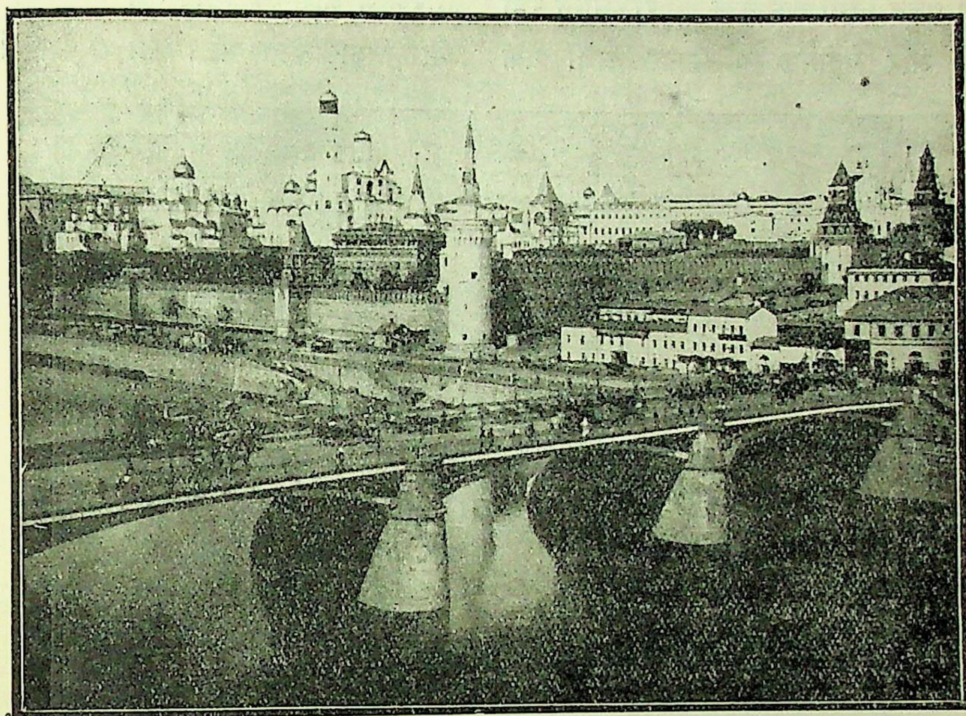
वैभव का चित्र आँखों के सामने खिँच जाता है। इस प्रकार की चहल-पहल का मुख्य कारण एक यह भी है कि इस नगर का सम्बन्ध जल-मार्गों से सुदूर स्थित कालासागर, कास्पियनसी और श्वेतसमुद्र से है। बाल्टिक के समीप तो वह आबाद ही है। जाड़े के दिनों में जब नीवा नदी का जल जम जाता है तब पेट्रोग्रैड की चहल-पहल में एक नूतन परिवर्तन हो जाता है। बर्फ़ इतना मोटा जम जाता है कि उस पर सब प्रकार की गाड़ियाँ तक चल और दौड़ सकती हैं। राव रंक सभी लोग तरह तरह के ऊनी वस्त्र पहन कर थियेटर और नाच देखने के लिए उसी बर्फ़ पर आते-जाते हैं। पेट्रोग्रैड की 'नेवस्की प्रोस्पेक्' नाम की सड़क योरप की सुन्दर गलियों में गिनी जाती है। यह तीन मील लम्बी और बहुत चौड़ी है। इसके दोनों ओर सुन्दर सुन्दर दूकानें और इमारतें इसकी शोभा को बढ़ाती हैं। बर्लिन की 'अंटरडेन लिंडेन' नामक सड़क जैसी सुन्दर और लम्बी चौड़ी है वैसी ही यह भी है। इसी सड़क पर वहाँ का प्रसिद्ध केज़न नाम का गिरजा है। इसके छोर पर रूस-साम्राज्य का अत्यन्त प्रसिद्ध सेंट अलेक्ज़ेंडर नेवस्की नामक मठ है। यह सड़क नगर के उस स्थान से प्रारम्भ होती है जहाँ इसके संस्थापक पीटर की मूर्ति स्थापित है। इस मूर्ति के एक ओर नीवा नदी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रसिद्ध घाट है और दूसरी ओर जङ्गी बेड़े से सम्बन्ध रखनेवाली इमारतें हैं। इन्हीं इमारतों के पास से नगर के भीतर को तीन सीधी सड़कें गई हैं जिनमें सबसे सुन्दर यही नेवस्की प्रास्पेक् है। इन इमारतों के आगे कई एक राजकीय महल बने हुए हैं। इन महलों में से एक में योरप के प्रसिद्ध चित्रकारों द्वारा खींचे गये उत्कृष्ट चित्र रक्खे हुए हैं। इनके साथ ही वहाँ रूस के इतिहास-सम्बन्धी बहुमूल्य और मनोरञ्जक वस्तुओं का संग्रह भी है। इन्हीं में से एक महल में एक पुराना पुस्तकालय है। इसमें १० लाख से ऊपर पुस्तकें हैं। इनके सिवा बहुत ही महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह भी है। इस संग्रह में मेरी स्टुअर्ट, आठवें हेनरी एलिज़ाबेथ और प्रथम चार्ल्स के पत्र तथा १४ वें लुई के बाल्यकाल की लिखी कापियाँ हैं। इन्हीं

महलों के सामने नीवा नदी के दूसरे किनारे पर क़िले और सेंट पाल तथा सेंट पीटर के गिरजे हैं। जिस किश्ती पर यात्रा करके पीटर ने बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया था वह इन्हीं के पास रक्खी है। तथा जिस मकान में रह कर उसने अपने इस विशाल नगर की रचना का उपक्रम किया था वह भी यहीं है। पीटर के इस मकान में केवल रसोईघर तथा दो कमरे हैं।



क्रेमलिन, मास्को।

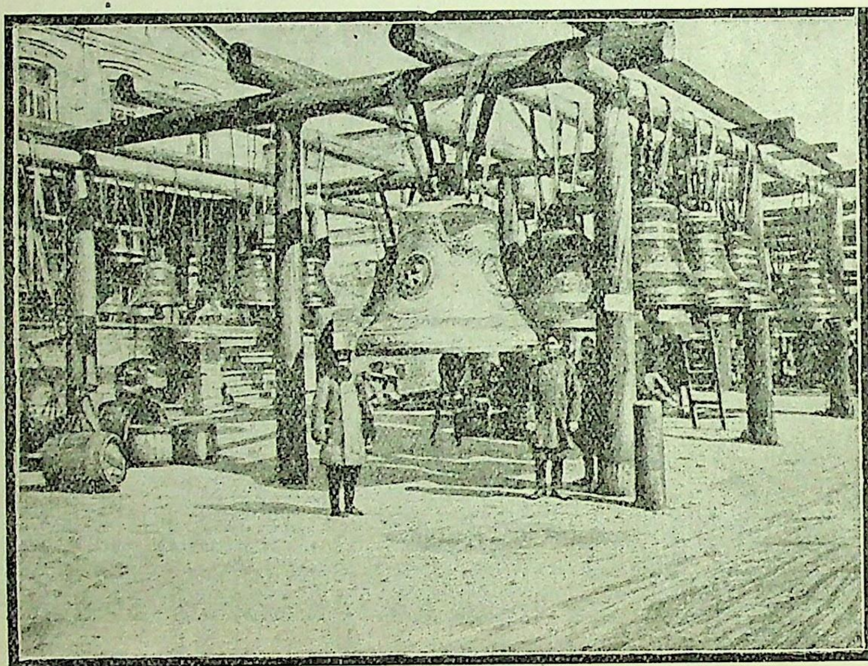
रूस का दूसरा नगर मास्को है। पेट्रोग्रैड की अपेक्षा इसका महत्त्व कई बातों में अधिक है। पेट्रोग्रैड के पहले यही नगर रूस की राजधानी था। वर्तमान समय में बोलशेविकों ने इसी को अपनी राजधानी बनाया है। इसमें १० लाख से ऊपर मनुष्य रहते हैं। यहीं से रूस की रेलवे देश के भिन्न भिन्न स्थानों को गई है। रुई के व्यापार के लिए यह स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन समय से प्रसिद्ध है। इसके पड़ोस में कोयले की बहुत बड़ी खान है। अतएव यह व्यापार का भी केन्द्र है। यह नगर मास्को नाम की नदी पर है और छब्बीस मील लम्बी शहरपनाह के भीतर बसा है। परन्तु इसके भीतर बहुत ख़ाली जगह पड़ी है और यह बहुत बेढङ्गा आबाद है।

मास्को बहुत दिनों तक रूस की राजधानी रहा है। रूस के ज़ार पेट्रोग्रैड से आकर अभी तक रूसी लोग इस स्थान को अपना तीर्थस्थान समझते हैं। वहाँ के ईसाई धर्म से सम्बन्ध रखनेवाले प्राचीन धर्म-मन्दिर यहीं हैं। इनमें उनके धर्माचार्य समय समय पर अपने धर्मानुष्ठान इस समय भी किया करते हैं। इन्हीं धर्म-मन्दिरों में मणि-जटित बहुमूल्य प्राचीन राजकीय परिच्छद रक्खे हैं। यहीं के एक गिरजे में ज़ार को ईसाई धर्म की दीक्षा दी जाती थी और विवाह होता था। इसी के पास के एक दूसरे



छोटे नोवगोरद के मेले में घंटों की दूकानों का एक कोना।

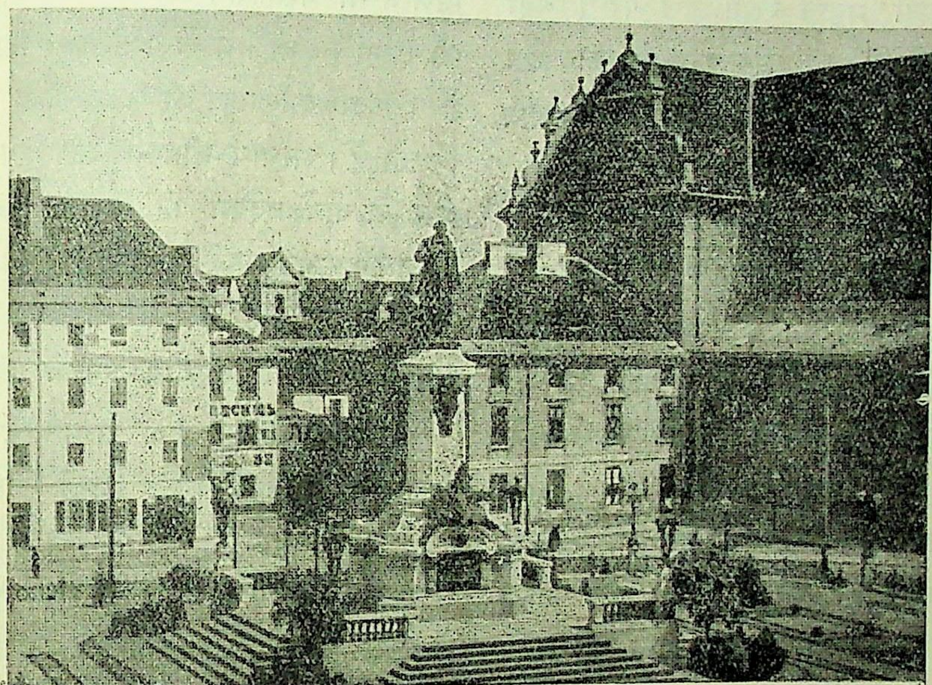
यहीं सिंहासन पर बैठते थे। यहाँ के क्रेमलिन नामक स्थान को उस समय का इतिहास समझना चाहिए। यह स्थान एक मील के घेरे में है और विशाल इमारतों से गुथा हुआ है। इसे देख पेकिंग और आगरे की याद आ जाती है। क्रेमलिन स्वयं एक छोटा-मोटा नगर है। यह स्थान एक मज़बूत शहरपनाह से घिरा है। इसके भीतर तरह तरह की सुन्दर एवं भव्य शाही इमारतें हैं। गिरजे में नये ज़ार को सिंहासन पर बैठने का समारम्भ होता था। एक दूसरे गिरजे में ज़ार के शव दफ़न किये जाते थे। पीटर तक सब ज़ारों के शव यहीं दफ़न होते रहे हैं। क्रेमलिन के गिरजे तथा अन्यान्य इमारतें बहुत ही सुन्दर हैं। कोई कोई प्राचीनता और कला के लिहाज़ से अपना गौरव प्रकट करती हैं तो किसी का गौरव उसकी सम्पत्ति से है जो उनके भीतर सोने, चाँदी और हीरे, जवाहरात के रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सुरक्षित रक्खी हैं। इसीस्थान के 'इवान मीनार' में रूस का संसार-प्रसिद्ध घंटा टँगा है। यह घंटा १६ फ़ुट ऊँचा और १६२ टन तोल में है। ईस्टर के एक दिन पहले यह बजाया जाता है।

मास्को के बाद कीव का नम्बर आता है। रूस ही के नहीं किन्तु योरप के प्राचीन नगरों में इसकी गणना है। यह नगर नीपर नदी के किनारे पर स्थित है। यहाँ भी कई एक प्राचीन और सुन्दर गिरजे बने हैं। यह व्यापार के लिए प्रसिद्ध है। इसी का साथी बड़ा नोवा गोरद इल्मेन झील पर अवस्थित है। इसी स्थान में रह कर रूसी तातारियों और मंगोलों की पराधीनता से स्वतंत्र हुए थे। मध्य एशिया से आकर स्लाव लोगों का केन्द्रस्थान यही नगर हुआ था और उनकी स्वतंत्रता की रक्षा इसी नगर में हुई थी। अतएव रूसी लोग इस नगर को गौरव की दृष्टि से देखते हैं। सन् १८६२ में रूस-साम्राज्य की १००० वीं वर्ष-गाँठ के महोत्सव का स्मृति-स्तम्भ यहीं स्थापित किया गया था। स्कैंडिनेविया से जिस वीकिंग नामधारी डाकूराज रूरिक को बुला कर रूसियों ने अपना राजा बनाया था उसके समय तक के चिह्न इस नगर में इस समय भी सुरक्षित हैं। पहले यह बहुत प्रसिद्ध व्यापारी केन्द्र था, पर सेंट-पीटर्सबर्ग के बसने पर इसके वैभव का ह्रास हो गया। वाल्गा नदी पर जो नोवागोरद है वह भी रूस का एक प्रसिद्ध नगर है। यहाँ गर्मी के दिनों में एक बड़ा भारी मेला लगता है। रूस-साम्राज्य के भिन्न भिन्न प्रान्तों के सिवा मध्य एशिया और चीन तक के व्यापारी यहाँ आकर अपनी दूकानें सजाते हैं। इस मेले में १,८०,००,००,००० रुपये तक की बिक्री होती है। वोल्गा नदी के जिस किनारे की



वारसा का एक दृश्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमि पर यह मेला लगता है वह दस मील के लगभग लम्बी होगी। यहाँ योरप और एशिया के व्यापारी प्रतिवर्ष एकत्र होकर परस्पर व्यापार करते हैं। यह स्थान एक प्रकार से योरपवालों तथा एशियावासियों का संयोगस्थल कहा जा सकता है। इनके सिवा और भी अनेक छोटे छोटे नगर हैं जिनसे ज़ारशाही का प्रभाव सब प्रकार से प्रकट होता है। वे भी अपना अपना महत्त्व रखते हैं। परन्तु यहाँ केवल मुख्य नगरों के ही उल्लेख करने को स्थान है।

वीरेन्द्रकुमार मुखोपाध्याय

वैशेषिक दर्शन।

अनेक सज्जनों की धारणा है कि वैशेषिक दर्शन सांख्य दर्शन से भी प्राचीन है। वैशेषिक दर्शन में बौद्धमत का उल्लेख नहीं है, और उधर महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में वैशेषिक दर्शन की आलोचना देख पड़ती है, इसी कारण आधुनिक विद्वन्मण्डली उसकी रचना का समय तीन हज़ार वर्ष से भी पहले समझती है। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद हैं। कणाद ने चावल के कण-मात्र आहार करके भगवान् शङ्कर की उपासना की थी, और इसी से उनका नाम कणाद पड़ा। कणाद, कणभक्ष, कणभुक् आदि इसी अर्थ के पर्यायवाची कई नाम उनके लिए प्रयुक्त हुए हैं। असल में उनका नाम था उलूक। इसी से वैशेषिक का दूसरा नाम औलूक्य दर्शन भी है। उलूक का जन्म कश्यप के वंश में हुआ था। उन्हें काश्यप भी कहते हैं। महर्षि कणाद 'विशेष' नामक एक अतिरिक्त पदार्थ स्वीकार करते हैं। इसी से उनका दर्शन वैशेषिक कहलाया।

यह दर्शन भी सूत्रों में लिखा गया है। बाद को इसके अनेक भाष्यों की रचना हुई है। अधिकांश भाष्य-ग्रन्थों का इस समय पता नहीं है। प्रशस्तपादाचार्य ने 'पदार्थ-धर्म-संग्रह' नामक वैशेषिक दर्शन का एक भाष्य लिखा था। पण्डितवर शंकर मिश्र ने भी 'वैशेषिक-सूत्रोपस्कार' नामक एक भाष्य की रचना की थी। ये दोनों भाष्य विशेष प्रसिद्ध हैं। पदार्थधर्मसंग्रह की दो टीका देखने को मिलती हैं। आचार्य श्रीधर-रचित 'न्यायकन्दली', और आचार्य उदयन की लिखी 'किरणावली'। किन्तु इस समय शङ्कर मिश्र-प्रणीत 'उपस्कार' टीका का ही विशेष आदर है। सरकारी उपाधि-परीक्षा आदि के कोर्स में यही टीका रक्खी गई है।

वैशेषिक दर्शन में १० अध्याय हैं। हर एक अध्याय के दो परिच्छेद हैं, जिन्हें आह्निक कहते हैं। पहले अध्याय में, प्रथम आह्निक में इकतीस और दूसरे आह्निक में सत्रह सूत्र हैं। दूसरे अध्याय में, प्रथम आह्निक में इकतीस और दूसरे में सैंतीस सूत्र हैं। तीसरे अध्याय में, प्रथम आह्निक में उन्नीस और दूसरे में इक्कीस सूत्र हैं। चौथे अध्याय में, प्रथम आह्निक में तेरह और दूसरे में ग्यारह सूत्र हैं। पाँचवें अध्याय में, प्रथम आह्निक में अठारह और दूसरे में छब्बीस सूत्र हैं। छठे अध्याय में, प्रथम और दूसरे आह्निक में सोलह सूत्र हैं। सातवें अध्याय में, प्रथम आह्निक में पचीस और दूसरे में अट्ठाईस सूत्र हैं। आठवें अध्याय में, प्रथम आह्निक में ग्यारह और दूसरे में छः सूत्र हैं। नवें अध्याय में, प्रथम आह्निक में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्द्रह और दूसरे में तेरह सूत्र हैं। दसवें अध्याय में, प्रथम आह्निक में सात और दूसरे में नौ सूत्र हैं।

पहले अध्याय में द्रव्य आदि सात पदार्थ और उन पदार्थों के गुण, लक्षण, सत्ता, धर्म आदि विषयों की आलोचना है। दूसरे अध्याय में, द्रव्य-तत्त्व की आलोचना में, पृथ्वी जल तेज वायु के लक्षण और प्रमाण आदि विषयों का विशद वर्णन है। तीसरे अध्याय में, आत्मा और अन्तःकरण की और उनके सम्बन्ध की गवेषणा है। चौथे अध्याय में, परमाणु के मूल-कारण और शरीर तथा द्रव्यतत्त्व के सम्बन्ध का निरूपण है। पाँचवें अध्याय में, कर्म-विचार और कर्म-परम्परा (भूकम्प, वृष्टि आदि) के कारण का निर्देश है। छठे अध्याय में, वैदिक धर्म की आलोचना है, कर्मफल का वर्णन है। सातवें अध्याय में, गुण और समवाय का विचार है। आठवें अध्याय में ज्ञान-प्रकरण, प्रत्यक्ष के हेतु का निरूपण और इन्द्रियादि की उत्पत्ति का विचार है। नवें अध्याय में, अभाव, भ्रम, अविद्या आदि की आलोचना और 'विशेष' पदार्थ का प्रतिपादन है। दसवें अध्याय में, सुख-दुःख के भेदाभेदविषयक ज्ञान के सम्बन्ध में उपदेश दिया गया है।

वैशेषिक दर्शन भी सांख्य की तरह दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति का प्रतिपादन करता है। दर्शनकार ने पहले ही "अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः" (अब हम धर्म की व्याख्या करेंगे) कह कर ग्रन्थ का आरम्भ किया है। उसके बाद ही दूसरे सूत्र में वे कहते हैं—"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः", अर्थात् जिससे अभ्युदय (तत्त्व-ज्ञान-लाभ) और निःश्रेयस (आत्यन्तिक दुःख-निवृति अथवा मोक्ष-लाभ) की सिद्धि हो, वही धर्म है। सांख्यकार भी कहते हैं कि तत्त्व-ज्ञान होने पर ही निःश्रेयस या मुक्ति मिलती है। वैशेषिक दर्शन भी कहता है कि तत्त्व-ज्ञान ही निःश्रेयस या मोक्ष का मूल है, तत्त्व-ज्ञान का लाभ ही धर्म है। एक हिसाब से सांख्य और वैशेषिक दोनों में एक ही बात देख पड़ती है। अगर अन्तर है तो यही कि पदार्थ और प्रमाण के सम्बन्ध में वैशेषिक ने भिन्न मार्ग ग्रहण किया है। कणाद के मत में पदार्थ दो तरह के हैं—भाव-पदार्थ और अभाव-पदार्थ। भाव-पदार्थ छः हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय। भाव का अभाव ही अभाव-पदार्थ है। अतएव अभाव-पदार्थ केवल एक ही है। छः प्रकार के भाव-पदार्थों का साधर्म्य और वैधर्म्य दिखा कर निःश्रेयस-लाभ के उपाय को बताना ही वैशेषिक दर्शन का उद्देश्य है। साधर्म्य का अर्थ है साधारण धर्म। जैसे पृथ्वी, जल आदि द्रव्यों का साधर्म्य 'द्रव्यत्व' है। द्रव्य का वैधर्म्य गुणत्व है, क्योंकि द्रव्य का गुणत्व नहीं देख पड़ता। इसी तरह सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर गुण का वैधर्म्य द्रव्यत्व, अथवा द्रव्य का वैधर्म्य कर्मत्व इत्यादि समझना चाहिए। वैशेषिक के मत में द्रव्य नव हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। गुण पदार्थ चौबीस हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि सत्रह, और भाष्यकार प्रशस्तपाद के मत से गुरुत्व, द्रव्यत्व, स्नेह संस्कार, धर्म, अधर्म और शब्द ये सात। कर्म पदार्थ पाँच हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन। सामान्य का अर्थ है जाति। जाति दो प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की होती है, सामान्य अर्थात् साधारण जाति और विशेष जाति। ये दोनों जातियाँ परा और अपरा भी कहलाती हैं। प्राणित्व कहने से साधारण जाति का बोध होता है। मनुष्यत्व, पशुत्व कहने से विशेष जाति का बोध होता है। विशेष पदार्थ एक है; वही परमाणु का विशेषत्व है। परमाणु की समष्टि से पृथ्वी बनी है। और इसी तरह समान-परमाणुओं से जुदे जुदे द्रव्यों की उत्पत्ति होती है। साधारण दृष्टि से देखने से समझ में नहीं आ सकता कि किस परमाणु में कौन अङ्ग निहित है, किन्तु यह हम स्पष्ट देख पाते हैं कि जुदे जुदे परमाणुओं से भिन्न भिन्न जाति के द्रव्य उत्पन्न होते हैं, अथवा यों कहो कि एक प्रकार के परमाणुओं की समष्टि से एकही प्रकार के पदार्थ की सृष्टि होती है। इसका कारण—महर्षि कणाद के मत में—'विशेष' पदार्थ है। जिस परमाणु से धान्य उत्पन्न होता है, और जिस परमाणु से वृक्ष की उत्पत्ति होती है,—दोनों के बीच जो विशेषता है, वही विशेष पदार्थ है। एक ही पृथ्वी में, एक ही परमाणु के रूप से देख पड़ने पर भी, भिन्न भिन्न द्रव्य उत्पन्न होते हैं। जिस कारण से ऐसा होता है, वही वैशेषिक दर्शन का विशेष पदार्थ है। इस पदार्थ का विश्लेषण करने के कारण ही कणाद का दर्शन वैशेषिक कहलाता है। समवाय का अर्थ है नित्य-सम्बन्ध। घट के साथ मिट्टी का, पट के साथ सूत्र का, जाति के साथ व्यक्ति का जो नित्य-सम्बन्ध मौजूद है—वही समवाय-सम्बन्ध है। अभाव पदार्थ के दो भाव हैं, प्रधान रूप से संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव। संसर्गाभाव के तीन भेद हैं। ध्वंसाभाव, प्रागभाव, अत्यन्ताभाव। स्थूल रूप से भाव के अभाव को अभाव (न होना) कहते हैं, जैसे प्रकाश का अभाव अन्धकार। घट था, टूट गया; शरीर था, भस्म होगया; इसका नाम ध्वंसाभाव है। मिट्टी है, घट बनाया जायगा; सूत्र है, वस्त्र बुना जायगा; इस जगह घट और सूत्र का प्रागभाव है। अत्यन्ताभाव का अर्थ है, एक में दूसरे का बिलकुल ही अभाव। जैसे—जड़ देह में चैतन्य का अभाव। घट नहीं है, यह कहने से घट का प्रागभाव या ध्वंसाभाव नहीं सूचित होता, इसलिए वहाँ घट का अत्यन्ताभाव समझना होगा। अन्योन्याभाव का अर्थ है—एक पदार्थ में अन्य पदार्थ का परस्पर अभाव। जैसे—घट में पट का अभाव, पट में घट का अभाव; सिंह में सियार का अभाव, सियार में सिंह का अभाव, इत्यादि।

वैशेषिक दर्शन में प्रधान रूप से उल्लिखित सात पदार्थों की संज्ञा का निर्देश करके अन्त में उन उन पदार्थों के अन्तर्गत विभागों की भी संज्ञा बतलाई गई है। क्षिति, जल, तेज अथवा आकुञ्चन आदि कहने से किस का बोध होता है, इसकी भी व्याख्या महर्षि कणाद ने अपने सूत्रों में की है। इस प्रकार संज्ञा-रूप से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, गुण, कर्म आदि सबके लक्षण कह दिये गये हैं। जैसे—पृथ्वी क्या है? इसे समझाने के लिए वे लिखते हैं—"रूपरसगंधस्पर्शवती पृथिवी"। अर्थात् जिसमें रूप, रस, गंध और स्पर्श है वह पृथिवी है। जल के सम्बन्ध में लिखा है—"रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः"। अर्थात् जिसमें रूप, रस और स्पर्श है, जो तरल या बहनेवाला और स्निग्ध है वही जल है। इसी तरह तेज को लिखा है—"तेजो रूपस्पर्शवत्"। जिसमें रूप और स्पर्श है वह तेज है। "स्पर्शवान् वायुः" वायु का लक्षण स्पर्श है। फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश के बारे में लिखते हैं—"त आकाशे न विद्यन्ते"। अर्थात् रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आकाश में नहीं हैं। इस तरह प्रत्येक पदार्थ की संज्ञा का निर्देश करके उन उन पदार्थों की कारणपरम्परा खोजने के बाद, महर्षि कणाद इस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं—"सदकारणवन्नित्यम्"। सत् पदार्थों में जो कारणवान् नहीं है, अर्थात् जिसका कारण नहीं है, वही नित्य है। इस हिसाब से एकमात्र परमाणु ही सत् पदार्थ और नित्य है। क्योंकि उसका कोई अन्य कारण नहीं पाया जाता। स्थूल रूप से कणाद के दर्शन-सूत्र में परमाणुवादतत्त्व का प्रचार किया गया है। उनका मत है कि यह संसार परमाणुओं के संयोग से उत्पन्न हुआ है, और वह संयोग किसी अव्यक्त कारण से सम्पन्न होता है। पृथ्वी के सभी पदार्थ सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओं की समष्टि हैं। विभाग करते करते सभी पदार्थ एक अतीव सूक्ष्म अवस्था में आ पहुँचते हैं। वह वह अवस्था होती है जिसका और विभाग नहीं किया जा सकता। वह अविभाज्य सूक्ष्मतम पदार्थ ही नित्य परमाणु है; उसी के परस्पर संयोग से स्थूल संसार की उत्पत्ति होती है*।

कणाद के मत में द्रव्य आदि सातों पदार्थों के तत्त्व का ज्ञान प्राप्त होने पर, निःश्रेयस (आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति-रूप मोक्ष) मिलता है। वह कहते हैं—"भोगाभोग और देहान्तरग्रहण सभी अदृष्ट की अपेक्षा रखता है। कर्म करने के कारण कर्म का शुभाशुभ फल भोगने के लिए शरीर का प्रयोजन होता है, और वही अदृष्ट है। तत्त्व-ज्ञान के द्वारा उस अदृष्ट का नाश होता है, और उसी से जीव को मोक्ष मिलता है।" इस हिसाब से यह कहना भी अत्युक्ति नहीं है कि ईश्वर के साथ जीव का सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि द्रव्य आदि सात पदार्थों के साधर्म्य और वैधर्म्य का ज्ञान उत्पन्न होने ही से मुक्ति मिल जाती है। वैशेषिक दर्शन का यही मत है। वैशेषिक दर्शन ईश्वर की कोई कार्यकारिता नहीं स्वीकार करता। उसने अदृष्ट को ही सम्पूर्ण सृष्टि का मूलाधार मान लिया है। वह स्पष्ट ही कहता है—"अग्नेरूर्द्ध्वज्वलनं वायोस्तिर्यक्पवनमणूनां मनसश्चाद्यं कर्मादृष्टकारितम्"। अर्थात् अग्नि का ऊपर की ओर जलना, वायु का तिरछा चलना और परमाणु तथा मन की आद्य क्रिया अदृष्ट के द्वारा निष्पन्न होती है। निष्कर्ष यह निकला कि अदृष्टवश परमाणुओं में क्रिया उत्पन्न होती है, और परमाणु की क्रिया से सृष्टि होती है। बस, सृष्टि के साथ ईश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं है, परमाणु और अदृष्ट ही सृष्टि के मूल-आधार हैं। अदृष्ट के अभाव से शरीर-संयोग का अभाव होता है, और भविष्यत् में उसकी फिर उत्पत्ति नहीं होती; यही मोक्ष है।

वैशेषिक दर्शन प्रत्यक्ष और अनुमान, इन दो प्रमाणों को मानता है। उसके मत में शब्द-प्रमाण अनुमान-प्रमाण के अन्तर्गत है। किसी द्रव्य को

*परमाणुवादतत्त्व का प्रचार सबसे पहले महर्षि कणाद ने ही किया था। इस समय भारत में परमाणुवाद का वैसा आदर नहीं है। किन्तु योरप के दार्शनिक पण्डितों में से अधिकांश लोग इस मत का समर्थन करते हैं। ग्रीक दार्शनिक डेमाक्रेटस ने ईसा से ४४० वर्ष पहले ग्रीस देश में इस परमाणुवाद का प्रचार किया था। डेमाक्रेटस भारत में आये थे और यहाँ के विद्वानों से कणाद का मत सुन गये थे। उनके बाद एपीक्यूरस ने विशेषरूप से परमाणुवाद का प्रचार किया। इसका भी प्रमाण मिलता है। अन्त को डाल्टन ने परमाणुवाद का पुनरुद्धार करके इस सम्बन्ध में योरप के ज्ञान-चक्षु खोल दिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाने के लिए कहने पर, शब्द को सुन कर उस द्रव्य के विषय में अनुमान उत्पन्न होता है, अर्थात् यह समझा जाता है कि कौन द्रव्य लाने के लिए कहा गया है या उसका स्वरूप क्या है। वैशेषिक के मत में यह भी अनुमान-प्रमाण है। जो लोग शब्द-प्रमाण को अनुमान-प्रमाण के अन्तर्गत मानने को तैयार नहीं हैं, वे कहते हैं—"ऐसे अनेक तत्त्व हैं, जो प्रत्यक्ष या अनुमान-प्रमाण में नहीं पाये जाते, लेकिन उनकी सत्यता सर्ववादिसम्मत है; जैसे आप्त-वाक्य, गुरु के उपदेश आदि। शब्द सुन कर पदार्थ का ज्ञान होता है; जैसे—पहले कोई पदार्थ न देखने पर भी, प्रायः शब्दकर्ता के ऊपर विश्वास होने के कारण, उस शब्द से सूचित पदार्थ मान लिया जाता है। पुत्र अपने पिता के कहे हुए शब्दों की सहायता से बहुत से तत्त्वों को जानता है; उसके निकट पिता के मुख से निकले हुए शब्द ही प्रमाण हैं। स्थूल रूप से यही शब्द-प्रमाण कहा जा सकता है"। किन्तु वैशेषिक दर्शन ने उसे अनुमान-प्रमाण के अन्तर्गत मान लिया है। वैशेषिक दर्शन के प्रथम अध्याय के तीसरे और दशम अध्याय के अन्तिम सूत्र में "तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्" (उनका वचन होने से ही आम्नाय प्रमाण है), इस उक्ति के अन्तर्गत 'तत्' शब्द का अर्थ टीकाकारों ने ईश्वर या वेद किया है। वे कहते हैं—जिसके द्वारा प्रमा अर्थात् भ्रमरहित यथार्थ ज्ञान उत्पन्न हो वही प्रमाण है। वेद वही यथार्थ ज्ञान उत्पन्न कराते हैं, क्योंकि वेद ईश्वर-वाक्य हैं। वेद अगर मनुष्यरचित होते, तो भ्रम, प्रमाद, विरोध, अपटुत्व आदि दोष आ पड़ते। किन्तु वैशेषिक दर्शनकार ने वेद में वे दोष स्वीकार नहीं किये। उन्होंने स्पष्ट ही कहा है—"बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे"। अर्थात् बुद्धि (निश्चय)-पूर्वक वेद-वाक्य की रचना हुई है। अतएव वेद-वाक्य ईश्वर-वाक्य हैं; वेद-वाक्य धर्माधर्म के बारे में प्रमाण हैं; वेद-वाक्य अभ्रान्त हैं। किन्तु दूसरा पक्ष कहता है—"पूर्वोक्त सिद्धान्त समीचीन नहीं है। क्योंकि कणाद ने अपने ग्रन्थ में कहीं भी ईश्वर का अस्तित्व या वेद का अपौरुषेयत्व स्वीकार नहीं किया। उनके दर्शन में ईश्वर शब्द तक नहीं देख पड़ता, और 'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे' इस वाक्य का अर्थ यही किया जा सकता है कि पुरुष-बुद्धि के द्वारा वेदों की रचना हुई है। कणाद ने कहीं ईश्वर को सृष्टिकर्ता या जगत् का कारण भी नहीं कहा। अतएव निरीश्वर-वादी के सिवा उन्हें और क्या कहा जा सकता है?" इसके उत्तर में पूर्वपक्ष का मत है—'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्'—इस सूत्र का तत् शब्द ईश्वर-वाचक है। शङ्कर मिश्र ने उपस्कार नामक अपने भाष्य में लिखा है—'तदित्यनुपक्रान्तमपि प्रसिद्धिसिद्धतयेश्वरं परामृशति' (अर्थात् प्रसिद्धि-सिद्धि के कारण, सर्वप्रसिद्धि-निर्णय से, स्पष्ट उल्लेख न रहने पर भी, तत् शब्द ईश्वर का ही बोध कराता है)। फिर 'ओं तत्सदितिनिर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः' यह स्मृतिवाक्य भी तत् शब्द को ब्रह्म-वाचक बतलाता है। मतलब यह कि पूर्व-सूचना न रहने पर भी तत् शब्द ईश्वर का ही प्रतिपादक है, और उसके द्वारा महर्षि कणाद ने गौण-रूप से ईश्वर को स्वीकार किया है। किन्तु भगवान् शङ्कराचार्य इस परमाणु-वाद के कारण उक्त दर्शन को दोषपूर्ण कहते हैं। शङ्कराचार्य के मत में परमाणु अविभाज्य, अदृष्ट, अवयवहीन हो ही नहीं सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब परमाणु के संयोग से देख पड़नेवाले पदार्थ की उत्पत्ति होती है, तब परमाणु के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयव अवश्य हैं। जिसके अवयव हैं, वह अविभाज्य और अदृष्ट हो ही नहीं सकता*। अतएव परमाणु का नित्यत्व प्रमाणित नहीं हो सकता।

रूपनारायण पाण्डेय

जापान में सूत के कारख़ाने।

'राजा कालस्य कारणम्' की कहावत का उत्कृष्ट उदाहरण यदि देखना हो तो जापान के इतिहास में देखना चाहिए। वर्तमान जापानी राष्ट्र को संसार में आज जो उच्च स्थान प्राप्त हुआ है उसका श्रेय अधिकांश में जापानी राजपुरुषों को ही देना चाहिए। जापान की उन्नति जिन विविध मार्गों से हुई है वे मार्ग प्रायः राज-घराने के पुरुषों ने ही लोगों को दिखलाये हैं, अथवा कम से कम उनको सुगम तो अवश्य ही बनाया है। धार्मिक, सामाजिक, औद्योगिक, राजनैतिक इत्यादि किसी विषय को लीजिए, प्रत्येक में जापानी राजपुरुषों के कर्तृत्व की छाप लगी हुई है। जापान में सूत के कारख़ानों के क्रम-विकास पर श्रीयुत अनन्त विनायक चित्रे (बी० ए०) महाशय ने मराठी में एक सुन्दर लेख लिखा है। उसका सारांश यहाँ दिया जाता है। इससे पाठकों को भली भाँति मालूम हो जायगा कि जापान में सूत के कारख़ानों का उपक्रम किस प्रकार हुआ; और उत्तरोत्तर उनकी कैसी वृद्धि होती गई। इससे पाठकों को यह भी मालूम हो जायगा कि इस व्यवसाय को भी जापान में पहले पहल राजपुरुषों ने ही प्रारम्भ किया और उनको उन्नतावस्था तक पहुँचाया, तथा जनता को सरकार की ओर से समय समय पर इस व्यवसाय के लिए ख़ूब उत्तेजना मिलती रही।

जापान-देश को वैभवशाली बनानेवाले जितने व्यवसाय हैं उनमें सूत का व्यवसाय मुख्य है। जापान में सूत का पहला कारख़ाना सन् १८६२ में प्रारम्भ हुआ। यह समय जापान की सर्वाङ्गीण क्रान्ति का समय था। उसकी सम्पूर्ण काया उस समय बड़े वेग के साथ पलट रही थी। विशेषतः राजकीय क्रान्ति घटित करने के लिए देश के सम्पूर्ण राजनीतिज्ञों के प्रयत्न जारी थे, व्यवसाय-वाणिज्य की ओर विशेष ध्यान देना किसी राजनीतिज्ञ के लिए बिलकुल ही सम्भव न था। ऐसी दशा में भी उपर्युक्त व्यवसाय को जापान में प्रारम्भ करने का विचार पहले पहल नरियाकिर शिमाजु नामक राजपुरुष के मन में आया। नरियाकिर शिमाजु एक बहुत ही बड़ा और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। उसने पहले ही जान लिया कि सूत के कारख़ाने खोलना देश की सम्पत्ति को बढ़ाने का एक बहुत अच्छा मार्ग है; और तदनुसार उसने अपने प्रयत्न का प्रारम्भ भी कर दिया। उसकी इच्छा थी कि हम स्वयं सूत का एक कारख़ाना खोलें, उसको सफल करके दिखला दें और देश के धनी लोगों के सामने निजी कारख़ाने खोलने का आदर्श रख दें। बस, फिर क्या था, कारख़ाने की संयोजना के लिए आवश्यक पूँजी इत्यादि का उसने बन्दोबस्त किया; परन्तु उसके प्रयत्न अभी पूरे पूरे सफल नहीं हुए थे कि दुर्भाग्यवश उसका देहान्त हो गया। नरियाकिर शिमाजु के पीछे तादायोशी नामक राजपुत्र ने उस काम को अपने हाथ में लिया। कारख़ाने के लिए आवश्यक यन्त्र-सामग्री इँगलेंड से मँगा कर उसने इसानोहामा में पहला सूत का कारख़ाना खोला। इस कारख़ाने के सब मुख्य नौकर अँगरेज़ थे। इस कारख़ाने में जब सफलता प्राप्त हुई तब उससे उत्साहित होकर तादायोशी ने सन् १८७० में सकई नगर के पास 'सकई स्पिनिङ्ग मिल' नाम का एक और कारख़ाना खोला

---

* शङ्कराचार्य ने अपने भाष्य में परमाणुवाद का खण्डन इस तरह किया है—"संयोगश्चाणोरण्वन्तरेण सर्वात्मना वा स्यादेकदेशेन वा, सर्वात्मनाचेदुपचयानुपपत्तेरणुमात्रत्वप्रसंगो दृष्टः विपर्ययप्रसङ्गश्च"। सर्वात्मरूप से या एकदेश भाव से दो अणुओं का संयोग सम्भव पर है? अगर सर्वात्मभाव से संयोग हो तो वह दृष्ट पदार्थ होगा। अगर एकदेश भाव से संयोग सङ्कुटित है तो भी अणु का सावयव होना प्रतिपादित होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरियाकिर और तादायोशी के प्रयत्नों का देश के धनिकों पर वह प्रभाव हुआ जो देश की उन्नति के लिए उन्हें अभीष्ट था। जापान के धनिकों को इस बात का विश्वास हो गया कि सूत के कारख़ाने खोलना एक अत्यन्त लाभदायक व्यवसाय है। उसी समय के लगभग जापान की सरकार ने भी सरकारी ख़ज़ाने से द्रव्य की सहायता दे कर व्यवसायियों को उत्साहित करने की बात निश्चित की। इससे पूँजीवालों को और भी अधिक उत्तेजना प्राप्त हुई; और नाना प्रकार के छोटे-बड़े उद्योग-धन्धे देश में प्रारम्भ हुए। सन् १८७९ में मम्बेई कशिमा नामक एक महाशय ने सरकारी सहायता प्राप्त करके टकिनोगावा में 'कशिमास्पिनिङ्ग मिल' नामक एक निजी कारख़ाना खोला। यह कारख़ाना पहले पहल पनचक्की के द्वारा चलाया जाता था। मैनेजर के स्थान पर एक योरोपियन कर्मचारी की नियुक्ति की गई थी। मैनेजर अपने काम में बहुत होशियार नहीं था, अतएव प्रारम्भ में कारख़ाने को जैसी सफलता मिलनी चाहिए, नहीं मिली। परन्तु इससे हताश न होते हुए कशिमा ने और भी अधिक दृढ़ता के साथ अपना उद्योग जारी रक्खा। उसने कारख़ाने में वाष्प के यन्त्र लगाये; और थोड़े ही काल में उसे उन्नति के शिखर पर पहुँचा कर ही दम लिया। कशिमा का आदर्श देख कर देश के अन्य पूँजीपतियों को भी सूत के कारख़ाने खोलने का उत्साह हुआ; और धीरे धीरे जापान में इन कारख़ानों की संख्या बढ़ने लगी।

परन्तु सन् १८८१ तक यह वृद्धि बहुत ही मन्दगति से होती रही। क्योंकि उस समय तक देश में सिर्फ़ सात ही कारख़ाने खुले थे। यद्यपि यह बात सिद्ध हो चुकी थी कि सूत के कारख़ानों का उद्योग लाभदायक है; और यद्यपि सरकार की ओर से भी पूँजीपतियों को सब प्रकार की आवश्यक सहायता प्राप्त होने का सुभीता हो गया था; फिर भी उस देश के लक्ष्मी-पुत्रों का ध्यान इस ओर जितना जाना चाहिए था उतना नहीं गया था। कपड़े के स्वदेशी पुतलीघरों को भी जितने सूत की आवश्यकता होती थी उतना सूत भी वहाँ के कारख़ानों में नहीं निकलता था; और इस कारण उनको विदेशी सूत मँगा कर काम चलाना पड़ता था। ऐसी दशा में अवश्य ही देश को बहुत भारी हानि होने लगी। प्रतिवर्ष लगभग ४० लाख येन (लगभग ६० लाख २५ हज़ार रुपये) सिर्फ़ सूत के लिए विदेश जाने लगे। अतएव वहाँ की सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ कि देश की जो सम्पत्ति इस प्रकार भयङ्कर रूप से निकली जा रही है उसके रोकने का उपाय करना उसका परम कर्तव्य है। अतएव जापानी सरकार ने स्वयं 'आमची स्पिनिंग मिल' और 'हिरोशिमा स्पिनिंगमिल' नामक दो आदर्श कारख़ाने स्थापित किये। इसके सिवा सरकार ने व्यवसाय करनेवाले पूँजीपतियों को आवश्यक द्रव्यसाहाय्य करने के अतिरिक्त उचित मूल्य पर यन्त्र-सामग्री पहुँचाने का उत्तरदायित्व भी अपने ऊपर लिया। फिर क्या था, सरकार से मिले हुए इस उत्साह के कारण तारा, ह्योगो, ओकायामा, मिये, पामानाशी, ओसाका, नागासाकी इत्यादि स्थानों में अनेक कारख़ाने खुल गये। इन सब कारख़ानों की ख़ूब उन्नति होती गई और उनकी शाखाएँ सारे देश भर में फैल गईं।

सन् १८८२ के लगभग जापान की औद्योगिक दशा में एक बहुत बड़ा महत्त्व-पूर्ण परिवर्तन हुआ और देश के सम्पूर्ण उद्योग-धन्धों पर उसका अत्यन्त इष्ट प्रभाव पड़ा। इस वर्ष तक जापान के सब छोटे-बड़े कारख़ाने अपने अपने निज के स्वामित्व के थे, अतएव देश की पूँजी असंख्य छोटे छोटे कारख़ानों में विभाजित हो रही थी। परिणाम यह होता था कि विशेष उन्नति किसी की न हो पाती थी; और देश की सामुदायिक पूँजी का यथायोग्य उपयोग न हो पाता था। सम्मिलित सम्पत्ति-समुदाय (ज्वाइंट स्टॉक कम्पनी) की प्रणाली अभी तक नहीं जारी हुई थी। इस पद्धति को पहले पहल बैरन शिबुसावा नामक एक धनाढ्य व्यापारी ने यमानोबे नाम के एक महाशय की सहायता से प्रारम्भ किया। यमानोबे ने इँग्लेंड में जाकर वहाँ की ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों के चलाये हुए भारी भारी कारख़ानों का निरीक्षण किया; वहाँ की सम्पूर्ण परिस्थिति का अध्ययन किया—इस बात का विचार किया कि इँग्लेंड के आदर्श को सामने रख कर हम अपने देश के उद्योगधन्धों में क्या क्या सुधार कर सकते हैं; और इसके बाद फिर उसने ज्वाइंट स्टाक कम्पनी की एक योजना (स्कीम) तैयार की। शिबुसावा ने उस योजना को कार्य में परिणत किया; और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान की पहली सामूहिक पूँजी की व्यापारी मंडली 'ओसाका स्पिनिंग कम्पनी' के नाम से खुली। इस एक ही कारख़ाने की पूँजी देश के अन्य बड़े से बड़े पाँच कारख़ानों की पूँजी से भी अधिक थी। ज्वाइंट स्टॉक कम्पनी की प्रणाली देश में शुरू होते ही सूत के कारख़ानों की वृद्धि भी अधिकाधिक होने लगी। सन् १८८१ से १८९० तक के इस वर्ष के बीच इन कारख़ानों की संख्या सत्रहगुनी बढ़ गई।

यद्यपि कारख़ानों की संख्या इतनी बढ़ गई फिर भी विदेशी सूत की आयत कम न हुई; किन्तु दिन पर दिन बढ़ने ही लगी। सन् १८८८ में १ करोड़ ३६ लाख २० हज़ार 'येन' के मूल्य का विदेशी सूत जापान में आया। इसका मुख्य कारण यही था कि जापानी लोग पाश्चात्य रहन-सहन का अनुकरण करने लगे थे, अतएव उनके वस्त्रों में दिन दिन बहुत परिवर्तन होने लगा था। पहले की रहन-सहन की सादगी अब नष्ट हो रही थी; और उन लोगों में शान-शौकत के वस्त्रों की भारी माँग होने लगी थी। अतएव पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित जापानी लोग देशी सूत के मोटे कपड़ों को पसन्द ही नहीं करते थे। इधर बारीक और चिकना विदेशी सूत मँगा कर उसी का कपड़ा बनाना पुतलीघरवालों को विशेष लाभ-दायक जान पड़ता था। ऐसी दशा में जब तक देशी कार-ख़ानों में ही बारीक और चिकना सूत जापान के लोग न निकाल सकते तब तक विदेशी सूत की आयत जापान में नहीं बन्द हो सकती थी। परन्तु उस समय जापान के सूत के कारख़ानों की संख्या बहुत बढ़ चुकी थी; और सूत की माँग बहुत कम थी, अतएव सन् १८८९ में हज़ारों येन मूल्य का सूत देश में ही पड़ा हुआ था। परिणाम यह हुआ कि सूत का भाव एकदम गिर गया। उन्हीं दिनों के लगभग चीन सरकार ने शाङ्घाई में सूत का एक कारख़ाना खोल दिया था, इस कारण चीनी कपास का भाव भी बहुत बढ़ गया। उस समय जापानी कारख़ानों में प्रायः चीन देश से ही अधिकांश कपास जाती थी। चीनी कपास का भाव बढ़ जाने और उधर सूत का भाव एक-दम गिर जाने के कारण बहुत से छोटे-मोटे जापानी कार-ख़ाने टूटने पर आ गये। परन्तु वे हताश नहीं हुए, किन्तु इस विकट परिस्थिति से पार होने के लिए मार्ग निकालने के उद्देश्य से देश भर के सब कारख़ानेवालों की (स्पिनर्स एसोसिएशन की) एक परिषद सन् १८९० में की गई। इस परिषद ने यह युक्ति निकाली कि तीन महीने तक सब कारख़ाने महीने में आठ दिन बन्द रहा करें, जिससे बिना कारण जो माल तैयार पड़ा रहता है उसमें अधिक पूँजी व्यर्थ के लिए न फँसी रहा करे। इस प्रकार उस परिषद ने एक प्रस्ताव पास करके बहुत जल्द उसको कार्य-रूप में परिणत करने का निश्चय किया। इस युक्ति से उस समय कारख़ानों की कठिनाई दूर हो गई और अनेक छोटे छोटे कारख़ाने टूटने से बच गये।

यह परिषद इतना ही काम करके चुप नहीं होगई, किन्तु उसने एक और भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उस समय जापान के बाज़ारों में जो तड़कीले-भड़कीले कपड़ों की चाह बढ़ रही थी, वैसा सुन्दर कपड़ा जापानी अथवा चीनी कपास से नहीं निकल सकता था। इस काम के लिए वहाँ की कपास बिलकुल निरुपयोगी समझी गई थी। भारतवर्ष की कपास जापानी अथवा चीनी कपास से बहुत ही ऊँचे दरजे की थी, अतएव इसी देश के सूत की वहाँ के पुतलीघरों में विशेष चाह थी। अतएव भारतीय सूत की खपत अपने देश में कम करने के लिए जापानी लोगों के सामने यह एक ही उपाय था कि वे ऊँचे दरजे की पर-देशी कपास ख़रीद कर अपने देश में ही उसका सूत तैयार करें। तदनुसार उक्त परिषद ने अपनी सरकार से यह प्रार्थना की कि जापानी जानकारों का एक कमीशन भारत-वर्ष को भेजा जाय जो वहाँ के कपास-बाज़ारों की छान-बीन करके इस बात की जानकारी प्राप्त करे कि सुभीते के साथ भारतीय कपास की ख़रीद किस प्रकार की जा सकेगी। जापान की सरकार ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली; क्यों न स्वीकार करती—वह सरकार विदेशी थोड़े ही थी! उस कमीशन ने भारत में आकर यहाँ के कपास-बाज़ारों की सब आवश्यक जानकारी प्राप्त की; और भारतीय कपास ख़रीदने के विषय में जापानी व्यापारियों को सलाह दी। उधर जब अमेरिकन कपास भी उनको उत्तम जान पड़ी तब कुछ व्यापारियों ने उस कपास को भी मँगाना शुरू किया। इस प्रकार जब उत्तम कपास जापान को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलने लगी तब वहाँ के कारख़ानों में अधिकाधिक सूत निकलने लगा; और भारतीय सूत की मांग जापानी बाज़ारों में क्रमशः कम होती गई—यहाँ तक कि सन् १८९३ में, अर्थात् लगभग तीन वर्ष की अवधि में जापान में भारत का सूत खपना बिलकुल बन्द होगया; और अब तो जापान का ही बहुत सा सूत भारत में आता है। सन् १८९३ में स्पिनर्स एसोसिएशन और भिपान यूसेन के येशा नामक जापानी जहाज़ी कम्पनी में भारतीय कपास को ढो ले जाने के विषय में सुभीते की शर्तें हुईं। सन् १८९५ में जापानी सरकार ने कपास और सूत की आयत और निर्गत का कर बिलकुल बन्द कर दिया। इस कारण, तथा और भी अनेक कारणों से, जापान में सूत के कारख़ानों की बहुत ही उन्नति हुई।

जापान ने सन् १८९४ में चीन के साथ और १९०४ में रूस के साथ युद्ध किया। ये दोनों युद्ध उसने व्यापारी ही दृष्टि से किये थे। इन युद्धों की तह में जापान का यही विचार गर्भित था कि कोरिया प्रान्त को अपने राजछत्र के नीचे लाकर अपने देश के व्यापार का क्षेत्र बढ़ाया जाय। चीनी-जापानी लड़ाई में जब चीन का पराभव होगया तब जापान ने कोरिया से चीनी व्यापार को हटा दिया और वहाँ का सारा व्यापार अपने हाथ में कर लिया। इसके अतिरिक्त जापानी सरकार ने चीन देश से बहुत बड़ा युद्ध-कर भी वसूल किया, जिसका अधिकांश भाग अपने देश के उद्योगधन्धों में ही लगाया।

हम ऊपर यह कह चुके हैं कि सन् १८९१ से जापान में बढ़िया सूत तैयार होने लगा। इधर सन् १८९२ से लेकर सन् १८९६ तक के लगभग पाँच वर्ष चीन के बाज़ारों में जापान और भारत की व्यापारिक प्रतियोगिता जारी रही। सन् १८९५ में भारतवर्ष के सबसे अधिक वैभवशाली व्यापारी नगर बम्बई में पहले पहल प्लेगदेव पधारे। इनकी कृपा से बम्बई नगर के कारख़ाने बहुत काल तक शिथिल रहे। परिणाम यह हुआ कि चीन के बाज़ारों में जापानी सूत के टक्कर का भारतीय सूत बहुत ही कम पहुँचने लगा। जापान ने यह अच्छा मौक़ा देखा; और भारत की इस दैवी आपदा से लाभ उठा कर अपना सूत का व्यापार ख़ूब बढ़ाया। बहुत सी नवीन यन्त्र-सामग्री मँगा कर ख़ूब माल तैयार किया; और चीन के बाज़ार से भारत को भगा कर पूर्णतया उसे अपने हस्तगत कर लिया।

चीनी-जापानी युद्ध और भारत के प्लेग के कारण जापान का व्यापार ख़ूब चमक उठा। सन् १८८१ और १८९७ के दो सालों के अङ्क यदि लिये जायँ, तो स्पष्ट हो जाता है कि जापान का सिर्फ़ सूत का व्यापार इतने दिनों में कम से कम ७५ गुना बढ़ गया। उपर्युक्त दो सालों की यदि वहाँ की यान्त्रिक सामग्री की तुलना की जाय, तो वह भी लगभग ६० गुनी बढ़ गई। कारख़ानों की संख्या भी काफ़ी बढ़ गई थी; परन्तु उनमें अधिकांश प्रायः बहुत ही थोड़े परिमाण पर चलाये जा रहे थे, अतएव उनको विशेष लाभ नहीं हुआ। हाँ, सन् १८९७ में फिर एक बार जापानी सूत के व्यापार की वही दशा हुई जो सन् १८९० में हुई थी—अर्थात् माँग की अपेक्षा माल अधिक तैयार हुआ और वह कारख़ानों में ही पड़ा रहा, अतएव कितने ही छोटे-मोटे कारख़ानों के फिर भी टूटने की नौबत आ गई। स्पिनर्स एसोसिएशन ने इस बार फिर महीने में चार दिन और चार रात सब कारख़ानों के बन्द रहने का तात्कालिक उपाय नियोजित करके उस आपत्ति से उनकी रक्षा की।

सन् १९०१-०२ के लगभग संजीमूतो नामक एक महाशय ने, जो सन् १९१९ में वाशिङ्गटन की "सर्वराष्ट्रीय मज़दूर-परिषद" में जापान की ओर से प्रतिनिधि हो कर गये थे, सूत के छोटे छोटे कारख़ानों का एकीकरण करने के विषय में एक योजना तैयार की। यह योजना सब कारख़ानेवालों को पसन्द पड़ी; और बड़ी बड़ी कम्पनियों ने अपनी अपनी पूँजी बढ़ा कर छोटे छोटे कारख़ानों को ख़रीद लिया। कानेगाफुची स्पिनिंग कम्पनी ने कुनिजिया, कुयुशु, नक्त्सु, हाकाटा इत्यादि छोटे छोटे कारख़ानों को मोल लेकर अपना विस्तार बड़े भारी परिमाण पर बढ़ा लिया। इस प्रकार छोटे छोटे कारख़ानों में बिखरी हुई पूँजी जब बड़ी बड़ी कम्पनियों के रूप में परिणत हो गई, तब जापान का सूत का व्यवसाय और भी अधिक व्यवस्थित रूप से बढ़ा; और 'संजी मूतो' की योजना से जापानी कारख़ानों के इतिहास में एक बहुत ही महत्त्व-पूर्ण क्रान्ति हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९०४ में रूस-जापान-युद्ध का प्रारम्भ हुआ। यह युद्ध जब तक जारी रहा, तब तक देश के व्यापार-वाणिज्य को फिर भी धक्का बैठा। परन्तु युद्ध के समाप्त होते ही रूस से जो युद्ध-कर जापान को मिला, उससे फ़ौजी तथा अन्य सरकारी नौकरों को उनकी कर्तव्य-दक्षता के लिए तरक्क़ी और पारितोषिक दिये गये। देश की साम्पत्तिक उन्नति होने के कारण स्वाभाविक ही जनता की आवश्यकताएँ और ऐश-आराम भी बढ़ा। बढ़िया कपड़ों और ऐश-आराम की चीज़ों की बाज़ार में ख़ूब माँग हुई, इस कारण जापान के नानाविध व्यापार-वाणिज्य की ख़ूब प्रगति होने लगी—यहाँ तक कि कारख़ाने अपने देश की ही आवश्यकता को पूर्ण करने में असमर्थ से दिखाई देने लगे। पूँजी पर वार्षिक २५ से ५० फ़ी सदी तक लाभ सहज ही में दिया जाने लगा। जिसे देखिए वही बाज़ार में हिस्से (शेयर) मोल लेने के लिए दौड़ने लगा। कम्पनियों के हिस्सों का मूल्य वेग के साथ बढ़ने लगा। पुरानी कम्पनियों ने अपनी अपनी पूँजी बढ़ाई। व्यापार अपरम्पार बढ़ा; और ऐसा जान पड़ा कि जापान का औद्योगिक उत्कर्ष अब चरम-सीमा तक पहुँच गया।

परन्तु सन् १९०८ में इस उत्कर्ष की कला उतरने लगी। नवीन प्रारम्भ किये हुए और पुराने बढ़ाये हुए कारख़ानों से माल माँग की अपेक्षा अधिक निकलने लगा। फिर एक बार कारख़ानेवालों की परिषद् हुई; और साढ़े सत्ताईस फ़ी सदी माल कम पैदा करने की योजना निश्चित की गई। अतएव जो माल बचत में पड़ा था, उसकी खपत होगई; और माँग के हिसाब से ही माल तैयार होने लगा। यह सिलसिला लगभग चार वर्ष तक जारी रहा। सन् १९१२ में ज्योंही फिर कारख़ाने पहले की भाँति ठीक ठीक चलने लगे, त्योंही फिर आवश्यकता से अधिक माल निकलने लगा। इस पर स्पिनर्स एसोसिएशन की फिर एक बार सभा हुई, और छः मास तक फिर प्रतिमास चार दिन और चार रात कारख़ाने बन्द रखने का प्रस्ताव निश्चित हुआ। कारख़ाने इस प्रकार बन्द रखने का यही अब तक का तीसरा और अन्तिम अवसर है।

सन् १९१४ में योरप के महायुद्ध का प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध के कारण इँगलैंड तथा वहाँ के अन्य कई देशों के प्रायः सब कपड़े के कारख़ाने बन्द हो गये। इस कारण जापानी कारख़ानों को फिर बढ़ने का अवसर मिला; और वे सब ख़ूब ही सम्पन्न हो गये। इसके अतिरिक्त इस युद्ध के समय में स्वेज़ के पूर्व ओर माल ढोने का साधन नहीं रहा, अतएव प्रायः सभी पूर्वी देशों और दक्षिणी समुद्र के द्वीपों का सम्पूर्ण व्यापार जापान के हाथ में आ गया। महायुद्ध ने सम्पूर्ण संसार की कुछ न कुछ हानि की; पर जापान को अवश्य ही उसने कल्पनातीत लाभ करा दिया।

उपर्युक्त विवेचन से यद्यपि यह जान पड़ता है कि, जापान के सूत के कारख़ाने बीच बीच में घटते-बढ़ते रहे हैं, तथापि सम्पूर्णतया उनकी वृद्धि ही होती रही है। यह बात नीचे दिये हुए अङ्कों से भली भाँति विदित हो जाती है।

ई० स०	कारख़ाने	यन्त्र	सूत के गट्ठे
१८९०	३०	२,७७,८९५	१,०४,८३९
१९००	८०	१२,६७,८७२	६,५४,४३२
१९१०	१२६	२०,९९,७६४	११,३४,७८०
१९१८	१७७	३२,२७,६७८	१८,३३,८६६

इस लेख से हमारे पाठकों को मालूम हो जायगा कि, जापान के लोगों ने किस प्रकार राष्ट्रीय सहयोगिता से, अपने देश के हित को ध्यान में रख कर, सूत के व्यवसाय में उन्नति की; और वहाँ की सरकार ने समय समय पर उनको किस प्रकार उत्साहित किया। हमारे देश में भी इस समय स्वदेशी सूत के अधिक तादाद में तैयार होने की विशेष आवश्यकता है। अब तक यहाँ पर विलायती और जापानी सूत लाखों रुपये का आता है। ऐसी दशा में हमारे देश के धनिकों का यह परम कर्तव्य है कि वे जापान के उपर्युक्त प्रयत्नों का अनुकरण करके अपने देश में सूत के नवीन नवीन कारख़ाने स्थापित करें। ऐसा करने से स्वयं उनको तो लाभ होगा ही; किन्तु साथ ही साथ, देश की सम्पत्ति, जो इस समय विदेश को चली जा रही है, बच जायगी। हमारे देश की पूँजीवालों को इस समय ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि हमारे देश की कपास बाहर बिलकुल ही न जाने पावे। यहीं के चरखों पर और कारख़ानों में उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत तैयार हो। देशी सूत के स्वदेशी वस्त्र पहनने की प्रवृत्ति इस समय हमारे देश में बढ़ रही है, इसलिए यह एक ऐसा सुन्दर अवसर हमारे पूँजीवालों के हाथ में आया है कि इस समय यदि वे अपनी अपनी शक्ति और पूँजी स्वदेशी सूत और स्वदेशी कपड़ा तैयार करने में लगावेंगे, तो पूँजी के सदुपयोग के साथ ही साथ उनको आर्थिक लाभ भी बहुत होगा।

लक्ष्मीधर वाजपेयी

वाशिङ्गटन-कान्फ़्रेंस।

उदय।

सन् १९१४ में योरप के राष्ट्रों के भीषण सङ्घर्षण से जो समरानल प्रज्वलित हुआ उसे शान्त करने के प्रयत्न में तीन करोड़ मनुष्यों ने अपने हृदय का रक्त दान किया। ९० लाख मनुष्यों को भस्म कर समराग्नि कुछ तृप्त हुई। युद्ध-काल में प्रत्येक राष्ट्र को अपनी स्वार्थ-सिद्धि की चिन्ता थी। अपने असामान्य पराक्रम के लिए जर्मन-सैनिक विख्यात हो चुके थे। उनकी जल-शक्ति पर भी लोगों की दृष्टि जम गई थी। इँग्लेंड को छोड़ कर समुद्र पर जर्मनी की समता कोई नहीं कर सकता था। जटलेंड की सामुद्रिक मुठभेड़ में उसने इँग्लेंड का भी मान-मर्दन किया था। समुद्र-तल पर तो जर्मनी ने अपना 'एकच्छत्र' राज्य स्थापित कर लिया था। उसकी जलमग्न नौकाएँ निर्भयता से जलराशि के भीतर ही भीतर विचरण किया करती थीं। शत्रुदल और उदासीन राष्ट्रों के भी जलयानों को खेल ही खेल में इन जर्मन-नौकाओं ने सिन्धु के अनन्त उदर में पहुँचा दिया था। जलपथ में इन्होंने इतने विघ्न-कण्टक बिछा दिये थे कि यात्रा के लिए बन्दर छोड़ते समय साहसियों के भी हृदय काँप उठते थे। समुद्र द्वारा व्यापार जारी रखना यदि असम्भव नहीं तो दु:साध्य अवश्य हो गया था।

मित्र-दल की समुचित नौ-सेना-शक्ति इन नौकाओं के अत्याचारों का अन्त करने में असमर्थ सिद्ध हुई। उस समय फ़्रान्स, जापान और इटली की जल-शक्ति चतुर्थ और पञ्चम श्रेणी की थी। अपनी तृतीय श्रेणी की नौ-सेना सहित अमेरिका का रण-क्षेत्र में आना भी इनके हृदय में भय का सञ्चार न कर सका। परन्तु अमेरिका के सैनिकों के पद-स्पर्श ने अनायास ही समरस्थल का रूप बदल दिया।

वर्सेलीज़ की भूमि पर तोपों के घन-गर्जन के स्थान में सन्धि की चर्चा सुनाई पड़ने लगी। सन्धिपत्र के परशु-कुठार ने जर्मनी की नौ-सेना को छिन्न भिन्न कर दिया। मित्र-राष्ट्रों को अपनी अपनी शक्ति बढ़ाने का सुअवसर मिला। जापान ने बड़ी शीघ्रता के साथ पैर बढ़ाये, फ़्रान्स पिछड़ गया परन्तु ब्रिटेन अपने सर्वोच्च स्थान पर बना ही रहा। जर्मनी के धराशायी हो जाने से द्वितीय शक्ति कहलाने का दुख अमेरिका के भाग्य में पड़ा।

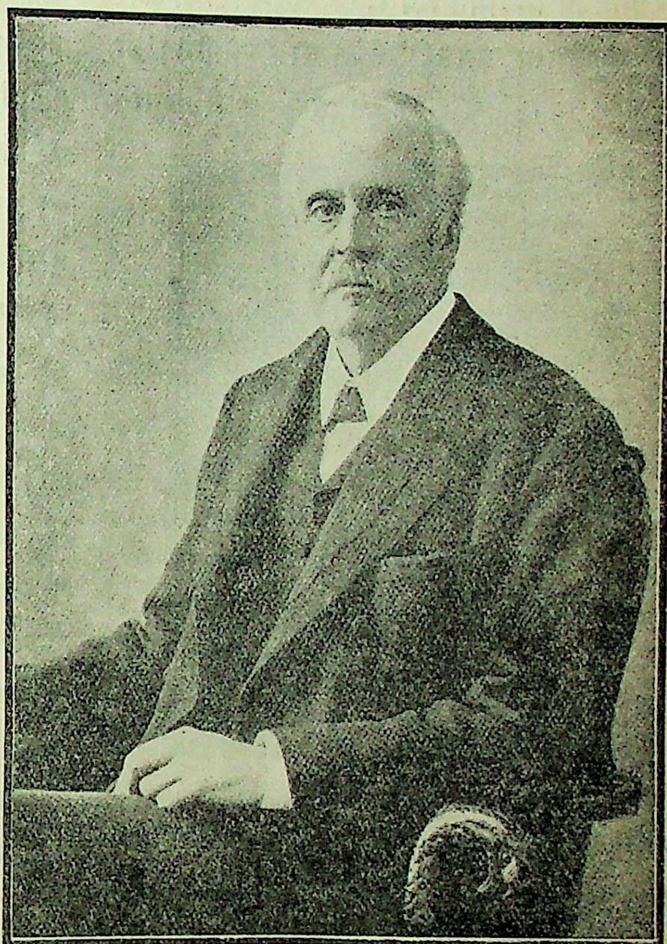
परन्तु स्पर्धा की अग्नि भी कितनी प्रचण्ड होती है! सर वालटर रेले ने लिखा है, जिसका समुद्र पर राज्य है उसका व्यापार पर आधिपत्य है। व्यापार-सम्राट् के आगे संसार नत-मस्तक होता है। यदि कोई राष्ट्र संसार में अपनी सत्ता स्थापित करने की इच्छा रखता है तो वह स्वभावत: अपनी नौ-सेना की वृद्धि करेगा—अन्य राष्ट्र भी इसी इच्छा के वशीभूत होकर अथवा अपने प्रतिद्वन्द्वी की बल-वृद्धि से भयभीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर स्वदेश-रक्षाहित से उसी पथ के पथिक बन जायँगे। ऐसे समय में राज-नीतिज्ञों की आशङ्काएँ इस स्पर्धा-पावक के लिए घृत की आहुति हो जाती है। इसकी भयंकरता को छिपाने के लिए कूटनीतिज्ञ वाग्जाल की सहायता लेते हैं। इस साहित्यिक राज-नीति में वे अपनी सारी विद्वत्ता व्यय कर देते हैं। फिर भी प्रत्येक शब्द की आड़ में अग्नि जलती हुई ही दिखाई देती है।

हाउस आव् कामन्स की सभा में एसक्विथ ने (१७ मार्च १९२१) को कहा था कि अन्तर्जातीय-नीति की रक्षा के लिए ब्रिटिश जल-सेना का सर्वोत्कृष्ट होना परम आवश्यक है—कूटनीतिज्ञों के वाक्चातुर्य का यह ज्वलन्त उदाहरण है। ठीक इसी प्रकार की तान उस समय अमेरिका में भी सुनाई पड़ती थी। शान्ति के अनन्यभक्त अमेरिका के प्रेसीडेन्ट मि० हार्डिङ्ग ने कहा था कि हम भूमि के भूखे नहीं हैं, परन्तु हम अपना स्वत्व अवश्य चाहते हैं। शायद इन शब्दों का सङ्केत प्रशान्त-सागर (Pacific Ocean) पर अमेरिका के प्रभुत्व की ओर था। राष्ट्रसंघ में (League of nations) सम्मिलित न होने पर अमेरिका अपनी रक्षा के मिस अपनी जल-सेना बढ़ाने लगा। उसकी जलशक्ति प्रतिदिन बढ़ती ही गई। क्योंकि वह इँग्लेंड-जापान-सन्धि का विरोधी था। इधर जापान को भी चीन की रक्षा के लिए चिन्ता थी। प्रशान्त-सागर में कहीं अमेरिका की सत्ता न हो जाय, यह विचार भी जापान को व्याकुल कर देता था। केलीफ़ोरनिया (California) का द्वार जापानियों के लिए बन्द कर देने के कारण वह अमेरिका से रुष्ट था ही। इन सब भावों को जापान के नौ-सेना-सचिव ऐडमिरल केटो ने एक ही वाक्य की



आर्थर जेम्स बालफोर (ब्रिटिश प्रतिनिधि-मण्डल के नेता)।

आड़ में किस कृत्रिम सरलता से छिपाया है। टोकियो के अमेरिकन ऐसोसियेटेड् प्रेस के प्रतिनिधि को उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा था, सुदूर-पूर्व में राजनैतिक बखेड़ों के कारण स्वदेश-रक्षा-हित नौ-सेना-बल की वृद्धि करना हमारे लिए आवश्यक हो गया है।

पर्याप्त जलयानों के होते हुए भी इँग्लेंड ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९२१ में चार जलयान और बनाने की स्वीकृति दे दी थी। पोस्ट-जटलेंड-जलयान (Post-Jutland Battle hisp) यों ही गौरवान्वित नौ-सेना (Ground Navy) की श्री-वृद्धि कर रहा था। फिर प्रतिवर्ष नियमित रूप से इस जल-शक्ति के ऊपर इँग्लेंड का अमित धन ख़र्च होता था। अमेरिका भी शीघ्रता से सामुद्रिक शक्ति की वृद्धि करने लगा।



श्री श्रीनिवास शास्त्री (भारत के प्रतिनिधि)।

प्रेसीडेंट टाफ्ट के समय से अमेरिका की नौ-सेना अधिक सङ्गठित हो गई थी। विल्सन के शासन-काल में युद्ध-सचिव मि० डेनियल्स ने इस बल-वृद्धि के लिए प्राण-पण चेष्टा की। सन् १९१६ के कार्य्य-क्रम का ध्यान करके मि० डेनियल्स अमेरिका के वैभवशाली भविष्य का सुख-स्वप्न देखते थे। सचमुच सन् १९२५ में अमेरिका की जल-सेना ब्रिटिश नौ-सेना के टक्कर की हो जाती। संसार का यह रँग-ढँग देख जापान भी सचेत हो गया। उसने भी अपना कार्य्यक्रम निश्चित किया और सन् १९१८ में जापानी डायट ने उसको स्वीकृत कर लिया। यदि यह कार्य्य-क्रम जारी रहता तो सन् १९२७ में जापान की क्षमता ख़ूब बढ़ जाती।

इस शक्ति-वृद्धि को देख कर सब शङ्कितचित्त हो गये। स्पर्धा की भी कोई सीमा होती है! संसार का कल्याण भी कोई वस्तु है। इधर आर्थिक कठिनाइयाँ भी होने लगीं। प्रेसीडेन्ट हार्डिङ्ग ने वाशिङ्गटन कान्फ्रेंस की बात चलाई। संसार के प्रत्येक राष्ट्र को जगत्व्यापी शान्ति-स्थापना के निमित्त वाशिङ्गटन में शस्त्र-त्याग करने की भीष्म-प्रतिज्ञा करनी होगी। इस उच्च उद्देश्य के आगे सबका सिर झुक गया।

आरम्भ में जापान ने अवश्य कुछ आनाकानी की थी, शांटांग में अपनी अधिकार-रक्षा के लिए अमेरिका से वचन माँगा था। परन्तु अमेरिका के टालमटूल कर देने पर भी जनता के विचार-भार के कारण उसका सिर झुक गया। ब्रिटेन तो सदा से अपने को विश्व-प्रेमी कहता आया है। अत: उसे इस विचार का स्वागत करना पड़ा। एक बात अवश्य उसके लाभ की होगी। जिन नटखट जलमग्न-नौकाओं ने युद्ध-काल में उसके नाकों दम कर दिया उनका वह सर्वनाश कर सकेगा, सर्वनाश नहीं तो उनकी संख्या तो अवश्य परिमित करा देगा। फ्रांस और इटली की नौ-सेना-शक्ति सबसे कम है। अन्य राष्ट्रों की नौ-सेना के शस्त्र-त्याग से उसे मुफ्त लाभ होगा। यही सोच कर फ्रांस और इटली ने भी साधु, साधु, कह कर इस विचार का अभिवादन किया है। निर्बल राष्ट्रों ने राष्ट्र-सङ्घ की पहली ही बैठक में शान्ति के पृष्ठपोषक राष्ट्रों से शस्त्र-त्याग के लिए हठ किया था। कदाचित् यह भी इस 'नवयुग' के निर्माण का एक कारण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए कहिए अथवा 'नवयुग' के निर्माण के लिए कहिए, प्रत्येक राष्ट्र ने प्रतिनिधि-स्वरूप राज-नीति-धुरन्धरों को ही इस कान्फ्रेंस में भेजा है।

मि० बालफोर इँग्लेंड से आये हैं। साथ में उनके अन्य प्रतिनिधि सहायक भी हैं। उनमें से नौ-सेना-सचिव सैनिक लार्डली मुख्य हैं। हमारे देश के श्रीनिवास शास्त्रीजी भी एक प्रतिनिधि हैं। फ्रांस-प्रतिनिध-समाज का नेता ब्रायंड हैं। इनके सहायकों में विवयानी फ्रांस के भूत-पूर्व-मन्त्री हैं। अमेरिका के प्रधान-सचिव मि० ह्यूजेज़ के नेतृत्व में अमेरिकन प्रतिनिधि-दल रङ्ग-भूमि पर आया है। सेनेटर एली-हू रूट (Senator ElihuRoot), सेनेटर लाज (Senator Lodge), सेनेटर हिचकाक (Senator Hitchcock) इस दल के सदस्य हैं। इसके सहायतार्थ २१ अमेरिकन सदस्यों की एक और मण्डली है जिसमें स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं। ऐडमिरल वैरन कैटो जापान के प्रधान प्रतिनिधि होकर आये हैं। 'स्वाभिमान-रक्षा' के लिए इटली को भी आमन्त्रित किया गया है। प्रत्येक राष्ट्र-प्रतिनिधि-दल अपनी सम्मति द्वारा सहायता देने के लिए अपने अपने साथ अनुभवी जल-सेनाध्यक्षों को लाया है।

ऐसी महती सभाओं के सभापति का आसन उसी देश के किसी योग्य व्यक्ति को मिलता है जिसमें वह सभा हो रही हो। इस परम्परा के नियमानुसार वाशिङ्गटन-सम्मेलन के सभापति मि० ह्यूजेज़ निर्वाचित हुए हैं। राष्ट्र-सङ्घ की भाँति यहाँ प्रत्येक राष्ट्र के वोट की संख्या उसके प्रतिनिधि की संख्या पर निर्भर नहीं है। एक राष्ट्र एक ही वोट का स्वामी है। यह निस्सन्देह न्याय-सङ्गत निर्णय है।

सुदूर-पूर्वीय-सम्मेलन (Fr-Eastern Conference) वाशिङ्गटन कान्फ्रेंस का एक अङ्ग बना दिया गया है। अतएव उसकी भी चर्चा यहाँ की जाती है।

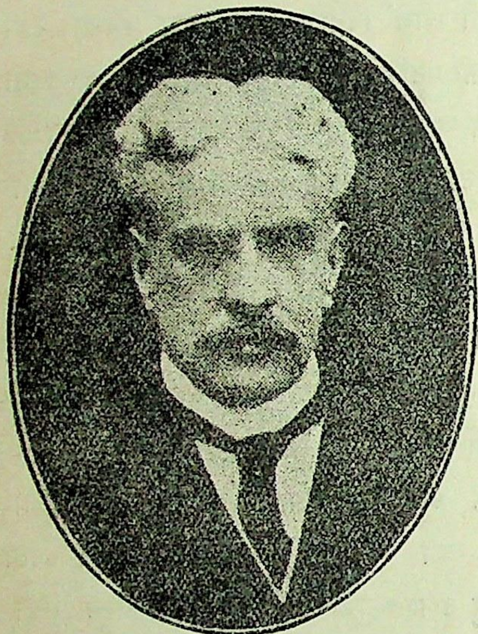
चीन अतीतकाल से बलवान् राष्ट्रों की व्यापार-क्षुधा शान्त करने की सामग्री बन रहा है। उसकी खानें विदेशियों को लाभ पहुँचा रही हैं। रेल की पटरियों का विस्तार इस देश में इतना कम है कि चीनियों को अन्य देशों की अपेक्षा व्यापार में घाटा ही रहता है। अन्य जातियों को चीन में व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त हैं परन्तु जापान का अधिकार सबसे अधिक है। उसकी यह स्थिति अन्य राष्ट्रों को खटकती है। यही कारण है कि खुले-कपाट-नीति की बात सभी को प्यारी लगती है। इस नीति के अनुसार व्यापार में सबके अधिकार समान हो जायँगे। चीन के हृदय का बोझ भी कुछ हल्का हो जायगा। परन्तु उसकी दुख-कथा का यहीं अन्त नहीं होता है। उसी की भूमि पर विदेशियों ने अपने विशेष राजकीय अधिकारों (Extra-Territorial) की घोषणा कर रक्खी है। इस घोषणा के आगे अन्य राष्ट्र के अपराधी को दण्ड देने का अधिकार चीन के न्यायालय को नहीं है। वाणिज्य-शुल्क-सम्बन्धी प्रश्नों में भी विदेशियों ने अपना ही पलड़ा भारी रक्खा है। इस शुल्क की गति निर्दिष्ट कर दी गई है। अपने देश में एक नियत-द्रव्य-परिमाण से अधिक इस शुल्क के लगाने का अधिकार चीन को नहीं है। ऋण लेने के लिए उसे अन्य देशों की सरकार का ही मुँह ताकना पड़ता है। कन्सोर्टियम की शृङ्खला में जकड़ा हुआ चीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी देश की जनता के पास ऋण-याचना के लिए पहुँच ही नहीं सकता है। घर में उसकी बुरी दशा है। उसके कितने ही बन्दरों पर विदेशी-राष्ट्रों की पताकायें फहराती हैं।

जापान की भी स्थिति विचित्र ही है। अपनी बढ़ती हुई जन-संख्या की उसे बड़ी चिन्ता है। केली-



सर राबर्ट बार्डन (कनेडा के प्रतिनिधि)।

फ़ोर्निया (California), आस्ट्रेलिया आदि श्वेत उपनिवेशों का कपाट बन्द हो जाने से उसकी इस चिन्ता-सरिता में बाढ़ आ गई थी। अन्त में दुर्बल चीन के मंचूरिया की प्रायः जनहीन भूमि का उसे आश्रय मिला। कोरिया से आगे बढ़ कर जापान ने प्राच्य मंचूरिया की प्रधान रेलवे लाईन पर अपना अधिकार जमा लिया।

जापान को कच्चे माल की भी अनिवार्य आवश्यकता है, क्योंकि उसकी औद्योगिक उन्नति इसी पर निर्भर है। और बिना औद्योगिक उन्नति के जापानियों का कल्याण होना असम्भव है। इस औद्योगिक क्रिया-शीलता के लिए उन्हें विस्तृत क्षेत्र चाहिए।

युद्ध-काल में जापान ने अपनी विस्तार-नीति में (Expansion Policy) अपूर्व सफलता पाई थी। परोपकार की ओट में शान्टाङ्ग को वह दबा बैठा था। उस समय तो जर्मनी सभी की आँख का काँटा बन रहा था। अतः उसके हाथ से शान्टाङ्ग जाते देख सभी आनन्द से उन्मत्त हो उठे थे। चीन ने दबे शब्दों में जापान के इस आचरण का प्रतिवाद किया था। जापान ने उस समय तो युद्ध समाप्त होने पर चीन को शान्टाङ्ग लौटा देने का वचन दे दिया था। परन्तु उस वचन को सर्वांश पूरा करना आज जापान कठिन समझता है। राष्ट्र-सङ्घ तक ने अपना निर्णय जापान के पक्ष में दे दिया। यही कारण था कि चीन ने उस सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने से हाथ खींच लिया था। वह अपना हाथ कटाना नहीं चाहता था। इतने पर भी जापान के उपद्रव का वेग कुछ कम न हुआ। न्यायप्रिय अमेरिका को उसने चीन में अपने विशेष स्वत्वों का समर्थक बना लिया था। लैंसिंग इशी-समझौता (Lansing-Ishi Agreement) इसका निरूपण-मात्र था। इसके पूर्व ही जब सारे राष्ट्र अपने भाग्योदय की प्रतीक्षा कर रहे थे उस समय जापान ने चीन को धमकियाँ देकर इक्कीस विकट प्रस्तावों को स्वीकृत करने के लिए विवश कर दिया था।

इसी योरोपीय महाभारत के समय में प्रशान्त-सागर के तार-केन्द्र पर (Cable-centre) जापानियों ने विजय प्राप्त कर लिया था। मुट्ठी भर जर्मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अधिक समय तक इस केन्द्र की रक्षा न कर सके थे। इस मार्के के स्थान को जापान के अधिकार में देख कर अमेरिका के मुँह में पानी भर आया और साथ ही हृदय में ईर्ष्याग्नि धधक उठी। प्रशान्त-सागर पर जापान के प्रभुत्व का यह सूचक था। अतः अमेरिका ने प्रस्ताव किया कि इस स्थान पर अन्तर्जातीय अधिकार रहना चाहिए।

इधर हवाई-द्वीप में उसने दुर्गों की पंक्तियां बढ़ाना आरम्भ कर दीं। स्वभावतः जापान के हृदय में अमेरिका के प्रति सन्देह के भाव उठने लगे। प्रशान्तसागर पर प्रभुत्व यही इस स्पर्धा का मूल है।

इन्हीं प्रश्नों ने सुदूरपूर्वीय-सम्मेलन का आह्वान अनिवार्य कर दिया। इस सम्मेलन में उपर्युक्त राष्ट्रों के अतिरिक्त हालेंड, पोर्तगाल और चीन के प्रतिनिधि भी आमन्त्रित किये गये हैं। चीन ने अपने पर-राष्ट्र-मन्त्री मिस्टर ज़े को प्रधान प्रतिनिधि बना कर भेजा है। डाक्टर वेलिंगटन कू (Dr. Wellington Koo) चीन की इस प्रतिनिधि-समाज के एक मुख्य सदस्य हैं। पूर्व में हालेंड और पोर्तुगाल के अनेक द्वीप हैं। उनकी स्वत्व-रक्षा के लिए इन देशों के प्रतिनिधि भी इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए हैं। पूर्वीय झमेलों की उलझन को सुलझाने का यह सम्मेलन भरसक प्रयत्न करेगा। यदि उसे इसमें सफलता मिली तो जगत् एक भयङ्कर रक्तपात से बच जायगा।

ईश्वर करे, वाशिङ्गटन कान्फ्रेंस सफल हो और १२ नवम्बर सन् १९२१, संसार के इतिहास में, एक शुभ दिन गिना जाय। इसी दिन प्रेसीडेन्ट हार्डिङ्ग के प्रारम्भिक वक्तृत्व के बाद—कान्फ्रेंस का आरम्भ हुआ है। जे० बहादुर

समाज की समस्या।



हिन्दू प्रारम्भ ही से आदर्शवादी है। उसका आदर्शवाद उसके दार्शनिक और राजनैतिक साहित्य से स्पष्टरूप से व्यक्त होता है। दार्शनिक क्षेत्र में उसकी पहुँच 'तत्त्वमसि' जैसे उच्चतम सिद्धान्त तक हो गई थी और राजनैतिक क्षेत्र में पञ्चायत-प्रथा का महत्त्व स्वीकार करके उसने अपनी मनस्विता का परिचय दिया था। उसके इसी रूप पर मुग्ध होकर एक जर्मन पण्डित ने कहा था—हिन्दू-मस्तिष्क कल्पना-शक्ति की चरम सीमा को अतिक्रमण कर गया है। परन्तु वही हिन्दूजाति इस समय पाश्चात्य सभ्यता के माया-जाल में पड़ कर अपने आदर्शवाद से अपना सम्बन्ध विच्छिन्न कर रही है। सङ्कुचित उद्देश्य, व्यवहार और स्वार्थ ही उसके ध्येय हो रहे हैं। साक्षर समाज आराम से रहने के लिए लालायित है। पाश्चात्य-सभ्यता के अन्ध अनुकरण से ही यह स्थिति पहुँची है कि शिक्षित भारतवासी अपने प्रश्नों के हल करने तथा अपने समाज के सुधार से विरक्त हो गये हैं। इँग्लेंड के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् राजनीतिज्ञ लार्ड मार्ले ने सन् १८८६ में समझौता (Compromise) नाम का एक ग्रन्थ लिखा था। इस ग्रन्थ के सिद्धान्त भारत पर भी लागू होते हैं। अतएव उन्हीं के आधार पर यहाँ कुछ लिखा जाता है।

समाज सेन्द्रिय (organic) वस्तु है। विकास और विनाश में ही उसका आदि और अन्त है। दूसरे सेन्द्रिय पदार्थों की भाँति उसमें भी स्थिरता नहीं है। सेन्द्रिय पदार्थ या तो उन्नति करते हैं या पराभव को प्राप्त होते हैं। वे किसी मध्य अवस्था का आश्रय लेकर सजीव नहीं रह सकते। इसी प्रकार समाज भी विकास के अभाव में विनाश की ओर ही अग्रसर होता है। स्थिरता उसकी मृत्यु है। अतएव जो समाज वर्तमान स्थिति को स्थायी करने का प्रयत्न करेगा, उसका वह काम अपने लिए अपनी चिता तैयार करना है। इसी कारण उदार सिद्धान्त वाञ्छनीय और अनुदार सिद्धान्त त्याज्य समझे जाते हैं।

कुछ समाज-सुधारक विकास और विनाश के इस रहस्य का ज्ञान नहीं रखते, कुछ उसका विपरीत अर्थ करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। परिवर्तन के बिना विकास असम्भव है। समाज के विचार और संस्थाओं का परिवर्तन उसका विकास कहलाता है। समाज परिवर्तनशील है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि समाज के विचार और संस्थाओं में मानव-उद्योग के बिना परिवर्तन होता है। उसकी परिवर्तन-शीलता में मानव-प्रयत्न का भी सहयोग रहता है। संसार की उन्नति केवल इसी लिए होती है कि लोग उसे उन्नत करना चाहते हैं और अपने इष्ट-लाभ के लिए वे आवश्यक प्रयत्न करते हैं। विकास-शीलता उन्नति की प्रणाली है, शक्ति नहीं।

संसार के भिन्न भिन्न समाजों के प्रारम्भिक इतिहास पर दृष्टि डालिए, आपको कोई न कोई ऐसा व्यक्ति अवश्य मिलेगा जो उस समाज के विचारों का स्रोत कहा जा सकता है। चीन के कंफ़ूशियस, अरब के मुहम्मद, पैलेस्टाइन के ईसा और भारत के प्राचीन वैदिक ऋषि अपने अपने समाज के आदर्शों की गङ्गोत्तरियाँ हैं। इन्हीं के उच्च मस्तिष्क से विचारों की गङ्गा ने नीचे बह कर मैदानों के शुष्क पौधों को हरा भरा किया है, ये अपने अपने समाजों के आदर्श पुरुष हैं। इन्हें अवतार कहिए, पैग़म्बर कहिए, ईश्वर का पुत्र कहिए, सभी नामों से इनकी महत्ता प्रकट होगी। ज्ञानरूपी प्रकाश के लिए भटकता हुआ संसार इनके विचारों को ईश्वरीय ज्ञान मान कर "धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः" कहता हुआ सहस्रों वर्षों तक इनके निर्दिष्ट किये हुए पथ पर चलता रहता है।

समाज-शास्त्र ने उन्नत होकर यह सिद्ध कर दिया है कि महापुरुषों के विचार उनके मन में अकारण नहीं उत्पन्न होते। भूतकाल और वर्तमान परिस्थिति से उनका गहरा और प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है। किसी विशेष व्यक्ति अथवा व्यक्तियों में ही इन विचारों के आविर्भाव का कारण यह है कि उनकी विशेष परिस्थिति अथवा विशेष मानसिक शक्तियाँ उन्हें इनके मार्ग पर खड़ा कर देती हैं। ऐतिहासिक अनुभव से सिद्ध हो गया है कि पुरानी रूढ़ियाँ जिन्हें अधिक कष्ट-प्रद प्रतीत होती हैं, उन्हीं को मुक्त करने के लिए उनके मन में उन्नत विचारों का उदय होता है। फ्रांस में ही सर्व-प्रथम लोकतन्त्र-शासन का बीजारोपण होने का कारण यह है कि वहाँ का राज-तन्त्र प्रजा के लिए असह्य हो गया था। वर्तमान काल में साम्यवाद का जन्म रूस में ही हुआ है, क्योंकि वहाँ कुलीन और अकुलीन, पूँजीपति तथा दरिद्र में आकाश-पाताल का भेद था। इसके सिवा कुछ व्यक्ति भी स्वभावतः ऐसे होते हैं जो रात-दिन नये विचारों की खोज में व्यस्त रहते हैं। उनका मस्तिष्क मौलिकता का भाण्डार होता है। नूतन विचार ही उनके आनन्द की सामग्री और उनके जीवन का ध्येय रहते हैं। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को आकर्षित कर लेता है, उसी प्रकार विकास-शीलता के नियमानुसार ज्योंही वर्तमान परिस्थिति से नव विचारों के उदय का समय आता है, त्योंही ऐसे मौलिक मस्तिष्क उन्हें अपनी ओर खींच लेते हैं।

अस्तु, किसी विशेष परिस्थिति अथवा विशेष बुद्धि के कारण विशेष व्यक्ति में नूतन विचारों का जन्म होता है। ऐसे पुरुष पर समाज की उन्नति निर्भर रहती है। धर्मशास्त्र के शब्दों में कहा जा सकता है कि वह व्यक्ति पैग़म्बर है। उसके द्वारा ईश्वर ने समाज को सन्देशा भेजा है। यदि वह मौन रहा, तो समाज-सुधार तथा विकास रुक जाता है। सड़े-गले सिद्धान्त और विषैली संस्थायें समाज में स्थायी होकर उसे उसी प्रकार नष्ट करती हैं, जिस प्रकार शरीर में अपरिपक्व भोजन रह कर उसे हानि पहुँचाता है।

विचार करना, निश्चित विचारों का प्रकट करना और समय आने पर उन्हें कार्य्यरूप में परिणत करना, ये आदर्शवाद के तीन अङ्ग हैं और इन्हीं पर समाज का उत्कर्ष अवलम्बित है। विचार ही मानव-विकास का कारण है। आज तक समाज की जितनी उन्नति हुई है वह सब विचारों के कारण हुई है। विचार-पारावार अथाह है। इन्द्रियाँ इसके परे नहीं जा सकतीं। एक योरोपीय दार्शनिक ने तो यहाँ तक कह डाला है—The world is an idea विचारों में संसार की उन्नति के लिए अनन्त शक्ति का अनुभव कर सभी प्रख्यात विद्वानों ने उनका महत्त्व स्वीकार किया है। अतीत-काल में प्रत्येक मनुष्य का यह निश्चित धर्म्म था कि वह सत्य विचारों का अनुसन्धान करे। जो मनुष्य सत्य-ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न नहीं करता था, वह पापी समझा जाता था। इसी कारण भूतकाल में सर्वत्र एक से एक महान् विद्वान् उत्पन्न हुए। इनकी ज्ञान-पिपासा और उसके बुझाने के प्रयत्न आदर्शवाद के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अङ्कित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर बीसवीं शताब्दी की कथा दूसरी ही है। उसने अपनी प्रत्येक सन्तान का यह धर्म्म बता दिया है कि वह आमोद-प्रमोद की सामग्री एकत्र करने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझे। ईसा ने शैतान के प्रलोभनों के उत्तर में धैर्य्य से कहा था—Man lives not by bread alone परन्तु ईसा का अनुयायी योरप आज संसार को क्या सन्देश दे रहा है ?—Man lives by bread alone रोटी का प्रश्न योरप का एक-मात्र प्रश्न है, इसका अर्थ यह नहीं कि वहाँ रोटी का अभाव है। योरप इतना धनी है कि यदि वह चाहे, तो सारे संसार का पोषण करे। परन्तु वहाँ रोटी का अर्थ विलासिता है। मुट्ठी भर व्यक्ति करोड़ों की आँखों में धूल डाल कर अनन्त वसुधा के अधिकारी किस प्रकार हो जायँ, और उसकी रक्षा किस प्रकार करें, यही दो बातें योरप की राजनीति और अर्थ-शास्त्र के सर्वस्व हैं। परमार्थ की चिन्ता नहीं, दूर-दर्शिता-पूर्ण स्वार्थ की ओर दृष्टि नहीं है केवल "आज का स्वार्थ" यही एक आदर्श योरप के प्रत्येक युवा के लिए इस समय रह गया है।

जो विलासी नहीं हैं वे शान्ति-प्रियता के भक्त हैं। जिस प्रकार अधिकांश नागरिकों के अप्रिय अतिथि को नगर के किसी गृह में स्थान नहीं मिलता, उसी प्रकार लोक-मत के विरुद्ध विचारों के सोचने तक से ये लोग भय-भीत होते हैं। बड़े बड़े राजनीतिज्ञ महत्त्वपूर्ण सामाजिक तथा दार्शनिक प्रश्नों के अस्तित्व से अभिज्ञ रहते हैं, परन्तु वे सोचते हैं कि यदि उन्होंने इनको पूर्णतया हल करने का प्रयत्न किया, तो सम्भव है कि वे किसी ऐसे परिणाम पर पहुँच जायँ जिसका स्वागत जनता अभी शताब्दियों तक नहीं करेगी। यदि जनता को उनके विचारों का पता लग गया तो वे उसकी आँखों में गिर जायँगे। जीवन अल्पकालिक है, लोक-मत कर्तव्य की शिक्षा देने-वालों के प्रतिकूल है, सत्य के नाम पर मर मिटनेवाले इस समय मूर्ख कहलाते हैं, अतएव उचित तो यही है कि जनता के अनुकूल रह कर अपने सामाजिक सुख और शान्ति की रक्षा की जाय, मन में विचार रहेंगे तो सम्भव है प्रमादवश शब्दों का रूप ग्रहण करलें, अतएव लोक-मत के प्रतिकूल विचारों को मन में स्थान तक न देना चाहिए।

उपर्युक्त विचार-प्रणाली से समाज और व्यक्ति की असीम हानि होती है। ईश्वर ने मनुष्य के लिए ज्ञान का अपरिमित क्षेत्र दे रक्खा है। जो व्यक्ति अथवा समाज विलासिता अथवा लोक-मत के भय से अपने को इस क्षेत्र के एक क्षुद्र भाग में क़ैद कर रखता है, वह अपनी उन्नति का द्वार बन्द कर अवनति की ओर पग बढ़ाता है। ईश्वर, समाज, आत्म-विवेक तथा मानसिक आत्म-गौरव के प्रति जो उसका उत्तरदायित्व है वह प्रतिक्षण क्षीण होता जाता है। अन्त में उसका पतन हो जाता है।

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो नूतन विचारों का स्वागत तो करते हैं, परन्तु उन्हें प्रकट नहीं करते। उनका विचार है कि यदि अशिक्षित और अन्ध-विश्वासी लोग सच्ची बातों से अभिज्ञ हो जायँगे तो समाज में हलचल मच जायगी। उदाहरणार्थ, प्रत्येक विचार-शील समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो ईश्वर की सत्ता और धर्म-नीति की सत्यता पर सन्देह करते हैं; परन्तु वे अपना सन्देह जनता पर कभी न प्रकट करेंगे। उनका विचार है कि ज्ञानियों ने धनी और बली लोगों को मर्य्यादा में रखने के लिए इनकी कल्पना की है। यदि ईश्वर और धर्म्म पर से इनका पूज्य भाव उठ गया तो क्रान्ति होने में देर न लगेगी। प्रसिद्ध अँगरेज़ दार्शनिक ह्यूम (Hume) इससे भी आगे बढ़ गया है। वह कहता है कि यदि कोई युवा ईसाई धर्म पर अविश्वास करता हो, परन्तु धर्म्म-प्रचारक बन कर वह जीविका प्राप्त कर सकता हो, तो वह पादरी बन कर ईसाई धर्म्म का प्रचार निःसङ्कोच होकर कर सकता है, क्योंकि अज्ञानियों के साथ निष्कपट होने की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार के कपटाचारियों का जीवन प्रारम्भ में सुख-पूर्ण हो सकता है, परन्तु ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता जायगा त्यों त्यों उनका पाप अपने भयानक परिणामों को प्रकट करने लगेगा। ऐसे लोगों की मानसिक शक्तियाँ स्वार्थ और सत्यताविषयक तुच्छ भावनाओं के वायु-मण्डल में रह कर अपने सुन्दर रूप और जीवनी शक्ति को खो बैठती हैं। कौन नहीं जानता कि उच्च कोटि की मानसिक प्रतिभा से युक्त व्यक्ति नीच नीति द्वारा साध्य स्वार्थ की बेड़ी पर अनन्त आशाओं से अपने पूर्ण जीवन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलि दे देते हैं ; और साधारण शक्तियों से सम्पन्न व्यक्ति अपनी सत्य-प्रियता और चारु चरित्र के बल पर विश्व का उपकार कर अक्षय कीर्ति के भागी होते हैं। यदि दार्शनिक ह्यूम अपने प्रारम्भिक जीवन में भी इन्हीं विचारों का अनुमोदक होता, जिन्हें उसने अन्त में प्रकट किया, तो आज योरप एक उच्च कोटि के तत्त्ववेत्ता से वञ्चित रहता।

सामाजिक उत्कर्ष के उत्तम साधनों से परिचित सभी व्यक्ति इस प्रकार के कपटाचार के आखेट नहीं होते। इन लोगों के मौन धारण किये रहने का दूसरा कारण होता है। ये सोचते हैं कि सबसे पहले मैं ही क्यों प्रचलित सामाजिक सिद्धान्तों का विरोध करूँ? यदि इस बात की परीक्षा की जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि इसकी तह में आत्म-विश्वास के अभाव के साथ साथ शान्ति-प्रियता छिपी है। यह निश्चित ही है कि प्रचलित जीर्ण-शीर्ण सिद्धान्तों के विरोध के लिए किसी न किसी को सबसे पहले आगे आना ही पड़ेगा। यह सम्भव है कि दूसरों के तैयार होने तक ठहरना आवश्यक हो, परन्तु यदि सर्वप्रथम आगे बढ़ने का भार कोई एक न लेगा, तो यह भी नहीं जाना जा सकता कि दूसरे तैयार हैं अथवा नहीं। यदि समाज-सुधारक दीर्घसूत्रता में पड़े रहें तो समय की गति के साथ हानिकारक सामाजिक बन्धन उत्तरोत्तर दृढ़ होते जायँगे और इस प्रकार सुधार का कार्य कठिन हो जायगा। यदि कोई कार्य-क्षेत्र में न आया तो समाज का विकास रुक जायगा। दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर यदि कोई व्यक्ति सामाजिक सुधार का काम करने के लिए आगे बढ़ा तो जो परिवर्तन पहले सरलता से हो जाता उसके लिए उसे भीषण क्रान्ति करने की आवश्यकता पड़ेगी।

कुछ समाज-सुधारक नेतृत्व ग्रहण करने से भयभीत नहीं होते, परन्तु वे यह सोच कर ठहर जाते हैं कि अभी सुधार का समय नहीं आया है। उन्हें यह स्पष्टतया जान लेना चाहिए कि सुधार का प्रारम्भ करने के लिए ठहरना आवश्यक हो सकता है, परन्तु सुधार-सम्बन्धी विचारों को प्रकट करने के लिए सब काल उपयुक्त रहता है। यदि यह सत्य है कि नये विचार वर्तमान परिस्थिति से उत्पन्न होते हैं तो यह भी सत्य है कि उनके स्वागत करने के लिए अनेक आत्मायें तैयार रहती हैं। समाज-सुधारक और जनता एक ही युग की सन्तति होती हैं, अतएव उनके मस्तिष्क और हृदय में कुछ न कुछ साम्य अवश्य रहता है। यदि सुधारक के मन में कोई नया विचार उठा तो वह साधारण लोगों के समक्ष उपस्थित होगा। यदि सुधारक ने नये प्रकाश का दर्शन कर लिया है तो कुछ ऐसी आत्मायें अवश्य होंगी जो निकट ही इस ज्योति के दर्शन के लिए भटक रही होंगी। जिसे सुधारक ने पा लिया उसी को प्राप्त करना उनका भी ध्येय है। अतएव चाहे उनका मस्तिष्क उसके पाने के अयोग्य भी हो उनका उत्सुक हृदय उसका स्वागत अवश्य करेगा। मैं परिवर्तन के लिए तैयार हूँ, यह परिवर्तन समाज के लिए लाभदायक है, यदि मैं आगे न बढ़ूँगा, तो दूसरे ही क्यों बढ़ेंगे—इन बातों को सोच कर समाज-सुधारक को चाहिए कि वह अपना ईश्वरीय सन्देश जनता को सुनावे। जो सुधारक समझौते का अनन्यभक्त बन कर, विलासिता और कायरता का शिकार होकर, उपर्युक्त बातों की ओर नेत्र बन्द कर, ऐसा आचरण करता है, मानों वह ईश्वरीय आदेश से अनन्य हैं, वह सत्य-धर्म्म के शत्रुओं से भी अधिक नीच और निष्ठुर है। सचाई के शत्रु, जिन सत्य-सिद्धान्तों से घृणा करते हैं, उन्हें उनकी प्रौढ़ावस्था में कुचलते हैं; परन्तु समझौते के उपासक अपनी प्यारी सत्यता के बीजों का हनन उसके गर्भ में ही करते हैं। एक केवल हत्यारा है, दूसरा भ्रूण-हत्या के गुरुतर पाप का भागी होता है।

सत्य सिद्धान्तों को कार्य्य में परिणत करने के लिए समय की परख तथा दीर्घ दृष्टि की अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसे अवसर पर समझौते का उचित उपयोग होता है। सिद्धान्त के रूप में तो सभी धर्म यह घोषित करते हैं कि आकाश-पाताल एक क्यों न हो जायँ, मानव-समाज को सत्य का आलिङ्गन किये रहना चाहिए, परन्तु वास्तविक कर्मक्षेत्र में कर्मयोगियों को भी हवा का रुख़ देखना पड़ता है। स्वार्थवश नहीं, कायरता से भी नहीं, सत्य की अबाधित विजय के ही निमित्त समीपवर्ती शक्तियों और प्रवृत्तियों की अनुकूलता एवं प्रतिकूलता की ओर ध्यान देना पड़ता है। धर्मान्ध व्यक्ति इसी लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुरा है कि वह अपने अमर्यादित उत्साह के कारण समय का ध्यान न रख कुछ का कुछ कर बैठता है और इस प्रकार अपने इष्ट को लाभ के स्थान पर हानि पहुँचाता है। अतएव सुधारकों को इस बात पर सदैव दृष्टि रखनी चाहिए कि जिस समाज का वे सुधार चाहते हैं वह प्राचीन है और अपनी विशेष व्यवस्था रखता है, यद्यपि अब वह अनावश्यक हो गई है। जो व्यक्ति नवीन विचारों का विरोध करते हैं उनके भी विचार, आचार-व्यवहार और संस्थायें सहस्रों वर्षों के विकास और उत्कर्ष के परिणाम हैं और उनके अस्तित्व के साथ वे आबद्ध हैं। इन्हें एक ही दिन में उखाड़ फेंकना और नवीनता को ग्रहण कर लेना इच्छा रहते हुए भी उनके लिए असम्भव है। ध्यान में रखने योग्य दूसरी बात यह है कि मानव-जीवन केवल विचारों और भावनाओं से ही नहीं बना है। उसका अधिक भाग लोक-यात्रा का आयोजन करने में ही व्यतीत हो जाता है; क्योंकि यह अनिवार्य्य है। सत्य का मार्ग फूलों की शय्या नहीं है। कहीं तूफ़ानी नदी है तो कहीं अलङ्घ्य पर्वत-मालायें। सत्य का झण्डा लेकर ऐसे पथ पर चलते चलते यदि अनुयायी थक जायँ और विश्राम करने लगें तो नायक को खिन्न, रुष्ट और निराश न होना चाहिए। अनुयायियों से दस पग आगे रहना, उनके थक कर बैठ जाने पर स्वयं ठहर जाना, चलने को प्रस्तुत देख कर फिर दस पग आगे बढ़ कर चलने लगना, यही नेतृत्व का रहस्य है।

जिस दिन नेता सुधार के मार्ग पर पैर रक्खे उसी दिन उसे प्राणों का मोह छोड़ देना चाहिए, क्योंकि सहयोगियों का विश्वास-घात और विरोधियों की नङ्गी तलवार सदा उसके मस्तक पर नृत्य किया करती है। कभी कभी ऐसा समय आजाता है जब अनुयायी साहस छोड़ कर सदा के लिए विश्राम करने पर तुल जाते हैं। नेता के सहमत न होने पर ये उसके प्राणों के गाहक हो जाते हैं। प्रसिद्ध नाविक कोलम्बस पर ऐसी ही विपत्ति आई थी, परन्तु ईश्वर ने उसकी सहायता की और दूसरे ही दिन अमरीका महाद्वीप का दर्शन पाकर उसके नाविक बन्धुओं का असन्तोष मिट गया। महात्मा बुद्ध को भी उनके शिष्य छोड़ कर चले गये थे, जुडा इस्करियट ने ईसा को धातु के कुछ टुकड़ों के लिए शत्रुओं के हाथों बेच तक डाला था। इसी प्रकार यदि विरोधी प्रबल हो उठें तो सुधारक को उनकी क्रूरता का शिकार होना पड़ता है। ऐसे अवसर पर सच्चे और दृढ़-प्रतिज्ञ नेता कसौटी पर कसे जाते हैं। यह कह कर बच निकलना कि यदि मेरा अन्त हुआ तो सचाई का भी अन्त हो जायगा—अतएव सत्य के लाभार्थ ही मुझे अपनी प्राण-रक्षा करनी चाहिए—केवल प्रलाप है। सत्य और न्याय, मान की वस्तुयें नहीं हैं। उनकी सृष्टि विश्व के साथ ही साथ की गई है। मनुष्य इनके संस्थापन अथवा निर्मूलन में निमित्त-मात्र है। संसार के सभी महान् नेताओं ने इस सिद्धान्त की सत्यता पर विश्वासकर काम किया है। अनुयायियों के विश्वासघात के भय से उन्होंने पलायन नहीं किया। आततायियों के समक्ष पश्चात्ताप करके उन्होंने अपना सिर नहीं झुकाया। मेरे जीवन की अपेक्षा मेरी मृत्यु से ही सत्य का अधिक कल्याण होगा, यह कहते हुए महात्मा ईसा शूली पर चढ़ गये और दार्शनिक सुकरात ने विष का प्याला अमृत समझ कर मधुर मुसकुराहट के साथ पी लिया। सुकरात के साथ उनके सिद्धान्तों का अन्त नहीं हुआ। ईसा के साथ उनका धर्म शूली पर नहीं चढ़ गया। जुडा इस्कारियट ने फाँसी लगा कर प्रायश्चित्त किया और ईसा के शिष्यों ने उनके बलिदान की शुभ प्रेरणा से उत्तेजित हो सारे पाश्चात्य देश को ईसाई-धर्म का अनुयायी बना दिया।

विगत योरपीय महासङ्ग्राम ने और वर्तमान विश्वव्यापी अशान्ति ने पाश्चात्य भौतिक सभ्यता का नग्नरूप प्रकट कर दिया है। प्रस्तुत परिस्थिति ने जगत् को किसी नये सन्देश के सुनने के लिए तैयार कर दिया है। अतएव आवश्यकता है सच्चे कर्मवीरों की, जो मानव-समाज का जीर्णोद्धार कर उसे उस उच्चासन पर पहुँचा दें, संतप्त संसार को एक बार फिर से समता, स्वतन्त्रता और विश्व-बन्धुत्व का सन्देश देकर सुखी कर सकें।

द्वारकाप्रसाद मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक की आत्म-कहानी।

[१]



हम अपने असली नाम को छिपा कर इस आत्म-कहानी के उपलक्ष में एक नक़ली नाम का व्यवहार करने की इच्छा करते हैं—मान लीजिए कि हमारा नाम गङ्गाधर तिवारी है। हम एक मासिक पत्र के मालिक और सम्पादक हैं—हम अपने पत्र का नाम भी गुप्त रख कर उसके स्थान पर लिखेंगे "आद्याशक्ति"। हमने जो यह कपट किया है, इसके लिए हम उभय-कर बद्ध कर पाठकों से क्षमा-याचना करते हैं। क्योंकि आज हम जो आत्म-कथा लिखने बैठे हैं उसमें हमारी बुद्धिमानी, शूरता, वीरता आदि गुणावली का रत्ती भर भी परिचय नहीं है—बल्कि इसके विपरीत ही है। हमारा असली नाम सुनते ही प्रायः अनेक लोग पहचान लेंगे; क्योंकि हिन्दी-साहित्य में हमारा आदर कुछ ऐसा वैसा नहीं है। हमारा पत्र भी यथेष्ट नाम कमा चुका है।

किन्तु वर्तमान हिन्दी-साहित्य का दुर्भाग्य यह है कि नाम जितना होता है उसके उपयुक्त रुपया-पैसा हाथ नहीं लगता। दिवाली सिर पर है—छापेख़ानेवालों का रुपया देना होगा, काग़ज़वाले का भी हिसाब करना है, हमारे पत्र के लिए जिस दूकान में चित्रों के ब्लाक बनते हैं उस दूकान का मैनेजर तक़ाज़े पर तक़ाज़े करके धैर्यच्युत कर रहा है। इधर रोकड़ कुछ नहीं। इसी से, बहुत सोच-विचार करके लम्बे-चौड़े रङ्गीन काग़ज़ पर ख़ूब भड़कीला नोटिस छपवा कर इलाहाबाद भर में बटवा दिया। दूसरे शहरों में और बड़े बड़े क़सबों में भी उसके प्रचार की व्यवस्था कर दी। उस विज्ञापन में लिखा कि इस साल 'आद्याशक्ति' और और वर्षों की अपेक्षा कई हज़ार (ठीक स्मरण नहीं, कितने हज़ार लिखा था) अधिक छपाने पर भी समस्त ग्राहकों की माँग पूरी नहीं की जा सकती। चम्बल की भयङ्कर बाढ़ की तरह जिस भाँति ग्राहक-संख्या बढ़ रही है—उसको देखते हुए भरोसा नहीं कि और अधिक दिनों तक नवीन ग्राहकों को पत्र के सभी अङ्क दिये जा सकें। अतएव, जो लोग 'आद्याशक्ति' के नूतन ग्राहक होना चाहें वे बिना विलम्ब किये पत्र लिखें, इत्यादि इत्यादि।

किन्तु वास्तव में बात ऐसी न थी। नूतन ग्राहक प्रायः हो नहीं रहे थे, और 'आद्याशक्ति' के बिना बिके अङ्कों का ढेर घर में स्थान-सङ्कीर्णता की वृद्धि कर रहा था। परन्तु इस प्रकार के मिथ्या भाषण में पाप नहीं है। मनु ने कहा है—ब्राह्मण की प्राण-रक्षा के लिए मिथ्या बोला जा सकता है। इस प्रकार आडम्बर के साथ विज्ञापन न दें तो हमारा पत्र न चलेगा, पत्र न चलेगा तो हमारी प्राण-रक्षा न होगी; क्योंकि यह पत्र ही हमारी एक-मात्र जीविका है; और यह बात झूठ नहीं कि हम एक कुलीन ब्राह्मण हैं।

सप्ताह के भीतर ही हमें विज्ञापन-वितरण करने का फल मिलने लगा। कई नये आर्डर (पत्र भेजने की आज्ञा) आये; रुपये से भेट होने लगी। बाज़ार का देना बहुत कुछ चुक गया। बाक़ी रुपया इसलिए बचा रक्खा कि दिवाली के अवसर पर कहीं सैर करने जायँगे।

जिस समय की बात कह रहे हैं उस समय स्वदेशी-आन्दोलन ज़ोर शोर से हो रहा था। इससे हिन्दी-साहित्य के मृत कलेवर में भी भाव का ज्वार-भाटा आगया—'आद्याशक्ति' के प्रत्येक नम्बर में हम भी अनेक लेख, तुकबन्दियाँ, गीत आदि छापने लगे। मुन्शी रामप्रसाद के बाग़ में और वेणी के किनारे पर प्रतिदिन तुमुल वक्तृताएँ होती थीं—कई एक सभाओं में हमने भी वक्तृता दी थी। अन्त में बाबू अश्विनीकुमार दत्त, विपिनचन्द्र पाल आदि जन-नायक देशान्तरित हुए; और गरम अफ़वाह उड़ी कि शिमला शैल पर एक नूतन सूची तैयार हो रही है—और भी कुछ विख्यात लोगों को डिपोर्ट किया जायगा।

'आद्याशक्ति' का दिवाली का नम्बर प्रकाशित हो गया। अगहन के अङ्क की कॉपी छापेख़ाने में देकर देश-भ्रमण करने जायँगे—प्रातःकाल आफ़िस में बैठ कर हम लेख-निर्वाचन कर रहे थे। बाबू देवीसिंह का एक धारावाहिक उपन्यास 'आद्याशक्ति' के प्रत्येक नम्बर में निकल रहा था। अगहन के अङ्क के लिए उपन्यास का अंश भेज देने के लिए हम तार लिख रहे थे, इसी समय एक अपरिचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवा, ढीली कमीज़ के ऊपर रेशमी चादर ओढ़े, हाथ में छतरी लिये हमारे दफ़्तर में पहुँचा। उसने कहा—क्या श्रीमान् ही पण्डित गङ्गाधरजी हैं ?

"क्या आज्ञा है"—हमने सोचा, कोई नवीन ग्राहक बनने आया है। चार रुपये मिलेंगे।

युवा हमको प्रणाम कर, बिना ही कहे, बग़ल में पड़ी हुई बेञ्च पर बैठ गया। साथही बोला—बहुत दिनों से आपका दर्शन करने की लालसा थी। आप तो देश-विख्यात पुरुष हैं। आज बड़ा अच्छा दिन है जो आपके दर्शन हुए।

हमने विनय-सूचक मृदु हास्य करके कहा—आपका शुभ नाम ?

"मैं एक साधारण अज्ञात मनुष्य हूँ। नाम से आप मुझे पहचान न सकेंगे। मैं देहात में रहता हूँ। इस समय एक काम से प्रयाग आया था। 'आद्याशक्ति' में आपके लेख पढ़ पढ़ कर आपके ऊपर बड़ी श्रद्धा हो गई है। इसी से सोचा, एक बार चल कर बातचीत भी करता चलूँ। आपके सदृश लोग देश में बिरले हैं।"

देखा कि ग्राहक होने के लक्षण नहीं हैं। कुछ क्षुण्ण हुए, किन्तु उसके मुँह से स्तुति सुन कर हम प्रसन्न भी हुए। किञ्चित् सलज्ज हास्य करके कहा—मैं तो बहुत ही साधारण व्यक्ति हूँ—मेरी योग्यता ही कितनी ?

उसने कहा—आपके ऐसे दो-चार 'साधारण व्यक्ति' यदि इस देश में होते तो चिन्ता ही किस बात की थी ? मालूम नहीं और लोग क्या समझते होंगे, किन्तु मेरा तो यह विश्वास है कि इस स्वदेशी आन्दोलन को आद्याशक्ति ने ही जगा रक्खा है।

मैं—जितना हो सकता है, देश का कुछ काम करने की चेष्टा किया करता हूँ।

बाबू—आज-कल 'आद्याशक्ति' ही हिन्दी में प्रधान मासिक पत्रिका जँचती है।

कुछ विनय-सूचक हास्य करके हमने कहा—हमारा कुछ कहना शोभा नहीं देता; किन्तु आज-कल बहुतों के मुँह यही सुना जाता है। गत सप्ताह का 'विश्वदूत' देखा है ?

"नहीं तो—क्या लिखा है ?"

"हमारे दिवालीवाले अङ्क की आलोचना की है"—कह कर हमने दराज़ से विश्वदूत निकाल कर बाबू को दे दिया। उसमें यही बात थी—आद्याशक्ति ही इस समय हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका है। किन्तु सच तो यह है कि यह उक्ति कुछ विश्वदूत की न थी—स्वयं हमारी ही थी। क्योंकि समालोचना के लेखक हमीं हैं।

युवा ने पढ़ कर पत्र को टेबिल पर रख दिया और कहा—वाह, ख़ूब लिखा है। ठीक लिखा है। अच्छा महाशय, किस श्रेणी के पाठकों में 'आद्याशक्ति' का विशेष प्रचार है ?

हमने बड़े उत्साह से कहा—देश के अधिकांश गण्यमान्य प्रतिष्ठित लोग ही हमारे ग्राहक हैं। यहाँ वर्मा से लेकर पेशावर तक—जहाँ जहाँ हिन्दी-भाषा-भाषी हैं वहीं—आद्याशक्ति का आदर है।

बात हमने बहुत बढ़ा कर कही थी। हम केवल काग़ज़ पर छपा कर ही विज्ञापन नहीं बाँटते—किन्तु अवसर मिलने पर मुखाग्र ही विज्ञापन का प्रचार कर देते हैं।

युवा बोला—यह तो होगा ही, होना ही चाहिए। हमने भी देखा है कि आद्याशक्ति में ऐसे ऐसे लेख निकले हैं कि कालेज के लड़के मतवाले हो उठे हैं।

"जी हाँ, कालेज-विद्यार्थियों में भी हमारे यथेष्ट ग्राहक हैं। पहले इतने अधिक न थे। जब से स्वदेशी-विषयक लेखों का निकलना आरम्भ हुआ है तभी से कालेज-विद्यार्थी धड़ाधड़ ग्राहक हो रहे हैं।"

बाबू ने पाकेट से घड़ी निकाल कर देखते हुए कहा—अच्छा, पण्डितजी महाराज, क्या मैं एक बात पूछ सकता हूँ ?—'आद्याशक्ति' के कितने ग्राहक हो गये हैं ?

कुछ सोचने का उपक्रम करके कहा—ठीक स्मरण नहीं।

"दश हज़ार से अधिक होंगे न ?"

भ्रू-युगल कुञ्चित करके ऐसा भाव दिखलाया मानों बहुत हिसाब कर रहा हूँ। फिर कहा—नहीं, अभी दश हज़ार नहीं हुए।

सचमुच नहीं हुए। आधे भी नहीं हुए। चौथाई हुए हैं या नहीं, इसमें भी सन्देह है। किन्तु न मालूम क्यों उसने मान लिया कि दश हज़ार पूरे होने में अब और विलम्ब नहीं है। वह बोला—ओह, नव हज़ार से ऊपर हैं! और किसी हिन्दी-मासिक-पत्र के ग्राहक नव हज़ार नहीं हुए।

ज़रा नक़ली हास्य करके कहा—अजी आधे भी नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब उसने धीरे धीरे पाकेट से एक काग़ज़ की नत्थी निकाली। ज़रा खाँस कर मुसकुराते हुए उसने सङ्कोच के साथ कहा—"मैंने स्वदेशी-विषयक दो प्रबन्ध लिखे हैं। क्या ये आद्याशक्ति में स्थान पा सकेंगे?" उसने काग़ज़ हमारे सामने रख दिये।

हमने मन ही मन हँस कर सोचा—"इसी से!—तुम्हारा उद्देश्य इतनी देर के बाद प्रकट हुआ। इतने चक्कर न काट कर पहले ही सीधी तरह बतलाने से भी काम होजाता! तुम्हारे ये लेख यदि रविश हों तो अलौकिक पुरुष कहने से ही क्या हम इन्हें छाप देंगे?"—दोनों लेखों को उठा कर सफ़हे उलट पलट कर देखा, अन्त में हस्ताक्षर हैं—श्री मनमोहनलाल गुप्त के। हमने कहा—अच्छा, छोड़ जाइए; समयानुसार देखेंगे। यदि छापने लायक़ होंगे तो अवश्य ही छाप दिये जायँगे।

"यदि पसन्द आजायँ तो अगहन की संख्या में अवश्य निकल सकेंगे?"

"अगहन में?—अगहन की कॉपी तो एक तरह से ठीक होगई है। पूस के बाद—।"

युवक खड़ा हो गया था। बोला—अच्छा, देखिएगा। न हो तो पूस में ही छापिएगा। पण्डितजी, आज आप के साथ सम्भाषण करने से सचमुच बड़ा आनन्द हुआ। क्षमा कीजिएगा, मैंने आपका अमूल्य समय नष्ट कर दिया। अब आज्ञा है न—वन्दे मातरम्।

'वन्दे मातरम्'—कह कर हम कुर्सी से दो इञ्च उठ कर फिर बैठ गये।

युवक भी द्वार से बाहर हो गया—और साथ ही प्रवेश किया हमारे सहकारी सम्पादक कालिकादीन ने। दिवाली के अङ्क की समालोचना अँगरेज़ी में लिख कर किसी दैनिक पत्र में प्रकाशित कराने के लिए उस पत्र के आफ़िस में कालिकादीन सुकुल को भेजा था। अतः प्रवेश करते ही हमने पूछा—क्यों जी, क्या हुआ?

कालिकादीन—कल सबेरे प्रकाशित हो जायगी। मैं स्वयं बैठ कर अपने आगे कम्पोज़ करा आया और प्रूफ़ भी पढ़ आया हूँ। यह आदमी किस काम से आया था?

"मनमोहनलाल?"

"इसका नाम क्या मनमोहनलाल है? मालूम होता है, आपको उसी ने बतलाया है।"

"नहीं मुँह से नहीं कहा; अपने लिखे बता कर ये प्रबन्ध दे गया है—इनमें नीचे नाम लिखा है श्री मनमोहनलाल गुप्त।"

कालिकादीन ने उत्तेजित स्वर से कहा—उसका सिर! उसके सात पुरुषाओं का नाम भी मनमोहनलाल गुप्त नहीं है।

हमने विस्मित होकर पूछा—तो फिर वह कौन है?

"डिटेक्टिव। उसका नाम है उल्फ़तराय।"

हमने डर कर कहा—डिटेक्टिव? कहते क्या हो! मालूम होता है, कुछ धोखा खा गये हो।

कालिकादीन ने ज़ोर के साथ कहा—हाँ, वह जासूस है। हम उसे अच्छी तरह पहचानते हैं। पचासों बार उसे हम कोतवाली में आते-जाते देख चुके हैं। कहते क्या हो?

यह सुन कर हम हाथ पर सिर रख कर बैठ गये। एक तो यह नई फ़ेहरिस्त की अफ़वाह—दूसरे कितनी ही झूठ बातें कह कर हमने 'आद्याशक्ति' के सम्बन्ध में उसके मन में एक भ्रान्त धारणा उत्पन्न करा दी थी। अब वह इसके भी ऊपर पुलिसोचित रङ्ग चढ़ा कर न जाने कैसी भीषण रिपोर्ट दाख़िल करेगा—यह सोच कर हृत्कम्प होने लगा।

कालिकादीन हमारे मन की बात समझ गया। बेञ्च पर बैठ कर बोला—क्या क्या बातें हुईं, हमें सब सुनाओ तो।

जहाँ तक स्मरण कर सके—सब बातें कालिका को सुना दीं। सुन कर वह भी हाथ पर ठोढ़ी का सहारा दिये बैठा रह गया। एक लम्बी साँस छोड़ कर बोला—"काम अच्छा नहीं हुआ। वक्त नाज़ुक है"—फिर टेबिल पर से वही काग़ज़ उठा कर पढ़ने लगा।

कुछ देर में दोनों लेख पढ़ कर अन्त में कहने लगा—देखी पाजी की चालाकी?

"क्या?"

"अजी सर्वनाश!—क्या इसी का नाम प्रबन्ध है? यह तो बिलकुल ही आग है! इसको छापने के साथही एक जोड़ा हथकड़ियाँ तैयार हैं।"

"कहते क्या हो?"

"सुनिए न?"—कह कर उसने दोनों लेखों के कुछ कुछ अंश हमें पढ़ कर सुना दिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम—"सत्यानाश ! मालूम होता है, हमको फँसाने के लिए ही दोनों लेख रख गया है। लाओ, फाड़ कर फेक दें।" फिर हमने दोनों लेखों को फाड़ कर वेस्ट पेपर-बास्केट में डाल दिया।

कालिकादीन—यदि ये प्रकाशित हो जायँ तो चटपट हमारे विरुद्ध १२४ ए० दफ़ा—और पाँच वर्ष के लिए बड़ा घर तैयार है। इन्हें सिर्फ़ फाड़ कर फेक देने से काम न चलेगा। इन्हें चूल्हे में छोड़ आइए ताकि बिलकुल भस्म हो जायँ। क्या जाने, जो हमारे दफ़्तर की तलाशी करवा दे—इन सब टुकड़ों को क्रम से चिपका कर, हमारे विरुद्ध भयङ्कर प्रमाण तैयार कर दे।

हम—"ठीक कहते हो सुकुलजी। उस रास्केल का यही मतलब जान पड़ता है।"—फिर लेख के एक एक टुकड़े को सावधानी से उठा कर भीतर ले गये और जलते हुए चूल्हे में झोंक आये।

नहा-धोकर, पूजा-पाठ किया और कलेवा करके दफ़्तर में आये तो देखा कि कालिकादीन बैठा बैठा ख़ूब मन लगा कर सिर झुकाये लिख रहा है। चार-पाँच ताव लिखे हुए टेबिल पर रक्खे हैं। हमने पूछा—यह क्या हो रहा है ?

"एक लेख लिख रहा हूँ।"

"कौन सा लेख ?"—लिखे हुए काग़ज़ उठा कर हम पढ़ने लगे। देखा कि मिस्टर सुकुल ने अँगरेज़-सरकार की असाधारण न्याय-परता, अपार सदाशयता, और आदर्श प्रजा-वत्सलता आदि सद्गुणों की व्याख्या करके लम्बे चौड़े एक परम रमणीय स्तोत्र की रचना की है। और जो अपरिणामदर्शी अज्ञ लोग ऐसी महानुभव पितृ-मातृ-तुल्य सरकार के विपक्ष में हैं उनको बेहद गालियाँ सुनाई हैं। लेख को पढ़ कर हम मन ही मन हँसे। समझ लिया कि उस डिटेक्टिव के कौशल को विफल करने के लिए यह मिस्टर सुकुल की चाल है। लेख को समाप्त कर सब सफ़हों को बराबर किया और कोने में छेद कर धागा पिरो कर उन्हें बाँध दिया। फिर हमसे कहा—"लिख दीजिए—'स्वीकृत अगहन की संख्या के लिए'—लिख कर दस्तख़त कर दीजिए।"

यही लिख कर हमने हस्ताचर कर दिये। कालिकादीन हमारी बुद्धि है, बल है—कालिकादीन हमारा दाहिना हाथ है। लेख को दराज़ में रख कर उसने कहा—समय हो चुका, अब घर जाऊँ। नहाऊँ, धोऊँ, भोजन करूँ।

हम—एक काम न करो। आज यहीं स्नान, पूजन और भोजन कर लो। तुम तो खान-पान में बन्धन नहीं मानते, इस काम के लिए अब घर न जाओ। क्या जाने, कहीं पुलिस-उलिस आ जाय, तुम्हारे मौजूद रहने से बड़ी हिम्मत बँधी रहती है।

कुछ टालमटोल करके कालिकादीन ने कहा—पण्डितजी, क्या करूँ, आज ठहर नहीं सकता। घर मेहमान आये हैं। मैं न जाऊँगा तो—

हम—अच्छा तो जाओ। किन्तु उस वक़्त ज़रा जल्दी आ जाना।

"ज़रूर आऊँगा"—कह कर उसने प्रस्थान किया।

[२]

कालिकादीन जो गया सो फिर लगातार तीन दिन तक उसकी सूरत न देख पड़ी। हमारे ये तीन दिन बड़े ही भय और आशङ्का के साथ बीते। 'पतति पतत्रे विचलति पत्रे'—मन में ऐसा जान पड़े मानों अब पुलिस आई। गली के मोड़ पर लाल साफ़े पर नज़र पड़ते ही हम काँप उठते थे।

आप पूछ सकते हैं कि हम लोग जेल से इतने क्यों डरते हैं ? सुनिए, बतलाते हैं। पहले जेल में न तो धर्म-विचार ही है और न जाति-पाँति का ही भेद-भाव है। हम ब्राह्मण की सन्तान हैं। बिना त्रिकाल-सन्ध्या किये पानी नहीं पी सकते। जेल में सन्ध्या-पूजा करने के लिए कुशासन कहाँ पावेंगे और थोड़ा सा गङ्गाजल ही कौन ला देगा ? हम चाहे जिसके हाथ का खाते-पीते नहीं हैं। या तो अपने घर के लोगों के हाथ का खाते हैं, या रिश्तेदारों के हाथ का और ऐसे लोगों के हाथ का भी कि जिनके ब्राह्मणत्व में हमें तिल भर भी सन्देह नहीं है। जेल में हमारे इस नियम का निर्वाह कैसे होगा ? दूसरा कारण यह है कि हमारी ब्राह्मणी को विधवा होने में घोरतर आपत्ति है। बहुत दिनों के लिए जेल जाना पड़ा तो यह निश्चय है कि हम ज़िन्दा न लौट सकेंगे। हमारी उम्र हो चुकी, इधर स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता। जेल का खाना खाकर हम कितने दिन बच सकेंगे। हमारे मर जाने पर, हमारी ब्राह्मणी की क्या दशा होगी, और हमारे नाबालिग़ बेटा-बेटी कहाँ आश्रय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पावेंगे ? इन दो बाधाओं के मारे हमारे लिए जेलख़ाना अत्यन्त असुविधा-जनक है—इसी से हम अपनी जेल-भीति को अहैतुकी नहीं मानते। यह सामान्य भय नहीं है—सुदुर्लभ परिणाम-दर्शिता है।

जो हो, जैसे तैसे तीन दिन कट गये, किसी विपत्ति से सामना नहीं करना पड़ा। ख़ानातलाशी होनी होती तो अब तक हो गई होती। मन में बहुत कुछ ढाढ़स हो गया।

चौथे दिन कालिकादीन के आने पर कहा—क्यों जी, इतने दिन कहाँ रहे ? आये नहीं ?

कालिका—घर में ही था। कुछ तलाशी-वलाशी तो नहीं हुई ?

"नहीं। जान पड़ता है, उसी के डर से नहीं आते थे।"

'पण्डित जी, डर के मारे नहीं, भविष्यत् के विचार से नहीं आया। मान लीजिए कि यदि पुलिस आती और आपके साथ ही हमें भी गिरफ़्तार कर ले जाती तो फिर बतलाइए, 'आद्याशक्ति' की क्या दशा होती ? पत्रिका बन्द हो जाती, आपकी इतनी विशाल कीर्ति का लोप हो जाता और हिन्दी-साहित्य की अपरिमित हानि होती।"

परिणाम-दर्शिता के सम्बन्ध में कालिकादीन हमारा उपयुक्त शिष्य है। 'आद्याशक्ति' को कालिकादीन प्राण से भी अधिक चाहता है। किन्तु इस अवसर पर यदि उसका प्रेम पत्रिका पर कुछ कम और हम पर कुछ अधिक होता तो मन को प्रसन्नता होती।

कालिकादीन ने मुँह फुला कर "फिर भी तो एक उड़ती हुई ख़बर सुन आया हूँ" कहा।

"अब और क्या सुना ?"

"नई फ़ेहरिस्त में साहित्य-विभाग से तीन का नामिनेशन हुआ है। एक बड़ा कवि, एक बड़े मासिक पत्र का सम्पादक और एक प्रसिद्ध दैनिक पत्र का सम्पादक—तीनों डिपोर्ट किये जायँगे। अन्तवाले का नाम तो सर्वथा स्थिर हो गया है, उसमें किसी का मत-भेद नहीं। किन्तु अब यह प्रश्न है कि इस देश में सबसे बड़ा कवि कौन है, और सबसे बढ़ कर प्रधान मासिक पत्र कौन है ? इस विषय पर कौंसिल में मत-भेद उपस्थित है—वाद-विवाद हो रहा है।"

हमने कहा—इसका हमें क्या डर है ? पकड़ना हो तो केदारनाथ गुप्त को पकड़ें। उनका आकार भी हमारे पत्र से बड़ा है, वे चित्र भी हमारी अपेक्षा अधिक छापते हैं, और उनकी ग्राहक-संख्या भी ख़ासी है—हमसे प्रायः डबल। केदारनाथ के 'धूमकेतु' के आगे हमारी 'आद्याशक्ति' क्या है ? हमारी 'आद्याशक्ति' को कोई पूछता भी है ?

कालिकादीन ने गम्भीरभाव से गर्दन हिलाते हुए कहा—यह तो ठीक है, किन्तु हमीं ने तो ढोल पीट कर कहा है कि हमारे ही ग्राहक सबसे ज़ियादह हैं—प्रतिपत्ति भी सबसे अधिक है। यह कुछ कुछ असामी की स्वीकारोक्ति हो गई है, समझे न ?

यह सुन कर हमारे हृदय में धड़कन होने लगी। किन्तु मौखिक साहस दिखला कर कहा—भई विज्ञापन की बात रहने दो। विज्ञापन में कौन क्या नहीं लिखता ? यही न देखो, तुम अपनी किताब के विज्ञापन में हर महीने छापते हो—'विषवृक्ष' से बढ़ कर कोई उपन्यास प्रकाशित नहीं हुआ—तो क्या लोग भूल गये ? कोई तो नहीं ख़रीदता। गवर्नमेंट क्या इतनी निर्बोध है कि विज्ञापन देख कर भूल जायगी ?—मोटे ताज़े केदारनाथ को छोड़ कर दुबले पतले हमको पकड़ेगी !

"सिर्फ़ विज्ञापन में ही नहीं, आपने उल्फ़तराय से भी तो इसी तरह की बातें कही हैं न !"

हमने मन के भाव को मन में ही दबा कर कहा—ऊँह, उल्फ़तराय बड़ा मातबर आदमी है—उसकी बात यों ही गवर्नमेंट सुन लेगी ! उसकी रिपोर्ट की यदि कोई वेलू होती तो उसी दिन हमारे दफ़्तर की तलाशी न हो जाती।

कालिकादीन ने सन्देह के स्वर में कहा—ठीक जान पड़ता है।

जो कुछ काम काज था उसे करके दस बजे कालिकादीन घर चला गया। और दिन तो उस वक़्त तीन बजे आ जाता था—आज नहीं आया। उसका यह अनियम देख कर हम मन ही मन विरक्त हुए।

सन्ध्या समय कालिकादीन आकर बोला—नहीं, भय का कोई कारण नहीं। आप निश्चिन्त रहें।

हमने विस्मित होकर पूछा—क्यों, क्या कोई नई ख़बर है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिका ने कहा—लूकरगञ्ज में बाबू श्यामलाल रहते हैं, आप पहचानते हैं न ? बड़े बाबू हैं, पांच सौ रुपया तनख़्वाह है। यदि आपका डिपोर्टेशन ही स्थिर हुआ होगा तो और किसी को इसकी ख़बर मिलने के पूर्व पहले उन्हीं को मालूम होगा। इसी से सोचा—जाऊँ, किसी तरह समाचार प्राप्त करूँ।

"तो उनसे तुम्हारी जान-पहचान थी ?"

"जी नहीं। यदि जान-पहचान होती तो असुविधा ही थी। हिकमत से मतलब की बात निकालने के लिए गया था न। देखा कि उन्होंने कभी आपका नाम तक नहीं सुना। वे यह भी नहीं जानते कि 'आद्याशक्ति' नामक कोई पत्रिका भी निकलती है। हमें जिस बात का डर है, यदि वह होती तो इतने दिनों में इस सम्बन्ध की न जाने कितनी चिट्ठी-पत्रियाँ और न जाने कितने मन्तव्य उनके हाथ से आये-गये होते। आपके नाम को और आद्याशक्ति नाम को वे अच्छी तरह जान लेते। इसी से यह खेल खेला था।

हमने कौतूहल से गर्दन ऊँची कर कहा—क्या—क्या—बतलाओ तो सही।

तब कालिकादीन ने क़िस्सा छेड़ा—बाबू के पास जाकर मैंने कहा—'मुझे आपकी सेवा में पण्डित गङ्गाधर तिवारी ने भेजा है।' उन्होंने कहा—'कौन पं० गङ्गाधर तिवारी ?'—मैं—'वही आद्याशक्तिवाले'।—वे—'मालूम होता है, कोई पेटेण्ट ओषधि है ? भाई पेटेण्ट दवाओं पर हमें विश्वास नहीं है।'—मैं—'नहीं साहब, पेटेण्ट दवा नहीं है, 'आद्याशक्ति' मासिक पत्रिका है।'—वे—'मासिक पत्रिका ?—नहीं, हमारी ही ग़लती है। उस दवा का नाम आद्याशक्ति नहीं, शक्ति-शूल है। अच्छा तो पं० गङ्गारामजी ने क्या कहा है ?'—मैं—'गङ्गाराम नहीं—गङ्गाधर तिवारी। वे आद्याशक्ति के सम्पादक हैं। उन्होंने आपको यह कहला भेजा है कि—आप हैं दफ़्तर के बड़े बाबू—यदि अपने दफ़्तर में कृपाकर आद्याशक्ति के कुछ ग्राहक करवा दें तो बड़ा अनुग्रह हो, और कृपा कर आप स्वयं ग्राहक हो जायँ। आद्याशक्ति बहुत अच्छी पत्रिका है—हर महीने की पहली तारीख़ को नियमित रूप से प्रकाशित होती है। आज-कल के जो सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-लेखक हैं उन बाबू देवीसिंह का उपन्यास 'वीणा की तान' हर महीने 'आद्याशक्ति में प्रकाशित होता है। क़ीमत भी कुछ अधिक नहीं है—कुल चार रुपये सालाना है।'—बाबू—'यह तो सब मालूम हुआ, किन्तु मैं तो पहले से ही एक पत्र का ग्राहक हूँ। उसका नाम अच्छा ही तो है—हाँ, धूमकेतु। सो उसी को पढ़ने के लिए समय नहीं मिलता, और नया मासिक पत्र लेकर क्या करूँगा ? और दफ़्तर के बाबू लोगों से भला मैं यह बात कैसे कह सकूँगा ? इसकी अपेक्षा अच्छा तो यह होगा कि दो बजे जब बाबू लोग टिफ़िन-घर में पान-तम्बाकू खाने के लिए जावें तब तुम वहीं जाकर कोशिश करना—शायद कुछ सफलता हो जाय।' मैं—'बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगा। अच्छा, अब आज्ञा दीजिए! बन्दगी'—कह कर चला आया।

यह सुन कर हृदय का भार एक-दम हलका हो गया। कालिकादीन की चतुराई के लिए मन ही मन सैकड़ों धन्यवाद दिये। हम इतने ख़ुश हुए कि आज यदि वह अविवाहित होता—तो हम उसे अपना जामाता बनाने का प्रस्ताव करते। वह उपाय न रहने से हमने उसे रात को भोजन करने के लिए निमन्त्रण दे दिया—और भीतर जाकर बढ़िया मोहनभोग और पूरी-तरकारी बनवाने का प्रबन्ध कर दिया।

बैठे बैठे दोनों जनों के बीच तरह तरह की बातें होने लगीं। पश्चिम-भ्रमण के सम्बन्ध में उसकी सहायता से एक प्रोग्राम बना डाला। देखा तो उसकी भी सोलहों आने इच्छा है—हमारे साथ जाने की। हमने कहा—तुम भी चलोगे ?

"जाने की तो बेहद इच्छा है, किन्तु ख़र्च जो अधिक होगा! पैसा-कौड़ी तो कुछ हई नहीं।"

हमने उत्साह के साथ कहा—कुछ परवा नहीं, ख़र्च हमारे ज़िम्मे रहा। तुम तैयारी करो।

दूसरे दिन पञ्जाब-मेल से जाने की बात स्थिर होगई।

[३]

घर से चलने के समय छोटी लड़की को छींक आगई हम कुरसी पर बैठ कर तम्बाकू की पीक थूकने लगे। ब्राह्मणी ने कहा—अजी यह कुछ नहीं, सर्दी की छींक है।

दफ़्र के सामने गाड़ी खड़ी है। सामान गाड़ी में रख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया गया है। हम उठ कर बाहर आये। ज़ीने से उतरते समय देखा, बिल्ली रास्ता काट गई !

फिर लौट कर बैठ गये। एक गिलास पानी पिया। मुख में दो बीड़े रख लिये। फिर इष्टदेव का बार बार स्मरण करके सावधानी के साथ बाहर निकले और गाड़ी में जा बैठे। हमारे रसोइया महराज लक्ष्मीपति पाठक किरमिच का एक बड़ा सा झोला लेकर कोचबाक्स पर बैठ गये। यह हमारे साथ जायँगे। कालिकादीन तो सीधा स्टेशन पर पहुँचेगा।

टिकट शहर में ही ख़रीद लिया गया था। स्टेशन पर ड्यौढ़े दर्जे की गाड़ी में बैठ गये। कालिकादीन ऊपर के तख़्ते पर जा लेटा और सोने की चेष्टा करने लगा। हम, नीचे ही, बेञ्च पर म्लान-मुख किये बैठे रहे।

चित्त कुछ बहुत प्रसन्न न था। एक तो घर छोड़ कर कहीं जाने से ही हम लोग उदास हो जाते हैं। दूसरे घर से चलते समय दो दो बार विघ्न हुए। हम सोचने लगे—न जाने भाग्य में क्या लिखा है, भगवान् ही जाने। चाहे नई फ़िहरिस्त में हमारा नाम आ गया हो—वहीं विदेश से ही घात पाकर पकड़ ले जायँगे। श्यामलाल बाबू ने शायद कालिकादीन के साथ छल किया है—हमारे और हमारे पत्र के सम्बन्ध में उन्होंने जो अज्ञता का परिचय दिया है वह कोरा अभिनय है। अथवा चाहे बड़े साहब स्वयं अपने हाथों, गुप्त-रूप से, इन मामलों की लिखा-पढ़ी करते हों—बड़े बाबू को देखने ही न देते हों। अगर यह बात होने को न होती तो लड़की छींकती ही क्यों—और बिल्ली के रास्ता काट जाने का क्या कारण है ?

सोचने से क्या हो सकता है ? भाग्य के सिवा अब और कोई गति नहीं है। भाग्य में जो लिखा है, वही होगा। यह कह कर हम मन को समझाने की चेष्टा करने लगे। किन्तु दुश्चिन्ता किसी भी तरह पीछा छोड़ने को तैयार न हुई।

रात को इटावे में उतरे। वहाँ दो दिन ठहरे। वहाँ से मथुरा गये। मथुराजी में यमुना-स्नान किया, विश्रान्त की आरती देखी, सेठजी के मन्दिर में द्वारकाधीश जी की झाँकी की। मथुरा के पेड़े, खुर्चन और द्वारकाधीश के मन्दिर का प्रसाद पाकर एक दिन श्रीवृन्दावन भी हो आये। गिरिराज और बलदाऊ के दर्शन करने न जा सके। इटावे में एक सज्जन ने हमसे पतरिया महल की बड़ी प्रशंसा की थी। अतएव मथुरा से हमने अपने मैनेजर को लिख दिया था कि ज़रूरी चिट्ठी-पत्री पतरिया महल बेलनगञ्ज के पते पर आगरा भेजना। वहाँ चार छः दिन ठहरने का विचार है।

मथुरा से चल कर हम सीधे आगरे पहुँचे। पतरिया महल ख़ूब प्रसिद्ध है। वहाँ हम सहज ही पहुँच गये। इक्के-गाड़ीवाले सभी उक्त महल को भली भाँति जानते हैं।

महल में कई भाग हैं—एकमञ्ज़िला, दोमञ्ज़िला, तिमञ्ज़िला। वहाँ के प्रत्येक कमरे में दो तीन यात्री मज़े में रह सकते हैं। दो-मञ्ज़िले पर स्वतन्त्र कमरा भी मिल सकता है। ऊपर ही टट्टी, नल आदि का प्रबन्ध है। कहार भी हाज़िर रहता है। रसोई के लिए अलग स्थान है। हम ऊपरवाले कमरे में ही ठहर गये। महल के प्रबन्धक ने और भी व्यवस्था करवा दी।

दूसरे दिन शहर की सैर की। जुम्मा मसजिद देखी। दोपहर को भोजन के उपरान्त क़िला देखने की इच्छा थी। 'पास' का प्रबन्ध एक सज्जन के ज़िम्मे था। परन्तु पीछे से ख़बर मिली कि जब से स्वदेशी आन्दोलन ने जड़ पकड़ी है तब से बङ्गालियों को और ऐसे लोगों को, जिन पर पुलिस निगाह रखती है, पास नहीं दिया जाता। एक गाइड महोदय ने आश्वासन दिया कि दरख़्वास्त तो लिख दीजिए—हम एक बार कोशिश करेंगे।

कोशिश होते होते चार बज गये—पास अब न तब। सारा दिन यों ही गया।

दूसरे दिन भोजन करने के प्रथमही ताज और एतमा-दुद्दौला तथा उस वक़्त सिकन्दरा देखने की सलाह ठहरी। इसके बाद एक्का करके फ़तहपुर-सीकरी जाने का विचार हुआ।

पूर्व परामर्श के अनुसार सबेरे सात बजे किराये की गाड़ी में बैठ कर हम ताज देखने गये।

फाटक के भीतर प्रवेश करके देखा, बाग़ में ज़रा अन्तर पर एक बाबू घूम रहा है। हम लोगों को देखते ही वह ठहर गया और हमारी ओर टकटकी लगा कर देखने लगा।

हम लोग धीरे धीरे ताज-महल की ओर अग्रसर हुए। वह आदमी भी, जहाँ था वहीं से, बाग़ ही बाग़ होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताज के समीप पहुँचा और हमारी ओर मुँह करके खड़ा हो गया। देखा कि उम्र इसकी पैंतीस वर्ष के लगभग है, क़द लम्बा है, हाथ-पैरों की हड्डियाँ सुपुष्ट हैं और सीना चौड़ा है। सुनहरा चश्मा आँखों की शोभा बढ़ा रहा है। ख़ूब भरी हुई लम्बी लम्बी मूछें और फ़्रेञ्चकट डाढ़ी है। उसे देखते ही न जाने कैसे यह धारणा होगई कि यह पुलिसवाला है।

किन्तु वह हमसे बोला कुछ नहीं। सिर्फ़ ध्यान से हमें एँड़ी से लेकर चोटी तक देखने लगा—कालिकादीन को एक निगाह से देखा तक नहीं।

हम लोग जूते उतार कर ऊपर चढ़ गये। द्रष्टव्य स्थानों को घूम घूम कर देखने लगे। वह आदमी भी प्रायः हमारे साथ ही साथ रहा।

ऊपर नक़ली, नीचे असली मज़ार (समाधि) देख कर हम इधर उधर घूमने लगे। पिछले एक मीनार के ज़ीने के पास पहुँचे तो वह बाबू न था। यह अवसर पाते ही हमने कालिका का हाथ पकड़ करके कहा—आओ, ऊपर चलें।

बड़े परिश्रम से सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर पहुँचे। वहाँ की विशुद्ध मृदु वायु बड़ी मधुर लगने लगी। वहीं बैठ कर हम चारों ओर दृष्टिपात करने लगे। उस बाबू के कहीं दर्शन न हुए।

वायु-सेवन से जब कुछ चित्त शान्त हुआ तब कालिका से कहा—बतलाओ, वह कौन था, मेरी ओर एकटक देख रहा था।

कालिकादीन ने गम्भीर भाव से कहा—पुलिसवाला।

"कैसे मालूम हुआ?"

"उसके माथे में, बालों से ठीक आध इञ्च नीचे, एक लाल लाल निशान नहीं देखा?"

"नहीं, हमने ध्यान नहीं दिया।"

"मैंने तो देखा है। पुलिस-कैप का दाग़ है। इन लोगों की सरकारी टोपियाँ ख़ूब टैट होती हैं न?"

यह सुन कर हम सुन्न हो गये। थोड़ी देर में कहा—तो क्या हमें गिरफ़्तार करने आया है?

"हो सकता है—और नहीं भी। पुलिस के आदमी क्या कभी छुट्टी लेकर यहाँ की सैर करने नहीं आ सकते?—क्या उनके लिए ताजमहल देखने की मनाही है?"

हमने अपने मन को धीरज बँधाने के बहाने पूछा—तो सैर करने के लिए आया हुआ ही जान पड़ता है न?

वह गम्भीर भाव से बोला—अचरज की बात नहीं।

इसके साथ ही देखा—वह आदमी फिर बाग़ में गया है। कालिकादीन का हाथ दबा कर हमने उँगली के इशारे से उसे दिखा दिया।

वह एक स्थान पर स्थिर होकर ताजमहल को टकटकी लगा कर देखने लगा। फिर ऊपर और उसके भी ऊपर नज़र फेर कर एक एक मीनार के गुम्बज़ का निरीक्षण करने लगा। इसके बाद जेब से बाइनोक्यूलर दूरबीन निकाल कर हम लोगों पर उसने लक्ष्य स्थापन किया।

उसके इस कार्य से हमारे रोंगटे खड़े हो गये। कालिकादीन बोला—लक्षण अच्छे नहीं हैं।

लक्षण अच्छे न होंगे—जब लड़की को छींक आई थी तभी हम जान गये थे!

अब हमें मानों रोआस आने लगी। "क्या किया जाय"?—कह कर हमने कालिकादीन का हाथ पकड़ा।

"आइए, यहाँ बैठे रहें। जब वह चला जाय तब हम लोग नीचे चलेंगे।"

वह बहुत देर तक नहीं ठहरा। दस-पन्द्रह मिनिट में इधर उधर चक्कर काट कर फाटक से बाहर हो गया।

हम आध घण्टे तक अपेक्षा करके नीचे उतरे। फाटक के बाहर गाड़ी के पास आकर देखा तो गाड़ीवान कोच-बाक्स पर पड़ा सो रहा है। उसे जगा कर 'एतमादुद्दौला' चलने का हुक्म दे हम लोग गाड़ी में बैठने लगे। इसी समय देखा कि पासवाली तसवीरों की दूकान से, कई एक तसवीरें हाथ में लिये, वह आदमी बाहर निकला। गाड़ी दौड़ने लगी। हम मन ही मन आशा करने लगे—मालूम होता है, उसने हमें देखा नहीं।

कालिकादीन को दुचित्ता देख कर पूछा—क्या सोच रहे हो?

"माथे पर निशान होने से ही कोई पुलिसवाला नहीं हो जाता। जो लोग इँगलिश फ़ैशन का कोट-पतलून पहनते और सिर पर कड़ा हैट धारण करते हैं उनके सिर में भी इस तरह का निशान हो जाता है। यही बात मैं सोच रहा हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो फिर दूरबीन से हम लोगों को क्यों देखा?"

"क्या जानें हम लोगों को देखता था या ताजमहल की शोभा को?"

"हो सकता है।"—कह कर हम भी गम्भीर होकर बैठ गये।

एक घण्टे के बाद एतमादुद्दौला पहुँचे। वहाँ की सैर कर रहे थे कि पीछे से जूते की आहट मिली। मुड़ कर देखा तो वही मूर्त्ति। दिल धड़कने लगा। इस बार ध्यान से देखा—कालिकादीन ने जैसा कहा था वैसा ही—सिर में ऊपर को एक साफ़ लाल गोल निशान है। कालिका की पर्यवेक्षण-शक्ति पर हम मुग्ध हो गये।

धीरे धीरे हट कर उस आदमी के पास से दूर हो गये। एतमादुद्दौला का गठन-सौन्दर्य, कुशलता, जाली का काम, कुछ भी अच्छा न लगा। कालिका से कहा—चलो, डेरे पर चलें।

'चलिए' कह कर वह हमारे पीछे हो गया। जब फाटक से बाहर आ रहे थे तब मुड़ कर देखा—वह आदमी एतमादुद्दौला के बराण्डे में खड़ा खड़ा हम लोगों की ओर उत्कण्ठित दृष्टि से देख रहा है! हाथ दबा कर हमने कालिका से कहा—क्यों, अब किसकी शोभा देख रहा है?

कालिका—लक्षण अच्छे नहीं हैं।

महल में लौट कर नहाया-धोया और भोजन-भजन किया। भोजन करने सिर्फ़ बैठे ही—कुछ खाया ही न गया।

[४]

भोजन से निवृत्त होकर कालिकादीन से कहा—तो फिर सिकन्दरे को चलना होगा? वह तो बिलकुल पीछे पड़ा है। जो वहाँ भी पहुँचे तो?

कालिकादीन—क्या मालूम, हमारा पीछा कर रहा है या दोनों ही जगह घटना-क्रम से हम लोग एकत्र हो गये थे? जो आगरे की सैर करने आता है, आख़िर वह सभी स्थानों को देखता है।

"जो हम लोग सिकन्दरे में जाकर देखें कि वह हमारा साथ दे रहा है तो?"

"तब तो कुछ चिन्ता का कारण हो सकता है। सिकन्दरा यहाँ से छः मील पर है। अगर वहाँ पर वह ठीक हमारे साथ ही पहुँच जाय तब तो घटना-क्रम की थ्योरी कुछ दुर्बल हो जायगी।"

हम—बिलकुल दुर्बल हो जायगी।

जो हो. ढाई बजे सिकन्दरे के लिए कूच किया। वहाँ पहुँचने पर उस आदमी के कहीं भी दर्शन न हुए। किसी तरह जान में जान आई।

रात को महल में आकर देखा—शरीर बिलकुल ही शिथिल हो गया है। मन से दुश्चिन्ता का कुछ बोझा घट जाने के कारण भूख भी करारी लगी। रसोइया महाराज से कहा—जो अब रसोई करना शुरू करोगे तो रात के दस बजेंगे। एक काम करो। बाज़ार से पूरी, कचौरी, दालमोठ, तरकारी, अचार और रबड़ी ले आओ। खा-पीकर ज़रा जल्दी आराम करें। यहाँ कौन देखता है कि तिवारीजी बाज़ार की पूरियाँ उड़ा रहे हैं।

खा-पीकर आठ से पहले ही बिछौने पर पहुँच गये। कमरे में एक लालटेन जल रही थी।

कालिका की नासिका तो दस मिनट के भीतर ही गर्जने लगी। हम सोचने लगे—सुखी वही हैं जो विख्यात नहीं हैं, जिनको डिपोटेशन का भय नहीं है।

अब हम इधर उधर करवट बदलने लगे। किसी तरह निद्रा से भेंट न हुई। रात के साढ़े आठ बजे होंगे—तब आहट मिली—दो आदमी धीरे धीरे बाहिर के बराण्डे में घुस फुस बातचीत कर रहे हैं। "पण्डित गङ्गाधर" नाम की भनक कान में पड़ते ही हमने कान खड़े किये।

बातचीत पहले की तरह होने लगी। किन्तु साफ़ साफ़ कुछ भी न सुन पड़ा। आहट बचा कर हम उठ बैठे और दरवाज़े के पास जा किवाड़ों की दर्ज से बाहर की ओर देखने लगे। बराण्डे में उजेला था—वहाँ खड़े खड़े ही बातचीत हो रही है—महल के मुनीम के साथ उसकी।

डर से हमारी अन्तरात्मा सूख गई—हाथ-पैर थर थर काँपने लगे।

महलवाले ने बातें करते करते हमारे बन्द दरवाज़े की ओर दो-तीन बार अँगुली से इशारा किया।

हाय कालिकादीन!—तुम्हारी वह घटना-क्रम की थ्योरी इस समय कहाँ गई? महल के मुनीम ने कहा—तो क्या पण्डित महाराज को जगा दूँ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह—नहीं, कल सबेरे मैं फिर आऊँगा। इस समय मुझे एक और काम है।

"सरकार कहाँ ठहरे हैं?"

"पुलिस-दफ़्र के हेडक्लर्क बाबू गङ्गाप्रसाद को जानते हो?"

"नाम सुना है।"

"मैं उन्हीं के यहाँ उतरा हूँ। देखो, पण्डितजी से हमारी कोई बात न कहना। ख़बरदार! समझ गये न?"

"नहीं हुज़ूर, जब आप मना कर रहे हैं तो मैं क्यों कहूँगा? बन्दगी।"

वह चला गया।

हमारे दोनों नेत्रों से आंसू बरसने लगे। कांपते कांपते हमने कालिकादीन को जगाया। उसको सब बातें सुना दीं।

सुन कर वह चुपचाप बैठा रह गया।

टूटे हुए स्वर से हमने कहा—अरे कालिकादीन, चुप क्यों हो रहे? बोलो, अब क्या उपाय है?

उसने संक्षेप में कहा—पलायन।

हमने व्याकुलता के साथ कहा—वह हमें पकड़ने आया है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। क्या कहते हो कालिकादीन—अयँ?

कालिका—जब वह पुलिस-दफ़्र के बड़े बाबू के ही यहाँ ठहरा है, उसी का मेहमान है तब वह निःसन्देह प्रयाग का जासूस है। वह महल के मुनीम से जो कह गया है कि हमारी कोई बात ज़ाहिर न करना, इसी से भली भांति उसका असत् अभिप्राय व्यक्त होता है। वह सोचता होगा कि ख़बर पाते ही ये भाग जायँगे। सबेरे पहर आकर वह मकान को घेर लेगा—इसी समय निकल चलो।

"भाग कर जायँ कहाँ?"

"कहीं भी। यहाँ रहे तो सबेरे ही आकर चट से गिरफ़्तार कर लेगा। हवागाड़ी में बिठला कर दम भर में ले जायगा। दो घड़ी रात रहते ही कांस्टेबिलों से घर को घेरवा लेगा।"

"भागने को कहते हो—भाग भाग कर कब तक मारे मारे फिरेंगे कालिकादीन?"—यह कहते कहते फिर हमारी आँखों से टप टप आंसू गिरने लगे।

"आपने कुछ ख़ून तो किया ही नहीं है कि जभी पकड़े गये तभी फांसी चढ़ा दिये जाओगे? अभी यदि बरस दो बरस आप छिप कर निर्वाह कर सकें तो—इसके पश्चात् स्वदेशी का यह गोलमाल रुक जाने पर—फिर आपको पकड़ना न चाहेंगे।"

बैठे बैठे हम अपार समुद्र की चिन्ता करने और धोती के छोर से बार बार आंसू पोंछने लगे। इस उम्र में कहाँ मारे मारे छिपते फिरेंगे। क्या निकल ही जायँ?—कालिका से यही बात कही।

वह सान्त्वना के कोमल स्वर में बोला—आप नक़ली नाम से हमको चिट्ठी लिखा कीजिए। हम 'आद्याशक्ति' के ख़ज़ाने में से आपको चाहे जब और चाहे जहाँ रुपये भेज दिया करेंगे। किन्तु हां, आपको एक हिकमत करनी होगी।

"क्या?"

कुछ सोच कर कालिका धीरे धीरे बोला—आप आज ही भाग जायँ—मैं कल ही इलाहाबाद लौट जाऊँगा। वहाँ जाकर मैं प्रसिद्ध कर दूँगा कि आप दिल्ली गये हैं, दो-चार दिन में लौटेंगे। कोई एक सप्ताह के बाद आप, जहाँ हों वहाँ से, किसी काल्पनिक नाम से एक तार भेज दें कि—अकस्मात् हैज़े से तिवारीजी की मृत्यु हो गई।

यह बात सुनते ही हमारे रोंगटे खड़े हो गये। हमने पूछा—इसका फल क्या होगा?

कालिका ने गम्भीर भाव से कहा—दो प्रकार का फल होने की आशा है। एक—आपके मरण का समाचार पाने से गवर्नमेंट आपके नाम वारण्ट जारी न करेगी—फिर पकड़े जाने का डर भी न रहेगा। दूसरे—आपकी मृत्यु के उपलक्ष में सभा इत्यादि करके, लेख और शोक-गीति लिख कर तथा जीवनचरित छाप कर मैं यह बात प्रसिद्ध कर दूँगा कि आप अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए एक कौड़ी भी नहीं छोड़ गये हैं—आपकी अनाथ विधवा और असहाय बेटे-बेटियों की रक्षा के लिए और कोई उपाय नहीं है, 'आद्याशक्ति' की आय पर ही उनका भरोसा है। 'आद्याशक्ति' की ग्राहक-संख्या कम से कम दूनी हुए बिना उन्हें अन्न बिना प्राण देना होगा। इस प्रकार छल करके कुछ ग्राहक बढ़ा लेंगे।

कालिकादीन की बुद्धि देख कर हम दङ्ग हो गये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ भरोसा भी हुआ। हमने कहा—आइने की दराज़ में हमारा फ़ोटोग्राफ़ है। उसे भीतर से मँगवा लेना और जीवनचरित के साथ हमारी तसवीर भी छाप देना। किन्तु मरने की बात ज़ाहिर कर देने कहते हो,—घरवाले रो रोकर अस्थिर न हो जायँगे।

"उनसे एकान्त में सच बात कह दूँगा। किन्तु दुनिया को दिखाने के लिए थोड़ा बहुत रोने-पीटने का अभिनय तो करना ही होगा।"

हम—अच्छा, यह हुआ। किन्तु जब हम बरस-दो बरस पीछे वहाँ साक्षात् पहुँचेंगे तब लोगों को क्या उत्तर देंगे?

कालिकादीन—तब यह प्रकट किया जायगा कि कई दुर्वृत्तों ने साजिश करके आपको एकाएक पकड़ कर तिब्बत या चीन—ऐसी ही एक जगह—पहुँचा दिया था। अब वहाँ से छुटकारा मिलने पर स्वदेश को लौटे हैं। अमुक संख्या से, आपका इन दो वर्षों का आत्म-चरित लगातार प्रकाशित होगा। उस कहानी के पढ़ने से पाठक युगपत् हर्ष, क्रोध और विस्मय में मग्न हो जावेंगे—वह सैकड़ों उपन्यासों का घनीभूत सार है—इत्यादि कह कर और भी खूब ग्राहक बढ़ा लेने का उद्योग किया जायगा।

"इसके पश्चात्?"

"उस ढँग के एक उपन्यास की रचना मैं इसी बीच कर रक्खूँगा।"

हमने सोचा, भाग्य से कालिका को साथ लेते आये थे। जो यह साथ न होता तो ये बातें कौन सिखलाता! हमारी बुद्धि तो लुप्त हो गई है। फिर पूछा—अच्छा, यह भी हुआ, अब भागने की हिकमत बताओ।

"बतलाता हूँ"—कह कर उसने टाइम-टेबिल निकाला। लालटेन तेज़ कर दी। कुछ मिनिट तक झुका झुका टाइम-टेबिल के पन्ने उलट-पलट कर बोला—अच्छा, कैन्टूनमेण्ट से पौने दस बजे एक पैसेञ्जर गाड़ी छूटेगी। राजामण्डी स्टेशन पर वह दस बज कर तीन मिनट पर पहुँचेगी और दस मिनिट पर वहाँ से खुलेगी। राजामण्डी स्टेशन पर आप उसी गाड़ी में सवार हो जायँ। बस, पश्चिम जाने के लिए, आप लम्बे हो जाइए।

"इसके बाद कल सवेरे आकर पुलिस तुमसे न पूछेगी? तब तुम क्या कहोगे?"

"कहूँगा—'आप प्रयागराज को लौट गये हैं।' 'आपको गिरफ़्तार करने के लिए बड़े बड़े स्टेशनों को पुलिस तार देगी! मरे ढूँढ़ते ढूँढ़ते।"

घड़ी निकाल कर देखा तो साढ़े नौ का समय था। हमने कहा—अब और देरी हुई तो काम न बनेगा। तो अब चलना चाहिए। हमने एक छोटे से बैग में अत्यावश्यक दो-चार चीज़ें ले लीं—रुपया-पैसा अण्टी में रख लिया। फिर कहा—कपड़े पहनो। हमें गाड़ी में बिठा आओ।

कालिकादीन—हमें भी चलना होगा?

हमने कातर हो विनती के स्वर में कहा—कालिका, तुम साथ न रहो तो हमारे हाथों-पैरों में ताक़त ही न रहे।

कालिकादीन कपड़े पहनने लगा। दोनों हाथों से उसका दाहिना हाथ पकड़ कर हमने कहा—"कालिका, तुम हमारे लड़के तो नहीं हो, किन्तु हमारे लड़के की ही तरह हो। तुम्हारे भरोसे हमारी सारी गृहस्थी, बाल-बच्चे और व्यवसाय है। देखो, हमारी स्त्री और बेटे-बेटियों को कोई कष्ट न हो!" आँसुओं की बाढ़ में हमारी आँखें डूब गईं।

कालिकादीन की आँखें भी डबडबा आईं। उसने कहा—"मुझको ये बातें सिखानी न होंगी। लाइए, आपके पैर तो छू लूँ।" उसने हमारे युगल चरणों की वन्दना की। उसकी आँखों से टप टप आँसू गिरने लगे।

भली भाँति आँखें पोंछ कर और यथासाध्य सावधान होकर हम हाथ में बैग लेकर खड़े हो गये। हमने कहा—अरे भाई, हमको इस असमय में जाते देख कर महल के मुनीम को सन्देह न होगा? हमको भागते जान कर यदि वह उसे ख़बर दे आवे?

कालिकादीन—"हम ऐसा उपाय करते हैं जिसमें उसको सन्देह न हो। बैग हमारे हाथ में दीजिए।" वह दरवाज़ा खोल कर बाहिर आया। मुनीम को बुला कर बोला—मुनीम साहब, भूख लगी है। सोचता हूँ, बाज़ार से फल-फलहरी और दालमोठ इस बैग में भर लाऊँ। मेवा-फ़रोश की दूकान खुली होगी न?

"हाँ साहब, खुली होगी। सब चीज़ें मिल जायँगी।"

"अच्छा, हम दोनों आदमी जाकर लिये आते हैं। तुम्हारा फाटक कै बजे तक खुला रहता है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ग्यारह बजेवाली गाड़ी के मुसाफ़िरों की प्रतीक्षा करके फिर फाटक बन्द किया जाता है।"

"तो हम उससे पहले ही लौट आवेंगे। देखो, हमारे लौटने से पहले ही कहीं फाटक न बन्द कर देना। परदेश है, हमें नाहक़ इधर उधर बर्बाद न होना पड़े।"

"नहीं साहब, आप बेफ़िक्र रहें। ग्यारह से पहले फाटक बन्द न होगा।"

हम बाहर निकल कर मोड़ पर पहुँचे। एक्का करके राजामण्डी स्टेशन पर उपस्थित हुए। टिकट लेकर प्लेटफ़ार्म पर पहुँचे ही थे कि धक धक करती हुई गाड़ी आ गई। कालिका ने कहा—कोई डर की बात नहीं है, गाड़ी सात मिनट ठहरेगी।

ड्योढ़े दर्जे की गाड़ी ज़रा अन्तर पर थी। उसी ओर आगे आगे हम और पीछे पीछे कालिकादीन चले। पास पहुँच कर देखा लालटेन के नीचे वही भीषण मूर्ति खड़ी है!

वह हमारी ओर एकटक देख कर, एक निमेष में ही पास आकर बोला—क्षमा कीजिएगा, श्रीपण्डित गङ्गाधरजी तिवारी श्रीमान् ही हैं?

अस्वीकार किस प्रकार कर सकते थे? आज प्रातःकाल से लेकर दोपहर पर्यन्त इसने हमें बड़ी बारीकी से पहचान लिया है। सोचा—हम कहीं भाग न जायँ, इस लिए ट्रेन के समय प्लेटफ़ार्म पर पहरा दे रहा है!

पीछे मुड़ कर देखा—कालिका ग़ायब है। हाय! इसी नराधम को हमने अपनी स्त्री और बेटे-बेटियों का भार सौंपा था!

हमें निरुत्तर देख कर उसने फिर पूछा—आप ही पण्डित गङ्गाधरजी तिवारी—'आद्याशक्ति' के सम्पादक हैं?

हमने उसके मुँह की ओर शून्यदृष्टि से देख कर कहा—"जी हाँ।" हमें चक्कर सा आने लगा—देह बेक़ाबू हो गई।

इसके बाद उसने क्या कहा, हम कुछ समझ नहीं सके। चारों ओर अन्धकार सा देख कर बेसुध हो गये।

❊ ❊ ❊ ❊

होश होने पर देखा—वेटिंग रूम के टेबिल पर लेटे हुए हैं, देह पानी से तर है। एक ओर कालिका और दूसरी ओर वही आदमी दोनों खड़े खड़े पङ्खा झल रहे हैं। समीप ही ओषधियों का बक्स खोले कई डाक्टर बैठे हैं।

हमारे आँख खोलते ही कालिकादीन ने कहा—पण्डितजी, अब कैसी तबीअत है? मैंने तो उसी समय कहा था—आपका शरीर दुर्बल है, आज रात की गाड़ी में जाना ठीक नहीं। भाग्य से हमारे बाबू काशीप्रसाद मौजूद थे—इन्हें आप पहचानते हैं न?—हमारी 'आद्याशक्ति' के लेखक बाबू काशीप्रसाद—आप बेसुध होकर गिर ही रहे थे कि इन्होंने सँभाल लिया। यदि ये न सँभालते तो भारी चोट लगती।

हमारा माथा उस समय भी ठण्डा न हुआ था। क्षीण स्वर से पूछा—बाबू काशीप्रसाद?—कहाँ हैं?

जिसे हम दिन भर जासूस समझ कर भड़क रहे थे उसी को 'यही तो हैं' कह कर कालिका ने दिखला दिया।

अब समझ में आया कि भारी भूल हुई थी—भय का तो कोई कारण ही नहीं है। आराम से आँखें मूँद लीं।

कोई दो घण्टे में जी ठिकाने हुआ। जाग कर तब समस्त बातें सुनी। बाबू काशीप्रसाद हमारी 'आद्याशक्ति' के एक प्रधान लेखक हैं। बलिया में वकालत करते हैं—किन्तु प्रत्यक्ष मिलने-जुलने का कभी अवसर नहीं मिला। छुट्टियों में ये भी सैर करने निकले हैं। प्रयाग में हमारे दफ़्र में मैनेजर से इनको मालूम हुआ था कि—हम अमुक तारीख़ से अमुक तारीख़ तक आगरे में पतरिया महल में ठहरेंगे। ताज और एतमादुद्दौला में हमें देख कर उन्हें विश्वास हो गया था कि आद्याशक्ति के सम्पादक हमीं हैं। क्योंकि हमारा दिया हुआ एक फ़ोटो उनके घर में है। फिर भी वे सङ्कोच-वश वहाँ हमसे पूछ न सके। फिर पतरिया महल में जाकर रजिस्टर में हमारा नाम और पता देखने से उन्हें निश्चय हो गया। हमें निद्रित समझ कर वे जगाने का निषेध कर आये थे। सोचा था कि दूसरे दिन महल में पहुँच कर हमें अचम्भे में डाल देंगे, इसी लिए इस सम्बन्ध की बातें गुप्त रखने के लिए महल के मुनीम को ताक़ीद कर गये थे। पुलिस-दफ़्र के बड़े बाबू गङ्गाप्रसाद इनके मामा हैं—उन्हीं के घर ठहरे हैं। गोकुलपुरा में प्रोफ़ेसर जड़ी-बूटिया के यहाँ दावत थी। भोजन करके इस ट्रेन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौट रहे थे। इनके मामा का मकान बिल्लोचपुरा स्टेशन से बिलकुल ही समीप है।

अन्त में फिर एक बार कालिका की बुद्धि की प्रशंसा की। उसने हमें साफ़ बचा दिया। हमारी मूर्च्छा के कारण को बाबू काशीप्रसाद ज़रा भी नहीं जान सके।

बाबू काशीप्रसाद के साथ आनन्दपूर्वक कई दिन आगरे में बिताये। उनके मामा साहब की सिफ़ारिश से क़िला देखने के लिए पास भी मिल गया। आगरे से दिल्ली और गढ़मुक्तेश्वर की सैर करते हुए हम प्रयाग धाम में पहुँचे*।

लल्लीप्रसाद पाण्डेय

साहित्य-सुमन।

[१]

उपमा की व्यापकता।



प्पय-दीक्षित नाम के एक नामी पण्डित होगये हैं। संस्कृत-भाषा में प्रणीत, आपके अनेक ग्रन्थ प्रचलित हैं। अलङ्कार-शास्त्र पर आपके लिखे हुए दो तीन ग्रन्थ हैं। आपकी राय है कि ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होजाने पर इस विस्तृत विश्व का ज्ञान सहज ही में जैसे हो जाता है वैसेही अकेले उपमालङ्कार का सम्यक् ज्ञान हो जाने से अन्य अलङ्कारों का रहस्य ज्ञात हो जाने में विशेष बाधा नहीं आती। उपमा को आप नटी समझते हैं। भिन्न भिन्न शब्दार्थों की भूमिका ग्रहण करके, अनेक वेश-धारणपूर्वक, काव्य-रूप रङ्ग-मञ्च पर वही अपना नाच दिखाती और रसिकों के हृदयों का रञ्जन करती है। इस बात पर यदि किसी को विश्वास न हो तो, अप्पय-दीक्षित के दिखाये उपमा के करिश्मे स्वयं ही देख ले। यथा—

(१) मुख चन्द्रमा के सदृश है—इस प्रकार का सादृश्य-वर्णन उपमालङ्कार है। उक्तिभेद से अब इसी उपमा का बहुरूपियापन देखिए—

(२) चन्द्रमा के सदृश मुख है। और मुख के सदृश चन्द्रमा है—यह उपमेयोपमालङ्कार है।

(३) मुख मुखही के सदृश है—यह अन्वयालङ्कार है।

(४) चन्द्रमा मुख के सदृश है—यह प्रतीपालङ्कार है।

(५) चन्द्रमा को देख कर मुख का स्मरण होता है—यह स्मरणालङ्कार है।

(६) मुख ही चन्द्रमा है—यह रूपक है।

(७) मुखचन्द्र से सन्ताप शान्त होता है—यह परिणामालङ्कार है।

(८) क्या यह मुख है या चन्द्रमा है?—यह सन्देहालङ्कार है।

(९) चन्द्रमा समझ कर मुख की ओर चकोर दौड़ पड़ते हैं यह भ्रान्तिमान अलङ्कार है।

(१०) मुख को चकोर तो चन्द्रमा और चञ्चरीक कमल समझते हैं—यह उल्लेखालङ्कार है।

(११) मुख नहीं, यह तो चन्द्रमा है—यह अपह्नुति नाम का अलङ्कार है।

(१२) चकोर चन्द्रमा पर और मैं उस मुख पर अनुरक्त हूँ—यह प्रतिवस्तूपमालङ्कार है।

(१३) आकाश में चन्द्रमा, भूमि पर वह मुख—यह दृष्टान्तालङ्कार है।

(१४) मुख चन्द्रमा की शोभा को धारण कर रहा है यह निदर्शनालङ्कार है।

---

* श्रीयुक्त बाबू प्रभातकुमार मुखोपाध्याय बार-एट्-ला की "गल्प-बीथि" से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१५) निष्कलङ्क मुख चन्द्रमा से अधिक विशेषता रखता है—यह व्यतिरेकालङ्कार है।

(१६) मुख के आगे चन्द्रमा निष्प्रभ है ("मुखस्य पुरतश्चन्द्रो निष्प्रभः")—यह अप्रस्तुत प्रशंसा है।

दीक्षितजी ने तो भूमिका-भेद से उपमा के और भी नाच दिखाये हैं, पर हमने नमूने के तौर पर उनमें से कुछही का निदर्शन यहाँ पर किया है। दीक्षितजी अलङ्कार-शास्त्र के बड़े भारी ज्ञाता थे। पहले तो आपने जयदेव कवि के चन्द्रालोक नामक ग्रन्थ को आधार मान कर अलङ्कार-शास्त्र पर एक ग्रन्थ लिखा और उसका नाम रक्खा कुवलयानन्द। उसमें आपने इस शास्त्र से सम्बध रखनेवाली बड़ी बड़ी बारीकियाँ बताई हैं। कवियों की उक्तियाँ ढूँढ़ ढूँढ़ कर आपने कहीं कहीं ऐसी बाल की खाल खींची है कि पढ़ कर बड़ा कौतूहल होता है। "मुख इव चन्द्र" एक बात हुई। "मुख एव चन्द्र" और ही बात होगई! 'इव' की जगह 'एव' होजाने से आकाश-पाताल का अन्तर हो गया। पर जहाँ बहुत ही कम अन्तर है वहाँ भी आप शास्त्रार्थ करने और नये-पुराने मतों का तारतम्य बताने से नहीं चूके। कितने ही अलङ्कारों के दो दो, तीन तीन, चार चार—यत्र तत्र इससे भी अधिक भेद बता कर बेतरह बात का बतङ्गड़ किया है, जिसे देख कर अक्ल चकरा जाती है। पर इसे दोष न समझिए। उस ज़माने में यह गुण समझा जाता था।

इतना करके भी दीक्षितजी को सन्तोष न हुआ। तब आपने चित्रमीमांसा नाम का एक और ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया। उसमें आपने काव्य के तीन भेद किये—ध्वनि, गुणीभूतव्यङ्ग्य और चित्र। पहले दो को तो आपने छोड़ दिया, पिछले अर्थात् चित्र की मीमांसा पर लेखनी उठाई। मनुष्य के हृद्गत विकारों का चित्र शब्दार्थ द्वारा प्रकट करना भी एक प्रकार का चित्र है। इसी से आपने इसे भी काव्य का एक भेद माना। जिस उक्ति में न तो ध्वनि हो, न गुणीभूत-व्यङ्ग्य ही हो; पर हो वह सुन्दर ('चारु') वही चित्र है। आपने उसके भी तीन भेदों की कल्पना की—शब्दचित्र, अर्थचित्र, उभयचित्र। इन्हीं तीन भेदों का आश्रय लेकर, आपने फिर उसी निज-कृत कुवलयानन्द के अलङ्कारों की मीमांसा, नये ढंग से, विस्तार के साथ, आरम्भ कर दी। परन्तु किसी कारण से आपका यह ग्रन्थ पूरा न हो सका। अतिशयोक्ति नाम के अलङ्कार ही की मीमांसा तक रह गया। यह भी सम्भव है कि उन्होंने इस ग्रन्थ को पूर्ण कर दिया हो, पर पूरा अप्राप्य हो गया हो। काव्यमाला में तो वह अपूर्ण ही प्रकाशित हुआ है।

[२]

पुरानी समालोचना का एक नमूना।

अप्पय-दीक्षित द्रविड-देश के निवासी थे और जगन्नाथ पण्डितराज तैलङ्ग-देश के। पर पण्डितराज की अधिकांश आयु देहली, मथुरा और काशी ही में बीती।

नहीं मालूम क्यों, पण्डितराज जगन्नाथ दीक्षितजी से खार सा खाये रहते थे। सम्भव है, अप्पय-दीक्षित की अलङ्कार-शास्त्रज्ञता-सम्बन्धिनी कीर्ति उन्हें खली हो; क्योंकि पण्डितराज के ग्रन्थों से यह साफ़ ज़ाहिर है कि वे थे बड़े अभिमानी। पण्डितराज ने रसगङ्गाधर नाम का एक बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया और अप्पय-दीक्षित के चित्रमीमांसा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ से कई गुना अधिक विस्तृत बना कर आपने भी किसी कारण से उसे अपूर्ण ही छोड़ दिया। अप्पय-दीक्षित की पुस्तक चित्र-मीमांसा अपूर्ण! तो मेरी पुस्तक रसगङ्गाधर भी अपूर्ण! चाहे पण्डितराज का ग्रन्थ और ही किसी कारण से अपूर्ण रह गया हो, पर इन दोनों के सम्बन्ध को विचार करके यदि कोई यह सम्भावना करे कि दीक्षितजी की होड़ करने ही के लिए उन्होंने भी अपने ग्रन्थ को अपूर्ण ही रहने दिया तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता।

रसगङ्गाधर में पण्डितराज जगन्नाथ ने, रसों और अलङ्कारों आदि के विवेचन में, अपने पूर्ववर्ती पण्डितों के सिद्धान्तों की .खूब ही जाँच की है और अपनी बुद्धि का निराला ही चमत्कार दिखाने की चेष्टा की है। ग्रन्थारम्भ करने के पहले ही आपने यह क़सम खाली कि मैं उदाहरण-रूप में औरों के श्लोक तक ग्रहण न करूँगा; .खुद अपनी ही रचनाओं के उदाहरण दूँगा। इसे आपने निभाया भी .खूब। इस ग्रन्थ में जगन्नाथराय ने अप्पय-दीक्षित की बड़ी ही छीछालेदर की। बात बात पर दीक्षितजी की उक्तियों और सिद्धान्तों का निष्ठुरतापूर्वक खण्डन किया; उनकी दिल्लगी उड़ाई; कहीं कहीं तो उनके लिए अपशब्द तक कह डाले। लो, अलङ्कार शास्त्री बनने का करो दावा! मैं तो मैं, दूसरा कौन इस विषय का ज्ञाता हो सकता है! बात शायद यह।

अप्पय-दीक्षित की इतनी ख़बर लेकर भी जगन्नाथराय को सन्तोष न हुआ। रसगङ्गाधर में दिखाये गये अप्पय-दीक्षित के दोषों का संक्षिप्त संग्रह उन्होंने उससे अलग ही निकाला और चित्र-मीमांसा-खण्डन नाम देकर उसे एक और नई पुस्तक का रूप प्रदान किया। उसके आरम्भ में आप फ़रमाते हैं—

रसगङ्गाधरे चित्रमीमांसाया मयोदिताः।
ये दोषास्तेऽत्र संक्षिप्य कथ्यन्ते विदुषां मुदे॥

सो पण्डितराज ने यह संक्षिप्त संग्रह विद्वानों को प्रसन्न करने के लिए प्रकट किया! उन्होंने कहा होगा कि यदि विद्वज्जन इतना बड़ा ग्रन्थ, रसगङ्गाधर पढ़ने की तकलीफ़ गवारा न करेंगे तो अप्पय-दीक्षित की दुर्दशा का दृश्य भी उन्हें देखने को न मिलेगा। यदि ऐसा हुआ तो मेरे श्रम का सर्वांश न सही, अल्पांश ज़रूर ही व्यर्थ हो जायगा। अतएव, लाओ, उन दोषों को थोड़े में अलग ही लिख डालें। यदि कोई विद्वान् घंटा भर भी समय दे सकेगा तो उतने ही में उसे मेरे पाण्डित्य और दीक्षितजी के अपाण्डित्य का परिचय मिल जायगा। सो बहुत सम्भव है, इस चित्रमीमांसा-खण्डन की सृष्टि कुछ कुछ ऐसे ही विचारों की प्रेरणा से हुई हो।

जगन्नाथराय की एक प्रतिज्ञा का उल्लेख ऊपर हो चुका है—"मैं किसी दूसरे का बनाया हुआ श्लोक रसगङ्गाधर में उद्धृत न करूँगा"। क्योंकि मैं किसी का उच्छिष्ट छूता तक नहीं। दूसरी प्रतिज्ञा आपने चित्रमीमांसा-खण्डन के आरम्भ में इस प्रकार की—

सूक्ष्मं विभाव्य मयका समुदीरितानामप्पय्यदीक्षितकृताविह दूषणानाम्।
निर्मत्सरो यदि समुद्धरणं विदध्यादस्याहमुज्ज्वलमतेश्चरणौ वहामि॥

अप्पय-दीक्षित के जो दोष मैंने इस पुस्तक में दिखाये हैं उनका समुद्धार, मत्सरता छोड़ कर, यदि कोई कर देगा तो मैं उस विमलमति महात्मा के पैर छूने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या पैर मलने को तैयार रहूँगा। पण्डितराज ने शर्त कितनी अच्छी रक्खी है। उद्धार की चेष्टा करनेवाले को उसी तरह निर्मत्सर होना चाहिए जैसे स्वयं पण्डितराजजी हैं!

अब पण्डितों के राजराजेश्वर के खण्डन का एक नमूना देखिए। ऊपर अप्पय-दीक्षित ने उपमा को नटी मान कर भूमिका-भेद से उसके कई नृत्य दिखाये हैं। उनमें से नम्बर (१६) में अप्रस्तुत-प्रशंसा का उदाहरण दिया गया है। अप्पय-दीक्षित की मूल उक्ति है—

"मुखस्य पुरतश्चन्द्रो निष्प्रभः"

बस, पण्डितराज को बेज़ार कर देने के लिए दीक्षितजी की यह इतनी छोटी रचना काफ़ी से अधिक हो गई। उपमा-प्रकरण के अन्य दोष तो आपने पीछे से दिखा कर दीक्षितजी की बुरी तरह ख़बर ली, पहले आपने उन्हें व्याकरणज्ञता से भी ख़ारिज कर देना चाहा। आपका आशय यह जान पड़ता है कि जिसे संस्कृत-भाषा में एक सतर भी शुद्ध शुद्ध लिखना नहीं आता वह अलङ्कार-शास्त्र पर भला ग्रन्थ कैसे लिख सकेगा!

पूर्वोक्त वाक्य में अप्पय-दीक्षित ने एक पद 'पुरतः' लिखा है। पण्डितों के राजा की आज्ञा है कि वह "व्याकरण-अविमर्श-निबन्धन" का नमूना है। आप फ़रमाते हैं कि 'पुर' शब्द का अर्थ है नगर। और इसी पुर शब्द से तसिल् प्रत्यय किया तो पुरतः हुआ। उसका अर्थ है—"नगर से"। अतएव, द्रविड़-पुङ्गवजी, बतलाइए, आपके इस वाक्य की सङ्गति कैसे हो? उसका अर्थ क्या यह न हुआ—"मुख के नगर से चन्द्र निष्प्रभ!!!" वाह रे वैयाकरण! धन्य रे अलङ्कार-शास्त्री!

पण्डितराज की आज्ञा आप समझे? "पुरतः" पद को अप्पय-दीक्षित ने अव्यय समझा और उसका अर्थ किया "आगे।" अतएव आपके वाक्य का अर्थ हुआ—मुख के आगे चन्द्रमा निष्प्रभ है। पर पण्डितराज फ़रमाते हैं कि आगे, सामने या पूर्व के अर्थ में पुर शब्द कभी आता ही नहीं—("नहि पूर्ववाचकः पुरशब्दः क्वापि श्रूयते")—अप्पय-दीक्षित "पुरतः" को अव्यय मान कर उसका प्रयोग करते हैं; पण्डितराज ज़बरदस्ती उसे 'पुर' शब्द से बना हुआ मानते और बेचारे दीक्षित को फटकार पर फटकार बताते हैं—"आगे" अर्थ में "पुरतः" ग़लत; "पुरः" सही। देख, इसी लिए महाकवि-कालिदास ने लिखा है—

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुम्

तूने जो लिखा है—"पुरतो हरिणाक्षीणामेष पुष्पायुधीयति"। "पुरतः" के कारण वह भी "अपशब्द कलुषित" है। और, राम भला करे, जिन्होंने लिखा है—

(१) आत्मीयं चरणं दधाति पुरतः
तथा
(२) पुरतः सुदती समागतं माम्

उन लोगों को भी व्याकरण का ज्ञान नहीं।

पण्डितराज की यह झाड़-फटकार सुन कर उनके टीकाकार नागेशभट्ट ने निर्मत्सर होकर पढ़नेवालों से यह प्रार्थना की है कि बहुतों के मत में निपात ("निपाताङ्गीकारात्") से पुरतः पद भी सही है और आगे या सामने के अर्थ में पण्डितराज के भक्ति-भाजन महाकवि कालिदास ने ही उसका प्रयोग भी किया है। देखिए—

इयञ्च तेऽन्या पुरतो विडम्बना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवभूति ने भी लिखा है—

पश्यामि तामित इतः पुरतश्च पश्चात्

इस सम्बन्ध में, इस नोट का लेखक भी अपनी तरफ़ से महावैयाकरण भर्तृहरि का एक उदाहरण देता है—

यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः

ख़ैर व्याकरण की पक्की कसौटी पर कसने से "पुरतः" ग़लत ही क्यों न साबित हो; अनेक अन्य कवियों ने भी तो उसे उसी अर्थ में लिखा है जिस अर्थ में दीक्षितजी ने लिखा है। अतएव उनको इस इतने दोष के कारण व्याकरण-ज्ञान-शून्य बताना पण्डितराज की निर्मत्सरता का पूरा प्रमाण है। कालिदास का 'पुरः' तो आपको झट याद आगया, परन्तु कुमार-सम्भव में प्रयुक्त "पुरतः" याद न आया! इससे अधिक निर्मत्सरता और क्या हो सकती है?

इन बातों से सूचित है कि अप्पय-दीक्षित और जगन्नाथराय के ज़माने में भी यदा कदा वैसे ही मृदु, मधुर, सच्ची और निर्दोष समालोचनायें होती थीं जैसी कि आज-कल बहुधा देखने में आती हैं।

[३]

कालिदास और व्यास।

पुराने पण्डित परम्परा से एक कथा सुनते चले आते हैं। उनकी उस कथा को, आज-कल की भाषा में, चाहे आप गप ही क्यों न समझें; तथापि उसे सुन लेने में हर्ज नहीं। वह इस प्रकार है—

एक दफ़े महाकवि कालिदास तीर्थ-यात्रा करने निकले। तीर्थाटन करते करते वे एक ऐसे तीर्थ में पहुँचे जहाँ व्यासदेव की एक विशाल मूर्त्ति थी। व्यासजी पद्मासन लगाये बैठे थे। कुछ कुछ ध्यानस्थ से थे। कमर के ऊपर का भाग निर्वस्त्र था। कन्धे पर पड़ा हुआ जनेऊ शोभा दे रहा था। पेट तुन्दिल था; तोंद कुछ आगे को निकली हुई थी। कालिदास के साथ उस तीर्थ के एक पण्डाजी महाराज थे। मूर्ति के पास आते ही पण्डाजी ने कहा—ये वेदव्यास हैं। यह सुन कर कालिदास ने मूर्ति को बड़े ग़ौर से देखा। वे कुछ मुसकराये। उन्होंने व्यासजी की तोंद पर हाथ से, धीरे से, एक थपकी लगाई और यह कह कर प्रणाम किया—

"चकारजठरे नमः"

जितने पुराण हैं, सब व्यास के ही बनाये समझे जाते हैं। उनमे श्लोकों की पादपूर्ति के लिए चकार (च-वर्ण) का ख़ूब प्रयोग है। कोई पृष्ठ ऐसा न मिलेगा जिसमें दो-चार, दस-पाँच, और कभी कभी इससे भी अधिक चकार न हों। कालिदास को यह बात बहुत खटकती थी। व्यासजी का पेट देख कर उन्हें उनके चकार-बाहुल्य का स्मरण हो आया। उन्होंने मन ही मन कहा, क्या इस तोंद के भीतर चकार ही चकार भरे पड़े हैं जो लाखों चकार निकल जाने पर भी वह अभी तक पचका नहीं। उनकी वह थपकी और गुस्ताख़ी से भरी हुई उनकी वह उक्ति व्यासदेव को नागवार गुज़री। इससे उन्होंने कालिदास को सज़ा देनी चाही। सज़ा यह दी कि थपकी लगाने के साथ ही कालिदास का दाहना हाथ व्यासजी के पेट पर वहीं चिपक रहा।

अब दिल्लगी देखिए। कालिदास ने ख़ूब ज़ोर लगा कर हाथ खींचा। दाहने झुक कर खींचा; बायें मुड़ कर खींचा; मूर्ति के पादपीठ पर पैर लगा कर ज़ोर किया। मगर उनकी एक न चली। हाथ न छूटा। और भी बहुत लोग जमा हो गये। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास के हाथ को यहाँ तक खींचा कि उसके उखड़ जाने की नौबत आने को हुई। पर हाथ जहाँ था वहीं रहा। काट कर हाथ को अलग करने से तो महाकवि की शायद मौतही आ जाती। इससे छेनी और हथौड़ा मँगाया गया और यह ठहरी कि लाओ मूर्ति के उतने अंश को तराश कर हाथ छुड़ा लें। छेनी चली। उसकी चोट खाकर मूर्ति से आवाज़ आई ठन। छेनी टूट गई। पर मूर्ति पर उसकी चोट का चिह्न तक न हुआ। लाचार लोगों ने हार मानी। कालिदास के काटो तो ख़ून क्या पसीना भी नहीं। उनके होश उड़ गये। उनकी यह दशा देख, मूर्ति खिलखिला कर हँस पड़ी। व्यासजी बोले—

क्यों कविजी, बड़ों के अपमान का फल मिल गया! ख़बरदार, अब कभी ऐसी गुस्ताख़ी न करना! मेरी एक समस्या है। उसकी पूर्ति कर दो, तो हाथ छूट जाय। समस्या यह है—

"त्रितयं त्रितयं त्रिषु"

कालिदास ने व्यासजी से बहुत गिड़गिड़ा कर क्षमा माँगी और उनकी समस्या की पूर्ति इस प्रकार की—

पतिश्वसुरता ज्येष्ठे पतिदेवरताऽनुजे ।
पाञ्चाल्यास्त्ववशिष्टेषु त्रितयं त्रितयं त्रिषु ॥

पाञ्चाली, अर्थात् द्रौपदी, पाँच पाण्डवों की पत्नी थी। उन पाँचों की अलग अलग अवधि निश्चित थी। पति-भाव तो पाँचों ही के विषय में चरितार्थ था। पर जब वह युधिष्ठिर के सिवा अन्य चारों भाइयों की पत्नी होती थी तब जेठे होने के कारण युधिष्ठिर उसके ससुर भी बन जाते थे। इसी तरह जब वह युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और नकुल के साथ पत्नी-भाव रखती थी तब सबसे छोटे भाई सहदेव पति होने के सिवा रिश्ते में देवर भी हो जाते थे। रहे मँझले भाई, सो इसी तरह का सम्बन्ध लगाने से, बारी बारी से, वे द्रौपदी के पति, ससुर और देवर, इन तीनों ही रिश्तों के हक़दार हो जाते थे। बस, कालिदास की समस्या-पूर्ति का यही मतलब है। कालिदास की पहली उक्ति और इस पूर्ति में यदि कोई पाठान्तर अथवा व्याकरण या काव्यविषयक, या और ही कोई दोष हो तो वह कालिदास का न समझा जाय; यथापूर्व सुनते चले आनेवाले पण्डितों का समझा जाय।

महाकवि की यह पूर्ति वेदव्यास को बहुत पसन्द आई; उन्होंने उन्हें परीक्षा में पास समझा और कृपा करके उनका हाथ छोड़ दिया। तब से कालिदास ने तोबाह किया और फिर कभी किसी बड़े बूढ़े की दिल्लगी नहीं उड़ाई।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

चारु चयन ।

१—जन्म-भूमि ।

जनमभूमि जननी,
करमभूमि जननी,
धरमभूमि जननी,
जय विश्वतारिणी।

(१)

तेरे निर्मल गगन माँहि,
चन्द्र सूर्य नक्षत्र माँहि,
छटा अनुपम सब दिखाँहि,
ज्योतिधारिणी।
जय ज्योतिधारिणी
जनमभूमि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

वीरतन्त्र तव दिव्य यन्त्र,
तेरे अद्भुत शक्ति-मन्त्र,
करते किसको न स्वतन्त्र,
विघ्नवारिणी।
जय विघ्नवारिणी
जनमभूमि—

(३)

तेरे रज में श्रीनिवास,
आत्मज्योति का वह विकास,
शरद पूनम दिव्यरास,
सतविहारिणी।
जय सतविहारिणी
जनमभूमि—

(४)

आर्यजातिजन सब महान,
हिन्दू जैन औ मुसलमान,
तव ध्वज को नमें देवें मान,
जग-उद्धारिणी।
जय जग-उद्धारिणी
जनमभूमि जननी
करमभूमि जननी
धरमभूमि जननी
जय विश्वतारिणी !

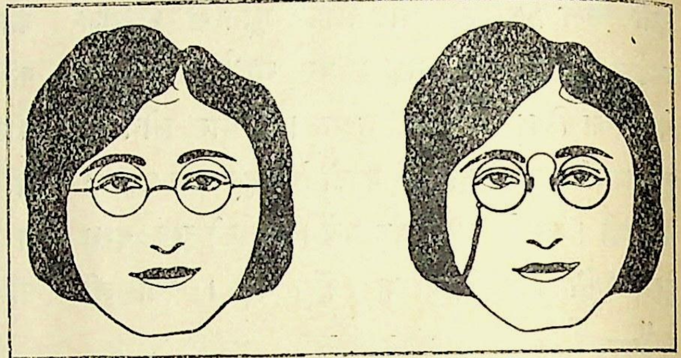
श्रीगिरिधर शर्मा

२—चश्मा और ख़ूबसूरती।

भारतेन्दु से किसी विद्वान् ने लिखने-पढ़ने के काम के लिए एक चश्मा इन शब्दों में माँगा था—

"खसमामुखी के मुख भसमा लगाइबे को एहो धनाधीस ! हमें चाहत एक चसमा !"

प्रकृतिमुखरा सरस्वती के मुख पर उस चश्मे की सहायता से उक्त विद्वद्वर ने स्याही ज़रूर पोती होगी, पर यह जानने का कोई साधन नहीं है कि चश्मे ने उनके मुख की सुन्दरता बढ़ाई या उसकी विरूपता की वृद्धि की। साधारणतः लोग चश्मे को 'काम की चीज़' समझ कर ही आँखों पर लगाते हैं। हाँ, कुछ ऐसे भी हैं—हमारे देश में विशेषतः, विद्यार्थी और हाकिम हुक्काम—जो उसका उपयोग इस विचार से करते हैं कि यह हमारी योग्यता को दूसरों की दृष्टि में कहीं से कहीं बढ़ा देगा, इससे हमारा रोबदाब चौगुना नहीं तो दूना ज़रूर हो जायगा। पर कोई इस बात पर ध्यान नहीं देते—और देते भी हैं तो बहुत कम—कि चश्मे से हमारी मुखाकृति



चित्र नं० १।

बनती है या बिगड़ती है—अथवा इस पर कि इसके व्यवहार में किन नियमों की पाबन्दी करने से यह दृष्टि-साधन के साथ साथ शृङ्गार-साधन का भी काम दे सकता है।

चश्मा-भक्तों को डाक्टर फ्राङ्क जी० मर्फ़ी का कृतज्ञ होना चाहिए। "Be Beautiful in Glasses" नाम की एक पुस्तिका में इस अनुभवी नेत्र-चिकित्सक ने इस विषय का बड़ा ही सूक्ष्म और विशद विचार किया है कि चश्मों से ख़ूबसूरती किस तरह बढ़ाई जा सकती है। एक अमेरिकन पत्र में इस विषय पर एक मनोरञ्जक लेख प्रकाशित हुआ है। नीचे उसी का निचोड़ दिया जाता है:—

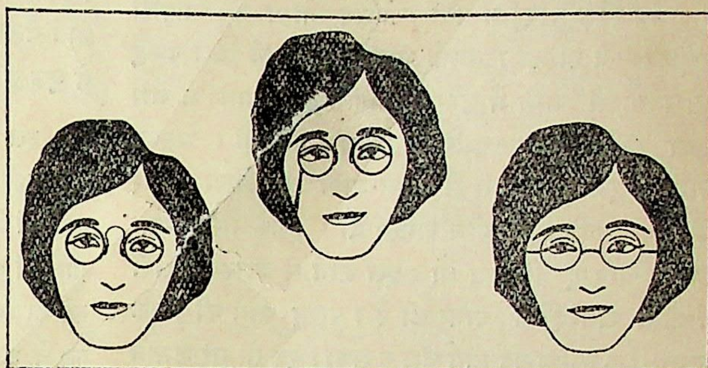
पदार्थों के वास्तविक रूप के सम्बन्ध में हमारी दर्शनेन्द्रिय कभी कभी भ्रमान्ध हो जाती है। इसका कारण पदार्थों के आकार-प्रकार की विशेषता होता है। रङ्ग और रेखाओं का एक रहस्य है जिसे जान कर आप तेज़ से तेज़ नज़र को धोखे में डाल सकते हैं। यदि एक ही नाप-जोख की दो चीज़ें हों, पर पहली का रंग हलका या सादा हो और दूसरी का गाढ़ा या स्याह तो दूसरी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

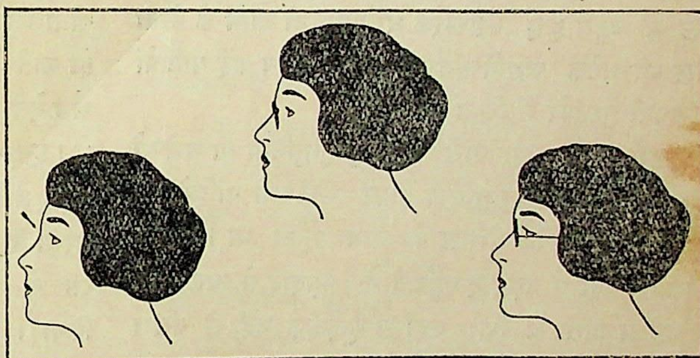
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षा पहली देखने में बड़ी जान पड़ेगी। फिर यदि समान आकार की दो वस्तुयें हों, पर पहली में तो एक सीधी रेखा किसी दिशा में खींची हो और दूसरी में न हो, तो उस दिशा में पहली वस्तु दूसरी की-अपेक्षा बड़ी मालूम होगी। अब मुखों की बात लीजिए। उनके सम्बन्ध में यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि सौ में शायद ही दो चार मुख ऐसे हों जिनकी आकृति में किसी प्रकार की त्रुटि न हो। अधिकांश मुखाकृतियां अवश्य ही मण्डना-पेक्षीण होती हैं। सच तो यह है कि उनके दोषों पर यदि किसी प्रकार का पर्दा न डाला जाय तो वह विरूपता का विज्ञापन देती फिरेंगी। और यही दोष चश्मों से बड़ी आसानी से छिपाये जा सकते हैं। हाँ, यह बात दूसरी है कि चश्मों का व्यवहार करने-वाले, अज्ञानवश उन्हें छिपाने के बदले उन्हें और भी प्रकट करते चलते हैं।

चश्मे कमानीदार होते हैं और बे-कमानी-दार भी। ऊपर कह चुके हैं कि रेखावाली वस्तु बिना रेखावाली वस्तु की अपेक्षा बड़ी जान पड़ती है—उस रेखा की दिशा में। ऐसी हालत में, साधारणतया, जो मनुष्य कमानी-दार चश्मा लगावेगा उसका मुख देखने में कुछ ज़ियादा चौड़ा जँचेगा—क्योंकि वह उस कमानी-रूपी रेखा की दिशा में कुछ बढ़ सा जायगा। यदि बात ऐसी है तो जिसका मुँह गोल हो उसे क्या करना चाहिए? स्पष्ट है कि यदि वह ऐसे चश्मे का उपयोग करेगा तो उसका मुँह और भी अधिक चौड़ा नज़र आने लगेगा। उसका मुँह यों ही काफ़ी से ज़ियादा चौड़ा है, उसे तो ज़रूरत है अपनी मुखाकृति का यह दोष छिपाने की। अतएव, उसे बे-कमानीदार चश्मा लगाना चाहिए। सम्भवतः उस चश्मे के "शीशों" की कोर का रङ्ग भी ज़रा स्याह या गाढ़ा होना चाहिए। चित्र नं० १ देखिए। एक ही चेहरे के दो नक़्शे हैं। पर पहले में चश्मे की 'पड़ी' रेखाओं ने उसकी चौड़ाई बढ़ा सी दी है और इसलिए वह और बदसूरत नज़र आता है। पर दूसरे में चश्मे की 'खड़ी' रेखाओं ने मुँह के इस ऐब को किस ख़ूबी से छिपा लिया है। यह भी ध्यान रखने की बात है कि दूसरे में चश्मे की कोर स्याह है। चित्र नं० २ में उस मुख के दोषों का इलाज बताया है जो लम्बा और पतला है, पर जिसकी कनपटी चौड़ी



चित्र नं० २।



चित्र नं० ३।

है। पहले और दूसरे नक़्शों में मुँह की बदसूरती साफ़ दूर हो गई है—पर तीसरे में और भी बढ़ गई है। यहाँ भी रङ्ग और रेखाओं का वही रहस्य है। तीसरा चित्र छोटी नाक के दोष को छिपाने का उपाय बताता है। पहले नक़्शे का दोष दूसरे में चश्मे से ढक गया है, पर उसमें कमानी न होने के कारण सूरत में कुछ भद्दापन रह जाता है। यह दोष तीसरे नक़्शे में कमानीदार चश्मे से दूर हो गया है, यद्यपि नासिकाग्र को यह लोगों की दृष्टि में कुछ उठा सा देता है।

पाठकगण! किसी से याच्ञा करते समय नहीं, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूकान से ख़रीदते समय इस बात का पूरा ध्यान रखिएगा कि चश्मे का फ़्रेम ऐसा हो जो आपके मुख के सौन्दर्य से सहयोग करे, असहयोग नहीं।

पा —— ——

३—अठारहवीं सदी में भारत की यात्रा।

जब स्वेज़ नहर न बनी थी तब योरप के व्यापारी अफ़्रीका की परिक्रमा करके भारत को आते थे। परन्तु इस मार्ग से आने में पूरे छः महीने लग जाते थे और यात्रा विशेष आनन्ददायिनी भी न होती थी। अतएव लोगों ने एक दूसरे मार्ग से आना-जाना शुरू किया। इधर से उतना अधिक समय न लगता था। इसके सिवा यात्रा का भी आनन्द मिलता था। इस मार्ग से अठारहवीं सदी में बीसों अँगरेज़ों ने यात्रा की है। परन्तु मार्ग की अनेक बाधाओं के कारण यह मार्ग चल न सका। एक तो मुसलमान लोग अपने देश से होकर योरपीयों का आना जाना पसन्द न करते थे, दूसरे अरब की मरुभूमि और वहाँ का डाकू-दल भी बहुत कुछ कष्टकारक था। इन दो बातों के सिवा और भी अनेक असुविधायें थीं जिनका वर्णन कई यात्रियों ने अपनी पुस्तकों में किया है।

इस मार्ग से आनेवाले यात्री कुस्तुन्तुनिया या अलेप्पो होकर आते थे। कुस्तुन्तुनिया होकर आनेवाले यात्रियों को मरुभूमि पार करके मोसल को जाना पड़ता था। फिर वे टायग्रीज़ नदी से बग़दाद पहुँचते थे। बग़दाद से स्थल-मार्ग से हीला जाते थे, फिर वहाँ से यूफ़्रेटीज़ नदी से बसरा पहुँचते थे। जो व्यक्ति अलेप्पो होकर यात्रा करता था उसे इटली के किसी बन्दर से पहले मिस्र को आना पड़ता था। इस मार्ग से प्रसिद्ध यात्री-लेखक मेजर टेलर ने यात्रा की थी। उसने अपनी यात्रा का वर्णन लिखा है, जिसका कुछ अंश यहाँ दिया जाता हैः—

मेजर टेलर अपने दल के साथ १७८९ की २१ वीं अगस्त को लन्दन से रवाना हुए। वे अपनी गाड़ी से डोवर आये। यहाँ से १२ गिनी भारा देकर वे ओस्टेंड पहुँचे। तब अपनी गाड़ियों से योरप के भिन्न भिन्न देशों से होते हुए वे ८ वीं सितम्बर को वेनिस पहुँचे। ओस्टेंड से यहाँ तक आने में उनके सौ पौंड ख़र्च हुए। ज़ेंटी को जाने के लिए वे वेनिस में एक जहाज़ ठीक करने लगे। इस काम के लिए उन्हें तीन दिन रुकना पड़ा। ७१ पौण्ड देकर वे पहली नवम्बर को ज़ान्टी पहुँचे। यहाँ उन्होंने २०० गिन्नी देकर एक अँगरेज़ी ब्रिग किराये में लिया और १३ वीं नवम्बर को अलकज़ेंड्रेटा के लिए रवाना हुए। वहाँ वे २८ वीं नवम्बर को पहुँचे। यहाँ से टट्टुओं पर सवार हुए और उक्त प्रदेश की ऊबडखाबड़ पहाड़ी मार्ग को तय करके शाम होते होते बैलन पहुँचे। दूसरे दिन वे एन्टियाक आये और यहां वे एक सराय में ठहरे।

उस समय एशिया मायनर में योरोपीय यात्रियों के साथ सद्व्यवहार नहीं किया जाता था। अतएव जब टेलर अपने साथियों के साथ सराय के फाटक पर पहुँचा तब मुसलमानों ने गालियों से उनका स्वागत किया। यही नहीं, एक ने टेलर की स्त्री को झिकझोर कर घोड़े पर से उतार लिया। यहाँ से चल कर वे ४ दिसम्बर को अलेप्पो पहुँचे। वहाँ वे लोग १५ वीं दिसम्बर तक ठहरे रहे। इसी स्थान पर मरुभूमि की यात्रा का प्रबन्ध करना पड़ता था। जो लोग थोड़े ख़र्च में यात्रा करना चाहते थे वे किसी साधारण काफ़िले के साथ हो जाते थे। इसकी व्यवस्था वहां के अधिकारी करते थे और ऐसे काफ़िले के यात्रियों की रक्षा के उत्तरदायी होते थे। इन काफ़िलों की यात्री-संख्या कभी कभी हज़ार से ऊपर पहुँच जाती थी और ये समय समय पर तुर्क सरकार की संरक्षा में मरुभूमि की यात्रा करते ही रहते थे। साथ में स्त्री के होने से टेलर ने एक अपना काफ़िला तैयार किया। इसकी रक्षा के लिए पर्याप्त सिपाहियों का प्रबन्ध अरबियों के प्रधान शेख़ के एजंट ने कर दिया। यह व्यक्ति अलेप्पो में इसी काम के लिए नियुक्त रहता था। इस काम में जो धन प्राप्त होता था वह उन भिन्न भिन्न अरबी लोगों में बँट जाता था जो अलेप्पो से लेकर बसरा तक निवास करते थे। ये लोग इक्कीस जातियों में बँटे थे। टेलर को ४० सिपाही मिले। ये लोग बन्दूक और तेग़ से सुसज्जित रहते थे। प्रत्येक यात्री के लिए एक ऊँट और एक घोड़ा सवारी के लिए मिला। और १६ ऊँटों पर ख़ीमे, सामान और पानी लादा गया। मार्ग में इन्हें मांस गाँवों की भेड़ों या मरुभूमि के ख़रगोश से प्राप्त हो जाता था। अलेप्पो से बसरे तक आने में ३८० पौंड ख़र्च हुए। इनके सिवा कपड़े-लत्ते, खाना-पानी और गोली-बारूद का सङ्ग्रह करने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके १२० पौण्ड श्रौर लगे। वे वहाँ से १६ वीं दिसम्बर को रवाना हुए। उस महीने की रातों में वहाँ खूब सर्दी पड़ती है यहाँ तक कि तीसरे दिन की यात्रा में उन्हें जो चश्मा राह में मिला उसका जल तीन इञ्च मोटा जम गया था। वहाँ हथौड़े से बर्फ़ तोड़ कर बर्तनों में पानी भर लिया गया। वे लोग छठे दिन वास्तविक मरुभूमि में पहुँचे। चारों श्रोर पथरीली मरुभूमि ही देख पड़ती थी। कहीं एक पत्ती तक नज़र न पड़ती थी। यहाँ ऊँटों को जौ की रोटियाँ खाने को दी जाती हैं।

कुछ दिन यात्रा करने के बाद एक दिन जल की वृष्टि हुई। तब उन लोगों ने चट्टानों के गड्ढों से अपने बर्तनों में फिर जल का सङ्ग्रह किया। दूसरी जनवरी सन् १७६० को एक अरबी ने आकर शेख़ को यह सूचना दी कि कुछ ही दूर पर डाकुओं का एक बड़ा भारी दल ठहरा हुआ है। यह शेख़ टेलर के क़ाफ़िले का नेता था। उसने तुरन्त अपना एक जासूस दौड़ाया श्रौर काफ़िले को उसी स्थान पर ठहरने की आज्ञा दी। उस जासूस ने दूसरे दिन आकर ख़बर दी कि वह गिरोह व्यापारियों का क़ाफ़िला है। वे लोग छुहारे लाद कर अलेप्पो जाते हैं। चौथी श्रौर पाँचवीं जनवरी को इतनी ज़ोर की बारिश हुई कि उनका क़ाफ़िला उस दिन यात्रा न कर सका। मौसम की ख़राबी के कारण एक ऊँट बीमार हो गया, जिसे अरबी लोग हलाल करके खा गये। ११ वीं को उन लोगों को कुछ मीलों की दूरी से यूफ़्रेटीज़ के किनारे के वृक्षों के शिरोभाग दिखाई देने लगे। तेरहवीं को वे शुजातसुध पहुँचे। यहाँ का अरबी सरदार शेख़ अहमद प्रत्येक माल लदे ऊँट की चुङ्गी अलग लेता था। जब तलाशी लेने पर उसके कर्मचारियों को मालूम हुआ कि टेलर के ऊँटों पर माल नहीं लदा है तब वे बेचारे मन मार कर रह गये। परन्तु क़ाफ़िले के सरदार शेख़ ने आवश्यक भेंट अरबी सरदार को दी। उसने एक बाज़ पक्षी, दो थान कपड़े, श्रौर २० जोड़े तुर्की जूते दिये श्रौर टेलर से कुछ विलायती बारूद दिला दी। इसके बाद की यात्रा में उनका क़ाफ़िला रात में नदी से दो तीन मील हट कर डेरा डाला करता था, क्योंकि यूफ़्रेटीज़ के किनारे पर बसनेवाले लोग बड़े बदमाश श्रौर प्रसिद्ध चोर थे। १७ वीं को वे लोग बसरे जा पहुँचे। यहाँ वे अँगरेज़ी रेज़ीडेंट के अतिथि हुए। यहाँ से वे लोग २४ वीं जनवरी को १३५ पौंड भाड़ा देकर जहाज़ पर बैठे श्रौर बम्बई को रवाना हुए। वे वहाँ २३ वीं फ़रवरी को जा पहुँचे।

इस तरह टेलर को लन्दन से बम्बई पहुँचने में कुल १८५ दिन लगे। टेलर ने लिखा है कि कम से कम उसके ८० दिन इस यात्रा में व्यर्थ ही ख़राब हुए, नहीं तो १०५ दिन में ही यात्रा हो जाती।

रामकिशोर गुप्त

४—हितैषी।

(१)

जो जन मन को विमन न रक्खे, रक्खे तेज-तत्त्व तन में
दुर्जन-घन की वृष्टि सहे जो फाके धूल विजन वन में।
मरण-काल को उत्सव समझे जो न किसी से हटे कभी
भारत का हित वही करेगा जो न बात से कटे कभी॥

(२)

जो भारत में बने वस्तु भारत की बर्ते प्रण करके
दुख सुख सम समझे, न पड़े जो कभी प्रलोभन में पर के।
करे साधु से सदा साधुता खल से खलता किया करे
भारत का हित वही करेगा सत्य-सुधा जो पिया करे॥

(३)

न हो पराशा-पाशबद्ध जो ओढ़े चद्दर खद्दर की
केवल अपने बल पर चल कर देख भाल रक्खे घर की।
खल-दल के छल पर छल पर जो प्रबल पराक्रम दिखलावे
भारत का हित वही करेगा जो न कभी धोखा खावे॥

(४)

जो न श्वेत-माया की छाया में त्रिशंकु होकर झूले
दास-वृत्ति पा करके मन में जो न फूल करके ऊले।
जो पर-वेश क्लेशकर समझे, देश-निदेश शीश धारे
भारत का हित वही करेगा जो न अहित से स्थिति हारे॥

(५)

जो परदेशी भाषा के लासा में फँस कर नहीं रहे
वही कहे जो सही करे जो नहीं करे सो नहीं कहे।
प्राण-पणों से प्रण प्रतिपाले मनवाले से टले नहीं
भारत का हित वही करेगा आँख मूँद जो चले नहीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

खाते पीते सोते जगते जो जन सदा सचेत रहे
निज छोटों से छोटों को भी सम समझे समवेत रहे।
जो विभ्रम के भ्रम में पड़ कर श्रम के क्रम से थके नहीं
भारत का हित वही करेगा काम करे जो बके नहीं॥

(७)

फ़ैशन की फाँसी में फँस कर जो नर नहीं विलास करे
भुक्ति मुक्ति के लिए युक्ति से जो निज शक्ति-विकाश करे।
जो न सुखाशा से निराश हो ख़ासा निज उपहास करे
भारत का हित वही करेगा जो न त्रास का पास करे॥

(८)

पिस जावे जो तिल सा सुख से घिस जावे जो चन्दन सा
टापू को भी उर-अन्तर में जो समझे नन्दन वन सा।
मरे भले ही मुरे न पर से प्रलय बीच भी अचल रहे॥
भारत का हित वही करेगा जो सबलों पर प्रबल रहे॥

(९)

मद-मत्तों को भुनगे के सम समझे जो ग़म करे नहीं
क्रम से विक्रम द्विगुण दिखावे सत्साहस कम करे नहीं।
जो परवाह न पर की रक्खे अपने को अपना जाने
भारत का हित वही करेगा जो सुख को सपना जाने॥

(१०)

जो सर्वस्व निछावर कर दे स्वयं देश-दुख हरने को
विमुखों के मुख लखे न, दुख में,—डरे नहीं जो मरने को।
धर्म कर्म के मर्म तत्त्व के स्वत्व सत्त्व से प्राप्त करे
भारत का हित वही करेगा शठ से हठ पर्याप्त करे॥

(११)

रङ्ग-रूप के कर्म-कूप के भेद-भाव से दूर रहे
रहे शूर क्रूरों पर, जिसके मन में नहीं ग़रूर रहे।
मेल मिलाप भलों से रक्खे खल-कलाप से हटा रहे
भारत का हित वही करेगा जो निज बल से डटा रहे॥

(१२)

जो न पराई राई भर भी करे बुराई दुखदाई
सुखदाई ईसाई तक को जो मन में समझे भाई।
अचल-तुल्य अचला ऊपर जो अचल-चित्त हो अचल रहे
भारत का हित वही करेगा सत्व-सहित जो सत्य करे॥

रामचरित उपाध्याय

——

५—गोतम का आश्रम।

मिथिला अत्यन्त प्राचीन और पवित्र देश है। वैदिक काल में भी यह देश सभ्यता के समुच्च शिखर पर आरूढ़ था। राजर्षि जनक इस देश में राज्य करते थे। इतिहासातीत काल में जो सब राजा और ऋषि इस देश में उत्पन्न हुए थे उन लोगों का नाम-मात्र मिलता है, किन्तु उनका प्रकृत इतिवृत्त कालगर्भ में विलीन हो गया है।

कहा जाता है कि गोतम मुनि का आश्रम यहीं है। दरभङ्गा स्टेशन से १४ मील दूर कमतोल नाम का एक स्थान है। वहाँ से गोतमाश्रम प्रायः चार कोस है। यहाँ हम उसी का वर्णन करते हैं।

एक नहर के पश्चिम तट पर गोतम ऋषि का पवित्र आश्रम है। वहाँ छोटी छोटी ईंटों से बना हुआ एक छोटा सा जीर्ण मकान है, वही गोतम का गृह कहा जाता है। लोगों का कहना है कि यह गृह गोतम के आश्रम के चिह्न-रूप में किसी राजा के द्वारा बनवा दिया गया है। उस जीर्ण कुटीर के उत्तर एक खपरेल के मकान में गोतमाश्रम के एक-मात्र पुरोहित द्वारा प्रतिष्ठित एक नृसिंह-मूर्त्ति विराजित है। नृसिंह-मन्दिर के उत्तर दो वट के वृक्ष हैं। गोतम के नाम से परिचित उस जीर्ण कुटीर के दक्षिण भाग में एक और वट का वृक्ष है। सामने नहर बहती है। उस नहर के भीतर एक क़तार में पांच कूप हैं। इन कूपों का वर्णन ऋग्वेद के प्रथमाष्टक में है तथा नहर का वृत्तान्त ब्रह्मपुराण के गौतमी माहात्म्य में वर्णित है। आगे हम इसकी आलोचना करेंगे। गोतम प्रान्त की थोड़ी सी भी भूमि विना जुती नहीं है। चारों ओर खेत ही खेत हैं। इस प्रान्त की भूमि अत्यन्त उर्वरा है। इसी लिए कहा जाता है कि महर्षि गोतम में केवल दार्शनिक प्रतिभा ही न थी, उनकी वैषयिक बुद्धि भी अपार थी। मिथिला-प्रदेश भर में जो भूमिखण्ड सर्वोत्कृष्ट एवं स्वर्णप्रसू था उसे ही महर्षि गोतम ने कृषिकार्य के निमित्त चुना। प्रतिवर्ष अहल्या-स्थान में कार्त्तिकमासव्यापी एक मेला भरता है। इस समय कोई कोई यात्री—विशेष करके पण्डित-श्रेणी के लोग—इस स्थान के दर्शनार्थ जाते हैं। उन्हीं यात्रियों के दिये हुए दो चार पैसे तीर्थ-पुरोहित की जीविका के साधन हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोतमाश्रम और अहल्या स्थान में दो कोस का अन्तर है। गोतम-प्रान्त पार करते ही पूर्व दिशा में अहल्या-स्थान मिलता है। अहल्या स्थान का वर्तमान नाम आहिरिया है। अहल्या शब्द से ही आहिरिया बना है। यहाँ बाज़ार हाट कुछ नहीं है। वर्तमान दरभङ्गा-नरेश महाराज रमेश्वरसिंह बहादुर के प्रपितामह स्वर्गीय महाराज छत्रसिंह के द्वारा प्रतिष्ठित एक-मात्र बृहत् मन्दिर यहाँ विद्यमान है। इस मन्दिर में राम, सीता, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की मूर्त्तियां विराजित हैं। मन्दिर के चतुर्दिक् आम्रकानन है। दक्षिण दिशा में वृक्ष के नीचे एक छोटी सी कुटीर है। कुटीर तीन ओर खुली हुई है। उसके मध्य में भस्म फैला हुआ है, जिसके ऊपर पुष्पमाला, सिन्दूर तथा चन्दन से चर्चित एक बड़ा पत्थर रक्खा हुआ है। यही गोतम-पत्नी अहल्या की पाषाणमयी मूर्त्ति कह कर दिखाई जाती है। एक सधवा ब्राह्मणी माल्यचन्दन और सिन्दूरादि के द्वारा अहल्या की परिचर्या और पूजा करती है। पुरुषगण दर्शन, वन्दना, प्रदक्षिण तथा दूर से पुष्पाञ्जलि द्वारा पूजा कर सकते हैं, किन्तु उन्हें स्पर्श करने का अधिकार नहीं है। अहल्या की कुटीर से कुछ ही दूर दक्षिण दिशा में अहल्या-ह्रद है। आश्चर्य का विषय है कि इस ह्रद का जल दुग्ध के सामान श्वेतवर्ण है। किन्तु इस ह्रद के पश्चिम भाग में जो एक और बड़ा जलाशय है उसका जल अन्यान्य जलाशयों के सदृश है। थोड़े दिन हुए रामचरण अगरवाला नामक एक धनी सज्जन ने अहल्या-ह्रद में पक्का घाट बनवा दिया है।

गोतम के आश्रम में गौतमी गङ्गा और क्षीरोदधि के मध्य* में जो पाँच कूप हैं वे देवदत्त-कूप हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में गोतम के इन कूपों के प्राप्त करने का वृत्तान्त वर्णित है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के चौदहवें अध्याय में ८५ वें सूक्त में यह ऋक् है:—

जिह्मं नुनुदेऽवत्तं तया दिशा सिंचन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे।

आगच्छन्ती मवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयंत धामभिः॥

सायणाचार्य का भाष्य—मरुतोऽवत्तमुद्धतं कूपं यस्यां दिशि ऋषिर्वसत्ति तया दिशा जिह्मं वक्रं तिर्यञ्चं नुनुदे प्रेरितवन्तः। एवं कूपं नीत्वा ऋष्याश्रमेऽवस्थाप्य तृष्णजे तृषिताय गोतमाय ऋषये तदर्थमुत्सं जलप्रवाहं कूपादुद्धृत्यासिञ्चन्। आहावेऽवानयन्। एवं कृत्वा इमसेनं स्तोतारमृषिं चित्रभानवो विचित्रदीप्तयस्ते मरुतोऽवसा ईदृशेन रक्षणेन सहागच्छन्ति। तत्समीपं प्राप्नुवन्ति। प्राप्य च विप्रस्य मेधाविनो गोतमस्य काममभिलाषं धामभिरायुषो धारकैरुदकैस्तर्पयंत। अतर्पयन्।

उद्धृत ऋक् की व्याख्या को स्पष्ट करने के लिए वेद के भाष्यकार सायणाचार्य ने अपने भाष्य में प्राचीनकाल में प्रचलित एक आख्यायिका का उल्लेख किया है—यथा—

'आत्रेयमाख्यायिका—गोतम ऋषिः पिपासया पीडितः सन् मरुत उदकं ययाचे। तदनन्तरं मरुतोऽदूरस्थं कूपमुद्धृत्य यत्र स गोतम ऋषिस्तिष्ठति तां दिशं नीत्वा ऋषिसमीपे कूपमवस्थाप्य तत्पार्श्वे आहावं च कृत्वा तस्मिन्नाहावे कूपमुत्सिच्य तमृषिं तेनोदकेन तर्पयाञ्चक्रुः।'

इसमें सन्देह नहीं है कि यह ऋक् आर्यगण के मिथिला में उपनिवेश स्थापन करने के पश्चात् बनी है तथा गोतम के आवास में कूप-खनन तथा अन्य किसी जलाशय से नहर द्वारा जल लाकर कूप समीपस्थ चौवच्चापूर्ण करने की घटना को अवलम्बन करके ही रची गई है। आज-कल जिस तरह पहाड़ काट कर जहाँ तहाँ नदी ले जाना साधारण घटना है उस प्रकार उन दिनों न था। उस समय तीन चार कोस से नहर काट कर जल ले जाना सरल व्यापार न था। इस प्रकार की घटना से ज्ञात होता है कि यह प्रथम कार्य था, इसी लिए इस सूक्त के रचयिता ऋषि रूपक के साहाय्य से उसे चिरस्मरणीय कर गये हैं। स्थान की प्राकृतिक शोभा देखने से भी यही बात मन में स्थिर होती है। आश्चर्य का विषय है कि इस ऋक् में 'अवत' और 'उत्स' इन दो शब्दों का प्रयोग है। इसी वैदिक अवत शब्द से प्रचलित अवट शब्द उत्पन्न हुआ है। 'अवट' का अर्थ है गर्त, गढ़ा; और उत्स का अर्थ है झरना। झरना पर्वत के अतिरिक्त कभी कभी समभूमि में भी देखा जाता है। ज्ञात होता है महर्षि गोतम जब नहर काट कर जल लाये तब उनके आश्रम के समीप झरना प्रकट हुआ था और उसके पार्श्व में पुष्करिणी खनन करके जल इकट्ठा किया गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

खाते पीते सोते जगते जो जन सदा सचेत रहे
विज छोटों से छोटों को भी सम समझे समवेत रहे ।
जो विश्रम के श्रम में पड़ कर श्रम के क्रम से थके नहीं
भारत का हित वही करेगा काम करे जो बके नहीं ॥

(७)

फ़ैशन की फाँसी में फँस कर जो नर नहीं विलास करे
भुक्ति मुक्ति के लिए युक्ति से जो निज शक्ति-विकाश करे ।
जो न सुखाशा से निराश हो ख़ासा निज उपहास करे
भारत का हित वही करेगा जो न त्रास का पास करे ॥

(८)

पिस जावे जो तिल सा सुख से घिस जावे जो चन्दन सा
टापू को भी उर-अन्तर में जो समझे नन्दन वन सा ।
मरे भले ही मुरे न पर से प्रलय बीच भी अचल रहे ॥
भारत का हित वही करेगा जो दुबलों पर प्रबल रहे ॥

(९)

मद-मत्तों को भुनगे के सम समझे जो ग़म करे नहीं
क्रम से विक्रम द्विगुण दिखावे सत्साहस कम करे नहीं ।
जो परवाह न पर की रक्खे अपने को अपना जाने
भारत का हित वही करेगा जो सुख को सपना जाने ॥

(१०)

जो सर्वस्व निछावर कर दे स्वयं देश-दुख हरने को
विमुखों के मुख लखे न, दुख में,—डरे नहीं जो मरने को ।
धर्म कर्म के मर्म तत्त्व के स्वत्व सत्त्व से प्राप्त करे
भारत का हित वही करेगा शठ से हठ पर्याप्त करे ॥

(११)

रङ्ग-रूप के कर्म-कूप के भेद-भाव से दूर रहे
रहे शूर क्रूरों पर, जिसके मन में नहीं ग़रूर रहे ।
मेल मिलाप भलों से रक्खे खल-कलाप से हटा रहे
भारत का हित वही करेगा जो निज बल से डटा रहे ॥

(१२)

जो न पराई राई भर भी करे बुराई दुखदाई
सुखदाई ईसाई तक को जो मन में समझे भाई ।
अचल-तुल्य अचला ऊपर जो अचल-चित्त हो अचल रहे
भारत का हित वही करेगा सत्व-सहित जो सत्य करे ॥

रामचरित उपाध्याय

——

५—गोतम का आश्रम ।

मिथिला अत्यन्त प्राचीन और पवित्र देश है । वैदिक काल में भी यह देश सभ्यता के समुच्च शिखर पर आरूढ़ था । राजर्षि जनक इस देश में राज्य करते थे । इतिहासातीत काल में जो सब राजा और ऋषि इस देश में उत्पन्न हुए थे उन लोगों का नाम-मात्र मिलता है, किन्तु उनका प्रकृत इतिवृत्त कालगर्भ में विलीन हो गया है ।

कहा जाता है कि गोतम मुनि का आश्रम यहीं है । दरभङ्गा स्टेशन से १४ मील दूर कमतोल नाम का एक स्थान है । वहाँ से गोतमाश्रम प्रायः चार कोस है । यहाँ हम उसी का वर्णन करते हैं ।

एक नहर के पश्चिम तट पर गोतम ऋषि का पवित्र आश्रम है । वहाँ छोटी छोटी ईंटों से बना हुआ एक छोटा सा जीर्ण मकान है, वही गोतम का गृह कहा जाता है । लोगों का कहना है कि यह गृह गोतम के आश्रम के चिह्न-रूप में किसी राजा के द्वारा बनवा दिया गया है । उस जीर्ण कुटीर के उत्तर एक खपरेल के मकान में गोतमाश्रम के एक-मात्र पुरोहित द्वारा प्रतिष्ठित एक नृसिंह-मूर्त्ति विराजित है । नृसिंह-मन्दिर के उत्तर दो वट के वृक्ष हैं । गोतम के नाम से परिचित उस जीर्ण कुटीर के दक्षिण भाग में एक और वट का वृक्ष है । सामने नहर बहती है । उस नहर के भीतर एक क़तार में पाँच कूप हैं । इन कूपों का वर्णन ऋग्वेद के प्रथमाष्टक में है तथा नहर का वृत्तान्त ब्रह्मपुराण के गौतमी माहात्म्य में वर्णित है । आगे हम इसकी आलोचना करेंगे । गोतम प्रान्त की थोड़ी सी भी भूमि बिना जुती नहीं है । चारों ओर खेत ही खेत हैं । इस प्रान्त की भूमि अत्यन्त उर्वरा है । इसी लिए कहा जाता है कि महर्षि गोतम में केवल दार्शनिक प्रतिभा ही न थी, उनकी वैषयिक बुद्धि भी अपार थी । मिथिला-प्रदेश भर में जो भूमिखण्ड सर्वोत्कृष्ट एवं स्वर्णप्रसू था उसे ही महर्षि गोतम ने कृषिकार्य के निमित्त चुना । प्रतिवर्ष अहल्या-स्थान में कार्त्तिकमासव्यापी एक मेला भरता है । इस समय कोई कोई यात्री—विशेष करके पण्डित-श्रेणी के लोग—इस स्थान के दर्शनार्थ जाते हैं । उन्हीं यात्रियों के दिये हुए दो चार पैसे तीर्थ-पुरोहित की जीविका के साधन हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोतमाश्रम और अहल्या स्थान में दो कोस का अन्तर है। गोतम-प्रान्त पार करते ही पूर्व दिशा में अहल्या-स्थान मिलता है। अहल्या स्थान का वर्तमान नाम आहिरिया है। अहल्या शब्द से ही आहिरिया बना है। यहाँ बाज़ार हाट कुछ नहीं है। वर्तमान दरभङ्गा-नरेश महाराज रमेश्वरसिंह बहादुर के प्रपितामह स्वर्गीय महाराज छत्रसिंह के द्वारा प्रतिष्ठित एक-मात्र बृहत् मन्दिर यहाँ विद्यमान है। इस मन्दिर में राम, सीता, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की मूर्त्तियां विराजित हैं। मन्दिर के चतुर्दिक् आम्रकानन है। दक्षिण दिशा में वृक्ष के नीचे एक छोटी सी कुटीर है। कुटीर तीन ओर खुली हुई है। उसके मध्य में भस्म फैला हुआ है, जिसके ऊपर पुष्पमाला, सिन्दूर तथा चन्दन से चर्चित एक बड़ा पत्थर रक्खा हुआ है। यही गोतम-पत्नी अहल्या की पाषाणमयी मूर्त्ति कह कर दिखाई जाती है। एक सधवा ब्राह्मणी माल्यचन्दन और सिन्दूरादि के द्वारा अहल्या की परिचर्या और पूजा करती है। पुरुषगण दर्शन, वन्दना, प्रदक्षिण तथा दूर से पुष्पाञ्जलि द्वारा पूजा कर सकते हैं, किन्तु उन्हें स्पर्श करने का अधिकार नहीं है। अहल्या की कुटीर से कुछ ही दूर दक्षिण दिशा में अहल्या-ह्रद है। आश्चर्य का विषय है कि इस ह्रद का जल दुग्ध के सामान श्वेतवर्ण है। किन्तु इस ह्रद के पश्चिम भाग में जो एक और बड़ा जलाशय है उसका जल अन्यान्य जलाशयों के सदृश है। थोड़े दिन हुए रामचरण अगरवाला नामक एक धनी सज्जन ने अहल्या-ह्रद में पक्का घाट बनवा दिया है।

गोतम के आश्रम में गौतमी गङ्गा और क्षीरोदधि के मध्य* में जो पांच कूप हैं वे देवदत्त-कूप हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में गोतम के इन कूपों के प्राप्त करने का वृत्तान्त वर्णित है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के चौदहवें अध्याय में ८५ वें सूक्त में यह ऋक् है:—

जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशा सिंचन्नुत्सां गोतमाय तृष्णजे।

आगच्छन्ती मवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयंत धामभिः॥

सायणाचार्य का भाष्य—मरुतोऽवत्तमुद्धृतं कूपं यस्यां दिशि ऋषिर्वसत्ति तया दिशा जिह्मं वक्रं तिर्यञ्चं नुनुद्रे प्रेरितवन्तः। एवं कूपं नीत्वा ऋष्याश्रमेऽवस्थाप्य तृष्णजे तृषिताय गोतमाय ऋषये तदर्थमुत्सं जलप्रवाहं कूपादुद्धृत्यासिञ्चन्। आहावेऽवानयन्। एवं कृत्वा इममेनं स्तोतारमृषिं चित्रभानवो विचित्रदीप्तयस्ते मरुतोऽवसा ईदृशेन रक्षणेन सहागच्छन्ति। तत्समीपं प्राप्नुवन्ति। प्राप्य च विप्रस्य मेधाविनो गोतमस्य काममभिलाषं धामभिरायुषो धारकैरुदकैस्तर्पयंत। अतर्पयन्।

उद्धृत ऋक् की व्याख्या को स्पष्ट करने के लिए वेद के भाष्यकार सायणाचार्य ने अपने भाष्य में प्राचीनकाल में प्रचलित एक आख्यायिका का उल्लेख किया है—यथा—

'अात्रेयमाख्यायिका—गोतम ऋषिः पिपासया पीडितः सन् मरुत उदकं ययाचे। तदनन्तरं मरुतोऽदूरस्थं कूपमुद्धृत्य यत्र स गोतम ऋषिस्तिष्ठति तां दिशं नीत्वा ऋषिसमीपे कूपमवस्थाप्य तत्पार्श्वं आहावं च कृत्वा तस्मिन्नाहावे कूपमुत्सिच्य तमृषिं तेनोदकेन तर्पयाञ्चक्रुः।'

इसमें सन्देह नहीं है कि यह ऋक् आर्यगण के मिथिला में उपनिवेश स्थापन करने के पश्चात् बनी है तथा गोतम के आवास में कूप-खनन तथा अन्य किसी जलाशय से नहर द्वारा जल लाकर कूप समीपस्थ चौवच्चा-पूर्ण करने की घटना को अवलम्बन करके ही रची गई है। आज-कल जिस तरह पहाड़ काट कर जहाँ तहाँ नदी ले जाना साधारण घटना है उस प्रकार उन दिनों न था। उस समय तीन चार कोस से नहर काट कर जल ले जाना सरल व्यापार न था। इस प्रकार की घटना से ज्ञात होता है कि यह प्रथम कार्य था, इसी लिए इस सूक्त के रचयिता ऋषि रूपक के साहाय्य से उसे चिरस्मरणीय कर गये हैं। स्थान की प्राकृतिक शोभा देखने से भी यही बात मन में स्थिर होती है। आश्चर्य का विषय है कि इस ऋक् में 'अवत' और 'उत्स' इन दो शब्दों का प्रयोग है। इसी वैदिक अवत शब्द से प्रचलित अवट शब्द उत्पन्न हुआ है। 'अवट' का अर्थ है गर्त, गढ़ा; और उत्स का अर्थ है झरना। झरना पर्वत के अतिरिक्त कभी कभी समभूमि में भी देखा जाता है। ज्ञात होता है महर्षि गोतम जब नहर काट कर जल लाये तब उनके आश्रम के समीप झरना प्रकट हुआ था और उसके पार्श्व में पुष्करिणी खनन करके जल इकट्ठा किया गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों को सन्देह हो सकता है कि गोतमाश्रम और अहल्या-स्थान में दो कोस का अन्तर क्यों है। इसके उत्तर में यह कहा जाता है कि महर्षि गोतम थे राजा। वैदिक काल में जिसके समीप अधिक धान्य तथा गोधन रहता था उसी को लोग राजा कहते थे। गोतम का एक और आश्रम छपरा नगरी के सन्निहित भागीरथी के तट पर था और दूसरा यह गोतम-प्रान्त में। यह अहल्या-स्थान उनका उद्यान था। महर्षि गोतम से विरक्त होकर अहल्या रानी रूठ कर कुछ काल तक इस स्थान में रहीं थीं। अन्त में अनेक उपाय करके गोतम ऋषि अहल्या को घर लिवा ले गये। प्रकृत पक्ष में अहल्या का कोई दोष न था। इस देश में एतत्सम्बन्ध में जो किंवदन्ती प्रचलित है उसे हम पाठकों के मनोविनोदार्थ लिखते हैं। उसके सुनने से यथार्थ घटना क्या थी, यह स्पष्ट समझ में आ जायगा। गङ्गातट पर गोतम का एक और आश्रम रहने पर भी इस गोतम-प्रान्त स्वर्ण-प्रसविनी भूमि में जो आश्रम था उसी में अहल्या सहित गोतम ऋषि अधिकांश समय व्यतीत किया करते थे। इस स्थान में उनके अनेक अन्तेवासी भी थे। वे प्रतिदिन खेतों में विचरण करके कृषिकार्य का निरीक्षण करते थे तथा अवशिष्ट समय में आश्रम में बैठ कर छात्रों को पढ़ाया करते थे। हिसाब करने से वे आश्रम में बहुत थोड़े ही समय तक रहते थे। इस थोड़े से अवकाश में अपनी पत्नी से उनका सम्भाषण भी बहुत थोड़ा ही होता था। इस आश्रम में अहल्या अधिकांश समय एकाकिनी ही रहती थीं। जिनमें बोलने की शक्ति है वे क्या बिना बोले रह सकते हैं। अनेक काज उन्हें छात्रों से बातचीत करना पड़ता था। एक समय भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा। गोतम थे धान्य के राजा, उनके पास प्रचुर परिमाण में अन्न सञ्चित था। ऋषिगणों ने सपरिवार आकर गोतम के यहाँ आश्रय लिया। गोतम ने भी अत्यन्त आदर के साथ उनको आश्रम में स्थान प्रदान किया। जितना अनर्थपात था वह जल के कारण। ऋषि-पत्नी जिस समय कूप के जल में स्नान करती थीं, शरीर धोती थीं, उसी समय छात्रगण जल लेने पहुँचते थे। ऋषि-पत्नियाँ मन में अत्यन्त विरक्त हुईं और अन्त में छात्रगणों को उन्होंने आने से निषेध किया। उन लोगों को जल मिला नहीं—उन लोगों ने जाकर अहल्या के पास अभियोग किया। अहल्या ने ऋषि-महिलाओं से कहा, 'वे लोग जल क्यों न लेंगे, क्या प्यास से प्राण देंगे? आप लोग अतिथि हैं वे लोग भी छात्र हैं, सभी कूप का जल व्यवहार करेंगे'। फल यह हुआ कि छात्रगण जब तब जल लेने चले जाते थे, इससे ऋषि-पत्नियों के स्वाभिमान में दारुण आघात पहुँचा। उन लोगों ने सोचा, 'इस खुले प्रान्त में हम लोगों के स्नान काल में छात्रगण आते हैं, यह नियम-विरुद्ध है। अहल्या रमणी होकर भी यह बात नहीं समझ सकीं और छात्रगणों का ही पक्ष ग्रहण किया'। नारी जाति स्वभावतः ईर्ष्यापरायण होती ही हैं। तत्रापि अहल्या एक स्थिर यौवना—अलौकिक सुन्दरी—तथा सर्व सौभाग्य की अधिकारिणी थी। अतः उस पर ऋषिपत्नियों की असूया क्यों न उत्पन्न हो? उन लोगों ने छात्रों के प्रति उनकी सहानुभूति की एक कुत्सित कल्पना कर ली। ऋषि के आश्रम में आने पर अहल्या और छात्रों के सम्बन्ध में अनेक कथा अनेक ढंग से सुना सुना कर उन लोगों ने कहना प्रारम्भ किया। गोतम ऋषि के मन में बहुत करके इस विषय में कुछ आलोचना चल ही रही थी कि इसी दशा में एक दिन जब ऋषि ने आश्रम में प्रवेश किया, एक विद्यार्थी आश्रम के भीतर से बाहर जा रहा था। इस प्रकार की घटना कुछ नई न थी, तथापि उस दिन ऋषि के हृदय में सहसा क्रोध का उदय हुआ। छात्र को तो उन्होंने तिरस्कार करके निकाल दिया तथा अहल्या की अनेक प्रकार से भर्त्सना की। अहल्या एक तो निर्मल स्वभाववाली थी ही वह अत्यन्त अभिमानिनी भी थी। उस दारुण प्रान्त में दुर्भिक्ष-पीड़ित ऋषि-पत्नियों की तीक्ष्ण समालोचना सहन करने में समर्थ न होकर अहल्या इस उद्यान में चलीं आईं और यहाँ कुटीर निर्माण करके दीर्घकाल तक मौनावलम्बिनी होकर स्थित हुईं। वे भस्म पर शयन करती थीं तथा अति सामान्य फल मूल के द्वारा उनकी जीवन-रक्षा होती थी। वे किसी के भी दृष्टि-पथ में नहीं आती थीं। इस प्रकार अनेक दिवस व्यतीत हुए। जब महर्षि विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को साथ लेकर इसी मार्ग से मिथिला नगरी (वर्तमान जनकपुर) जा रहे थे उस समय समस्त मिथिला-राज्य में उत्सव हो रहा था। महर्षि गोतम ने अहल्या को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त आदरपूर्वक ग्रहण करके सपत्नीक राम और लक्ष्मण का आतिथ्य किया। अहल्या का कोई दोष था नहीं। उनके विरुद्ध रामायणादि में जो उपाख्यान वर्णित हैं वे कवि-कल्पित हैं।

बौद्धधर्म-प्रचारक पण्डितगणों के साथ विख्यात मीमांसक कुमारिल भट्ट का जब शास्त्रार्थ हुआ था तब बौद्ध पण्डितों ने प्रश्न उठाया था कि जो लोग सदाचारी कह कर प्रसिद्ध हैं उन लोगों में भी तो धर्म-व्यतिक्रम देखा जाता है। उन बौद्ध पण्डितों ने स्मृति और पुराणों में से दृष्टान्त दिया था। 'इन्द्रो वै अहल्याजारः' इस श्रुति को उद्धृत करके बौद्ध लोगों ने कहा था कि जो यज्ञेश्वर देवराज इन्द्र कहलाते हैं उन्होंने भी यह गुरुतर पातक किया। इसके उत्तर में कुमारिल भट्ट ने यह समाधान किया था कि उद्धृत श्रुति रूपक-मात्र है। इन्द्र का अर्थ सविता। अहल्या का अर्थ रात्रि और जार का अर्थ है क्षयकारी। सूर्योदय होने से रात्रि का क्षय उपस्थित होता है, इस अर्थ में यह श्रुति कही गई है। अथवा इन्द्र जलवर्षण द्वारा अहल्या (अकृष्टा) भूमि को जीर्णा (कर्षणयोग्या) करते हैं, यह अर्थ भी किया जा सकता है।

तो क्या यह कथा रूपक-मात्र है? सम्भव है कि कुमारिल भट्ट ने विजय लाभ करने के उद्देश से ऐसी व्याख्या की हो। अहल्या-गोतम के वृत्तान्त के सत्य होने में सन्देह नहीं है। जो बात युगयुगान्तर से धारावाहिक रूप में लोकस्मृति में विराज रही है, जिसके लिए प्रत्यक्ष प्रमाण विद्यमान हैं उसे रूपक कह कर उड़ा देने से काम न चलेगा।

प्रकृत पक्ष में भी स्थान देखने से हृदय में एक दृढ़ धारणा होती है कि इसी स्थान में गोतम का आश्रम था तथा अहल्या विरक्त होकर कुछ दिन तक इस प्रान्त के सन्निहित उपवनमध्यस्थित आश्रम में आकर रही थीं। ऋग्वेद, वाल्मीकि रामायण, विष्णुपुराण, भागवत पुराण प्रभृति अनेक ग्रन्थों में अहल्या-गोतम का वृत्तान्त पाया जाता है। यदि यह वैदिक काल की एक प्रसिद्ध घटना न होती तो इन सब ग्रन्थों में इस वृत्तान्त को स्थान न मिलता। तब बात यह है कि घटना अति सामान्य थी, तथा अहल्या और गौतम का प्रणय कलह-मात्र था। सुरसिक ऋषियों ने मुखरोचक करने के लिए 'इन्द्रो वै अहल्याजारः', इस श्रुति की रचना करके इस सामान्य घटना को चिरस्मरणीय कर दिया। और नहीं तो कहाँ मिथिला और कहाँ इन्द्र! ज्ञात होता है मानहानि के अभियोग के भय से द्व्यर्थक श्रुति की अवतारणा की गई है। कवि लोगों की लेखनी द्वारा अतिरञ्जित होकर उसके बाद उसने एक काव्य का रूप धारण कर लिया। वाल्मीकि रामायण के आदि काण्ड के ४८ वें सर्ग में यह घटना अत्यन्त अनवगुण्ठित शृङ्गार रस में वर्णित है। बङ्गाली कवि कृत्तिवास ने वाल्मीकि रामायण में अवर्णित इन्द्र के शरीर में अश्लील चिह्नों का आरोपण करके वाल्मीकि को भी मात किया है। यह घटना भिन्न भिन्न पुराणों में भिन्न भिन्न प्रकार से वर्णित है। दुर्भिक्ष-काल में ऋषिगणों ने सपरिवार आकर सुदीर्घ काल के लिए गोतम के यहाँ आतिथ्य स्वीकार किया था तथा ऋषिगणों के अनुरोध से ही गोतम ऋषि तपस्या द्वारा गौतमी गङ्गा को लाये थे, यह वृत्त ब्रह्माण्ड पुराण में भी वर्णित है। यही प्राचीन काल की घटना परवर्त्ती ऋषियों के द्वारा लिपिबद्ध होने के समय देशकाल के सम्बन्ध से कुछ कुछ रूपान्तरित हो गई है।

अब एक प्रश्न और है। इसी प्रान्त में महर्षि गोतम का आश्रम था एवं अहल्या ने कुछ काल तक अन्यत्र उपवन में वास किया था, इसे वैदिक सूक्त, रामायण तथा परम्परा-प्राप्त किंवदन्ती के आधार पर हम स्वीकार करते हैं। किन्तु क्या यही गोतम न्याय-सूत्रकार गोतम थे? हमें तो यही जान पड़ता है कि यही गोत्तम न्याय-सूत्रकार गोतम थे। गोतम मेधावी कह कर ऋग्वेद में वर्णन किये गये हैं। मेधावी के अतिरिक्त अन्य के लिए न्यान-दर्शन के सदृश अतिसूक्ष्म बुद्धि के परिचायक दर्शन-शास्त्र के सूत्रों की रचना करना असम्भव है। वेद स्मृति तथा पुराणों में एक-मात्र गोतम का परिचय प्राप्त होता है। जो संहिताकार थे वही गोतम थे। तथा इस न्याय-दर्शन की उत्पत्ति मिथिला प्रदेश में ही हुई है, यह सर्वदेश विदित वृत्त है।

बौद्ध तथा जैन तार्किक पण्डितों के मत खण्डन करने के कारण ही न्याय-दर्शन ने पुष्टि प्राप्त की थी। यह बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डितों का मत है। इससे भी इसी स्थान में न्याय-सूत्रकार का आश्रम होना विशेष सम्भव ज्ञात होता है। कारण यह है कि मिथिला का यही अंश इतिहासातीत-काल से ज्ञान-चर्चा का स्थान कह कर प्रसिद्ध है। कमतोल स्टेशन से एक कोस उत्तर कमला नदी के पश्चिम तट पर यागवन (याज्ञवल्क्य-वन) दिखाई देता है, महामहोपाध्याय चित्रधर मिश्र की राय थी कि इसी स्थान में प्राचीन याज्ञवल्क्य ऋषि का आश्रम था। यही महर्षि याज्ञवल्क्य राजर्षि जनक के आत्मज्ञान की परीक्षा करने मिथिला नगरी में (वर्तमान जनकपुर) जनक की सभा में उपस्थित हुए थे। यागवन में पाँच बीघा भूमि में फैला हुआ एक वट का वृक्ष है। इस प्रकार का वृक्ष भारतवर्ष के अन्य किसी प्रदेश में हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता। बहुत से लोग इस प्राचीन पवित्र पादप के संदर्शनार्थ यहाँ आते हैं। गोतमाश्रम से पश्चिम थोड़े ही दूर रत्नपुर नामक एक अति प्राचीन ग्राम है। इस ग्राम में जैन लोगों के चौबीस तीर्थङ्करों में से पन्द्रहवें तीर्थङ्कर धर्मनाथ ने जन्म ग्रहण किया था। अब भी रत्नपुर जैन सम्प्रदाय का एक तीर्थ माना जाता है। आर्षकाल के बाद इस देश में जैन धर्म और जैन न्याय की भी विलक्षण आलोचना हुई थी। मिथिला-प्रदेश से सन्निहित शाक्य राज्य के कपिल-वस्तु नगर में बौद्ध धर्म के प्रवर्तक शाक्यसिंह ने जन्म ग्रहण किया था, अतएव जैन और बौद्ध पण्डितगण गोतम के न्यायसूत्र में व्युत्पन्न होकर ही निज निज सम्प्रदाय की युक्ति के अनुकूल न्याय-ग्रन्थ प्रणयन करते थे, इस विषय में सन्देह नहीं है। वर्तमान समय में मिथिला के अधिकांश नैयायिकों का वास इसी गोतमाश्रम के चारों ओर विद्यमान है। तीर्थङ्कर धर्मनाथ के जन्मस्थान रत्नपुर में भी पूर्वकाल में बहुसंख्यक नैयायिकों का वास था। इस समय भी रत्नपुर के निकट-वर्ती बहरामपुर में तथा गोतम स्थान से एक कोस पश्चिम चकौती ग्राम में असंख्य नैयायिकों का वास देखा जाता है। अतः मिथिला के गोतम प्रान्त में ही न्यायसूत्रकार गोतम का आश्रम था, इस विषय में सन्देह का कोई कारण नहीं है*।

आद्यादत्त ठाकुर, एम० ए०

---

*सङ्कलित।

६—हाथ और फूल।

चौपदे।

देखते उसकी फबन जो आँख या
तो कभी हित से नहीं मुँह मोड़ते।
धूल में तुम हाथ क्यों मिलते नहीं।
भूल है जो फूल को हो तोड़ते ॥१॥
जो खले, दुख किसी तरह का दे।
कब किसे ढंग वह सुहाता है।
क्यों न ले तोड़ फूल फूले वह।
हाथ को फूलना सताता है ॥२॥
क्यों लगे पूछने किसी बद ने।
नेक को बेतरह लताड़ा क्या।
हाथ है फूल पर सितम ढाता।
फूल ने हाथ का बिगाड़ा क्या ॥३॥
कब रहा नोचता न कोमल दल।
कब न कर फूल विहीन कलपाया।
हाथ खल इन अबोल फूलों पर।
मल मसल कब नहीं बला लाया ॥४॥
फूल सा सुन्दर फबीला औ फलद।
क्यों बँधे छिद बिध गये पामाल हो।
आग माला के बनाने में लगे।
हाथ माली क्यों न मालामाल हो ॥५॥
वह तुझे भी निहाल करता है।
सोच तू क्या व तेरी नीयत क्या।
फूल में ही मुलायमीयत है।
हाथ तेरी मुलायमीयत क्या ॥६॥
फूल रस रूप गंध पर रीझे।
किस तरह से सितम सकेगा थम।
क्यों समझ तू सका न कोमलपन।
हाथ क्या यह कमीनपन है कम ॥७॥
हाथ तुम बचते कि वे मैले न हों।
तोड़ते तो पीर हो जाती कहीं।
जो लगी होती न लत की छूत तो।
तुम अछूते फूल छूते ही नहीं ॥८॥
लाल लाल हथेलियाँ हैं पास ही।
जो कमल दल से नहीं हैं कम भली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ तुम फैलो न फूलों के लिए।
उँगलियाँ क्या हैं न चम्पे की कली ॥९॥
हाथ मत तोड़ो मलो नोचो उन्हें।
है बुरा जो फूल रङ्गीनी खली।
इस जगत का ही निराला रङ्ग है।
है तुम्हारी ही नहीं रङ्गत भली ॥१०॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

विविध विषय।

१—नया वर्ष।


रस्वती का बाईसवाँ वर्ष समाप्त हो गया। गत वर्ष हम लोगों ने अपनी अल्प योग्यता की ओर ज़रा भी ध्यान न देकर सरस्वती का सम्पादन-भार ले लिया। हमारे इस दुस्साहस का एक-मात्र कारण यही है कि हमें हिन्दी-साहित्य के शुभचिन्तकों और सरस्वती के प्रेमियों का पूरा भरोसा है। हमें विश्वास है कि उन्हीं की सहायता और सत्परामर्श से हम सरस्वती के गौरव को अक्षुण्ण रख सकेंगे। गत वर्ष हम लोगों से अनेक भूलें हुई होंगी। परन्तु जब हम अपनी योग्यता पर विचार करते हैं तब हमें अपनी भूलों पर ज़रा भी आश्चर्य नहीं होता। यह हम लोगों के लिए गौरव की बात है कि हमें सरस्वती की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, परन्तु उस गौरव की रक्षा करना हमारे लिए बड़ा कठिन है। हम चाहते हैं कि हममें भी कुछ ऐसी योग्यता आ जाती जिससे हम सरस्वती के योग्य सेवा कर सकते। गत वर्ष हम लोगों ने जो कुछ किया उससे अधिक करने की शक्ति हममें नहीं थी। सम्भव है कि हमारे काम में त्रुटियाँ हुई हों, पर हमने यथाशक्ति त्रुटियों को दूर करने का ही प्रयत्न किया। सम्भव है, सरस्वती में अच्छे लेख और कवितायें कम निकली हों, परन्तु हमने अपनी समझ के अनुसार अच्छे ही लेख प्रकाशित करने की चेष्टा की है।

सरस्वती का यह विशेषाङ्क है। इस वर्ष से हम सरस्वती में कई नये विषयों का समावेश करना चाहते हैं। विज्ञान और कला-कौशल पर अच्छे अच्छे लेख प्रकाशित करने की चेष्टा की जायगी। प्रतिमास साहित्य ही के लिए चार पाँच पेज दे दिये गये हैं। उनमें संसार के श्रेष्ठ विद्वानों की विचार-पूर्ण टिप्पणियाँ रहेंगी। हिन्दी के प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य की समालोचना के लिए भी स्थान रक्खा गया है। कहानियों में मौलिक कहानी देने की चेष्टा की जायगी ही, परन्तु हम यह भी चाहते हैं कि हिन्दी में इँग्लेंड, फ्रांस, रूस और अमरीका के सर्व-श्रेष्ठ आख्यायिका-लेखकों की भी कहानियाँ प्रकाशित हों। यदि इस ओर पाठकों की रुचि हुई तो हम प्रतिमास एक ऐसी कहानी छापने का प्रयत्न करेंगे। स्त्रियों और बालकों के भी मनोरञ्जन के लिए हम उनके उपयुक्त विषयों पर योग्य विद्वानों से लेख लिखाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हम उन विद्वान् लेखकों के बड़े कृतज्ञ हैं जिनके अनुग्रह से अल्पज्ञ रहने पर भी हम एक वर्ष तक सरस्वती का सम्पादन कर सके। यदि उनकी कृपा-दृष्टि बनी रही तो सम्भव है कि हम इस वर्ष सरस्वती की कुछ उन्नति भी कर सकें। हम सरस्वती के उन प्रेमी पाठकों के भी अनुगृहीत हैं जिन्होंने पत्र द्वारा हमें सलाह दी है। हम यही कोशिश कर रहे हैं कि सरस्वती में सभी प्रकार के विषयों का समावेश हो।

२—आबकारी महकमे की रिपोर्ट।

सरकार ने एक बड़े महत्त्व का महकमा क़ायम कर रक्खा है। उसका सम्बन्ध आबकारी से है। शराब, ताड़ी, गाँजा, भङ्ग, चरस, अफ़ीम की बिक्री और निगरानी का काम उसे सिपुर्द किया गया है। उसके बड़े साहब हर साल अपनी कारगुज़ारी की रिपोर्ट पेश करते हैं, और गवर्नर महाशय उस पर अपना वक्तव्य प्रकट करते हैं। मार्च १९२१ में ख़तम हुए साल की रिपोर्ट और उस पर व्यक्त किये गये सरकारी वक्तव्य को पढ़ कर सन्तोष कम होता है, असन्तोष अधिक।

कल्पना कीजिए कि किसी लड़के की आदत मिठाई खाने की पड़ गई है। माँ-बाप के बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर भी वह इस आदत को नहीं छोड़ता। घर से रुपये पैसे उठा ले जाता है; बर्तन तक बेच लेता है; और मिठाई खाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। घर में कुटुम्बी चाहे फाकेकशी करें, मनोहर को मिठाई ज़रूर चाहिए। अतएव वह औरों का मालमत्ता चुरा कर भी पाव भर पेड़े रोज़ उड़ाता है। यह देख कर पिता ने फ़ी पेड़ा एक चपत दण्ड उसके लिए निश्चित कर दिया। पर मनोहर की वह आदत नहीं छूटी। तब एक साल बाद पिता ने दण्ड की मात्रा दो चपत, तीसरे साल तीन चपत कर दी। इसी तरह वह बढ़ाता गया। पर यह न किया कि मनोहर का घर से निकलना ही बन्द कर देता या कुछ रोज़ के लिए उसे ऐसी जगह रख देता जहाँ उसे मिठाई बिलकुल ही न मिलती। बताइए, ऐसे माता-पिता की सुत-वत्सलता की निन्दा की जाय या प्रशंसा?

गवर्नमेंट कुछ कुछ ऐसे ही माँ-बाप का अनुकरण कर रही है। नशे से मनुष्य सदाचार ही से नहीं गिर जाता, वह बिलकुल ही निकम्मा भी हो जाता है। उसका शरीर किसी काम का नहीं रहता। समाज के लिए वह भारभूत हो जाता है। सरकार अपने को प्रजावर्ग का माँ-बाप कहती है, पर नशीली चीज़ों की बिक्री एकदम ही बन्द नहीं करना चाहती। वह उसी चपतवाली नीति का अवलम्बन कर रही है। वह कहती है, बिक्री बन्द न करेंगे, क्योंकि उससे करोड़ों रुपये की आमदनी बन्द हो जायगी। हाँ, महसूल बढ़ा देंगे और बिक्री के साधन कम कर देंगे। वह अपनी इस नीति के अनुसार बहुत समय से काम कर रही है और उसकी सफलता पर खूब खुश भी हो रही है। खुशी का कारण यह कि शराब वग़ैरह पर महसूल खूब बढ़ गया है; बिक्री की दूकानें भी कम हो गई हैं; पर आमदनी नहीं घटी। वह उलटा बढ़ गई है! "नशीली चीज़ों का ख़र्च तो कम, पर उसकी बिक्री से आमदनी अधिक"—यह है, सरकार का मूल मन्त्र! यहाँवालों की बात जाने दीजिए। अमेरिका से पुसिफुट जानसन नाम के एक महाशय आज-कल इस देश में यह उपदेश देते रहे हैं कि भाइयो, शराब पीना छोड़ दो; गाँजा पीना छोड़ दो; भङ्ग छानना छोड़ दो। पर सरकार इन चीज़ों की बिक्री बन्द नहीं करती। कोई दो करोड़ रुपये सालाना की आमदनी जो बन्द हो जायगी। अतएव हज़ार समझाने पर भी वह नहीं समझती। उससे कहिए, महसूल बढ़ाने और दूकानें कम कर देने से यह रोग दूर नहीं हो सकता। जिन्हें नशे का चसका है वह दो चार कोस की मंज़िल मार कर भी अफ़ीम और भङ्ग लावेंगे और क़ीमत अधिक हो जाने पर भी लोटा थाली बेंच कर उसे ख़रीदेंगे। पर सरकार इस दलील को लचर समझती है। सरकार, ये २ करोड़ रुपये आय और किसी मद से वसूल कर लीजिए। या किसी कम महत्त्व के महकमे का ख़र्च घटा कर इतनी बचत कर लीजिए। पर यह दलील भी, और इस तरह की अन्य दलीलें भी, उसे खोखली जान पड़ती हैं। शायद वह कहती होगी कि जिन लोगों का काम—जिन लोगों की दावतें—शराब आदि के बिना फीकी ही रहती हैं उनके सुभीते का भी तो कुछ ख़याल करना होगा। ख़ैर।

रिपोर्ट के साल सरकार ने शराब वग़ैरह की बदौलत १ करोड़ ८१ लाख रुपया कमाया। अर्थात् पिछले साल की अपेक्षा कोई ८ ¾ लाख की आमदनी उसे अधिक हुई। बधाई! गाँजा और अफ़ीम को छोड़ कर अन्य नशीली चीज़ों के ख़र्च में भी वृद्धि ही हुई, ह्रास नहीं। सो आमदनी भी अधिक और दो एक चीज़ों को छोड़ कर और चीज़ों का ख़र्च भी अधिक। वही बात कि जब तक बोतलवासिनी देवी मिलेगी उसकी आराधना करेंगे, पानी पीने को लोटा न रहे तो चिन्ता नहीं!

शराब के शौक़ीन होशियारी में सरकार के भी कान कतर रहे हैं। उन्होंने देखा कि देशी शराब ज़रा महँगी हो रही है और उसकी बिक्री के लिए दुकानें भी कम हो गई हैं। अच्छा, लाओ विदेशी शराब पियें। १९१८–१९ में इन लोगों ने वाइन (Wines) नाम की शराब १८, ८३९ गैलन पी डाली थी। १९१९–२० में २२ हज़ार गैलन ख़ाली कर दी। और १९२०–२१ में २७ हज़ार गैलन! लीजिए, बढ़ाइए देशी शराब पर महसूल! सरकार ने देशी शराब पर महसूल दूना कर दिया है और दुकानें भी १९ फ़ी सदी कम कर दी हैं। ख़र्च भी २६ फ़ी सदी कम हो गया है। तिस पर भी, इस मद से उसे ५२ फ़ी सदी आमदनी अधिक हुई है।

अफ़ीम का भी यही हाल है। ख़र्च और दुकानें कम हो जाने पर भी आमदनी ७२ फ़ी सदी बढ़ गई है।

पर गाँजा, भङ्ग और चरस का ख़र्च कम नहीं हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महसूल बढ़ जाने और दूकानें कम हो जाने पर भी गांजा ख़ूब ही उड़ा और भङ्ग भी ख़ूब ही छानी गई। सरकार की आमदनी बढ़नी ही चाहिए। जानते हैं आप वह कितनी बढ़ी। वह ८१ फ़ी सदी बढ़ गई। १९११–१२ में चरस पर महसूल था ८ रुपया; १९२०-२१ में वह २२ रुपया हो गया। भङ्ग पर पहले महसूल था ४ रुपया। १९२०–२१ में वह १२॥) कर दिया गया। और अब है २०) मन! पर यार लोग इतने पर भी मानने-वाले नहीं। भङ्ग छनेगी और फिर छनेगी। घर में चाहे तवा न रह जाय। छनना बन्द तभी होगा जब वह, और दूसरी भी नशे की चीज़ें, अप्राप्य कर दी जायँगी, प्राप्य केवल दवा के लिए होंगी। पर वैसा करने के लिए प्रजावत्सल सरकार तैयार नहीं और वैसा किये बिना इधर भङ्ग-भवानी के भक्त और चरस-गांजे के शौक़ीन अपनी अपनी प्यारी चीज़ छोड़ने के लिए भी तैयार नहीं। दोनों में होड़ सी है। देखिए, कौन कब तक मैदान में डटा रहता है।

३—हिन्दी-साहित्य की समालोचना।

हिन्दी का प्राचीन काव्य-साहित्य बहुत महत्त्व-पूर्ण है। उसके इस महत्त्व का सबसे बड़ा कारण यह है कि जब हिन्दू-जाति राजनैतिक स्वत्वों से हीन होकर विदेशीय विजेताओं से पद-दलित हो रही थी तब इसी साहित्य ने उनके सामाजिक जीवन को शृङ्खला-बद्ध रक्खा। मुसलमानों के शासन-काल में ही हिन्दी-साहित्य की अच्छी श्री-वृद्धि हुई। उस समय व्यक्तिगत रूप से चाहे किसी हिन्दू ने इतिहास में कितना ही महत्त्व-पूर्ण स्थान क्यों न पा लिया हो, परन्तु तत्कालीन इतिहास में हिन्दू-जाति का अस्तित्व नहीं है। उस समय के इतिहास में हम मुसलमानों के आक्रमण का हाल पढ़ते हैं, उनके वैभव और साम्राज्य-विस्तार की कथा पढ़ते हैं और यत्र तत्र नानक, रामानन्द, कबीर, शिवाजी आदि हिन्दू वीरों का भ। परिचय पाते हैं। परन्तु हिन्दू-जाति स्वयं कहाँ थी, इसका कुछ पता नहीं लगता। जिस जाति में शिवाजी और चैतन्य उत्पन्न हो सकते थे वह जाति मृत नहीं हो सकती। परन्तु तत्कालीन हिन्दू-जाति की जीवनधारा कहाँ बह रही थी, इसका उल्लेख भारतीय इतिहास में नहीं है, भारतीय साहित्य में है। अतएव ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी-साहित्य की पर्यालोचना करना आवश्यक है।

यह हर्ष की बात है कि अब हिन्दी के कुछ विद्वानों ने प्राचीन कवियों की रचनाओं की समालोचना करना आरम्भ कर दिया है। उनकी समालोचना में अभी तक कवित्व-कला के विश्लेषण की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। कवियों के विचार-वैचित्र्य की ओर हिन्दी के समालोचकों का ध्यान नहीं गया है। साहित्य में कार्य-कारण का नियम उतना ही व्यापक है जितना बाह्य जगत् में संसार में जब कोई कार्य होता है तब उसका एक कारण भी होता है। साहित्य में भी सहसा किसी ग्रन्थ की सृष्टि नहीं हो जाती। कोई भी ग्रन्थ हो, उसके निर्माण में तत्कालीन समाज का धार्मिक विश्वास और संस्कार ख़ूब काम करते हैं। कवि शून्यता से सामग्री नहीं प्राप्त कर सकता। उसके लिए एक विशेष स्थिति की आवश्यकता होती है। सच तो यह है कि जब तक उसके लिए समाज प्रस्तुत नहीं है तब तक वह प्रकट भी नहीं होता। जो भावनायें कवि के काव्य के उपजीव्य हैं वे समाज में पहले ही से प्रचलित हो जाती हैं। यदि तुलसीदास के पहले भक्ति की भावना प्रबल नहीं होती तो रामचरितमानस की सृष्टि भी नहीं होती। वह भक्ति-भावना भी किसी कारण का परिणाम है। वह कारण क्या है, यह जानने के लिए हमें तत्कालीन और उसके पूर्ववर्ती इतिहास पर दृष्टि डालनी होगी। इस प्रकार मनुष्य के विचार-स्रोत पर ध्यान देने से हमें स्पष्ट रूप से यह मालूम हो जायगा कि उनमें कितना सत्य है, और इतिहास की घटनाओं से उनका क्या सम्बन्ध है। उनसे इतिहास स्पष्ट होता है और वे स्वयं इतिहास से स्पष्ट होती हैं। इसी लिए इतिहास की पर्यालोचना में साहित्य की समीक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है। योरप में लेसिङ्ग, वाल्टर स्काट, चेटो ब्राइन्ड आदि विद्वानों ने ऐसी समालोचना का प्रचार किया। साहित्य की इस समीक्षा से गत सौ वर्षों में जर्मनी और फ़्रांस में इतिहास का स्वरूप ही बदल गया। विद्वानों ने समझ लिया कि साहित्य केवल कल्पना का क्रीड़ा-स्थल नहीं है और न वह उत्तेजित मस्तिष्क की सृष्टि-मात्र है। वह अपने काल के मानसिक विकास का चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अतएव साहित्य के प्रकाश से हम अतीत काल के मनुष्य का अन्तरतम गूढ़ रहस्य जान सकते हैं।

जब हमारे हाथ में कोई किताब आती है तब सबसे पहले हम यही कहते हैं कि इसकी रचना योंही नहीं हो गई। जिस प्रकार पृथ्वी पर पद-चिह्न देख कर हम यह कहते हैं कि यह एक प्राणी का चिह्न है उसी प्रकार ग्रन्थ से यह कहा जाता है कि वह भी मनुष्य की अन्तरात्मा का चिह्न है। चिह्न से प्राणी का अनुमान किया जाता है और ग्रन्थ से मनुष्य के अन्तःकरण का आभास मिलता है। पद-चिह्न का महत्त्व इसी लिए है कि उसके द्वारा हम प्राणी का पता लगा सकते हैं। उन चिह्नों का अनुसरण कर हम जान सकते हैं कि वह प्राणी कहाँ गया है। ग्रन्थ का भी महत्त्व इसी में है कि उसके द्वारा हम आत्मा का अनुसन्धान कर सकते हैं। नदी का स्रोत सूख जाने पर भी किनारे पर शिला-खण्डों को देख कर हम कह सकते हैं कि कभी इधर जल की धारा बहती थी। सभ्यता का लोप हो जाने पर, किसी जाति का अस्तित्व नष्ट हो जाने पर, उनके साहित्य से यह जाना जा सकता है कि उनकी जीवन-धारा किधर बह रही थी। अस्तु।

साहित्य के विकास में तीन मुख्य कारण हैं, जातीय संस्कार, देश और काल। जातीय संस्कार वे हैं जो किसी विशेष जाति के सभी व्यक्तियों में पाये जाते हैं। अपने इन्हीं संस्कारों के कारण मनुष्य-जाति से कोई जाति पृथक् की जा सकती है। देश और काल के व्यवधान से भी ये संस्कार सर्वथा नष्ट नहीं हो जाते। एक आर्य जाति का ही उदाहरण लीजिए। आर्य जाति की अनेक शाखाएँ हो गई हैं, वे अब भिन्न भिन्न स्थानों में रहने लगी हैं, सैकड़ों वर्षों से वे एक दूसरे से पृथक् हो गई हैं, तो भी उनका मूल-भाव नष्ट नहीं हुआ है। आर्य जाति की सभी शाखाओं में वह मूलभाव विद्यमान है जिसके कारण आज भी वे सभी अपने को आर्य्य जाति में सम्मिलित करा सकती हैं।

देश-काल का प्रभाव भी साहित्य को एक स्थिर रूप दे देता है। ग्रीस और भारतवर्ष के साहित्य में जो विभिन्नता है उसका कारण देश-गत है। कहा जाता है कि भारतीय सभ्यता का उद्गम शान्त तपोवन में हुआ और ग्रीस की सभ्यता की उत्पत्ति नगरों में हुई। भारत की सजला और सफला भूमि में पदार्पण करते ही आर्यों की ऐहिक कामनाएँ पूर्ण हो गईं। उन्हें अपने जीवन-निर्वाह के लिए यह प्रार्थना करने की कभी ज़रूरत नहीं हुईः—Give us this day our daily bread"। उन्होंने प्रार्थना की 'तमसो मा जोतिर्गमय'। उनका लक्ष्य इहलोक न होकर परलोक हो गया। भारतवर्ष के साहित्य और कला में आध्यात्मिक भावों की जो प्रधानता है उसका कारण यह देश ही है। इसके विपरीत ग्रीस का प्रधान कार्य्य-क्षेत्र इहलोक ही रहा।

काल का प्रभाव दो रूप में व्यक्त होता है। जाति, भविष्य के लिए जो सामग्री छोड़ जाती है उसका उपयोग कर कालान्तर में उसकी सन्तान साहित्य की श्री-वृद्धि करती है। इसके साथ ही भिन्न भिन्न जातियों के पारस्परिक संघर्षण से जो विचार-उत्क्रान्ति उत्पन्न होती है उसका भी प्रभाव साहित्य पर चिराङ्कित हो जाता है। वर्तमान हिन्दी-साहित्य पर प्राचीन आर्य्य-जाति का प्रभाव स्पष्ट है। उसी प्रकार उस पर इस्लाम सभ्यता एवं आधुनिक योरप का भी प्रभाव विद्यमान है। इन सब प्रभावों से जाति की जो उन्नति और अवनति होती है वह उसके साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है।

साहित्य के परिच्छद में जाति का रूप छिपा रहता है। हम उस परिच्छद को हटा कर उसका यथार्थ रूप देख सकते हैं। यह काम साहित्य के समालोचकों का है और हमें विश्वास है कि अब हिन्दी के विद्वान् प्राचीन काव्यों का मन्थन कर सत्य का रत्न उपलब्ध कर लेंगे।

४—द्वितीय प्राच्य सम्मेलन।

पूने में सर आर० जी० भण्डारकर का स्थापित किया हुआ एक भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट है। उसी के उद्योग से प्राच्य सम्मेलन की नींव डाली गई थी जिसका पहला अधिवेशन पूने में ही हुआ था। उसका परिचय सरस्वती के अगस्त १९१९ के अङ्क में दिया गया था। प्रथम अधिवेशन के अवसर पर कलकत्ता-विश्वविद्यालय की पोस्ट ग्रैजुएट टीचिङ्ग समिति की ओर से सर आशुतोष मुकर्जी द्वारा दिये गये निमन्त्रण को स्वीकार करते हुए सम्मेलन ने यह निश्चय किया था कि दूसरा अधिवेशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ते में हो और वह सन् १६२१ से पहले न किया जाय।

उसी के लिए कलकत्ता-विश्व-विद्यालय के सीनेट हाउस में २१ अगस्त १६२१ को एक सभा हुई थी जिसमें यह निश्चय हुआ कि सम्मेलन २८, २६, ३०, ३१ जनवरी १६२२ को विश्व-विद्यालय की संरक्षता में किया जाय। उसी समय एक स्वागतकारिणी समिति बनाई गई और श्रीआशुतोष मुकर्जी उसके सभापति नियुक्त हुए। इसके मन्त्री हैं डब्ल्यू० आर० गुरले, डी० आर० भण्डारकर और श्रीयुत रामप्रसाद चांदा। स्वागतकारिणी समिति देश भर के समस्त विद्वानों और परिषदों से प्रार्थना करती है कि वे सम्मेलन में स्वयं अथवा प्रतिनिधि-स्वरूप अवश्य उपस्थित हों और यथाशक्ति योग देकर उसे सफल बनाने का उद्योग करें।

सम्मेलन में पढ़े जाने के लिए लेख और निबन्ध १५ दिसम्बर तक श्री रामप्रसाद चांदा, पुरातत्त्व-विभाग, (Archoeologicalsection) इंडियन म्यूज़ियम, कलकत्ते के पते पर अवश्य पहुँच जाना चाहिए। पढ़ने के लिए समय दस मिनट से अधिक नहीं दिया जायगा। निम्नलिखित विषयों पर निबन्ध पढ़े जायँगे।

१—संस्कृत भाषा और साहित्य।

२—अवस्ता और उसका संस्कृत से सम्बन्ध।

३—पाली।

४—जैन और प्राकृत।

५—भारतवर्ष की वर्तमान और प्राचीन भाषाओं का विज्ञान।

६—वर्तमान भाषायें और उनका प्राचीन साहित्य।

७—पुराण-वस्तुशास्त्र, मुद्रा-विद्या, शिला-लेख, पुरातन कला इत्यादि।

८—प्राचीन इतिहास, भूगोल और कालनिर्णय-विद्या।

९—प्राचीन आयुर्वेद, सङ्गीत इत्यादि।

१०—शकुनिशास्त्र और जन-साधारण का ज्ञान।

११—फ़ारसी और अरबी।

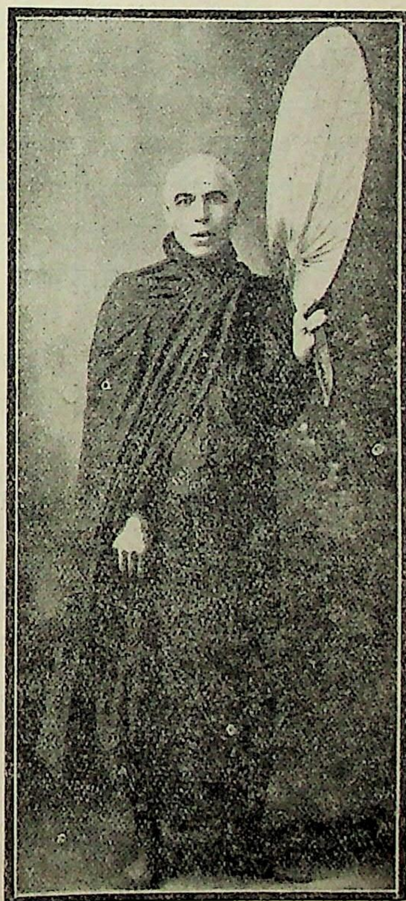
१२—साधारण विषय (अ) पाठशालाओं और विश्व-विद्यालयों में पढ़ाई जानेवाली संस्कृत तथा अन्य भाषाओं की वर्तमान अवस्था; (इ) प्राचीन शास्त्र-विषयक ज्ञान; (उ) संस्कृत से और भाषाओं में अनुवाद करना।

सम्मेलन का उद्घाटन बङ्गाल के गवर्नर अर्ल आफ़ रोनाल्डशे करेंगे। प्रतिनिधि-फ़ीस पांच रुपया रक्खी गई है। कलकत्ते में ठहरने और भोजन आदि का प्रबन्ध सब स्वागतकारिणी समिति ही करेगी, जिसके लिए प्रतिनिधियों को कुछ देना नहीं पड़ेगा। जो सज्जन कुछ अधिक जानना चाहें वे इस पते पर जान सकते हैं—डब्ल्यू० आर० गुरले, (W. R. Gourlay, C. S. I., C. I, E.), गवर्नमेंट हाउस, कलकत्ता।

बी० एस० अग्रवाल

५—एक योरपीय बौद्ध-भिक्षु।

भारत से बौद्ध धर्म का उच्छेद हुए ज़माना बीत गया। इस समय भारत में एतद्देशीय बौद्ध शायद एक भी



एक योरपीय बौद्ध-भिक्षु।

न हो पर उसका अस्तित्व संसार से नहीं उठ गया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशिया महाद्वीप के अधिकांश भाग पर भारत का यह प्राचीन धर्म आज भी ज्यों का त्यों विद्यमान है। परन्तु यह बात बिलकुल ठीक है कि अब उसका प्रभाव अपने क्षेत्र के बाहर बिलकुल नहीं पड़ता है। उसके प्रभाव-क्षेत्र के बाहर के लोग उसके मार्मिक तत्त्वों से अपरिचित होने के कारण उसके उदार सिद्धान्तों को हृदयङ्गम करने से वञ्चित रहते हैं। तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि अन्य धर्मानुयायी उसके तत्त्वों के समझ जाने पर उसकी दीक्षा लेने की उपेक्षा करते हैं। यहाँ एक आयरिश का कुछ परिचय दिया जाता है जिसने बौद्ध मत के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करके अपने ईसाई धर्म का त्याग कर दिया और बौद्ध हो गया है। इसका नाम अब यू० धूमलोक है।

धूमलोक महोदय का वय इस समय ३२ वर्ष के लगभग होगा। दस वर्ष हुए इन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ब्रह्म-देश में ली थी और इस समय ये वहीं के एक बौद्ध-मठ के अधिकारी हैं। जब पहले पहल ये बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए थे तब योरपीय समाज में इनके प्रति लोगों ने कुभाव प्रकट किये थे। किन्तु धीरे धीरे उनका विरोध ठण्डा हो गया और इस समय ये सब समाजों में अपने पूज्य गुणों के कारण सम्मान पाते हैं। बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद इन्होंने खूब देशाटन किया। भारत, चीन, जापान, स्याम आदि देशों की यात्रा करके वहाँ के बौद्ध तीर्थ-स्थानों के दर्शन किये। इस समय ये रंगून में निवास करके भगवद्भजन में निरत रहते हैं।

६—सुलभ सिक्का और सुलभ शिक्षा।

जर्मनी के प्रधान-चलन सिक्के का नाम "मार्क" है। महासमर के पूर्व, मार्क बहिर्व्यापार के लिए क़रीब एक शिलिङ्ग अर्थात् १२ आने के बराबर था—अर्थात् १ पौंड के २० मार्क होते थे। इस समय जर्मनी की परिस्थिति—विशेषतः आर्थिक परिस्थिति—इतनी भयङ्कर हो रही है कि उसके सिक्के का संसार के बाज़ार में कुछ भी मूल्य न रहा—हाँ, कुछ भी मूल्य नहीं, क्योंकि एक पौंड के बदले, इन पङ्क्तियों को लिखते समय बीस की जगह बारह सौ से अधिक मार्क मिल रहे हैं। यहाँ मार्क के इस अधःपात के कारणों को बताने की आवश्यकता नहीं, यद्यपि इतना कहा जा सकता है कि ज्यों ज्यों मार्क की विनिमय-दर गिरती जाती है त्यों त्यों मित्र-शक्तियों का व्यापार चौपट होता जाता है। कारण स्पष्ट है। मान लीजिए किसी चीज़ का दाम अँगरेज़ी सिक्के में लड़ाई के पहले १ पौंड था। बहुत सम्भव है वह जर्मनी में उस समय क़रीब २० मार्क में मिलती रही होगी। अब यह मान लीजिए कि इँग्लेंड में चीज़ों का दाम दस गुना बढ़ गया है और जर्मनी में बीस गुना। पर होता क्या है? प्रतिद्वन्द्विता में अँगरेज़ी चीज जर्मन चीज़ के सामने न ठहर सकेगी। इस समय दस पौंड के क़रीब डेढ़ सौ रुपये होंगे, पर चार सौ मार्क के होंगे कुल क़रीब पाँच रुपये! फिर यदि भारतवर्ष वह चीज़ ख़रीदना चाहेगा तो कहाँ ख़रीदेगा? एक बच्चा भी समझ सकता है कि जर्मनी में। सम्भव है इँग्लेंड में दाम दसगुना न बढ़ा हो। बहुत सम्भव है जर्मनी में दाम बीस गुने से भी ज़्यादा बढ़ गया हो। पर जर्मन माल प्रत्येक दूसरे देश के माल से इस समय सस्ता पड़ रहा है, इसके प्रमाण में कुछ भी कहने की ज़रूरत नहीं। सच तो यह है कि सस्ते जर्मन माल से अपने उद्योग-धन्धों की रक्षा करने के लिए, इँग्लेंड जैसे "मुक्तद्वार वाणिज्य-नीति" के पोषक देश ने अभी उस दिन खुल्लमखुल्ला "संरक्षण-नीति" को ग्रहण किया है; और मित्र-शक्तियों के अ-पराधीन देश, ख़ासकर लोहे और ईस्पात के सामान के आर्डर, धड़ाधड़ जर्मनी भेजते जा रहे हैं।

हम भारतवासियों ने मार्क का मूल्य इस प्रकार गिर जाने से कहाँ तक लाभ उठाया है? इस प्रश्न का उत्तर चाहनेवालों को स्मरण रखना चाहिए कि जर्मनी के साथ व्यापार के मार्ग में, मित्र-शक्तियों ने अभी कुछ काल के लिए रुकावटों की एक दीवार खड़ी कर रक्खी है। जो व्यापार हो सकता है वह भी नहीं हो रहा है। इसका कारण हमारे राजनैतिक सम्बन्ध की विशेषता है। पर हम इस प्रश्न के व्यापारिक पहलू पर विचार न कर, अपने पाठकों का ध्यान एक और सुभीते की ओर आकर्षित करते हैं जिसका मार्क की एक्सचेञ्ज-दर से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

जर्मनी अपने विद्यालयों और विश्व-विद्यालयों के लिए संसार में प्रख्यात है। उनकी वैज्ञानिक और औद्योगिक शिक्षा-प्रणाली की उत्कृष्टता उसके शत्रुओं ने भी स्वीकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है। इधर भी जर्मनी अपनी उस शिक्षा-प्रणाली को उत्तरोत्तर उन्नत करने में दत्तचित्त है। लार्ड हैल्डेन जैसे अनुभवी विद्वान् ने हाल की एक वक्तृता में, अपने प्रत्यक्ष दर्शन का हवाला देते हुए कहा है कि जर्मनी, लाख कठिनाइयों के रहते भी, इस समय जिस उत्साह, अध्यवसाय और तत्परता से अपनी शिक्षा-प्रणाली को 'सर्व्वाङ्ग-सुन्दर' और 'अद्वितीय' बनाने की चेष्टा कर रहा है उसका संसार अनुमान भी नहीं कर सकता। भारत के ज्ञानपिपासु नवयुवकों को यह सुअवसर हाथ से न जाने देना चाहिए। जर्मनी में आज-कल अच्छी से अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के लिए, महीने में, डेढ़ हज़ार मार्क ख़र्च पड़ते हैं। लड़ाई के पहले डेढ़ हज़ार मार्क के क़रीब ग्यारह सौ रुपये होते, इस समय बीस रुपये भी नहीं होते! कैसा अच्छा मौक़ा है!! जाने में न कोई झंझट है, न कठिनाई!!! अवश्य ही यह अवस्था बराबर न रहेगी, आशा की जाती है कि जल्द मार्क की हालत कुछ सुधरेगी—पर अगर बीस रुपये की जगह सौ रुपये भी ख़र्च करने पड़े—अर्थात् कुछ समय के बाद—तो भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने का यह अवसर अपूर्व ही रहेगा। भारतीय छात्रों से हमारा हार्दिक अनुरोध है कि वे, इतने कम ख़र्च में, इस आधुनिक तीर्थ से ज्ञानसलिल लाकर अपने देश को उससे सिञ्चित करने के प्रस्ताव पर अवश्य ध्यान दें। जो इस विषय में ज़्यादा जानना चाहें वह कृपया लाहोर के मिस्टर सगरचन्द, बैरिस्टर-एट-ला से लिखा-पढ़ी करें।

७—विष्णु का त्रिपादक्रम।

बंगलोर के प्रसिद्ध विद्वान् और कौटिल्य के अर्थशास्त्र के सम्पादक पण्डित साम शास्त्री को रायल एशियायटिक सोसायटी से अभी हाल ही में 'कैम्पबेल मेमोरियल पदक' प्राप्त हुआ है। इस पदक-प्रदान के लिए गत वर्ष के दिसम्बर की १० वीं तारीख़ को बम्बई में उक्त सभा की शाखा-सभा का एक विशेष अधिवेशन किया गया था। पदक ग्रहण करने के अनन्तर शास्त्री महोदय ने सभा के सदस्यों के समक्ष अपने एक नये निबन्ध का पाठ किया। आपने अपने इस लेख में वामन द्वारा त्रिलोक के नापी जानेवाली पौराणिक कथा के रहस्य का उद्घाटन किया है। पाठकों के मनोरञ्जन के लिए उस लेख का सारांश आगे दिया जाता है:—

पुराणों एवं वेदों में भी लिखा है कि जब महाराज बलि ने वामन भगवान् को तीन पग भूमि दान कर दी तब उन्होंने अपना विराट् रूप प्रकट करके एक पग में सारी पृथ्वी, दूसरे में आकाश और तीसरे में स्वर्ग नाप लिया। इसके बाद उन्होंने बलि को पाताल में रहने के लिए भेज दिया। परन्तु इस अद्भुत कथा का रहस्य क्या है? बात यह है कि वैदिक ऋषि वसन्त, ग्रीष्म और शीत आदि तीन ऋतुओं तथा उत्तरायण और दक्षिणायन के सन्धिकालों के आगमन तथा उनके अवसान का निश्चय जिस ढंग से प्राचीन समय में किया करते थे, उसकी ओर यदि ध्यान दिया जाय तो इस कथा का रहस्य स्पष्ट हो जाय। तैत्तिरीय ब्राह्मण के निर्माता ने अपनी एक स्तुति में प्रार्थना की है कि लगातार बड़े बड़े दिन और छोटी छोटी रातें क्रम-पूर्वक आती जायँ और पृथ्वी, वायु तथा आकाश आदि तीन लोक भी उन्हीं के साथ हमें प्राप्त हों। शतपथ ब्राह्मण और सौन्दर्य-लहरी में उल्लिखित वसन्त, ग्रीष्म और शीत से ये तीनों लोक मेल खाते हैं। अतएव इनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक ऋषि वसन्त को पृथ्वी, ग्रीष्म को वायु और शीत को आकाश कहते थे। यह भी मालूम पड़ता है कि वे उत्तरायण और दक्षिणायन को द्यावापृथ्वी कहते थे।

इसके सिवा इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि वैदिक ऋषि नित्यप्रति पारायण की जानेवाली ऋचाओं की संख्या से भी दिन और रात की घटती बढ़ती नापा करते थे। वे इसी से ऋतुओं तथा दोनों अयनों के आगमन तथा उनके अवसान का भी निश्चय कर लेते थे। इनके जानने का एक दूसरा उपाय उनके पास और भी था। धूप-घड़ी की कील की छाया से भी वे इनके आगमन का निश्चय करते थे। यह छाया पुरुष, वामन या विष्णु कहलाती थी। कील की छाया उत्तरायण के दिन १२० अङ्गुल लम्बी पड़ती थी और दक्षिणायन में १२०—१६०—२१०, अङ्गुल जैसा कि पुरुष सूक्त की आरम्भिक कुछ ऋचाओं से व्यक्त होता है। उनकी उक्त कील ३० अङ्गुल लम्बी प्रतीत होती है।

अतएव यह बात स्पष्टतया समझ पड़ती है कि पुरुष या कील के माप द्वारा लोकों या ऋतुओं तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयनों के नापने की इस प्रक्रिया से तीन पग से विष्णु द्वारा लोकों के नापने की उपर्युक्त कथा की कल्पना की गई है। यहां पद का अर्थ पुरुष की ऊँचाई का चतुर्थांश भाग है। ज्योतिष के सब ग्रन्थों में उक्त कील का नाम 'पुरुष' दिया गया है और पुरुष विष्णु वाचक शब्द है ही।

८—चित्र-परिचय।

सरस्वती के इस अङ्क में 'विश्राम' नामक जो रङ्गीन चित्र दिया गया है उसमें चित्रकार ने क्लान्त स्त्री का भाव बड़े कौशल से दिखलाया है। 'डायना' का उल्लेख 'तीर्थ-सलिल' नामक लेख में किया गया है। वह एक ग्रीक देवता है। 'अपत्य-स्नेह' में माता और कन्या के मुख पर पवित्र स्नेह का भाव स्पष्ट है। 'शिशु' में बच्चों की सरलता दिखलाई गई है। 'विराध-संहार' और 'वन-पथ पर' ये दोनों चित्र रामायण की कथा से सम्बन्ध रखते हैं। 'विलास' में प्राचीन रोम के अधिवासियों की क्रीड़ा का दृश्य दिखलाया गया है। 'शीतकाल' में शीतकालीन अरण्य का दृश्य अङ्कित किया गया है।

पुस्तक-परिचय।

१—सूर्यकुमारी पुस्तक-माला।

जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रान्त में एक खेतड़ी राज्य है। श्रीमती सूर्यकुमारी वहीं की राज-कन्या थीं। उनका विवाह शाहपुरा के युवराज श्रीउमेदसिंह से हुआ था। राजकुमारी बहुत शिक्षिता थीं। उनकी इच्छा थी कि स्वामी विवेकानन्द के सब ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी में छपाया जाय। वे यह भी चाहती थीं कि हिन्दी में अच्छे अच्छे ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए व्यवस्था कर दी जाय। दुर्भाग्य से उनका स्वर्गवास हो गया। परन्तु राजकुमार श्रीउमेदसिंहजी ने श्रीमती की अन्तिम कामना को सफलीभूत करने के लिए एक लाख रुपये लगाये हैं और काशी की नागरी-प्रचारिणी-सभा से श्रीमती की स्मृति चिरस्थायिनी करने के लिए श्रीयुत चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी, बी० ए० के सम्पादकत्व में सूर्यकुमारी पुस्तक-माला के प्रकाशन की व्यवस्था हुई है। इस ग्रन्थ-माला की पहली पुस्तक **ज्ञानयोग** है। स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का यह पहला खण्ड है। इसके अनुवादक बाबू जगन्मोहन वर्मा हैं। पुस्तक का परिचय देने की ज़रूरत नहीं है। स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थों का आदर सर्वत्र ही है। पुस्तक अच्छे काग़ज़ और अच्छे टाइप में छपी है। जिल्द भी सुन्दर है। ३७१ पृष्ठों की पुस्तक का दाम २॥) है।

सूर्यकुमारी पुस्तक-माला का दूसरा ग्रन्थ **करुणा** है। यह बड़ी किताब है, ६१२ पृष्ठों में समाप्त हुई है। परन्तु मूल्य ३॥) है। यह एक बँगला उपन्यास का अनुवाद है। मूल-लेखक श्रीयुत राखालदास वन्द्योपाध्याय हैं और अनुवादक बाबू रामचन्द्र वर्म्मा। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें गुप्त-कालीन भारतवर्ष का दृश्य दिखलाया गया है। सम्पादक महोदय के कथनानुसार इसमें यह दिखलाया गया है कि कुमार गुप्त के समय में गुप्त-साम्राज्य कितना वैभवशाली था; उस समय की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्था क्या थी; कुमार गुप्त की विलासिता और बौद्धों के षड्यन्त्र से गुप्त-साम्राज्य का पतन किस प्रकार हुआ। उपन्यास-प्रेमियों के लिए इतिहास की ये बातें गौण हैं। उपन्यास के लक्ष्य और इतिहास के लक्ष्य में भेद है। इतिहास का लक्ष्य मानव-समाज के विकास की ओर रहता है और उपन्यास व्यक्तिगत चरित्र के विकास पर ध्यान देता है। करुणा में गुप्त-सम्राट् का महत्त्व उसके किसी पात्र से, चाहे वह ऐतिहासिक हो अथवा कल्पित, कम और अधिक नहीं है। उपन्यास की सार्थकता तभी है जब हम उसके पात्रों को जीवित मनुष्यों के रूप में देख लें। ग्रन्थकार ने उपन्यास के कथा-भाग के सौष्ठव की रक्षा की है, परन्तु चरित्र-चित्रण में पाठकों को उनकी इच्छा के अनुसार ही चलना पड़ेगा। पाठकों को उपन्यासकार यह पूछने की आज्ञा ही नहीं देते कि उनके किसी पात्र का चरित्र क्यों उन्नत और अवनत है। हम उनके अन्तःकरण को नहीं देख सकते। इसलिए हमें इसी से सन्तोष कर लेना पड़ता है कि जो बुरे हैं वे बुरे ही होंगे। उपन्यास को दुःखान्त बनाने के लिए लेखक ने अपने कई पात्रों के—कम से कम अरुणा के—मृत्यु-प्रदर्शन में बड़ी व्यग्रता प्रदर्शित की है। तो भी उपन्यास का अन्तिम दृश्य बहुत ही करुणा-जनक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हमें आशा है कि हिन्दी के उपन्यास-प्रेमी इसका अच्छा आदर करेंगे।

२—उपन्यास और नाटक।

हिन्दी में अभी हाल में जो उपन्यास और नाटक प्रकाशित हुए हैं उनमें से कुछ के परिचय नीचे दिये जाते हैं।

(१) वनदेवी—अच्छे टाइप में, अच्छे काग़ज़ पर छपी हुई, ६६ पृष्ठों की यह एक छोटी सी पुस्तक है। इसमें एक रङ्गीन और तीन सादे चित्र भी हैं। इलाहाबाद बैंक की कलकत्तेवाली शाखा के कर्म्मचारी पण्डित बालदत्त पाण्डेय ने इसे लिखा और कलकत्ते ही की भारतीय पुस्तक-एजेंसी ने इसे प्रकाशित किया है। मूल्य है १२ आने। इसमें एक कल्पना-प्रसूत गद्य चित्र है। उस चित्र के कलेवर के निर्म्माता तो पाण्डेयजी हैं, पर प्राणसञ्चारक हैं वे देशभक्त महात्मा जिन्होंने भारत के पुनरुद्धार की कुछ विशेष युक्तियाँ सोच निकाली हैं। उनकी वही युक्तियाँ या रामबाण-ओषधियाँ इस पुस्तक आत्मा की हैं। उपन्यास होकर भी इसमें वर्तमान समाज के किसी अंश-विशेष का पूरा चित्र नहीं; परन्तु वैसा चित्र न होने पर भी इसे पढ़ने से उपन्यास ही के जैसे सौरस्य का अनुभव होता है। इसमें पति-पत्नी के आदर्श प्रेम की झलक है; स्त्रियों को अशिक्षित रखने के कुफलों का वर्णन है; दुर्भिक्ष के कारण प्रजा-जनों, विशेष करके किसानों, पर आई हुई आपदाओं का चित्र है; ज़मींदारों के द्वारा किये गये उत्पीडन की चर्चा है; कृषि, शिल्प, साहित्य, वैद्यक आदि की हीनता से उत्पन्न हुई देश की अधोगति का विवेचन है और, अन्त में है, देशोद्धारक संन्यासियों और संन्यासिनियों की सृष्टि तथा देश के कोने कोने तक में कुटिया बना कर वहीं से उनके द्वारा भारतोन्नति के प्रेरक उपदेशों की घोषणा की आवश्यकता। बीच बीच में प्राकृतिक और कहीं कहीं अप्राकृतिक सृष्टि-सौन्दर्य्य का भी वर्णन है। लेखक का उद्देश तो स्तुत्य है ही, कहानी भी उनकी निज की उपज है। यह और भी अच्छी बात है। पुस्तक के प्रकाशक के शब्दों में—

"इसमें पराधीन देशों के अधिवासियों के माननीय कर्तव्य एवं गार्हस्थ जीवन व्यतीत करनेवाली सुशिक्षिता आर्य्यललनाओं के सुदृढ़ विचार-पूर्ण आदर्श जीवन का वर्णन बड़ी ही प्रासादिक भाषा में किया गया है"। हिन्दी-साहित्य में ऐसे आदर्श के दर्शकों के जितने ही अधिक दर्शन हों उतना ही अधिक उसका सौभाग्य समझना चाहिए।

(२) पुष्पहार—यह बनारस की हिन्दी-पुस्तक-माला का ग्यारहवाँ पुष्प है। इसमें बाबू प्यारेलाल गुप्त की नौ कहानियों का संग्रह किया गया है। उनमें सात मौलिक हैं और दो अनुवादित। सभी कहानियाँ अच्छीं, अतएव एक बार अवश्य पढ़ने योग्य, हैं। भाषा भी अच्छी है। १६८ पृष्ठों की जिल्द बँधी हुई किताब का मूल्य १॥) है।

(३) स्वर्ण-देश का उद्धार—यह एक नाटक है, श्रीयुत इन्द्र वेदालङ्कार विद्यावाचस्पति की रचना है। लेखक का कथन है कि यह उनके हृदय की एक उमङ्ग का फल है। हृदय की उमङ्ग में जो नाटक लिखा गया है वह बुरा ही हो, यह कोई नहीं कह सकता। नाटक की सफलता का निश्चय रंगभूमि ही पर हो सकता है। लेखक के प्रारम्भिक शब्दों से मालूम हुआ कि यह खेला गया था और उपयोगी भी प्रमाणित हुआ था। हमारी समझ में यह नाटक शिक्षा-प्रद होने पर भी चित्ताकर्षक नहीं है। इसके कथा-भाग में वह बात नहीं है जिससे दर्शकों की कौतूहल-वृद्धि होती रहे। इसका कारण हमें यह मालूम होता है कि इसमें लेखक ने एक राजनैतिक समस्या को हल किया है। अतएव उन्हें उसी के अनुकूल कथा की सृष्टि करनी पड़ी। जब रस्सी से फूलों की माला गूँथी जाती है तब माला तैयार हो जाती है, पर फूलों का रूप बिगड़ जाता है। लेखक की विद्वत्ता और गम्भीरता पर हमें पूरा विश्वास है, पर हम समझते हैं कि उनमें कदाचित् वह नैपुण्य नहीं है जो एक नाटककार में होता है। नाटक का विषय अच्छा है, भाषा अच्छी है। कविता भी बुरी नहीं है। तो भी हमें उससे सन्तोष नहीं हुआ। इससे अच्छा तो हमें रसिकेन्द्रजी का **'अज्ञात-वास'** जँचा, यद्यपि उसमें वह नवीनता नहीं है जो 'स्वर्ण-देश का उद्धार' में है। सम्भव है कि कोई अज्ञात-वास को पढ़ने का कष्ट न उठावे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और स्वर्ण-देश का उद्धार को एक बार अवश्य पढ़े। परन्तु इसका कारण विषय की नवीनता है। कला का नैपुण्य नहीं है। 'अज्ञात-वास' में लेखक ने वह विषय लिखा है जिसे संस्कृत और हिन्दी के कवियों ने ख़ूब विशद रूप से पाठकों के सम्मुख रख दिया है। ऐसे विषय में रसिकेन्द्र की असफलता निश्चित ही थी।

(४) उपन्यास और नाटक की कहानी कल्पना-प्रसूत होती है। **कारावास-कहानी** कल्पना-प्रसूत न होने पर भी साधारण कहानियों से कम मनोरञ्जक नहीं है। अतएव यहीं उसका परिचय दे दिया जाता है।

कारावास कहानी के लेखक हैं पण्डित उमादत्त शर्मा। प्रकाशक—पण्डित झाबरमल शर्मा, राजस्थान एजन्सी,८।१, रामकुमार रक्षित लेन, कलकत्ता और मूल्य ढाई रुपया है।

हिन्दी में यह अपने ढँग की पहली पुस्तक है। राजनैतिक मामलों में दण्ड पाये हुए भारतीय देश-भक्तों की करुण कहानियों का सङ्ग्रह इसमें किया गया है। इसमें कुल २५ पूज्य देश-भक्तों के कारावास के अत्याचारों तथा कष्टों का वर्णन है। इनमें अरविन्द बाबू की कारावास की कहानी अधूरी होने पर भी श्रेष्ठ है। अधिकांश 'चरित' वर्तमान समय की राजनैतिक स्थिति से सम्बन्ध रखनेवाले हैं। पुस्तक समयानुकूल है, अतएव काम की है।

३—आध्यात्मिक ग्रन्थ।

(१) भगवान् शङ्कराचार्यजी के नाम से कितने ही छोटे छोटे ग्रन्थ और स्तोत्र प्रसिद्ध हैं। उनमें कवित्व गुण है और दिव्य विचार हैं। इसी लिए वे ख़ूब लोक-प्रिय हैं। श्रीयुत रामचन्द्रजी ने ऐसे ही ग्रन्थों से **अद्वैत-संग्रह** नाम का एक ग्रन्थ तैयार किया है। इसमें कुछ स्तोत्र और ग्रन्थ अविकल दिये गये हैं और कुछ बड़े होने के कारण संक्षिप्तरूप में सङ्गृहीत हुए हैं। मूल श्लोकों के नीचे सरल हिन्दी-भाषा में उनका अनुवाद दे दिया गया है। सङ्ग्रह अच्छा हुआ है। अनुवाद भी सुन्दर है। २६६ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ॥।) अधिक नहीं है। छपाई भी अच्छी है। प्रकाशक हैं—श्रीयुत रामचन्द्र, मारवाड़ी अग्रवाल, तम्बाकू कटरा, देहली।

(२) कलकत्ते की हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी ने **राम की उपासना** नाम की एक छोटी सी सुन्दर पुस्तक प्रकाशित की है। पुस्तक में स्वामी रामतीर्थ के उपासना-विषयक दिव्य विचार सन्निहित हैं। पृष्ठ-संख्या ५५ और मूल्य ।) है।

(३) हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी से ही **विवेक-वचनावली** का भी प्रकाशन हुआ है। इसमें स्वामी विवेकानन्द के चुने हुए उपदेशों का सङ्ग्रह किया गया है। इसका भी मूल्य ।) है।

(४) देहरादून में एक वैदिक जीवन-आश्रम है। उसके अधिकारी डाक्टर हरिश्चन्द्र पी-एच० डी० हैं। वहीं से **ऋग्वेद-सार-सङ्ग्रह** नामक ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है। इसमें ऋग्वेद के दसवें मण्डल के सरल तथा रोचक मन्त्र सङ्गृहीत हुए हैं। नीचे अँगरेज़ी में भाष्य है। पुस्तक दिव्य है। मूल्य ३) है।

(५) बम्बई के श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस से शाङ्कर ब्रह्मसूत्र भाष्य का अनुवाद हिन्दी में छपने लगा है। अनुवादक राय चोखानन्द जिज्ञासु हैं। हमारे पास जो पुस्तक आई है उसमें प्रथमाध्याय के प्रथमपाद ही तक अनुवाद किया गया है। अनुवादक का कथन है कि यदि इससे लोगों को लाभ हुआ तो शेष अध्यायों का भी अनुवाद प्रकाशित किया जायगा।

(६) **आत्म-संयम**—यह तीस पृष्ठों की पुस्तिका है। अमरीका के धर्म-प्रचारक स्वामी परमानन्द की एक अँगरेज़ी पुस्तक का यह स्वतन्त्र अनुवाद है। इसमें आत्मा के संयमन-सम्बन्धी विचार सरल भाषा में व्यक्त किये गये हैं। इसे श्रीयुत धर्मानन्द ने लिखा है। मिलने का पता—धर्म-ग्रन्थ-माला कार्यालय, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता। इसका मूल्य ।-) है।

४—कविता की किताबें।

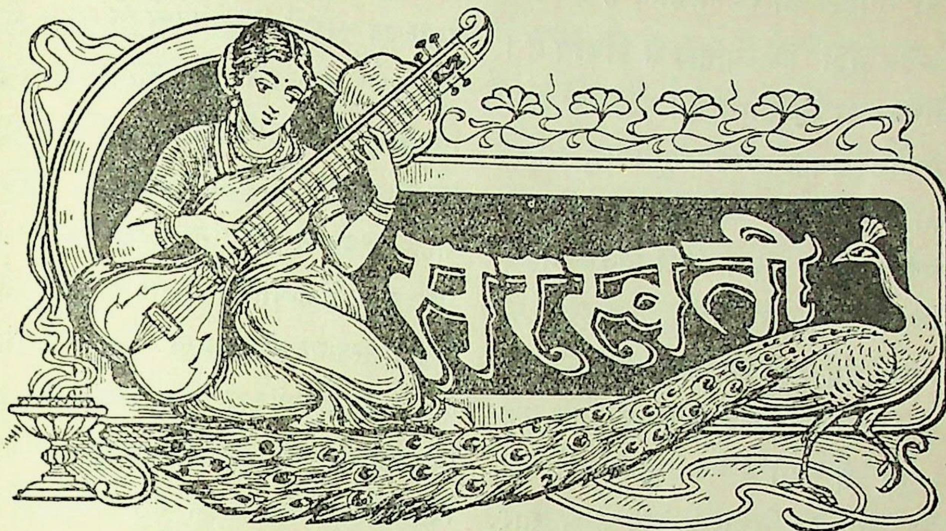
(१) **स्वदेश-तरङ्ग**—इसमें श्रीयुत ज्योतिःप्रसाद मिश्रजी की कविताओं का संग्रह है। वही इसके प्रकाशक हैं। मूल्य ≡) है।

(२) **कंस-वध**—यह खण्ड-काव्य है। लेखक श्रीयुत श्यामलाल पाठक हैं। सरस्वती-सदन, भाल्दारपुरा, जबलपुर, ने इसका प्रकाशन किया है। मूल्य ।≈) है।

(३) **वीर-पुष्पाञ्जलि**—यह पण्डित जुगलकिशोर की रचना है। प्रेम-मन्दिर आरा से इसका प्रकाशन हुआ है। मूल्य ।) है।

Printed and Published by Apurva Krishna Bose, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भाग २३, खण्ड १] फ़रवरी १९२२—माघ १९७८ [संख्या २, पूर्ण संख्या २६६

साहित्य का मूल।

साहित्य का स्वरूप सदैव परिवर्तित होता रहता है। भिन्न भिन्न कालों में भिन्न भिन्न आदर्शों की सृष्टि होती है। मनुष्य-जीवन में हम जो वैचित्र्य और जटिलता देखते हैं वही हम साहित्य में पाते हैं। साहित्य की गति सदैव उन्नति ही के पथ पर अग्रसर नहीं होती। मानव-समाज के साथ साथ उसका भी उत्थान-पतन होता रहता है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि जब कोई जाति अवनत दशा में है तब उसका साहित्य भी अनुन्नत हो। प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि जाति के अधःपतित होने पर उसमें श्रेष्ठ साहित्य की सृष्टि होती है और जब जाति-गौरव के उच्च-शिखर पर पहुँच जाती है तब उसका साहित्य हत-श्री हो जाता है। किसी किसी का शायद यह ख़याल है कि जब देश में शान्ति विराजमान है तभी सत्साहित्य का निर्माण होता है। परन्तु साहित्य के इतिहास में हम देखा करते हैं कि युद्ध-काल में भी जब एक जाति वैभव की आकांक्षा से उद्दीप्त होकर नर-श्रोणित के लिए लोलुप हो जाती है तब उसमें दैवी शक्ति-सम्पन्न कवि जन्म ग्रहण करता है। अब प्रश्न यह होता है कि साहित्य के उद्भव का कारण क्या है। क्या कवि की उत्पत्ति आकाश में विद्युत् की भाँति एक आकस्मिक घटना है? क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश और समाज की स्थिति के प्रतिकूल साहित्य की सृष्टि होती है? क्या कवि देश और काल की अपेक्षा नहीं करता? अथवा क्या देश और काल के अनुसार ही साहित्य की रचना होती है?

इसमें सन्देह नहीं कि साहित्य में वैचित्र्य है। परन्तु उस वैचित्र्य में भी साम्य है। नदी का स्रोत चाहे पर्वत पर बहे अथवा समतल भूमि पर, उसकी धारा विच्छिन्न नहीं होती। साहित्य का स्रोत भी भिन्न भिन्न अवस्थाओं में भिन्न भिन्न स्वरूप ग्रहण करके अविच्छिन्न ही बना रहता है। उदाहरण के लिए हम हिन्दी-साहित्य ही की विचार-धारा पर एक बार ध्यान दें। महाकवि चन्द से लेकर आज तक जितने कवि हुए हैं सभी ने एक ही आदर्श का अनुकरण नहीं किया है। विचार-वैचित्र्य के अनुसार हिन्दी-काव्यों के चार स्थूल विभाग किये जा सकते हैं। हिन्दी-साहित्य के आदि-काल में वीर-पूजा का भाव प्रधान था। उसके बाद अध्यात्म-वाद की प्रधानता हुई। फिर भक्त कवि उत्पन्न हुए। तद-नन्तर शृङ्गार-रस की उत्कृष्ट कविताएँ निर्मित हुईं। यह सब होने पर भी हिन्दी-साहित्य में हम एक विचार-धारा देख सकते हैं। विहारी सूर नहीं हो सकते और न सूर चन्द हो सकते हैं। परन्तु जिस भावना के उद्रेक से चन्द कवि ने अपने महाकाव्य की रचना की वह सूर और विहारी की रचनाओं में विद्यमान है। वह है हिन्दू जाति का अधःपतन। महाकवि चन्द ने अपनी आँखों से हिन्दू-साम्राज्य का विनाश देखा। उन्होंने उसकी गौरव-रक्षा के लिए अपने काव्य का विशाल मन्दिर खड़ा कर दिया। कबीर ने अपनी वचनावली में भारत की दशा का ही चित्र अङ्कित किया। सूरदास के पदों में भी वही हाहाकार है। विहारी के विलास-वर्णन में भी विषाद है। वसन्त-ऋतु के अतीत गौरव का स्मरण कर उसी के पुनरुद्भव की आशा में उनका मन अटका रहा। भूषण के वीर-रसात्मक काव्यों में भी शौर्य के स्थान में हम शस्त्रों का व्यर्थ झणत्कार ही सुनते हैं। पद्माकर ने निर्वाणोन्मुख दीप-शिखा की भाँति हिम्मत बहादुर की गुणावली का गान किया है। और कहाँ तक कहें, हिन्दी के आधुनिक कवियों की रचनाओं में भी हम दुर्भिक्ष-पीड़ित भारत का चीत्कार ही सुनते हैं। दासत्व-बन्धन से ग्रस्त और विजेताओं से पद-दलित हिन्दू-साहित्य में अन्य किसी भाव की प्रधानता हो भी कैसे सकती है। यदि हमारी यह विवेचना ठीक है तो हम कह सकते हैं कि साहित्य का मुख्य विचार-स्रोत समाज का अनुगमन करता है। परन्तु समाज की हीनता पर साहित्य की हीनता नहीं अवलम्बित है। अपनी हीनावस्था में भी हिन्दू जाति ने ऐसे कवि उत्पन्न किये हैं जो किसी भी समृद्धिशाली जाति का गौरव बढ़ा सकते हैं। सूर, तुलसी और विहारी ने शक्ति-हीन हिन्दू जाति में ही जन्म ग्रहण किया, परन्तु उनकी रचना सदैव आदरणीय रहेगी। सच तो यह है कि जब कोई जाति वैभव-सम्पन्न हो जाती है तब उसके साहित्य का ह्रास होने लगता है। जान पड़ता है कि पार्थिव वैभव से कविता-कला का कम सम्बन्ध है। जब तक देश उन्नतिशील है तब तक उसमें साहित्य की उन्नति होती रहती है। जब वह अवनतिशील होता है तब साहित्य की गति बदल जाती है, परन्तु उसका वेग कम नहीं होता। वैभव की उन्नति से जब किसी जाति में स्थिरता आ जाती है तभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य की अवनति होती है। यह नियम पृथ्वी की सभी जातियों के सम्बन्ध में, सभी कालों में, सत्य है। अब प्रश्न यह है कि ऐसा होता क्यों है? नीचे हम इसी प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा करेंगे।

कितने ही विद्वानों का विश्वास है कि जब मनुष्य प्रकृति के सौन्दर्य-विकास से मुग्ध हो जाता है तब वह अपने मनोभावों को व्यक्त करने की चेष्टा करता है। इसी सौन्दर्य-लिप्सा से साहित्य की सृष्टि होती है और कला का विकास होता है। परन्तु इस सिद्धान्त के विरुद्ध एक बात कही जा सकती है। जब मनुष्य सभ्यता और ऐश्वर्य की चरमसीमा पर पहुँच जाता है तब तो उसकी सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्योपभोग की शक्ति का ह्रास नहीं होता, उलटा उसकी वृद्धि ही होती है। तब ऐसी अवस्था में साहित्य और कला की खूब उन्नति होनी चाहिए, परन्तु फल विपरीत होता है। जाति के ऐश्वर्य से साहित्य मलिन हो जाता है और कला हत-श्री हो जाती है। जर्मनी के जीव-तत्त्व-विशारदों का कथन है कि जो जाति सभ्यता की निम्नतम श्रेणी में रहती है वह प्राकृतिक सौन्दर्य से मुग्ध होने पर विस्मय से अभिभूत होती है। उस विस्मय से उसके हृदय में आतङ्क का भाव उत्पन्न होता है और आतङ्क ही की प्रेरणा से उपासना और धर्म की सृष्टि होती है। यह विस्मय क्यों होता है? शास्त्रों के अनुसार द्वैतानुभूति ही विस्मय के उद्रेक का कारण है। मैं हूँ और मुझसे भिन्न विश्व है, मैं इस विश्व के विकास और विलास को देख कर मुग्ध होता हूँ और प्रतिक्षण उसकी नवीनता का अनुभव कर विस्मय से अभिभूत होता हूँ। नवीनता की अनुभूति से विस्मय प्रकट होता है। जीवतत्त्व-विशारद बिरचाउ (Birchow) ने मनुष्य के विस्मयोद्रेक का यही कारण बतलाया है। उनका कथन है कि बर्बर जाति में न तो स्वतः सिद्धि है, न परम्परागत धारणा-राशि और न अन्ध-विश्वास। वे जो कुछ देखते हैं उसे पहले ही देखते हैं—प्रकृति उनके लिए नवीन ही रहती है। उस नवीनता से वे मुग्ध होते हैं, उसी से उन्हें विस्मय होता है, उसी विस्मय से भिन्न भिन्न भावों की उत्पत्ति होती है, और यही भाव साहित्य का मूल है।

यह भाव दो रूपों में व्यक्त होता है अथवा यह कहना चाहिए कि इस भाव से दो भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। पहली भावना है जिगीषा अर्थात् प्राकृतिक शक्तियों को पराभूत करके हम उन्हें स्वायत्त कर लेंगे और तब इस विस्मयागार पर हमारा अधिकार हो जायगा। दूसरी भावना तन्मयता की है—हम इस रूपसागर में निमग्न होकर नित्य नवीनता को प्राप्त कर लेंगे। पहली भावना से विज्ञान की उत्पत्ति होती है और दूसरी भावना से धर्म और साधना के भाव प्रकट होते हैं, जो काव्य और साहित्य के मूल हैं। देश, काल, पात्र के अनुसार और भिन्न भिन्न जातियों के पारस्परिक संघर्षण से वे भावनाएँ भिन्न भिन्न रूप धारण करती हैं। उन्हीं से साहित्य का स्वरूप सदैव परिवर्तित होता रहता है।

उपर्युक्त विवेचना से यह मालूम होता है कि साहित्य के दो प्रधान भेद हैं, एक विज्ञान और दूसरा कला। इनके मूलगत भाव भिन्न भिन्न हैं। इनका विकास भी एक ही रीति से नहीं होता। विज्ञान पर बाह्य जगत् का प्रभाव खूब पड़ता है और कला पर अन्तर्जगत् का। धार्मिक आन्दोलन से कला का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप अवश्य परिवर्तित होता है। उसी प्रकार पार्थिव समृद्धि की आकांक्षा से विज्ञान की गति तीव्रतर होती है। सभी देशों के साहित्य में यह बात स्पष्ट देखी जाती है। बौद्ध युग में जब कवित्व-कला का अभाव हुआ तब विज्ञान की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट था। आधुनिक युग में भी विज्ञान की उन्नति से कविता का अवश्य ह्रास हुआ है। साहित्य के विकास में हमें एक दूसरी बात पर भी ध्यान देना चाहिए। वह यह कि कला में व्यक्तित्व की प्रधानता रहती है और विज्ञान में व्यक्तित्व की कोई विशेषता लक्षित नहीं होती। शेक्सपीयर ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से अनेक बातें ग्रहण कीं, न्यूटन ने भी पूर्वार्जित ज्ञान के आधार पर अपना सिद्धान्त निर्मित किया। न्यूटन के आविष्कार से विज्ञान को बड़ा लाभ पहुँचा। संसार न्यूटन का सदैव कृतज्ञ रहेगा, परन्तु यह सभी स्वीकार करेंगे कि विज्ञान अब पहले से अधिक समुन्नत हो गया है और न्यूटन के आविष्कारों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण आविष्कार होगये हैं। विज्ञान के आदि-काल के लिए न्यूटन का आविष्कार कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, अब ज्ञान की उन्नति से वह स्वयं उतना महत्त्व नहीं रखता। शेक्सपीयर की रचना के विषय में यही बात नहीं कही जा सकती। शेक्सपीयर ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से जो बातें ग्रहण कीं उनको उसने बिलकुल अपना बना लिया और अपनी प्रतिभा के बल से उसने जो साहित्य तैयार किया उसका महत्त्व कभी घटने का नहीं है। संसार में शेक्सपीयर से भी उत्तम नाटककार पैदा भले ही हों, पर उसकी कृति से शेक्सपीयर के नाटकों का महत्त्व नहीं घटेगा। कहने का मतलब यह कि विज्ञान की जैसी उत्तरोत्तर उन्नति होती जाती है ठीक उसी तरह साहित्य की उन्नति नहीं होती। कवि चाहे छोटा हो अथवा बड़ा, उसकी रचना पर उसी का पूर्ण अधिकार रहेगा। जलाशय के समान वह एक स्थान पर ज्यों की त्यों बनी रहती है। यदि यह क्षुद्र सर है तो थोड़े ही दिनों में सूख जायगा, यदि उसमें अनन्त जल-राशि है तो चिरकाल तक बना रहेगा। परन्तु विज्ञान गिरि-निर्झर की तरह आगे ही बढ़ता जाता है। झरने एक दूसरे से मिल जाते हैं, इसी तरह कई झरनों के मिलने से एक नदी बन जाती है और वह नदी ज्यों ज्यों आगे बढ़ती है त्यों त्यों बड़ी ही होती जाती है। विज्ञान का स्रोत वैज्ञानिकों की कृति से बढ़ता ही जाता है और अब उसने एक विशाल रूप धारण कर लिया है।

विज्ञान की उन्नति से साधारण नियमों की वृद्धि होती है। प्रकृति की रहस्यमयी मूर्ति वैसे ही नियमों से स्पष्ट होती है। सच पूछो तो विज्ञान साधारण नियमों का समूह-मात्र है। परन्तु कला कोई नियम नहीं ढूँढ़ निकालती। कला जीवन की प्रकाशिका कही गई है। अतएव जीवन-वैचित्र्य के कारण कला में सदैव वैचित्र्य रहेगा। वैचित्र्य के अभाव से कला का ह्रास होता है। मनुष्य-समाज जितना ही जटिल होगा कला भी उतनी ही जटिल होगी और जब मनुष्य-समाज सरलता की ओर अग्रसर होगा तब कला में भी सरलता आने लगेगी। सभ्यता के आदि-काल में मानव-जीवन बहुत सरल होता है। अतएव तत्कालीन साहित्य और कला में भी सरलता रहती है। तब न तो शब्दों का आडम्बर रहता है, न अलङ्कारों का चमत्कार। उनकी कला का क्षेत्र भी परिमित रहता है। उसमें रूप रहेगा किन्तु रूप-वैचित्र्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रहेगा। ज्यों ज्यों सभ्यता की वृद्धि होती है त्यों त्यों मनुष्य-जीवन जटिल होता जाता है और कला भी जटिल होती जाती है। जीवन की विशालता पर कला का सौन्दर्य अवलम्बित है। जिस जाति का जीवन जितना ही अधिक विशाल होगा उसकी कला भी उतनी ही अधिक उन्नत होगी और उसका आदर्श भी उतना ही विशाल होगा। एक उदाहरण से हम इस बात को स्पष्ट करना चाहते हैं। प्राचीन काल की असभ्य जातियों की बनाई हुई चित्रावली मिली है। उनमें और सभ्य ग्रीक-जाति की शिल्प-कला में क्या भेद है? ग्रीक-जाति के समान उन असभ्य जातियों को भी जीवन के विषय में विस्मय होता था। रूप के पर्य्यवेक्षण से उन्हें भी आनन्द होता था और उन भावों को बाह्यरूप देने के लिए वे भी चञ्चल थीं। उनके चित्रों में ये सब बातें हैं। परन्तु जीवन की क्षुद्रता के कारण उन्होंने सिर्फ़ रूप देखा, रूप-वैचित्र नहीं। रूप-वैचित्र्य भी यदि उन्होंने देखा तो उनमें वे सुषमा और सुसङ्गति (Harmony) नहीं देख सकीं। उसको ग्रीक लोगों ने देखा। ग्रीक लोगों की कला में अधिक सौन्दर्य है, क्योंकि उनके जीवन का क्षेत्र भी अधिक विशाल था। यदि ग्रीक-जाति का जीवन और भी विशाल होता तो उनकी कला की अधिक उन्नति होती। परन्तु ग्रीक-जाति सिर्फ़ रूप-रस-ग्राह्य जीवन से ही मुग्ध थी। आध्यात्मिक जीवन की ओर उसका लक्ष्य नहीं था। इस ओर हिन्दू और चीनी जाति का ध्यान था। इसी लिए इन लोगों की कला का आदर्श अधिक ऊँचा है।

साहित्य के मूल में जो तन्मयता का भाव है उसका एक-मात्र कारण यही है कि मनुष्य अपने जीवन में सम्पूर्णता को उपलब्ध करना चाहता है—वह इसी में तन्मय होना चाहता है। परन्तु वह सम्पूर्णता है कहाँ। बाह्य प्रकृति में तो वह है नहीं। यदि बाह्य जगत् में ही मनुष्य सम्पूर्णता को पा लेता तो साहित्य और कला की सृष्टि ही नहीं होती। कवि के कल्पलोक में और शिल्पी के मनोराज्य में वह सम्पूर्णता है। वहीं जीवन का पूर्णरूप प्रकाशित होता है। वहीं हम यथार्थ सौन्दर्य देखते हैं। उसी के प्रकाश से जब हम संसार को देखते हैं तब मुग्ध हो जाते हैं। यह वही प्रकाश है जिसके विषय में किसी कवि ने कहा है:—

That light which never was on land or sea,
The consecration and the poet's dream.

जो प्रकाश जल और स्थल में कहीं नहीं है वह पवित्र होकर केवल कवि के स्वप्न में है।

नवीनचन्द्र

अवध का नया क़ानून-लगान।

[समालोचना]

पृथ्वी किसी की नहीं हुई। परन्तु उसे अपनाने की कोशिश सभी करते हैं। दुनिया में जितने झगड़े-फ़िसाद होते हैं, अधिकांश की जड़ यह सर्व-भक्षिणी पृथ्वी ही होती है। कालही सर्व-भक्षी नहीं, पृथ्वी भी है। क्योंकि यह अपने स्वामियों को भी खा जाती है और स्वयं बनी रहती है। पृथ्वी के पति बननेवालों का यह कितना बड़ा उपहास, अपमान और निरादर है। आश्चर्य्य तो इस बात का है कि यह दशा प्रत्यक्ष देख कर भी लोग पृथ्वी को वशीभूत करने के लिए अपनी जान हथेली में लिये घूमा करते हैं। रूस-जापान-युद्ध पृथ्वी की प्राप्ति ही के लिए हुआ था। योरप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का गत महायुद्ध भी अभी इसी लिए हुआ है। युद्धशक्ति का नियन्त्रण करने के लिए वाशिंग्टन में अभी जो राज-शक्तियों के प्रतिनिधियों का जमघट हुआ था वह भी इसी लिए था। मेरी जीती हुई या अधिकृत पृथ्वी मेरे ही क़ब्ज़े में रहे, दूसरा न छीन ले—मतलब यह। भोज के पितृव्य मुञ्ज ने सोचा, भोज के वयस्क होने पर वही पृथ्वी का अधिकारी हो जायगा; उस पर से मेरा अधिकार जाता रहेगा। अतएव, लावो, इसे बचपन ही में मार डालें। जल्लाद भोज को लेकर जङ्गल में गया। वहाँ उसने आँखों में आँसू भर कर भोज से कहा—आपको मारने के लिए आपके चचा ने मेरी योजना की है। इस पर भोज ने निर्भय उत्तर दिया—मारो, पर मेरा अन्तिम सन्देश चचा मुञ्ज के पास पहुँचा देना। यह कह कर भोज ने एक पत्ते पर यह श्लोक लिख कर जल्लाद के सिपुर्द किया—

मान्धाता सुमहीपतिः कृतयुगालङ्कारभूतो गतः
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो द्यस्तं गताः सर्वथा
नैकेनापि समं गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति॥

पितृतुल्य पितृव्य! आप इसलिए मेरी हत्या करने जाते हैं कि यह पृथ्वी आपकी हो जाय। परन्तु आपसे भी अधिक पराक्रमी और प्रभुताशाली नरेशों की भी यह नहीं हुई। मान्धाता, रामचन्द्र और युधिष्ठिर आदि इसके पति बन कर अस्त हो गये। यह उनमें से किसी के साथ न गई। परन्तु, जान पड़ता है, आपके साथ यह ज़रूर जायगी। अन्यथा मुझे मार डालने का महापाप आप क्यों करते?

यह तो हुई नरेशों की बात। साधारण तअल्लुक़ेदार और ज़मींदार ही नहीं, काश्तकार तक पृथ्वी को अपने ही क़ब्ज़े में रखने की चेष्टा करते हैं और इस चेष्टा को सफल करने के लिए नाना प्रकार के अन्याय और अत्याचार करते हैं। ये तो ये, एक भिखारी भी जिस जगह बैठ जाता है उस जगह को वह भी अपनी मौरूसी जायदाद समझने लगता है! कैसा इन्द्रजाल है! कितना अमोघ माया-पाश है!

जब दुनिया का यह हाल है तब सूबे अवध का भी यही होना चाहिए। जितनी ज़मीन इस सूबे में है उसका अधिकांश लोगों ने छीन छान कर ही किसी समय अपने क़ब्ज़े में किया था। शाही ज़माने में जिसकी लाठी उसी की भैंसवाली मसल चरितार्थ थी। लखनऊ के नवाब वज़ीर और लोगों को मध्यस्थ करके ज़मीन की मालगुज़ारी वसूल करते थे। कहीं कहीं उन्होंने नाज़िम या चकलेदार मुक़र्रर कर रक्खे थे। कहीं कहीं कुछ लोगों को उन्होंने मालगुज़ारी वसूल करने के ठेके दे दिये थे। मसलन गोविन्दसिंह ने ५० मौज़ों का ठेका एक लाख रुपये पर ले लिया। उसने एक के बदले तीन लाख रुपये काश्तकारों और छोटे छोटे ज़मींदारों से वसूल किये। एक लाख शाही ख़ज़ाने में जमा कर दिया। बाक़ी दो लाख की बदौलत बन्दूक़ची और लठैत रक्खे; एक छोटी मोटी गढ़ी बनवा ली; रहने के लिए आलीशान मकान तैयार करा लिया। बस राजा बन बैठे। धीरे धीरे अपनी प्रभुता बढ़ा ली। पास पड़ोस के और मौज़े भी अपने इलाक़े में मिला लिये। कुछ साल बाद शाही ख़ज़ाने में मालगुज़ारी भेजना बन्द कर दिया। ख़ुदमुख़्तार हो गये। नाज़िम ने उन पर चढ़ाई की। बन पड़ा तो उसका मुक़ाबला किया। नहीं, भाग गये। इलाक़ा तहस नहस किया गया। दूसरा ठेकेदार मुक़र्रर हुआ। मौक़ा मिलते ही सिंहजी फिर लौटे। दूसरे ठेकेदार से लोहा लिया और उसे निकाल कर फिर अपनी गढ़ी की शोभा बढ़ाई। छोटे छोटे ज़मींदारों का भी यही हाल था। वे भी दूसरों की ज़मीन छीन लेने की ताक में रहते थे। इसी तरह नये नये इलाक़े पैदा होते थे और पुराने इलाक़ों की सीमा घटा बढ़ा करती थी। नाज़िम या चकलेदार भी कभी कभी शाही ख़ज़ाने में मालगुज़ारी भेजना बन्द करके स्वतन्त्र राजा यात अल्लुक़ेदार बन बैठते थे। पीछे से तो अराजकता और मार काट बहुत ही बढ़ गई थी। निर्बलों की जान और उनका माल चला जाते देर न लगती थी। बहुधा लोगों को तीर-कमान और बन्दूक़धारी पासियों के दल नौकर रखने पड़ते थे। वे लोग गाँव की फ़सल की रक्षा करते थे और उसका कुछ हिस्सा उजरत में पाते थे। ऐसा न करने से खेतों में खड़ी फ़सल लुटेरे काट ले जाते थे और काश्तकार रोते ही रह जाते थे। ये सभी बातें इतिहास-प्रसिद्ध हैं। इनमें सन्देह के लिए जगह नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह की अराजकता देख कर ही ईस्ट इंडिया कम्पनी ने लखनऊ के नवाब वज़ीर वाजिदअली शाह को पेंशन देकर कलकत्ते भेज दिया और अवध का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया। ज़मीन की नाप-जोख हुई। सारा सूबा ज़िलों में बाँटा गया। हर ज़िले के शासन के लिए डिपटी कमिश्नर मुक़र्रर किये गये। लगान और मालगुज़ारी वसूल करने का ठीक ठीक प्रबन्ध हुआ। तत्कालीन ज़मींदारों और तअल्लुक़ेदारों के साथ मालगुज़ारी-विषयक शर्तें तय हुईं। ये सब बातें उस समय अस्थायी तौर पर की गईं। पक्के बन्दोबस्त की तैयारियाँ भी होने लगीं। पर वे हो न पाई थीं कि १८५७ ईसवी में ग़दर हो गया।

कुछ पृथ्वीपति ग़दर में बाग़ियों से मिल गये। कम्पनी ने उन्हें दण्ड दिया और बग़ावत को बड़ी मुश्किलों से दबा पाया। उसी ज़माने में उसने घोषणा कर दी कि आज से ज़मींदारों और तअल्लुक़ेदारों का ज़मीन पर कुछ भी हक़ नहीं। उसने उनके मालिकाना हक़ छीन लिये। यह अवस्था कुछ ही समय तक रही। पीछे से गवर्नमेंट ने अपनी नीति बदल दी। तब तक ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज्य उठ चुका था। इस देश का शासन-सूत्र इँगलेंड की अधीश्वरी क्वीन विक्टोरिया ने अपने ही हाथ में ले लिया था। यद्यपि बग़ावत की आग बुझ चुकी थी, तथापि सूबे में पूर्ण शान्ति-स्थापना न हुई थी। अधिकांश लोगों में उत्तेजना बनी हुई थी। लूट-पाट भी हो जाया करती थी। इससे गवर्नमेंट ने सोचा कि पुलिस और फ़ौज के द्वारा अपराधियों को कहाँ तक पकड़ते और दण्ड देते रहेंगे। लाओ, तअल्लुक़ेदारों को मिला लें और यह काम उन्हीं से करावें। तब गवर्नर जनरल ने घोषणा जारी की कि यदि समस्त राजे, महाराजे और तअल्लुक़ेदार, लखनऊ में, अमुक तारीख़ को हाज़िर हो जायँगे और गवर्नमेंट की अधीनता स्वीकार कर लेंगे तो जिन लोगों के इलाक़े ज़ब्त हो गये हैं या जिनके मालिकाना हक़ छीन लिये गये हैं उन्हें वे लौटा दिये जायँगे। इस पर, नियत समय पर, जो लोग हाज़िर हो गये उन्हें अवध के चीफ़ कमिश्नर ने भरे दरबार सनदें दीं और उनके अपराध क्षमा करके उनके इलाक़े और ज़मींदारियाँ वग़ैरह लौटा दीं। उनके सभी हक़ पूर्ववत् प्रदान कर दिये गये। जिन्होंने ग़दर में सरकार की ख़ैरख़्वाही की थी उन्हें नये इलाक़े मिले; उनका समधिक आदर-सत्कार भी हुआ।

इस दरबार में जो सनदें दी गईं वे सब प्रायः एक ही तरह की थीं। उनकी नक़ल चार पाँच वर्ष पहले सरस्वती में छप चुकी है। सनदों की शर्तें कुछ कुछ इस तरह की हैं—आप अपने क़िले गिरा दें; हथियारों से दस्तबरदार हो जायँ; लूट-मार रोकें; सरकार की ख़ैरख़्वाही दिलोजान से करें; ज़रूरत पड़ने पर उसकी मदद करें; अपने मातहत लोगों के आराम का ख़याल रक्खें—उनके हक़ पूर्ववत् बने रहने दें; इत्यादि। यदि आप इन शर्तों की पाबन्दी करेंगे तो आप और आपके वंशज अपने इलाक़ों पर पुश्त-दरपुश्त क़ाबिज़ बने रहेंगे; उन पर आपका मौरूसी हक़ बना रहेगा। हाँ, मालगुज़ारी वक्त पर अदा करनी पड़ेगी। एक शर्त यह भी है कि आप अपने इलाक़े की ज़िराअती तरक़्क़ी करते रहें। अगर इनमें से एक भी शर्त आपने तोड़ी तो गवर्नमेंट आपकी इस सनद को रद कर देगी और आपके हक़ भी वह छीन लेगी या छीन ले सकेगी।

यह वही सनद है जिसकी रू से या जिसके आधार पर अवध के तअल्लुक़ेदार अपने अपने इलाक़े को अपनी मौरूसी जायदाद समझते हैं और कहते हैं कि बिना उनकी इजाज़त गवर्नमेंट काश्तकारों को कोई हक़ नहीं दे सकती।

सनदें मिलने पर सनदयाफ़्ता तअल्लुक़ेदारों ने मनमानी करना आरम्भ किया। शिकायतों पर शिकायतें होने लगीं। तब गवर्नमेंट ने कहा, इस तरह काम न चलेगा; एक पक्का क़ानून बना देना चाहिए। यह सोच कर उसने १८६८ ईसवी में, अवध रेंट ऐक्ट नंबर १९ नाम का, क़ानून बना दिया। उसके द्वारा उसने अपने, तअल्लुक़ेदारों के और काश्तकारों के भी सम्बन्ध निश्चित कर दिये और लगान इत्यादि की वसूलयाबी के नियम बना दिये। पर क़ानून सदा के लिए नहीं बनते। मनुष्य की बुद्धि निर्भ्रान्त नहीं। उसमें इतनी दूरदर्शिता नहीं कि भविष्यत् में होनेवाले सभी अन्यायों का वह नियन्त्रण कर सके और अतर्कित कठिनाइयों को हल करने के उपाय पहले ही से निश्चित कर दे। इस क़ानून में भी त्रुटियाँ रह गईं। उनका संशोधन १८८६ ईसवी में किया गया। उस साल गवर्नमेंट ने एक नया ही क़ानून-लगान बना कर पहले क़ानून-लगान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को मंसूख़ कर दिया। इस नये क़ानून का नाम हुआ—अवध रेंट ऐक्ट, नंबर २२। इसके बाद, १९०१ ईसवी में इस क़ानून में भी कुछ संशोधन भी हुआ। इस संशोधन का सम्बन्ध साधारण पट्टेदार किसानों से नहीं, किन्तु उन लोगों से है जो ज़मीन के मालिक अदना (Ex-proprietary Tenants) कहलाते हैं। जिस ज़मीन का लगान माफ़ है या जिस ज़मीन के लगान की शरह में रियायत रक्खी गई है, उसके सम्बन्ध में भी कुछ नये नियम, इस क़ानून के द्वारा, बने। बस, तब से कोई और संशोधन नहीं हुआ।

धीरे धीरे १८८६ ईसवी में बने क़ानून-लगान की भी कमज़ोरियाँ खुलने लगीं। नियम था, अथवा कहना चाहिए कि है, कि किसान का पट्टा हर सात साल बाद बदला जा सके अर्थात् वह अपने जोत से बेदख़ल किया जा सके। ज़मीन की माँग ज़ियादह होने के कारण तअल्लुक़ेदार धड़ाधड़ किसानों को सात साल बाद बेदख़ल करने लगे। कारण बताने की शर्त क़ानून में है नहीं। अधिकांश तअल्लुक़ों में हर साल सैकड़ों किसान बेदख़ल होने लगे। देवदत्त को बेदख़ल करके ज़मींदार ने सौ-पचास रुपये नज़राना रामदत्त से वसूल किया और देवदत्त का जोत उसे दे दिया। पिछले लगान में इज़ाफ़ा भी कर दिया। देवदत्त ने ही यदि उतना नज़राना और उतना इज़ाफ़ा देना मंज़ूर किया और ज़मींदार साहब को कोई उज्र न हुआ तो वह ज़मीन देवदत्त ही को वापस मिल गई। और भी इसी तरह की नाजायज़ काररवाइयों से काश्तकारों का पीडन होने लगा। गवर्नमेंट भी इन उत्पीडनों को देखती और अपनी (रेविन्यू बोर्ड आदि की) रिपोर्टों में इनका उल्लेख करती रही। पर क़ानून-लगान में संशोधन करने की विशेष आवश्यकता उसने न समझी। कौंसिल के मेम्बरों ने भी उससे सिफ़ारिशें कीं। उन्होंने सुझाया और समझाया कि रियाया को बहुत कष्ट मिल रहा है; क़ानून में सुधार जल्द करना चाहिए। उत्तर में गवर्नमेंट ने यह कह कर उनकी बात टाल दी कि अभी और ज़ियादह ज़रूरी काम पड़े हैं। उन्हें हो जाने दो। तब देखा जायगा।

इतने में असहयोगियों की प्रेरणा से फ़ैज़ाबाद, रायबरेली, प्रतापगढ़ आदि ज़िलों के किसानों ने उत्पात मचाना आरम्भ कर दिया। तअल्लुक़ेदारों और ज़मींदारों के अत्याचारों की कथा सभाओं में सुनाई जाने लगीं। मामला सङ्गीन होता गया। बलवे हुए। गोलियाँ चलीं। कितनी ही जानें गईं। तब गवर्नमेंट ने कहा, अच्छा तुम लोग शान्त हो जाव। तुम्हारी शिकायतें दूर कर दी जायँगी। शीघ्र ही क़ानून-लगान में तरमीम की जायगी।

इस तरह का अभय-वचन देकर इस प्रान्त के गवर्नर, सर हारकोर्ट बटलर, ने तअल्लुक़ेदारों को लखनऊ में जमा करके उनके साथ समझौता किया और जिस तरह की तरमीम करना उन लोगों ने मंज़ूर किया उस तरह की तरमीम करने के इरादे से क़ानून का एक मसविदा तैयार कराया। उसके प्रकाशित होने पर मालूम हुआ कि इस तरमीम से काश्तकारों को लाभ तो योंही नाम-मात्र को पहुँचेगा, हानियाँ ही उन्हें अधिक उठानी पड़ेंगी। वर्तमान क़ानून को अन्याय-सङ्गत या कष्टकारक बताया था किसानों ने और उन कष्टों को दूर कराने के लिए तरमीम भी करानी चाही थी किसानों ने ही। तअल्लुक़ेदारों ने तो कोई शिकायत की नहीं थी। वे तो उलटा इस क़ानून की बदौलत मालामाल हो रहे थे। पर तरमीम के मसविदे में तअल्लुक़ेदारों ही के फ़ायदे की बातें अधिक देख पड़ीं। उनके लाभ और उनके सुभीते की सीमा बढ़ा दी गई थी और किसानों के सुभीते पहले से भी कम कर दिये गये थे। यह देख कर चारों तरफ़ से मसविदे की प्रतिकूल आलोचनायें होने लगीं। गवर्नमेंट पर यह इलज़ाम लगाया गया कि उसने तअल्लुक़ेदारों का अनुचित पक्षपात किया। चुपचाप उनसे समझौता क्यों किया? समझौते के समय किसानों के प्रतिनिधियों को क्यों नहीं बुलाया?

इस पर गवर्नर साहब ने एक वक्तव्य अख़बारों में छपाया। उसमें आपने कहा कि ये तअल्लुक़ेदार बड़े प्रभुताशाली, बड़े ख़ैरख़्वाह और बड़े रुपयेवाले हैं। इन्होंने लाखों रुपया चन्दे में दिया है; लाखों रुपया कालेज, स्कूल और अस्पताल बनाने में ख़र्च किया है; लड़ाई के समय बहुत से रँगरूट भी दिये हैं। फिर, ख़ैरख़्वाही के उपलक्ष्य में सरकार ने इन लोगों को इनके इलाक़ों की ज़मीन का मालिकाना हक़ इन्हें दे रक्खा है। इसी से इनकी सलाह और इनकी अनुमति की ज़रूरत समझी गई। इनसे पूछे बिना क़ानून में तरमीम कैसे कर सकते थे? अभी जल्दी क्या है? क़ानून आज ही थोड़े बना जाता है। काश्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारों के प्रतिनिधि मसविदे पर विचार करें। कौंसिल में उनकी बातें ध्यान से सुनी जायँगी।

लोगों ने कहा, अच्छी बात है। पहले न सही, आगे सही। सरकार काश्तकारों की कथा सुनने को तैयार है तो हर्ज नहीं। जब मसविदा कौंसिल में पेश हुआ तब भी सरकार की तरफ़ से कहा गया कि इसे पेश हो जाने और संशोधक-कमिटी में संशोधन के लिए चले जाने दीजिए। इसमें जो कोर-कसर होगी वह संशोधक कमिटी के मेम्बरों द्वारा निकाल ही दी जायगी। यदि फिर भी कुछ रह जायगी तो वह मसविदे के लौट आने और किसानों के प्रतिनिधि-मेम्बरों के सुझाने पर निकाली जा सकेगी। अभी से हो-हल्ला मचाने की क्या ज़रूरत? इस तरह की बातें सुन कर प्रजा के पक्ष के मेम्बरों को कुछ तसल्ली हुई। उन्होंने मसविदे के ख़ास ख़ास दोष तो दिखाये, पर संशोधन-कमिटी में उसे भेज देने के प्रस्ताव की मुख़ालिफ़त न की।

संशोधन-कमिटी में आधे मेम्बर तअल्लुक़ेदारों के पक्षपाती नियत हुए और आधे किसानों के। विचार उपस्थित होने पर पिछले मेम्बरों—किसानों के प्रतिनिधियों—ने प्रस्ताव किया कि सबको न सही, बहुत पुराने काश्तकारों को ही उनके जोत पर उन्हें मौरूसी हक़ दे दिये जायँ। तब बिल्ली बोरिये से बाहर निकल पड़ी। सरकारी प्रतिनिधि ने कहा कि तअल्लुक़ेदारों को सरकार ने वचन दे दिया है कि मौरूसी हक़ किसी को न दिया जायगा। इलाक़ों के मालिक तअल्लुक़ेदार हैं। उनसे इस तरह के हक़ ज़बरदस्ती नहीं दिलाये जा सकते। सरकार ने जो चीज़ उन्हें दे डाली है उसे वे जिन शर्तों पर चाहें लगान पर औरों को दें। किसी बात के लिए वे मजबूर नहीं किये जा सकते। यह सुन कर प्रजा के प्रतिनिधियों के होश उड़ गये। उन्होंने कहा—यदि यही बात थी तो गवर्नर महोदय ने पहले ही क्यों न साफ़ साफ़ कह दिया। अथवा जिस दिन यह मसविदा कौंसिल में पेश हुआ था उसी दिन यदि सच्ची बात बता दी जाती तो हम वहीं इसका प्रतिवाद करते और मसविदे के पेश किये जाने के ख़िलाफ़ राय देते। यह तो अच्छी दिल्लगी हुई। यह तो विचार नहीं, विचार का प्रहसन है। शिकायतें कीं काश्तकारों ने। उनसे तो पूछपाछ की न गई। की गई तअल्लुक़ेदारों से, सो भी गुपचुप! और किन तअल्लुक़ेदारों से पूछ पाछ? उन्हीं से जो वर्तमान क़ानून की बदौलत अब तक किसानों का उत्पीडन करते आये हैं! अच्छा तो हम ऐसी कमिटी के मेम्बर नहीं रहना चाहते। लीजिए, हम जाते हैं।

यह कह कर कमिटी के प्रजापक्षभुक्त ६ मेम्बर उठ आये। बाक़ी केवल दो तीन मेम्बर रह गये। वे, सरकारी मेम्बर और तअल्लुक़ेदारी मेम्बर मसविदे का विचार करते रहे और प्रजा के हित की दो एक छोटी छोटी बातें छोड़ कर मसविदे को जैसे का तैसा बना रक्खा। अर्थात् सरकार और तअल्लुक़ेदारों ने आपस में मिल कर जिस तरह का संशोधन करना चाहा था वह प्रायः वैसा ही रहा।

इधर प्रजापक्ष के अधिकांश मेम्बर कमिटी छोड़ कर चले आये, उधर गवर्नमेंट ने अख़बारों में छपा दिया कि बहुमत से परास्त होने के कारण खिजला कर इन लोगों ने कमिटी छोड़ दी। कमिटी की काररवाई गुप्त रक्खी जाती है। पर सरकारी अफ़सरों ने आवेश में आकर जल्दबाज़ी की और बिना पूरा विचार किये ही प्रजा के प्रतिनिधियों के कमिटी छोड़ने की बात प्रकाशित कर दी। तब उन प्रतिनिधियों ने पहले तो सरकारी कारवाई का प्रतिवाद किया। फिर, दाद न मिलने पर, कमिटी में जो कुछ हुआ था वह प्रकाशित करके सारा भण्डाफोड़ कर दिया। इस कारण सर्व-साधारण की हमदर्दी किसानों के साथ और भी बढ़ गई। लोगों ने सरकारी कारवाई और सरकारी समझौते की बड़ी ही कड़ी समालोचनायें करके सरकार पर तअल्लुक़ेदारों का पक्षपात करने और प्रजापक्ष के मुखियों को अन्धकार में रखने का इलज़ाम लगाया। इसके सिवा किया ही क्या जा सकता था? सरकार सर्वसमर्थ! तअल्लुक़ेदार सरकार के लाड़ले!! किसान अज्ञान और निर्बल!!!

संशोधन किया हुआ मसविदा जिस दिन कौंसिल में पेश होनेवाला था उस दिन सबसे पहले सरकार के प्रतिनिधि एक साहब ने कौंसिल से माफ़ी माँगी। आपने कहा कि संशोधन-कमिटी की गुप्त कारवाई का प्रकाशन भूल से हो गया। कौंसिल-सम्बन्धी क़ानून अभी नया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके सभी क़ायदे-क़ानून ठीक ठीक याद नहीं रह सकते। काम की भी भरमार रहती है। इसी से ऐसी भूल हुई। आशा है, अब आगे न होगी। इस तरह यह काण्ड किसी तरह वहीं समाप्त हो गया। बात बढ़ने न पाई।

इस बीच में बहुत जगह सभायें हुई। उनमें सरकार की समझौते-विषयक नीति की निन्दा की गई। संशोधित मसविदे के दोष भी दिखाये गये। अख़बारों में इसी विषय के अनेक लेख प्रकाशित हुए। घोर आन्दोलन हुआ। यह देख कर, शायद गवर्नमेंट के इशारे से, तअल्लुक़ेदारों और प्रजा के प्रतिनिधियों में, बाहम फ़ैसला कर लेने की चेष्टायें हुई। इसी से दो रोज़ कौंसिल में मसविदे पर बहस भी बन्द रही। पर हुआ गया कुछ नहीं। तअल्लुक़ेदारों ने कहा, हम लोग और कोई रियायत किसानों के साथ करने को तैयार नहीं। प्रजा के प्रतिनिधियों ने वाइसराय और सेक्रेटरी आफ़ स्टेट को तार दिये थे कि गवर्नमेंट और तअल्लुक़ेदारों ने आपस में मिल कर यह क़ानून बनाने की ठानी है। इससे किसानों के कितने ही वर्तमान हक़ भी मारे जायँगे। उनको लाभ बहुत ही कम और हानियां बहुत ही ज़ियादह उठानी पड़ेंगी। इससे तअल्लुक़ेदार शायद और भी चिढ़ गये। उन्होंने सूबे आगरे के ज़मींदार-मेम्बरों को मिला कर अपने गुट्ट की शक्ति और भी प्रबल कर दी। इन सम्मिलित मेम्बरों की संख्या या शक्ति प्रजापक्ष के मेम्बरों से इतनी अधिक बढ़ गई कि यदि कौंसिल के सरकारी मेम्बर प्रजापक्ष के मेम्बरों का साथ देते तो भी तअल्लुक़ेदारों और ज़मींदारों के सम्मिलित "वोट" अधिक ही होते। इस दशा में भला तअल्लुक़ेदार क्यों किसानों की सुनने लगे। उन्हें तो अपनी जीत का पूरा पूरा विश्वास था। ख़ैर।

कौंसिल में तजवीजशुदह क़ानून की दफ़ाओं पर बहस शुरू हुई। किसानों के हितचिन्तक मेम्बर उनके ख़िलाफ़ किये गये वारों का निवारण करने की कोशिश जी-जान से करने, और तअल्लुक़ेदारों के हिमायती मेम्बर उस कोशिश को विफल करने की चेष्टा में मुस्तैदी दिखाने लगे। फिर क्या था, "वोट" के बल पर किसानों की हार पर हार होने लगी। कितनी ही बातों में तो गवर्नमेंट ने तटस्थता स्वीकार की—दोनों में से किसी भी पक्ष की तरफ़दारी न की। पर कई बातों में—उदाहरणार्थ किसानों को मौरूसी हक़ देने के विषय में—उसने तअल्लुक़ेदारों ही का पक्ष लिया। फल यह हुआ कि प्रजा के प्रतिनिधियों के किये हुए प्रस्तावों में से कुछ ऐसे ही सट पट के महत्त्वहीन प्रस्तावों को छोड़ कर शेष सभी प्रस्ताव रद हो गये। तअल्लुक़ेदार विजयी हुए, किसान परास्त। मौरूसी हक़ मिलना तो दूर रहा, कुछ पुराने हक़ भी किसानों को खोने पड़े।

जिस समय नये कौंसिल की मेम्बरी के उम्मेदवारों का चुनाव हो रहा था उस समय किसानों पर कहीं कहीं बहुत ज़ोर डाला गया। अनेक जगहों में वे तअल्लुक़ेदारों और ज़मींदारों ही के लिए "वोट" देने को मजबूर किये गये। बहुत जगहों में असहयोगियों के नायकों और उनके दलों के सेनापतियों ने किसानों को "वोट" ही न देने दिया। फल यह हुआ कि किसानों के हक़ की रक्षा करने-वाले कुछ ही लोग कौंसिल के मेम्बर हो सके। तअल्लुक़ेदारों और ज़मींदारों के पक्षपाती मेम्बरों ही की संख्या अधिक हो गई। यह पराजय उसी का फल है। यदि किसान पढ़े-लिखे और समझदार होते, यदि वे अपने हिताहित को पहचान सकते, और यदि वे दूसरों के भुलावे में न आते तो यह दशा कदापि न होती—तो उन्हीं का पक्ष प्रबल रहता, क्योंकि उन्हीं को कौंसिल में अधिक मेम्बर भेजने का अधिकार प्राप्त है, तअल्लुक़ेदारों को नहीं। अब ये अपनी नादानी का फल भोगें और आगे के लिए होशियार हो जायँ—"गुज़श्ता रा सलवात, आयन्दा रा इहतियात"।

सूबे आगरा में १२ साल तक लगातार खेत जोतने पर उस पर काश्तकार का हक़ मौरूसी हो जाता है। किसान चाहते थे कि इसी तरह का क़ानून यहां भी रायज हो जाय। १२ साल तक न सही, २० साल तक, २५ साल तक, ३० साल तक सही। पर न तअल्लुक़ेदारों ही ने यह बात मानी और न सरकार ही ने। तअल्लुक़ेदार कहते हैं कि ज़मीन हमारी है। हम ऐसा हक़ नहीं देते। इस पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। पर किसानों की दलीलों का कोई माकूल जवाब नहीं दिया गया। ज़मीन आपकी है और आपको मनमानी करने का अधिकार है तो ऐक्ट लगान की ज़रूरत ही क्यों? उसे बिलकुल ही मनसूख़ क्यों न करा दीजिए? सनदें किस लिए और किस मतलब से दी गई थीं, इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। उनकी पाबन्दी गवर्न-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेंट करे। पर बेचारे किसानों पर जो जुल्म होते हैं उनसे उनकी रक्षा भी तो करनी चाहिए। कारण उपस्थित होने पर बड़े बड़े सन्धिपत्र मंसूख़ हो जाते हैं; उनमें तरमीम होना तो कोई बात ही नहीं। ज़िराअत की तरक़्क़ी करना भी तो सनद की एक शर्त है। पर आज तक तअल्लुक़ेदारों ने ज़िराअत की कितनी तरक़्क़ी की है, यह बात छिपी नहीं। उनके बड़े बड़े "फ़ार्मों" (Forms) से किसानों को क्या लाभ? वे तो तरक़्क़ी तभी कर सकेंगे जब वे ज़मीन को अपनी समझेंगे—जब बेदख़ली का डर उन्हें न रहेगा। परन्तु तअल्लुक़ेदारों को यह मंज़ूर नहीं। रही ज़मीन के मालिकाना हक़ की बात, सो बड़े बड़े क़ानूनदाँ लोगों तक ने यही राय दी है कि क़ानून बनानेवाले कौंसिलों को यह अख़्तियार हासिल है कि सनदों की परवा न करके, क़ानून में समय के अनुकूल वे न्यायसङ्गत फेरफार कर सकते हैं। गवर्नमेंट यदि किसी को सनद देकर दूसरों के हक़ पददलित करने का साधन प्रस्तुत कर दे तो क़ानून उस सनद को नहीं मान सकता। फिर, यहाँ ज़मीन या इलाक़ा छीन लेने का तो सवाल ही न था; क़ब्ज़ेदारी ही का सवाल था।

गवर्नमेंट ने सूबे अवध के डिस्ट्रिक्ट गज़टों के साथ १०७ नम्बर का एक लाल परचा बाँटा है। वह—"तमाम अवध के काश्तकारों के नाम"—है। उसमें लिखा है—"गवर्नमेंट और तअल्लुक़ेदारों ने नीचे लिखी हुई ज़रूरी तजवीज़ें मुतअल्लिक़ तर्मीम क़ानून-लगान अवध के की हैं"। ये तजवीज़ें ६ हैं। यथा—

(१) हर काश्तकार अपनी ज़िन्दगी में बज़रिये नोटिस बेदख़ल न हो सकेगा।
(२) काश्तकार के वारिस, काश्तकार के मरने के बाद, ५ साल तक काश्त पर काबिज़ रह सकेंगे।
(३) "बदमाश" काश्तकारों को बेदख़ल करने की जो तजवीज़ थी वह ख़ारिज कर दी गई।
(४) ज़मींदार कुवाँ न बनावें तो काश्तकार ख़ुद बना सकेगा।
(५) दफ़ा ५५ की बेदख़लियाँ इस साल न होंगी।
(६) "नज़राना इन तरमीमात से ख़ुद बख़ुद बन्द होगया"।

ये हैं किसानों के साथ की गई रियायतें। इस नोटिस या परचे से यह भी सब को बता दिया गया कि ये रियायतें सरकार ही की नहीं, तअल्लुक़ेदारों की भी उदारता का फल हैं। यदि वे अकड़ जाते तो शायद किसानों के साथ इतनी भी दरियायदिली का व्यवहार न किया जाता।

अच्छा, यह क़ानून जो अभी प्रान्तीय कौंसिल में पास हुआ है उसमें क्या कोई दफ़ा ऐसी भी है जिसकी रू से नज़राना लेना जुर्म क़रार दिया जा सके? नज़राना लेना ख़ुद बख़ुद कैसे बन्द होगया, यह सरकार ही जाने। क्या इज़ाफ़े की हद न रखने और मनमाना अथवा हाकिम ज़िले की आज्ञा के अनुसार मुनासिब इज़ाफ़ा लगाने से ही वह बन्द हो सकेगा? आशा तो ऐसी नहीं। ज़मींदार अगर चुपचाप नज़राना ले ले तो उसका क्या इलाज?

नये क़ानून को अभी गवर्नर जनरल ने मंज़ूर नहीं किया। इस कारण अभी वह रायज नहीं समझा गया। इस कारण पुराने अर्थात् वर्तमान क़ानून से दफ़ा ५५ की बेदख़लियाँ इस साल लग सकती थीं। उन्हें बन्द करके सरकार और तअल्लुक़ेदार महोदयों ने ज़रूर उदारता दिखाई है। इस कारण किसानों को उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

कुवाँ बनाने की रियायत कोई रियायत नहीं। ज़मींदार बहुतही कम कुवाँ बनवाते रहे हैं। तब भी किसानों ही को अपनी जोत में अधिकांश कुएँ बनाने पड़ते थे और अब भी उन्हीं को बनाने पड़ेंगे।

किसानों को अनेक कारणों से "बदमाश" संज्ञा देकर सरकार जो उन्हें बेदख़ल करके उनके बालबच्चों के पेट की रोटी छीनने जाती थी वह अब न छीनेगी। अपराध करने पर अपराधी को न्यायालय से दण्ड मिलता ही है। पर सरकार चाहती थी कि वह दण्ड भी मिले और अपराधी अपनी जोत से भी निकाल बाहर किया जाय। क़ानून में तरमीम होने जाती थी किसानों के लाभ के लिये, पर उलटा उनकी ज़मीन छीन लेने का जो यह एक नया ही ढंग निकाला जानेवाला था उससे सरकार ने उन्हें छुट्टी दे दी। सो भी कब? जब चारों ओर से हाहाकार मच गया। तब! अहो दयालुता!

हाँ, अपनी ज़िन्दगी में बेदख़ल न किये जाने और काश्तकार के मरने पर उसके वारिसों से ५ साल तक उसकी जोत न छीने जाने की रियायत अलबत्ते थोड़ी सी रियायत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रूर है। बस इस तरमीमशुदह क़ानून में किसानों के लाभ की अगर कोई बात है तो इतनी ही है। पर इसके साथ ही उनकी और बड़ी बड़ी हानियों के ज़रिये पैदा कर दिये गये हैं। उनके मुक़ाबले में ये लाभ कुछ भी नहीं। खेद की बात है, गवर्नमेंट ने ये स्वल्प लाभ और साथही कुछ काल्पनिक लाभ दिखाने के लिए तो इश्तहार बाँट दिये, पर किसानों की हानियों और तअल्लुक़ेदारों के लिए की गई अनेक लाभदायक बातों के उल्लेख की आवश्यकता ही नहीं समझी। ख़ैर, हम उनका दिग्दर्शन-मात्र नीचे किये देते हैं। पहले किसानों की हानियों का हाल सुनिए—

(१) अब तक हर सात साल बाद पट्टा बदलने का क़ानून था। उस समय किसान को बेदख़ल करना न करना ज़मींदार की इच्छा पर अवलम्बित था। अब सात के बदले दस साल बाद पट्टा बदला जा सकेगा। अगर किसान ख़ातिरख़्वाह इज़ाफ़ा दे देगा तो पट्टा नया कर दिया जायगा। उसकी ज़िन्दगी भर यही होता रहेगा। इज़ाफ़े की शरह अब तक ज़ियादह से ज़ियादह एक आना रुपया थी। अब यह हद मंसूख़ हो गई है। अब ज़मींदार या तअल्लुक़ेदार साहब जितना माँगेंगे, फिर चाहे वह रुपये में चार, आठ, बारह आने या इससे भी ज़ियादह हो, किसान को देना पड़ेगा। उसकी इच्छा हो, इज़ाफ़े की रक़म का फ़ैसला वह कचहरी से करा ले। तजवीज़-शुदह इज़ाफ़ा अगर वह न देगा तो फ़ौरन बेदख़ल हो जायगा। और अगर पहलेही पहल पट्टा होता हो तो लगान की शरह निश्चित करने के लिए कचहरी जाने से भी कुछ न होगा। फिर तो ज़मींदार का मुँहमाँगा ही लगान देना पड़ेगा। अब तक बेदख़ली की कारवाई अलग करनी पड़ती थी; अब उसकी ज़रूरत नहीं। इज़ाफ़ा न देने से किसान आप ही आप बेदख़ल हो जायगा।

(२) अब तक किसान बिस्वे दो बिस्वे छोड़ कर बाक़ी सभी ज़मीन शिकमी उठा सकता था। अब, बिला तहरीरी इजाज़त, एक इंच भर भी ज़मीन शिकमी उठा देने से वह बेदख़ल हो जायगा। इस तरह उच्च जाति के सैकड़ा ५० फ़ी सदी काश्तकार बेदख़ल किये जा सकेंगे। नाबालिग़ों और बेवाओं तथा कुटुम्ब के कुछ आदमियों के विषय में अलबत्ते यह क़ानून कारगर नहीं।

(३) पास-पड़ोस के किसी मौज़े में, दूसरे ज़मींदार की ज़मींदारी में, पाही काश्त करनेवाले काश्तकारों को अब ज़मीन न मिलेगी। वे बेदख़ल किये जा सकेंगे।

(४) ज़मींदार को यदि किसी काश्तकार की कुछ ज़मीन मकान वग़ैरह बनाने के लिए दरकार होगी तो वह कचहरी में दरख़्वास्त देकर उसे छीन सकेगा।

इसी तरह और भी कुछ बातें इस क़ानून में, किसानों के लिए हानि पहुँचानेवाली हैं। अब तअल्लुक़ेदारों और ज़मींदारों के लाभ की बातें सुनिए—

(१) क़ानून पास होने के पहले एक साल तक की भी ख़ुदकाश्त ज़मीन सीर समझी जायगी। क़ानून रायज होने पर अगर कोई ज़मींदार किसी ज़मीन को दस साल तक काश्त करेगा तो वह भी सीर में दाख़िल समझी जायगी।

(२) अगर किसी मौज़े या परगने या हलक़े के लोग मिल कर लगान न अदा करें तो सरकार सारा लगान ख़ुदही वसूल करके तअल्लुक़ेदार या ज़मींदार को दे देगी।

(३) मकान बनाने, बाज़ार लगाने, कारख़ाने खोलने वग़ैरह के लिए किसानों की ज़मीन छीनी जा सकेगी। इसका उल्लेख ऊपर हो ही चुका है।

(४) किसानों से बक़ाया लगान वसूल करने का सबसे पहला हक़ मालिक ज़मीन (तअल्लुक़ेदार या ज़मींदार) का ही होगा।

(५) एक आना रुपया इज़ाफ़े की शरह मंसूख़ हो जाने से तअल्लुक़ेदारों को, ग़ल्ले के भाव इत्यादि के अनुपात से, ख़ूब कस कर इज़ाफ़ा करने का भी हक़ हासिल हो जायगा।

इनके सिवा और भी कितने ही सुभीते तअल्लुक़ेदारों के लिए कर दिये गये हैं। परन्तु उनके सुभीतों और किसानों के असुभीतों के उल्लेख की ज़रूरत गवर्नमेंट ने अपने इश्तहार में नहीं समझी। इसका कारण वही बताने की कृपा करे तो बेचारे किसानों की समझ में आ सकता है।

तअल्लुक़ेदारों ने न कोई आन्दोलन किया और न कोई शिकायतें। परन्तु बिना माँगे ही उनको बहुत कुछ मिल गया। किसान, न मालूम कब से, रो-धो और चिल्ला रहे हैं। परन्तु उन्हें दिया तो कम गया, उनसे ले लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया अधिक ! गवर्नमेंट ने क़ानून लगान में तरमीम करने का इरादा किया तो इसलिए था कि किसानों की शिकायतें दूर हो जायँ; परन्तु इस तरमीम से वे और भी बढ़ जायँगी। क्योंकि इसमें यदि एक बात उनके अनुकूल है तो दो प्रतिकूल। बेदख़ली का यदि एक द्वार बन्द कर दिया गया है तो दो तीन नये द्वार खोल दिये गये हैं। सारांश यह कि तअल्लुक़ेदारों के अधिकार बढ़ा दिये गये हैं और किसानों के कम कर दिये गये हैं। इसी से किसानों के प्रतिनिधियों ने बड़े लाट से प्रार्थना की है कि आप इस क़ानून को जारी करने की मंज़ूरी न दें। पर उनकी प्रार्थना सफल होने के लक्षण नहीं दिखाई देते।

गवर्नमेंट गैज़ट में प्रकाशित क़ानूनी मसविदे और कौंसिल की कारवाई की इस इतनी ही समालोचना को पाठक काफ़ी समझने की कृपा करें।

सहदेवसिंह वर्मा

ख़लीफ़ा हज़रत उमर।



मुसलमानी राज्य की वृद्धि तथा उसकी समुन्नति के लिए स्थायी उद्योग सबसे पहले हज़रत उमर ने किया है। हज़रत मुहम्मद साहब के बाद चार मुख्य ख़लीफ़े (बादशाह) हुए हैं। उनमें से हज़रत उमर दूसरे हैं। मुहम्मद साहब ने इनका नाम फ़ारूक़ रक्खा था। फ़ारूक़ शब्द का अर्थ सत्य तथा असत्य का निर्णायक है।

हज़रत उमर का जन्म मुहम्मद साहब के जन्म के कुछ काल बाद हुआ था। उनके बाप का नाम ख़त्ताब था। हज़रत उमर तथा हज़रत मुहम्मद साहब एक ही वंश के थे। उनमें आठ पीढ़ी का अन्तर था। मक्के में इनका घराना सदैव एक आदरणीय घराना रहा है।

हज़रत उमर के बचपन का हाल पूर्णरूप से नहीं मिलता। केवल इतना ही पता मिलता है कि जब वे कुछ बड़े हुए तब ऊँट चराने का काम उनके सिपुर्द किया गया। अरब में ऊँट चराना एक जातीय प्रथा थी। इसके बाद जब वे युवावस्था को प्राप्त हुए तब उनको कुश्ती लड़ने और सिपाहगरी की शिक्षा दी गई। प्रतिवर्ष अरब के उक्काज़ नामक स्थान में एक बड़ा भारी मेला लगता था। हज़रत उमर उस मेले के दंगल में कुश्ती लड़ा करते थे। घोड़े की सवारी की बाबत यह कहा जाता है कि वे घोड़े पर उछल कर सवार होते थे और उस पर ऐसा जम कर बैठते थे कि शरीर ज़रा भी नहीं हिलता था। एक लेखक का मत है कि हज़रत मुहम्मद साहब के नबी होने के समय जो लोग लिखे पढ़े थे उनकी संख्या केवल १७ थी। इनमें एक हज़रत उमर भी थे। अरब में उस समय लिखने पढ़ने की प्रथा बहुत कम थी। इस कारण यह कहना सर्वथा उचित है कि वे समयानुसार लिखना-पढ़ना भी जानते थे।

मुसलमानी साम्राज्य का विस्तार।

पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबूबकर की मृत्यु के बाद हज़रत उमर सन् १३ हिजरी अर्थात् सन् ६३४ ईसवी में ख़लीफ़ा हुए। ये केवल दस वर्ष छः महीने और चार दिन ख़लीफ़ा के पद पर बैठ सके। किन्तु इतने ही अल्प काल में इन्होंने बहुत कुछ कर दिखाया। इनके शासन-समय में मुसलमानी साम्राज्य की असाधारण वृद्धि हुई। दमिश्क़, मिस्र, फ़ारस, जुरज़ान, आज़रबीजान, ख़ुरासान और करमान आदि देशों तक में मुसलमानों की विजय-पताका जा पहुँची और बहुतेरी लड़ाइयां हुईं।

हज़रत उमर के समय में राज्य का विस्तार और भी बढ़ा। इनके समय में मुसलमानी साम्राज्य की सीमा मक्का नगर से उत्तर की ओर १०३६, पूर्व की ओर १०८७, दक्षिण की ओर ४८३ मील और पश्चिम की ओर जद्दा तक थी। इस सीमा के अन्तर्गत शाम, मिस्र, इराक़, अरब, इराक़ अजम, आज़रबीजान, फ़ारस, करमान, ख़ुरासान और कुछ भाग बिलोचिस्तान का भी था। हज़रत उमर स्वयम् युद्ध में सम्मिलित नहीं होते थे। विश्वासी सेना-पतियों के नेतृत्व में सेनायें ही प्रत्येक स्थानों में युद्ध किया करती थीं। पर युद्ध-सम्बन्धी सारी व्यवस्था की बागडोर हज़रत उमर के ही हाथ में रहती थी। इनके शासनकाल में दो घटनायें बहुत ही महत्त्वपूर्ण हुई थीं। एक तो बहुत से सहायकों को साथ लेकर रूम के सम्राट् की दूसरी चढ़ाई और दूसरी अगणित लोगों को उत्तेजित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमानों के विरुद्ध युद्धार्थ ईरान के बादशाह द्वारा उभारा जाना है। किन्तु इन दोनों कठिन समस्याओं का सामना उमर ने केवल धीरता के साथ ही नहीं किया, किन्तु सदैव के लिए उनको समूल नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

प्रान्तों का विभाग।

हज़रत उमर की बदौलत जिस प्रकार साम्राज्य की वृद्धि हुई उसी प्रकार कई एक सुधारों की भी योजना हुई। साम्राज्य के सुप्रबन्ध के लिए उन्होंने सारे साम्राज्य को आठ प्रान्तों में विभक्त कर दिया। प्रत्येक प्रान्त की सीमा बाँध दी गई। मक्का, मदीना, शाम, जज़ीरा, बसरा, कूफ़ा, मिस्र और फलस्तैन उनके समय के मुसलमानी साम्राज्य के आठ भिन्न भिन्न प्रान्त थे।

शासन की सुविधा के लिए उन्होंने किसी किसी प्रान्त को भी दो भागों में कर दिया था। फ़लस्तैन और मिस्र का विभाग इसी दृष्टि से किया गया था। फ़लस्तैन के एक भाग की राजधानी ईलया थी और दूसरे भाग की राजधानी कारमिला। मिस्र के ऊपरी भाग में २८ ज़िले थे और निचले में केवल १५। पर ईरान, खुरासान और आज़रबीजान की सीमा तथा प्रबन्ध जैसा पहले था वैसा ही रक्खा गया।

कर्मचारी और उनका कर्तव्य।

प्रत्येक प्रान्त में प्रायः छः प्रधान कर्मचारी रक्खे जाते थे। इन्हीं लोगों पर राज्य का सारा प्रबन्ध-भार रहता था। प्रधान अधिकारी की अधीनता में कुछ और भी ज़िम्मेवार कर्म्मचारी होते थे। कर्म्मचारियों की नियुक्ति हज़रत उमर या तो अपने सचिवों की सलाह से करते थे या प्रान्त के निवासियों द्वारा मनोनीत व्यक्तियों को ही नियुक्त कर दिया करते थे। नियुक्ति-पत्र में कर्म्मचारियों को उनका कर्तव्य पूर्ण-रूप से बतला दिया जाता था; पर निम्न-लिखित प्रतिज्ञायें भी उन्हें करनी पड़ती थीं:—

(क) तुर्की घोड़े पर सवार न होना।
(ख) बारीक कपड़ा न पहनना।
(ग) छना हुआ आटा न खाना।
(घ) दरवाज़े पर दरबान न रखना।
(ङ) आवश्यकता रखनेवालों के निमित्त द्वार सदा खुला रखना।

हज़रत उमर इस बात का बहुत ध्यान रखते थे कि सारे राज-कर्म्मचारी अपने कर्तव्यों पर भली भाँति आरूढ़ रहें। हज्ज के समय सारे कर्म्मचारियों को मक्का आने की आज्ञा थी। उस समय वहाँ सब देशों के लोग उपस्थित होते थे। ऐसे अवसर पर स्वयं हज़रत उमर खड़े होकर ऊँची आवाज़ में यह घोषणा करते थे:—

'जिस मनुष्य को किसी राज-कर्म्मचारी के ख़िलाफ़ कुछ शिकायत हो वह उसे पेश करे। मैंने उनको तुम पर इसलिए हाकिम बना कर नहीं भेजा कि वे तुमको मारें या तुम्हारा माल-असबाब छीन लें, बल्कि इस लिए भेजा है कि वे तुमको ईश्वर के रसूल हज़रत मुहम्मद साहब का धर्म-मार्ग बतलायें। यदि किसी कर्म्मचारी ने इसके विरुद्ध किया हो तो मुझसे बतलाओ। मैं प्रतीकार करने को तैयार हूँ'।

कर्म्मचारियों को एकत्र कर हज़रत उमर उन्हें भी कर्तव्य-परायणता का सदुपदेश देते थे। कर्म्मचारियों को उपदेश देते हुए उन्होंने एक बार कहा:—

'जान लो! मैंने तुम्हें स्वामी या अत्याचारी बना कर नहीं भेजा है बल्कि नेता बना कर भेजा है ताकि लोग तुम्हारा अनुकरण करें। तुम लोगों के स्वत्व की रक्षा करो। उनको ऐसा न मारो कि वे हीन दशा में हो जायँ और न उनकी ऐसी प्रशंसा ही करो कि वे त्रुटि में पड़ जायँ। उनके निमित्त कपाट खुले रक्खो ताकि शक्तिशाली लोग कमज़ोरों को न सतावें और न किसी बात में अपने आप श्रेष्ठ ही बनो। क्योंकि ऐसा करना वास्तव में उन पर अत्याचार करना है'।

इस प्रकार की बातों के सिवा हज़रत उमर ने कुछ ऐसे लोगों को भी नियुक्त किया था जो समयानुसार कर्म्मचारियों के कार्यों अथवा शिकायतों की जाँच-पड़ताल भी किया करते थे।

प्रजा-हित।

जिस प्रकार हज़रत उमर की हार्दिक अभिलाषा यह थी कि कर्म्मचारी लोग प्रजा के सच्चे शुभ-चिन्तक हों उसी प्रकार वे स्वयं भी प्रजा के हित का बहुत ध्यान रखते थे। उनके असलम नामी दास का कहना है कि एक दिन हज़रत रात में घूमने को निकले। मदीना नगर से हीरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर चले। एक स्थान पर आग जलती देखी। इस पर उन्होंने मुझसे वहाँ चलने को कहा। निकट पहुँच कर हम लोगों ने देखा कि एक स्त्री आग पर हांडी चढ़ाये बैठी है और उसके पास दो-तीन बच्चे रो रहे हैं। पूछने पर पता चला कि लड़के भूख से रो रहे हैं। भोजन के लिए कुछ नहीं है। स्त्री ने केवल बहलाने के लिए हांडी को आग पर रख दिया है। हज़रत उमर ने (अपने आपको न बतला कर) उस स्त्री से पूछा कि क्या उमर तेरी कुछ ख़बर नहीं लेता। स्त्री ने कहा कि वह हमारा बादशाह है, पर उसे हमारी चिन्ता नहीं है। यह सुन कर हज़रत तुरन्त लौट पड़े और मदीना आकर राज-भाण्डार से भोजन का बहुत सा सामान निकाला। उन्होंने मुझसे कहा कि यह सब सामान मेरी पीठ पर लाद। इस पर मैंने बहुतेरा कहा कि लाइए, मैं पहुँचा दूँ। किन्तु उन्होंने कहा कि ईश्वरीय न्याय के दिन तू मेरा बोझ न उठा सकेगा। निदान वे ख़ुद ही उस सामान को अपने ऊपर लाद कर ले गये और उस स्त्री के पास रख दिया। यही नहीं, उस स्त्री को भोजन बनाने में सहायता भी दी। जब बच्चे अच्छी तरह भोजन कर चुके तब उस स्त्री ने उन्हें आशीर्वाद देकर कहा कि वास्तव में तुम ही मुसलमानों के बादशाह होने योग्य हो, उमर नहीं।

कहा जाता है कि एक बार बहुत से बाहरी लोग मदीना के निकट आकर ठहरे। उनकी रक्षा के लिए पहरा देने को हज़रत उमर अकेले ही गये। रात में एक ओर से किसी बच्चे के रोने की आवाज़ आई। उधर जाकर देखा कि एक बच्चा अपनी मा की गोद में रो रहा है। आपने उसे बहलाने और चुप कराने की ताकीद की। किन्तु थोड़ी देर के पश्चात् फिर बालक को रोते हुए सुना। इस पर फिर बच्चे को फुसलाने और चुप कराने की ताकीद की। पर थोड़ी देर के बाद ही फिर रोना सुनाई पड़ा तो हज़रत उमर क्रुद्ध होकर बोले कि तू बड़ी निर्दय माता है। उसको चुप क्यों नहीं करती। स्त्री ने उत्तर दिया कि तुम मुझे बार बार क्यों तङ्ग करते हो। यह बालक भूखा है। मैं इसका दूध छुड़ाना चाहती हूँ क्योंकि जब तक बच्चे दूध पीना नहीं छोड़ देते, उमर उनके लिए वृत्ति नहीं बाँधता। हज़रत उमर यह सुन कर रो पड़े। सवेरा होते ही उन्होंने यह आज्ञा दी कि पैदा होने के साथ ही बच्चों की वृत्ति बाँध दी जाया करे।

सार्वजनिक हित की दृष्टि से जो कार्य हज़रत उमर ने किये हैं उन सबका उल्लेख इस लेख में नहीं हो सकता। केवल संक्षेप में कुछ बातें यहाँ बतलाई जाती हैं:—

(१) राजकीय कोष की स्थापना।
(२) न्यायालयों की स्थापना।
(३) नगर बसाना।
(४) नहर खुदाना।
(५) कुयें, सराय आदि का बनवाना। इत्यादि

हज़रत उमर के कार्य-कलाप की आलोचना करने पर यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि वास्तव में उन्होंने इस मर्म को ख़ूब समझ रक्खा था कि प्रजा के कल्याण में ही राज्य का सच्चा कल्याण है।

निजी-जीवन।

हज़रत उमर के निजी-जीवन का कुछ परिचय दे देना भी आवश्यक है। एक लेखक लिखता है कि वे छने हुए आटे की रोटी नहीं खाते थे। भोजन बहुत ही सादा करते थे। वस्त्र भी बढ़िया क़िस्म के नहीं पहनते थे, बल्कि मोटा कपड़ा पहनते थे। कुछ लोगों का मत है कि लोगों ने हज़रत उमर को प्योंदे लगे हुए वस्त्र पहने देखा है। कहा जाता है कि बैतुल मुक़द्दस (यरूशलीम) की विजय हो जाने के बाद जब वे वहाँ गये तब जो कुरता वे पहने हुए थे उसमें सत्तर प्योंदे लगे थे। उनमें से एक चमड़े का पेवन्द भी था।

हज़रत उमर बड़े सरल और सुशील थे। एक बार वे ईद की नमाज़ पढ़ाने के लिए मसजिद जा रहे थे, किन्तु थे नंगे पैर ही। एक बार हज़रत उमर बहुत देर तक घर के भीतर ही बने रहे। जब बाहर निकले तब पता चला कि वस्त्रों के अभाव से वे अपने वस्त्रों को धोकर सुखा रहे थे; इसीसे निकलने में देरी हुई। बैतुल मुक़द्दस जाने के सम्बन्ध में एक बात यह भी प्रसिद्ध है कि जब वे वहाँ पहुँचे थे तब किसी लाव-लश्कर के साथ नहीं गये थे, बल्कि बड़े सादे ढँग से। वे केवल एक ऊँट और एक दास लेकर गये। यह सब कुछ होने पर भी सारे साम्राज्य में उनका रोब-दाब ख़ूब क़ायम था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम समय।

हज़रत उमर के रोब-दाब की दशा यह थी कि बहुत ऊँचे दर्जे तक के लोग उनके सम्मुख आते ही काँप जाते थे। परन्तु उन्हें एक ईसाई दास ने मार डाला। एक दिन बाज़ार में फ़ीरोज़ नामक एक ईसाई दास ने अपने स्वामी की शिकायत की। हज़रत के पूछने पर उसने अपना जो हाल बतलाया उसके अनुसार उसकी शिकायत उचित न थी। इस कारण हज़रत ने उसके कहने के अनुसार कुछ नहीं किया। वह असन्तुष्ट होकर चला गया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब वे नमाज़ पढ़ाने के लिए गये तब फ़ीरोज़ भी मसजिद में पहुँचा। जब वे नमाज़ पढ़ाने लगे तब फ़ीरोज़ उनके पास पहुँच कर उन पर छः वार किये। ये वार ऐसे हुए थे कि उनके कारण वे बेहोश होकर गिर पड़े। बाद को वे घर लाये गये। बहुतेरी ओषधियाँ हुईं किन्तु वे बच न सके। अन्त में सन् २३ हिजरी (सन् ६४४) के ज़िल-हिज्जा मास की २७ तारीख़ को उनका स्वर्गवास हुआ और मदीना नगर में ही गाड़े गये।

महेशप्रसाद

द्राविड़ी भाषा में लिङ्ग-विचार।

आर्यभाषा तथा शकभाषा के लिङ्ग-व्यवहार का विचार करने से प्रतीत होगा कि आर्यभाषा की अपेक्षा शकभाषा से द्राविड़ी भाषा का अधिक सम्बन्ध है। आर्यभाषाओं में केवल विचार-शील जीवों के प्राणि-वाचक शब्दों का व्यवहार पुँल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग में ही नहीं होता है; परन्तु निर्जीव वस्तु एवं भाववाचक शब्दों की भी लिङ्ग-कल्पना होती है। अस्तु, जिन निर्जीव वस्तुओं का कोई लिङ्ग नहीं होता उनका भी प्रयोग पुँल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग में होता है। अर्थात् उन जड़पदार्थों के लिए केवल जीवन-कल्पना ही नहीं होती है, परन्तु उन पर पुं-स्त्रीत्वारोप भी होता है; और उनके स्थान में जिन सर्वनाम शब्दों का व्यवहार होता है उनकी भी तदनुरूप-लिङ्गता रहती है। भाषा में इस प्रकार के लिङ्ग-व्यवहार पर यथोचित ध्यान देने से यही प्रतीत होगा कि हमारे आर्य पूर्वजों ने लिङ्ग-विचार में भावुकता, चिन्ताशीलता एवं कवि-सुलभ-कल्पना-शक्ति का परिचय दिया है। उनकी कवित्वमयी कल्पना में निसर्ग-जात वस्तुमात्र उनकी सहानुभूति का पात्र थी। इस विषय की आलोचना में आत्म-गौरव-प्रचाराकांक्षी साहित्यिकगण एक दूसरे कारण का उत्थापन कर सकते हैं। वे कह सकते हैं कि आचार्य जगदीशचन्द्र ने पत्थर के जीवन, मरण एवं उसकी अनुभवशक्ति का जो प्रमाण पाश्चात्य विज्ञान के प्रभाव से प्रत्यक्ष करके दिखलाया है उसका अनुभव अति प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने भी किया था। मनु कहते हैं:—

"अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः।"

इसी वैज्ञानिक पाण्डित्य के प्रभाव से उनकी भाषा में भी जड़वस्तुओं की अनुभवशक्ति मानी गई थी। परन्तु यह युक्ति समीचीन नहीं है। पुराण कहते हैं कि इन्द्रजित् मेघ के अन्तराल में स्थित होकर आकाश से शर-निक्षेप-पूर्वक शत्रुओं का प्राण हरण करता था। यदि यह बात माननी पड़े तो यह भी मानना पड़ता है कि लङ्का के राक्षसों ने आधुनिक जर्मनी से भी बढ़ कर सभ्यता का अर्जन किया था और ज़ेपलिन का व्यवहार उनमें प्रचलित था। परन्तु इतनी सभ्यता को प्राप्त कर भी उनका आमूल ध्वंस हो चुका है। उनकी सभ्यता का कोई चिह्न भी शेष नहीं रह गया है—यह मानना कठिन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिन्न कारण से ही हम स्वीकार नहीं कर सकते कि हमारे पूर्वजों को प्रस्तर के जीवन-मरण का वैज्ञानिक तथ्य विदित था। क्योंकि उसका कोई निदर्शन आज प्राप्य नहीं है। यदि यह बात मान भी ली जाय कि उनकी इतनी ऊँची सभ्यता थी, तो भी इसमें कोई संशय नहीं है कि सभ्यता-प्राप्ति से अति-पूर्व-युग में ही उनकी भाषा की सृष्टि हुई थी। अतएव उनकी भाषा में इस प्रकार के लिङ्ग-विचार को देख कर हमें यह अनुमान करना पड़ेगा कि उनकी कल्पना कवित्वमयी या भावमयी थी; वैज्ञानिक नहीं थी। भावुकता स्वभावसिद्ध होती है, परन्तु वैज्ञानिकता का अस्तित्व साधना के बिना नहीं हो सकता। इसके सिवा एक यह भी कारण है जिससे उस युक्ति की व्यर्थता प्रतीत होती है। विकृति-विकार, अनुभूति-अनुभव, सन्तति, सन्तान, प्रभृति समानार्थक शब्दों में लिङ्ग-विभिन्नता का कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है। दार, कलत्र तथा स्त्री शब्दों की लिङ्ग-विभिन्नता का भी हेतु काल्पनिक ही है, वैज्ञानिक नहीं है।

जो हो, हमारे संस्कृत-भाषी पूर्वजों ने जड़ पदार्थ तथा भाववाचक शब्दों की लिङ्ग-कल्पना की, यह हमें ज्ञात है। हम यह भी जानते हैं कि ज़ेन्द, ग्रीक, लैटिन प्रभृति प्राचीन भाषाओं में भी अनुरूप विधान था। परन्तु कालक्रम से आधुनिक आर्य-भाषाओं में जड़वस्तु की लिङ्ग-कल्पना की कवि-समयोचित कठोरता का परिहार हो जाता है। इस विधान की कठोरता अँगरेज़ी भाषा में नहीं है। विचार-शक्ति-हीन प्राणियों की भी लिङ्ग-कल्पना अँगरेज़ी भाषा में वैकल्पिक है। जिस वर्णन में भावाधिक्य है उसी में इस कल्पना की उपयोगिता है। 'An elephant in his furiosity' 'A bird in her nest' वाक्य में लिङ्ग का जो भाव परिस्फुट है उसी के प्रभाव से इनका पुंस्त्व वा स्त्रीत्व अर्थवान् होता है। नहीं तो इनकी नपुंसकत्व-कल्पना गद्य की रीति के अनुसार स्वाभाविक है। किसी की निन्दा करके जब हम कहते हैं कि 'वह कौन जानवर है ?' तब हम मनुष्यत्व में भी विचार-शक्तिहीनता वा नपुंसकता का आरोप कर देते हैं। बँगला में जब कहा जाता है 'ओटा के हे' तब आदमीयत में विलक्षण नपुंसकत्व की प्रतिष्ठा की जाती है। और जब कहा जाता है कि 'तुइ कि रे !' तब मध्यम पुरुष के स्थान पर नपुंसक सर्वनाम 'कि' का प्रयोग हो जाता है।

मंचूरिया, मंगोलिया, तुर्की (Turkey), फ़िन्लेंड प्रभृति देशों की भाषाओं में लिङ्ग-व्यवहार की जो विधि प्रचलित है उसकी पर्यालोचना करने से यह प्रतीत होगा कि आर्यभाषा की विधि से शकभाषा की विधि सम्पूर्ण स्वतन्त्र है। इन भाषाओं में विचार-शक्ति-हीन प्राणी वा जड़पदार्थ-वाचक शब्दसमूह नपुंसकलिङ्ग तो है ही, परन्तु विचार-शक्तिमान् मनुष्यवाचक शब्द भी स्वाधीन प्रयोग में न तो पुँल्लिङ्ग है और न स्त्रीलिङ्ग ही है। शकभाषा में (Scythian language) विशेष्य शब्द-मात्र ही नपुंसकलिङ्ग या अलिङ्गक होता है। किसी वस्तु या व्यक्ति के नाम के उच्चारण के साथ ही उसके लिङ्ग का परिचय नहीं हो जाता है। नाम के द्वारा केवल वस्तु का बोध होता है, परन्तु उसका कोई लिङ्ग है या नहीं है, इसका बोध दूसरे ढंग से अभिनव उपाय के द्वारा हो सकता है। इसकी शब्दबोध-प्रणाली के दो क्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं। प्रथम क्रम में वस्तु का और द्वितीय में लिङ्ग का ज्ञान होता है। इसी लिए भाषा में विशेष्य शब्द का कोई लिङ्ग नहीं है। वस्तुवाचक मूल शब्द के साथ पुरुष या स्त्री वाचक शब्द जोड़ कर शब्दबोध के दूसरे क्रम में पुं-स्त्रीत्व की अभिव्यक्ति होती है।

जैसे संस्कृत में कर्तृकारक के एकवचन में लिङ्ग-वचन अविच्छिन्न भाव से मिला रहता है, वैसे शकभाषा में लिङ्ग-वचन अविच्छिन्न भाव से नहीं हो सकता है। यही नहीं, किन्तु किसी कारक से लिङ्ग-ज्ञान का सम्पर्क नहीं है। जड़बुद्धि शकों की कल्पना-शक्ति आर्यों की कवित्वबुद्धि के अनुरूप नहीं थी। किसी शब्द की लक्ष्य-वस्तु विचारशील हो या न हो, वह सजीव हो या न हो, लिङ्ग के सम्बन्ध में सभी का सम-पर्याय है। सभी की नपुंसकता या अलिङ्गकता मानी जाती है। आवश्यकता होने पर उसी अलिङ्गक या नपुंसकलिङ्गक शब्द के साथ पुरुष या स्त्रीवाचक किसी शब्द को जोड़ कर उसके पुंस्त्व या स्त्रीत्व की अभिव्यक्ति होती है। परन्तु अन्य निरपेक्ष विशेष्य शब्द-मात्र की नपुंसकलिङ्गता मानी जाती है, और उसके स्थान में जिस सर्वनाम शब्द का व्यवहार होता है वह भी नपुंसकलिङ्गक होता है। 'ईश्वर,' 'नर', 'नारी', 'पति', 'पत्नी' प्रभृति कतिपय शब्द इस नियम के बाहर हैं। इसका कारण यह है कि इन शब्दों में वस्तु वा लिङ्ग का ज्ञान एकत्र मिला हुआ है।

द्राविड़ी भाषा का लिङ्ग-विचार शकभाषा के अनुरूप नहीं है। इस भाषा की अपनी विशेषता अलग है। इस विशेषता का कारण संस्कृत का प्रभाव नहीं है। द्राविड़ी व्याकरण का लिङ्ग न आर्यभाषा से मिलता है, न शकभाषा से। अतएव इस विशिष्टता का कारण-निर्णय दुष्कर है। पण्डितों की राय है कि द्रविड़ों के चित्त का क्रमविकास अथवा प्राक्-संस्कृत आर्यसभ्यता का प्रभाव ही इस वैशिष्ट्य का मूलीभूत कारण है। हम इस कारण के अनुसन्धान से विरत रहेंगे, क्योंकि मानव-जातियों के पर्यटन या पारस्परिक मिलन के प्रकृत-ज्ञान के बिना यह गवेषणा व्यर्थ है। तो भी यह निश्चित है कि विभिन्न जातियों की सभ्यता एवं भाषा की आलोचना कर उनकी तुलना करने से मानव-चिन्ता-प्रणाली की एक धारा अवश्य मिल जायगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतएव यदि किसी विशिष्ट जाति की सभ्यता की आलोचना करना हो तो पारिपार्श्विक जातियों की सभ्यता एवं उनकी भाषा की आलोचना पहले ही करनी पड़ेगी। इस काम के करने से अन्तर्जातिक मिलन के भीतर से जो सभ्यता एवं चिन्ता-प्रवाह निकला है उनमें से कौन प्राचीन और कौन अर्वाचीन है यह बात ज्ञात होगी। इससे भिन्न भिन्न मानव-जातियों के पर्यटन या मिलन का पूर्वापर विषयक अनुमान गढ़ा जा सकेगा।

द्राविड़ी भाषा में विशेष्य पदों की दो श्रेणियाँ हैं। तेलुगु व्याकरण में इनका नाम है—'महत्' श्रेणी और 'अमहत्' श्रेणी। तामिल भाषा में इन्हें उच्च-वर्ण श्रेणी (high caste class) और वर्णहीन श्रेणी कहते हैं। देव, दानव, भूत, पिशाच, यक्ष, किन्नर एवं मनुष्य-जाति तथा अन्यान्य विचार-शक्तिशील प्राणियों का अन्तर्भाव उच्च श्रेणी या महत् श्रेणी में है। तेलुगू और गोन्द भाषा को छोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सभी द्राविड़ी भाषाओं में इस विषय के अभिन्न नियम हैं। द्राविड़ी भाषा की उच्च या महत् श्रेणी के शब्दों के एकवचन में पुं-स्त्री प्रकाश होने पर भी बहुवचन में ये अलिङ्गक हैं। बहु वस्तु या प्राणी एकत्र मिले रहने से द्राविड़ी चिन्ता में उनमें से किसी की लिङ्ग-कल्पना असम्भव है। पुँल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग या नपुंसकलिङ्ग के शब्दों का एकत्र समावेश होने से वह समष्टि न पुँल्लिङ्ग, न स्त्रीलिङ्ग और न नपुंसकलिङ्ग ही कही जा सकती है। अँगरेज़ी में इस लिङ्ग का नाम (epicene gender) या उभयलिङ्ग है। द्राविड़ी में महत् शब्द बहुवचन में epicene gender या उभयलिङ्ग माना जाता है। किन्तु अमहत् शब्द नपुंसकलिङ्ग होता है। बहुवचन में द्राविड़ी भाषा के दो ही लिङ्ग हैं—उभयलिङ्ग (epicene gender) और नपुंसकलिङ्ग। एकवचन में तीनों लिङ्गों का प्रयोग है।

अवर्ण या अमहत् श्रेणी में विचारशक्ति-हीन निर्जीव वस्तुओं का अन्तर्निवेश है। अगर किसी मानव की भी विचारशक्ति न मानी जाय तो उसका नाम भी अवर्ण या अमहत् श्रेणी में होगा। विचार-शक्ति के अभाव की कल्पना से साधारण स्त्रियों का भी अन्तर्निवेश अवर्ण या अमहत् श्रेणी में है। विचारशक्ति मानने से स्त्रियों का अन्तर्निवेश महत् श्रेणी में होता है और इनकी परिगणना स्त्रीलिङ्ग में होती है। लिङ्ग-विचार के प्रमाण से हमें यह प्रतीत होता है कि प्राचीन द्रविड़ लोग भावुक या कल्पना-शील न होने से भी दार्शनिक या तर्क-शास्त्र में पण्डित थे। लिङ्ग के भेद से शब्दों के श्रेणी-विभाग की अपेक्षा ज्ञान के प्रभेद से श्रेणी-विभाग करना अधिक दार्शनिकता का परिचायक है। आधुनिक फ़ारसी भाषा में सजीव एवं निर्जीव वस्तुओं के बहुवचन में द्विविध प्रत्यय का व्यवहार होता है; द्राविड़ी भाषा में लिङ्ग-वाचन की अल्प-मात्र अनुरूपता फ़ारसी बहुवचन के प्रत्ययों से है। बँगला में भी सजीव प्राणी-वाचक शब्दों का बहुवचन प्रत्यय ('रा') निर्जीव वस्तु-वाचक शब्दों के बहुवचन प्रत्यय ('गुलो', 'गुलि', 'गुला') से पृथक् है। 'मानुषेरा', 'रमणीरा', 'पाखीरा' प्रभृति शब्दों के अनुरूप 'पुस्तकेरा' नहीं होगा। 'बइगुलो' वा 'पुस्तकगुलो' होगा। बहुवचन-वाचक संस्कृत 'गण' शब्द का प्रयोग भी निर्जीव वस्तुवाचक शब्दों के साथ नहीं होता है। 'रमणी-गण', 'मानवगण', 'पक्षिगण' शुद्ध प्रयोग हैं, परन्तु 'पुस्तकगण' नहीं। बहुवचन में 'समूह' शब्द का प्रयोग सर्वत्र होता है, यथा—'मानव-समूह' 'पुस्तक-समूह'*।

द्रविड़ों के लिङ्गवाचन का यह वैशिष्ट्य उनकी मनोवृत्ति के क्रमविकास का फल है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। महत् श्रेणी में पुँल्लिङ्ग, स्त्री-लिङ्ग वा उभयलिङ्ग के वाचक प्रत्यय प्रथम पुरुष-वाचक सर्वनाम से समुद्भूत हुए हैं। नपुंसक प्रत्यय भी नपुंसक सर्वनाम से उत्पन्न हैं। अति प्राचीन काल में द्राविड़ी भाषा के शब्द अलिङ्गक माने जाते थे। उत्तर काल में समास की सहायता से पुँल्लिङ्ग

* द्रविड़ों में केवल लिङ्गवाचन में ही कल्पना की अपेक्षा युक्ति का समादर अधिक नहीं होता है, परन्तु साधारण कथोपकथन में भी कल्पना से अधिक युक्ति ही का समादर है। शरीर अस्वस्थ होने पर हम लोग कहते हैं 'मैं अस्वस्थ हूँ'; परन्तु वे कहते हैं 'मेरा शरीर अस्वस्थ है', 'मैं' शब्द से वे शरीर मध्यस्थ आत्मा को समझते हैं। क्योंकि आत्मा ही अनुभव-शक्ति का आधार माना जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और स्त्रीलिङ्ग के वाचन-प्रणाली की सृष्टि की गई है। तामिल भाषा में इस प्रकार समस्त शब्दों का नाम 'पगु पदम्' अर्थात् 'विभाज्य पद' (Divisible word) है, प्राचीन तामिल काव्य में विचार-शक्ति या व्यक्तित्व (Individuality) के अनुसार लिङ्ग का प्रयोग बहुत ही मिलता है। संस्कृत से परिगृहीत 'देवु' (देव) शब्द अलिङ्गक होने से भी पुँल्लिङ्ग 'देवन्' शब्द का प्रयोग प्राचीन तामिल में रीतिसिद्ध नहीं है। 'इरेइ' (राजा) अलिङ्गक होने पर भी पुँल्लिङ्ग 'इरेइ-अन्' (=इरेइवन्) से अधिक प्राचीन रीति से सम्मत है। यहाँ शकभाषा का प्रभाव प्रकट हो रहा है।

आधुनिक शिक्षित तामिल सम्प्रदाय में संस्कृत 'चन्द्र' व 'सूर्य' शब्द का अपभ्रंश 'सन्दिरन्' व 'सूरियन्' शब्दों का, संस्कृत के अनुसार, पुँल्लिङ्ग में व्यवहार होता है। परन्तु प्राचीन कवियों में या आधुनिक किसानों में 'ञायिरु' (सूर्य), 'पोरुन्दु' (सूर्य), 'तिङ्गल्' (चन्द्र), 'निला' (चन्द्र) प्रभृति नपुंसक शब्दों का ही प्रयोग समादृत है। ठेठ तामिल भाषा में शहर, ग्राम, व नदी के नाम में कोई लिङ्ग या व्यक्तित्व का चिह्न (personality) नहीं है। कहीं कहीं मालयालम् और कन्नड़ भाषाओं में तामिल से भी अधिक सावधानी से शक भाषा की विधि मानी जाती है। तामिल 'पेइयन्' (बालक) पुँल्लिङ्ग, परन्तु मालयालम् और कनाड़ी में 'पेइदल्' (बालक, वस्तुतः क्रिया से निष्पन्न विशेष्य शब्द) अलिंगक है। शकभाषा के अनुसार पुंवाचक वा स्त्री वाचक शब्द का प्रयोग पूर्व भाग में कट 'अण् पेइदल्' (बालक) वा 'पण् पेइदल्' (बालिका) शब्द गढ़े जाते हैं।

तेलेगू वा गोंड़ भाषा में एक वैशिष्ट्य यह है कि इन दोनों भाषाओं में स्त्रीलिंग नहीं है। अन्यान्य विषयों में इनकी तामिल भाषा ही से अनुरूपता है। स्त्रीलिंग का वाचक शब्द इन भाषाओं में नपुंसकलिङ्ग है। सर्वनाम, क्रियापद वा क्रिया से समुद्भूत विशेष्य पद सब जगह अभिन्न नियम से प्रयुक्त हैं। देवी, दानवी, राज्ञी, मानवी सभी के लिए एक ही नियम है। तेलेगू में कहीं कहीं स्त्रीलिङ्ग का भी प्रयोग है। तेलेगू में स्त्री अस्थावर सम्पत्ति मानी जाती है अथवा शिशुवत् विचार-शक्तिहीन समझी जाती है। व्यष्टि के विचार से रमणी का समादर न रहने से भी समष्टि के अन्तर्भुक्त रमणी का समादर है। बहुवचन में रमणी का उच्चवर्ण शब्द के तुल्य लिङ्ग और सर्वनाम शब्द होता है। स्त्री-जाति की बुद्धि की खर्वता ही इस विचार का मूल कारण है।

तुदा, कोटा तथा नीलगिरि पहाड़ की विभिन्न द्रविड़-जातियों की भाषाओं में लिङ्ग के भेद से सर्वनाम का भेद नहीं होता है। 'अथम्' (दूरवर्ती) और 'इथम्' (निकटवर्ती) इन दो शब्दों ही से अँगरेज़ी के He, she, it, they इन चारों सर्वनामों का भाव व्यक्त किया जाता है।

श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय

हिन्दू-विश्वविद्यालय।

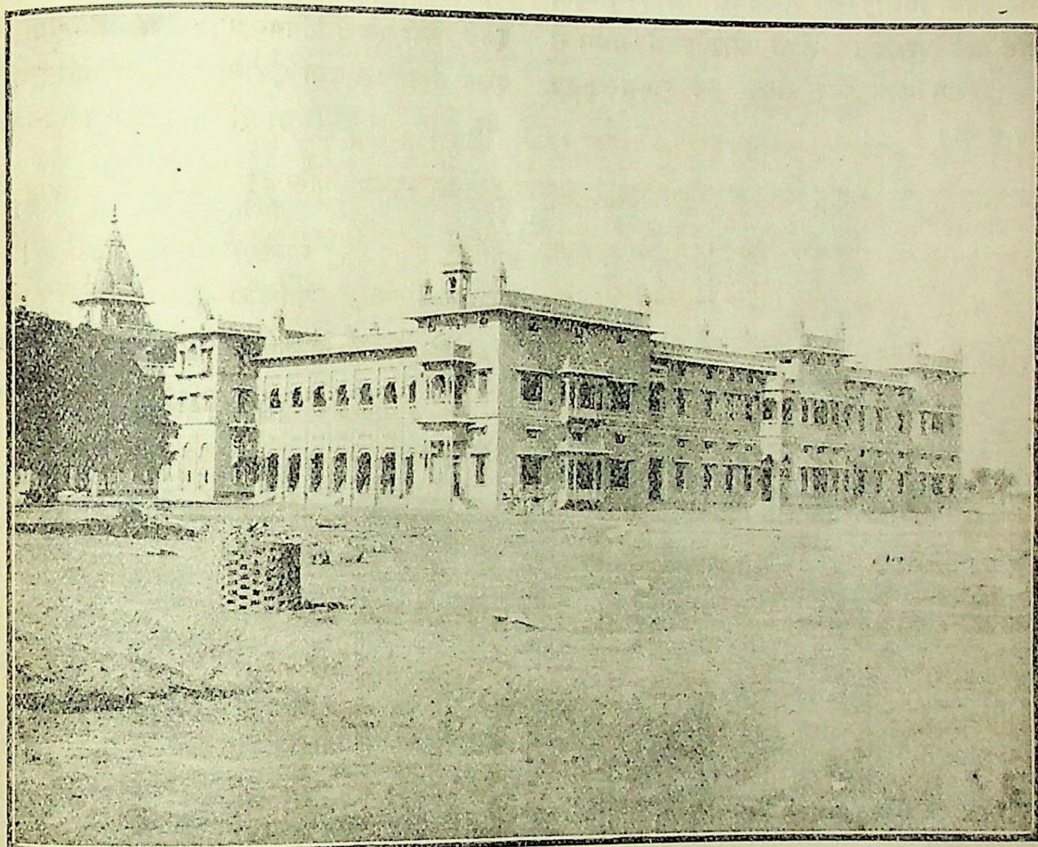


हिन्दू-विश्वविद्यालय का सङ्गठन एक्ट (१९१५ के नं० १६) द्वारा हुआ है। यह एक्ट १९१५ की पहली आक्टोबर को भारतीय व्यवस्थापक सभा में पास हुआ था। जिन उदारमना लार्ड हार्डिङ्ग की सहायता का यह विश्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालय बहुत अधिक ऋणी है उन्होंने इसकी नीव का पत्थर सन् १९१६ की चौथी फ़रवरी को रक्खा था। शिलारोपण-सम्बन्धी महोत्सव में काश्मीर, जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, अलवर, नाभा, दतिया, झालावाड़ और बनारस के महाराज; संयुक्त-प्रान्त, बिहार और उड़ीसा तथा पञ्जाब के लफ़्टनेन्ट गवर्नर; सर जे० सी० बोस, सर पी० सी० राय, डाक्टर हैराल्ड मान, भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा-सचिव सर शङ्करन नायर जैसे विद्वान् एवं भारत के भिन्न भिन्न भागों के अन्यान्य राजे महाराजे तथा प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुष और महिलायें शामिल हुई थीं। इस विद्यालय के निर्माण के लिए दो मील लम्बी और एक मील चौड़ी भूमि लगभग छः लाख रुपये लगा कर मोल ली गई है। यह स्थान काशी से पर्याप्त अन्तर पर स्थित है। यहाँ का जल-वायु तथा विद्याभ्यास के लिए एकान्तता भी सर्वथा उसके उपयुक्त ही है। भूमि की प्राप्ति के अनन्तर विश्व-विद्यालय की इमारतों का नक़शा तैयार हुआ और सन् १९१८ के मई महीने में सड़कें बना कर निर्माण-कार्य का श्रीगणेश किया गया। युद्ध की अगणित कठिनाइयों के उपस्थित रहने पर भी सैंतीस लाख रुपये के व्यय से विश्व-विद्यालय-सम्बन्धी जो भवन अब तक निर्माण हुए हैं उनका विवरण इस प्रकार है—आर्टस् कालेज, फ़िज़िक्स लेबोरेटरी, केमिकल लेबोरेटरी, पावर हाउस, इंजिनियरिङ्ग कालेज सम्बन्धी कई एक वर्कशाप, दो होस्टेल; जिनमें ६२४ छात्रों के रहने के लिए स्थान है, और अध्यापकों के रहने के लिए कुछ भवन। इस समय तीसरा होस्टेल बन रहा है। इसके बाद चौथे होस्टेल के निर्माण का प्रारम्भ होगा। इन होस्टलों में नौ सौ छात्रों के रहने की व्यवस्था की जायगी।



हिन्दू-विश्वविद्यालय का कालेज।

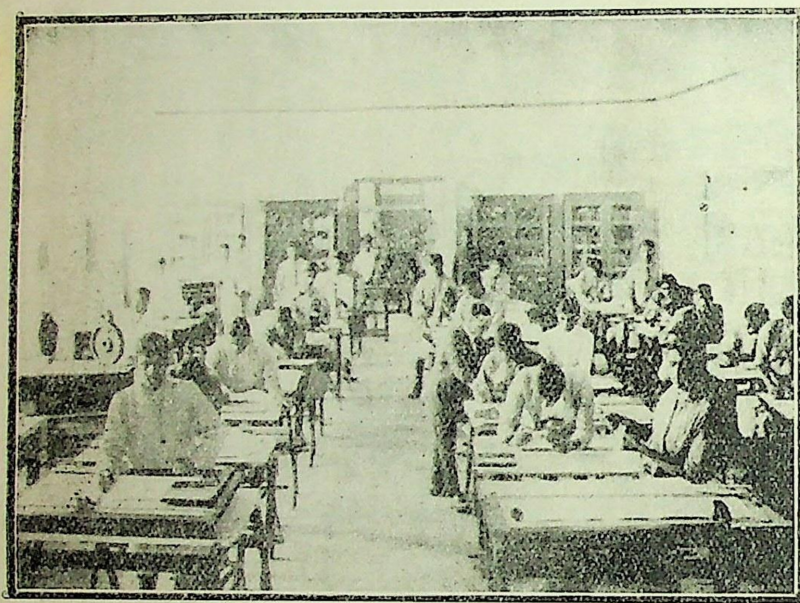
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-विद्यालय के उद्देश।

विश्व-विद्यालय के उद्देश इस प्रकार निश्चित किये गये हैं:—

(१) हिन्दू शास्त्रों और संस्कृत-साहित्य के अध्ययन को साधारण-रूप से प्रोत्साहन। इससे हिन्दुओं के उत्कृष्ट विचार और उनकी विद्या तथा भारत की प्राचीन सभ्यता की सर्वश्रेष्ठ बातें सुरक्षित रहेंगी और उनके प्रचार से हिन्दुओं का विशेष करके और संसार का साधारण-रूप से कल्याण होगा।



हिन्दू-विश्वविद्यालय का ड्राइंग-क्लास, इंजीनियरिङ्ग कालेज।

(२) कला और विज्ञान की सब शाखाओं में साधारण-रूप से शिक्षा तथा खोज के काम का प्रोत्साहन।

(३) देशी उद्योग-धन्धों को समुन्नत तथा देश की मौलिक सम्पत्ति को संवर्द्धित करने में जैसी शिक्षा उत्कृष्ट समझी जाती है वैसी वैज्ञानिक, शास्त्रीय तथा औद्योगिक शिक्षा का प्रदान और प्रोत्साहन।

(४) धर्म और नीति को शिक्षा का पूर्ण अङ्ग मान कर तदनुसार नवयुवकों में चरित्र-गठन का प्रोत्साहन।

उपर्युक्त उद्देशों की पूर्ति के लिए इस विश्व-विद्यालय में अब तक धर्मतत्त्व तथा प्राच्य विद्याओं की शिक्षा के लिए अलग अलग विद्यालय स्थापित किये गये हैं। प्रयोगात्मक तथा सिद्धान्तात्मक दोनों प्रकार की कलाओं तथा विज्ञान की शिक्षा के लिए एक विद्यालय पृथक् स्थापित किया गया है। पदार्थ-विद्या, रसायन-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र, प्राणि-शास्त्र तथा भूगर्भ-विद्या-सम्बन्धी प्रयोग-शालायें भी अलग अलग खोली गई हैं। शिक्षक तैयार करने के लिए ट्रेनिंग कालेज की भी स्थापना हुई है। इनके सिवा एक इंजिनियरिङ्ग कालेज भी बनाया गया है। इसमें मेकेनिकल तथा एलेक्ट्रिकल इंजिनियरिङ्ग में डिग्रियाँ प्राप्त करने तक की शिक्षा दी जाती है। प्रयोग-शालाओं में इंडस्ट्रियल केमिस्ट्री और माइनिङ्ग तथा मेटलर्जी की भी शिक्षा देने की व्यवस्था की जा रही है। औषध, वाणिज्य और कृषि के कालेजों के स्थापन का विधान विचाराधीन है।

विश्व-विद्यालय का सङ्गठन।

विश्व-विद्यालय के नाम ही से उसकी विशेषता सूचित होती है। हिन्दू-धर्म-शास्त्र तथा धर्म-सम्बन्धी शिक्षा देने के लिए उसमें विशेष प्रकार की व्यवस्था की जाने वाली है। हिन्दू छात्रों के सम्बन्ध में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य है। और जैनी तथा सिक्ख-छात्रों की धार्मिक शिक्षा के लिए विश्व-विद्यालय के जैनी तथा सिख सदस्यों की सब-कमेटी द्वारा विशेष प्रकार के प्रबन्ध किये जायँगे। जो कोर्ट विश्व-विद्यालय का मुख्य सञ्चालक है उसके सदस्य केवल हिन्दू ही हो सकते हैं। विश्व-विद्यालय की यही ख़ास बातें हैं जिनसे वह हिन्दू-जाति के लोगों पर अपना विशेष प्रकार का स्वत्व रखता है। नियमों के अनुसार वह स्त्री-पुरुष तथा सब वर्गों, जातियों और धर्मवालों के लिए खुला है। इसी प्रकार फ़ीस का माफ़ होना, वज़ीफ़े मिलना, तथा मेरिट और फेलोशिप के साधारण स्कालर्शिप की भी व्यवस्था की गई है। विश्व-विद्यालय में मुसलमान छात्र भी पढ़ते हैं, पर उनकी संख्या अधिक नहीं है। अ-हिन्दू छात्रों के सम्बन्ध में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य नहीं है। धर्म

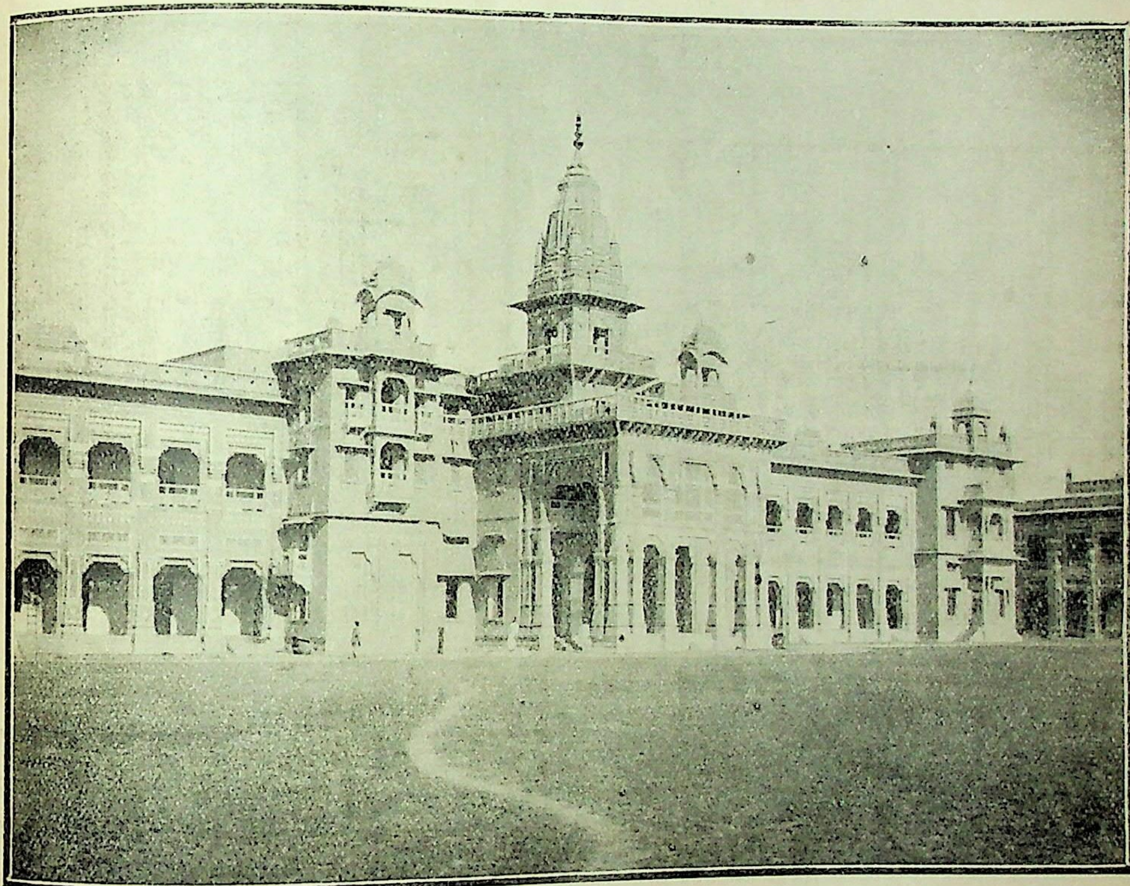
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शिक्षकों को छोड़ कर अन्य अध्यापक किसी जाति या धर्म के भेद के बिना नियुक्त होते हैं।

सार्वदेशिक संस्था।

यह विश्व-विद्यालय एक सर्वश्रेष्ठ सार्वदेशिक संस्था है। वायसराय महोदय इसके लार्ड रेक्टर हैं, महाराज मैसूर चैन्सलर और ग्वालियर के महाराज सेन्धिया प्रो-चैन्सलर हैं। इनके सिवा महाराज बरौदा, महाराज कश्मीर, महाराणा उदयपुर, महाराज जयपुर, महाराज जोधपुर, महाराज बीकानेर, महाराज किशनगढ़, महाराज अलवर, महाराज कोटा, महाराज इन्दौर, महाराज पटियाला, महाराज नाभा, महाराज बनारस, महाराज दतिया, महाराज रावल डूँगरपुर, महाराजा राना धौलपुर, महाराज कपूरथला, महाराज झालावाड़ और बम्बई, मदरास, बङ्गाल, पञ्जाब, तथा बिहार और उड़ीसा के गवर्नर एवं अँगरेज़ी भारत के शासन-विभाग के दूसरे उच्च कर्मचारी इसके संरक्षक हैं। संयुक्त-प्रदेश आगरा और अवध के गवर्नर इसके विज़िटर हैं। देशी रजवाड़ों के उदारता-पूर्ण दान के सिवा इस विश्वविद्यालय को भारत सरकार से एक लाख रुपया, जोधपुर और पटियाला दरबारों से चौबीस चौबीस हज़ार रुपये और मैसूर, कश्मीर तथा बीकानेर दरबारों से बारह बारह हज़ार रुपये का वार्षिक दान प्राप्त होता है। इन तथा कई एक दूसरे भारतीय रजवाड़ों एवं भारत के सारे प्रान्तों के दाताओं के चन्दे से इस विद्यालय का निर्माण तथा सञ्चालन किया जा रहा है। इसके कोर्ट, कौंसिल, सीनेट और फेकल्टी के सदस्य तथा इसके अध्यापक भारत के सब भागों

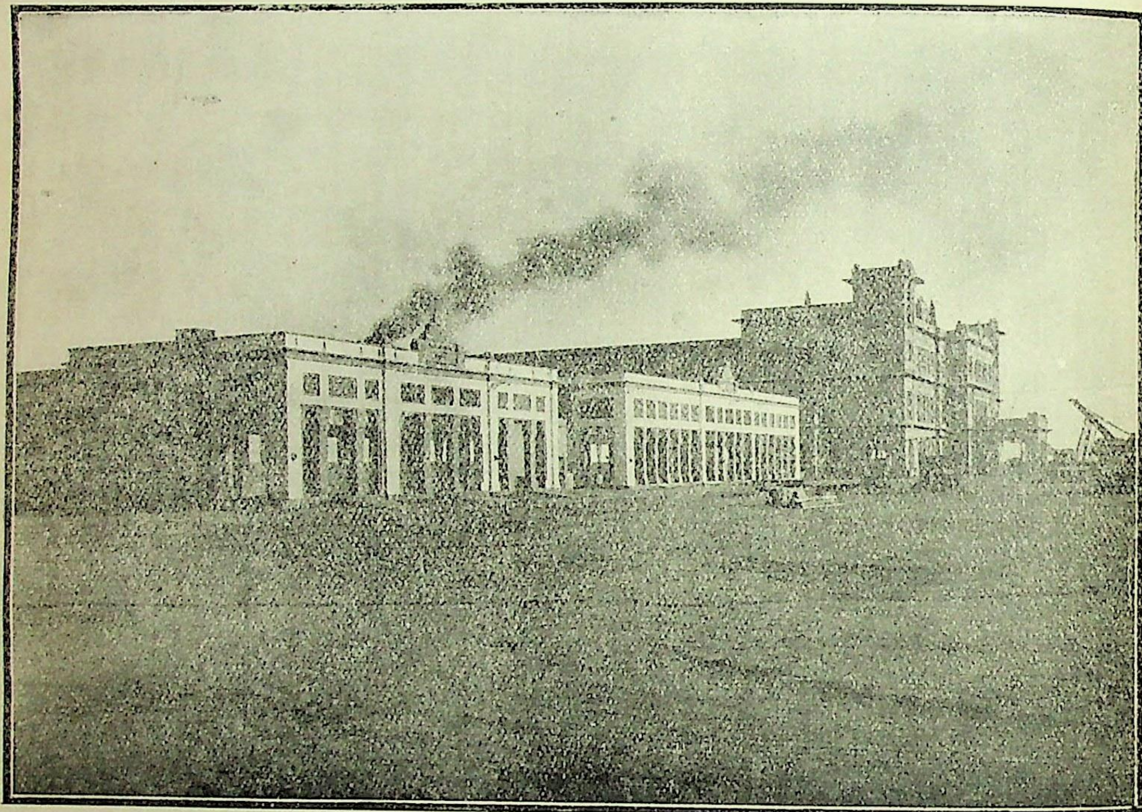


हिन्दू-विश्वविद्यालय का फ़िज़िक्स लेबोरेटरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से लिये गये हैं। अँगरेज़ी भारत के किसी भाग या किसी देशी रजवाड़े में स्थित कोई भी स्कूल विश्व-विद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा के लिए अपने यहाँ के छात्र भेज सकता है। जिन विद्यार्थियों ने बम्बई, मदरास, कलकत्ता, इलाहाबाद, पञ्जाब, पटना, ढाका, लखनऊ और अलीगढ़ विश्वविद्यालयों की मेट्रीकूलेशन परीक्षा पास कर ली है या जिन्होंने अँगरेज़ी भारत के किसी प्रान्त में या किसी भारतीय देशी रजवाड़े में स्कूललीविङ्ग सर्टीफ़िकेट एक्ज़ामिनेशन पास किया है या योरोपियन स्कूलों की अन्तिम परीक्षा या चीफ़्स् कालेज की डिप्लोमा परीक्षा जैसी परीक्षाओं को पास किया है उन लोगों को सेंडीकेट विश्व-विद्यालय में स्वतन्त्रता-पूर्वक भरती कर सकता है और करता है।



हिन्दू-विश्वविद्यालय का इंजीनियरिङ्ग कालेज, वर्क-शाप और पावर-हाउस।

विश्वविद्यालय की क्षमता और उसके अधिकार।

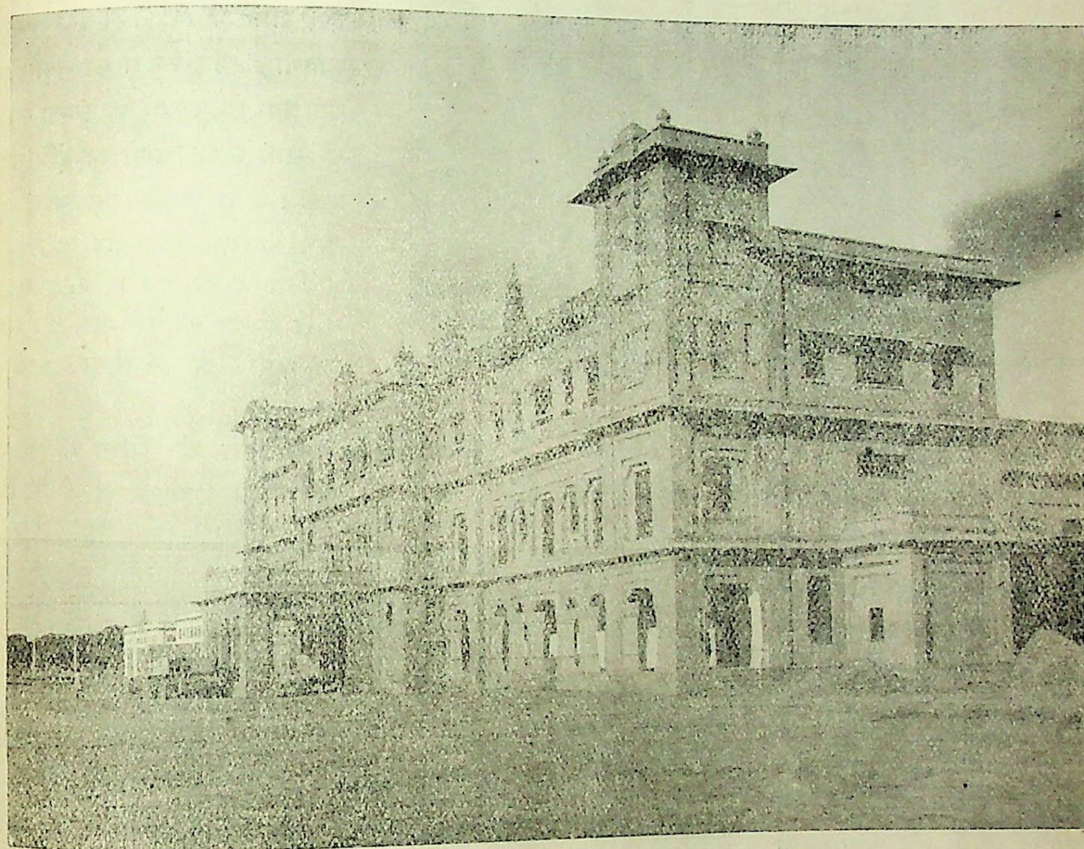
विश्व-विद्यालय अपना चैंसलर और प्रो-चैंसलर मनोनीत करता है। वह अपना वाइस चैंसलर तथा प्रो-वाइस चैंसलर भी मनोनीत करता है। पर इन पिछले दोनों अधिकारियों के चुनाव में विज़िटर की स्वीकृति आवश्यक है। विश्वविद्यालय अपनी भिन्न भिन्न डिग्रियों की परीक्षाओं के लिए पाठ्य-क्रम निश्चित करता है और परीक्षक नियुक्त करता है। किसी परीक्षा के निर्धारित पाठ्य-क्रम के प्रत्येक विषय या विषय समूहों के लिए सेंडीकेट नियमों के अनुसार कम से कम बाहर का एक परीक्षक नियुक्त करता है। विश्व-विद्यालय ने इन चार वर्षों में परीक्षायें लेकर २५० छात्रों को बेचलर आव् आर्टस् और बेचलर आव् साइन्स तथा मास्टर आव् आर्टस् और मास्टर आव् साइन्स एवं लायसेंसिएटस् आव् टीचिङ्ग की डिग्रियाँ प्रदान की हैं। बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी एक्ट की १६ वीं धारा यह अधिकार देती है कि इस विश्व-विद्यालय द्वारा प्रदान की गई डिग्रियाँ, डिप्लोमा, सार्टीफ़िकेट तथा दूसरी शिक्षा-सम्बन्धिनी पदवियाँ सरकार द्वारा उसी प्रकार और उसी रूप में मान्य होंगी जैसे कि गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल के किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क़ानून द्वारा समर्थित किसी दूसरे विश्व-विद्यालय द्वारा प्रदान की गई डिग्रियाँ, डिप्लोमा, सर्टीफ़िकेट तथा दूसरी विश्वविद्यालय-सम्बन्धी पदवियाँ सरकार को मान्य हैं। विश्व-विद्यालय का कोर्ट और उसका सीनेट अपने स्टेट्यूट और रेगूलेशन घटा-बढ़ा सकते हैं। परन्तु उनके घटाने-बढ़ाने में विज़िटर की स्वीकृति आवश्यक है और परिणाम भिन्न भिन्न सभाओं तथा Teaching and residential University के रूप में विश्व-विद्यालयों का प्रबन्ध और सङ्गठन है।

विश्व-विद्यालय चरित्र-सुधार को शिक्षा का एक अङ्ग समझता है और इस प्रधान उद्देश की सिद्धि के भिन्न भिन्न साधन वहाँ प्रस्तुत किये गये हैं।



हिन्दू-विश्वविद्यालय का पावर-हाउस।

किसी किसी बात में गवर्नर जनरल की। इसके सिवा यह बात भले प्रकार कही जा सकती है कि इस विद्यालय की अपेक्षा अँगरेज़ी भारत का कोई भी विश्व-विद्यालय अधिक स्वतन्त्रता का उपभोग नहीं करता और न उसे कार्य करने का इतना अधिक अधिकार ही प्राप्त है। यह सचमुच सन्तोष की बात है कि कलकत्ता-विश्व-विद्यालय कमीशन की सिफ़ारिशों में से अनेक बनारस हिन्दू-यूनिवर्सिटी के सङ्गठन-कर्त्ताओं द्वारा पहले ही सोची गई थी। उसी का

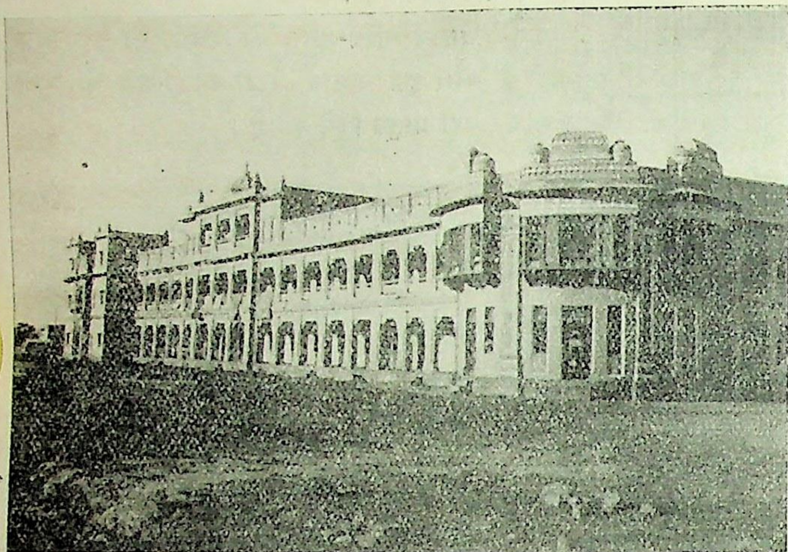
विश्व-विद्यालय की आर्थिक व्यवस्था।

विश्व-विद्यालय का हिसाब प्रतिवर्ष अकाउन्टेंट द्वारा जाँचा और गज़ेट आव् इण्डिया में छापा जाता है। विश्व-विद्यालय ने अस्सी लाख से ऊपर धन-संग्रह कर लिया है। इस रक़म में से पचास लाख रुपया विश्व-विद्यालय के क़ानून के अनुसार सदा स्थायी कोष में जमा रहते हैं। इससे विश्व-विद्यालय का सामयिक व्यय चलता है। लगभग बयालीस लाख रुपये (१३०० एकड़) भूमि प्राप्त करने और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

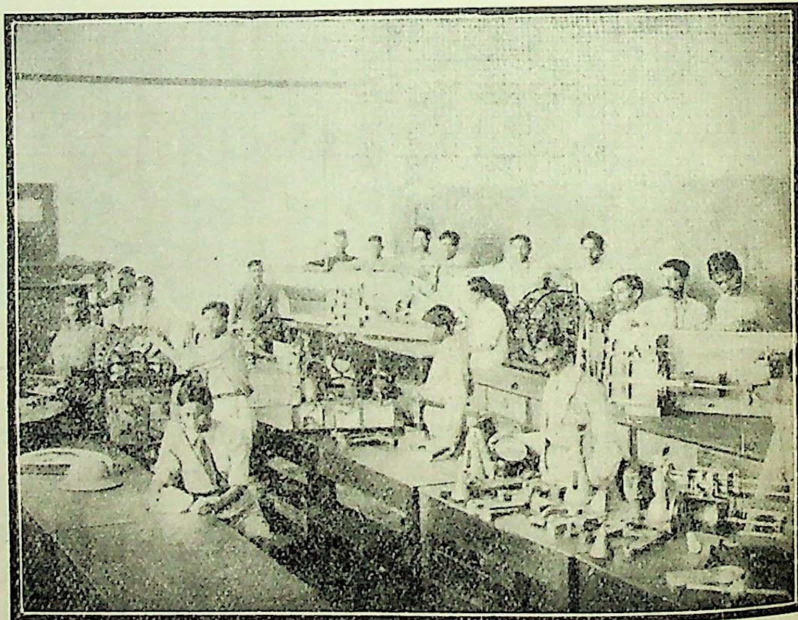
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालेज, लेबोरेटरी, होस्टेल और अध्यापकों के निवास-भवन बनवाने में ख़र्च हुए हैं। विश्व-विद्यालय की वार्षिक


बिरला होस्टल।

आय सात लाख से ऊपर है। और उसके वार्षिक व्यय का कुछ भाग इस समय दानों से किया जाता है। परन्तु आधुनिक Residential and teaching यूनीवर्सिटी का निर्माण करना बड़े व्यय का काम है। अपना कार्य करने की तैयारी करने में विश्व-विद्यालय को पहले ही पन्द्रह लाख का ऋण लेना पड़ा और उसे एककालिक पचास लाख रुपये के दान की तथा तीन लाख वार्षिक दान की आवश्यकता है। तभी वह शिक्षा-सङ्गठन के कार्य को समुन्नत कर सकेगा। इस विश्व-विद्यालय के कालेजों में मुख्य इंजिनियरिङ्ग कालेज है। मैकेनिकल और इलेक्ट्रिकल इंजिनियरिङ्ग की डिग्रियों के लिए यहाँ विद्यार्थी तैयार होते हैं। लगभग इनका वही महत्त्व है जो लन्दन यूनीवर्सिटी की इंजिनियरिङ्ग में बी० एस-सी० का है। ऐसे पाठ्य-क्रम के लिए भी विद्यार्थी भरती किये जाते हैं जिससे वे इंजिनियरिङ्ग में डिप्लोमा प्राप्त कर सकें। ऐसे भी दर्जे खुले हैं जिनमें कारीगरों को भी शिक्षा दी जा सके। २४० विद्यार्थियों के लगभग इंजिनियरिङ्ग कालेज में शिक्षा-ग्रहण कर रहे हैं। भूगर्भ-शास्त्र खनिज-शास्त्र आदि विद्याओं के एक विभाग की भी रचना हुई है और माइनिङ्ग इंजिनियरिङ्ग में डिग्री प्राप्त करने के लिए शीघ्र ही पाठ्य-क्रम की व्यवस्था की जायगी। यदि जनता की पर्याप्त सहायता प्राप्त हो गई तो यह संस्था सरलता के साथ प्रथम श्रेणी के इंजिनियरिङ्ग कालेज में परिणत की जा सकेगी। यह संस्था भारत के सब भागों के नवयुवकों के लिए खुली है और इससे एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति हुई है। अतएव यह सभी से सहायता पाने का पात्र है।

कृषि, वाणिज्य, चिकित्सा की शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए भी फण्ड की आवश्यकता है। विश्व-


मैकेनिकल लेबोरेटरी इञ्जीनियरिङ्ग कालेज।

विद्यालय का एक प्रथम श्रेणी का पुस्तकालय, एक छापाख़ाना, एक उद्योग-धन्धा तथा अर्थ-सम्बन्धी अजायब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

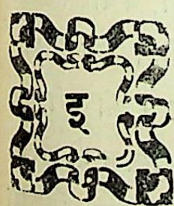
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर, प्रयोगात्मक रसायन-शास्त्र की भिन्न भिन्न शाखाओं की शिक्षा देने के लिए एक टेकनिकल इन्स्टीट्यूट, एक वेधशाला, सीनेटहाल, और शारीरिक तथा सैनिक शिक्षा के लिए जिमनाजियम, आरमरी और ड्रिलशेड बनाने तथा प्रस्तुत करने के लिए भी धन की आवश्यकता है। एक राइडिङ्ग स्कूल शीघ्र ही खोला जायगा और विश्व-विद्यालय के जो विद्यार्थी सैनिक शिक्षा ग्रहण करना चाहते हों उनको सैनिक शिक्षा देने के प्रबन्ध विचाराधीन हैं। इनको इस विषय की शिक्षा इस दृष्टि से दी जायगी कि वे सेना-विभाग में रेगुलर आर्म्मी या टेरीटोरियल फ़ोर्स में नौकरी पा सकें। भारत सरकार ने आफ़िसर ट्रेनिंग कोर की रचना की स्वीकृति पहले ही प्रदान कर दी है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे यह बात स्पष्ट हो जायगी कि हिन्दू-विश्व-विद्यालय भारत की एक सार्वदेशिक संस्था है। इससे सब वर्गों और धर्मों के विद्यार्थी स्त्री-पुरुष दोनों लाभ उठा सकते हैं। जिन लोगों के ऊपर इसके प्रबन्ध का भार है वे इसे एक राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह संस्था देश के नवयुवकों को ज्ञान की सर्वोच्च शिक्षा प्रदान करेगी। इसके साथ ही उनमें चरित्र-बल की भी उद्भावना करेगी जिससे वे देश-भक्त और जन-सेवा-परायण होंगे।

डी०

भारतवासियों को योग्य बनाने के उपाय।



इस समय भारतवासी सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्य आवश्यक विषयों में जैसे चाहिए वैसे योग्य नहीं हैं, इसलिए ऐसे उपाय किये जायँ जिससे ये योग्य बन जायँ और एक 'नेशन' होने का गौरव प्राप्त कर सकें। इस सम्बन्ध में कुछ पुस्तकें अभी हाल में ही प्रकाशित हुई हैं। इनमें से एक पुस्तक का नाम India's Destiny अर्थात् 'भारत की भावी' है। इसके लेखक एक भारतवासी हैं। कुछ कारणों से वे अपना नाम प्रकट नहीं करना चाहते हैं। आपने पुस्तक के पूर्वार्द्ध में हिन्दुस्तानियों और अँगरेज़ों दोनों की मिलती-जुलती बातों का उल्लेख किया है और उत्तरार्द्ध में उन उपायों को लिखा है जिनके द्वारा भारतवासी योग्य बन सकते हैं और यदि उन्हें स्वराज्य मिल जाय तो वे उसे चला सकते हैं। आपके बताये हुए उपायों में से कुछ ये हैं:—

भारतीय राष्ट्र-सङ्गठन का आधार धार्मिक तत्त्वों पर होना चाहिए अर्थात् ईश्वर में पूर्ण विश्वास और मनुष्यों के हृदयों में और उनके कामों में ईश्वर की निरन्तर व्यापकता और समक्षता का पूर्ण ज्ञान रहना चाहिए। असभ्य भारत नास्तिक भारत से अच्छा है। पाश्चात्य देशों में ईश्वर मनुष्यों के हृदय से सर्वथा हटा दिया गया है। वहाँ ईश्वर की जगह नास्तिकता, योग्यतर प्राणी की संरक्षता आदि के सिद्धान्तों को स्थान मिला है। भारतीय नवयुवक भी पाश्चात्य देशों की चाल चलने लगे हैं और अपने जातीय भावों को भूल चले हैं। आपका कथन है कि धार्मिक बातें वाद-विवाद से दूर रक्खी जायँ, क्योंकि इससे कुछ लाभ नहीं है। ईसा, बुद्ध, कृष्ण अथवा मुहम्मद के धर्म-सिद्धान्तों पर चलने से मनुष्यों को जितना लाभ हुआ है उतना बड़े बड़े तत्त्वज्ञानियों और पण्डितों के शास्त्रार्थ करने से नहीं हुआ है। इसलिए भारत में हमें लोगों के हृदयों में संशय नहीं उत्पन्न करना चाहिए। आप लिखते हैं कि हिन्दूधर्म में कुछ काल से ऐसी बातें आ मिली हैं जिनके कारण हिन्दुओं में परस्पर मेल होने के स्थान में भेद-भाव अधिक होगया है। बहुत कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणों के अनुपयुक्त कार्यों और झूठे विश्वासों के प्रचलन से इसका प्रसार हुआ है। हिन्दूधर्म से इन बातों को दूर करना परमावश्यक है। आप चाहते हैं कि हिन्दूधर्म की एक महती सभा की जाय और उसमें सर्व-सम्मति से हिन्दूधर्म की नवीन बातों को दूर कर देने की घोषणा की जाय। इसी सभा में यह भी तय हो जाय कि किस प्रकार की धार्मिक शिक्षा होनी चाहिए। एक ऐसी पुस्तक की रचना की जाय जिसमें विवादास्पद साम्प्रदायिक बातों को स्थान ही न दिया जाय, क्योंकि सदाचार और धार्मिक कार्यों के लिए किसी ख़ास धर्म के सिद्धान्तों और साम्प्रदायिक बातों का प्रचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। सभी स्कूलों और कालेजों में इस पुस्तक का पढ़ाया जाना आवश्यक है।

लेखक महाशय की दूसरी बात जाति-सुधार है। आपकी सम्मति में जाति-पाँति के विचार ने भारत-वासियों को राष्ट्रीय मामलों में निर्बल कर दिया है और धार्मिक दृष्टि से भी इसने भारत को बहुत कुछ हानि पहुँचाई है। आपके विचार से जाति-भेद सर्वथा निर्मूल न किया जाय, पर उसके दोष अवश्य दूर कर देने चाहिए। यह सुधार ब्राह्मणों से आरम्भ होना चाहिए, क्योंकि इन्हों ही ने बहुत कुछ गड़-बड़ी की है।

लेखक की तीसरी बात ज़मींदारों और किसानों का सुधार है। इस विषय में आप Co-operative movement अर्थात् कृषक हितकारी संस्था के प्रचार की बड़ी आवश्यकता समझते हैं।

चौथी बात देशीय राज्यों में राज्य-शासन का सुधार है। आप सभी रियासतों में अँगरेज़ी व्यवस्थापक कौंसिलों की नक़ल चाहते हैं।

पाँचवीं बात यह कि आप एक नई दलबन्दी करना चाहते हैं जो न नरम हो और न गरम ही हो, किन्तु दोनों के बीच के मार्ग का अनुसरण करे।

छठी बात कृषि की समुन्नति है अर्थात् जिस खेत में २० मन नाज पैदा होता है उसमें ४० मन नाज पैदा किया जाय। कृषि के सामने और सब उद्योग-धन्धे गौण हैं। इस मामले में कृषक को धन की सहायता बैंकों से मिलनी चाहिए। इस विषय में कृषक-हितकारी-संस्था बहुत कुछ कर सकती है।

सातवीं बात शिक्षा-सुधार है। आपने शिक्षा को कई भागों में विभक्त किया है—जैसे राष्ट्रीय शिक्षा, यूनीवर्सिटी शिक्षा, व्यावहारिक शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा, व्यापारिक शिक्षा, पंडिताई की शिक्षा, और स्त्री-शिक्षा। शिक्षा-विषय में आपके विचारों के अनुसार कई प्रकार के स्कूल और कालेज होने चाहिए, परन्तु आपके इन विचारों का सारांश यह है कि जैसी शिक्षा अब हो रही है उसमें बहुत कुछ परिवर्तन होना परमावश्यक है। जिस प्रकार की शिक्षा के आप पक्षपाती हैं वह दूसरे रूप में विदेशीय शिक्षा है। आपने इस विषय में इस बात पर बहुत कुछ ज़ोर दिया है कि शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी-भाषा ही हो, मातृ-भाषा नहीं, क्योंकि एतद्देशीय प्रान्तिक भाषायें अभी पूर्ण संगठित नहीं हैं और इनके द्वारा पाश्चात्य देशों की सभ्यता की पूरी बातें नहीं सीखी जा सकती हैं। उपर्युक्त पुस्तक के लेखक के विचारों का यही सार है। अब हम इन विचारों पर कुछ अपनी ओर से कहना चाहते हैं।

राष्ट्रीय सङ्गठन के जो उपाय बताये गये हैं वे न तो पूरे हैं और न उपयुक्त ही हैं। यदि लेखक महाशय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन उपायों की ओर ध्यान देते जो इस समय भारत के महान् नेता की ओर से प्रचलित किये गये हैं तो उन्हें अपनी पुस्तक में इस विषय को लिखने की पूरी सामग्री मिल जाती।

जो उपाय भारत-उद्धार के लिए इस समय किये जा रहे हैं और जिनका उद्देश भारतवासियों को योग्य, आत्मावलम्बी और देश-भक्त बनाना है तथा उनकी आर्थिकदशा को सुधारना है वे ये हैं:—

१ विदेशी वस्तुओं का त्याग—विशेषतया विदेशी वस्त्र का त्याग। भारत की बनी हुई चीज़ों को काम में लाना।

२ घर घर चर्खे का प्रचार। इसके कते सूत से वस्त्र बना कर पहनना।

३ मद्य-सेवन के व्यसन का सर्वथा त्याग। उसका क्रय-विक्रय बिलकुल बन्द कर देना।

४ आपस के झगड़े पञ्चायतों द्वारा फ़ैसल करना और इस काम के लिए स्थान स्थान पर पञ्चायतों का स्थापित होना।

५ शिक्षा के लिए जातीय स्कूलों और संस्थाओं का स्थापित होना। शिक्षा जातीय हो और उसका माध्यम मातृ-भाषा हो।

६ हिन्दू-मुसलमानों की एकता का प्रचार।

७ अन्त्यज जातियों का उद्धार।

८ मन, वचन, कर्म, से अहिंसाधर्म का पालन।

९ वकालत के पेशे से लोगों को हटाना।

हम नहीं कह सकते कि भारत-सुधार के ये उपाय पर्याप्त हैं या नहीं, लेकिन इतना ज़रूर कहेंगे कि यदि ये सब उपाय दत्तचित्त से काम में लाये गये तो भारत की काया पलट जायगी। इस समय सभी देश-भक्तों को उचित है कि इन साधनों में से जो कुछ प्रयोग में आसकें उन्हें काम में लावें जिससे भारत की राष्ट्रीय, सामाजिक और आर्थिक दशा का परिवर्तन हो। इन बातों में से कोई भी ऐसी नहीं है जिस पर किसी देश-भक्त को आपत्ति हो। लेकिन शताब्दियों की गुलामी से भारतवासियों की ऐसी मानसिक दशा होगई है कि जब तक किसी बात की प्रशंसा अँगरेज़ न करें तब तक वे उसे हीन दृष्टि से ही देखते रहते हैं। अपने देश की मान-मर्यादा का विचार रखना सभी भारतवासियों का काम है। इसका त्याग करने से उनकी दुर्गति ही नहीं है, बल्कि उनका पूरा अधःपतन भी है।

निम्नलिखित उपाय ऐसे हैं जिनके साधन से भारत की वृद्धि होने में कोई संशय नहीं है।

१ धर्म-प्रचार।

२ स्वदेशी वस्तु-प्रचार।

३ चर्खों से सूत कातना और कर्घों से कपड़ा बुनना इन दोनों बातों का देश भर में प्रचार होना।

४ कृषि की वृद्धि।

५ गोरक्षा अर्थात् गो-वध बन्द ही न हो जाय, किन्तु पहले जैसे गाय पाली जाती थीं वैसे ही उनका पालन हो, जिससे घर घर दूध, दही, और घी की वृद्धि हो। इतना ही नहीं बल्कि पशुमात्र की वृद्धि और रक्षा करना।

६ जातीय शिक्षा-प्रचार।

७ मद्य तथा अन्य सब नशों का त्याग।

८ स्थान स्थान पर पंचायतों का स्थापित होना और उन्हीं के द्वारा आपस के झगड़े तय होना।

९ हिन्दू-मुसलमान मेल।

१० अन्त्यज जातियों का उद्धार।

बस भारत-सुधार के यही उपाय हैं। इन्हीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपायों को काम में लाने के लिए हमें शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिए। इनके सिवा सुधार की और दूसरी जितनी बातें हैं वे सब गौण हैं—मुख्य यही हैं। यदि इनमें से प्रत्येक विषय का सविस्तर विवेचन किया जाय तो एक पुस्तक ही बन जाय।

कन्नोमल

छड़ी।



रागियों की बात जाने दीजिए। रसिक लोग जब पहाड़ों की सैर करने जाते हैं तब तरह तरह के तोहफ़े मित्रों के लिए लाते हैं। मेरे भी एक मित्र मंसूरी सैर करने गये। आपको वहाँ छड़ियाँ ही पसन्द आईं। फिर क्या था, दो दर्जन बाँध लाये। घर पहुँचे, मित्रों ने घेरा, बात ही बात में सब छड़ियाँ बँट गईं। एक छड़ी मेरे भी हिस्से में आई। मैं पहले ही पहुँच गया था। छाँट कर एक बढ़िया मूठ की ऐसी स्टिक निकाली जो यहाँ किसी दूकान पर डेढ़ दो रुपये से कम न मिलती, परन्तु ढेर का ढेर आगे लगा देख कर मुझको कुछ हँसी सूझी। "क्या यह छड़ियाँ मंसूरी जानेवालों को मुफ़्त बँटती हैं?" हमारे मित्रवर बड़े हाज़िर जवाब हैं बोले, "जी नहीं। जानेवालों को तो नहीं, लेकिन उनके दोस्तों को ज़रूर योंही बँटती हैं"। मैंने जवाब और छड़ी लेकर हँसते हुए घर की राह ली।

अभी तक इनका नाम नहीं बतलाया है, न बतलाऊँगा। क्या करूँ छड़ी का क़िस्सा लिखने की अनुमति उन्होंने इसी शर्त पर दी कि न मैं उनका नाम लिखूँ, न उनके इस मुँह-लगे मित्र का जिसके कारण छड़ी की एक छोटी सी कहानी बन गई है। अतः पाठक कल्पित नाम से ही सन्तुष्ट रहें। मंसूरीवाले महाशय का नाम 'राजा' है और उनके मुँह-लगे दोस्त हैं 'मुन्नू'।

राजा ने और सब छड़ियाँ तो बाँट दीं, पर एक छड़ी किसी को न दी। इसको उन्होंने मंसूरी पहुँचते ही ख़रीदा था। आप इस पर कुछ ऐसे प्रसन्न हुए कि जब से यह उनके हाथ लगी तब से हमेशा उनके साथ रहने लगी। इसने मंसूरी की सैर की और केम्पटी फ़ाल्स के पास उनकी हड्डियों को चूर चूर होने से बचाया। इसलिए उनका प्रेम इस पर कुछ और बढ़ गया था। घर पहुँचने पर यह छड़ी अलग रख ली गई। मुन्नू महाशय के सामने बँटनेवाली छड़ियों का ढेर लगा था, लेकिन वे उसी अलग रक्खी हुई छड़ी पर ही रीझे। आपने कहा, 'मैं तो यही लूँगा।" राजा ने एक छड़ी की जगह दो, तीन, तक दीं। लेकिन मुन्नू जब मचलते हैं तब वे किसी की नहीं सुनते। राजा भी अड़ गये, 'न लो, मैं यह छड़ी नहीं देने का'। मुन्नू ने व्यङ्ग्यमय 'बहुत अच्छा' कह कर झगड़ा ख़तम किया, फिर छड़ी न माँगी।

इस घटना को हुए कोई दो वर्ष हो गये। छड़ी हमेशा राजा के साथ रही। आपके घर में काफ़ी रुपया है, ज़मीन्दारी है। पढ़े-लिखे भी हैं। नई जवानी में आपने कुछ कविताएँ कीं। अब कुछ समय से आपको देश-सेवा और भ्रमण का शौक़ है। जहाँ कोई बड़ी सार्वजनिक सभा होती है, आप ज़रूर पहुँचते हैं। छड़ी को आप कभी छोड़ते न थे। यदि छड़ी के दिमाग़ होता तो वह विदुषी हो गई होती। उसने रौलटबिल पर शास्त्रीजी की बहस सुनी। देहली स्टेशन के सामने जनता-सागर के किनारे वह भी अपने प्रियतम के साथ खड़ी थी। हंटर कमेटी के सदस्यों को भी उसके दर्शन हुए। आप बड़े गौरव के साथ कहते थे कि प्रश्न तो वे मुझसे करते थे, परन्तु नज़र उनकी मनोमोहनी छड़ी ही पर थी। अमृतसर कांग्रेस की कीचड़ में उसकी हालत ख़राब हो गई थी। परन्तु जब दूसरी बार मैंने राजा को बम्बई में देखा, तब उसकी आभा पहले से भी अधिक हो गई थी। उस पर बहुत उम्दा वार्निश चढ़ गया था और एक चाँदी की फँसी मूठ भी लग गई थी। नागपुर-कांग्रेस के असहयोगी समाज में भी उसकी इज्ज़त बनी रही, कलकत्ते तक में मलाका छड़ियों के मुक़ाबिले वह उनके साथ रही।

परन्तु इधर क़रीब एक महीने से मैंने उनके हाथ में छड़ी नहीं देखी। बिना छड़ी के उनकी चाल कुछ अड़-बंगी सी मालूम होती थी। एक रोज़ रास्ते में मिले। वहीं कुछ व्यङ्ग्य सूझा, पूछा "आपकी विलायती अर्धाङ्गिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज-कल कहाँ हैं"। कुछ फ़िक्र और जल्दी में थे। सिर्फ़ इतना कह कर चलते हुए कि छड़ी को पूछते हो; वह तो पटने में खो गई।

एक रोज़ बेवक्त मैं राजा के घर पहुँचा, सीधा कमरे में घुस गया। आप बैठे एक पत्र हँसते हुए पढ़ रहे थे। मैंने कहा "मैं भी शामिल हो सकता हूँ ?" राजा ने पत्र मेरे हाथ में देकर कहा 'यह न समझना कि मेरी किसी बोलती-चालती प्रणयिनी का पत्र है'। पाठकों के मनोरञ्जनार्थ पत्र ज्यों का त्यों उद्धृत करता हूँ। सिर्फ़ जगह और नाम बदल दिये गये हैं।

कानपुर
ता० १ अप्रेल १९२१

प्रियतम,

एक महीने से अधिक तुमसे वियोग हुए हो गया, तुमने मेरी सुधि तक न ली। और लेते ही क्यों। तुम जितना मुझ पर प्रेम प्रकट करते थे वह मित्रों ही के लिए था, जिससे मैं तुम्हारे साथ से अलग न होऊँ। परन्तु यह मैं क्यों कर मानूँ। यदि किसी से मुझको डाह हो सकती थी तो श्रीमतीजी से, क्योंकि मंसूरी से आई हुई मेरी तमाम सङ्गिनियों को तुम अपने मित्रों में बाँट चुके थे। मैं अकेली रह गई थी। मैं जड़ हूँ और श्रीमतीजी चैतन्य हैं। परन्तु मुझ पर तुम्हारा अनुराग देख कर वे मुझसे कुढ़ा करती थीं। मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहती थी, परन्तु क्या आपने कभी श्रीमतीजी को भी घर से बाहर जाने की आज्ञा दी ?

सोचती हूँ, और अन्त में यही समझ में आता है कि तुम बड़े बुद्धिमान् हो। यदि यह भेद न रखते तो शायद श्रीमतीजी भी किसी ट्रिप में खो जातीं। मेरे लिए क्या, यदि आज मैं खो गई तो कल तुमको मेरी ऐसी सैकड़ों मिल जायँगी। जेब में सिर्फ़ दाम होना चाहिए।

परन्तु दुःख यह है कि तुमने मेरे लिए कुछ भी प्रयत्न न किया। त्रेता युग में जब सीताजी को रावण हर ले गया था उस समय न रेल थी, न तारघर था, परन्तु राम ने उनके लिए आकाश पाताल छान डाले और अन्त में रावण को मार कर ही उनको सन्तोष हुआ। मेरी और सीता की कौन समता, परन्तु क्या तुम एक तार तक न दे सकते थे ? क्या पुलिस को इत्तिला भी न कर सकते थे ? नहीं तो दुष्ट मुन्नू—उसकी नज़र मुझ पर जब से मैं तुम्हारे यहाँ आई तब से थी—के पाले में क्यों पड़ती। मेरा हृदय तो तब ठंढा होता जब यह पड़ा पड़ा जेलखाने में सड़ता और मैं फिर तुम्हारे साथ पहाड़, नदी और समुद्र की सैर करती, और सभाओं में उच्च आसनों पर, तुम्हारी बग़ल में, बैठ कर महात्मा गाँधी और महर्षि मालवीय की वक्तृताएँ सुनती।

जब से इस निर्दयी के पाले पड़ी हूँ मुझे बड़ा कष्ट है, मेरी बड़ी दुर्गति हो गई है। हाय, उस दुःख को मैं कैसे प्रकट करूँ—गिरा अनयन नयन बिनु बानी। तुम एक तो हलके शरीर के हो और फिर तुम्हें मेरी कमर का हमेशा ख़याल रहता था, कहीं वह टेढ़ी न हो जाय। और जो कभी मेरा सहारा लेकर खड़े हो जाते थे तो थोड़ा सा लचने में मुझे विशेष आनन्द ही मिलता था। परन्तु यह पेटू ब्राह्मण तीन मन से कम न होगा। एक तो रास्ते में मुझको ठुकराता हुआ चलता है जिसके कारण मेरा तमाम शरीर छिल गया है, और जब कभी मेरे कंधे पर सहारा देकर खड़ा होकर मित्रों से बातें करने लगता है तब मेरी कमर तो टूटने सी लगती है। उनको तरस आ जाता है, कहते हैं, 'क्या कुछ दाम नहीं ख़र्चे हैं जो इसकी ऐसी ख़राबी कर दी है।' दुष्ट हँसता है "समय सब नहीं बराबर जात, किसी समय इसकी अच्छी हालत थी, अब पुरानी हो गई है। कुछ दिन में जब बिलकुल बेकार हो जायगी तब इसके मालिक को लौटा दूँगा"।

दिन भर तो कानपुर की गंदी सड़कों पर मुझे रगड़ाता है, शाम को उसके घर पहुँच कर आशा करती हूँ कि अब चैन की नींद सोऊँगी। परन्तु मुझे शान्ति नहीं मिलती।

अब मैं अपनी अन्तिम दशा का हाल क्या कहूँ। दिन भर ठोकरें खाते खाते और रात भर उसके कमरे में पड़े पड़े मैं बहुत कमज़ोर हो गई थी। एक दिन एक इक्केवाले से तकरार हुई। यदि गुस्सा आया था तो अपना हाथ ही दे मारता, परन्तु उसको अपने हाथ का मेरी कमर से ज़्यादा ख़याल था। बस, भरपूर ताक़त से उसने मुझको उठा कर इक्केवाले की पीठ पर पटक दिया। फिर क्या हुआ, इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे होश नहीं। जब होश आया तब देखा कि उसी कमरे में पड़ी हूँ। मेरी कमर टूट गई है। किसी ने उसको यत्न से बाँध दिया है, जिससे मेरा कष्ट कम हो गया है। परन्तु अब मैं किसी के काम की नहीं रह गई हूँ। अब मेरी अन्तिम इच्छा यही है कि तुम आकर मुझे ले जाओ। मैं यही चाहती हूँ कि मेरी अन्तिम क्रिया तुम्हारे ही हाथ से हो।

तुम्हारी—
छड़ी

मैंने आद्योपान्त पत्र पढ़ा, और फिर पढ़ा। पत्र क्या था गद्य में एक लम्बी सी कविता थी। मैंने आप ही आप कहा, वाह मुन्नू, तुम कवि कब से हुए! तुम्हारी प्रतिभा अब चमकी। अभी तक तुमको कोई टके को भी नहीं पूछता था, परन्तु अब गल्प लिख कर अपना पेट ख़ूब भर सकोगे। राजा को उत्तर ही की धुन थी, बोले 'भाई, कोई समय था जब मैं भी कविता कर सकता था, गल्प भी लिख सकता था। परन्तु अब तो दिमाग़ में राजनीति, असहयोग, इतिहास, इत्यादि नीरस विषय भरे हुए हैं। कुछ तुम्हीं सहायता करो। इस नवीन कवि को तो मुँहतोड़ उत्तर भेजना है।' मैंने सोचा कि अपनी भी वही हालत है। दिमाग़ में अकबर, जहाँगीर से लेकर मांटेगू चेम्सफ़ोर्ड तक मुर्दे या ज़िन्दा नीरस कूट नीतिज्ञ ही भरे पड़े हैं, या लड़कों के परीक्षा-पत्र। यहाँ भी सरसता से कोई सम्बन्ध नहीं। उत्तर दिया 'दो एक रोज़ ठहर जाओ। कुछ तैयारी मैं भी कर लूँ।'

घर आया। गर्दविभूषित उपन्यासों और काव्यों की ओर फिर नज़र दौड़ाई। दो एक को उलट पुलट कर पढ़ा। कुछ समझ में आया, कुछ नहीं। सोचा, इस नये कवि के लिए इतना ही काफ़ी है।

अवकाश मिलने पर राजा के घर पहुँचा। कवियों और उनकी कविताओं, गल्पलेखकों और उनकी कल्पनाओं, पर बहस होती रही। अन्त में मैंने कालिदास के मेघदूत का ज़िक्र किया। बस, राजा की कल्पना-शक्ति जाग उठी, बोले, 'अब तुम्हारी सहायता की कोई आवश्यकता नहीं है। मज़मून बँध गया। कल सवेरे आकर देख जाना, तब पत्र भेजूँगा।'

पत्र लिखा गया। राजा ने उसको होशियारी के साथ बकस में बन्द कर कुञ्जी अपनी टेंट में की। इसलिए कि कहीं ऐसा न हो कि उस पत्र पर श्रीमतीजी की नज़र पड़ जाय और वे कुछ और का और समझें। प्रातःकाल पत्र मुझे मिला। उसको भी अक्षरशः लीजिए।

लखनऊ
ता० ८ अप्रेल, १९२१

प्रिये,

तुम्हारे वियोग की अग्नि यहाँ भी मुझको जला रही थी। एक महीने के भीतर तुम्हारे विरह के शोक में घुलते घुलते आधा रह गया हूँ। रास्ता चलते लोग मुझको टोंकते हैं। मेरी क्षेम-कुशल पूछते हैं, और तुम्हारी याद दिलाते हैं। मैं उन्हें क्या उत्तर दूँ। मुझे क्या मालूम था कि तुम छलिया मुन्नू के पास हो। नहीं तो तुम्हारी जो दुर्गति हुई है वह हम उसकी करते।

तुम्हारे आँसुओं से लिखे हुए पत्र को पढ़ कर मेरी अश्रुधारा भी बह चली। वियोगाग्नि धधक उठी। प्रिये, मैं तुम पर अपना प्रेम कैसे प्रकट करूँ। तुमने मुझ पर भी व्यङ्ग्य कसा है। परन्तु मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि जब से तुम मुझसे अलग हुई तब से बाज़ार में लोग कहते हैं, तुम्हारी ऐसी बहुत हैं, परन्तु मैंने किसी की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा। चाहे दिन हो या रात, आकाश स्वच्छ हो या पानी बरस रहा हो, मैं अकेला ही जाता हूँ; मैं तुम्हारी उस सहायता को कभी न भूलूँगा जो तुमने मुझे केम्पटी फ़ाल्स के पास दी थी। यदि मैं दशरथ होता तो आवश्यकता के समय माँगने के लिए कोई वचन दे देता। परन्तु यह मैं भी कर सकता हूँ कि तुम्हारे ही हाथ से मुन्नू को दुरुस्त कराऊँ। बस, तुम्हारी आज्ञा भर की देर है।

तुम्हारा पत्र मुझे भीगा हुआ मिला। तुम्हारे आँसू तो पत्र लिखते लिखते ही सूख गये होंगे। सिर्फ़ उनकी महक बाक़ी थी। उसकी तरावट उस कुसमय मेघ की ही होगी जो तुम्हारे पत्र को प्रेरित करके मेरी टेबिल-पटल पर छोड़ गया है। विरही यक्ष ने मेघ ही द्वारा अपनी प्रणयिनी को सन्देशा भेजा था। सो मौक़ा तुम्हीं को मिला। अब आकाश स्वच्छ है। कोई मेघ नहीं दिखाई देता। वसन्त की सुगन्धि से लदी हुई वायु मेरे झरोखे से होती हुई दक्षिण की ओर जा रही है। लो, यह पत्र मैं वसन्त ही के हाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

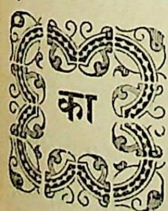
भेजता हूँ। वसन्त, जाओ यहाँ से कानपुर तक निष्कण्टक रास्ता है। तुमको कालिदास के मेघ की भान्ति रास्ते में न कोई पहाड़ मिलेगा न नद, न कोई शहर। खेत ही खेत मिलेंगे। कोई समाधि लगाये हुए शङ्कर भी नहीं मिलेंगे। यों ही सब तुम्हारे मोह में फँसे हुए हैं। लखनऊ की हद तक, और ख़ास कर छावनी में, तो तुमको कलियुगी देवी और देवता मिलेंगे, परन्तु उसके बाद गङ्गा के किनारे तक तुमको मृत्युलोक के जर्जर नर-नारी ही दिखाई देंगे। गङ्गा पार करने में तुम्हें कोई कठिनाई न होगी, अब उनकी वह महिमा नहीं रही जो उनके पुराने उपासकों ने गाई है। अब तो यह डर है कि तुम कहीं उस बालुकामय मैदान में झुलस न जाओ। कानपुर में प्रणयिनी के घर तक पहुँचने में भी तुमको बहुत कठिनाइयाँ झेलनी पड़ेंगी। कलयुगी कारख़ानों के धुँए से बच कर जाना। सड़क से न जाना। वहाँ मोटरों की दुर्गन्धि से तो तुम कदापि न बच सकोगे। गलियाँ फिर ग़नीमत। एक ऐसी ही गली में पहुँचने पर एक अँधेरे कमरे के कोने में पड़ी हुई मेरी प्रणयिनी रो रही होगी। अपने ठंढे वायु से उसके हृदय को शीतल करना, यह पत्र देना, और यह सन्देशा कहना कि बहुत जल्द मैं तुम्हें आकर ले जाऊँगा; या मुन्नू को ही यह सज़ा दूँगा कि वह तुमको रक्षा-पूर्वक मेरे पास तक पहुँचा दे।

तुम्हारा—
राजा

पत्र पढ़ कर मैंने उसे राजा को लौटा दिया। इसके बाद जो कुछ हुआ उसे हमारे रसिक पाठक स्वयं समझ लेंगे। आख्यायिका का अन्त रहस्य-पूर्ण होना चाहिए, अतएव हम अपनी कहानी यहीं समाप्त करते हैं।

कालिदास कपूर

हीरा।



रबन के दो भेद होते हैं। एक हीरा और दूसरा ग्रेफ़ाइट (Graphite) कहलाता है। अपनी अनुपम ज्योति और अद्भुत काठिन्य के कारण हीरा प्राचीन काल से एक बहुमूल्य पदार्थ समझा जाता है। पाश्चात्य देश के साहित्य में हीरे का उल्लेख सबसे पहले मानिलियस (Manilius) ने अपने ग्रन्थ 'ऐस्ट्रोनोमिया' (Astronomia) में किया है। अन्य देशों के निवासियों को हीरे का पता चाहे जब लगा हो, पर भारतवर्ष में इसकी चर्चा बहुत प्राचीन काल से है।

सन् १७७७ तक लोगों की यह धारणा थी कि हीरा एक प्रकार का स्फटिक है, जो चट्टानों में पाया जाता है। उसी वर्ष बर्गमन (Bergman) साहब ने फुकनी (Blow-pipe) द्वारा परीक्षा करके बतलाया कि हीरे में बालू का अंश नहीं है, वह एक विचित्र प्रकार की मिट्टी का बना है। परन्तु जब हीरे की दहनशीलता सिद्ध हो गई तब यह बात भ्रान्तिमूलक समझी गई।

हीरे की दहनशीलता प्राचीन काल से ही लोगों को अवगत थी, परन्तु रसायनशास्त्र के पण्डितों का ध्यान इधर आकृष्ट नहीं हुआ। उनके लेखों में बहुत मतभेद पाया जाता है। कङ्कल लिखता है कि होलस्टीन के ड्यूक फ्रेडरिक की आज्ञा से मेरा पिता कुछ हीरों को सोना गलानेवाले भट्ठे में तीस सप्ताह तक जलाता रहा, पर कोई परिवर्त्तन न हुआ। अर्थात् कङ्कल हीरे को एक अदह्यमान पदार्थ मानता था।

न्यूटन ने अपने तर्क से यह निरूपण किया कि हीरा एक दह्यमान वस्तु है। उसने देखा कि हीरे में वर्तनीय संख्या (refractive index) अर्थात् आलोकरश्मि को तिरछी कर देने की क्षमता बहुत अधिक है। यही बात तैल में भी पाई जाती है। तैल अधिक ज्वलनशील पदार्थ है। अतएव न्यूटन ने यह सारांश निकाला कि हीरा भी जलता होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने अपने ग्रन्थ दृक्शास्त्र (optics) की दूसरी पुस्तक में लिखा है "फिरनी, कर्पूर, ज़ैतून के तेल, तीसी के तेल, तारपीन के तेल, अम्बर तथा हीरे की, जो एक जमा हुआ तेलहा पदार्थ है, वर्तनीय संख्या तथा गुरुत्व एक ही अनुपात में हैं।" सन् १६९४-९५ में अवेरेमी और टार्गियोनी ने न्यूटन की कल्पना को परीक्षा द्वारा सिद्ध कर दिया। उन्होंने टस्कनी के ड्यूक, तृतीय कोसमो के कहने पर हीरे को एक बड़े आतशी शीशे के किरणकेन्द्र पर रक्खा। कुछ समय में समूचा हीरा विलुप्त हो गया।

ऐसा सुना गया है कि किसी रासायनिक पण्डित ने प्रथम फ़्रान्सिस को हीरा के गलाने की विधि लिख कर दी थी। उसने उस पत्र में अपना नाम नहीं दिया था। सन् १७७१ में फ्रान्सिस ने ६,००० गल्डन के मूल्य के हीरे और लाल प्रचण्ड अग्नि से दहकती हुई भट्ठी में २४ घंटे तक जलवाया था। लाल तो ज्यों के त्यों मिले, पर हीरों का नामोनिशान तक न रहा। पेरिस एकाडेमी ने सन् १७६६ में हीरे की परीक्षा डार्सेट से करवाई थी। उसका यह फल हुआ था कि खुले पात्र में गरम करने से हीरा उड़ गया, पर जब वह चारों ओर से बन्द वर्तन में गरम किया गया तब कुछ न हुआ। सन् १७७१ मैंक्कर (Macquar) ने देखा कि जिस समय हीरा उड़ता रहता है उस समय वह चारों ओर ज्वाला की लहर से घिरा रहता है। लेवोज़ियर (Lavosier) ने दूसरे सहयोगियों की मदद से, हीरे को काँच के एक ऐसे बर्तन में रक्खा जिसमें पारे के ऊपर हवा एकत्र की गई थी। फिर वह एक आतशी शीशे में रख कर जलाया गया। हीरे के जलने के पश्चात् देखा गया तो काँच के भीतर कार्बोनिक एसिड गैस मिला। यही वस्तु कोयला जलाने से भी मिलती है।

ऊपर बतलाया गया है कि हीरा और कारबन एक ही श्रेणी में हैं। लकड़ी के कोयले को भी लोग उसी श्रेणी के अन्तर्गत मानते हैं। इन सबकी रासायनिक समानता सिद्ध हो गई है। सन् १७९६ में स्मिथसन टेन्नान्ट (Smithson Tennant) ने उपर्युक्त बात की पुष्टि की। उन्होंने कोयले (Charcoal) तथा हीरे को ठीक ठीक समान तोल में लिया, और दोनों को पृथक् पृथक् जलाया। दोनों से जो कार्बन डायक्साइड गैस बने वे भी तोल में बराबर थे। सन् १८०० में मेकेन्ज़ी ने इस पुष्टि को और भी दृढ़ बना दिया। उन्होंने ठीक उसी तोल की ग्रेफ़ाइट लेकर जलाई। उससे भी उतना ही कार्बन डायक्साइड गैस निकला। अतएव हीरा कार्बन की एक जाति सिद्ध हुआ।

डेवी (Davy) ने यह प्रमाणित कर दिया है कि हीरा के जलाने से कुछ भी पानी नहीं बनता। इससे यह फल निकलता है कि हीरे में हद्रजन (Hydrogen) नहीं है अर्थात् हीरा रसायन शास्त्र की दृष्टि से विशुद्ध कोयला है।

योरप में हीरा प्राच्य देश से आया था। इस समय पुर्टियल (Purteal) का हीराक्षेत्र बिलकुल खाली सा हो गया है। यह स्थान प्राचीन काल में गोलकुण्डा की तरह प्रसिद्ध था और यहीं प्रसिद्ध कोहेनूर निकला था। ब्रेज़िल के हीरे के क्षेत्र, संसार में सबसे अधिक विख्यात हैं। इनमें सन् १७२७ से हीरे निकालने का काम प्रारम्भ हुआ था, अब तक वहाँ से ४, ४०० पौण्ड की तोल के मूल्यवान् पत्थर निकाले जा चुके हैं। ट्रान्सवाल में इधर कुछ समय से बहुत हीरे मिलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे हैं। सन् १९०२ में दक्षिण अफ़्रीका से ५४,२७,३६० पौण्ड के मूल्य के हीरे विदेश भेजे गये थे। आज-कल बोर्नियो, युरल सागर, न्यूसाउथ वेल्स, बाहिया (Bahia), केलिफ़ोर्निया, जौर्निया आदि स्थानों में हीरे पाये जाते हैं।

सब प्रकार के हीरों के जलाने से एक प्रकार का अदृश्यमान भस्म अवशिष्ट रह जाता है। नीरङ्ग हीरे में यह भस्म बहुत कम परिमाण में मिलता है। साधारण हीरों से १०० भाग में ·०५ से ·२ भाग तक भस्म निकलता है। इस भस्म का रङ्ग फीका लाल होता है। इसमें कुछ बालू मिली रहती है और लोहे का भी कुछ अंश होता है।

केनन डाइएब्लो (Canon Diablo) में एक उल्कापाषाण (Meteorite) मिला था। इसमें नीरङ्ग हीरे और ग्रेफ़ाइट थीं। इससे यह अनुमान किया गया कि लोहे को अत्यन्त उत्तप्त करने से स्फटिकीकरण (Crystallisation) की रीति से सम्भवतः हीरे निकल सकते हैं। जगत्प्रसिद्ध पण्डित म्वायसाँ (Moissan) ने सन् १८९३ में इसे कार्य्यरूप में परिणत किया। उन्होंने परीक्षा करके लिखा है कि घुले हुए लोहे अथवा चाँदी में निराला कोयला डालने से दबाव के कारण वह हीरा के स्फटिक बन कर निकल आता है। यदि दबाव न रहे तो वही कोयला ग्रेफ़ाइट बन जाता है।

म्वायसाँ ने कृत्रिम हीरा बनाने की विधि बतलाई है। चीनी से प्राप्त कोयला नरम लोहे के एक बेलनाकार बर्तन में ख़ूब कस कर बन्द कर दिया जाता है, और तब उसी लोहे के एक काग से इसे बन्द कर देते हैं। एक घड़िया में २००° ग्राम के लगभग लोहा गलाया जाता है। जब लोहा एकदम गल जाता है तब उसमें पूर्वोक्त बर्तन डाल देते हैं और भट्ठे से उस घड़िया को हटा लेते हैं। पश्चात् वह गला हुआ लोहा यथा-शीघ्र ठंढा किया जाता है। इस कार्य्य के लिए घड़िया गले हुए सीसे में डुबो दी जाती है। लोहे का आयतन पानी की तरह कठिन रूप में बढ़ जाता है। लोहे का बाह्य भाग पहले ठंढा होकर भीतरी भाग पर बड़ा दबाव डालता है, जिससे स्फटिकी-करण द्वारा हीरा बन जाता है। हाइड्रोक्लोरिक एसिड से लोहा गलाकर फिर अन्य रासायनिक प्रक्रियायों से हीरा पृथक् किया जाता है। जितनी शीघ्रता से लोहा ठंढा होता है हीरे में उतना ही अच्छा आकार और पारदर्शकता आती है।

हीरे प्रायः नीरङ्ग और पारदर्शक हुआ करते हैं। वे पीले, भूरे और हरे रङ्ग के भी होते हैं। कदाचित् नीले और काले रङ्ग के भी हीरे मिलते हैं। इसका विशिष्ट गुरुत्व (Specific gravity) ३·५--३·६ है, अर्थात् यह पानी से उतना गुना भारी है। इसकी वर्तनीय संख्या २·४१७ है। इसका विशिष्ट ताप (specific heat.), ·१४६९ है। हीरे में, २४ डीग्री १३ मिनिट से अधिक कोण बनाती हुईं जितनी किरणावलियाँ जाती हैं वे सभी पूर्णरूप से **प्रतिक्षिप्त** हो जाती हैं, इसी से हीरा इतना देदीप्यमान दृष्टिगत होता है। हीरे की विकरण-सामर्थ्य (dispersive power) बहुत अधिक है, इसी कारण इसमें विविध मनोहर रङ्ग दीख पड़ते हैं।

जब हीरे को अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखते हैं तब उसके भीतर काले बादल के रङ्ग के कुछ भाग दिखाई पड़ते हैं। ब्रुस्टर (Brewster) के मतानुसार वे खोखले थे, परन्तु सौर्बी (Sorby) ने सिद्ध किया है कि वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी हीरे के ही अंश हैं, किन्तु उनकी वर्तनीय संख्या न्यून है।

वायु और आक्सजन के प्रवाह में हीरा बड़ी सुगमता से जलता है। प्लेटिनम धातु के पत्तर पर केवल फुकनी के द्वारा ही हीरा सरलता से जलाया जा सकता है। हद्रजन में जलाने से हीरा नहीं उड़ता, ज्यों का त्यों बना रहता है। दो कोयले के बीच हीरा रख कर एक महान् विद्युत्प्रवाह के द्वारा जलाने से वह ग्रेफ़ाइट में परिणत हो जाता है। इस पर बहुधा रासायनिक प्रतिकारकों (chemical regent) के प्रभाव नहीं पड़ते। १००० अंश के ताप पर हीरा और गन्धक रासायनिक रूप से मिल जाते हैं।

हीरा अत्यन्त मूल्यवान् वस्तु है। इनमें नीरङ्ग हीरे सर्वोत्तम होते हैं। नीरङ्ग हीरों में पिट्ट वा रीजेन्ट (Pitt or regent) हीरा सबसे बढ़िया है। इसकी तोल १३६·२५ करात अर्थात् ४३१ ग्रेन है। इसका मूल्य १,२५,००० पौण्ड है। कतिपय रङ्गीन हीरे भी बड़े मूल्यवान् हैं; जैसे, नीला होप हीरा (Hope Diamond) जो तोल में ४$\frac{१}{२}$ करात है। इसका सौन्दर्य्य और प्रभा बड़ी ही विलक्षण है। इसका मूल्य २५,००० पौण्ड है।

निज़ाम हैदराबाद के ख़ज़ाने में एक बहुत प्रसिद्ध हीरा है। लगभग ५०-६० वर्ष पहले इसका पता लगा था। एक बालक इसे खिलौना बना कर खेल रहा था। सिपाही-विद्रोह के समय इसका कुछ अंश नष्ट हो गया। अब यह तोल में २७७ करात है। इसकी एक प्रतिमा ब्रिटिश म्युज़ियम में सुरक्षित है। योरप का सबसे बड़ा हीरा रूस-देश के राजदण्ड में जड़ा हुआ है। यह पीले रङ्ग का है और तोल में १९४$\frac{३}{४}$ करात है। आस्ट्रिया के सम्राट् का पीतवर्ण टस्कन हीरा (Tuscan Diamond) तोल में १३९$\frac{१}{२}$ करात है। जो कोहेनूर भारत सम्राट् के मुकुट को सुशोभित करता है, वह तोल में १८६ करात था। यह भारतवर्ष में निकला था। यह फिर से काटा गया है। अब इसकी तोल १०६ करात है। ब्रेज़िल में २५४$\frac{१}{२}$ करात का हीरा पाया गया है। जो हन्नेस्वर्ग की पुरानी खान में ३०३२ करात का हीरा मिला था। फ़ारस के शाह ने दिल्ली के नादिरशाह से बहुत हीरे ले लिये थे।

रुखटे और छोटे हीरे, जो ज्योति देने के काम में नहीं आते, अँगरेज़ी में बोअर्ट (Boart) कहलाते हैं। ये अन्य कार्य्यों में व्यवहृत होते हैं। हीरे का चूना हीरा तथा कड़े पत्थर काटने में प्रयुक्त होता है। काँच काटने तथा चट्टानों में छेद करने में भी हीरे का व्यवहार होता है।

रामेश्वरप्रसाद गुप्त

कवि-रहस्य।

कुछ समय पहले हमने कवि-रहस्य शीर्षक एक लेख लिखा था। आज हम फिर वही शीर्षक देकर एक लेख लिख रहे हैं। विषय एक होने पर भी इन दोनों लेखों में बड़ी भिन्नता है। वह लेख अनुवादित होकर भी मौलिक था और यह मौलिक होकर भी अनुवादित है। मतलब यह कि पहली बार हमने एक अँगरेज़ी लेख पढ़ कर लेख तैयार किया था और इस समय लेख तैयार करने के लिए हमें अँगरेज़ी का एक लेख पढ़ना पड़ा है। इसके सिवा पहले लेख में विषय हमारा था, पर विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे के थे। इस लेख में विषय तो हमारा नहीं है, पर विचार पर दूसरे का अधिकार नहीं है। मौलिकता का यह रहस्य पाठकों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। सभी लेख एक ही उद्देश से नहीं लिखे जाते। कविताओं का भी यही हाल है। कवियों के हृदय में सभी समय विचारों की तरंगें नहीं उठा करतीं। कुछ कविताएँ तो विचार आने पर लिखी जाती हैं, और कुछ शायद ऐसी भी होती हैं कि उन्हें लिख लेने के बाद कवियों के हृदय में कोई विचार उठता हो।

कवियों के कला-कौशल पर विचार करने पर हमारे चित्त में एक बड़ा सन्देह होता है। वह यह कि संसार में कवियों का अभाव क्यों नहीं होता? स्मरणातीत काल से लेकर आज तक कवि उत्पन्न होते ही जाते हैं। न जाने किस अनन्त भाव-राशि से कविता का उद्गम हुआ है कि उसका स्रोत सूखता ही नहीं। एक बार किसी विद्वान् ने कहा था कि भाई, अब कविता का ज़माना चला गया। यह विज्ञान का युग है। अब कल्पना के स्थान में सत्य ही की चर्चा होगी, कल्पित बातों से लोगों को आनन्द नहीं मिलेगा। परन्तु हम देखते हैं कि विज्ञान की विलक्षण उन्नति होने पर भी कविता का अभाव नहीं हुआ। हम यह स्वीकार करते हैं कि अब मिल्टन और शेक्सपीयर नहीं दिखाई देते। परन्तु उनके स्थान में ब्रीजेज़ और ईट्स तो हैं। हिन्दी में सूर और तुलसीदास नहीं हैं तो क्या गुप्त और उपाध्यायजी की कविताएँ नहीं प्रकाशित होतीं? इसका क्या कारण है? बड़े बड़े कवियों की श्रेष्ठ रचनाएँ विद्यमान हैं, तो भी मनुष्यों की काव्य-पिपासा शान्त क्यों नहीं होती? अनन्त काव्य-सागर से जो पिपासा शान्त न हो सकी वह छोटे कवियों की जलाञ्जलि से कैसे मिट सकती है! तो भी लोग उनको ग्रहण करने के लिए सोत्कण्ठ रहते हैं। यही नहीं, किन्तु गंगाजी की निर्मल धारा को छोड़ कर लोग छोटे छोटे गड़हों के पानी से ही प्यास बुझाने की चेष्टा करते हैं। हम अपने साहित्य-मर्मज्ञ पाठकों से पूछना चाहते हैं कि क्या उन्होंने कभी इस रहस्य का उद्घाटन किया है? हम अपने पाठकों से अधिक विचारशील होने का दावा नहीं रखते, तो भी हमने अपनी समझ के अनुसार इस रहस्य का पता लगाया है। सुनिए।

संसार में सभी तरह के कवि होते हैं। कुछ महाकवि होते हैं, और अधिकांश क्षुद्र कवि होते हैं। कविताएँ अच्छी भी होती हैं और बुरी भी। परन्तु कविता अच्छी हो अथवा बुरी, वह कविता ही रहेगी। इसी प्रकार कवि चाहें सुकवि हो अथवा कुकवि, वह कवि ही रहेगा। कविता की परीक्षा में हमें उसकी इसी विशेषता पर ध्यान देना चाहिए। हिन्दी में महाकवि चन्द से लेकर आज तक सैकड़ों छोटे बड़े कवि हो गये हैं। कुछ अपनी रचना की उत्तमता के कारण अभी तक लब्धप्रतिष्ठ हैं। पर अनेक विस्मृति के गर्त में डूब गये हैं। सम्भव है, अपने जीवन-काल में उन्होंने भी सुख्याति प्राप्त की हो। परन्तु अब कोई उनका नाम तक नहीं लेता, उनकी रचना का आदर होना तो दूर रहा। यह सब होने पर भी हम यह नहीं कह सकते कि वे कवि नहीं थे। कोई वृक्ष वर्षों खड़ा रहता है, कोई चार ही पाँच महीने में नष्ट हो जाता है। परन्तु वृक्ष की श्रेणी में दोनों का स्थान है। अपनी क्षण-भङ्गुरता के कारण वृक्ष वृक्ष की श्रेणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पृथक् नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार हिन्दी के अप्रसिद्ध कवि भी कवियों की पंक्ति से हटाये नहीं जा सकते। यह सम्भव है कि समाज ने उनकी अवहेलना की हो। यह भी सच है कि अपनी अल्प शक्ति के कारण उनकी कविता की दीप-शिखा एक क्षुद्र सीमा से ही अवरुद्ध रही हो। परन्तु समाज की अवहेलना और निरादर पाकर भी कवि अपने स्थान पर बैठा ही रहेगा। यदि वह सचमुच कवि है तो यह सम्भव नहीं कि उसका प्रभाव बिलकुल ही नष्ट हो जाय। जो वृक्ष अपने जीवन-काल में किसी का उपकार नहीं कर सकता वह अपने अस्तित्वमात्र से वन की श्यामता की वृद्धि करता है। नदी के स्रोत में मिट्टी के जो छोटे छोटे कण बहते चले जाते हैं उन पर किसी की दृष्टि नहीं जाती। परन्तु कभी उनसे ही एक ऐसा द्वीप निर्मित हो जाता है जिसे देख कर हम लोग विस्मय-विमुग्ध हो जाते हैं। यही हाल क्षुद्र कवियों की क्षुद्र रचनाओं का है। अज्ञात रूप से साहित्य पर इनका जो प्रभाव चिराङ्कित हो जाता है वह कविता के विकास के लिए श्रेयस्कर है। अस्तु।

हिन्दी की वर्तमान अनुन्नत दशा में भी कवियों का अभाव नहीं है। परन्तु खड़ी बोली की कविताओं की प्रचार-वृद्धि होने से अब यह भी निश्चय करना पड़ता है कि कविता सचमुच है क्या? कविता की इस परीक्षा में अच्छी और बुरी दोनों तरह की कवितायें हैं। रहस्यमयी कविता का स्वरूप पहचान लेना कठिन है। एक बार एक कवि ने यह प्रश्न किया था कि कविता की कसौटी है क्या। परन्तु कसौटी ढूँढ़ने के पहले हमें कविता ही ढूँढ़ लेनी चाहिए। सोने की कसौटी पर सोने की ही परीक्षा हो सकती है, काँच की परीक्षा में सोने की कसौटी काम नहीं देगी। इसी लिए कविता चाहे अच्छी हो अथवा बुरी, सबसे पहले हमें यही देख लेना चाहिए कि वह कविता है कि नहीं।

जो साहित्य-शास्त्र के मर्मज्ञ हैं वे कविता में रस और चमत्कार खोज लेते हैं। जिसमें उन्होंने इसका अभाव देखा उसको उन्होंने कविता की पंक्ति से बाहर किया। परन्तु उन्होंने यह विचार कभी नहीं किया कि कवित्व के सब गुणों से हीन पद्य-रचना अपढ़ लोगों के हृदय में क्यों स्थान पा लेती है। सड़क पर मज़दूर और गवाँर जो पद्य गाते फिरते हैं उनमें न तो रस का परिपाक हुआ है और न अलङ्कार का चमत्कार ही है। उनका कुछ अर्थ भी नहीं। तो भी उनसे उनका हृदय हिल जाता है। यदि लोकप्रियता ही कविता की एक-मात्र कसौटी समझी जाय तो ये ग्रामीण सङ्गीत ही कविता में सबसे ऊँचा स्थान पा जायँ। हमें अब यह देखना चाहिए कि इन ग्रामीण सङ्गीतों से लेकर व्यास और वाल्मीकि के काव्यों तक में भावना की वह कौन समान धारा है जो मूर्ख और विद्वान्, राजा और दरिद्र सभी के हृदय में बह रही है। जो रचना उस भाव को जितनी अच्छी तरह व्यक्त करेगी वह उतनी ही अच्छी कविता कही जायगी।

विद्वानों के शब्द-जाल में पड़ कर हम लोग कविता को रहस्यमयी समझने लगे हैं। जब हमसे यह कहा जाता है कि अमुक रचना कविता है तब हम आँख फाड़ कर उसमें कवित्व ढूँढ़ने लगते हैं और अन्त में हताश होकर कहने लगते हैं कि इसमें ऐसी कौन सी बात है जो हम नहीं जानते। यह कहना ऐसा ही है, अरे यहाँ कैसा सौन्दर्य है, इसे तो हम बरा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर देखते रहते हैं। इसीलिए अब तो असाधारणता ही सौन्दर्य का प्रधान लक्षण समझी जाती है। इसी असाधारणता के लिए कविता में शब्दों का जाल रचा जाता है। अस्पष्ट भाव को स्पष्ट करने के लिए उपमा का प्रयोग नहीं किया जाता, किन्तु उपमा की सार्थकता के लिए तदनुकूल भाव की योजना की जाती है। छन्द और भाषा भाव के लिए नहीं है, किन्तु भाव ही छन्द और भाषा के लिए है। पर हमारी समझ में जिन रचनाओं में ये बातें हैं वे उतने से ही कविता नहीं कही जा सकती हैं। कविता की सच्ची पहचान है कवि का अन्तःकरण। यदि कवि ने अपने अन्तःकरण में किसी सौन्दर्य का दर्शन किया है तो यह सम्भव नहीं कि उसकी रचना में उस सौन्दर्य का आभास न मिले, चाहे उसमें सौन्दर्य का रूप मलिन क्यों न हो। यह सौन्दर्य सर्वत्र व्याप्त है। परन्तु जब हम उस सौन्दर्य का अनुभव न कर अपने मस्तिष्क की उत्तेजना-मात्र से कविता लिखने का प्रयत्न करते हैं तब हमारी रचना उपहासास्पद होगी। सौन्दर्य के अनुभव में कल्पना सहायक-मात्र है, वह स्वयं सौन्दर्य नहीं है। जिसमें कल्पना नहीं है वह तो कविता है ही नहीं। परन्तु जिसमें कल्पना का रूप विकृत है वह भी कविता नहीं है। भाषा का सौष्ठव, अलङ्कारों की शोभा, छन्द का माधुर्य किसी रचना को विस्मयोत्पादक बना सकते हैं, परन्तु मनुष्य उसमें सौन्दर्य का वह रूप नहीं देखेगा जिस के लिए उसका हृदय सतृष्ण है।

विश्व का यह सौन्दर्य अनन्त है, परन्तु है यह सभी को लभ्य। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि यह सर्वदा नवीन ही रूप धारण करता है। यही कारण है कि वाल्मीकि, होमर, दान्ते, कालिदास, सूरदास आदि कवियों ने हमें जिस सौन्दर्य का दर्शन कराया है उसको उपलब्ध करके भी हम सन्तुष्ट नहीं होते। सौन्दर्य का जो रूप उन्होंने दिखलाया है उसी में सौन्दर्य का अन्त नहीं होगया है। मनुष्यों की यह सौन्दर्य-तृष्णा कम नहीं होती। इसी लिए श्रेष्ठ कवियों की श्रेष्ठ रचनाओं से हमारी जो पिपासा दूर नहीं हुई उसे तृप्त करने के लिए जब छोटे कवि अपनी कविताओं का अञ्जलि-दान करते हैं तब हम उन्हें भी सोत्कण्ठ ग्रहण करते हैं।

हमने अभी तक सौन्दर्य का ऐसा वर्णन किया है कि मानो वह कोई पदार्थ हो जिसका अधिक या अल्प अंश कविता में विद्यमान रहता है। सच पूछो तो सौन्दर्य हमारी मानसिक अवस्था का विकास-मात्र है। जो लोग गिरि-निर्झर में सौन्दर्य देखते हैं उन्हें ऐसे भी मनुष्य मिलेंगे जो गिरि-निर्झर में किसी प्रकार का सौन्दर्य नहीं देखते। बात यह है कि जिनकी मानसिक अवस्था जितनी कम उन्नत होगी उनका सौन्दर्य-बोध भी उतना ही सङ्कुचित होगा। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का अनुभव करनेवाला सौन्दर्य का विराट् रूप देखेगा। परन्तु जिसका हृदय उदार नहीं है वह स्वार्थ-साधन में ही सौन्दर्य देखेगा।

अब हम सौन्दर्य-बोध के आधार पर कविता का स्वरूप पहचानने की चेष्टा करते हैं। जो कवि हैं वे या तो बाह्य सौन्दर्य का वर्णन करेंगे या अन्तः सौन्दर्य का। पशु, पक्षी, पहाड़, नदी, अथवा स्नेह, दया, करुणा, ममता, क्रोध, यही कविता के विषय हैं। परन्तु यदि कवि का सौन्दर्य-बोध सङ्कुचित है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उसका वर्णन भी सङ्कुचित होगा और उसका प्रभाव भी क्षुद्र होगा। परन्तु यदि उसने पाठकों को अपने सौन्दर्य-बोध का अनुभव करा दिया तो उसका परिश्रम सार्थक है। भारत-भारती में गुप्तजी ने भारत के अतीत गौरव और वर्तमान दुरवस्था का चित्र खींचा है। इसके पहले उन्होंने अपने हृदय में उसका ज़रूर अनुभव किया होगा। यदि पाठकगण गुप्तजी के अन्तर्निहित चित्र का परिचय उनके काव्य में पा सकें तो भारत-भारती की रचना सार्थक होगई। परन्तु यदि पाठकों के हृदय में कोई चित्र उदित नहीं हुआ, केवल क्षणिक उत्तेजना उत्पन्न हुई, तो रचना विफल है। रामचरितमानस में तुलसीदास ने अपने भक्ति-भाव को चित्रित किया है। यदि पाठक उनके भाव में लीन होगये तो रामचरितमानस का उद्देश्य पूर्ण होगया। परन्तु यदि उससे उनका मनोविनोद ही हुआ तो रामचरितमानस का गौरव घट गया। कवि की भावना को यदि हम हृदयङ्गम कर सकें तो उसकी रचना सफल होगई। इस दृष्टि से अच्छी कविता वह है जो शुद्ध भावना उत्पन्न करे और बुरी कविता वह जो बुरी भावना उत्पन्न करे। परन्तु जिससे भावना उत्पन्न ही न हो वह कविता नहीं, शब्द-जाल है।

यदि कवि ने अपने हृदय में सौन्दर्य का शुद्ध रूप देखा हो तो वह अपनी रचना को श्रेयस्कर बना सकता है। यदि उसके हृदय में सौन्दर्य की मलिन छाया है तो उसकी रचना से ग्लानि होगी। परन्तु जिसकी रचना में सौन्दर्य ही नहीं है वह सदैव अनिष्टकर रहेगा। उसकी रचना में मनुष्य का सौन्दर्य-बोध नष्ट हो सकता है और चित्त विक्षिप्त हो सकता है। ऐसी रचना सदैव असह्य होती है। ग्रामीण सङ्गीतों में क्षुद्र सौन्दर्य की अस्पष्ट छाया रहती है, तो भी वही उनके हृदय में भावना की तरङ्ग उठा देती है। परन्तु रस की मृग-तृष्णा उत्पन्न करनेवाली रचना पाठक को साहित्य की मरु-भूमि में व्याकुल और विक्षिप्त कर डालती है। ऐसी रचनाओं से अरुचि फैलने के कारण साहित्य का अपकार ही होता है। ख़ैर।

अब हम कविता के बाह्य रूप का भी रहस्य बतलाते हैं। आज-कल जो काव्य प्रकाशित होते हैं उनमें एक भूमिका की बड़ी ज़रूरत रहती है, कभी कभी फुटनोट भी दे देने की ज़रूरत पड़ जाती है। पहले समय के कवि श्लेषात्मक कविताओं की रचना किया करते थे। श्रीहर्ष के समान उनका भी शायद यही ख़याल था कि जिन्होंने गुरु के चरण-कमलों की अच्छी सेवा नहीं की वे उनकी कविता का रसास्वादन न कर सकें। हठपूर्वक कविता का मर्म समझने का दम्भ करनेवालों के लिए उन लोगों ने अपनी रचनाओं में गाँठें उलझा दी थीं। आधुनिक कवि भी गाँठें उलझाया करते हैं। शब्दों के उलझन को तो कोई कोई दयापूर्वक फुटनोट के द्वारा सुलझा देने की कृपा करते हैं। परन्तु भाव के उलझन को वे ज्यों का त्यों रख छोड़ते हैं। इसी में समालोचकों की परीक्षा हो जाती है। कोई समालोचक उन्हें विकृत मस्तिष्क का विकार-मात्र समझ कर छोड़ देता है तो कोई उनके अन्तस्तल में निहित रत्न-राशि का दर्शन करता है।

प्राचीन कवि अपने काव्य के आरम्भ में, भूमिका के रूप में, अपना वक्तव्य सुना देते थे। उनका वह वक्तव्य पद्यात्मक ही होता था। अब भूमिका गद्यात्मक होती है और यथासंभव उसे कवि का कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचित व्यक्ति ही लिखता है। सचमुच अब कवियों के लिए अपनी काव्य की भूमिका लिखना बड़ा कठिन है। यदि वे अपने काव्य की तारीफ़ करें तो लोगों की श्रद्धा उन पर कम हो जाय और यदि वे कालिदास के समान विनम्र होकर अपनी दीनता प्रकट करने लगें तो सम्भव है कि पाठक उनकी बात को सच मान कर उनकी कविता को बिलकुल रद्दी समझ बैठें। इसी समस्या को हल करने के लिए साहित्य-क्षेत्र में भूमिका-लेखक अवतीर्ण हुए हैं। इससे पाठकों को बड़ा लाभ होता है। भूमिका-लेखक की साहित्य-मर्मज्ञता पर मुग्ध हो वे ग्रन्थ को एक बार अवश्य पढ़ते हैं। अधिकांश भूमिकाएँ ग्रन्थ के नाम ही पर लिखी जाती हैं। लेखक कविता का शीर्षक देख कर ही उसका मर्म समझ जाता है। यह सर्वथा उचित है। समुद्र के जल की परीक्षा के लिए समग्र समुद्र का रसास्वादन करना मूर्खता है। उसके एक बिन्दुमात्र से उसकी परीक्षा हो सकती है।

काव्य ग्रन्थों के रूप, रंग में भी अब नवीनता का समावेश होने लगा है। प्राचीन ग्रन्थों के पद्य एक दूसरे से बिलकुल गुथे रहते थे। जान पड़ता है कि तत्कालीन कवियों को कागज़ में जगह छोड़ना असह्य था। अब यह बात नहीं है। प्रत्येक पृष्ठ में काफ़ी जगह छोड़ कर पद्य छापे जाते हैं। किन्तु इस शून्यता से विचार-शून्यता नहीं स्पष्ट होती है।

यहीं हम कवि-रहस्य को समाप्त करते हैं। हम जान बूझ कर कवि के मानस-सर के अन्तस्तल तक पहुँचने की चेष्टा नहीं करते। हमारा विश्वास है कि चतुर सज्जन सरोवर के किनारे से जल ग्रहण कर अपनी आत्मा को शीतल करते हैं। वे जल के भीतर गोता नहीं लगाते। कम से कम हम तो ऐसा ही करते हैं। हमने देखा है कि जो लोग गोता मार कर सरोवर के तल तक पहुँच जाते हैं वे वहाँ से मोती निकाल कर नहीं लाते, कीचड़ ही थोड़ा बहुत उठा लाते हैं। सरोवर के अन्तस्तल को ज़्यादा हिलोड़ने से पानी गँदला ही होता है। इन्हीं सब विचारों से प्रेरित होकर हम कवियों के मानस-सर के अन्तस्तल को नहीं हिलोड़ते। हमें आशा है कि काव्य-रसिक पाठक इसके लिए हमारी उचित प्रशंसा करेंगे।

मौजी

साहित्य-सुमन।

"उच्छ्वास"*

(१)

मैं छोटा था, बहुत छोटा। चकराता पहाड़! सामने छोटा मोटा मैदान, बाईं ओर बस्ती, दाहनी ओर बड़ा भारी खड्ड—रात में कभी कभी उसमें सिंह दहाड़ता था। अँधियाला आया, लोग कुंडी देकर भीतर सो गये। रात में बरफ़ गिरी, दरवाज़ा तोप दिया। सवेरे उठ कर देखा—पाला! नन्हा सा आँगन आईना हो रहा है। गायवाला खूँटा बंभोला बना बैठा है। ऐसे दिनों में मैंने हिन्दी पढ़ना आरम्भ किया। गोस्वामीजी ने रामचन्द्रजी की राह जताई।

* उच्छ्वास (सावन भादों)—लेखक, श्रीसुमित्रानन्दनजी पन्त। पृष्ठ संख्या १५, मूल्य ।।।) है। पता—हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन चढ़ा। सूर्यदेव ने सोना बरसा दिया। फावड़ों से काट काट कर जवांमर्द जमादारों ने बर्फ़ खड्ड में फेंक दी। दरवाज़ा खुला। यह क्या ?—वङ्गवासी ! नन्हें से दालान में एक लम्बी हिन्दी की चादर बिछ गई। हम लोटने लगे। भाई वाह ! क्या मज़ा है ? टेसूराम ! चिरञ्जीव रहो। पंचानन्दजी ! तुम्हारे चार चुटैया और हों। और समाचार ? क्या बला है ? दो सतरों में पढ़ते हैं कि यूनानियों ने फ़लानी लड़ाई जीत ली—इतने यूनानी मरे और इतने तुर्क—और दस सतरों में देखते हैं कि जोड़ाबागान के फ़लाने गाड़ीवाले से फ़लाने गाड़ीवाले की कैसी ठनी, क्या क्या फ़व्वारे छूटे, कैसा गुत्थमगुत्था हुआ। और पत्रप्रेरकों को उत्तर ? धन्य धन्य ! गागर में सागर ! बड़े बड़े मिनिस्टर आवें, मात हो जायँ। कई बरस बाद मालूम हुआ, यह सब जादू किसके बाएँ हाथ का खेल था। बालमुकुन्द गुप्त ! जिस लोक में तुम हो, नये नये आनन्द उड़ाओ। बड़े बड़े लड्डू पेड़े पाओ। दो ब्राह्मण--सन्तानों का रोआँ रोआँ तुम्हें यह अनन्तकाल के लिए आशीर्वाद दे चुका है। इस बुढ़ौती में हम तुम्हारी कैसी ही समालोचना करें, पर तुम्हारे लिए सरस्वती की बटुई विधाता का बड़ा बटुआ ही हो जाय, और तुम उसे जेब में रख के चल दो।

(२)

पहाड़ छूट गया। अँगरेज़ी माथे पड़ी और संस्कृत। अब फ़ुरसत कहाँ ? परन्तु गोस्वामीजी तो अन्त तक साथ देंहीगे। अरे ! यह क्या ? स्वयं सरस्वती ? कैसी छटा छागई ? आज हिन्दी का मुँह उजला हो गया। इन दर्शनों का किसे ध्यान था ? आह ! ध्यान देकर सुनो, यह क्या गूँज रहा है ? "स्वस्ति हो, स्वस्ति हो, यह गद्य का युग है।" थोड़े दिनों में घर घर इस मन्त्र का उच्चारण होने लगा।

× × ×

सब बैठे हैं। सभा होनेवाली है। कन्नौज नगर है। एकाएक सनसनी फैली। द्विवेदीजी कविता पढ़ेंगे। ऐं ! वह सिद्धहस्त, वह सम्पादकसिंह, वह खड़ी बोली को खड़ा करनेवाला महात्मा ! हम उनसे डाह करते थे। उन्होंने खड़ी बोली के मारे नाक में दम कर दिया, लोगों को सन्देह होने लगा कि ब्रजभाषा की कहीं हत्या ही न हो जाय। परन्तु महावीरप्रसाद द्विवेदी ! किस कान्यकुब्ज का हृदय न फूल उठेगा ? किस हिन्दू की छाती न चौड़ी हो जायगी ? सभापति थे कोई बीस बिस्वा के गोबरगणेश ! द्विवेदीजी आगे आये। कविता पढ़ी गई। आहा ! यह क्या ? इसका हमें स्वप्न भी न था। द्विवेदीजी, जाओ। दूसरी बेर तुम्हारा दर्शन हो या न हो। तुम्हारी कविता की कभी समालोचना हो या न हो। परन्तु खड़ी बोली को हम आज से कुछ नहीं कहेंगे। तुम्हारी जय हो !

(३)

समय बदलता है। ईसा की बीसवीं सदी संसार में आ चुकी थी। वह नित्य नये नये खेल खेलने लगी। वाटरलू का जन्म-दिन भी न आने पाया, योरप में महाभारत धधक उठा। चिनगारियाँ बुझी नहीं, शान्त महासागर पर भी शान्तिपाठ बैठ गये। भारत भी उसी नवयौवना के चक्र में चढ़ गया। आह ! कहीं से करुणा की एक साँस ! यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या ? एक सुन्दर पुस्तिका सामने आई—नाम "उच्छ्‌वास ।"

× × × ×

हिन्दी की ओर देखो, आज कहाँ है ? स्वामी दयानन्द का जन्म हुए सौ वर्ष होने आये। दो सौ वर्ष हुए क्या हो रहा था—नागरीदास का विवाह, उनकी पहली मनोरथों की मञ्जरी ! वह रूपनागढ़ी घराना—सुन्दर कुँवर, छत्र कुँवर, बनी ठनी—ढूँढ़ो, व्रज में आज भी मिलेगा। पर इन दो सौ वर्षों ने क्या किया ? देव की देवात्मा को कोठरी में बन्द रक्खा, देश देश में घुमाया पर ताला न खोला, पद्माकर के प्रचण्ड प्राणों को थाली का बैंगन बना डाला। आह ! कुछ मत पूँछो ? इन दोनों सदियों की कविता भी अपने अपने रंग में मस्त है। आओ, दबे पैरों आओ। सौ सौ बरस की उत्कण्ठाएँ, सौ सौ बरस की वेदनाएँ, कल्पनाएँ—कन्नौज की ऊँची नीची गलियों की तरह—पड़ी हुई हैं, पर सब खँडहर हैं खँडहर ! आहट न हो। तुम किस स्थान पर चल रहे हो ? आलमगीर की मृत्यु के बाद से यह भारत की आत्मा है। यह कैसे कैसे फड़फड़ाई, तड़पड़ाई—यह क्या कोई गद्य में कह सकता है ? कोई डेढ़ सौ बरस बाद सरस्वती ने सुना। हरिश्चन्द्र और प्रतापनारायण गुलाबों की तरह तीन तीन दिन फूल गये। आज वह खिल रहे हैं, खेल रहे हैं, नन्दन-वन में। पर उनकी महक, उनका महत्त्व—क्या किसी अंश में यहाँ कम रह गया ? उन्हें जो करना था कर गये। जो जीवन फूँकना था फूँक गये। हवा बदलनी थी बदल गये। कौन कृतघ्न कहेगा कि कराल काल के मारे वे कृतकार्य नहीं हुए ? संसार से भारत की भेंट न करा दी ? बीसवीं सदी का रास्ता न खोल दिया ?

(४)

उच्छ्‌वास !—इसे अपनाओ। स्वर में प्राणायाम है। "छपी सी, पी-सी, मृदु मुसकान"—ओफ़, यह इसमें कैसी ? उत्तर उसी में है—सावन में मन्द मन्द, भादों में मर्म-भेदी। तत्त्व उसी में है।

अश्रुओं में रहता है हास
हास में अश्रुकणों का भास।
श्वास में छिपा हुआ उच्छ्वास
और उच्छ्वासों में ही श्वास !

इधर जल, उधर थल, झड़ी लगी हुई है, बबूले उठ रहे हैं, गगन की धाराएँ दिव्य दाराएँ बन बन सविता और समीर के सहारे नई नई कलाएँ दिखा रही हैं। यही सावन-भादों इस दिल्ली के महल में पैठ कर बैठने को मिलता है। सावन में झिमिक झिमिक, बुन्दन को दुन्द, हरियर भूमि कुसुम्भी चोला, हृदय हिंडोले सा डोलता है, संसार स्नेहमय, संयोगमय है। भादों में मूसलाधार हाहाकार, झनझनाता हुआ अंधकार, बरसै मघा झकोर झकोरी, "पुरवा लाग भूमि जल पूरी। आक जवास भई हौं झूरी" "कहो कुसुम्भी सारी रँगावाँ कहो तो भगवा भेस" वसुधा विषाद-मय, वियोगमय है, स्नेह की ज्योति पर अकरुण आघात हो जाता है। सावन में सुवर्णमयी सुखमा, प्रकृति का "चकाचक चित्र", स्वर्गीय प्रकाश, वह मीठा मीठा दुख जो सच्चे सुखियों की पहचान है, वह मोदभरी अँखियाँ भरि लीनी—भादों में वह गंभीर गरज, वह हंस की नाईं उड़ान, वह भूगर्भ-भेदी वज्रपात, वह दुःखमयी उमड़ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभाड़ जो सच्चे दुखियों का जीवन प्राण है। इन्हीं दोनों डोरियों पर यह खंड-काव्य झूल रहा है, इन्हीं दोनों खंडों से वह पावस का प्रासाद खड़ा किये हुए है। उससे देखिए—प्रकृति कैसी है, पुरुष कैसा है—झलक आ ही जाती है। दामिनी दमक ही जाती है। अनुमान तड़प ही जाता है।

सुनिए, इस सुनहले सावन का कुछ चमत्कार!

पावस ऋतु थी पर्वत-प्रदेश
पल पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।
मेखलाकार पर्वत-अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़।
अवलोक रहा है बारबार
नीचे जल में निज महाकार।
—जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण सा फैला है विशाल!

गिरि का गौरव गाकर झर झर
मद से नस नस उत्तेजित कर।
मोती की लड़ियों से सुन्दर
झरते हैं झाग भरे निर्झर।
गिरिवर के उर से उठ उठ कर
उच्चाकांक्षाओं से तरुवर।
हैं झाँक रहे नीरव-नभ पर
अनिमेष, अटल, कुछ चिन्ता पर!

—उड़ गया अचानक लो भूधर
फड़का अपार पारद के पर!
रव शेष रह गये हैं निर्झर!
है टूट पड़ा भू पर अम्बर!
धँस गये धरा में सभय शाल!
उठ रहा धुँआ, जल गया ताल!
—यों जलदयान में विचर विचर
था इन्द्र खेलता इन्द्रजाल!

(वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल घर)

कल्पतरु में उपमा है "रसवन्त कवित्तन को रस ज्यों अखरान के ऊपर ह्वै छलकै"। सारी धरा के भूधर-राट् के इस वर्णन में अक्षर अक्षर अपने स्थान में अनिमेष खड़ा हुआ है—टस से मस नहीं हो सकता! यह किस जादू के ज़ोर से, किस मन्त्र-बल से? इस पहाड़ी कवि की प्रतिभा और प्रकृति-प्रेम—इन्हीं ही ने उसके हृदय पर कुछ फूँक मार दी है, इन्द्रजाल उछाल दिया है। आह! परन्तु आधा जादू! आपके सामने नहीं है। उन चमचमाती चोटियों की राशि से इस एक महाशिखर को इस लेख के लिए उखाड़ लेने से वहीं बिखर गया है। संजीवनी इस द्रोणाचल में भी है, परन्तु इस खंड-काव्य के दूसरे भी शिखर हृदय को हरा भरा कर देंगे, चूर्ण चूर्ण पिये हुए प्राणों को आत्मदान की जड़ी से कच की तरह पुनर्जन्म दे देंगे।

कवि का सन्देश, कवि का उद्देश्य क्या है? आरम्भ की सत्रह सतरें इसी से अनोखी जगमगा रही हैं। यह कवि का पहला प्रकाश है। सरस्वती-प्रवेश की चकाचौंध है। झौंर झौंर की झपक है। 'उसास समीर' की उस संभव-असंभव आठों याम की विरह-विहारी प्रकृति के सौन्दर्य का कितना 'सरल और अस्फुट' उठान है! ग्रंथ की कथा, ग्रन्थ के विषय, किस मुरली की माया में पड़ गये हैं? बाँसुरी के छिद्र से क्या क्या स्वर बह रहे हैं! यह किस रास का रस है, किस तारे की तान है! इस देश का वह अलबेला बालापन जो दूसरे देशों के अनुभव से बाहर है, जो हिन्दू-जाति की, हिन्दू जल-वायु की, हिन्दू अन्न आकाश की कन्यकाओं ही के ललित ललाट में है, जो 'सभ्य' संसार के कुछ सज्जन सुझाते हैं भारत के भाग्य ही में नहीं है—भारतीय स्नेह का वह अठखेलियोंवाला उल्लास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुरली के से सुरसीले
हैं इसके छिद्र सुरीले ।
अगणित होने पर भी तो
तारों से हैं चमकीले ॥
अचल हो उठते हैं चञ्चल......

आदि, उसी स्नेह का वह गूढ़ हुलास, वह वज्र विश्वास—वह संस्कार-रहित सन्देह जो अदेह है, जो बेचारे विधना के दुलारे अनङ्ग के लिए आज भी भोला के भाल की ज्वाला है, विरह के विहारी को, चीरों के चोर को, नङ्गे पैर बुलानेवाला पञ्चाली का चीर है—यह सब इस बाल-बादल के विचरनेवालों को हस्तामलक होता है। भादोंवाली घटाटोप की गड़गड़ाती गरगराहट में दीप के बचे विकास से भी जिन जिन गम्भीर भावों के कभी गूढ़ अनमोल दर्शन होते हैं, स्नेहभरे दीप की बची खुची दशा की टिमटिमी में भी जो जो प्रकट हो जाता है, वह प्रौढ़ता का विकाश, आगे का अन्त-र्नयन प्रकाश मानों सामने आता है। आह! इस बदरौला की बलि का चखने चखानेवाला क्या वृन्दावन के द्रावापुंज ही में दुरा हुआ है ? नहीं, वह हृदय हृदय में है।

कवि ने प्रकृति का क्या परिचय दिया है, प्रभाव प्रकट किया है ? देखो, वहाँ इन्द्रजाल ही नहीं, चम-त्कार ही नहीं, प्रेम का पुरस्कार ही नहीं, पाप का परिहार ही नहीं है। उसकी दृष्टि करुणा के कटोरे के कटोरे पी गई है। ढाल सा शशि खड्ग हो गया है द्यावापृथिवी का दुःख आँखों में समा गया है।

नहीं चल सकते गिरिवर राह
न रुक सकता है सौरभवाह ।
तरल हो उठता उदधि अथाह
सूर का दुख देता है दाह ।

क्यों ? करुणाकर ने रोग का उपचार किया है या नहीं ? उत्तर कवि के पास है। उसकी कविता पढ़नेवालों को उठाती है, लुभाती है, दूर ले जाती है। भाषा को वह भाव से बजाता है। सङ्गीत को उँगलियों पर नचाता है। शब्दों को सूँघ सूँघ कर मन-माना मधु चूसता है।

यह मधुरिमा की पहली धमार है:—

मधुरिमा के मधुमास !
मेरा मधुकर का सा जीवन
कठिन कर्म है, कोमल है मन ।
विपुल मृदुल सुमनों से सुरभित
विकसित है विस्तृत जग-उपवन !
यही हैं मेरे तन मन प्राण
यही हैं ध्यान, यही अभिमान
धूलि की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान !
कुटिल काँटे हैं कहीं कठोर
जटिल तरु जाल हैं किसी ओर ।
सुमन दल चुन चुन कर निशि भोर
खोजना है अजान वह छोर !
—नवल कलिका थी वह...

इन सतरों के लिए 'सरलता ही था उसका मन', यह कहना क्या किसी तरह अत्युक्ति हो सकता है ? कवि की तोल खरी है। वह 'विकच-बचपन' कहता है, असीम अवसित' कहता है।' 'उच्चाकांक्षाओं' कहता है, तो किस ध्वनि के लिए, किस स्वर और अर्थ की समर्थ डमरू-सम्प्रक्ति के लिए, ढूँढ़ो। ऊपर की सतरों में वह 'प्राण' क्यों कहता है, तुक की ओर और ध्यान क्यों नहीं देता, यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। जिस देवता ने केशवाचार्य को काव्य का प्रेत कहा उसने पूरा सत्य नहीं कहा, और समय के फेर से, स्वाद के फेर से, आज-कल वही प्रेत उसके पीछे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत्या सा लगा हुआ है। श्रीहर्ष के आज़माये नुसख़े का काम नहीं है। सिर को आधी रात में भिगो कर किसी को दही पोना नहीं पड़ेगा। यह 'हृदय का सुरभित साँस' है। बीसवीं सदी के विरह का प्रथम उच्छ्वास है। इस इक्कीस वर्ष की आनन्दिनी अवस्था का पहला पलाश है।

कवि से प्रयाग परिचित है। "उच्छ्वास" उसका पहला ग्रन्थ है। उसके शारीरिक स्वर की मधुरिमा उसमें प्रवेश नहीं कर सकती, परन्तु उसका मानसिक स्वर उसमें कूट कूट कर भरा हुआ है। यह गद्य है, लेख है। न इसमें उस कण्ठ का मिठास लाया जा सकता है, न इसमें उस कविता का अनिर्वचनीय आनन्द। उद्देश्य केवल दिग्दर्शन कराना है। जो पुस्तक पढ़ेंगे, उसके वशीकरण का स्वयं अनुभव करेंगे। कवि की लेखनी पावस की ओर झुकी है। तटों का उसे इतना ध्यान नहीं है, कुछ समय होगा शरद् का शशि स्वयं ही दर्शन देगा। इस "उच्छ्वास" के अप्रकाशित आगे के भाग "आँसू" को देखने का भी हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वह अपने टक्कर का एक ही है। कौतूहल को अपूर्वरूप से पूर्ण करता है। कविता की अनूठी झाँकी कराता है। उदधि के गान और गगन के गान में क्या सम्बन्ध है, वे कहाँ तक भिन्न हैं, कहाँ अभिन्न हैं, वे क्या जताते हैं क्या दुराते हैं, यह कोई कैसे कह सकता है? यह काम उस कल्पना ही का है जो हृदय हृदय को देखती है, दिखा सकती है। उस प्रतिभा ही का है जो अन्तरिक्ष की सौदामिनी को पार कर स्वर्ग की सौदामिनी तक पहुँचती है।

सौदामिनी असंख्य पर
जाको अलख विलास।
अमरावती अनन्तसुख
को बरनै को हास?

देवनागरी का साहित्य इस सदी में लोकपालों को लजानेवाला स्वयंवर करेगा, यह हमारा विश्वास है। हिन्दी-दमयन्ती वहीं तक पैङ्ग भरेगी, जहाँ तक श्रीहर्ष ने नैषध में दिखाया है, या आगे भी अग्रसर होगी—इस सदी के भविष्य में है, देवताओं की दया पर है।

शिवाधार पांडे

चारु चयन।

१—फ़ैशन की फाँसी।

(१)

देवर्षि के ब्रह्मर्षि के राजर्षि के हम वंश हैं
जगदीश के हम अंश हैं जग-मानसर के हंस हैं।
सादा अशन सादा वसन सच्चा सदा व्यवहार था
बस एक ही केवल हमारा धर्म पर उपकार था॥

(२)

कौशेय पट वल्कल हमारे अंग के अनुकूल थे
सुखमूल थे, भोजन हमारे दुग्ध घृत फल मूल थे।
था म्लेच्छ से लाञ्छित न भारत शूर था स्वाधीन था
प्राचीन हो दुख-हीन था सम्पन्न होकर पीन था॥

(३)

जब तक हमारा प्रेम गाढ़ा गूढ़ गाढ़े में रहा
तब तक किसी भी मूढ़ ने हमको नहीं नेटिव कहा।
रहते रहे नीरोग हम सादा हमारा भोग था
था योग-बल हममें भरा, अच्छा मिला संयोग था।

(४)

पर सादगी को छोड़ जब हम फ़ैशनेबुल हो गये।
धन-धान्य हमसे खो गये, अविवेक-निशि हम सो गये।
मोटे वसन यदि धारते छोटे गिने जाते नहीं
खोटे जनों के दास बन कर त्रास हम पाते नहीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

कर में छड़ी उर में घड़ी मुँह में चुरट रखने लगे
ऐनक दिये होटल-प्रसादी चाव से चखने लगे।
बाबू रहे साहब बने करने लगे दरबार हम
घर बार तक को वेंच कर बनने लगे सरकार हम ॥

(६)

जो टाट ही पर ठाट से बैठे हुए हैं हाट में
वे आठ के हैं साठ करते रह पुराने पाठ में।
पर साहबाने का लगा जिनके हृदय में रोग है
उपयोग करना कर्ज़ का उनका मनो उपभोग है ॥

(७)

जो सादगी के साथ हैं लक्ष्मी उन्हीं के पास है
व्यापार उनका दास है उनका नहीं उपहास है।
हैं धर्म से, हैं कर्म से, वे साहसी बलवान हैं
मतिमान हैं द्युतिमान हैं धृतिमान हैं गुणवान हैं।

(८)

सादे मनुज हैं व्यग्र क्यों ? खोआ मलाई के लिए
बाबू-हृदय है व्यग्र क्यों ? सिगरट सलाई के लिए।
है सादगी की शुद्धता होती सदा अभ्यंग से
पर साहबी है शुद्धता साबुन लगे जब अंग से ॥

(९)

भूखी पियासी गेहिनी है गेह में व्याकुल पड़ी
पर बाबुओं को साहबी की छटपटी उर है कड़ी।
बिगड़ी न तब तक बात जब तक शीश पर पगड़ी रही
जब तक न सिर पर साहबानी हैट की जकड़ी रही ॥

(१०)

मर्याद से संयुक्त कैसे आपके दादा रहे
सादे न थे केवल सभी विधि आपसे ज़्यादा रहे।
पर आप अलबेले बने चेले बने क्यों अन्य के ?
होता न कैसे क्लेश जब हो वेश में तुम वन्य के ॥

(११)

"मोटा पहिनिए, खाइए झीना" यही सिद्धान्त था—
इस देश का, इससे न भारत श्रान्त या आक्रान्त था।
पर हाय जब से फ़ैशनों की फाँसियाँ लगने लगीं
ख़ासी उदासी दीनता तब से यहाँ जगने लगी ॥

(१२)

था विश्व में विख्यात फ़ैशन का शिरोमणि फ़्रांस ही
अब हिन्द भी उससे पिछड़ कर चाहता रहना नहीं।
पर सोचिए क्या फ़्रांस भी हम सा किसी का दास है ?
फिर क्यों उसी के सम चलें, यह ह्रास या उपहास है ॥

(१३)

फँस कर हमारा देश फ़ैशन में उठाता क्लेश है
अवशेष उसमें वेष है तो भी उसे उपदेश है।
यदि सादगी के स्वाद पर वह शाद फिर करने लगे
भरने लगे भण्डार उसका, दुष्ट-दल डरने लगे ॥

(१४)

क्या कर रहा है देश ! अब करना तुझे क्या चाहिए
हा शोक ! आसुर-वृत्ति पर मरना तुझे क्या चाहिए ?
क्यों सादगी से पूर्ववत् तू चाल अब चलता नहीं ?
नित बढ़ रहा दारिद्र तेरा क्यों तुझे खलता नहीं ?

रामचरित उपाध्याय

२—एक बालिका की अद्भुत शक्ति।

अमरीका के जनेसवाइल नामक स्थान में अन्धों के लिए एक स्कूल है। उसका नाम विसकनसिन स्कूल है। उसमें अन्धों की शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध है। इस समय उसमें एक अत्यन्त ही दयनीय और विचित्र लड़की है। उसकी उम्र १६ वर्ष की है। दो वर्ष हुए वह नेत्र-शक्ति से रहित हो गई थी, साथ ही बहरी भी। इस कारण उस बालिका का जीवन दुःख में बीतने लगा। परन्तु अब वह उतना दुखी नहीं है। देखने और सुनने का काम वह अपनी स्पर्श और घ्राण शक्ति से लेती है। इस बालिका का नाम विलेटा हूगिंस है।

विलेटा हूगिंस न तो जन्म की अन्धी है और न बहरी ही। जब वह १० वर्ष की हुई तब वह सरकारी स्कूल में भरती हुई। वह नेत्र तथा कर्णरोग से सदा पीड़ित रहती थी। उसके रोग-निवारण के सब उपाय किये गये, परन्तु लाभ होने के स्थान में उसकी हालत बिगड़ती ही गई। अन्धी तथा बहरी हो जाने के स्पष्ट लक्षणों को देख कर वह पहले से भी अधिक दुखी रहने लगी। अनेक उपाय किये जाने पर भी जब कोई फल न हुआ तब वह बिलकुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराश हो गई। अपनी उस दीनावस्था के समय वह केवल सीने का काम सीखा करती थी। इस कला में वह निपुण हो गई और अब वह अपने हाथ ही के सिये हुए कपड़े पहनती है।

सन् १९१६ में विलेटा पूर्ण रूप से बहरी हो गई और दूसरे वर्ष उसकी आंखों ने भी जवाब दे दिया। इसके पहले जो थोड़ी बहुत देखने-सुनने की शक्ति थी वह भी जाती रही। उसके शिक्षकों में से एक ने उसको हेलेन केलर की व्यवस्था का आश्रय लेने की सलाह दी। हेलेन केलर का मत है कि यदि बहरा आदमी वक्ता के ओंठ स्पर्श करके उसकी बात जानने का अभ्यास करे तो वह जान सकता है। परन्तु विलेटा ने इस प्रक्रिया को न स्वीकार किया। परन्तु जब उसे वक्ता के सिर पर हाथ रख कर उसकी बात सुनने का अभ्यास कराया गया तब वह बहुत ही शीघ्र अपने प्रयत्न में सफल हो गई। उसकी स्पर्श-शक्ति में इतनी वृद्धि हो गई कि वह वक्ता के बोलने के समय सिर की हड्डियों में जो संचलन होता है उसी से वह उसके कथन का पूरा मतलब समझ लेती है। इस प्रकार उसकी श्रवणेन्द्रिय का अभाव स्पर्श-शक्ति के विकास से बहुत कुछ दूर हो गया। अब किसी के सिर पर ही अपना हाथ रख कर वह नहीं सुन सकती है, किन्तु छाती या गर्दन के पीछे तथा गले में हाथ लगा कर भी वह वक्ता की बात जान लेती है।

विलेटा की केवल स्पर्श-शक्ति में ही वृद्धि नहीं हुई है, किन्तु उसकी घ्राणेन्द्रिय की शक्ति में भी बहुत कुछ उन्नति हुई है। घ्राण-शक्ति से वह आंखों का काम लेती है। वह किसी अपरिचित बाग़ में किसी प्रकार की हिचकिचाहट के बिना वृक्षों के कुञ्ज में घूमती है। और विचित्रता यह कि वह किसी वृक्ष से टकरा नहीं जाती। वह अपनी घ्राण-शक्ति से जान लेती है 'कि उसके सामने वृक्ष है, अतएव कतरा जाती है और आनन्द के साथ अपनी राह टटोले बिना ही घूमती रहती है। परिचित व्यक्ति को वह कई फुट के अन्तर से ही बता देती है। वह भिन्न भिन्न वस्तु के रंग भी अपनी घ्राणशक्ति से जान लेती है।

जब से विलेटा की इन शक्तियों का विकास हुआ है तब से उसके जीवन में भी ख़ासा परिवर्तन हुआ है। अब वह बहुत कुछ प्रसन्न रहती है। जब उसके स्कूल के अध्यक्ष हूपर साहब ने उसे अच्छी तरह जांच कर उसकी इन्द्रियों के अद्भुत विकास की चर्चा लोगों में की तब लोगों को बड़ा कुतूहल हुआ। अनेक लोगों ने उसकी परीक्षा ली और वह अपनी जांच में ठीक ठहरी। एक बार एक परीक्षक स्त्री उसे बाहर सहन में ले गई। वहां उसने उसका मुँह वृक्षों के एक कुञ्ज की ओर कर उसे सीधा चली जाने को कहा। विलेटा बेधड़क चली गई। एक बड़ा भारी वृक्ष उसके सामने आगया। दर्शकों ने समझा कि वह टकराये बिना न बचेगी। जब वृक्ष उससे कोई तीन फ़ुट के अन्तर पर रह गया तब वह उसका चक्कर काट कर आगे बढ़ गई। इसी तरह उस कुञ्ज के दूसरे वृक्षों को बचा बचा कर वह उनके बीच घूमती रही। इसके बाद स्कूल के अध्यक्ष हूपर साहब ने उसके पास दो ऐसी स्त्रियों को भेजा जिनसे वह परिचित थी। जब वे उसके समीप पहुँची तब उसने उन्हें पहचान लिया।

इस परीक्षा के अनन्तर उस परीक्षक महिला ने विलेटा का हाथ अपने सिर के ऊपर रख कर पूछा—कमरे के भीतर हम लोगों के सिवा और कौन है? विलेटा ने कहा—एक बिल्ली है। वह बिल्ली कुछ दूर एक मेज़ के नीचे बैठी थी। इस प्रश्नोत्तर के बाद लोग दूसरी बातें करने लगे। इसी बीच में वह बिल्ली कमरे के बाहर चली गई। किसी ने उसे जाते न देखा था। लोग उसे भूल भी गये थे। परन्तु विलेटा ने उनके बीच में बोल कर कह दिया कि उक्त बिल्ली कमरे से चली गई है। उसकी बात सुन कर जब लोगों ने इधर उधर देखा और बिल्ली को कमरे में न पाया तब वे लोग विलेटा की विलक्षण शक्ति देख कर चकित हो गये। जब आगन्तुक लोग स्कूल से जाने लगे तब हूपर साहब ने उनसे कहा—किसी वस्तु के रंग का नाम बता देने में विलेटा कमाल करती है। और विचित्रता तो यह है कि उसकी यह शक्ति दिन प्रति दिन बढ़ती ही जाती है। इस पर परीक्षक स्त्री ने सफ़ेद रंग का एक फूल लेकर विलेटा की नाक से कुछ दूर रख कर उसके रंग का नाम पूछा। उसने तुरन्त बता दिया। सब दर्शक उसकी अद्भुत शक्ति को देख कर दंग हो गये।

अब विलेटा बहुत प्रसन्न रहती है। पहले वह सीखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अपना मन उतना नहीं देती थी। जो बात उसे बताई जाती है उसको जान लेने की चेष्टा वह खूब करती है।

निस्सन्देह विलेटा की इन शक्तियों के विकास से संसार को बड़ा लाभ हुआ है। इससे यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाती है कि इस संसार में जो बहुसंख्यक बच्चे व्यर्थ ही कष्ट भोगा करते हैं वे सब अपने माता-पिता तथा शिक्षकों की भूलों के कारण। प्रत्येक देश के स्कूलों में ऐसे अनेक विद्यार्थी होते हैं जो मूर्ख समझे जाते हैं और जिनका सुधार करने में उपेक्षा की जाती है। परन्तु जब एक अन्धी और बहरी लड़की का सुधार हो सकता है तब मूर्खों के सुधारने में उतनी कठिनाई की सम्भावना नहीं।*

कृष्णचन्द्र शर्मा

३—तुलसीदास।

(सोरठा)

किया सुधारस-पान, तुलसी तेरे शब्द का।
तेरा निर्मल ज्ञान, है पावन रुचिकर सुखद॥
तुलसी तुझसा भक्त, हुआ न जग में आज तक।
प्रभु-पद में आसक्त, तूने कितने नर किये॥
रामायण इतिहास, तुलसी तेरी कीर्ति है।
सच्चा ज्ञान-विकास, इसने किस किसका किया॥
विनयपत्रिका अङ्ग, तुलसी पद तेरे अमर।
मधुमय भक्ति-प्रसङ्ग, भक्तों के कण्ठस्थ हैं॥
कविता का आगार, तू कवियों के हेतु है।
तुलसी तू भाण्डार, ज्ञान, भक्ति, आदेश का॥
तुलसी तेरी याद, है भारत को गर्व-कर।
तेरा आशीर्वाद, होवे बहु कल्याण-मय॥
तुलसी वह जन धन्य, जो पर-हित-रत नित रहा।
तू आदर्श अनन्य, ऐसे नर-वर हों सदा॥

रामचन्द्र टण्डन

४—हिन्दी में पुस्तक-प्रकाशन।

पुस्तक-प्रणयन कार्य जितना पवित्र और लोक-हितकर है उसकी अपेक्षा पुस्तक-प्रकाशन भी कुछ कम महत्त्व का नहीं है। अपने मस्तिष्क के द्वारा यदि लेखक और कवि लोग ईश्वर की नियामत को लिपि-बद्ध करते हैं तो प्रकाशक उसे सुन्दर टाइप में अच्छे काग़ज़ पर छाप कर जनता के निकट पहुँचाते हैं। यदि लेखक अपने विचारों को जनता के समीप पहुँचाना चाहते हैं तो उन्हें प्रकाशक का सहारा लेना पड़ता है अथवा स्वयं उस कार्य को अपने सिर लेना पड़ता है। यद्यपि लेखन और प्रकाशन दोनों ही कार्य महत्त्व के हैं और एक का दूसरे से बहुत ही घना सम्पर्क है तथा प्रकाशक का कार्य तो सर्वथा लेखकों की ही कृपा पर अवलम्बित है तथापि कुछ कारणों से प्रकाशकों ने ही नम्बर मार लिया है। और इन कारणों में प्रधान है उसका पूँजीपति होना। इस सुभीते की बदौलत कभी कभी वह विज्ञापनों के द्वारा ऐसी पुस्तकें लेने के लिए जनता को मोहित कर लेता है जिनमें सच पूछा जाय तो सार कुछ भी नहीं है। पढ़नेवाले, पुस्तक को पढ़ कर, सोचते हैं कि इसमें ऐसी कोई बात तो हइ नहीं, पर विज्ञापन की इबारत को पढ़ कर वे सोचते हैं कि "इसमें मतलब की बात है तो अवश्य, किन्तु उस पर हमारा ध्यान ही नहीं गया है—यह हमारा ही दोष है।" मतलब यह कि उल्लिखित सुभीते के कारण प्रकाशक अपनी पसन्द की पुस्तकें प्रकाशित करता है और उसकी "पसन्द" है मुनाफ़ा; क्योंकि देश-हित या ऐसे ही किसी पुण्य-कार्य के लिए उसने अपना व्यवसाय आरम्भ नहीं किया है। जिस ढँग की पुस्तकें अधिक बिकती हैं वैसी ही पुस्तकें प्रकाशक छापता है और ज़रूरत देखता है तो अपने नफ़े के लिए वह पेशगी रुपये देकर भी लेखकों से वैसी पुस्तकें लिखवाता है। यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि उच्च विषयों के ग्रन्थों की ओर जनता की तादृश अभिरुचि नहीं होती।

तो जो काम नफ़े के लिए किया गया है वह देश, समाज और धर्म के लिए हितकर ही होगा—यह आवश्यक नहीं। अगर होजाय तो वाहवाह, नहीं तो कुछ मुज़ायका नहीं। अधिकांश प्रकाशकों की यह दृष्टि रहने के कारण बहुधा ऐसे ग्रन्थ या तो अप्रकाशित ही पड़े रहते हैं अथवा लिपि-बद्ध ही नहीं किये जाते जिनसे उल्लिखित कार्य तो सम्पन्न हो सकता है पर जिनकी बिक्री से मुनाफ़े की अधिक आशा नहीं। फलतः ऐसे विचारों के प्रतिपादक ग्रन्थों का

* सङ्कलित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन न होने से देश, समाज और धर्म की उन्नति होने में बाधा पड़ती है। इसलिए आवश्यकता ऐसी प्रकाशन-संस्था की है जो इस कार्य को कर्त्तव्य के लिए करे, नफे के लिए नहीं। हाँ, उद्दिष्ट कार्य करते हुए यदि थोड़ा बहुत मुनाफ़ा हो जाय तो वह त्याज्य नहीं है।

अब प्रश्न यह है कि यदि ऐसी संस्था स्थापित होकर इस कार्य को करना आरम्भ कर दे तो उसे घाटा तो न होगा? इसी कार्य में उसका मूल धन तो विलीन न हो जायगा? इन पंक्तियों के लेखक से एक मारवाड़ी सज्जन ने बड़ी शान के साथ कहा था कि "अमुक समिति बैठ गई, जो कार्य व्यवसाय के लिए नहीं किया गया है वह कहीं सफल हो सकता है? अब उस कार्य को हम व्यवसाय की दृष्टि से करेंगे।" लेकिन विचार करने से मालूम हुआ कि उनकी यह समझ ग़लत थी। व्यवसाय की दृष्टि से अधिक अंशों में बच कर, लोक-हित-दृष्टि से यह कार्य किया जा सकता है और इसमें भरपूर सफलता हो सकती है—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है गुजरात का "सस्तुं साहित्य-वर्द्धक कार्यालय"। यह कार्यालय समाज के हित की दृष्टि से जिस पुस्तक के प्रकाशन की आवश्यकता देखता है उसे किसी योग्य लेखक से, पुरस्कार देकर, लिखवाता है और सुन्दर टाइपों में अच्छे काग़ज़ पर छपा कर प्रकाशित कर देता है। ऐसी पुस्तक का मूल्य, उक्त कार्यालय, लागत से कुछ ही अधिक लेता है, फिर भी वह पुस्तक जनता को बहुत ही थोड़े मूल्य में मिलती है। लोग समझते हैं कि यह पुस्तक हमें मुफ़्त मिल गई। वास्तव में यह कार्य एक प्रकार का दान है और वह भी बहुत उच्च प्रति का।

ऐसी एक संस्था की हिन्दी के लिए भी बड़ी आवश्यकता है। हिन्दी के प्राचीन साहित्य की पुस्तकें बहुत कुछ तो अप्राप्य हो गईं और होती जाती हैं और जो प्राप्य भी हैं वे प्रायः ऐसी सूरत में नहीं कि उनकी सहायता से पढ़नेवाले को उस विषय का यथेष्ट ज्ञान हो जाय। प्राचीन साहित्य की पुस्तकें दो-एक जगह तो ऐसी छपी हैं कि उनके अनेक शब्दों के बीच स्पेस तक नहीं जिससे पढ़नेवाले को अर्थ समझने में नाहक़ माथा-पच्ची करनी पड़ती है। उन पर काम की टीका-टिप्पणी का तो नाम ही नहीं। इसके सिवा कुछ पुस्तकें विश्व-साहित्य में इतनी अच्छी मौजूद हैं कि उनके विचारों से हिन्दी भाषा-भाषियों के परिचित होने की नितान्त आवश्यकता है, पर कोई लेखक इस काम को करने का साहस नहीं कर सकता। क्योंकि उसे आशङ्का रहती है कि यदि वह उस पुस्तक को गाँठ की पूँजी खाकर लिख देगा तो प्रकाशन के लाले पड़ जायँगे। जिस प्रकाशक से कहा जायगा वही पहले तो छापने को राज़ी न होगा और यदि कृपा-पर-वश होकर उसने लेखक को धूर-दच्छना देकर छापना स्वीकार कर लिया तो कस कर पुस्तक के दाम रख देगा। जिससे सर्वसाधारण में उसका प्रचार पीवर-तनु पुरुष की गति की भाँति होगा। इसलिए सस्तुं साहित्य-वर्द्धक कार्यालय के ढँग की कम से कम एक संस्था हिन्दीवालों की भी हो जाय तो बड़ा काम हो। वह संस्था ऐसे लिक्खाड़ों से पुस्तकें लिखाने की उलझन में न पड़े जिनकी धाक हिन्दी की दुनिया में जम गई हो; क्योंकि ऐसे लेखकों को उच्च श्रेणी का पुरस्कार देने में ही उसका दिवाला निकल जाने की सम्भावना है। वह तो योग्य लेखकों से अपना चौकस काम करा ले, अपनी पुस्तक को अपने ही प्रेस में छपावे और आप ही बेचे जिससे कि पुस्तक की लागत कम हो, बीचवाले दलाल मुनाफ़ा न खा जायँ और इस तरह पुस्तक का मूल्य स्वल्प हो जाय। यदि धुरन्धर लेखकजी से पुस्तक लिखाई गई, "विद्याओं के महोदधि" बड़े अभिज्ञ सम्पादकजी से उसका सम्पादन कराया गया और नामी ग्रामी प्रेस में छपा कर, विज्ञापनों के द्वारा, उसकी सूचना जनता को दी गई तब तो हो चुका सुलभ मूल्य में प्रकाशन। इसलिए यह काम तभी हो सकता है जब ऐसी संस्था में दो एक व्यक्ति भिक्षु अखण्डानन्द जैसे संसार-त्यागी संन्यासी कार्यकर्ता हों और जिनके जीवन का उद्देश यशोलिप्सा, धनोपार्जन अथवा और किसी श्रेणी का स्वार्थ न हो। संसार का उपकार ही उनका स्वार्थ-साधन होना चाहिए। हाँ, यदि कोई बिना ही सिर मुँड़ाये और काषाय वस्त्र धारण किये बिना ही निःस्वार्थ भाव से यह काम कर सकें तो कोई हानि नहीं। असल बात है, उद्देश-सिद्धि।

प्रोफ़ेसर आर० जड़ी-बूटिया कहते हैं कि हिन्दी को ऐसी नई संस्था की आवश्यकता नहीं। उन्होंने (१) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की सुलभ साहित्य-माला, (२) कलकत्ते की अकाल-काल-कवलित साहित्य-संवर्द्धिनी-समिति, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) जबलपुर के राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर को इस काम के लिए उपयुक्त कहा। लेकिन सम्मेलन की सुलभ-साहित्य-माला के पास ओछी पूँजी है, इस कारण वह उतने ही पैर फैला सकती है जितनी कि उसके पास चादर है। इसके सिवा सम्मेलन के हाथ में काम भी थोड़े नहीं। वह किस किस तरफ़ ध्यान दे। फिर उसे एक विशेष उद्देश के भीतर रह कर काम करना है। उसने अपनी 'माला' की कुछ पुस्तकों का मूल्य सुलभ सचमुच रक्खा था, किन्तु इधर उसकी भी तबीअत मचलती देख पड़ती है। ईश्वर करे, वह व्यवसाय-क्षेत्र से बच कर ही अपने कार्य को पवित्र रहने दे। यदि वह भी व्यवसायी बन गया तो उसकी विशेषता लुप्त हो जायगी। रह गई दूसरी संस्था सो वह नाम-शेष है। लेकिन उस थोड़ी सी उम्र में ही उसने जो कुछ काम किया, बहुत अच्छा किया और अगर उसकी ज़िन्दगी बरकरार रहती तो उससे बहुत कुछ आशा थी। उसके द्वारा प्रकाशित सुलभ पुस्तकों के नवीन संस्करण छाप कर अब एक और दूकान लाभान्वित हो रही है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस दूकान ने उन पुस्तकों का मूल्य मन-माना रक्खा है। अब नम्बर आया राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर का। इसका नाम सचमुच बड़ा मोहक है। और इसके उद्देश को देखने से प्रबल आशा हुई थी कि इसके द्वारा राष्ट्र-भाषा हिन्दी को बड़ा भारी लाभ होगा। यह मन्दिर वह काम कर दिखावेगा जो शायद सस्तुं साहित्य-वर्द्धक कार्यालय की कार्यावली को अतिक्रम कर जाय। किन्तु मन्दिर जब उद्देश के साथ साथ कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ, जब उसने पुस्तकें प्रकाशित करके अपने उद्देश को कार्यरूप में परिणत किया तब हृदय कम्पित हो गया। यह कैसा कार्य है? जिन पुस्तकों को अन्य व्यवसायी प्रकाशक भी छाप लेते उन्हीं को छाप कर मन्दिर ने कौन सा विशेष उद्देश सिद्ध कर दिया; उसको तो ऐसी उपयुक्त पुस्तकें छापनी चाहिए थीं जिनको प्रकाशित करने की अन्य व्यवसायी प्रकाशकों को हिम्मत न होती थी। जो ढर्रा चला आ रहा है, उसी को और भी चलानेवाले तो बहुतेरे हैं। यदि यह कहा जाय कि मन्दिर ने स्वल्पमूल्य पर पुस्तकें बेचने का निश्चय किया है तो भी उसका महत्त्व उतना अधिक नहीं ठहरता। फिर यह मूल्य स्वल्प ही कहाँ है? यह तो पूँजी के चौपट करने का उद्देश प्रतीत होता है। उसने अपना जो हानि-लाभ का लेखा प्रकाशित किया है उससे पता चलता है कि संवत् १९७७ में मन्दिर द्वारा प्रकाशित "रवीन्द्र-दर्शन" और "कालिदास" नामक दो पुस्तकों के प्रकाशन में उसे ३०८॥-)। का घाटा हुआ। अर्थात् इन पुस्तकों की कुल प्रतियाँ बिक जाने पर बिक्री खाते जो रक़म जमा होगी वह इनकी लागत, छपाई, बँधाई, काग़ज़ आदि के ख़र्च से ३०८॥-)। कम होगी। स्मरण रखने योग्य बात यह है कि इसमें सम्पादकों का वेतन और दफ़्तर का ख़र्च शामिल नहीं है। यदि वह भी जोड़ दिया जाय तो घाटे की रक़म होगी ३८९१ रुपये ग्यारह आने। यदि यह मान लिया जाय कि उल्लिखित पुस्तकों के सिवा संवत् १९७७ में अन्य पुस्तकों का भी सम्पादन किया गया है इसलिए ३५८३-)॥। इसमें न जोड़ा जाय बल्कि उसका आधा ही जोड़ा जाय तो भी घाटे की रक़म २१००=) से कम नहीं होती। इन पङ्क्तियों का लेखक अर्थशास्त्र का विशेषज्ञ नहीं, इसलिए उसकी समझ में नहीं आता कि इतना घाटा उठाने पर भी पुस्तकों का जो मूल्य रक्खा गया है उसका नाम स्वल्प मूल्य रक्खा जाय या पूँजी का संहार।

हिन्दी-मन्दिर के आरम्भिक कार्य में ही, डेढ़ वर्ष में, कुल टोटा दस हज़ार चार सौ तेंतालीस रुपये तीन आने दस पाई का हुआ। वैसे राष्ट्र-भाषा के हित की दृष्टि से यह घाटा कुछ भी नहीं है। देश-हित के लिए बहुत कुछ त्याग की आवश्यकता हुआ करती है और आरम्भ में कार्य का अनुभव न होने से ऐसा अक्सर हो भी जाता है। माना, यह ठीक है। किन्तु फिर भी यह सूत्र-पात अच्छा नहीं कहा जा सकता। यह तो उस उत्तम मार्ग को और भी कण्टकाकीर्ण बनाना है जिसमें देश के अन्यान्य धनिक उस ओर बढ़ने से हिचकिचाने लगें। जिस प्रकार देश के धनवानों ने द्रव्य दान करके राष्ट्र-भाषा के हित के लिए इस संस्था को खड़ा किया है उसी प्रकार अब हिन्दी के लेखकों का भी तो कुछ कर्तव्य है। वे सदा से अर्थकृच्छ्रता का कष्ट उठा कर हिन्दी की, बहुत कुछ, निःस्वार्थ सेवा करते आये हैं। इसके लिए उनका स्मरण सदा आदर के साथ किया जायगा। अब फिर उसी वृत्ति का परिचय देकर उन्हें इस संस्था की जड़ जमा देनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। यह कोई नहीं कहता कि पुजारीजी कुछ भी मेवा-मिष्टान्न न लेकर मन्दिर में पूजा करते रहें; नहीं, अपने योग-क्षेम के लिए वे प्रसाद लें, और वह भी इतना कि जिससे कभी "भूखे भजन न होय गोपाला" कहने की नौबत न आजाय, लेकिन उन्हें इतना अधिक प्रसाद लेने की भी इच्छा न करनी चाहिए कि फिर मन्दिर के पट ही बन्द करने के अनुष्ठान का आयोजन किया जाय।

लल्लीप्रसाद पाण्डेय

५—स्वर्गीय मन्नन द्विवेदी।

मन्ननजी हमारे बीच अब नहीं रहे। मन्ननजी हमारे थे, वे हमारे साथ उत्पन्न हुए थे, बढ़े थे और पढ़े थे। हम उनको देखते थे और वे हमें। हम उनको पत्र लिखते थे और वे हमें। हम अपने विचार उन्हें पहुँचाते थे और वे अपने विचार हमें। इसी प्रकार वे सदा हमारे बने रहे। पर दुःख है कि अब मन्ननजी से हमारा वह सम्बन्ध नहीं रहा। अब हम उन्हें देख नहीं सकते, उनसे बातें नहीं कर सकते। अब हमारे हृदय में मन्ननजी की कोई वस्तु वर्तमान है तो वह उनकी स्मृति है, वह पवित्र स्मृति वर्तमान है और रहेगी।

मन्ननजी कवि थे, लेखक थे, उपन्यासकार थे, सुधारक थे, तहसीलदार थे। पर मेरी समझ में ये उनकी विशेषता नहीं, ये उनके सहज गुण नहीं। मेरी समझ से मन्ननजी ने भारतवासी होकर जन्म लिया था और उन्होंने अपने इस गुण को रक्षित रखने का सदा प्रयत्न किया। उन पर नौकरी की विकट परिस्थितियाँ आईं, भारतवासी बने रहने से उन्नति रुक जाने का सन्देह उपस्थित हुआ, पर मन्ननजी ने अपने भारतवासी होने को कभी नहीं भुलाया, इसका उन्होंने कभी त्याग नहीं किया। उन्होंने जो कुछ किया वह सब इसका प्रमाण है कि वे भारतवासी थे। भारत की आवश्यकताएँ उनके सामने सदा रहीं, उन्होंने जो कुछ किया भारत को ध्यान में रख कर किया, उन्होंने नौकरी की, आज़ादी बेच दी, पर अपना भारतीयपन नहीं बेचा, यही कारण है कि मन्ननजी को जाननेवाला भारतीय उन्हें अपना समझता है। मन्ननजी के जीवन में उनका यह गुण विकसित हुआ और इनकी मृत्यु के पश्चात् वह व्यापक रूप में हम लोगों के हृदय में स्मृति रूप से अधिष्ठित हुआ। हम मन्नन के लिए शोक करते हैं, क्योंकि इनका गुण अधिक विकसित न हो सका। हमारे तो वे मन्नन जो तब थे वे अब हैं। तब का उनका प्रधान रूप विनाशी था, परिवर्तनशील था, पर अब का उनका रूप अविनाशी है।

चन्द्रशेखर शर्म्मा

६—स्वर्गीय पण्डित विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी (राजापंडा)

पण्डित विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी राजापण्डा के नाम से प्रसिद्ध थे। आपका जन्म संवत् १९२२ मार्गशीर्ष कृष्ण त्रयोदशी बृहस्पतिवार को काशी के भदैनी महल्ले में हुआ था। आपके पिता श्रीदुर्गाप्रसाद पंडाजी बड़े दयालु, मिलनसार, परोपकारी और नम्र पुरुष थे। ये श्रीदुर्गाजी के प्रधान पंडा थे। इन्हें दुर्गामन्दिर से अच्छी आमदनी थी। कुछ कमी न थी। राजसी ठाट बाट था। इन्होंने अपने एकमात्र पुत्र विन्ध्येश्वरीप्रसाद का लालन-पालन बड़ी उदारता से किया। कभी इच्छाविघात न होने दिया। पुत्र ने जो चाहा वही कराया। ऐसे निरङ्कुश लालन-पालन का परिणाम प्रायः अच्छा नहीं होता। लड़के अभिमानी, परनिन्दक, विलासी और नीच-संसर्गी होजाते हैं। किन्तु सौभाग्य से राजापंडा पर इसका प्रभाव नहीं सा पड़ा। आपके प्राक्तन संस्कार अच्छे थे। इससे आपकी रुचि कुपथ पर न जाकर सङ्गीत-कला की ओर झुकी और उसमें आपने अच्छी विज्ञता प्राप्त की।

यद्यपि आपका अनुराग साहित्य पर भी था तथापि सङ्गीत की ओर आपकी विशेष आकृष्टि थी। वीणा और सितार आपको पसन्द थे। आप इसरार, वंशी और मृदङ्ग भी अच्छा बजाते थे। हारमोनियम में मीड़ का पर्दा न रहने पर भी हठात् आप उससे मीड़ निकालते। सुनते हैं, आप गाते भी अच्छा थे।

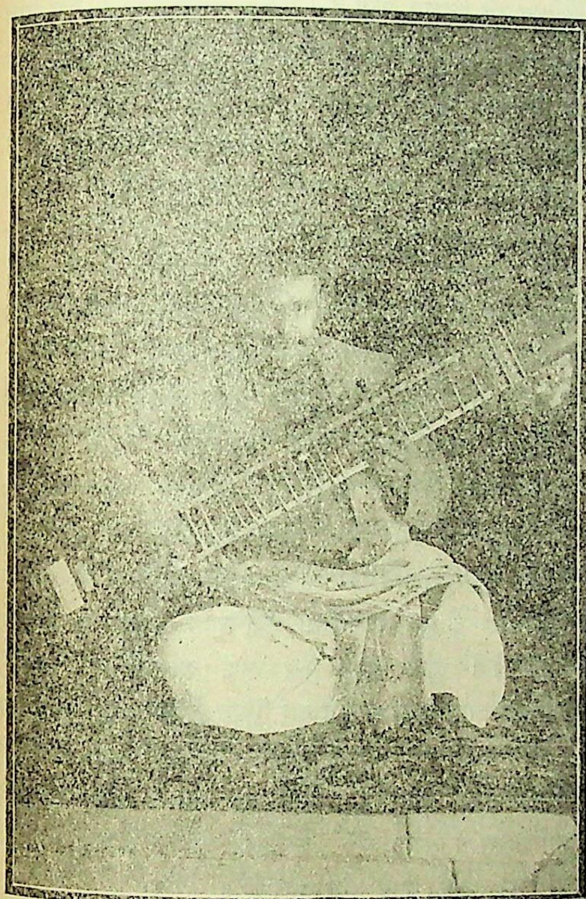
साहित्य में भी आपकी अच्छी गति थी। व्रजभाषा के काव्यों का आपने यथाविधि परिशीलन किया था। रसिक-प्रिया, कवि-प्रिया आप पढ़ाया भी करते थे। आप कविता भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा करते थे । अनेक रसों के कवित्त आपने रचे हैं । आप वर्तमान हिन्दी-साहित्य के भी बड़े प्रेमी और प्रचारक थे ।

इसके अतिरिक्त आप गुणग्राहक भी बड़े थे । किसी सङ्गीत अथवा साहित्य के गुणी की बात आपके कान में पड़ी कि आप उससे मिलने के लिए आतुर हुए । विद्वानों को आप बड़े आदर कीदृष्टि से देखते थे । पंडों की मूर्खता आपको



पण्डित विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी (राजापंडा)

बहुत खलती थी । अपने दत्तक पुत्र श्रीनाथ द्विवेदी को आपने बड़े उत्साह और प्रयत्न से व्याकरण पढ़वाया और काशी की व्याकरण-मध्यमा-परीक्षा दिलवाई ।

आप थोड़ी सी उर्दू और अँगरेज़ी भी जानते थे । आप के पास उर्दू शेरों का ख़ासा संग्रह था ।

दुःख है कि ऐसे गुणी और विद्वान् पुरुष का देहावसान गत श्रावण कृष्ण एकादशी को होगया । आपकी चिर-सङ्गिनी (तीन सौ रुपये की) वीणा आपके इच्छानुसार आपके साथ जला दी गई ।

केशवप्रसाद मिश्र

७—संन्यास ।

(अनुवादित)

वन में मैंने वृक्ष आम का देखा एक महान्
जो मीठे फल, शीतल छाया सबको करता दान—
फल लोभी पथिकों ने उसकी शाखा दी थी तोड़
हृदय देख यह बोलाः—"जग को, उचित यही, दो छोड़" ।
सोने के दो कङ्कण तरुणी ने पहने जिस काल
हुआ ज़रा भी शब्द नहीं, पर कैसा जग का हाल—
मिलन हुआ दोनों का ज्यों ही, हुई एक झंकार
कहा हृदय ने :—"देरी होगी, त्यागो यह संसार" ।
विहग एक जा मिला अन्य दल में, निज दल से दूर
संग्रह की थी उसने मुख में खाद्य वस्तु भरपूर—
टूट पड़े सब उस पर, लेने लगे दीन के प्राण
कहा हृदय ने—"क्यों विलम्ब यह ? जल्दी करो प्रयाण" ।
जाता उच्च ककुद् का उद्धत वृषभ एक बलवान्
होवे कौन अग्रसर उसकी ओर, गँवावे जान ?
किसी धेनु ने चाहा मिलना, पाया शृङ्गाघात
ले तुम्बी, मैंने बस जग को किया शीघ्र प्रणिपात ।

पारसनाथसिंह

८—महाकवि ।

"राधिका माधवै एक ही सेज पै,
　　भाय लै सोई सुभाय सलोने ।
पारै 'महाकवि' कान्ह को मध्य मैं,
　　राधे कह्यो यह बात न होने ।
साँवरी होउँगी साँवरे संग मैं,
　　बावरी तोंहि सिखाई है कोने ।
सोने को रङ्ग कसौटी लगै पै,
　　कसौटी को रङ्ग लगै नहि सोने ॥"

यह पद्य दलपतराय बंशीधर-रचित 'अलङ्कार-रत्नाकर' में लोकोक्ति अलङ्कार के उदाहरण में दिया गया है । 'सुन्दरी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिलक' में भी यह उद्धृत है। 'शिवसिंहसरोज' में पृष्ठ २२७ पर यह छपा है और उसी ग्रन्थ के ४३२ पृष्ठ पर 'महाकवि' का भी उल्लेख है। "मिश्र-बन्धु-विनोद" भाग २ पृष्ठ ७०३ पर 'महाकवि' का परिचय एवं ऊपर दिया हुआ पद्य मुद्रित है। 'महाकवि' का जो हाल 'विनोद' में दिया गया है उसका सारांश यह है कि 'महाकवि' ने १७९२ (संवत्) के लगभग कविता की तथा वे साधारण श्रेणी के कवि थे एवं ऊपर दिया हुआ उनका एक ही पद्य प्राप्त है। इसी पद्य की बदौलत हिन्दी-संसार में 'महाकवि' का स्मरण किया जाता है। उसके विषय की और कोई बात 'शिवसिंह-सरोज' या 'मिश्र-बन्धु-विनोद' में नहीं लिखी है। हिन्दी-संसार में 'महाकवि' की ख्याति इतनी ही है। पूर्वोक्त पद्य के सिवा हमें ऐसे और पाँच पद्य मिले हैं जिनमें 'महाकवि' का नाम आया है। इन पाँच में से दो पद्य 'प्रवीन' कवि-रचित 'सार-संग्रह' नामक ग्रन्थ में हैं। 'सार-संग्रह' ग्रन्थ का रचना-काल 'मिश्र-बन्धु-विनोद' में १६६० (संवत्) दिया गया है। परन्तु इस संग्रह में कविन्द, दूलह, मतिराम, देव तथा दास तक के छन्द संगृहीत हैं तब यह संवत् १६६० का बना कैसे हो सकता है? हमें तो 'सार-संग्रह' का रचना-काल संवत् १८०० के इधर उधर जान पड़ता है। जैसा कि हमने ऊपर लिखा है, हमें 'सार-संग्रह' में 'कविन्द' और 'दूलह' के कई पद्य मिले, पर कविन्द के पिता 'कालिदास' का कोई पद्य न मिला। हमें यह बात कुछ आश्चर्यजनक मालूम हुई। पुत्र और पौत्र से पितामह की ख्याति कम न थी। फिर भी उनको संग्रह में क्यों स्थान नहीं मिला, यह बात हमारी समझ में न आई। उक्त संग्रह में 'कालिदास' की कविता न पाकर हमें उनके ग्रन्थ पढ़ने की इच्छा हुई। 'बारबधूविनोद' नामक कालिदास-रचित एक ग्रन्थ हमारे पुस्तकालय में था। हमने उसको पढ़ना आरम्भ किया। पढ़ने का श्रम वृथा नहीं गया। उक्त ग्रन्थ के पञ्चम प्रभाव में हमें निम्नलिखित पद्य पढ़ने को मिला—

"नैन ही के ये मिलाप 'महाकवि'
ताप गहे मन मध्य मलीनी।
जानी सखी लिखि कागद मैं
दियो चित्र चितै विपरीति नवीनी।
रावरे काज में कौतुक आपनो
जानिकै राधिका आनन्द भीनी।
लीने लपेटि सखी भरि भेटि कै
ओट करोंट चपेट कै दीनी" ॥

कालिदास के ग्रन्थ में 'महाकवि' का नाम देख कर हमने सोचा कि क्या इस ग्रन्थ में कालिदास ने और कवियों के पद्य भी उद्धृत किये हैं। परन्तु समग्र ग्रन्थ के पद्य जाँच डालने पर भी हमको 'कालिदास' और 'महाकवि' नाम के अतिरिक्त और किसी कवि का कोई भी पद्य न मिला। हिन्दी के कवि कालिदास पर विचार करते समय हमारा ध्यान संस्कृत के विश्व-विख्यात कवि कालिदास की ओर गया। 'रघुवंश'महाकाव्य के रचयिता कविवर कालिदास 'महाकवि' कहलाते हैं। क्या हिन्दी के कालिदास ने 'महाकवि' उपनाम से भी रचना करके अपने तादृश संस्कृत नामधारी कवि से पूर्ण समता करने का प्रयत्न तो नहीं किया? यदि वे महाकाव्य लिखने के कारण 'महाकवि' कहलाये तो इन्होंने अपनी कविता में 'कालिदास' और 'महाकवि' दोनों ही नाम डाले। दोनों ही इस प्रकार से 'महाकवि कालिदास' हो गये। इस बात पर हमारा चित्त जम गया कि कालिदास त्रिवेदी ने 'महाकवि' के नाम से भी कविता की होगी। कालिदास के पुत्र उदयनाथ 'कवीन्द्र' के नाम से कविता करते थे। इनके पुत्र और सब कवियों को 'बराती' बना कर आप 'दूलह' (दूलहा) बने थे। जब पुत्र और पौत्र में 'दिखावे' की आदत थी—ऐसी बड़ी बड़ी उपाधियों से अपने को विभूषित करने का आग्रह था—तब यदि कालिदास ने 'महाकवि' के नाम से भी कविता की हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

जब हमने 'बारबधू-विनोद' का कुछ और अंश पढ़ा तब हमारा यह सन्देह कि 'कालिदास' ने 'महाकवि' के नाम से कविता की होगी निश्चय के रूप में परिणत होगया। क्योंकि इस लेख के शीर्षक में जो पद्य उद्धृत हैं और जिसको 'शिवसिंह-सरोज' कार तथा 'मिश्र-बन्धु-विनोद' के रचयिता कालिदास के अतिरिक्त किसी 'महाकवि' का बनाया हुआ मानते हैं वह भी कालिदास के इस ग्रन्थ में मौजूद है। इस पद्य के कुछ पहले तथा बाद का जो अंश ग्रन्थ में है उसको देखते हुए ज़रा भी सन्देह नहीं रह जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उपर्युक्त पद्य इसी ग्रन्थ के लिए विशेष रूप से रचा गया और वह कालिदास ही की रचना है। पाठकों के सुभीते के लिए 'बारवधू-विनोद' का उतना आवश्यक अंश हम यहाँ अविकल उद्धृत करते हैं।

चौपाई।

दूती हौं नन्दलाल तिहारी। तुम प्यारी करि सदा निहारी।
काम हमारे बरने बेदनि। सङ्घट्टन अरु बिरह निवेदन।
यों कहि हरि को किये प्रनाम। ललिता गई धाय के धाम।
त्योंहीं राधा सखिन समेत। औचक आई धाय निकेत।
ललिता लोनी धाम यकन्त। कान्है बिरह निवेदन मन्त।

दोहा—मंत मिलन को तंत कै, ललिता गही अनन्द।
आई ह्यां घर धाय कै, जाय मिलौ नँद-नन्द॥

नँद-नन्द लला पहिलेई करौ जनि काम कला के कलाप अनेकै।
अंग अनूठे उठान के तूठे मनोज के रूठे करौ जनि टेकै।
धाय कै धाम सिधाय कै राधिकै पाय कै कीजिए केलि बिबेकै।
सो छलकै उठि जायगी धाय सोवाय तुम्हें पलका पर एकै।

दोहा—एक भए हरि जाय कै, करि करि जतन अनेक।
धाय हिए हरि लाय कै, लए सैन ही एक॥

'एक ही सेज पै राधिका माधवै धाय लै सोई सुभाय सलोने।
पारै 'महाकवि' कान्ह को मध्य मैं राधे कहै यह बात न होने
ह्वैहौं न सांवरी सांवरे के संग बावरी तोहि सिखाई है कौने
सोने को रंग कसौटी लगै पै कसौटी को रङ्ग लगै नहि सोने॥"

चौपाई।

सोने को कंकन कहुं गिरिगो, यों कहि धाय उठी चितुचिरिगो।
औचक चली धाय उठि धाय, राधा कान्ह गही लपटाय॥

'बारवधू-विनोद'

उपर्युक्त उद्धृत अंश में 'सङ्घट्टन' का जो वर्णन है वह नितान्त सम्बद्ध है। कोई पद्य कहीं ज़बरदस्ती से ठूँसा हुआ नहीं मालूम होता। दूती ने धाय की सहायता से 'सङ्घट्टन' कराया है। कृष्णचन्द्र की ओर से साफ़ इशारा है कि "धाय तुम दोनों को एक स्थान पर करके चली जायगी।" लेख के शीर्षक में उद्धृत पद्य इसी 'इशारे' को प्रकृत रूप से घटित करके दिखलाता है। कालिदास के अन्य पद्यों और इसकी भाषा भी बिलकुल एक है। सो 'महाकवि', कालिदास के सिवा और कोई दूसरा कवि नहीं है। सार-सङ्ग्रहकार ने 'महाकवि' अर्थात् कालिदास के पद्य अपने सङ्ग्रह में रक्खे ही थे, इसलिए उसने इस बात की परवा न की कि कालिदास के वे पद्य भी उद्धृत करें जिनमें स्पष्ट रूप से 'कालिदास' नाम ही आया हो।

अतएव 'महाकवि' असल में कालिदास था दूसरा और कोई व्यक्ति न था। संस्कृत के कालिदास 'महाकवि' कहलाते थे, अतएव उन्हीं की देखा-देखी सम्भवतः हिन्दी के कालिदास ने 'महाकवि' उपनाम से रचना आरम्भ कर दी। कालिदास-कृत 'बारवधू-विनोद' में कई पद्य 'महाकवि' के नाम से हैं। जो अकेला पद्य 'शिवसिंहसरोज' और 'मिश्रबन्धु-विनोद' में 'महाकवि' के नाम से दिया गया है वह भी 'बारवधू-विनोद' में मौजूद है। 'महाकवि' नामवाले पद्यों और कालिदास नामवाले पद्यों की भाषा एक है। इस बात का कोई उचित कारण नहीं है कि 'महाकवि' के कालिदास से पृथक् कवि होते हुए कालिदास उसके पद्य अपने ग्रन्थ में क्यों उद्धृत करता। 'महाकवि' के विषय में कोई भी सन्तोषदायक बात न ज्ञात होना भी इस बात का परिचायक है कि उसकी पृथक् स्थिति सन्देहजनक है। जब 'महाकवि' नामवाले पद्य कालिदास के ग्रन्थ में मौजूद हैं तब वे अवश्य ही कालिदास-कृत हैं। 'महाकवि' के नामवाले पद्यों को देकर सार-संग्रह-कार का कालिदास के नामवाले पद्य न देना, जब कि 'कविन्द' और 'दूलह' के छन्द उसने दिये हैं, इस बात को सूचित करता है कि वह जानता था कि 'महाकवि' और कालिदास एक ही हैं।

इन सब बातों का यह निष्कर्ष निकला कि 'महाकवि' और 'कालिदास' एक ही व्यक्ति थे, तथा भविष्य में बननेवाले हिन्दी-साहित्य के इतिहास में 'महाकवि' और 'कालिदास' के दो अलग अलग व्यक्ति न मान कर 'महाकवि कालिदास' को एक ही व्यक्ति मानना चाहिए।

कृष्णविहारी मिश्र



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध विषय।

१—सरकारी कृषि-क्षेत्र।


षि की भी विद्या है। कृषि-विज्ञान कोई ५० वर्ष पहले अनुन्नत दशा में था। पर अब वह विशेष उन्नत है; और उसकी उन्नति अधिकाधिक होती जाती है। जिन पश्चिमी देशों ने खेती के काम को विज्ञान की सीमा से आबद्ध कर दिया है, विशेष करके वही उसकी उन्नति के लिए अधिक दत्तचित्त हैं; वही कृषि-विज्ञान-विषयक नई नई खोज करके लाभ उठा रहे हैं। भूमि कितने प्रकार की होती है; किस भूमि में कौन चीज़ अधिक पैदा हो सकती है; किस प्रकार की खाद—या किस युक्ति—से भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ती है; आबपाशी के क्या नियम हैं; पैदावार बढ़ाने की क्या तरकीबें हैं; अच्छे बीज से क्या लाभ हैं—इत्यादि बातें ही कृषि-विज्ञान के विचारणीय विषय हैं। इन्हीं विषयों का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के कारण जर्मनी, अमेरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया आदि देश मालामाल हो रहे हैं। भारत के किसान जब रोटी-टुकड़े के लिए मुहताज हो रहे हैं तब इन देशों के किसान लखपती और करोड़पती हो रहे हैं। यह सब विज्ञान ही की महिमा का फल है। विज्ञान न जानने से ही भारत में बनी शकर महँगी और जावा में बनी शकर यहाँ आने पर भी सस्ती पड़ती है। विज्ञान ही की अनभिज्ञता से एक बीघे में जितना गेहूँ अमेरिका में पैदा होता है उसका तिहाया भी भारत में नहीं पैदा होता।

हमारा देश कृषि-प्रधान है। यहाँ के ६० फ़ी सदी मनुष्यों के पेट पालने का अवलम्ब खेती ही है। पर उसी की बुरी दशा है। इस दुरवस्था का गौण कारण तो सरकार की भूमि-कर-सम्बन्धिनी नीति है; पर प्रधान कारण है शिक्षा का अभाव या शिक्षा की कमी। क्योंकि जो लोग शिक्षित हैं वही विज्ञानवेत्ता हो सकते हैं। यदि इस देश में, हर तहसील में न सही, हर ज़िले में ही कृषि-विद्या सिखाने के लिए एक एक स्कूल खोल दिया जाता और इस विद्या के मोटे मोटे सिद्धान्त देहाती मदरसों में भी सिखाये जाते तो कृषि की उन्नति अवश्य होती। पर हम लोगों के दुर्भाग्य से ऐसा प्रबन्ध अब तक नहीं हुआ। कानपुर में एक टुटरूँटूँ कालेज अवश्य है। परन्तु दस बीस बीघे में खेती करनेवाले अपढ़ काछियों, कुरमियों और अहीरों को उससे क्या लाभ?

सरकार ने कृषि-सम्बन्धी एक महकमा खोल रक्खा है। बड़ी बड़ी तनख़्वाहें पानेवाले कितने ही साहब लोग उसमें अफ़सरी करते हैं। अनेक भारतवासी भी, माकूल तनख़्वाहों पर, उनकी मातहती में, अपनी अपनी कारगुज़ारी दिखाते हैं। कुछ लोग कृषि-विषयक खोज में भी लगे हुए हैं और अपनी अपनी खोज के परिणाम सरकारी भाषा, अँगरेज़ी में, प्रकट कर रहे हैं। पर यह सब होने पर भी जब कृषि की कहने सुनने लायक उन्नति न हुई तब सरकार ने कहा कि देहाती कृषकों के लाभ के लिए लाओ नमूनेदार कृषिक्षेत्र जगह जगह खोल दें। जब ये क्षेत्र खुल गये तब सरकार ने उनमें वैज्ञानिक ढँग से गेहूँ, बाजरा, ईख और कपास आदि बोने का प्रबन्ध कर दिया। यह इसलिए कि साधारण कृषक भी सरकार की बताई हुई प्रणाली से खेती करके ग़रीब से अमीर हो जायँ।

उस दिन इन प्रान्तों के लेजिस्लेटिव कौंसिल में एक मेम्बर ने सरकार से पूछा कि आपके खोले हुए कृषि-क्षेत्रों की आमदनी और ख़र्च का हिसाब तो बताने की कृपा कीजिए। उत्तर से मालूम हुआ कि दो को छोड़ कर बाक़ी के सभी क्षेत्र घाटे में रहे। मुज़फ़्फ़रनगर का १०६ एकड़ का क्षेत्र ७,५००) एक साल (१६२०-२१) में खा गया। और आमदनी उससे कितनी हुई? सिर्फ़ १,७४०) की! अर्थात् ५,७६०) रुपये का घाटा रहा। मैनपुरी के क्षेत्र को आमदनी से ख़र्च तिगुना पड़ा! कमोबेश यही हाल और क्षेत्र का भी रहा। सब क्षेत्रों की आमदनी और ख़र्च का हिसाब लगाने पर १६,००० रुपये का घाटा हुआ। यदि ये क्षेत्र सरकार के न होकर और किसी के होते और वह जी लगा कर काम देखता तो क्या यही नतीजा होता? यदि वह बाजरा बो देता—या यदि वह उनमें चरी ही बो देता—तो भी उसे घाटा न रहता। वैज्ञानिक कृषिक्षेत्रों के सिवा सरकार ने कुछ बीजक्षेत्र—नहीं, बीज-भाण्डार—भी खोल रक्खे हैं। उनमें चुना हुआ अच्छा बीज जमा रहता है। यह इसलिए कि काश्तकार वही बीज मोल लेकर बोवें और मामूली से अधिक पैदा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार पैदा करके लाभ उठावे। पर ये सब भी घाटे ही में रहे। सुल्तानपुर ज़िले में एक जगह नौगवाँ है। वहाँ भी बीज-भाण्डार है। अकेले इसी एक भाण्डार को चार हज़ार रुपये से भी अधिक का घाटा रहा! जो कृषि-क्षेत्र जाँच के तौर पर, इम्तहानन, खोले गये हैं उनके घाटे की तो कुछ पूछिए ही नहीं। सरकार ने ये सब क्षेत्र और भाण्डार खोले तो इसलिए हैं कि सरकार की देखा-देखी काश्तकार भी उसी तरह खेती करके और वैसा ही बीज बो कर लाभ उठावें पर जब उसे ख़ुद ही घाटा होता है तब अपढ़ किसान उसकी बातों पर कैसे विश्वास कर सकते हैं। सरकार का कहना है कि महकमा ज़िरात के डाइरेक्टरों और अफ़सरों के सरकिल बहुत बड़े बड़े हैं। इस कारण वे क्षेत्रों की निगरानी अच्छी तरह नहीं कर सके। इसी से घाटा हुआ। इस पर हमारी प्रार्थना है कि चाहे आप हर ज़िले के लिए एक एक डाइरेक्टर रख दें और कृषकों के लाख पचास हज़ार रुपये और ख़र्च कर डालें, विशेष लाभ होने की सम्भावना नहीं। अशिक्षित और निर्धन किसान घर छोड़ कर किसानी सीखने दूर नहीं जा सकते! उनकी शिक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध कीजिए, उनकी भाषा में कृषि-विज्ञान के स्थूल सिद्धान्त उन्हें सिखाइए, उनके गाँवों के मदरसों से लगे हुए छोटे छोटे क्षेत्र खोलिए तभी उन्हें विशेष लाभ हो सकेगा, अन्यथा नहीं।

सरकार को तो घाटा रहता है। परन्तु जो तअल्लुक़ेदार और ज़मींदार क्षेत्र खोल कर वैज्ञानिक ढँग से खेती करते हैं उनको लाभ ही होता है। इससे सिद्ध है कि वैज्ञानिक ढँग से खेती करने का सुभीता यदि कर दिया जाय तो साधारण कृषकों को भी लाभ हो। पर अभी इसकी विशेष सम्भावना नहीं। इसके लिए अपनी निज की भूमि होनी चाहिए और दस पाँच बीघे नहीं, अधिक होनी चाहिए। पर काश्तकारों के भाग्य में यह बात नहीं। न उन्हें मौरूसी हक़ ही मिलता है और न चकबन्दी का प्रबन्ध करके ख़ास ख़ास किसानों को कुछ अधिक ज़मीन देने का ही प्रबन्ध होता है। हाँ, तअल्लुक़ेदारों के लिए सभी सुभीते हैं। क्षेत्र खोलने के लिए यदि वे चाहें तो किसानों को बेदख़ल करके उनके जोत की भी ज़मीन वे छीन सकते हैं। पर तअल्लुक़ेदारों और ज़मींदारों से ही यह प्रान्त और यह देश आबाद नहीं। उनके सौ दो सौ या हज़ार दो हज़ार क्षेत्र खुल जाने पर भी कृषि की पूरी उन्नति न हो सकेगी। पूरी उन्नति तभी होगी जब साधारण कृषक भी—दस बीस बीघे ज़मीन जोतनेवाला किसान भी—कृषि-क्षेत्र खोल कर वैज्ञानिक ढँग से खेती करने लगेंगे। पर देश के दुर्भाग्य से अभी वह समय दूर मालूम होता है। तथापि दूर हो या अदूर, कभी तो वह अवश्यही आवेगा; क्योंकि—

सम्पद्विपद्वापि निसर्गलोला
कुत्रापि न स्थैर्य्यमुरीकरोति

२—स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र।

आम तौर से लोगों की यह धारणा है कि स्त्री-जाति पुरुष-जाति से हीन है। परन्तु पाश्चात्य देश का स्त्री-समाज इस प्राचीन धारणा के उन्मूलन में बहुत दिन से तत्पर है। यही नहीं वह अपने उद्देश में बहुत कुछ सफल भी हुआ है। योरप में स्त्रियों की समुन्नति इँग्लेंड में ख़ूब हुई है। अभी उस दिन चेरिङ्ग क्रास हास्पिटल मेडिकल स्कूल में विशेषता-पूर्वक उत्तीर्ण विद्यार्थियों को जो इनाम दिये गये हैं उनमें ९ इनाम अकेले मिस मेरी जोई आरटन को ही मिले हैं। इनके सिवा दो और सर्टीफ़िकेट भी उसे दिये गये हैं। उस स्कूल के कुल सत्रह इनामों में से जो आठ बाक़ी बचे उनमें से भी तीन इनाम मिस ग्वेंडोलिन मेरी ब्राउन नामक एक दूसरी बालिका ने मार लिये। शेष पाँच इनाम पुरुषों ने पाये। इस उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो गई कि स्त्रियाँ पढ़ने-लिखने में पुरुषों की अपेक्षा किसी तरह हीन नहीं हैं। पूर्वोक्त मेडिकल स्कूल की गणना इँग्लेंड के उन स्कूलों में की जाती है जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों के साथ समान व्यवहार किया जाता है।

इँग्लेंड में स्त्रियाँ 'इँग्लिश सिविल सर्विस' में भरती हो सकती हैं। इस सम्बन्ध में उन्हें अभी पुरुषों जैसे अधिकार नहीं दिये गये हैं, पर यूनाइटेड किंगडम में वे किसी प्रकार की बाधा के बिना मजिस्ट्रेट और कलेक्टर हो सकती हैं। तीन वर्ष बाद उन्हें पुरुषों के समान पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जायँगे। इससे यह सिद्ध हुआ कि इँग्लेंड का स्त्री-समाज इतना अधिक समुन्नत हो गया है कि उसे पुरुषों जैसे अधिकार एक एक करके मिलते जा रहे हैं। यही क्यों, कुछ समय हुआ, लन्दन यूनीवर्सिटी में नीलाम तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रियासतों की प्रबन्ध-सम्बन्धी शिक्षा देने के लिए नया पाठ्य-क्रम बनाया गया है। इन बातों की शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्त्रियाँ भी अधिक संख्या में आने लगी हैं।

हाल ही में लन्दन के कैक्सटन हाल में व्याख्यान देते हुए विस्काउन्ट आस्टर ने कहा है कि स्त्री-पुलीस-दल की संयोजना का कार्य सफल सिद्ध हुआ है। उसकी परीक्षा लेने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। इँग्लेंड में स्त्री-पुलीस-दल का सङ्गठन करने के लिए मिस डामर लासन ने सन् १९१४ में 'वीमेन्स पुलीस सर्विस' नामक संस्था खोली थी। जिस स्त्री ने सबसे पहले इस संस्था में अपना नाम लिखाया था और पुलीस की वर्दी पहनी थी वह इस समय वीमेन्स अक्ज़िलियरी सरविस की कामान्डेन्ट है। उसका नाम कमान्डेन्ट एलेन है। पूर्वोक्त संस्था ने पुलीस-दल तैयार करने के लिए ४०,००० पौंड धन भी सङ्ग्रह कर लिया है। अब तक १५०० स्त्रियों को पुलीस की पूर्ण शिक्षा दी जा चुकी है। जिस समय मेट्रोपालिटन पुलीस प्रेट्रोल (वीमेन) की नियोजना हुई थी उस समय पूर्वोक्त संस्था के पास पुलीस की पूर्ण शिक्षा-प्राप्त ५०० स्त्रियों का दल तैयार था।

स्त्री-पुलीसदल के सङ्गठन में अमरीका इँग्लेंड से भी आगे है। अमरीका में पहले लास ऐंगलिस नामक नगर में स्त्री-पुलीसदल का सङ्गठन हुआ था। इस समय वहाँ के ३० शहरों में स्त्री-पुलीसदल तैनात हैं। इँग्लेंड में कुछ स्त्री-पुलीसदल रेगुलर समझा जाता है और बाक़ी सारे पुलीसदल का व्यय सर्व-साधारण के चन्दे से पूरा किया जाता है। वही बात अमरीका में भी है। स्त्री-पुलीसदल के सङ्गठन का विरोध पहले न्यूयार्क और सिनसिनाटी में खूब ज़ोरों से हुआ था, पर १९१५ में उसका सङ्गठन न्यूयार्क में स्वीकृत हो गया। इस समय वहाँ ७० स्त्रियों का स्त्री-पुलीसदल है। एक ऐसा पुलिस स्टेशन भी है जिसके अधिकारियों के सब पदों पर स्त्रियाँ ही हैं। वाशिंगटन के स्त्री-पुलीसदल का प्रधान-पद मिनावान विंकिल को प्राप्त है। वहाँ के मेट्रोपालिटन पुलीस नामक संस्था की सदस्य डाक्टर अनाशा सन् १९१८ में हुई थीं।

स्वीडेन में भी स्त्रियों की प्रगति मन्द नहीं है। वहाँ भी उनकी स्थिति प्रशंसनीय है। मिस कर्सटिया हेसेलग्रोन स्वेडिश पार्लियामेंट के प्रथम चैम्बर की सदस्य चुनी गई हैं। इस सभा की यही प्रथम स्त्री सदस्य हुई हैं। मिस कर्सटिया हेसेलग्रोन का जन्म सन् १८१२ में हुआ था। अपने देश तथा जर्मनी, इँग्लेंड और अमरीका में सामाजिक अवस्थाओं के निरीक्षण तथा अध्ययन में इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय लगाया है। इस विषय की ये मर्मज्ञा समझी जाती हैं। स्वीडन की सरकार ने पहले पहल इन्हीं को 'लेबर' का इन्स्पेक्टर नियुक्त किया था। ये वहाँ की वीमेंस कौंसिल और सोशियल कमीशन की सदस्य हैं।

यद्यपि दक्षिण अमरीका का राज्य उतना समुन्नत नहीं है, किन्तु वहाँ का स्त्री-समाज अपनी उन्नति के उद्योग में पीछे नहीं रह जाना चाहता है। ब्रेज़िल में रिओ जैनिरो के विश्वविद्यालय में यह निश्चय हो गया है कि उसकी शिक्षा तथा प्रबन्ध में स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हों। विश्वविद्यालय के शिक्षा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी भिन्न भिन्न पदों पर स्त्रियाँ भी अब तैनात की जायँगी।

मिस एनी कैनन अमरीकन स्त्री हैं। इनका जन्म सन् १८६३ में हुआ था। इन्होंने ज्योतिष का अध्ययन ही नहीं किया है, किन्तु ये इस विषय की पूर्ण ज्ञाता हैं। इन्होंने नक्षत्रों की एक बड़ी भारी सूची तैयार की है। इसमें ७,००,००० नक्षत्रों का वर्गीकरण किया गया है। नक्षत्र-विद्या में ये इतना निपुण हो गई हैं कि नक्षत्रों की दूरी का विभाग बात की बात में कर देती हैं, यद्यपि किसी साधारण ज्योतिषी को यह काम करने में बहुत कुछ हिसाब करना पड़ेगा। इन्होंने सौ अस्थिर नक्षत्रों और तीन नये नक्षत्रों का पता लगाया है और अस्थिर नक्षत्रों की सूची तैयार की है। ये हावर्ड आब्ज़र्वेटरी के ज्योतिष-सम्बन्धी चित्रों की क्यूरेटर हैं।

फ्रेंच स्त्री जेनहरचू हवाई जहाज़ के चलाने में पहले ही से प्रसिद्ध हैं। अब वे न्यूयार्क की रक्षित पुलीस की कैप्टन बनाई गई हैं और उन्हें हवाई जहाज़-विभाग का कार्य सौंपा गया है।

तुर्की राज्य की नई सरकार ने शिक्षा-सचिव का पद अपनी शासन-सभा के एक स्त्री-प्रतिनिधि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्रदान किया है। यही नहीं, असीरिया के नव स्थापित प्रजातन्त्र के अध्यक्ष पद पर एक स्त्री ही चुनी जानेवाली है। इस नये प्रजातन्त्र का क्षेत्रफल ८०,००० वर्ग मील है, और यह भू-भाग कुर्दिस्तान के पार्वत्य देश में स्थित है। योरोपीय युद्ध के समय लेडी सुरमा मार सिमून को असीरिया निवासिनी जातियों ने अपना राजदूत बना कर इँग्लेंड भेजा था। युद्ध के फल-स्वरूप असीरिया में प्रजातन्त्र की स्थापना हुई और उसके सभापति का पद अब लेडी सुरमा को ही मिलनेवाला है।

संयुक्त-राज्य की दक्षिण रियासतों में एक जार्जिया नाम की रियासत है। वहाँ के मैकन नामक स्थान में स्त्री को वहाँ का एल्डरमैन पद प्राप्त हुआ है। श्रीमती चार्ल्स सी० हेरल्ड सर्व-प्रथम स्त्री एल्डरमैन बनाई गई हैं, यह बात उस शहर के इतिहास में अपने ढँग की पहली घटना है। बेलजियम राज्य में पहली स्त्री-वर्गोमास्टर श्रीमती कीनार्टस् हुई हैं। इन्हें एप्रेस के पास के घेलूवेल्ट नामक गाँव का प्रबन्ध सौंपा गया है। यह नियुक्ति स्वयं बेलजियम-नरेश महाराज अल्बर्ट ने की है।

३—मातृभाषा के द्वारा उच्च शिक्षा।

सभी विचारशील विद्वानों की यह राय है कि मातृभाषा के द्वारा शिक्षा देने से देश में विद्या की प्रचार-वृद्धि होगी। जब तक विद्यालयों में किसी भाषा का पूर्ण प्रवेश न हो जाय, जब तक शिक्षणीय विषय उसी भाषा में न सिखाये जायँगे, तब तक उस भाषा की यथार्थ प्रतिष्ठा होने की नहीं। यदि भारतवर्ष के अधिकांश शिक्षित वर्ग अपनी मातृभाषा की उपेक्षा करते हैं तो उसका कारण यही है। जाति में राष्ट्रीय भावों को जागृत रखने के लिए राष्ट्रीय साहित्य की शिक्षा अवश्य देनी चाहिए और जब तक यह शिक्षा मातृभाषा द्वारा नहीं दी जाती तब तक शिक्षा में राष्ट्रीयता का पूरा अभाव रहेगा। समय समय पर बड़े बड़े पदाधिकारियों ने वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से असन्तोष प्रकट किया। देश के सर्व-मान्य नेताओं ने भी उसके विरुद्ध आन्दोलन किया। गवर्नमेंट ने भी प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में संशोधन करने की आवश्यकता समझी। एक कमीशन बैठाया गया। उसने अपना मन्तव्य बड़ी बड़ी जिल्दों में प्रकाशित किया। नये नये विश्वविद्यालयों की सृष्टि होने लगी। पुराने विश्वविद्यालयों में भी परिवर्तन किये जाने लगे। परन्तु अभी तक यह निश्चित नहीं हुआ है कि मातृभाषा ही के द्वारा उच्च शिक्षा दी जाय। एक विद्वान् की यह राय है कि भारतवर्ष में देशी भाषाओं के द्वारा तभी शिक्षा दी जा सकती है जब उनमें ये तीन बातें हों। पहली बात यह कि भाषा का रूप स्थिर हो, उसका व्याकरण सर्वमान्य हो। दूसरी बात यह कि उसमें शिक्षा के लिए पाठ्य पुस्तकों की अच्छी संख्या हो और इन पुस्तकों की भाषा भी परिमार्जित हो। तीसरी बात यह कि भाषा के रूप को स्थिर करने के लिए और पाठ्यग्रन्थ तैयार करने के लिए ऐसे विद्वान् कटिबद्ध हों जो प्राचीन साहित्य का पूर्ण ज्ञान रखते हों।

हिन्दी में इन तीनों बातों के लिए अच्छी चेष्टा की जा रही है। भाषा को स्थिर रूप देने के लिए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में जो प्रस्ताव पास किया गया था उसको कार्यरूप में परिणत करने के लिए स्थायी समिति ने चेष्टा की थी। उसका परिणाम क्या हुआ यह तो हम नहीं कह सकते, परन्तु हमें विश्वास है कि अब थोड़े ही दिनों में हिन्दी में सर्वमान्य नियमों का प्रचार हो जावेगा। पाठ्य ग्रन्थों का अभाव शीघ्र पूर्ण नहीं हो सकता। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की उच्च परीक्षाओं में अँगरेज़ी भाषा ही की पुस्तकें रक्खी गई हैं। इन ग्रन्थों का अनुवाद करना बहुत आवश्यक है। यदि हम चाहते हैं कि हिन्दी भाषा ऐसी समुन्नत हो जाय कि उसके द्वारा उच्च शिक्षा दी जाने लगे तो हमें विज्ञान, दर्शन-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, इतिहास आदि विषयों की श्रेष्ठ पुस्तकें तैयार करनी होंगी। इस काम के लिए उपयुक्त विद्वानों और प्रकाशकों की आवश्यकता है। आज-कल हिन्दी में कई पुस्तकमालाएं निकल रही हैं, परन्तु इनमें स्थायी साहित्य की ओर दृष्टि न डाल कर लोक-रुचि ही का अधिक ख़याल रक्खा जाता है। अभी तक हिन्दी में सैकड़ों नये नये ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु उनमें दो ही चार शायद ऐसे हों जिन्हें हम पाठ्य पुस्तकों में रख सकते हैं। जो पुस्तक-प्रकाशक व्यवसाय की दृष्टि से पुस्तक-प्रकाशन का कार्य कर रहे हैं उनसे हमें कुछ नहीं कहना है। वे तो ऐसी ही किताबें निकालेंगे जिनसे टके वसूल हो सकें। परन्तु जिन लोगों ने देश-सेवा के उच्च भावों से प्रेरित होकर पुस्तक-प्रकाशन का काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार किया है उन्हें तो इसका पूरा ख़याल रखना चाहिए कि वे कैसी पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं। सबसे पहले उन्हें यही देख लेना चाहिए कि जिस विषय पर वे ग्रन्थ विद्वानों से लिखा रहे हैं वह कैसा विषय है और उसका लेखक उस विषय का कितना अच्छा ज्ञान रखता है। यदि विषय महत्त्वपूर्ण हो और लेखक विद्वान् है तो इसका पूरा प्रबन्ध किया जाना चाहिए कि लेखक अपने ग्रन्थ में अपनी विद्वत्ता का पूरा उपयोग कर सके। दस अनुपयोगी अथवा कम महत्त्व के ग्रन्थ प्रकाशित करने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि किसी विषय का एक अच्छा ग्रन्थ प्रकाशित हो जाय। हमें आशा है कि हिन्दी के पुस्तक-प्रकाशक इस ओर ध्यान देंगे, जिससे थोड़े ही समय में हिन्दी में पाठ्य पुस्तकों का अभाव दूर हो जाय। तभी यह संभव है कि विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा का प्रवेश शीघ्रता से हो सकेगा।

४—देवास का शासन-सुधार।

इधर कुछ समय से देशी रियासतों में सुधार-योजना की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। ग्वालियर राज्य के उदार शासक महाराज सेंधिया ने हाल ही में मजलिसे आम की संस्थापना कर अपनी प्रजा को शासन में उचित अधिकार प्रदान किये हैं। परन्तु मध्यभारत के देवास-राज्य के शासक ने अपनी प्रजा को जो अधिकार दिये हैं उन्हें देख कर यही कहना पड़ता है कि अधिकार-दान में वे बहुत आगे बढ़ गये हैं। महाराज देवास पहले से ही अपने उदार शासन के लिए प्रसिद्ध हैं और अब तो 'निज़ामे दवामी' क़ायम करके आपने देवास के इतिहास में अपना नाम स्वर्णाक्षरों में लिखवा लिया।

'निज़ामे दवामी' की प्रतिष्ठा करने के लिए जो आम दरबार दूसरी जनवरी को देवास में हुआ था वह वैसा ही महत्त्व-पूर्ण और अपने ढंग का एक है जैसा कि वह शानदार हुआ है। भारत में स्त्रियों को वोटाधिकार सर्वप्रथम देवास-राज्य में प्राप्त हुआ यह निस्सन्देह एक अपूर्व घटना हुई है। जो निज़ामे दवामी देवास राज्य में स्थापित किया गया है उसमें राज्य-शासन के उत्तरदायी तीन भाग बनाये गये हैं—(१) राजा, (२) ख़ास मजलिस और (३) जमाते जमहूरी। इनमें शासन और न्याय का कार्य-भार ख़ास मजलिस को सौंपा गया है। जमाते जमहूरी के सभापति और मन्त्री सदस्यों में से ही मनोनीत किये जायँगे। यदि किसी बात में राजा और ख़ास मजलिस में मतभेद होजाय तो उसका निर्णय जमाते जमहूरी में होगा। जमाते जमहूरी के तीन चौथाई सदस्य जो निर्णय करेंगे वह ख़ास मजलिस तथा राजा को मान्य होगा। राज्य के सारे दफ़्तरों तथा नौकरों की तरक़्क़ी, तनज्जुली एवं नियुक्ति का अधिकार जमाते जमहूरी को दिया गया है।

आम दरबार के पहले दिन महाराज देवास की साल-गिरह का उत्सव था। उसके उपलक्ष में जो दरबार हुआ था उसमें महाराज देवास तथा पूर्वोक्त संस्थाओं के सदस्यों ने पाश्चात्य देशों के राजाओं की भाँति सबके समक्ष शपथ-पूर्वक 'निज़ामे दवामी' को मानने की प्रतिज्ञा की। महा-राज देवास की इस नई योजना से उनकी प्रजा बहुत संतुष्ट हुई है।

५—शिक्षा के लिए विदेश-गमन।

आज-कल शिक्षा-प्राप्ति के लिए अनेक साधन हैं। भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न विषयों की शिक्षा का बड़ा अच्छा आयोजन है। जो लोग अपने मनोभिलषित विषय में पारदर्शिता प्राप्त करना चाहते हैं यदि वे द्रव्याभाव से ग्रस्त न हों तो विदेश जाकर यथेष्ट ज्ञान का उपार्जन कर सकते हैं। पहले की अपेक्षा अब विदेश-यात्रा भी सुगम है। प्राचीन काल में ऐसी सुविधाएँ न थीं, तो भी ज्ञान-लिप्सा की प्रेरणा से हज़ारों कोसों से विद्यार्थी आया-जाया करते थे। भारतवर्ष ने प्राचीन काल में विद्या-दान के लिए अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त करली थी। तक्षशिला, नालंद आदि स्थान विद्या के केन्द्र थे। वहाँ सभी शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी। उनकी कीर्ति इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि चीन तक से विद्यार्थी वहाँ अध्ययन करने के लिए आया करते थे। यह तो भारत की बात हुई। नवीं शताब्दी में इटली का सालेर्नो नामक स्थान ख़ूब प्रसिद्ध था। वहाँ चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा की व्यवस्था थी। वहाँ भी दूर दूर से विद्यार्थी आया करते थे। अस्तु।

आज-कल योरप और अमरीका में विद्या के केन्द्र हैं। ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा से विद्यार्थियों का जो समूह देश-यात्रा किया करते हैं उनमें अधिकांश एशिया के ही निवासी हुआ करते हैं। ये लोग जापान, अमरीका, फ़्रांस, और इँग्लेंड जाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। चीन के कोई नौ हज़ार विद्यार्थी इस समय विदेश में शिक्षा लाभ कर रहे हैं। इनमें से चार हज़ार जापान में हैं, दो हज़ार फ़्रांस में, चौदह सौ अमरीका में और चार सौ इँग्लैंड में हैं। कुछ विद्यार्थी इधर उधर दूसरे स्थानों में भी फैले हुए हैं। जापान से पचीस सौ विद्यार्थी पढ़ने के लिए बाहर निकले हैं। इनमें से अधिकांश अमरीका में हैं। युद्ध के पहले पाँच सौ विद्यार्थी योरप में शिक्षा पाते थे। परन्तु युद्ध की समाप्ति तक उनकी संख्या सिर्फ़ ४४ रह गई। अब फिर उनकी संख्या-वृद्धि हो रही है। आज-कल स्वीज़रलेंड में ५० जापानी पढ़ रहे हैं। इँग्लेंड में ३०० जापानी विद्यार्थी हैं। फ़िलिप्पाइनद्वीप से भी अनेक विद्यार्थी बाहर जाते हैं। ये लोग प्रायः जापान और अमरीका जाते हैं। जापान में आज-कल वहाँ के तीस विद्यार्थी हैं और अमरीका में ३००। हमारे देश से अधिकांश विद्यार्थी इँग्लेंड ही जाते हैं। कुछ अमरीका, जापान, जर्मनी भी जाते हैं। आज-कल इँग्लेंड में १००० भारतीय विद्यार्थी हैं। रूस और पोलेंड के छात्र-समुदाय जर्मनी, स्वीज़रलेंड, आस्ट्रिया, फ़्रान्स और बेलजियम जाते हैं। इनके सिवा और अनेक विद्यार्थी भिन्न भिन्न देशों में जाकर ज्ञान प्राप्त करते हैं। विद्या और विज्ञान पर किसी जाति विशेष का स्वत्व नहीं है। वह विश्व की सम्पत्ति है। अतएव जहाँ वह प्राप्त हो सके वहीं उसे ग्रहण करना चाहिए।

पुस्तक-परिचय।

१—गुजराती और मराठी की कुछ पुस्तकें।

१—विविध ग्रन्थ-माला, भाग ८ और ९—ये दोनों पुस्तकें गुजराती भाषा में हैं। इनका प्रकाशन अहमदाबाद के सस्तुं साहित्यवर्धक कार्य्यालय ने किया है। काग़ज़ साधारण, पर छपाई अच्छी है। दोनों पर सुन्दर पुष्ट जिल्द चढ़ी है। आठवें भाग की पृष्ठ-संख्या ८+४१२+६२ है; मूल्य है—२ रुपया। इसमें स्वामी विवेकानन्द के १८ सदुपदेशों का भाषान्तर है। अनुवादक का नाम है—रत्नसिंह दीपसिंह परमार। पुस्तकान्त के ६२ पृष्ठों में ५ लेख ऐसे भी हैं जिनकी भाषा हिन्दी है। वे भिन्न भिन्न लेखकों के लिखे हुए हैं। उनमें मृत्यु-द्वार, आत्म-विचार और मनोराज्य नाम के लेख बड़े महत्त्व के, अतएव मनन-योग्य हैं। स्वामी विवेकानन्द के सदुपदेशों का क्या कहना है! सभी दिव्य हैं। भक्ति-योग, वैदिक धर्म्म का आदर्श, देवदूत क्राइस्ट, रामायण, महाभारत सभी एक से एक बढ़ कर हैं। इन लेखों को ध्यान से पढ़ने पर पढ़नेवाले के मन में स्वामीजी की विद्वत्ता, आत्मचिन्ता, स्वदेश-भक्ति और धर्म्मनिष्ठा के विषय में उच्च और उदात्त भावों की जागृति हुए बिना नहीं रह सकती। नवें भाग की पृष्ठ-संख्या ४०+७०३ और मूल्य २॥) है। इसकी रचना की है—रामप्रसाद काशीप्रसाद देसाई, बी० ए०, ने। इसमें स्वामी विवेकानन्द का विस्तृत जीवन-चरित है। यह किसी का अनुवाद नहीं। अनेक अँगरेज़ी पुस्तकों और लेखों के आधार पर इसकी रचना की गई है। पुस्तक में स्वामीजी के दो चित्र भी हैं। लेखक ने बड़ी योग्यता से स्वामीजी के चरित का चित्रण, ६० अध्यायों में, किया है। इसे पढ़ने पर यह बात अच्छी तरह मालूम हो जाती है कि स्वामीजी अद्भुत संन्यासी, पहुँचे हुए योगी और स्वदेश के अभूतपूर्व भक्त थे। स्वदेश-भक्ति का प्रवाह किस दिशा में जाना चाहिए, यह बात स्वामीजी के चरित से पूर्णतया प्रकट होती है। स्वामीजी की दूरदर्शिता और साधुता की यथेष्ट प्रशंसा नहीं की जा सकती। उनके उपदेशों ने समझदार भारतवासियों के हृदयों में घर कर लिया है। पुराने तथा नये भी विचार के समाज-सुधारक—दोनों को उनकी सूचनायें एक सी ग्राह्य हैं। ऐसे ब्रह्मनिष्ठ और तत्त्वज्ञ महात्मा के चरित का चिन्तन करना और उससे शिक्षा लेना हमारा परम धर्म्म है। चरित विशेष मनोरञ्जक और उपदेशदायक है।

२—सं० १९७९, शक १८४४, का वर्षभविष्य अर्थात् पञ्चाङ्ग—जिन सारिणियों के आधार पर आज-कल पञ्चाङ्ग (पत्रे) बनते हैं वे बहुत पुरानी हो गई हैं। इस कारण तदनुसार बने हुए पञ्चाङ्गों में निदर्शित ग्रह-गत्यादि की गणना में बहुधा भूलें पाई जाती हैं। इस न्यूनता को दूर करने के लिए दक्षिण में एक पञ्चाङ्ग-कमिटी है। उस कमिटी के विद्वान् ज्योतिषियों ने जिन सिद्धान्तों का निश्चय किया है उन्हें ध्यान में रखते हुए, ज्योतिष के करण-ग्रन्थों का अवलम्बन करके, हर साल, कुछ समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से एक नई तरह का पञ्चाङ्ग प्रकाशित होता है। प्रस्तुत पञ्चाङ्ग, इसी कमिटी की आज्ञा से, पण्डित रामचन्द्र पाण्डुरङ्ग शास्त्री मोघे ने बनाया है। इसका दूसरा नाम है—तिलक-पञ्चाङ्ग, क्योंकि लोकमान्य तिलक पूर्वोक्त पञ्चाङ्ग-संशोधक कमिटी के पृष्ठपोषक थे। यह मराठी भाषा में है, पुस्तकाकार है। इसका मूल्य है सवा रुपया, २४ पृष्ठों में तो पञ्चाङ्ग है, बाक़ी के कोई १५० पृष्ठों में ज्योतिष-विषयक और अनेक बातें हैं जो पञ्चाङ्गी पण्डितों के बड़े काम की हैं। कई चित्र भी हैं। महात्मा गांधी का चित्र मुखपृष्ठ पर है और आरम्भ में उनका जीवन-चरित भी है। इसका पञ्चाङ्ग-अंश मराठी न जाननेवालों के भी काम का है। प्रकाशन इसका किया है—परशुराम नारायण नानल ने। आपका पता है—शनिवार-पेठ, पूना। आपही शायद इसे बेचते भी हैं। ज्योतिषियों को एक बार इसका अवलोकन करके इसकी उपादेयता या अनुपादेयता की जांच करनी चाहिए।

३—सुबोधपद्यरत्नावली—यह पुस्तक बड़े मोटे और चिकने काग़ज़ पर सुन्दर सुस्पष्ट टाइप में छपी है। इसकी पृष्ठ-संख्या ६४ और मूल्य ।≈) है। इसमें गुरुतत्त्व, विनय, धर्म्मोपदेश, वैराग्य, कर्तव्य-बोध, मुक्ति आदि ११ विषयों पर चुने हुए संस्कृत-पद्य हैं। वे भर्तृहरि, हेमचन्द्र, हरिभद्र-सूरि, सिद्धसेन-दिवाकर आदि के ग्रन्थों से लिये गये हैं। ऊपर देवनागरी-लिपि के मोटे टाइप में मूल श्लोक हैं और नीचे गुजराती टाइप और गुजराती ही भाषा में उसका भावार्थ। श्लोक सरस, सुन्दर और याद रखने लायक हैं। संग्रह की श्लोक-संख्या १५२ है। उनमें से अधिकांश श्लोक जैन-ग्रन्थों से लिये गये हैं। संग्रहकार हैं—"सरस्वती-श्रीचरण" और प्रकाशक हैं—पण्डित वाडीलाल डाह्याभाई, जैन सरस्वती-भवन, अहमदाबाद।

४—मारो जेलनोअनुभव—यह कोई एक सौ पृष्ठ की छोटी सी पुस्तक है। भाषा गुजराती, मूल्य ६ आने है। व्यवस्थापक, गाण्डीव-साहित्य-सदन, केलापीठ, सूरत, को लिखने से मिलती है। पुस्तक महात्मा गांधी की लिखी हुई है। महात्माजी को ट्रांसवाल के जेलों में जो अनुभव हुए थे उन्हीं का वर्णन इसमें है। जेलों के अनुभवों के सिवा, कुछ और भी अनुभवों का दिग्दर्शन इसमें है। उनका सम्बन्ध सत्याग्रह की अन्तिम "लड़त" (लड़ाई) से है। जेलों के अनुभव का अनुवाद तो हिन्दी में हो गया है; पर इस पिछली लड़त के अनुभव का अनुवाद हमारे देखने में नहीं आया। पुस्तक के अधिकांश अनुभवों का परिचय हिन्दी पढ़नेवालों को हो ही चुका है। अतएव इस विषय में और कुछ लिखने की ज़रूरत नहीं। हां, इतना हमें कह देना है कि यह पुस्तक गांधी-ग्रन्थमाला का पहला ग्रन्थ है।

२—वैद्यक ग्रन्थ।

बच्चों की रक्षा—जल-चिकित्सा के प्रचारक प्रसिद्ध जर्मन डाक्टर लुई कुने की पुस्तकों का सारे संसार में प्रचार है। इनकी कई एक छोटी छोटी पुस्तकों का भाषान्तर हिन्दी में भी हो चुका है। उन्हीं में से यह भी एक है। इसे हाल ही में अध्यापक रामदास गौड़ ने लिखा है और हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी, १२६ हरिसन रोड के पते से यह ।-) में मिलती है। इसमें बच्चों की रक्षा अर्थात् उनके लालन-पालन के सम्बन्ध में प्राकृतिक उपाय बताये गये हैं। साथ ही डाक्टरी चिकित्सा एवं टीका लगाने आदि के दूषण भी स्थूल रूप से दिखाये गये हैं। पुस्तक काम की है। इसकी मोटी मोटी बातों को ही ध्यान में रख लेने से बच्चों की देख-रेख में ख़ासी सुविधा हो सकती है और उनका स्वास्थ्य भी बहुत कुछ ठीक रह सकता है। हमारे आयुर्वेद में बच्चों के पालन-पोषण तथा उनकी रोग-चिकित्सा के लिए एक अलग समूचा तन्त्र ही है, पर उस तन्त्र के पृथक् ग्रन्थों का अभाव है। और न यहां के चिकित्सा-चक्र चूड़ामणि इस विषय का पर्याप्त ज्ञान ही रखते हैं। अतएव ऐसे छोटे ग्रन्थों से भी लोगों को लाभ होने की सम्भावना है।

इसी विषय पर पण्डित निरञ्जननाथ गुर्टू, हेल्थ आफ़ीसर, जोधपुर, ने **बाल-पालन** नाम की एक अच्छी पुस्तक लिखी है। यह बिलकुल सच है कि बालकों की मृत्यु-संख्या भारतवर्ष में जितनी अधिक है उतनी अन्य किसी देश में नहीं है। इसका एक विशेष कारण यह है कि माता-पिता को बालकों के पालन-पोषण के विषय में थोड़ा भी ज्ञान नहीं रहता। गुर्टूजी की इस छोटी पुस्तक से भी उनका अज्ञान किसी क़दर दूर होगा। मूल्य ।) है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविविनोद श्रीपण्डित ठाकुरदत्त शर्म्मा वैद्य ने दोष-ज्ञान नामक पुस्तक समालोचनार्थ भेजी है। पुस्तक के मुख-पृष्ठ से विदित होता है कि आप वैद्यामृत के सम्पादक हैं और आपने दो दर्जन से अधिक वैद्यक-पुस्तकें लिख डाली हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सा विशेषतया दोषज्ञान ही पर निर्भर है। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय की मीमांसा कविविनोद जी ने अपनी इस पुस्तक में की है। अतएव आपकी रचना पर वही सम्मति दे सकता है जो स्वयं वैद्यक-शास्त्र का अच्छा विद्वान् हो। इस सम्बन्ध में हमें चुप ही रह जाना चाहिए। मूल्य ।।।) है।

स्वास्थ्यामृत-तरङ्गिणी। इसका सङ्कलन पटना (बाकरगंज बजाज़ा) के वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायण मिश्र ने किया है और वही इसके प्रकाशक हैं। इसमें चरक, सुश्रुत, बाग्भट्ट आदि के मतानुसार स्वास्थ्य-रक्षा की विधि वर्णित है। मूल श्लोक उद्धृत कर नीचे हिन्दी में उसकी विशद व्याख्या की गई है। मूल्य ।) है।

३—कुछ ऐतिहासिक पुस्तकें।

हमारे पास कुछ ऐसी पुस्तकें आई हैं जिन्हें हम लेखकों के कथनानुसार इतिहास की कोटि में रख लेते हैं। नीचे उनका परिचय दिया जाता है।

(१) प्राचीन जैन इतिहास, दूसरा भाग। इसे श्रीसूरजमल जैन ने लिखा और मूलचन्द किसनदास कापडिया ने सूरत से इसका प्रकाशन किया है। मैनेजर, जैन पुस्तकालय, सूरत, से यह पुस्तक मिलती है। काग़ज़ और छपाई अच्छी है। पृष्ठ-संख्या १७२ और मूल्य १) है। पुस्तक में २६ पाठ हैं। उनमें कितने ही जैन तीर्थङ्करों तथा प्रसिद्ध प्रसिद्ध प्राचीन जैन महात्माओं आदि का वर्णन है। राम, सीता, दशरथ, लक्ष्मण, हनुमान्, रावण और नारद आदि की भी कथायें हैं। जैन लोग शायद इन्हें भी अपने ही धर्म्म का अनुयायी मानते हैं। इनकी कथा वाल्मीकि-रामायण की कथा से भिन्न है। दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। इसमें जो कुछ है उसे लेखक ने "इतिहास" समझा है। सम्भव है, जैन शास्त्रों में इतिहास की परिभाषा कुछ और ही प्रकार की हो। अथवा तेरहवें तीर्थङ्कर विमलनाथ के विषय में जो इसमें यह लिखा है कि उनकी उम्र ६० लाख वर्ष की थी और शरीर साठ धनुष के बराबर लम्बा था, वह आज-कल के "इतिहास" की परिभाषा के भीतर नहीं आ सकता। ऐसी ही और भी अनेक असम्भवनीय और कौतूहल वर्धक बातों का उल्लेख इस पुस्तक में है। इससे विशेष करके जैनों ही का मनोरञ्जन हो सकता है।

(२) केडिया जातीय इतिहास। इसे श्रीयुत हरसुखराय घावथरिया केडिया ने लिखा है। केडियाजी इसे सब प्रकार से सुन्दर बनाने में सफलमनोरथ हुए हैं। इसके रूप-रंग को देखने तथा पुस्तक के पढ़ने से आपका जातीय प्रेम स्पष्ट व्यक्त होता है। इसमें अग्रवाल वैश्यों की केडिया शाखा का मनोहर इतिहास ही भर नहीं है, किन्तु केडिया जाति के अनेक धनाधिपों का जीवन-परिचय भी है। पुस्तक के अन्त में यह भी बता दिया गया है कि केडिया जाति के उदार धनिकों ने कहाँ कुएँ बनवाये और कहाँ धर्मशालायें खोलीं। यहाँ तक कि कलकत्तावासी केडिया लोगों की नामावली तक दे दी गई है। यह पुस्तक केडियों ही के मतलब की है। नयनाभिराम जिल्द से विभूषित इस सचित्र पुस्तक का मूल्य २) है। मिलने का पता—हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी, १२६ हरिसन रोड, कलकत्ता।

(३) अहीर इतिहास की झलक—यह श्रीयुत दिलीपसिंह यादव की लिखी है और तीसरी बार छापी गई है। इसमें लेखक ने यादवों के इतिहास को अपना इतिहास बताया है। आपके कथनानुसार अहीर यदुवंशी क्षत्रिय हैं, और जहाँ जहाँ यादव वंश का राज्य रहा है वे सब अहीर-राज्य हैं। मूल्य ।=) है। पता—मैनेजर, आभीर समाचार, शिकोहाबाद।

(४) न्यायी वर्ण-निर्णय—इसकी रचना न्यायी कुलोत्पन्न पण्डित दीपचन्द्रात्मज रेवतीप्रसाद शर्मा ने की है। आपने इसमें नाइयों के इतिहास का पूर्व रूप बतलाने की चेष्टा की है और यह प्रमाणित किया है कि नाइयों की उत्पत्ति ब्राह्मण जाति से है, अतएव वे ब्राह्मण हैं। आगरे में एक नाई महासभा भी की गई थी और उसमें नाई ब्राह्मण विघोषित कर दिये गये हैं। अब यह आशा की जा सकती है कि ब्राह्मण-समाज में सम्मिलित होकर नाई और क्षत्रिय जाति में परिगणित होकर अहीर उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच जायँगे। एवमस्तु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—हिन्दी की शिक्षा देनेवाली दो पुस्तकें।

सभी विचारशील विद्वानों की यह राय है कि यदि भारतवर्ष में कोई भाषा राष्ट्रीय भाषा का स्थान ग्रहण कर सकती है तो वह हिन्दी ही है। कुछ समय से हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा बनाने का अच्छा प्रयत्न किया जा रहा है। महात्मा गान्धीजी के उद्योग से अब मदरास-प्रान्त में भी हिन्दी का प्रचार बढ़ रहा है। मदरास-प्रान्त के निवासियों को हिन्दी की शिक्षा देने के लिए पाठ्य पुस्तकें तैयार होने लगी हैं। हमारे पास ऐसी दो पुस्तकें समालोचनार्थ आई हैं। पहली पुस्तक का नाम है हिन्दी स्वबोधिनी। इसकी रचना पण्डित हरिहर शर्मा विशारद और पण्डित क० म० शिवराम विशारद ने मिलकर की है। मूल्य ॥=) है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रचार कार्यालय, मदरास ने इसका प्रकाशन किया है।

इसके प्रारम्भ में महात्मा गान्धीजी की लिखी हुई एक छोटी सी प्रस्तावना है। उससे मालूम हुआ कि लेखक-द्वय मद्रास प्रान्त के ही निवासी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस पुस्तक से अँगरेज़ी जाननेवाले सुगमता से हिन्दी सीख सकेंगे।

इसी विषय की दूसरी पुस्तक का नाम हैं How To Learn Hindi पण्डित सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार ने इसकी रचना की है। यह भी अच्छे ढंग से लिखी गई है। मूल्य १) है। प्रकाशक हैं The Secretary, Arya Samaj, Basavangudi, Bangalore. हमें आशा है कि इन दोनों पुस्तकों से मदरास में हिन्दी भाषा की अच्छी प्रचार-वृद्धि होगी।

५—कविता की किताबें।

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी के प्राचीन कवियों को लोक-प्रिय बनाने की अच्छी चेष्टा कर रहे हैं। आपने कविता-कौमुदी के प्रथम भाग में व्रज भाषा की सुन्दर कविताओं का संग्रह किया है। अभी हाल में आपने रहीम की कविताओं का संग्रह प्रकाशित किया है। रहीम की कविता बड़ी सरल और सरस है, साथ ही उपदेश-प्रद भी है। पुस्तक के आरम्भ में रहीम का संक्षिप्त परिचय है और अन्त में कुछ कठिन शब्दों के अर्थ भी दे दिये गये हैं। त्रिपाठीजी का यह संग्रह सर्वथा उपादेय हुआ है। ४६ पृष्ठों की पुस्तक का दाम तीन आना ठीक है। पता—हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग।

पण्डित गोकुलचन्द्र शर्मा की कविताओं का एक छोटा सा संग्रह प्रकाशित हुआ है। नाम है पद्य-प्रदीप। कवितायें छोटी पर अच्छी हैं। अधिकांश कवितायें देश-भक्ति के भाव से पूर्ण हैं। मूल्य ॥) है। पता—भारत-बुकडिपो, अलीगढ़।

श्रीसुमित्रानन्दनजी पन्त ने अपनी एक रचना भेजी है। नाम है उच्छ्वास। यह पन्तजी की पहली रचना है। कविता छः-सात पृष्ठों में समाप्त हुई है। मूल्य बारह आने बहुत अधिक है। हमारी समझ में कविता में व्यर्थ शब्दा-डम्बर है। भाव बिलकुल अस्पष्ट और उपमायें ज़बर्दस्ती ठूंस दी गई हैं। हमने इसमें चमत्कार कम देखा, हाँ चमत्कार-सूचक चिह्नों (!) की भरमार अवश्य देखी। दो-तीन सौ सतरों की कविता में कम से कम साठ विस्मय-सूचक चिह्न होंगे। कवि अभी अल्पवयस्क हैं। यदि वे चाहें तो शब्द-जाल के मोह में न पड़ कर भाव की अभि-व्यक्ति की ओर ध्यान दे सकते हैं। उनकी रचना से यह साफ़ मालूम होता है कि उनमें कवित्व-बीज है और वह अङ्कुरित होगा, पर विलक्षणता लाने के लिए उन्हें सुन्दर पर अर्थहीन शब्दों की (Pretey nonsens) योजना छोड़ देनी चाहिए। 'अनवसित अवसान' अथवा 'नीरव गान' के समान शब्दों के पिष्टपेषण से अथवा निरर्थक उपमाओं से अर्थ-गौरव नहीं आजाता।

Printed and Published by Apurva Krishna Bose, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भाग २३, खण्ड १] मार्च १९२२—फाल्गुन १९७८ [संख्या ३, पूर्ण संख्या २६७

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ।



डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र बङ्गाल के उन विद्यारत्नों में गिने जाते हैं जो अपने पाण्डित्य के कारण संसार-पूज्य विद्वानों द्वारा समादृत हुए हैं। भारत के प्राचीन इतिहास के निर्माण में जो मौलिक कार्य इन्होंने किया है वह जितना विस्तृत है उतना ही महत्त्व-पूर्ण है। उससे इनका नाम इस देश में सदा कृतज्ञता-पूर्वक स्मरण किया जायगा। आगे इनके जीवन का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

राजेन्द्र बाबू का जन्म बङ्गाल के एक सम्भ्रान्त कायस्थ-कुल में हुआ था। इनके प्रपितामह राजा पीताम्बर मित्र मुग़ल सम्राट् के मन्सबदार और जागीरदार थे। ऐसे ही प्रतिष्ठित परिवार में सन् १८२४ में ये कलकत्ते के समीप सूरह नामक स्थान में उत्पन्न हुए थे। समय के फेर से इनके पिता की वैसी स्थिति नहीं रह गई थी। ये अपने छः भाइयों में सब से छोटे थे। इनके पिता श्रीयुत जनमेजयलाल मित्र संस्कृत और फ़ारसी के पण्डित थे। उनके समय में अँगरेज़ी पढ़े लिखे लोगों की बड़ी चाह थी। अतएव उनको भी अपने पुत्रों को अँगरेज़ी पढ़ाने की बड़ी अभिलाषा थी, पर निर्धन होने के कारण वे अपने मनोरथ में सफल न हुए। परन्तु जब उनके छठे पुत्र राजेन्द्र बाबू पढ़ने लिखने के योग्य हुए तब एक दिन उनकी विधवा निस्स-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्तान बहन ने अपने भतीजे राजेन्द्र बाबू को अँगरेज़ी पढ़ाने के लिए उनसे माँगा। जनमेजय बाबू को मुँह-माँगी मिली। उन्होंने इस अवसर को हाथ से न जाने दिया और बालक राजेन्द्र अपनी बुआ के साथ अँगरेज़ी पढ़ने को कलकत्ते चला गया।

राजेन्द्र बाबू को विद्या-प्राप्ति का अच्छा अवसर प्राप्त हो गया था। परन्तु कुछ दिनों के बाद दुर्भाग्यवश इनकी बुआ की मृत्यु हो गई। अतएव इन्हें पढ़ना-लिखना बन्द कर देना पड़ा। ये अपने पिता के पास गाँव को फिर लौट गये। इनके पिता इन्हें पढ़ाने को विशेष रूप से उत्कण्ठित थे। क्योंकि ये विलक्षण व्युत्पन्नमति लक्षित होते थे। उनके मित्रों ने इन्हें मेडिकल कालेज में भर्ती होने की सलाह दी। ग़रीब विद्यार्थियों को विद्या-प्राप्ति की सुविधा उस समय केवल मेडिकल कालेज में ही थी। वहाँ शिक्षा के साथ ही छात्रवृत्ति भी मिलती थी। अतएव सन् १८३९ में ये मेडिकल कालेज में प्रविष्ट हुए। निस्सन्देह, इनके जैसे प्रतिष्ठित घराने के लिए छात्र-वृत्ति ले कर विद्याध्ययन करना अपमानजनक था, पर इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग भी तो नहीं था। मेडिकल स्कूल में शिक्षा ग्रहण करते समय इन्होंने प्रधान अध्यापक को देशी औषधि-पद्धति के सम्बन्ध में लाभदायक सूचनायें देकर ख़ासी प्रशंसा प्राप्त की थी। बाबू द्वारकानाथ ठाकुर इनकी प्रतिभा से इतना अधिक चकित हो गये थे कि वे इन्हें डाक्टरी पढ़ने के लिए विलायत भेजने को तैयार हो गये थे। परन्तु इनके पिता कट्टर हिन्दू थे। अतएव वे इन्हें विलायत भेजने को राज़ी न हुए।

राजेन्द्र बाबू का अध्ययन मेडिकल कालेज में अधिक समय तक न जारी रह सका। वहाँ एक विशेष घटना के सङ्घटित हो जाने से ये भी अपराधी विद्यार्थियों के साथ कालेज से निकाल दिये गये। इनका अपराध केवल यही था कि इन्होंने अधिकारियों के समक्ष अपने सहपाठियों के विरुद्ध साक्षी न दी। मेडिकल कालेज से निकल कर ये क़ानून पढ़ने लगे और जब ये क़ानून की परीक्षा में शामिल हुए तब यहाँ भी इनका दुर्भाग्य आड़े आया। उस परीक्षा के प्रश्न-पत्र प्रकट हो गये थे। अतएव वह परीक्षा रद्दी कर दी गई। अब तक राजेन्द्र बाबू सब विघ्न-बाधाओं का सामना वीरता से करते रहे, पर इस बार वे अधिक दृढ़ न रह सके। अब ये पढ़ना-लिखना बन्द कर नौकरी की चिन्ता में लीन हुए। इस समय इनका वय केवल २२ वर्ष का था।

सौभाग्यवश राजेन्द्र बाबू को एक अच्छी नौकरी मिल गई। बङ्गाल की एशियाटिक सोसायटी में एक बहुभाषा-विद् विद्वान् की आवश्यकता थी। उस संस्था के अधिकारियों ने राजेन्द्र बाबू को सोसायटी के पुस्तकाध्यक्ष तथा सहकारी मंत्री का पद प्रदान किया। इस पद पर ये दस वर्ष तक काम करते रहे और यही इनके उत्कर्ष का द्वार हुआ। सोसायटी में रह कर इन्होंने संस्कृत, फ़ारसी और लेटिन का भी अध्ययन किया और काम चलाऊ फ्रेञ्च, जर्मन तथा ग्रीक भी सीख ली। अँगरेज़ी तो ये अँगरेज़ की भाँति बोल और लिख सकते थे। इनके सिवा ये उड़िया, हिन्दी और उर्दू आदि प्रान्तिक भाषायें भी जानते थे। बँगला तो उनकी मातृ-भाषा ही थी। इस प्रकार ये कई एक भाषाओं के पूर्ण पण्डित ही न हो गये, किन्तु अनवरत अध्ययन कर इन्होंने सोसायटी के ऐतिहासिक खोज-सम्बन्धी कार्य में भी पारदर्शिता प्राप्त कर ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोसायटी में आ जाने से राजेन्द्र बाबू को अपनी प्रतिभा का परिचय देने का अच्छा अवसर मिल गया। अतएव इन्होंने अपने अध्ययन के द्वारा प्राप्त ज्ञान का सदुपयोग करना प्रारम्भ किया। सोसायटी के जर्नल में इनके निबन्ध प्रकाशित होने लगे। यहाँ तक कि अपने पद से पृथक् हो जाने पर भी ये अपने गवेषणापूर्ण पुरातत्त्व-सम्बन्धी लेख उक्त जर्नल में बराबर प्रकाशित कराते रहे। इनमें से लगभग ११४ निबन्धों का सङ्ग्रह, कई भागों में, पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ है। इनके सिवा इन्होंने The Antiquities of Orissa (2Vols.), Bodh Gaya और Indo-Aryan (2 Vols.) नामक उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखे। इनका मनन करने से विदित हो जाता है कि ये किस कोटि के विद्वान् थे। अगाध पाण्डित्य, गम्भीर खोज, सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति और गवेषणा इनके लेखों और पुस्तकों से पूर्णतया लक्षित होती है। इनकी सम्पूर्ण रचना १२८ जिल्दों में है, जिनकी पृष्ठ-संख्या ३३,००० के लगभग पहुँचती है।

राजेन्द्र बाबू के जो निबन्ध पूर्वोक्त जर्नल में प्रकाशित होते थे उनकी प्रशंसा योरपीय तथा भारतीय विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से की है। भारतीय शिल्प-कला के सम्बन्ध में जो निबन्ध तथा पुस्तकें इन्होंने समय समय पर प्रकाशित की हैं वे अनेक दृष्टियों से इनकी उत्कृष्ट रचनायें गिनी गई हैं। इन्होंने अपने विवेचना-पूर्ण लेखों में यह बात सिद्ध कर दी है कि भारतीय शिल्प-कला यूनानी शिल्प-कला से बिलकुल भिन्न है। इस सम्बन्ध में इनका जो विवाद विद्वद्वर फ़र्गुसन से वर्षों तक छिड़ा रहा उसमें इन्हीं को विजय प्राप्त हुई। फ़र्गुसन साहब का यह मत था कि भारतीय शिल्प-कला यूनानियों की ऋणी है, पर राजेन्द्र बाबू ने इनकी दलीलों को निस्सार प्रमाणित कर दिया।

राजेन्द्र बाबू ने पुस्तक लिखने के सिवा बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद तथा प्राचीन हस्त-लिखित संस्कृत-पुस्तकों की खोज का काम भी किया है। Bibliotheca Indica नाम की जो ग्रन्थमाला सोसायटी ने प्रकाशित करना प्रारम्भ की थी उसमें इनका पूरा हाथ था। उसी के लिए इन्होंने 'ललिथ विस्थर' का सम्पादन तथा उसके मुख्य मुख्य अंशों का अँगरेज़ी में अनुवाद भी किया था। 'प्रज्ञा विस्थर' नामक एक दूसरे बौद्ध ग्रन्थ का सम्पादन भी इन्होंने प्रारम्भ किया था। संस्कृत-पुस्तकों की खोज के काम में इन्होंने देश की ख़ूब यात्रा की और इस सम्बन्ध में जो रिपोर्ट लिखी थी वह इस समय भी उपयोगी समझी जाती है।

राजेन्द्र बाबू जैसे विद्वान् और प्रतिभासम्पन्न थे वैसे ही परिश्रमी और अध्यवसायी भी थे। एशियाटिक सोसायटी का भारी भार वहन करते समय ये अपनी मातृ-भाषा में सामयिक पत्र ही न निकालते थे, किन्तु स्वयं उनका सम्पादन भी करते थे। इन्होंने सन् १८५० में 'विविधार्थ सङ्ग्रह' नामक एक सचित्र सामयिक पत्र निकाला। यह पत्र विज्ञान तथा साहित्य-सम्बन्धी था और ७ वर्ष तक चलता रहा।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, राजेन्द्र बाबू १० वर्ष तक सोसायटी में रहे। इसके बाद गवर्नमेंट ने इनको सन् १८६५ में कलकत्ते के 'वार्डस् इन्स्टीट्यूशन' के डायरेक्टर का पद प्रदान किया। इस संस्था में बङ्गाल के बड़े ज़मींदारों के सन्तानों को शिक्षा देने की व्यवस्था की गई थी। ये इस पद पर कई वर्ष तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य करते रहे। इसी समय गवर्नमेंट ने इन्हें राय बहादुर और सी० आई० ई० की उपाधियाँ प्रदान कीं। परन्तु यह संस्था अधिक समय तक न चल सकी। जिन ज़मींदार बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध उसमें किया गया था वे अध्ययन की ओर जैसा चाहिए वैसा ध्यान न देते थे। राजेन्द्र बाबू उन पर अपना प्रभाव न जमा सके और अपने रहन-सहन में सर्वथा स्वतन्त्र होने के कारण वे अधिकतया विलासी और उच्छृङ्खल हो गये। इस पर समाचार-पत्रों ने राजेन्द्र बाबू की कड़ी टीका-टिप्पणी की। इसका परिणाम यह हुआ कि उक्त संस्था तोड़ दी गई और इनको पेंशन मिल गई। इसी अवसर पर कलकत्ता विश्वविद्यालय ने इन्हें डी० एल० की डिग्री प्रदान कर सम्मानित किया। पेंशन हो जाने के कुछ समय बाद गवर्नमेंट ने इन्हें राजा की पदवी प्रदान कर ५०० रुपये मासिक की एक विशेष पेंशन नियत कर दी। इस तरह गवर्नमेंट ने इनको सब प्रकार से सम्मानित किया। कलकत्ता कार्पोरेशन का सङ्गठन होने पर ये गवर्नमेंट द्वारा उसके सदस्य मनोनीत किये गये। ये कलकत्ता विश्वविद्यालय के भी सदस्य थे और सेंट्रल टेक्स्ट् बुक कमेटी के सभापति की हैसियत से इन्होंने शिक्षा के सम्बन्ध में भी प्रशंसनीय कार्य किये। ये बङ्गाल लैंड होल्डरस् असोसिएशन के भी नेता थे। इन्होंने ज़मीदारों के हित के लिए भी परिश्रम के साथ काम किये। अतएव वे लोग इनका समुचित समादर करते थे। ये कांग्रेस में भी शामिल थे और इन्होंने कलकत्ते के अधिवेशन में स्वागत-कारिणी सभा के सभापति की हैसियत से विवेचना-पूर्ण व्याख्यान पढ़ा था। प्रसिद्ध सम्पादक कृष्टोदास पाल की मृत्यु के बाद इन्होंने 'हिन्दू पेट्रियट' का प्रबन्ध-भार अपने ऊपर ले लिया था। यही नहीं उसकी उन्नति के लिए इन्होंने अपना सारा धन लगा दिया था। इस प्रकार निरन्तर घोर परिश्रम करते रहने के कारण इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और सन् १८९१ में पक्षाघात से आक्रान्त होने पर इनकी मृत्यु हो गई।

यद्यपि राजेन्द्र बाबू के जीवन-काल में अनेक लोग इनके चरित्र के सम्बन्ध में प्रायः कड़ी टीका-टिप्पणी किया करते थे, तो भी लोग इन्हें विद्वान् के रूप में आदर करते थे। इनके सम्बन्ध में अध्यापक मैक्समूलर ने जो लिखा है उसका सारांश यहाँ देकर बङ्गाल के इस उद्भट विद्वान् का जीवन-परिचय समाप्त किया जाता है। मैक्समूलर ने लिखा है—

राजेन्द्र बाबू पण्डित तो हैं ही, पर वे विद्वान् तथा आलोचक भी हैं। उनकी आलोचना सदैव पक्षपात-रहित होती है। जातीय संस्कार के कारण उनके भारतीय इतिहास तथा साहित्य-सम्बन्धी विचार भली भाँति भ्रमपूर्ण नहीं हुए........पाण्डित्य के क्षेत्र में हमारे योरपीय संस्कृत-विद्वानों को उनका सामना करने के लिए घोर परिश्रम करना पड़ेगा।

गिरिजाशङ्कर वाजपेयी

——

उद्योतकर और वाचस्पति मिश्र।

पण्डितप्रवर भारद्वाज उद्योतकर ने न्याय-वार्त्तिक नामक ग्रन्थ लिखा है। उस पर सर्वतन्त्रस्वतन्त्र वाचस्पति मिश्र ने न्यायवार्त्तिकतात्पर्य नामक टीका की रचना की है। भगवान् गौतम के न्यायसूत्रों पर तथा वात्स्या-यन-रचित न्यायसूत्र भाष्य पर बौद्धों के आक्षेपों का खण्डन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिए भारद्वाज ने न्यायवार्तिक बनाया है। ग्रन्थ के प्रथम श्लोक में इसी बात का उल्लेख है—

यदक्षपादः प्रवरो मुनीनां शमाय शास्त्रं जगतो जगाद।
कुतार्किकाज्ञाननिवृत्तिहेतुः करिष्यते तस्य मया निबन्धः॥

अर्थ—मुनिवर गौतम ने जगत्-हित के लिए जो शास्त्र कहा है उस पर कुतार्किक दिङ्नाग आदि कृत अज्ञान के विनाशक ग्रन्थ की रचना करूँगा। मिश्रजी की तात्पर्य-टीका भी विपक्षियों के तर्क के खण्डन से वार्त्तिक का उद्धार करती है। जैसा कि मिश्रजी के प्रारम्भिक चतुर्थ श्लोक से स्पष्ट है—

इच्छामि किमपि पुण्यं दुस्तरकुनिबन्धपङ्कमग्नानाम्।
उद्योतकरगवीनामतिजरतीनां समुद्धरणात्॥

अर्थात्—नास्तिकों के दुस्तर ग्रन्थरूप कीचड़ में फँसी हुई उद्योतकर की बूढ़ी वाणियों के उद्धार से कुछ पुण्य चाहता हूँ।

न्यायशास्त्र के "प्रमाणप्रमेय०" इत्यादि प्रथमसूत्र से शास्त्र और निश्रेयस का हेतु हेतुमद्भाव रूप सम्बन्ध प्रतिपादित है। प्रमाण आदि के ज्ञान द्वारा शास्त्र निश्रेयस-प्राप्ति में हेतु है। यहाँ यह शङ्का होती है कि प्रमेय आदि पदार्थों का तत्त्वज्ञान प्रमाण के तत्त्वज्ञान के अधीन हैं। अनिश्चित प्रमाण द्वारा विषय का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। विषय का भ्रान्ति-रहित ज्ञापन ही प्रमाण का प्रामाण्य है। प्रामाण्य का निश्चय किसी रीति से भी नहीं हो सकता। ज्ञान का प्रामाण्य स्वयं ज्ञान ही नहीं ग्रहण कर सकता। जब ज्ञान के स्वरूप का ही निश्चय नहीं है तब प्रामाण्य का निश्चय कैसे हो सकता है। अन्य ज्ञान भी प्रामाण्य के निश्चय में समर्थ नहीं होते हैं। अन्यज्ञान के प्रामाण्य का भी निश्चय नहीं है। अतएव वह पूर्व-ज्ञान के प्रामाण्य का निश्चय नहीं करा सकता। दूसरे का तीसरे से तीसरे का चतुर्थ से यदि निश्चय हो तो अनवस्था होगी। चतुर्थ अथवा पञ्चम ज्ञान के प्रामाण्य का यदि उसी ज्ञान से निश्चय हो तो प्रथम ज्ञान के प्रामाण्य का निश्चय प्रथम ज्ञान से क्यों न हो? ज्ञान अपने प्रामाण्य के निश्चय में स्वयं ही असमर्थ है। यह बात ऊपर कह दी गई है। इसलिए प्रमाण आदि पदार्थों के तत्त्वज्ञान द्वारा शास्त्र निश्रेयस में हेतु नहीं है, इस शङ्का का समाधान भाष्यकार ने इस प्रकार किया है। "प्रमाणतोऽर्थप्रतिपत्तौ प्रवृत्तिसामर्थ्यादर्थवत्प्रमाणम्" इसका अर्थ वार्त्तिककार तथा टीकाकार ने विस्तार से किया है। उसका संक्षेप यहाँ दिया जाता है:—

प्रमाण द्वारा अर्थज्ञान के हो जाने पर सफलाप्रवृत्ति से प्रामाण्य का निश्चय होता है। इस पर यह आक्षेप किया जाता है कि "परस्परापेक्षत्वादुभयासिद्धिरिति चेत्" (न्या० वा०) अर्थात् वस्तु का ज्ञानमात्र ही प्रवृत्ति में हेतु नहीं होता है, किन्तु जिस जाति से युक्त पदार्थों की प्राप्ति पहले इष्ट की सिद्धि में कारण हुई है उसी जातिवाले पदार्थ का ज्ञान इस समय उसी जाति का है। अतएव यह पदार्थ भी इष्टसिद्धि में कारण है, ऐसा निश्चय प्रवृत्ति में हेतु है। और अर्थ का निश्चय प्रामाण्य निश्चय के बिना नहीं है। प्रामाण्य का निश्चय और इष्टकारणता के अनुमान में निमित्त और व्याप्तिज्ञान ये दोनों सफल-प्रवृत्ति के बिना नहीं और सफल-प्रवृत्ति इन दोनों के बिना नहीं है। इसलिए अन्योन्याश्रय दोष के कारण प्रमाण द्वारा अर्थ का निश्चय और सफल-प्रवृत्ति, इन दोनों की सिद्धि न होगी। इस आक्षेप का परिहार इस प्रकार किया गया है—"न अनादित्वात्" (न्या० वा०) जिनका फल दृष्ट है और जो अभ्यास दशा में नहीं है उन ज्ञानों के प्रामाण्य का अनुमान सफल-प्रवृत्ति से होता है। प्रवृत्ति अर्थज्ञान के अधीन है। यह अर्थ निश्चय के अधीन नहीं है। अर्थ के सन्दिग्ध होने पर भी प्रवृत्ति होती है। उपाय का निश्चय कर लेने पर भी प्रवृत्त लोगों को भावि फल के सम्बन्ध में सन्देह रहता है। फल-प्राप्ति के निश्चय से ही किसानों की खेती में प्रवृत्ति नहीं होती। सम्भव है, वर्षा के न होने से फल की प्राप्ति न हो। इसलिए सन्देह से भी प्रवृत्त हुए लोग सफल-प्रवृत्ति के कारण प्रमाण के प्रामाण्य को निश्चित कर उस की जातिवाले किसी दूसरे प्रमाण के प्रामाण्य की सफल-प्रवृत्ति से पहले ही अर्थ के निश्चय से प्रवृत्त होते हैं। फल-ज्ञान भी कई बार हुआ है, अतएव पूर्व-फल-ज्ञान के सजातीय होने से प्रामाण्य युक्त है। यही बात पूर्व-पूर्व के फल-ज्ञान में भी जाननी चाहिए। जिस फलज्ञान में स्वप्नकाल के सुख दुःखादि के अनुभव के समान यथार्थता का संशय हो उसका अभ्यास नहीं होता। अतएव उस समय सफल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवृत्ति ही प्रामाण्य के निश्चय में कारण होती है। पूर्वज्ञान सजातीयत्वरूप हेतु को ग्रहण करनेवाले मानसज्ञान के कभी अयथार्थ न होने से ज्ञान में सर्वथा भ्रान्ति की शङ्का नहीं होती है। इसलिए प्रामाण्य स्वतः सिद्ध है।

अनुमान का जन्म प्रामाण्ययुक्त हेतु से होता है, इसलिए अनुमान का भी प्रामाण्य स्वतः सिद्ध है। क्योंकि हेतुज्ञान हेतु के बिना और हेतु साध्य के बिना नहीं होता। इसी लिए यथार्थ हेतु से भ्रमहीन ज्ञान का उदय होता है। उपमान ज्ञान का भी प्रामाण्य स्वतः सिद्ध है। जैसी गौ होती है वैसा ही गवय होता है, इत्यादि वाक्य के अर्थ-सादृश्य के ज्ञान में प्रामाण्य का सन्देह नहीं रहता। प्रत्यक्ष ज्ञान की उत्पत्ति सत्तावाले पदार्थ से होती है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि पदार्थ का स्वरूप प्रत्यक्ष ज्ञान के अनुसार ही हो। शब्द से उत्पन्न ज्ञान का भी जन्म विषय से नहीं होता, क्योंकि अर्थ के अभाव में शब्द की सत्ता में ज्ञान उत्पन्न होता है। चोर के अभाव में भी चोर आया है, इस वाक्य से श्रोता को चोर के आने का बोध होता है। हेतु के समान शब्द का नियत सम्बन्ध विषय से भी नहीं है। किन्तु यह शब्द इस अर्थ का वाचक है, इस सङ्केत के ज्ञान से पदों के अर्थों के ज्ञान द्वारा वाक्य के अर्थ का बोध शब्द कराता है। इसलिए प्रत्यक्ष और शब्द-ज्ञान में प्रामाण्य का निश्चय सफल-प्रवृत्ति से वा पूर्वज्ञानसजातीयत्व रूप हेतु से होता है।

"प्रमाणतोऽर्थप्रतिपत्तौ" इत्यादि वाक्य का दूसरा तात्पर्य है, यह कह कर शङ्का की जाती है। भगवान् गौतम ने शास्त्र से प्रत्यक्ष आदि के द्वारा आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख, अपवर्ग-इन बारह त्याज्य और ग्राह्य प्रमेयों के ज्ञान के लिए न्याय का उपदेश दिया, जिससे मोक्ष हो। न्याय का दूसरा नाम अनुमान है। और मुक्ति, प्रमाण द्वारा केवल प्रमेय के के निश्चय से नहीं प्राप्त होती, किन्तु आत्मा और अपवर्ग को छोड़कर शरीर आदि दस प्रमेयों में दुःखभावना और आत्मा में यथार्थ भावना इत्यादि की प्रवृत्ति से मुक्ति का उदय होता है। इसलिए न्याय के अनुसार मुक्ति-प्राप्ति में प्रवृत्ति प्रधान कारण है। तब शास्त्र में प्रवृत्ति का ही उपदेश आवश्यक है, न्याय का नहीं है। इस शङ्का का उत्तर यह है कि प्रमाण से वस्तु-ज्ञान के अनन्तर ही प्रवृत्ति का सम्बन्ध फल से होता है। इसलिए प्रमाण भी प्रवृत्ति के समान प्रयोजनवाला है। तात्पर्य यह है कि प्रमाणाभास से प्रवृत्ति का सम्बन्ध फल के साथ नहीं होता, किन्तु प्रमाण के साथ होता है। प्रमाण के उपदेश से प्रवृत्ति का उपदेश हो जाता है। इसलिए शास्त्र में प्रमाण का उपदेश है, प्रवृत्ति का नहीं है।

तीसरा तात्पर्य इस प्रकार है—जो व्यक्ति प्रमाण से ज्ञान के उपाय का खण्डन करता है उससे पूछना चाहिए कि आपने प्रमाण से खण्डन किया है या अप्रमाण से! यदि प्रमाण से खण्डन करना बताया जाय तो कहना चाहिए कि प्रमाण ज्ञान के उपाय को न जान कर यह आपने क्यों कहा। यदि अप्रमाण से, तो हमारे अनुकूल होना चाहिए। यदि प्रामाण्य निश्चय से रहित प्रमाण से ? तो वाणी मन में ही विरोध है। इसलिए इच्छा के बिना भी लोक-रीति के पीछे चलिए। नहीं तो, यह न लौकिक है न परीक्षक ऐसा जानकर लोग उपहास करेंगे। यही लोक-रीति "प्रमाणतोऽर्थप्रतिपत्तौ" इत्यादि वाक्य से व्यक्त की गई है।

इसी वाक्य का चौथा तात्पर्य—दुःख और दुःख का हेतु, हानतत्त्वज्ञान, उपाय-शास्त्र, अधिगन्तव्य-मोक्ष इस चतुर्वर्ग में तथा प्रमाण-प्रमा-प्रमेय-प्रमाता इस दूसरे चतुर्वर्ग में प्रमाण के प्राधान्य दिखाने के लिए यह भाष्य का वाक्य है। प्रमाण के अधीन दूसरे पदार्थों की सिद्धि है, इसलिए प्रमाण प्रधान है। इस प्रकार इस वाक्य के तात्पर्य की व्याख्या कर आगे प्रत्येक पद की व्याख्या की है। यथार्थ ज्ञान के साधन को प्रमाण कहते हैं। सुख और सुख के हेतु तथा दुःख और दुःख के हेतु को अर्थ कहते हैं। प्रवृत्ति के फल के साथ सम्बन्ध को सामर्थ्य कहते हैं।

इसके आगे "प्रमाणप्रमेय०" इत्यादि प्रथम सूत्र के व्याख्यान में संशय, प्रयोजन आदि का साधारण रीति से विवेचन किया गया है। सूत्रकार ने शास्त्र का प्रयोजन मोक्षप्राप्ति कहा है। भाष्यकार ने सब प्रयोजनों में तर्कशास्त्र को निमित्त बताया है। प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् । आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्त्तिता ॥ (भाष्य) मिश्रजी ने इसके अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया है। प्रमाण आदि से निश्चित अर्थ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य विद्याओं की प्रवृत्ति होती है, इसलिए न्यायविद्या दीपक के समान है। इस विद्या से सब तत्त्वों का प्रकाश होता है। प्रमाण आदि से प्रकाशित विषय को अन्य विद्यायें स्फुट करती हैं, इसलिए विद्या से प्रतिपाद्य सब कर्मों में यह विद्या उपाय है। सब विद्याओं को सहायता देती है, इसलिए यह सब आश्रय का है।

द्वितीय सूत्र में सूत्रकार ने इस क्रम का उपदेश दिया है कि दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष, मिथ्याज्ञान—इनमें उत्तरोत्तर मिथ्या ज्ञान आदि के नाश से पूर्व पूर्व दोष आदि के नाश होने पर मोक्ष प्राप्त होता है। कौन मिथ्या ज्ञान संसार का निमित्त है? इसका उत्तर यह है कि हल, कुर्सी आदि का मिथ्या ज्ञान संसार का निमित्त नहीं, किन्तु आत्मा आदि बारह प्रमेय पदार्थों का मिथ्या ज्ञान संसार में हेतु है। प्रमाणबल से सिद्ध आत्मा की सत्ता का न मानना आत्म-विषयक मिथ्याज्ञान है। यहाँ यह शङ्का उठती है कि "तस्यानुपपत्तिः सदसतोः सारूप्याभावादिति चेत्" (न्या० वा०) अर्थात् अत्यन्त भिन्न सत् और असत् में सादृश्य नहीं है, इसी लिए आत्मा में मिथ्या ज्ञान नहीं हो सकता। इसका अभिप्राय यह है कि सीपी में चाँदी का भ्रम, रेत में चलती हुई सूर्य की किरणों के कारण पानी का भ्रम, सीपी और चाँदी का तथा किरण-समूह और जल का सादृश्य निमित्त है। इसी प्रकार अन्य भ्रमों में भी सादृश्य ही निमित्त होता है। सादृश्य के अभाव से ही रूप में रस आदि का वा मच्छर, जूँ आदि में हाथी का भ्रम किसी को नहीं होता। तो क्या जहाँ सादृश्य है वहाँ भ्रम होगा? यदि ऐसा हो तो सब सादृश्यवाले पदार्थों में भ्रम होना चाहिए। इसका उत्तर यह है कि "न च ब्रूमो यत्र सारूप्यं तत्र विभ्रम इति येनातिप्रसक्तिश्चोद्येत। अपि तु यत्र भ्रमस्तत्रावश्यं कथंचित् सारूप्यमिति" (ता० टी०) अर्थात् यह नहीं कहते कि जहाँ सादृश्य है वहाँ भ्रम होगा, किन्तु जहाँ भ्रम है वहाँ सादृश्य अवश्य है। इसलिए सादृश्य के अभाव में आत्मा नहीं है, ऐसा भ्रम कैसे हो सकता है? इस आक्षेप का समाधान यह है कि ("न प्रमाणगम्योपपत्तेः" न्या० वा०) भाव और अभाव में प्रमाण द्वारा ज्ञान का होना सादृश्य है। भाव और अभाव का ज्ञान प्रमाण ही से होता है। भेद केवल यह है कि भाव में क्रिया-गुण हैं और अभाव में नहीं हैं। अभाव के धर्म, क्रिया और गुण के कारण हीनता को सत् आत्मा में आरोप कर पुरुष आत्मा के अस्तित्व को नहीं स्वीकार करता है। इसी बात पर नास्तिकों ने भी आक्षेप किया है कि आत्मा को माननेवाला उसको श्रेष्ठ जान कर उससे स्नेह करता है। स्नेह के कारण उसके उपकार के लिए प्रयत्न करता है। उसके शत्रु से द्वेष करता है। द्वेष के कारण शत्रु के अपकार के लिए प्रयत्न करता है। तब जन्म को और फिर दुःख को पाता है। इसलिए मनुष्य के लिए आत्मा के तत्त्वज्ञान से आत्मा का मिथ्या ज्ञान ही अच्छा है। उससे वह प्रवृत्त तो नहीं होता। इसका उत्तर इस प्रकार दिया गया है:—यद्यपि नास्तिकता, रागादि की निवृत्ति में कारण है तथापि धर्म अधर्म नहीं हैं और उनका फल भी नहीं होता तथा जन्म मरण नहीं होता। इस ज्ञान के जन्म में भी हेतु है। तब नास्तिक दुःख के कारण के अभाव में उसका त्याग करने के लिए प्रयत्न नहीं करेगा। प्रयत्न के अभाव में वह दुःख का त्याग कैसे कर सकेगा। इस प्रकार बिच्छू के डर से भागता हुआ वह साँप के मुँह में जा पड़ा। इसलिए आत्मा की सत्ता माननी ही चाहिए। क्योंकि आत्मा के तत्त्व-ज्ञान से सब दुःखों का सर्वथा नाश हो जाता है। आत्मा से भिन्न शरीर आदि में आत्मा का ज्ञान भी विपरीत है। आत्मा का शरीर आदि के साथ में इस बोध में विषय होना सारूप्य है। इच्छा, द्वेष आदि का आधारपन ही भेद है। पुरुष शरीर आदि में इच्छा आदि के आधारपन का आरोप कर इस आत्मभाव को शरीर आदि में आरोप कर लेता है। शरीर आदि सम्बन्धी मिथ्या ज्ञान का उल्लेख भाष्य में पूर्णरूप से किया गया है। मिथ्या ज्ञान का नाश उसके विरोधी तत्त्वज्ञान से होता है। मिथ्याज्ञान के नाश के अनन्तर दोषों की निवृत्ति तथा उनके निवृत्त होने पर प्रवृत्ति अर्थात् धर्म और अधर्म एक भी नहीं रह जाते। भावि धर्म और अधर्म का दोष न होने से अभाव है। फल के अनन्तर वर्तमान धर्म और अधर्म के सुख-दुःख का विनाश हो जाता है। धर्म और अधर्म के अभाव से आगामी जन्म नहीं होता। वर्तमान शरीर की स्थिति के कारण-स्वरूप धर्म और अधर्म के अभाव में इस शरीर का भी विनाश होगा। फिर, जन्म के अभाव में दुःख का उदय न होगा। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार सब गुणों से रहित जीव मुक्त कहा जाता है। इस पर यह आक्षेप किया जाता है कि पुरुष दुःख के भय से सुख को क्यों छोड़ देता है। पण्डितों का तो यह काम है कि दुःख का त्याग कर सुख को ग्रहण कर लेते हैं। क्या पशुओं के भय से किसान खेती करना छोड़ देते हैं? इसका यह उत्तर दिया जाता है कि सुख-दुःख यद्यपि भिन्न हैं तथापि परस्पर अत्यन्त मिले हुए हैं। केवल सुख का ग्रहण अथवा केवल दुःख का त्याग नहीं हो सकता। इसलिए मधु और विष से युक्त अन्न के समान दुःख से मिश्रित सुख का त्याग ही उचित है।

तृतीय सूत्र से प्रमाणों का विभाग होता है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द—यही चार प्रकार के प्रमाण होते हैं। प्रथम सूत्र से प्रमाण आदि पदार्थों को नाममात्र से कहा है। अब उन सबके लक्षण बताये जायँगे। तृतीय सूत्र से जो चार प्रकार के प्रमाण बताये गये हैं उनमें प्रत्यक्ष प्रमाण प्रधान है। इसका लक्षण चतुर्थ सूत्र में दिया है। "इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्"—इस सूत्र की व्याख्या में प्रसङ्गवश उन विषयों का भी विवेचन किया गया है जिनका वर्णन आगे के सूत्रों में भी आया है। अतएव उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जायगा। इस सूत्र का अर्थ इस प्रकार है—इन्द्रिय और विषय के सम्बन्ध से उत्पन्न जाति आदि के स्वरूप से मुक्त भ्रान्ति तथा संशय से रहित ज्ञान प्रत्यक्ष है। इस सूत्र में जो 'सन्निकर्ष' पद आया है उसका प्रयोजन यह है—"संयोगपदोपादाने हि न समवायो लभ्यते समवायपदोपादाने वा न संयोगः। सन्निकर्षपदोपादानेत्वभिमतलाभः" ता० टी०। अर्थात् संयोग पद से न तो समवाय सम्बन्ध का लाभ होता है और न समवाय पद से संयोग का। पर सन्निकर्ष पद से संयोग, संयुक्त समवाय, संयुक्तसमवेतसमवाय, समवाय, समवेतसमवाय, विशेषण-विशेष्य भाव, इन छः प्रकार के सम्बन्धों का लाभ होता है। चक्षु से घट के ज्ञान में चक्षु की किरणों का घट के साथ संयोग सम्बन्ध है। चक्षु द्वारा घट के रूप के ज्ञान में रूप के साथ संयुक्त समवाय सम्बन्ध है; क्योंकि नेत्र की किरणों से संयुक्त घट में रूप समवाय सम्बन्ध से रहता है। रूप में समवाय सम्बन्ध से रहनेवाली जाति के साथ नेत्र का संयुक्त समवेत समवाय सम्बन्ध है। कान से शब्द ज्ञान के लिए कान की झिल्ली से युक्त आकाश का शब्द के साथ समवाय सम्बन्ध है। दण्ड और ढोल के संयोग से शब्द का जन्म होता है। उस शब्द से दूसरे शब्दों की उत्पत्ति होती है। जिस शब्द का कान की झिल्लीवाले आकाश से समवाय होता है उसका ज्ञान होता है। शब्द में रहनेवाली जाति के साथ कर्णेन्द्रिय का समवेत समवाय सम्बन्ध है। श्वेत पीतरूपादि गुणों के कारण क्रिया और जाति से युक्त द्रव्य का अनुभव होता है। यह द्रव्य के सम्बन्ध का अनुभव सम्बन्ध-ज्ञान के बिना नहीं हो सकता। सम्बन्ध समवाय है, इन्द्रिय का समवाय के साथ संयोग-सम्बन्ध नहीं होता। क्योंकि समवाय द्रव्य नहीं और संयोग द्रव्यों में ही होता है। समवाय भी नहीं, क्योंकि एक समवाय ज्ञान के लिए दूसरे समवाय सम्बन्ध के मानने में अनवस्था होगी। इसलिए समवाय के ज्ञान के लिए विशेषण विशेष्यभाव सम्बन्ध आवश्यक है। इसी प्रकार अभाव का ज्ञान भी विशेषण विशेष्यभाव से होता है। इन्द्रिय से संयुक्त भूमि में घट के तथा कर्णेन्द्रिय में समवाय-सम्बन्ध से वर्तमान आकार में अनुदात्तस्वर के अभाव का बोध विशेषणभाव से होता है। सूत्र में ज्ञानपद इसलिए प्रयुक्त हुआ है कि सुख आदि का जन्म इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से होता है, अतएव उन्हीं में लक्षण न घट जाय। अव्यपदेश्य पद से नाम जाति आदि से रहित प्रत्यक्ष ज्ञान का ग्रहण होता है। अव्यभिचारि पद का प्रयोजन यह है कि रेत में सूर्य की किरणों में जो जल का बोध होता है वह प्रत्यक्ष न कहा जाय। व्यवसायात्मक पद का प्रयोजन भाष्यकार तथा वार्तिककार के मत में यह है कि दूर स्थित वस्तु में धूल है वा धूम है, इस प्रकार का जो संशयात्मक ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष न कहा जाय। तात्पर्य टीकाकार का तो अभिप्राय यह है कि अव्यभिचारि पद से ही संशय ज्ञान की निवृत्ति हो जाती है। संशय ज्ञान में भी वस्तु के अपने स्वरूप का लाभ नहीं होता। अपने स्वरूप के न मिलने पर वह भ्रान्ति से हीन नहीं कहा जा सकता। इसलिए अव्यभिचारि पद से ही संशय ज्ञान के निवृत्त होने पर सविकल्पक प्रत्यक्ष ज्ञान का व्यवसायात्मक पद से ग्रहण होता है। संशय ज्ञान प्रत्यक्ष न कहा जाय, यह फल प्रधान नहीं है। जैसे लकड़ी लेने के लिए वन में जाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाक भी ले आना—इस प्रकार की आज्ञा देकर भेजनेवाले गुरु आदि का प्रधान प्रयोजन लकड़ी लाने का ही है शाक लाने का नहीं। व्यवसाय—विकल्प वह ही है आत्मा—स्वरूप जिसका उस ज्ञान को सविकल्पक प्रत्यक्ष कहते हैं। यह सब अतिस्पष्ट होने से भाष्यकार तथा वार्त्तिककार ने विशद रूप से व्याख्या नहीं की। "त्रिलोचनगुरून्नीतमार्गानुगमनोन्मुखैः । यथा मानं यथा वस्तु व्याख्यातमिदमीदशम्" ता० टी०। अर्थ—त्रिलोचन गुरु द्वारा प्रदर्शित मार्ग को अनुधावन करते हुए हमने प्रमाण के अनुकूल तथा वस्तु स्वरूप के अनुसार इस प्रकार की व्याख्या की है। यहाँ बौद्धों ने आक्षेप किया है कि सविकल्पक ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। क्योंकि इन्द्रिय और विषय से अर्थाकार ज्ञान उत्पन्न होता है। उस ज्ञान का शब्द के साथ सम्बन्ध असम्भव है। इसका कारण यह है कि न तो विषय का आधार शब्द हैं और न शब्द ही विषय-स्वरूप हैं। यदि शब्द विषय से अभिन्न हों तो जो व्यक्ति जिस पदार्थ के वाचक शब्द को नहीं जानता उसको वाचक शब्द का ज्ञान होना चाहिए। और रूप आदि भी यदि शब्दस्वरूप हों तो रूप आदि के भी कान द्वारा ग्राह्य होने से अन्धा भी रूप आदि को जान ले। फिर विषय, स्पर्श से रहित शब्दज्ञान का धर्म भी नहीं है। इसलिए अर्थ-जन्य ज्ञान अर्थ का प्रकाश करेगा, शब्द का नहीं। शब्द-मिश्रित विकल्प ज्ञान अर्थ से नहीं, किन्तु अनादि विकल्प-वासना से जन्म लेता है। निर्विकल्पक अनुभव द्वारा इसकी सत्ता है, इसलिए ज्ञाता लोग इसको भी अनुभव मानते हैं। सविकल्पक ज्ञान अर्थ से उत्पन्न नहीं होता, इसका क्या प्रमाण? इसका यह उत्तर दिया गया है कि अर्थ के सामान्य ज्ञान के अनन्तर वाचक शब्द का स्मरण होता है। फिर सविकल्पक ज्ञान होता है। इस ज्ञान का विषय विकल्प-रहित तथा शब्द-सम्बन्ध सहित ज्ञान की अवस्था से युक्त है। इन्द्रिय और अर्थ से इस ज्ञान का उदय नहीं हो सकता, क्योंकि बीच में वाचक शब्द के स्मरण से व्यवधान हो जाता है। इस प्रकार यह ज्ञान अपने जन्म में अर्थ से निरपेक्ष है। अर्थनिरपेक्ष ज्ञान का सम्बन्ध शब्द के साथ होता है। इसलिए सविकल्पक प्रत्यक्ष नहीं है। इसका परिहार इस प्रकार हुआ है—जाति, गुण आदि से युक्त शब्द सम्बन्ध के योग्य स्थिर पदार्थ से उत्पन्न ज्ञान विषय से उत्पन्न तथा शब्दसम्बन्ध योग्य क्यों न होगा। यद्यपि शब्द और अर्थ का अभेद नहीं है, तथापि अर्थ का शब्द के साथ सम्बन्ध है। अतएव पहले शब्द-सम्बन्ध से रहित अर्थज्ञान के अनन्तर शब्द-विषयक संस्कार उत्पन्न होता है। फिर यह संस्कार शब्द की स्मृति को उत्पन्न करता है। इसलिए निर्विकल्पक से पीछे उत्पन्न हुआ ज्ञान शब्दपूर्वक होता है। विकल्प ज्ञान की उत्पत्ति में शब्दस्मरण से कोई लाभ नहीं होता है। हाँ, जिस समय जिस शब्द का सङ्केत जिस विषय के साथ पहले ज्ञात हुआ था उस अवस्था के स्मरण की आवश्यकता है। क्योंकि सङ्केत काल तथा वर्तमान काल में स्थिर एक वस्तु का ज्ञान इन्द्रिय से होता है। सङ्केत-काल की अवस्था का स्मरण इन्द्रिय से विकल्प की उत्पत्ति में व्यवधान नहीं डालता, किन्तु वह इन्द्रिय का सहकारी है। यद्यपि केवल इन्द्रिय का विषय बीती हुई सङ्केत काल की अवस्था नहीं है, तथापि स्मरण-सहकृत इन्द्रिय से उत्पन्न ज्ञान का विषय बीती हुई अवस्था भी है। सहकारी के अभाव में इन्द्रिय विकल्प की उत्पत्ति में अस-मर्थ रहती है। जैसे भूमि, जल आदि सहकारियों से हीन बीज अङ्कुर की उत्पत्ति नहीं कर सकता। इसी प्रकार स्मरण-सहकृत इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न सविकल्पक ज्ञान विषय से निरपेक्ष नहीं होता। इसलिए सविकल्पक प्रत्यक्ष है।

प्रत्यक्ष, अनुमान की उत्पत्ति में निमित्त है। उसका लक्षण कह दिया गया है। इसके बाद अनुमान का लक्षण आता है। "अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामा-न्यतोदृष्टं च" अर्थात् प्रत्यक्ष के अनन्तर अनुमान का लक्षण करते हैं। वह तीन प्रकार का है—पूर्ववत्, शेषवत्, सामा-न्यतोदृष्ट। अनुमान प्रमाण ही नहीं है, इस प्रकार के वक्ता से पूछना चाहिए कि आपका "अनुमान अप्रमाण है", यह वचन मूर्ख वा संशययुक्त अथवा भ्रान्त मनुष्य के प्रति प्रयोजनवाला होगा और अन्य मनुष्य में रहनेवाले संशय, अज्ञान वा भ्रमरूप के समान प्रत्यक्ष तो है नहीं। यदि यह कहा जाय कि उसके वचन से वे प्रतीत होते हैं। तब पूछा ही जायगा कि आप तो प्रत्यक्ष से भिन्न वचन को भी प्रमाण नहीं मानते। यदि आपका वचन किसी मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रति नहीं कहा गया है तो वह विचार योग्य नहीं है। इसलिए अनुमान प्रमाण मानना चाहिए। अनुमान द्वारा दूसरे मनुष्य के सन्देह आदि का बोध हो जाता है। व्याप्तिज्ञान से उत्पन्न ज्ञान को अनुमान कहते हैं। जिस पुरुष ने रसोई आदि में वह्नि और धूम के सम्बन्ध को देखा है वह पहले सन्देह करता है कि इन दोनों का सम्बन्ध स्वाभाविक है या उपाधिकृत है, अथवा धूम का उपाधि से है और वह्नि का स्वाभाविक है या धूम का स्वभाव से है और वह्नि का उपाधि से है। निर्धूम आग गीली लकड़ी के अभाव में तपे हुए लोहे में देखी जाती है, इसलिए इसका धूम के साथ उपाधिकृत सम्बन्ध है। आग के बिना धूम कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता, अतएव धूम का स्वाभाविक सम्बन्ध है। परन्तु जब वह पर्वत आदि में धूम को देखता है तब उसे यह स्मरण होता है कि धूम वह्नि से व्याप्य है, फिर वह्नि से व्याप्य धूमवाला यह पर्वत है—इस प्रकार का ज्ञान उसे होता है। इस ज्ञान को परामर्श कहते हैं। इस परामर्श के अनन्तर पर्वत वह्निवाला है. इस ज्ञान का उदय होता है। इस ज्ञान का नाम अनुमिति है। अनुमान के तीन भेद हैं—अन्वयी, व्यतिरेकी और अन्वय-व्यतिरेकी। जो हेतु पक्ष सपक्ष में रहे और विपक्ष से रहित हो वह अन्वयी है। उदाहरण—परमाणु, आकाश आदि किसी को प्रमेय होने से प्रत्यक्ष हैं, जैसे घट। यहाँ हेतु पक्ष परमाणु आदि में और सपक्ष घट आदि में है। क्योंकि ये प्रमाण से ज्ञात होते हैं। सब पदार्थों का ज्ञान होता है, इसलिए कोई विपक्ष नहीं है। विपक्ष के अभाव में हेतु विपक्ष में कैसे रह सकता है? जो हेतु पक्ष में रहे, सपक्ष से हीन हो और विपक्ष में न रहे वह व्यतिरेकी है। उदाहरण—जीवित शरीर आत्मा से रहित नहीं है अन्यथा वह प्राण आदि वाला न होता। प्राण आदि से रहित घट आदि आत्मा से शून्य होते हैं। शरीर प्राण आदि सहित है, इसलिए आत्म-सहित है। सब जीवित शरीर पक्ष हैं, उनमें हेतु है। सपक्ष की सत्ता नहीं होती। विपक्ष में हेतु नहीं रहता। भाव यह कि घट आदि में प्राण आदि के अभाव के साथ आत्मा के अभाव की व्याप्ति का निश्चय है। जीवित शरीर में प्राण आदि के अभाव की निवृत्ति से आत्मा के अभाव की निवृत्ति होती है। जैसे पर्वत में व्यापक वृक्षत्व निवृत्त होता हुआ व्याप्य आम्रत्व आदि की निवृत्ति कर देता है। जो हेतु पक्ष और सपक्ष में रहे तथा विपक्ष में न रहे वह अन्वयव्यतिरेकी है। उदाहरण—धूम से वह्नि का अनुमान होता है। हेतु पक्ष पर्वत में, सपक्ष रसोई आदि में धूम रहता है। विपक्ष तालाब आदि में वह नहीं रहता। अनुमान के और भी तीन प्रकार हैं—पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट। कारण से कार्य के अनुमान को पूर्ववत् कहते हैं। उदाहरण—ये मेघ वर्षावाले हैं, क्योंकि गम्भीर गर्जते हैं। बहुत बिजली की चमकवाले हैं तथा बहुत बगलेवाले हैं, जैसे वर्षा करनेवाले मेघ। यहाँ कारण मेघ से कार्य वर्षा का अनुमान है। इसी प्रकार बहरे को स्वयं मृदङ्ग पर हाथ मारने से शब्द का अनुमान होता है। मृदङ्ग पर हाथ का आघात कारण है और शब्द कार्य है। कार्य से कारण के अनुमान को शेषवत् कहते हैं। उदाहरण—नदी वृष्टियुक्त देशवाली है, क्योंकि वह वेग से बहती है तथा लकड़ी फल आदि बीच में बहते हैं और भरी हुई है जैसे पूर्ण वर्षावाली नदी। यहाँ कार्य वेग-पूर्वक बहने आदि से कारण वृष्टि से सम्बन्धित्व का अनुमान होता है। जहाँ हेतु साध्य का सम्बन्ध प्रत्यक्ष न हो, किन्तु साध्य-जातीय दृष्टान्त अथवा धर्मी के साथ हेतु का सम्बन्ध प्रत्यक्ष हो वहाँ हेतु से साध्य के अनुमान को सामान्यतोदृष्ट कहते हैं। उदाहरण—इच्छा, द्वेष आदि पराधीन हैं, क्योंकि वे गुण हैं। जैसे रूप आदि हैं। यहाँ इच्छा आदि की पराधीनता के साथ गुणत्व की व्याप्ति का प्रत्यक्ष नहीं, किन्तु रूप आदि गुण घट आदि में आश्रित हैं, यह प्रत्यक्ष है। इच्छा आदि भी गुण हैं, इसलिए गुणत्व हेतु से उनकी परतन्त्रता का अनुमान होता है। प्रत्यक्ष का विषय वर्तमान है और अनुमान का वर्तमान-भूत-भविष्यत् विषय है।

प्रत्यक्ष और अनुमान के लक्षण का उल्लेख हो गया। अब उपमान का लक्षण बताया जाता है। "प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्" अर्थात् प्रसिद्ध गौ आदि के सादृश्य से गवय आदि के ज्ञान को अनुमान कहते हैं। कोई पुरुष जब किसी से यह सुन कर कि जैसी गौ होती है वैसा ही गवय होता है वन में गौ के तुल्य पशु को देखता है तब उसे पहले सुनी हुई बात का स्मरण होता है। स्मरण सहकृत सादृश्य के ज्ञान से उसको यह प्रतीति होती है कि इस पशु का नाम गवय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचस्पति के मत में वैधर्म्यज्ञान से भी उपमान ज्ञान का उदय होता है। किसी ने ऊँट की निन्दा की कि ऊँट को धिक्कार है, उसकी बड़ी लम्बी और टेढ़ी गर्दन है, लम्बे होठ हैं, उसके अङ्ग ऊँचे नीचे हैं और वह कठोर तथा तेज़ काँटों को खाता है। इस निन्दात्मक बात का सुननेवाला जब तदनुरूप पशु देखता है तब वह जान जाता है कि ऊँट यही है। यह ज्ञान अन्य पशुओं से ऊँट में जो वैधर्म्य है उसके बोध से उत्पन्न हुआ है।

उपमान के अनन्तर शब्द का लक्षण आता है। "आप्तोपदेशः शब्दः" अर्थात् जिन्होंने प्रमाणों से पदार्थ का निश्चय किया है, जो सबके उपकार के लिए यथार्थ उपदेश करते हैं, उन आप्त ऋषियों के उपदेश का नाम शब्द है। इसके दो भेद हैं—दृष्टार्थ और अदृष्टार्थ। वक्ता ने जो शब्द कहा है उसके अर्थ का ज्ञान यदि वक्ता को प्रत्यक्ष है तो वह शब्द दृष्टार्थ है, और यदि शब्द के अर्थ का बोध अनुमान से है तो वह शब्द अदृष्टार्थ है। प्रमाण से प्रमेय का ज्ञान होता है, इसलिए प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के लक्षण के अनन्तर आत्मा आदि प्रमेयों का उपदेश सूत्र द्वारा नाम-मात्र से किया गया है। "आत्मशरीरेन्द्रियार्थ-बुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्" अर्थात् आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख, अपवर्ग यह बारह प्रमेय हैं। यद्यपि सुख भी प्रमेय है तथापि वैराग्य के लिए सुख का उल्लेख नहीं किया गया है। मोक्ष आत्मा के लिए है, अतएव प्रमेयों में से प्रधान आत्मा का पहले लक्षण किया गया है। "इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति"। अर्थात् इच्छा आदि आत्मा के लक्षण हैं। इच्छा आदि का आश्रय आत्मा है। इस सूत्र का दूसरा प्रयोजन यह भी है कि इच्छा आदि से आत्मा का अनुमान होता है। जिसने जिस पदार्थ से सुख प्राप्त किया है वह तज्जातीय पदार्थ को सुख का हेतु जान कर उसके ग्रहण की इच्छा करता है। इस प्रकार की इच्छा से सूचित होता है कि व्याप्ति, व्याप्ति-स्मरण आदि का कर्त्ता एक है। यदि बहुत कर्त्ता हों तो एक से ज्ञात पदार्थ की पहचान दूसरा कर्त्ता नहीं कर सकता है। देवदत्त ने जिस वस्तु को देखा है उसके लिए यज्ञदत्त यह नहीं कह सकता है कि देवदत्त ने जिसको देखा था उसको मैं देख रहा हूँ। जिस विषय का अनुभव नहीं किया है उससे भिन्न विषय की पहचान होती है। ऐसा नहीं होता कि जिस स्पर्श का त्वचा से अनुभव किया था उस रूप को देखता हूँ। परन्तु ऊपर के दृष्टान्त से स्पष्ट है कि सुखनिमित्त विषय का अनुभव करनेवाला तथा तज्जातीय पूर्व पदार्थ से भिन्न पदार्थ को अनुमान द्वारा सुख हेतु जाननेवाला एवं फिर उस पदार्थ की प्राप्ति का चाहनेवाला एक है। वह एक शरीर नहीं हो सकता है, क्योंकि बचपन, जवानी और बुढ़ापा इन अवस्थाओं में शरीर भिन्न हो जाता है। इन्द्रिय भी नहीं हो सकती है, क्योंकि एक इन्द्रिय से ज्ञात वस्तु का अन्य इन्द्रिय से प्रत्यभिज्ञान न हो सकेगा। परन्तु यह होता है जैसे, जिसको मैंने देखा था उसी वस्तु का स्पर्श करता हूँ। मन भी नहीं हो सकता है, क्योंकि वह करण है। इसलिए ऐसी इच्छा का कर्त्ता आत्मा है। इस पर बौद्धों का यह आक्षेप है कि प्रतिक्षण उत्पत्तिविनाशस्वभाववाले ज्ञान को ही आत्मा मानना चाहिए; ज्ञान से भिन्न नहीं। पूर्व ज्ञान से द्वितीय ज्ञान, द्वितीय से तृतीय इस प्रकार ज्ञान-धारा उत्पन्न होती है। प्रथम कारण-ज्ञान उत्तर कार्य-ज्ञान में अपनी शक्ति का आधान करता है। इस प्रकार कार्य-कारण-भाव होने से क्षणविनाशी ज्ञानों के भिन्न होते हुए भी पूर्वज्ञान से अनुभूत पदार्थ का प्रत्यभिज्ञान उत्तर ज्ञान कर लेता है। चावल का बीज अङ्कुर को पैदा करता है। उस अङ्कुर में चावल के उत्पन्न करने की सामर्थ्य है, इसीलिए वह अङ्कुर चावल के बीज को उत्पन्न करता है; यव के बीज को नहीं। चावल के बीज और अङ्कुर की परम्परा में कार्य-कारण-भाव है, चावल के बीज का यव के अङ्कुर के साथ कार्यकारणभाव नहीं है। इसी प्रकार एक ज्ञानधारी की बुद्धियाँ कार्यकारणभाव होने से प्रत्यभिज्ञान करती हैं, अन्य ज्ञानधारा की नहीं। बौद्धों के इस आक्षेप का परिहार इस प्रकार किया गया है—जिस जाति के सुख-हेतु चन्दन आदि का स्मरण करता हूँ उस जाति के पदार्थ का अनुभव करता हूँ, ऐसा प्रत्यभिज्ञान कार्यकारणभाव से नहीं हो सकता है। क्योंकि स्मरण की धारा और अनुभव की धारा में भेद है। जब इन दो धाराओं में कार्यकारणभाव ही नहीं है तब एक धारा के अन्तर्गत बुद्धि से गृहीत विषय से भिन्न विषय में दूसरी ज्ञानधारा के अन्तर्गत बुद्धि द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यभिज्ञान कैसे हो सकता है। इसलिए क्षणिक ज्ञान से अतिरिक्त कोई चेतन स्थिर है। वही अनुभव-स्मरण प्रत्यभिज्ञान का कर्त्ता है। बौद्धसिद्धान्त में एक यह भी दोष है कि उसके मत से कार्यकारणभाव से भी स्मृति नहीं हो सकती है। पहले उत्पन्न हुआ ज्ञान तब उत्तर ज्ञान में संस्कार का आधान करे जब उत्तर ज्ञान स्थिर हो। वह बौद्धों के मत में क्षणिक है। क्षणिक में संस्कार का आधान नहीं हो सकता है।

आत्मा के लक्षण के बाद क्रम से शरीर आदि अपवर्ग पर्यन्त प्रमेयों का लक्षण आता है। इसके अनन्तर क्रम से संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय इनका लक्षण कर प्रथम अध्याय के प्रथम आह्निक की समाप्ति हुई है। द्वितीय आह्निक में पहले वाद, जल्प, वितण्डा आदि तीन प्रकार की कथाओं के लक्षण बताये गये हैं। वादलक्षण में बौद्धों के वादलक्षण का विस्तार से खण्डन किया गया है। इसके अनन्तर अनैकान्तिक, विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम, बाधित इन पाँच हेत्वाभासों के लक्षण लिखे गये हैं। यद्यपि हेतु और हेत्वाभास का भेद गणना में नहीं आ सकता तथापि सामान्य रीति से उनके ७६०० भेद हैं। न्यायवार्त्तिक में इन सबके उदाहरण दिये गये हैं। इसके अनन्तर छल, जाति, निग्रह, स्थान के लक्षणों का उल्लेख हुआ है। यहीं द्वितीय आह्निक तथा प्रथमाध्याय समाप्त हुआ है।

इस आह्निक पर कई एक ने आक्षेप किया है कि छल और जाति दुष्ट उत्तर हैं। अतएव इस शास्त्र में उनका उपदेश क्यों किया गया है? यदि यह कहा जाय कि प्रतिवादी के दूषणों के परिहार से शास्त्र से दिखाये गये तत्त्व की रक्षा के लिए, तो इस प्रकार तत्त्वरक्षा नहीं हो सकती है। यह तो विचारने की बात है कि छल और जाति का प्रयोग कहाँ करना चाहिए। प्रतिवादी के हेतु में वा हेत्वाभास में? हेत्वाभास में उनका प्रयोग ठीक नहीं है, क्योंकि हेत्वाभास में अनैकान्तिक आदि हेत्वाभास के प्रयोग से ही प्रतिवादी का पराजय होगा। हेतु में भी छल आदि का प्रयोग उचित नहीं है, क्योंकि हेतु छल आदि से हेत्वाभास नहीं हो सकता। यदि यह कहा जाय कि पराजय से सन्देह ही अच्छा है, इस अभिप्राय से छल आदि का प्रयोग ठीक है। पर इससे कुछ लाभ नहीं है, क्योंकि पण्डित तो जान ही जायँगे कि उचित उत्तर न दे सकने के कारण व्यर्थ का कथन किया गया है। हाँ मूर्खों में प्रसिद्धि का लाभ हो सकता है। परन्तु इस प्रकार का उपदेश शास्त्र में अयुक्त है। फिर यदि आडम्बर से ही तत्त्वरक्षा करनी है तो चपेट वा थूकने आदि का भी उपदेश करना चाहिए। इसलिए इस प्रकार के उपदेश का कर्त्ता राग-द्वेष से हीन नहीं माना जा सकता है। इसका उत्तर यह है कि यदि वादी गर्व वा प्रसिद्धि आदि की इच्छा से कुछ वचनों को कह कर परलोक आदि का खण्डन करे, तो ऐसी दशा में वेद के मार्ग पर चलनेवाले पुरुषों को भ्रम न हो; इसलिए यथार्थ दूषण को शीघ्र न पाकर छल वा जाति से भी विद्वान् को काम लेना चाहिए अथवा प्रतिवादी के छल वा जाति के प्रयोग को जान कर उसके खण्डन का परिहार कर दे। इसी के लिए दयालु मुनि ने छल आदि का उपदेश किया है, सर्वनिन्दित थूकने आदि का नहीं।

द्वितीय अध्याय के आरम्भ में संशय की परीक्षा है। परीक्षा में संशय आवश्यक है, इसलिए सबसे पहले संशय की परीक्षा की गई है। संशय-परीक्षा के अनन्तर प्रमाण-परीक्षा में प्रमा के लिए प्रमाणों की सत्ता सिद्ध की गई है। इसके अनन्तर प्रत्यक्ष के लक्षण की परीक्षा में यह शङ्का की गई है कि प्रत्यक्षज्ञान की उत्पत्ति में आत्मा और मन का संयोग तथा इन्द्रिय और मन का संयोग भी कारण है, अतएव प्रत्यक्ष लक्षण में उसका उल्लेख क्यों नहीं किया गया? इसका यह उत्तर दिया गया है कि लक्षण में असाधारण कारण का कथन है, साधारण कारणों का नहीं है। इन्द्रिय अर्थ के सन्निकर्ष की प्रधानता भी है। इसमें हेतु यह है कि प्रत्यक्षज्ञान का इन्द्रिय वा अर्थ से ही व्यवहार होता है, आत्मा वा मन से नहीं। जैसे रूप-ज्ञान में रूप का ज्ञान वा चक्षु का ज्ञान इस प्रकार व्यवहार होता है। आत्मा का ज्ञान वा मन का ज्ञान ऐसा नहीं होता है। व्यवहार असाधारण कारण से होता है। ऋतु, जल, मिट्टी आदि के संयोग से उत्पन्न अङ्कुर का व्यवहार होता है। ऋतु का अङ्कुर वा जल का अङ्कुर ऐसा व्यवहार नहीं होता, किन्तु असाधारण बीज से चावल का अङ्कुर, इस प्रकार होता है। इस रीति से लक्षण परीक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर फिर अनुमान से प्रत्यक्ष की भिन्नता सिद्ध की गई है। इसके अनन्तर अवयवी की परीक्षा है।

अवयवों से अवयवी भिन्न है, इस न्यायसिद्धान्त पर सांख्यों ने आक्षेप किये हैं। वे कहते हैं कि जो जिससे भिन्न होता है उसका उसके साथ संयोग या संयोग का अभाव होता है। जैसे गौ का अश्व के साथ। तन्तुओं के साथ पट का न संयोग है और न तन्तुओं से उसकी भिन्न स्थिति है। इसलिए पट तन्तुओं से भिन्न नहीं है। इसका उत्तर यह दिया गया है कि तन्तुओं के साथ पट के संयोग का अभाव अभेद के कारण नहीं, किन्तु अवयवी होने से है। संयोग द्रव्यों का होता है। परन्तु अवयवी अवयव में समवाय सम्बन्ध से रहता है। फिर सत्त्व, रज, तम इन तीनों का न संयोग है, न संयोग का अभाव है। तथापि सांख्य-सिद्धान्त में ये तीनों भिन्न हैं, इसलिए इस हेतु से अवयवी का अवयवों से अभेद सिद्ध नहीं होता। यदि यह कहा जाय कि अवयवों से अवयवी आदि अतिरिक्त हैं तथा अवयव के गुरुत्व से भी भिन्न हैं तो तराज़ू में किसी वस्तु के रखने पर अवयव के गुरुत्व से तराज़ू जितनी झुकती है। उससे अधिक उसे अवयवी के गुरुत्व से झुकनी चाहिए। परन्तु तराज़ू अधिक झुकती हुई प्रतीत नहीं होती। इसलिए यह अनुमान होता है कि तराज़ू के साथ किसी गुरुत्व विशेषवाले द्रव्य का संयोग नहीं है। इसका उत्तर इस तरह दिया गया है—कारण अवयव का गुरुत्व इतना है तथा अवयवी जो कार्य है उसका गुरुत्व इतना है, यह बात जब निश्चित नहीं तब कैसे कह सकते हैं कि अवयवी के गुरुत्व से तराज़ू अधिक झुकनी चाहिए। यदि कार्य और कारण के गुरुत्व का निश्चय नहीं तो तराज़ू से तोलने पर यह दो रत्ती है या तीन रत्ती है, यह ज्ञान कैसे होता है? इसका उत्तर यह है कि यह दो रत्ती है इत्यादि ज्ञान से कार्य और कारण के गुरुत्व का निश्चय नहीं होता, किन्तु परमाणु से लेकर कार्य के आरम्भक अन्तिम द्रव्य तक कार्य-कारण का सङ्घात ही तोला जाता है। और सङ्घात कारण से भिन्न होता है। तो अवयवी के गुरुत्व का अनुमान कैसे होगा? अवयवी के गिरने से। यदि यह कहा जाय कि कारण के गुरुत्व से ही कार्य गिरता है तो यह ठीक नहीं। क्योंकि गुरुत्व अपने आश्रय से भिन्न आश्रय के गिरने में जहाँ निमित्त होता है वहाँ संयोग की आवश्यकता होती है। तराज़ू का एक पलड़ा भारी वस्तु के संयोग के अनन्तर ही झुकता है। कार्य-कारण में संयोग तो है नहीं, किन्तु समवाय है। इसलिए कारण का गुरुत्व कार्य के पतन में निमित्त नहीं हो सकता। समवाय सहित कारण के गुरुत्व से ही कार्य का पतन सिद्ध है। कार्य के गुरुत्व में क्या प्रमाण है, इसका उत्तर यह है कि समवाय क्रिया के जन्म में निमित्त नहीं होता है। अन्यथा रूप आदि भी कार्य में समवाय सम्बन्ध से रहते हैं। उनका भी कार्य के साथ पतन क्यों नहीं होता है? यदि रूप आदि का भी पतन है तो गुरुत्व का क्यों नहीं? यदि गुरुत्व का भी पतन है तो गुरुत्व के पतन में कौन निमित्त है? किसी और गुरुत्व की सत्ता में प्रमाण नहीं जो इस गुरुत्व के पतन में निमित्त हो। यही गुरुत्व अपने गिरने में स्वयं कारण भी नहीं है। क्योंकि एक ही पदार्थ कार्य और कारण नहीं हो सकता है। लकड़ी के काटने का साधन कुल्हाड़ी आदि लकड़ी से भिन्न ही होती है। इसलिए गुरुत्व नहीं गिरता तथा गुरुत्व के समान रूप आदि भी नहीं गिरते हैं। फिर यदि रूप आदि भी क्रियावाले हों तो क्रियावाले पदार्थों के समान रूप आदि के भी पदार्थों से संयोग तथा विभाग का ज्ञान होना चाहिए। दो द्रव्यों के संयुक्त होने पर दो रूप भी संयुक्त हैं, ऐसी प्रतीति संयोग के कारण नहीं, किन्तु दोनों रूपों की भिन्न आश्रय में स्थिति के न देखने से उत्पन्न हुई है। इस प्रकार जब समवाय पतन की उत्पत्ति में निमित्त नहीं किन्तु संयोग ही गुरुत्व द्वारा पतन के जन्म में हेतु है तो कारण का गुरुत्व कार्य के पतन में निमित्त कैसे हो सकता है? क्योंकि कारण के साथ कार्य का संयोग नहीं है। इसलिए कार्य के गुरुत्व की सत्ता आवश्यक है। इस रीति से कार्य के गुरुत्व का अनुमान सर्वथा दोषरहित है।

बौद्धों ने भी अवयवों से अतिरिक्त अवयवी का खण्डन किया है। वह इस प्रकार है। विषय का स्वरूप ज्ञान के अनुसार होता है। परस्पर मिले हुए क्षणिक रूप आदि परमाणु ही घट आदि आकार से जाने जाते हैं। रूप आदि से भिन्न अवयवी की प्रतीति नहीं होती। यद्यपि परमाणुओं में स्थूलता नहीं है तथापि ज्ञान-दशा में उन्हीं परमाणुओं में अविद्या से स्थूलता का ज्ञान होता है। अवयवी के अवयवों से भिन्न मानने में कई दोष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। पहला यह कि हाथ आदि के काँपने पर हाथ में वर्तमान अवयवी भी काँपता है। वही अवयवी जाँघ आदि में भी है, इसलिए जाँघ आदि में भी अवयवी के काँपने का ज्ञान होना चाहिए। परन्तु वह नहीं होता है। अतएव एक अवयवी की सत्ता अयुक्त है। दूसरा यह कि एक अवयव के ढकने पर उस अवयव में विद्यमान अवयवी भी ढक गया। अब और अवयवों में भी अवयवी ढका जाना चाहिए। क्योंकि अवयवी अवयवों में से एक है। अथवा अवयवी का आवरण कहीं नहीं है, इसलिए अवयवी की प्रतीति आवरण के बिना होनी चाहिए। यदि यह कहो कि अवयव पर आवरण हैं, अवयवी पर नहीं हैं। क्योंकि अवयवी अवयवों से भिन्न है। और दूसरे के आवरण से अन्य का आवरण नहीं होता है। तो इसका उत्तर यह है कि आधा ढक जाने पर भी अनावृत्त अवयवी का ज्ञान होना चाहिए। यदि यह कहो कि अवयवों के देखने से अवयवी दृष्टिगोचर होता है, अवयवों के न देखने से अवयवी का ज्ञान नहीं होता, तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि यदि अवयवी का ज्ञान सब अवयवों के देखने से होता है, तो अवयवी की प्रतीति कभी न होनी चाहिए। अल्पज्ञ सब अवयवों को कैसे जान सकता है? अगले भाग से बीच के भाग का तथा पिछले भाग का व्यवधान होता है। कुछ एक अवयवों के देखने से यदि अवयवी का ज्ञान होता है, तो थोड़े अवयवों के देखने से भी अवयवी की स्थूलरूप से प्रतीति होनी चाहिए, जैसे कि बहुत अवयवों के देखने से होती है। तीसरा दोष यह कि एक अवयव के लाल होने पर लाल अवयव में विद्यमान अवयवी भी लाल है। और अवयवों में भी उसके अभिन्न होने से लाल वस्त्र का ज्ञान होना चाहिए। यदि यह कहो कि केवल अवयव ही लाल है, तो लाल अवयव में वर्तमान अवयवी का रूप लाल नहीं दीखना चाहिए।

पूर्वोक्त खण्डन का परिहार इस तरह है—यह विचारना चाहिए कि यह स्थूल है। इस स्थूलबुद्धि में तथा यह एक है इस बुद्धि में कौन निमित्त है। परमसूक्ष्म होने से परमाणु तो निमित्त हो नहीं सकते हैं। यदि यह कहो कि व्यवधान से रहित परमाणु ही स्थूल बुद्धि में तथा एक बुद्धि में निमित्त हैं, जैसे छोटे छोटे अनेक वृक्ष लता आदि का समुदाय वन बुद्धि में तथा मनुष्य घोड़े आदि का समुदाय सेना बुद्धि में निमित्त है, तो इसका उत्तर यह है कि परमाणु व्यवधान से रहित नहीं हैं। रूप परमाणुओं का गन्ध रस आदि परमाणुओं से व्यवधान है। जिन पदार्थों का रूप ज्ञान के योग्य होता है उन्हीं पदार्थों का अलग होते हुए किसी निमित्त से ज्ञान न होने पर भी मिले हुओं का ज्ञान होता है। सेना वा वन के अङ्ग वृक्ष लता तथा मनुष्य आदि का अलग अलग समीप में ज्ञान होता है। दूर से उनकी अलग प्रतीति नहीं होती। इसलिए अनेकों में भ्रान्त एक बुद्धि होती है। परन्तु परमाणु कभी इन्द्रिय के विषय नहीं होते। वे इकट्ठे होकर भी चक्षुगोचर कैसे हो सकते हैं? क्या वायुओं का समुदाय कभी चक्षु का विषय हो सकता है? इसलिए अवयवों से भिन्न अवयवी ही एक तथा स्थूल बुद्धि में निमित्त है। अवयवी में जिन दोषों का आरोप हुआ है उनका परिहार यह है। अवयवों से अवयवी भिन्न हैं, इसलिए अवयव के काँपने से अवयवी नहीं काँपता। अवयवी के न काँपने पर और अवयव कैसे काँप सकते हैं। अवयव और अवयवी का समवाय सम्बन्ध नहीं हो सकता। क्योंकि एक में गति है और दूसरे में नहीं है, जैसे कपड़े और जल में समवाय सम्बन्ध नहीं होता है। इसका उत्तर यह है कि अवयवी अवयव में सम्बन्ध ही उत्पन्न होता है, इसलिए यह आक्षेप ठीक नहीं है। अवयव के ढके जाने पर भी कुछ एक अवयवों में वर्तमान अवयवी का ज्ञान होता है। कुछ एक अवयवों के देखने से स्थूलता की प्रतीति तो इसलिए नहीं होती कि स्थूलता अर्थात मोटाई एक परिमाण है। और वह अवयवी का धर्म है। और उसका ज्ञान अच्छी तरह न होने से अवयवी की प्रतीति नहीं रुक सकती। अवयवी का ज्ञान इन्द्रिय के सम्बन्ध से होता है। मोटाई के ज्ञान में, इन्द्रिय के साथ विषय का, इन्द्रिय के अवयवों के साथ विषय का, इन्द्रिय के साथ विषय के अवयवों का और इन्द्रिय के अवयवों के साथ विषय के अवयवों का सम्बन्ध निमित्त है। इस सामग्री के भेद से मोटाई का ज्ञान भिन्न रीति से होता है। तीसरे आक्षेप का परिहार यह है कि अवयवी लाल नहीं, किन्तु अवयवी से संयुक्तद्रव्य लाल है। वस्त्र लाल है। यह ज्ञान भ्रम है। और भ्रम सब स्थान पर नहीं होता है। अवयवी के एक देश में संयुक्त होने तथा दूसरे देश में असंयुक्त होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से वह भिन्न नहीं होता है। अर्थात् संयुक्त पट से संयोगहीन वस्त्र अलग नहीं होता है। क्योंकि वस्त्र में उसी संयोग की सत्ता उसका तथा अभाव एक काल में ही देखे जाते हैं और विषय का स्वरूप ज्ञान के अनुसार ही होता है। इसलिए एक अवयवी में ही लाल द्रव्य का संयोग तथा संयोग का अभाव है। इस प्रकार प्रसङ्गसहित प्रत्यक्ष की परीक्षा करने के बाद अनुमान की परीक्षा में अनुमान के प्रामाण्य की सिद्धि की गई है। तीनों काल अनुमान के विषय हैं, इसलिए वर्तमान काल की सत्ता को सिद्ध किया है। इसके अनन्तर उपमानपरीक्षा में उपमान के प्रामाण्य को और अनुमान से उपमान के भेद को सिद्ध कर शब्दपरीक्षा में अनुमान से शब्द के भेद को तथा वेद के प्रामाण्य को सिद्ध कर द्वितीय अध्याय का पहला आह्निक समाप्त किया गया है।

द्वितीय अध्याय के द्वितीय आह्निक में पहले प्रमाणों की संख्या की परीक्षा है। परीक्षा से अर्थापत्ति, अभाव, सम्भव—इन प्रमाणों का अनुमान में और सम्भव प्रमाण का शब्द में अन्तर्भाव सिद्ध कर चार प्रमाण सिद्ध किये गये हैं। इसके आगे विस्तारपूर्वक मीमांसक और सांख्य-मत का खण्डन कर शब्द को अनित्य सिद्ध किया है। इसके अनन्तर जाति-आकृति-व्यक्ति, इन तीनों को वर्णों के समुदाय स्वरूप पद का वाच्य सिद्ध किया है। यहीं द्वितीय आह्निक की समाप्ति है।

द्वितीय अध्याय में प्रमाणपरीक्षा कह चुकने के बाद तीसरे अध्याय में प्रमेयों की परीक्षा कही गई है। जिनके तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसे प्रमेयों में प्रधान आत्मा की परीक्षा आरम्भ में है। वार्त्तिककार ने बड़ी मनोरञ्जक रीति से आत्मा की परीक्षा की है। प्रथम अध्याय में इच्छाद्वेष...इत्यादि सूत्र से आत्मा का प्रतिपादन किया गया है। और सभी आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं। इसलिए विचारना यह है कि आत्मा शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि से भिन्न है या नहीं है। कई एक वादी आत्मा की सत्ता को ही नहीं मानते। वे युक्ति देते हैं कि आत्मा उसी प्रकार नहीं है जैसे शशा के सींग। उनका यह वाक्य आत्मा के निषेध में सर्वथा अशक्त है। क्योंकि आत्मा शब्द आत्मा की सत्ता को बताता है। और नहीं शब्द उसके निषेध को। नहीं शब्द से किसी विशेष स्थान में वा किसी विशेष काल में ही किसी पदार्थ के अभाव का ज्ञान होता है। जैसे घड़ा नहीं है, इस वचन से किसी विशेष स्थान, घर आदि में वा किसी विशेषकाल में अर्थात् इस समय उत्पत्ति से पहले वा नाश के पीछे घड़े के अभाव की प्रतीति होती है। इस प्रकार का निषेध घड़े की सत्ता के स्वीकार के बिना नहीं होता है। इसी प्रकार आत्मा को न मान कर आत्मा नहीं है, यह कैसे कहा जा सकता है। आत्मा का किसी देश में निषेध ठीक नहीं है। क्योंकि आत्मा का कोई देश नहीं है। वह व्यापक है। यदि किसी काल में प्रतिषेध है तो भी युक्त नहीं है। क्योंकि आत्मा नित्य है। और नित्य पदार्थों में तीनों कालों की प्रतीति नहीं होती है। किन्तु सर्वदा सत्ता का ही बोध होता है। फिर यदि आत्मा कोई वस्तु नहीं है तो आत्मा शब्द से किस अर्थ का ज्ञान होता है? यदि यह कहो कि जिस आत्मा की आप कल्पना करते हैं उसका निषेध है। तो आप ही यह भी स्पष्ट कर दीजिए कि आत्मा की कल्पना भाव-रूप से करते हो या अभाव-रूप से। यदि भावरूप से करते हो तो इसका उत्तर यह है कि भाव का भाव के साथ क्या सादृश्य है? आत्मभिन्न के साथ यदि आत्मा का सादृश्य है तो आपने आत्मा की सत्ता मान ली। क्योंकि अभाव के साथ भाव का सादृश्य नहीं है। यदि यह कहो कि 'मैं' इस प्रतीति का विषय वस्तुतः शरीर इन्द्रिय आदि हैं। इस 'मैं' ज्ञान को, आत्मा में कल्पित करके आत्मा है, इत्यादि व्यवहार होता है। यह भ्रम 'आत्मा नहीं है' इस वाक्य से दूर किया जाता है। इसका उत्तर यह है कि यदि 'मैं' इस प्रतीति के आरोप का विषय नहीं है तो आरोप कैसे होगा? यदि आरोप का विषय है तो शरीर आदि से भिन्न पदार्थ की सत्ता को मान कर फिर उसका निषेध अपने वचन के ही विरुद्ध है। यदि अभाव रूप से आत्मा कल्पित है तो उसकी सत्ता को यथार्थ रूप से मानना चाहिए। इस प्रकार आत्मा का अभाव नहीं सिद्ध होगा। और आत्मा के अभाव की सिद्धि के लिए जो हेतु दिया है कि वह नहीं है, वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि आत्मा नहीं है, इस प्रतिज्ञा से हेतु अभिन्न है। और असिद्ध हेतु साध्य की सिद्धि नहीं कर सकता है। जो दृष्टान्त दिया गया है कि जैसे शशा के सींग, वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शशा के साथ सींग के सम्बन्ध का ही निषेध है, सींग का नहीं है। यदि यह कहो कि शशा के साथ सींग का सम्बन्ध ही दृष्टान्त होगा, तो भी ठीक नहीं है। क्योंकि शशा के साथ भी सींग का सम्बन्ध किसी काल में हो सकता है। यदि यह कहो कि शशा में सींग का सम्बन्ध लोक के विरुद्ध है, तो इसका उत्तर यह है कि वह लोकविरुद्ध नहीं है, क्योंकि लोक शशा और सींग के कार्य-कारण-भाव का निषेध करता है। अर्थात् जैसे गो और सींग का कार्य-कारण भाव है वैसे शशा और सींग का नहीं है। और कार्य-कारण-भाव के निषेध से वस्तु का अभाव नहीं होता है। क्या देवदत्त और घड़े का परस्पर कार्य-कारण-भाव नहीं है, इसलिए घड़े की सत्ता ही नहीं है? इसलिए अत्यन्त अभाव की सिद्धि के लिए यह दृष्टान्त अयुक्त है। यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिनके मत में सींग अवयव है उनके मत में सींग अवयवी शरीर का कारण है। और जिनके मत में वह नख वा बालों के समान अवयव नहीं है उनके मत में शरीर कारण है और सींग कार्य है, क्योंकि वह शरीर से उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह निश्चित हुआ कि आत्मा है। इस आत्मा के प्रति आँख से देखता है, इत्यादि व्यवहार होता है। कर्ता के साथ क्रिया और करण के सम्बन्ध को कहना ही व्यवहार है। देखना क्रिया है, आँख करण है। कर्त्ता के साथ इन दोनों के सम्बन्ध का ज्ञान आँख से देखता है, इस व्यवहार से होता है। यह व्यवहार दो प्रकार से होता है। एक रीति यह है कि अवयव से समुदाय का कहना, जैसे वृक्ष मूल से खड़ा है। यहाँ वृक्ष अवयवी है और मूल अवयव है। दूसरी रीति यह कि भिन्न से भिन्न का कहना, जैसे कुल्हाड़ी से काटता है। यह कुल्हाड़ी करण है, काटना क्रिया है। काटनेवाले के साथ क्रिया और करण का सम्बन्ध है। आँख से देखता है, इत्यादि व्यवहार क्या अवयव से अवयवी का है या भिन्न से भिन्न का है? इसका उत्तर यह है कि हां, भिन्न से भिन्न का है। क्योंकि जिसको मैंने देखा था उसका स्पर्श करता हूँ, ऐसा प्रत्यभिज्ञान शरीर का ज्ञाता होने से नहीं हो सकता है। इस हेतु को पहले विस्तार से स्पष्ट कर दिया है। इसलिए फिर यहाँ इसका विस्तार नहीं किया जाता है। इस प्रकार आत्मा को शरीर आदि से भिन्न सिद्ध कर आगे आत्मा के नित्यत्व को अर्थात् शरीर-नाश के अनन्तर भी आत्मा की सत्ता को सिद्ध किया है।

आत्मा के नित्यत्व में यह हेतु है कि इन्द्रियों से ज्ञान-प्राप्ति में असमर्थ बच्चा प्रसन्न, भयभीत वा शोक-युक्त देखा जाता है। उसका हर्ष, डर वा शोक उसके चक्षु आदि के विकास से, रोने से और कांपने से व्यक्त होता है। हर्ष आदि स्मरण के बिना नहीं हो सकते। स्मृति संस्कार के बिना नहीं हो सकती। संस्कार अनुभव के बिना नहीं हो सकते। अनुभव पूर्व शरीर के साथ सम्बन्ध के बिना नहीं हो सकते। इसलिए आत्मा शरीर-नाश के अनन्तर नष्ट नहीं होता, किन्तु रहता है। यदि यह कहो कि जैसे कमल के पत्ते बिना कारण के खिलते और बन्द हो जाते हैं वैसे ही बच्चे के हर्ष आदि भी बिना निमित्त के होते हैं। इसका उत्तर यह है कि कमल के पत्तों का खिलना वा बन्द होना गर्मी वा सर्दी से होता है। इसलिए यह दृष्टान्त अयुक्त है। फिर कई मनुष्य मन्द बुद्धिवाले और कई तीव्र बुद्धिवाले देखे जाते हैं। इससे अनुमान होता है कि तीव्र बुद्धिवाले ने पूर्व जन्म में अभ्यास किया है। क्योंकि आज कल भी शास्त्र के अभ्यास से बुद्धि की वृद्धि का अनुभव होता है। इस जन्म में जिसने शास्त्र में अभ्यास नहीं किया, किन्तु शास्त्र में उसकी बुद्धि तीव्र है उसने पूर्व जन्म में शास्त्र का अभ्यास अवश्य किया है। और जिसकी बुद्धि मन्द है उसने अनेक पक्षी आदि योनियों में जन्म लेने के अनन्तर यह जन्म लिया है, जिससे उसके पूर्व जन्म में अभ्यास से जो संस्कार उत्पन्न हुए थे वे निर्बल हैं। अच्छा, जिसने मनुष्य-जन्म के अनन्तर ऊँट की जाति में जन्म प्राप्त किया है उसके राग आदि मनुष्य जन्म के संस्कारों के अनुसार होने चाहिए, ऊँट-जन्म के अनुसार नहीं। क्योंकि ऊँट के जन्म का अनेक ऊँट जाति से भिन्न जाति के जन्मों से व्यवधान है। इसका उत्तर यह है कि कर्म संस्कारों को जगाते हैं, इसलिए ऊँट के जन्म में निमित्त कर्म से अनेक भिन्न जाति के जन्मों से व्यवधान होते हुए भी ऊँट जन्म के ही संस्कार जागते हैं, मनुष्य जन्म के नहीं। इसलिए आत्मा नित्य है। वह अनेक शरीरों को छोड़ता और धारण करता है, यही युक्त है।

इस प्रकार आत्म-परीक्षा कर आगे शरीर-परीक्षा में शरीर को पृथ्वी से बना हुआ सिद्ध कर इन्द्रिय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा में चक्षु अहङ्कार से उत्पन्न होता है, इस सांख्यमत तथा दृष्टिगोचर गोलक ही चक्षु है, इस बौद्धमत के खण्डन-पूर्वक चक्षु को तेज का बना हुआ सिद्ध कर त्वचा ही एक इन्द्रिय है इस मत के खण्डन-पूर्वक चक्षु आदि इन्द्रियों को संख्या में पांच सिद्ध किया है। इनके अनन्तर अर्थ-परीक्षा में पृथ्वी को गन्ध, रूप, रस, स्पर्श—इन गुणों से युक्त, जल को रूप, रस, स्पर्श—इन तीन गुणों सहित, तेज को रूप, स्पर्श—इन दो गुणों सहित और आकाश को शब्द गुण सहित सिद्ध कर तृतीय अध्याय का पहला आह्निक समाप्त किया गया है।

द्वितीय आह्निक के आरम्भ में बुद्धि की परीक्षा है। परीक्षा में बुद्धि को अनित्य सिद्ध कर प्रसङ्ग से सब पदार्थ क्षणिक हैं, इस बौद्धमत का खण्डन किया गया है। फिर बुद्धि को आत्मा का गुण सिद्ध कर प्रसङ्ग से संस्कार क्रम से जागते हैं, फिर स्मृतियां उत्पन्न होती हैं; इसलिए स्मरण क्रम से होता है, इस विषय का प्रतिपादन है। फिर बुद्धि को उत्पत्ति-क्षण से तृतीय क्षण में विनाशी सिद्ध करने के अनन्तर बुद्धि शरीर का गुण नहीं है, यह कहा गया है। इसके लिए युक्ति दी गई है कि शरीर के गुण दो प्रकार के होते हैं। एक वे जिनका बाह्य इन्द्रियों से ज्ञान होता है, जैसे रूप आदि हैं। दूसरे वे जिनका इन्द्रियों से ज्ञान नहीं होता, जैसे भारीपन। परन्तु ज्ञान न तो बाह्य इन्द्रियों से जाना जाता है और न वह अतीन्द्रिय ही है। क्योंकि मन से ज्ञान की प्रतीति होती है। इसलिए बुद्धि शरीर का गुण नहीं है। इसके आगे मन की परीक्षा में मन यदि प्रत्येक शरीर में अनेक हों वा प्रत्येक शरीर में एक मन भी विभु हो तो मन का सब इन्द्रियों से सम्बन्ध है, इसलिए अनेक रूप, रस आदि विषयों के समीप होने पर रूप, रस आदि का ज्ञान एक काल में होना चाहिए, परन्तु होता नहीं है; इसलिए प्रत्येक शरीर में एक अणु मन है—यह सिद्ध किया है। अनन्तर शरीर की उत्पत्ति में पूर्वजन्म में किये गये कर्मों को निमित्त सिद्ध कर द्वितीय आह्निक समाप्त किया गया है। यहीं तृतीय अध्याय की समाप्ति है।

चतुर्थ अध्याय के आरम्भ में प्रवृत्ति की परीक्षा है। तीन अध्यायों में धर्म और अधर्म के आश्रय की जो परीक्षा की है, शरीर की उत्पत्ति में कर्म कारण हैं इत्यादि जो कुछ कहा है वह प्रवृत्ति की भी परीक्षा है। इसलिए यहाँ प्रवृत्ति की अधिक परीक्षा नहीं की गई। धर्म अधर्म का आश्रय आत्मा है। राग आदि दोषों का भी आश्रय आत्मा है। इस प्रकार प्रवृत्ति के तुल्य दोषों की परीक्षा प्रवृत्ति की परीक्षा से ही हो चुकी है, इसलिए दोषों की भी अधिक परीक्षा नहीं की गई। केवल परीक्षा द्वारा राग, द्वेष और मोह के भेद से दोषों को तीन प्रकार का सिद्ध किया है। इसके अनन्तर प्रेत्यभाव की परीक्षा में आत्मा का जन्म और मरण क्या है, यह प्रश्न उठाया गया है। इसका उत्तर यह दिया गया है कि नये उत्पन्न शरीर आदि के साथ आत्मा का सम्बन्ध आत्मा का जन्म है और शरीर से आत्मा के वियोग का नाम आत्मा का मरण है। इसके अनन्तर कई एक मतों का खण्डन है और कई एक मतों को स्वीकार किया है। पहले शून्य से संसार की उत्पत्ति होती है, इस मत का खण्डन है। अनन्तर ईश्वर सृष्टि का निमित्त कारण है, यह सिद्ध किया है। तीन प्रकार के पदार्थ संसार में प्रसिद्ध हैं। एक वे जिनका चेतन कर्त्ता प्रसिद्ध है, जैसे मकान आदि। दूसरे वे जिनका बुद्धिमान् कर्त्ता नहीं है, जैसे परमाणु आकाश आदि। तीसरे वे जिनका बुद्धिमान् कर्त्ता निश्चित नहीं है, जैसे पर्वत, पृथ्वी आदि। कर्त्ता प्रत्यक्ष नहीं, इस से पृथ्वी आदि निमित्त कारण कर्त्ता से रहित नहीं सिद्ध होते हैं। क्योंकि परमाणु विद्यमान होते हुए भी प्रत्यक्ष नहीं हैं। भूमि आदि की उत्पत्ति ज्ञान इच्छा और प्रयत्न से युक्त कर्त्ता से होती है। क्योंकि भूमि आदि उत्पत्तिवाले हैं। और जो उत्पत्तिवाले होते हैं उनका कर्त्ता ज्ञान आदि से युक्त होता है, जैसे वस्त्र मकान आदि का। भूमि आदि भी उत्पत्तिवाले हैं, इसलिए इनका भी कर्त्ता ज्ञान आदि से युक्त है अवयववाले होने से पृथ्वी आदि उत्पत्ति से रहित नहीं हो सकती। पृथ्वी आदि के कर्त्ता, कर्म वा जीव तो हो नहीं सकते, क्योंकि कर्म जड़ हैं और जीव अल्पज्ञ हैं। अर्थात् वे पृथ्वी आदि के कारणों के ज्ञान से रहित हैं और ज्ञानहीन वा कारण ज्ञान से शून्य कर्त्ता कार्य को उत्पन्न नहीं कर सकता है। यदि यह कहो कि मकान आदि का कर्त्ता शरीर सहित देखा जाता है, तो संसार का कर्त्ता भी शरीर सहित ही सिद्ध होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि के कर्त्ता का शरीर तो हो नहीं सकता। इसलिए शरीर के अभाव से ज्ञान के अभाव की सिद्धि होगी। इसका उत्तर यह है कि ईश्वर का ज्ञान नित्य है। इसलिए शरीर आदि के अभाव में उसकी सत्ता है। अनित्य ज्ञान ही अधिकता से प्रतीत होता है। इसलिए नित्यज्ञान की सत्ता ही नहीं, यह तो युक्त नहीं है। क्योंकि जल के बने हुए हिम आदि वा उनके रूप आदि यद्यपि अनित्य हैं, तथापि हिम आदि के कारण जल के परमाणु और उनके रूप आदि से वे अनित्य नहीं होते। ज्ञान इच्छा आदि शरीर के साथ ही प्रतीत होते हैं। इसलिए ज्ञान आदि शरीर के व्याप्य हैं, यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि अनित्य ज्ञान आदि ही शरीर के साथ होते हैं। नित्य ज्ञान तो शरीर के बिना भी रहता है। समकाल में अनेक मनुष्य, पशु आदि की उत्पत्ति सर्वविषयक नित्य ज्ञान के बिना नहीं हो सकती है। इसलिए नित्य सर्वज्ञ कर्त्ता सिद्ध ही होगा। जिन वस्त्र आदि कार्यों का कर्त्ता प्रत्यक्ष है उनसे विलक्षण भूमि आदि कर्त्ता से हीन क्यों नहीं ? इसका उत्तर यह है कि वस्त्र आदि से भूमि आदि में क्या भेद है ? यदि यह कहो कि वस्त्र आदि का कर्त्ता दृष्टिगोचर है परन्तु भूमि आदि का नहीं है यही भेद है, तो बाज़ार में दूकान पर रक्खे वस्त्र का कर्त्ता स्वयं नहीं देखा इसलिए वह वस्त्र क्या कार्य नहीं है। यदि एक वस्त्र का कर्त्ता देखा है इसलिए सब वस्त्रों का कर्त्ता है ही, तो वस्त्र आदि कार्य जैसे कर्त्ता से युक्त हैं वैसे ही भूमि आदि कार्यों के कर्ता की सिद्धि अवश्य होगी। यदि वस्त्र ही कर्त्ता से युक्त है, तो मकान, नक़ली मोती आदि का भी कर्त्ता न होना चाहिए। यदि कहो कि जिस जाति के पदार्थ का कर्त्ता देखा है उस जाति के और पदार्थों का कर्त्ता यद्यपि प्रत्यक्ष नहीं तथापि उसी जाति के होने से उनके कर्त्ता की सत्ता है, तो कार्य मकान आदि का कर्त्ता प्रत्यक्ष है इसलिए भूमि आदि कार्य का भी कर्त्ता है। यदि कहो कि पृथ्वी आदि की उत्पत्ति में निमित्त कारण कर्त्ता है, यह सिद्ध हो गया है। परन्तु एक ही कर्त्ता की सिद्धि में क्या प्रमाण है ? इसका उत्तर यह है कि जीव परमाणु धर्म आदि के ज्ञान में असमर्थ हैं, इसलिए वे संसार के कर्त्ता नहीं हो सकते हैं। किन्तु एक ईश्वर ही संसार का कर्त्ता है। अनेक ईश्वरों की कल्पना व्यर्थ है। अच्छा, ईश्वर जगत् की रचना किस लिए करता है ? क्योंकि चेतन की प्रवृत्ति अप्राप्त की प्राप्ति वा दुःख के त्याग के लिए होती है। ईश्वर की प्रवृत्ति दुःख त्याग के लिए नहीं हो सकती है। क्योंकि ईश्वर को दुःख नहीं है। प्राप्ति के लिए भी नहीं, क्योंकि ईश्वर को सब वस्तुएँ प्राप्त हैं। वह खेल के लिए सृष्टि करता है, यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि खेल के बिना जिन को दुःख होता है वही सुख के लिए खेलते हैं। और ईश्वर को दुःख नहीं है, यह पहले ही कह दिया है। ऐश्वर्य की प्रसिद्धि के लिए भी ईश्वर की प्रवृत्ति ठीक नहीं है। क्योंकि प्रसिद्धि से परमात्मा को कोई लाभ नहीं और बिना प्रसिद्धि के प्रभु की कोई हानि भी नहीं है। इसका उत्तर यह है कि ईश्वर का स्वभाव सृष्टि करना है, और स्वभाव प्रयोजन की अपेक्षा नहीं करता। जैसे भूमि आदि वस्तु का धारण आदि करते हैं वैसे ही ईश्वर भी स्वभाव से सृष्टि करता है। यदि यह कहो कि ईश्वर का उत्पत्ति करने का स्वभाव है तो संसार का नाश न होना चाहिए। यदि उसका नाश करने का स्वभाव है तो संसार की उत्पत्ति न होनी चाहिए। क्योंकि स्वभाव के अनुसार ही कार्य होता है। इसका उत्तर यह है कि बुद्धिमान् होने से ईश्वर जीवों के कर्मों के अनुसार पदार्थों की उत्पत्ति वा उनका विनाश करता है। कर्मों के अनुसार ही वह किसी जीव को सुख और किसी जीव को दुःख देता है, इसलिए उसमें क्रूरता का भी दोष नहीं है। आदि सृष्टि में सुखी वा दुःखी संसार की रचना में कौन कारण है ? क्योंकि कर्म तो हैं नहीं। इसका उत्तर यह है कि संसार अनादि है। इसलिए पहले किये गये कर्मों के अनुसार ही प्राणी सुख वा दुख का अनुभव करते हैं। इस प्रकार ईश्वर की सिद्धि कर सब पदार्थ बिना निमित्त के उत्पन्न होते हैं, सब पदार्थ अनित्य हैं, सब पदार्थ नित्य हैं और सब पदार्थ अलग अलग हैं—इन मतों का खण्डन है। इसके अनन्तर फल की परीक्षा में आत्मा ही अनेक जन्मों में पुत्र, पशु आदि द्वारा सुख वा दुःख को भोगता है इसका प्रतिपादन कर दुःख-परीक्षा में जन्म में दुःख ही अधिक है सुख अल्प है, इसलिए जन्म ही दुःख है—इस प्रकार का उपदेश किया गया है। फिर अपवर्ग-परीक्षा में गृहस्थ के लिए ही यज्ञ आदि का विधान है, संन्यासी के लिए नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

। इसलिए विद्वान् पुरुष यज्ञ आदि का त्याग कर और तत्त्वज्ञान से राग द्वेष आदि का नाश कर और अन्तिम शरीर से पहले किये गये कर्मों के फल को प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त होता है—यह प्रतिपादन कर चतुर्थ अध्याय का पहला आह्निक समाप्त किया गया है ।

इस प्रकार प्रमाण आदि सोलह पदार्थों की परीक्षा कर दी है । आत्मा आदि प्रमेयों का तत्त्वज्ञान मोक्ष में साक्षात् कारण है और प्रमाण आदि का तत्त्वज्ञान परम्परा से कारण है, यह भी कह दिया है । इसमें यह संशय है कि क्या जितने आत्मा आदि प्रमेय हैं उनका तत्त्वज्ञान मोक्ष में कारण हैं वा उनमें किसी एक का तत्त्वज्ञान सबका तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता । क्योंकि आत्मा आदि अनन्त हैं । यदि किसी एक का तत्त्वज्ञान मोक्ष में कारण है, तो जहाँ तत्त्वज्ञान नहीं वहाँ मिथ्याज्ञान से संसार ही होगा, मुक्ति नहीं । इसलिए प्रमाण आदि का तत्त्वज्ञान मोक्ष में कारण नहीं । इस आक्षेप का परिहार द्वितीय आह्निक के आरम्भ में इस प्रकार है । अपने आत्मा का तत्त्वज्ञान ही मोक्ष में हेतु है, औरों में चाहे तत्त्वज्ञान न हो । यदि अपने आत्मा के ज्ञान से अन्य आत्मा में तत्त्वज्ञान हो तो भी उसका मोक्ष उपयोग नहीं है । रूप आदि विषयों की आसक्ति को त्याग कर भोग करने से बन्धन नहीं होता । विषयों में आसक्ति के त्याग के लिए शरीर, अस्थि, मूत्र, मल आदि से भरा हुआ है, इस प्रकार विचारना चाहिए । स्त्री का शरीर इस प्रकार है, उसके दांत इस प्रकार के हैं, ओष्ठ इस प्रकार के हैं, इत्यादि विचारों को त्याग देना चाहिए ।

इसके अनन्तर अवयवी परीक्षा में अवयवी को अवयवों से भिन्न सिद्ध कर परमाणु परीक्षा में परमाणु की सिद्धि इस प्रकार की है । अवयववाले पदार्थ का विभाग करने पर जिस अवयव का विभाग न होसके उसे परमाणु कहते हैं । यदि परमाणु की सत्ता न हो, तो सब पदार्थों के अनन्त अवयव होने से पर्वत और अणुक भी समानपरिमाणवाले होने चाहिए । क्योंकि पर्वत और अणुक दोनों के अवयव यदि अनन्त हों, तो उनमें परिमाण का भेद किस प्रकार हो सकता है । यदि यह कहो कि व्यापक आकाश का सम्बन्ध परमाणु के भीतर है, इसलिए परमाणु अवयव रहित नहीं है । क्योंकि परमाणु के भीतर यदि आकाश का सम्बन्ध न हो, तो आकाश व्यापक कैसे होगा ? इसका उत्तर यह है कि जब परमाणु के अवयव ही नहीं हैं तब वह भीतर या बाहर कैसे हो सकता है । आकाश व्यापक है । इसका यह अर्थ है कि जो मूर्तिमान् पदार्थ हैं उनसे आकाश का सम्बन्ध है । यह नहीं कि जो पदार्थ नहीं हैं उनसे भी आकाश का सम्बन्ध है । परमाणु का मध्यभाग नहीं है, इसलिए उसके साथ सम्बन्ध न होने से आकाश की व्यापकता में कोई दोष नहीं है । यदि कहो कि परमाणु के दो परमाणुओं से एक काल में संयोग होने पर परमाणु के दो भाग आवश्यक हैं । क्योंकि संयोग भिन्न भागों में होता है । यदि दो परमाणुओं का संयोग एक ही भाग में हो, तो वस्तु परमाणु के समान होनी चाहिए । इसका उत्तर यह है कि परमाणु के यद्यपि भाग नहीं हैं, तथापि दो परमाणुओं का संयोग है । और वह संयोग अन्य परमाणुओं के आश्रित नहीं है । भाव यह है कि मध्य में स्थित परमाणु के साथ ऊपर-नीचे वा चारो ओर के परमाणुओं का संयोग है । उनमें मध्यस्थित परमाणु का पूर्व के परमाणु से जो संयोग है वह मध्य और पश्चिम परमाणु के आश्रित नहीं है । इसी प्रकार मध्य और पश्चिम परमाणु का संयोग मध्य और पूर्व परमाणु के आश्रित नहीं है । इसी प्रकार और संयोग भी होते हैं । अच्छा एक परमाणु का दो दिशाओं के भागों से सम्बन्ध आप मानते हैं । परन्तु एक का दो दिशा भागों से सम्बन्ध नहीं हो सकता । इसलिए परमाणु के अवयव मानने चाहिए । इसका उत्तर यह है कि दिशा एक है और व्यापक है । एक होने पर भी सूर्य का उदय देश में होता है । उस देश के समीप देश से संयुक्त परमाणु दूर देश के संयोगी परमाणु से पूर्व है । इसी प्रकार सूर्य जिस देश में अस्त होता है उस देश के समीप देश से संयुक्त परमाणु दूर देश के संयोगी दूसरे परमाणु से पश्चिम है । पूर्व और पश्चिम परमाणु की अपेक्षा सूर्य के उदय कालीन देश से तथा सूर्य जिस देश में छिपता है उस देश से दूर का संयोगी परमाणु बीच में होता है । इसी प्रकार पूर्व और पश्चिम परमाणु के तिरछे देश के संयोगी बीच में होनेवाले परमाणु से सीधे ठहरे हुए परमाणु दक्षिण और उत्तर हैं । इसी प्रकार मध्याह्न के सूर्य की दूरी वा समीपता की अपेक्षा परमाणु ऊपर वा नीचे होते हैं । संयुक्त संयोगों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक वा कम होना ही दूरी वा समीपता है। इसलिए एक भी परमाणु के और परमाणुओं के साथ जो संयोग हैं वही परमाणु के भाग हैं। परमाणुओं के संयोग परमाणुओं में व्यापक नहीं होते। इसी प्रकार एक भी दिशा के संयोग ही भाग हैं। इसलिए परमाणु का दो दिशाओं के भागों से संयोग मूर्त्तिमान् होने से होता है, अवयव सहित होने से नहीं। मूर्त्तिवान् और स्पर्शवान् होने से ही परमाणुओं द्वारा छाया वा आवरण होता है। मूर्त्तिमान् पृथ्वी के परमाणु से तेज का परमाणु जब ढक जाता है तब छाया होती है। इस प्रकार परमाणु को सिद्ध करने के बाद बाह्य पदार्थ ज्ञान से भिन्न नहीं है, इस मत का खण्डन कर, फिर मुमुक्षु को यम नियम का पालन करना चाहिए तथा समाधि का अभ्यास करना चाहिए जिससे तत्त्वज्ञान उत्पन्न हो, संशय को दूर करने के लिए न्याय-शास्त्र का अभ्यास तथा गुरु शिष्य वा मुमुक्षुओं के साथ वाद करना चाहिए और विद्या की रक्षा के लिए जल्प और वितण्डा का प्रयोग करे, धन लाभ पूजा वा प्रसिद्धि के लिए नहीं—यह उपदेश देकर द्वितीय आह्निक के साथ चतुर्थ अध्याय समाप्त किया गया है। पञ्चम अध्याय के प्रथम आह्निक में चौबीस प्रकार की जातियों का लक्षण है। द्वितीय आह्निक में बाईस प्रकार के निग्रह स्थानों का लक्षण है। इस प्रकार पांच अध्यायों में न्यायशास्त्र समाप्त हुआ है।

इस लेख में विस्तार के भय से कुछ ही विषयों पर उद्योतकर तथा वाचस्पति मिश्र के विस्तृत लेख का संक्षिप्त भाव पाठकों के सामने उपस्थित करने की चेष्टा की गई है। अवशिष्ट विषयों का नाम-मात्र से उल्लेख कर दिया है।

ईश्वरचन्द्र ब्रह्मचारी

तक्षशिला की कुछ प्राचीन इमारतें।



रतवर्ष के शतशः नहीं, सहस्रशः कीर्तिस्तम्भ काल की कुक्षि में चले गये हैं। उनका अब कहीं पता नहीं। पुराने खँडहर खोदने से यदि कहीं उनका कोई भग्नांश निकल आता है तो पुराण-वस्तु-विज्ञानी उससे ग्रीस, फारिस, आसिरिया और बैबीलोनिया की बू निकालने लगते हैं। ऐसी कारीगरी उस समय ग्रीस ही में होती थी, अतएव भारतवासियों ने इसे उसी देश के कारीगरों से सीखा होगा। अथवा ऐसे मन्दिर या महल उस युग में फ़ारिस या बाबुल में ही बनते थे, इस कारण, हो न हो, यह वहीं की नक़ल है। वे लोग इसी तरह के तर्कों की उद्भावनायें करने लगते हैं। पहले इस प्रकार के तर्कों का ज़ोर कुछ अधिक था, पर अब कुछ कम हो गया है। अब भारतवर्ष की पुरानी सभ्यता और पुराने कला-कौशल के चिह्न अधिक मिलते जा रहे हैं। इस कारण पुरानी तर्कना की कुछ इमारतें गिरने नहीं तो हिलने ज़रूर लगी हैं। क्योंकि इन चिह्नों से भारत की सभ्यता के बहुत पुराने होने के प्रमाण पाये जाते हैं। कुछ नये पुराविदों ने तो इस देश की सभ्यता को लाखों वर्ष की पुरानी सिद्ध करने के लिए पुस्तकें तक लिख डाली हैं।

यहाँ के अनेक महल, मन्दिर, स्तूप और ग[illegible] आदि तो काल खा गया। पर इस विनाश के विषय में विशेष शोक करने की ज़रूरत नहीं। क्योंकि जीर्ण होने पर सभी वस्तुओं का नाश अवश्यम्भावी है। परन्तु जो इमारतें धर्म्मान्धों और बर्बर वि[illegible]शियों ने धर्मान्धता अथवा उत्पीडन की प्रेरणा [illegible] ही नष्ट कर दीं उनके असमय-नाश का वि[illegible] करके अवश्य ही शोक होता है। प्राचीन काल [illegible] तक्षशिला नामक नगरी बड़ी उन्नत अवस्था में थी। वह लक्ष्मी की लीला-भूमि थी। वह विद्वानों [illegible] विहार-स्थल थी। वह बड़े बड़े प्रतापी नरेशों [illegible] प्रभुता-निकेतन थी। उसका आयतन बहुत वि[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri





जौलियाँ (तक्षशिला) के प्रधान स्तूप के बाहर बने हुए दो शीर्ष।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। कई नये नये नगर वहाँ बस गये थे। कई पुराने नगर उजड़ गये थे। चिह्नों से जान पड़ता है कि ईसा के पाँचवें शतक तक तक्षशिला-नगरी विद्यमान थी। तब तक भी वहाँ अनेक अभ्रंकश प्रासाद, स्तूप, विहार आदि उसके वैभव की घोषणा उच्च स्वर से कर रहे थे। अकस्मात् उस पर हूणों ने चढ़ाई कर दी। वहाँ के तत्कालीन अधीश्वर की हार हुई। विजयी हूणों ने उसे ख़ूब लूटा। पर इतने से भी उनकी तृप्ति न हुई। उन्होंने उसे जला कर ख़ाक ही कर दिया। जो अंश ख़ाक हो जाने से बचा वह उजड़ गया। उस पर जङ्गल उग आया। धीरे धीरे भग्नांश पृथ्वी के पेट के भीतर दब गये।

आरकियालाजीकल महकमे ने अब तक्षशिला के खँडहर खोद कर उन टूटी-फूटी इमारतों को बाहर निकालना शुरू किया है। यह काम कई सालों से जारी है। अब तक जो भग्नांश खोद निकाले गये हैं और उनसे जो जो चीज़ें प्राप्त हुई हैं उनका वर्णन इस महकमे की सचित्र सालाना रिपोर्टों में हो चुका है। उनका दिग्दर्शन सरस्वती में प्रकाशित कई नोटों में भी किया जा चुका है। अब इस महकमे के अध्यक्ष, सर जान मार्शल, ने प्रत्येक भग्नांश का विवरण पृथक् पृथक् पुस्तक में प्रकाशित करने का क्रम जारी किया है। इससे यह सुभीता होगा कि प्रत्येक स्थान-विशेष का वर्णन एक ही जगह मिल जायगा। तक्षशिला की खुदाई से अब तक जो ऐतिहासिक पदार्थ—मूर्तियाँ, स्तूप, औज़ार, व्यावहारिक वस्तुयें, सिक्के आदि—निकले हैं उन पर, साधारण तौर पर, एक अलग पुस्तक भी प्रकाशित की गई है। उसका नाम है—A guide to Taxila उसमें तक्षशिला की खोद-निकाली गई इमारतों का भी वर्णन है।

प्राचीन तक्षशिला के खँडहरों की सीमा के भीतर एक जगह जौलियाँ (Jaulian) नाम की है। उसे खोदने से जो इमारतें और जो पदार्थ निकले हैं उनका विवरण, एक अलग पुस्तक में, अभी हाल ही में, प्रकाशित हुआ है। वह अँगरेज़ी में है और सचित्र है। नाम है—

Excavations At Taxila—The Stupas and Monasteries at Jaulian. इसका भी प्रकाशन सर जान मार्शल ने ही किया है। इसका अधिकांश उन्हीं का लिखा हुआ भी है। अल्पांश के लेखक और कई महाशय हैं। पुस्तक में छोटे बड़े अनेक चित्र हैं।

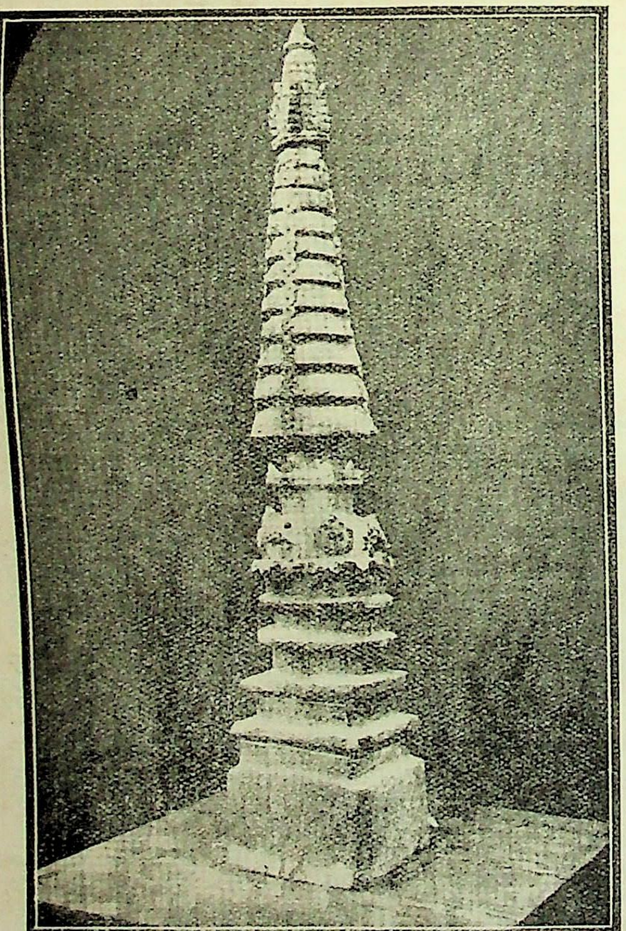
जौलियाँ में, जहाँ खुदाई हुई है वहाँ, कोई डेढ़ हज़ार वर्ष पहले बौद्धों के कितने ही स्तूप, विहार और चैत्य आदि थे। ये सब एक ऊँची जगह, पहाड़ी पर, थे। खोदने पर इन इमारतों में आग लग कर गिर जाने के चिह्न पाये गये हैं। ईसा की पाँचवीं सदी में तक्षशिला और उसके आस पास के प्रान्त पर हूणों के धावे हुए थे। उन्होंने उस प्रान्त का विध्वंस-साधन किया था। बहुत सम्भव है, उन्होंने जला कर इन इमारतों का नाश किया हो।

खोदने से इन खँडहरों में एक बहुत बड़े स्तूप का खण्डांश निकला है। छोटे छोटे स्तूप तो बहुत से निकले हैं। यहीं, स्तूपों के पास, बौद्ध भिक्षुओं के रहने की जगह भी थी। वह एक विस्तृत विहार था, जिसमें पचास साठ भिक्षुओं के रहने के लिए अलग अलग कमरे थे। वह दो-मँज़िला था।

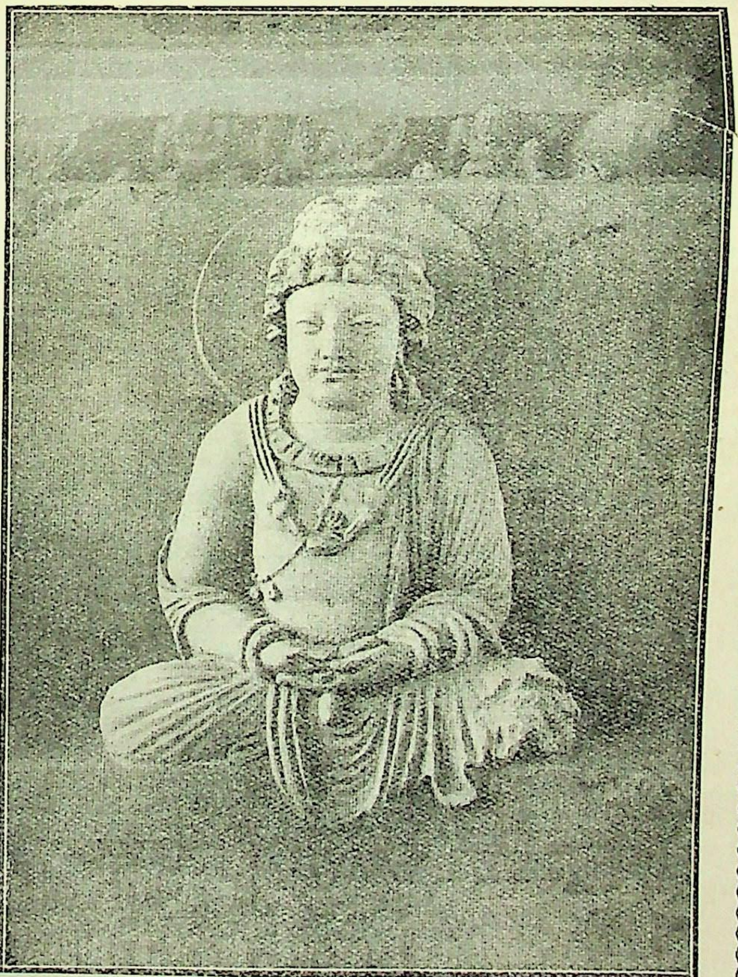
खोदने से, जौलियाँ में, बुद्ध और बोधिसत्वों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जौलियाँ (तक्षशिला) के एक स्तूप के भीतर पाया गया, चूने के पलस्तर का वह स्तूपाकार पदार्थ, जिसमें चैत्यभस्म मिली है ।



जौलियाँ (तक्षशिला) के स्तूप में प्रदर्शित बोधिसत्व मैत्रेय की मूर्ति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत सी मूर्तियाँ मिली हैं। कई मूर्तियाँ अखण्डित हैं और बड़ी विशाल हैं। स्तूपों के चारों ओर, कई क़तारों में, मिट्टी और चूने के पलस्तर की और भी सैकड़ों मूर्तियाँ पाई गई हैं। वे बुद्ध, बोधिसत्वों,



जौलियाँ (तक्षशिला) के विहार के एक कमरे के सामने बनी हुई मिट्टी की एक म्लेच्छ-मूर्ति।

भिक्षुओं, उपासिकाओं, देवों और यक्षों आदि की हैं। इन सबकी वेश-भूषा, आभूषण आदि देख कर उस समय के वस्त्राच्छादन और सामाजिक व्यवस्था का सच्चा हाल मालूम हो सकता है। पुरुषों के उष्णीष और अङ्ग-वस्त्र, स्त्रियों के सलूके और कर्ण-कुण्डल, तथा देवों और यक्षों के कुतूहल-जनक आकार-प्रकार और भावभङ्गियाँ बड़ी योग्यता से मूर्तियों में दिखाई गई हैं। उस समय के भारतवासियों ने जिन हूणों को म्लेच्छ संज्ञा दे रक्खी थी उनकी भी मूर्तियाँ मिली हैं। जिन धार्म्मिक बौद्धों ने अपने अपने नाम से स्तूप बनवाये थे उनके खुदाये हुए, खरोष्ठी लिपि में, कई अभिलेख भी यहाँ मिले हैं। वे कुछ कुछ इस प्रकार के हैं—

"बुद्धरच्छितस भिक्षुस दनमुखो"

अर्थात् भिक्षु बुद्धरक्षित का दान किया हुआ।

पुरातत्त्वज्ञों का अनुमान था कि ३०० ईसवी में ही खरोष्ठी लिपि का रवाज भारत से उठ गया था। पर यह बात इन अभिलेखों से ग़लत साबित हो गई, क्योंकि ये चौथी या पाँचवीं सदी के हैं। इससे ज्ञात हुआ कि और भी सौ दो सौ वर्ष तक इस लिपि का रवाज भारत के पश्चिमोत्तर भाग में था।

खोदने से यहाँ अनेक प्राचीन सिक्के, मिट्टी के बर्तन और सीलें, लोहे और ताँबे के अरवे, चमचे, ज़ंजीरें और कील-काँटे आदि निकले हैं। सोने की भी कुछ चीज़ें प्राप्त हुई हैं। मिट्टी के एक बर्तन के भीतर एक अधजली पुस्तक भी मिली है। वह भोज-पत्र पर लिखी हुई है। संस्कृत-भाषा में है। बौद्धधर्म्म-विषयक कोई ग्रन्थ मालूम होता है। प्रायः वसन्त-तिलकवृत्त में है। खेद है, इसका एक भी पृष्ठ पूरा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई स्तूपों में अस्थिभस्म भी मिली है। मालूम होता है कि कितने ही छोटे छोटे स्तूपों के भीतर अस्थि-भस्म रक्खी गई थी। क्योंकि रखने की जगह तो बनी हुई है, पर अस्थिगर्भ डिब्बे या बक्स नहीं मिले। वे या तो नष्ट हो गये या निकाल लिये गये। स्तूप नम्बर ११ A में एक छतरीदार, ३ फुट ८ इंच ऊँची, विचित्र बनावट की एक चीज़ मिली है। वह पलस्तर की है और स्तूपाकार है। उस पर नीला और सुर्ख़ रङ्ग है। ऊपर कई प्रकार के पत्थर, जिनमें से कुछ रत्न-सदृश भी हैं, जड़े हुए हैं। जिस कोठरी के भीतर यह चीज़ मिली है वह १०½ इंच चौकोर और ३ फुट ८½ इंच ऊँची है। इस स्तूपाकार वस्तु के भीतर लकड़ी की एक छोटी सी डिबिया थी। वह सड़ी मिली है। उसमें मूंगा, सुवर्णपत्र, हाथीदाँत, बिल्लौर के मनके आदि थे। उसके भी भीतर धातु की एक छोटी सी डिबिया थी। उस डिबिया के भी भीतर एक और डिबिया थी। उसी में काली काली ज़रा सी राख थी। यह राख किसी की अस्थियों की अवशिष्ट भस्म के सिवा और क्या हो सकती है।

यदि भारत के प्राचीन खँडहरों की खुदाई के लिए गवर्नमेंट कुछ अधिक रुपया ख़र्च करती और यह काम कुछ अधिक झपाटे से होता तो दस ही पाँच सालों में अनेक खँडहर खुद जाते और उनसे निकली हुई वस्तुओं और इमारतों के आधार पर प्राचीन भारत का इतिहास लिखने में बहुत सुभीता होता। परन्तु, अभाग्यवश, वह दिन अभी दूर मालूम होता है।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

चित्र-पट।



जिस शहर में मतिराम तसवीरें बनाया करता था उसमें उसकी जान-पहचानवाला कोई भी न था। लोग यही जानते थे कि यह एक परदेशी है और तसबीरें बनाना है इसका पुश्तैनी पेशा। वहाँ, इससे अधिक, उसका परिचय और कोई कुछ न जानता था।

मतिराम अपने मन में सोचता था कि मैं कभी मालदार था, अब धन नहीं रहा यह अच्छा ही हुआ। अब दिन-रात भगवान् के रूप-रङ्ग का विचार किया करता हूँ, उन्हीं का प्रसाद खाता हूँ और घर-घर में उनकी प्रतिष्ठा करता हूँ। मेरे इस सम्मान को—इस प्रतिष्ठा को—कौन छीन सकता है?

कुछ दिनों में वहाँ के राजमन्त्री सुरपुर को पयान कर गये। विदेश से राजा ने बड़ी आव-भगत से एक मन्त्री को बुलवाया। जिस दिन वह आया उस दिन बस्ती में ख़ासी धूम धाम की गई।

किन्तु उस दिन मतिराम की क़लम रुक गई। उस दिन चित्राङ्कन न हुआ।

यह नया मन्त्री वही लावारिस लड़का तो है जिसे मतिराम के पिता ने पाल-पोस कर और लिखा-पढ़ा कर आदमी बनाया है। उन्हें इस पर अपने लड़के की अपेक्षा कहीं अधिक विश्वास था। इस अतिरिक्त विश्वास का परिणाम यह हुआ कि सेंध लगा कर उस बुड्ढे का सर्वस्व हरण कर लिया गया! वही चोट्टा अब राज्य का मन्त्री हुआ है।

जिस कमरे में बैठ कर मतिराम चित्र बनाया करता था उसी में श्रीठाकुरजी भी पधारे हुए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके आगे जाकर मतिराम ने प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर कहा—प्रभो, क्या इसी लिए मैं प्रत्येक रेखा और हर एक रङ्ग में तुम्हारा स्मरण करता आया हूँ ? इतने दिनों के पश्चात् उस आराधना का फल क्या इस अपमान के रूप में आपने दिया ?

× × × ×

अब रथ-यात्रा का मेला लगा।

उस दिन देश-विदेश के सैकड़ों आदमी मतिराम के यहाँ तसवीरें मोल लेने आये। उस भीड़ में एक लड़का भी मतिराम की दूकान पर आया जिसके आगे-पीछे बहुत से नौकर-चाकर थे।

एक तसवीर को पसन्द करके उसने कहा—मैं इसी को लूँगा।

मतिराम ने उसके नौकर से पूछा—यह किसका लड़का है ?

उत्तर मिला—राजमन्त्री का एकलौता बेटा।

चित्रकार ने चित्र को रूमाल से ढक कर कहा—यह चित्र बिकाऊ नहीं है।

इससे लड़के की ज़िद और भी बढ़ गई। घर आकर उसने भोजन न किया। मुँह फुला कर अलग बैठ रहा।

मन्त्री ने मतिराम के पास थैली भर अशरफ़ियाँ भेज दीं लेकिन वे ज्यों की त्यों धन्यवाद-पूर्वक वापिस कर दी गईं।

मन्त्री ने मन में कहा—इतना बड़ा दिमाग़ ! कहाँ मामूली तसवीर और कहाँ थैली भर अशरफ़ियाँ !

मतिराम पर जितना ही अत्याचार और उत्पीडन होने लगा उतनी ही उसने अपनी जीत समझी। जीत समझ कर वह मन ही मन प्रसन्न भी ख़ूब हुआ।

× × × ×

प्रति दिन सबेरे उठ कर पहले पहल वह अपने इष्टदेव की एक तसवीर बनाया करता था। बस, यही उसकी पूजा थी। और किसी तरह पूजा करना वह न जानता था।

एक दिन देखा कि मन के माफ़िक चित्र अङ्कित नहीं हुआ। न जाने कहाँ क्या फेरफार होगया है। चित्र उसको किसी भी तरह पसन्द न आया चित्र का ऐब उसके दिल में काँटे चुभोने लगा। बेचारे को किसी तरह चैन न मिला।

धीरे धीरे उस सूक्ष्म परिवर्तन ने स्थूल रूप धारण कर लिया। एक दिन चित्रकार ने एकाएक चौंक कर कहा—ओहो, अब समझ में आया।

आज उसने स्पष्ट देख लिया कि प्रतिदिन चित्र में अङ्कित उसके देवता का चेहरा, मन्त्री के चेहरे की तरह होता जाता है।

उसने क़लम को फेंक कर कहा—मन्त्री की ही जीत हुई।

उसी दिन मतिराम ने मन्त्री के पास जाकर कहा—लो, यह तसवीर अपने लड़के को दे देना।

मन्त्री ने पूछा—इसके दाम ?

चित्रकार ने कहा—हमारे देवता के ध्यान को तुमने छीन लिया था। इस चित्र के बदले में हम उसी को लेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्री टुकुर टुकुर देखता रह गया। उसकी समझ में कुछ भी न आया।❀

'ललन'

भारत में चीनी का व्यवसाय।



सभी जगह खाद्य पदार्थों में चीनी का व्यवहार होता है। सभ्य देशों में फ़ौज के सिपाहियों को चीनी अवश्य ही खानी पड़ती है। निम्नोक्त अङ्कों से मालूम होगा कि किस देश में प्रति मनुष्य पीछे चीनी का खर्च कितना है।

डेनमार्क	४७ सेर	आस्ट्रिया	१६ सेर
ग्रेटब्रिटेन	४५ "	रूस	१४ "
जर्मनी	३७॥ "	भारतवर्ष	१३ "
स्विटज़रलेंड	३७॥ "	टर्की	१० "
ईरान	१६॥ "	इटली	५॥ "

पहले भारत में चीनी का काम गुड़ से लिया जाता था, पर अब चीनी का उपयोग अधिक परिमाण में होता है। लोग चीनी को अधिक पसन्द करते हैं। तो भी गुड़ का व्यवसाय लुप्त नहीं हुआ है। देहातों में इसका खूब प्रचार है।

भारत में चीनी की आवश्यकता की पूर्ति के लिए दो पदार्थ आवश्यक हैं, गुड़ और साफ़ की हुई चीनी। भारत में ईख से गुड़ बनता है, क्योंकि और देशों की अपेक्षा यहाँ ईख की उपज बहुत अधिक है। नीचे लिखी हुई सूची से मालूम होगा कि सन् १९१३-१४ से १९१९-२० तक भारत में कितना गुड़ तैयार हुआ।

भारत में ईख से बने हुए सब तरह के गुड़ की तादाद।

साल		टन
१९१३—१४	...	२०,५२,०००
१९१४—१५	...	२१,८२,०००
१९१५—१६	...	२३,४२,०००
१९१६—१७	...	२४.५३.०००
१९१७—१८	...	३०,४९,०००
१९१८ १९	...	२२.००,०००
१९१९—२०	...	२६.५१,०००

इसके सिवा भारत में ३,००,००० टन खजूर का गुड़ भी तैयार होता है। बिना साफ़ की हुई चीनी—अधिकतर गुड़—भारत में शान स्टेट, अफ़ग़ानिस्तान, नेपाल, नागा और निलगी की पहाड़ियों से आती है।

बिना साफ़ की हुई चीनी और गुड़ की आमद का ब्योरा, लड़ाई के दो वर्ष पहले और तीन वर्ष बाद का, इस प्रकार है:—

साल		क़ीमत (रुपया में)		तादाद (टन में)
१९१२	...	३५,०३९	..	२०३·३५
१९१३	...	४१,८४७	...	२२८·९५
१९१८	...	१,४८,६८१	...	८२५·६०
१९१९	...	१,७४, ३४८	...	८०१·३०
१९२०	...	१,९४,२७४	...	६८०·५०

बिना साफ़ की हुई चीनी और गुड़ यहाँ जितना तैयार होता है और जितना दूसरे देशों से आता है उसका कुछ हिस्सा बाहर भेजा जाता है और बाक़ी यहीं खप जाता है। जिन देशों को यह गुड़ भेजा जाता है उनमें यूनाइटेड किङ्गडम्स और लङ्काद्वीप मुख्य हैं। लड़ाई के पहले, सन् १९१२ में, युनाइटेड किङ्गडम्स ने १४,८६०, टन और १९१३ में ३,९२३ टन गुड़ लिया। इसका मूल्य क्रम से २१,६५,४७५ और ३,८१,१८० रुपया हुआ। और भी, सन् १९१९ और १९२० में उसने क्रम से ४,०३६, और १६,५५१, टन गुड़ लिया, जिसकी क़ीमत क्रम से १०,२२,३२० और ५०,३७,१६० रुपया हुई। लङ्काद्वीप ने भी सन् १९१८ में ३,३६९, टन (जिसका मूल्य ६,०५,२८० रुपया हुआ) १९१९ में ३,८७५ टन (जिसका मूल्य ८,८२,६२० रुपया हुआ) और सन् १९२० में ५,०३४ टन (जिसका मूल्य १९,२२, ७१० रुपया हुआ) गुड़ लिया। आगे के कोष्ठकों से लड़ाई के दो वर्ष पहले और तीन वर्ष बाद की रपतनी का पता लगेगा।

❀ डाकृर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक आख्यायिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल-मार्ग द्वारा चीनी का निर्यातन।

देश जहाँ चीनी भेजी गई	१९१२		१९१३		१८१८		१९१९		१९२०	
	क़ीमत रुपया	तादाद टन	क़ीमत रुपया	तादाद टन	क़ीमत रुपया	तादाद टन	क़ीमत रुपया	तादाद टन	क़ीमत रुपया	तादाद टन
युनाइटेड किङ्डम	२१,६५-४७५	१४,८६०	३,८१,-१२०	३,९२३	×	×	१०,२२.-३२०	४०३६	५०,३७,-१६०	१६,५५१
लङ्काद्वीप	×	×	×	×	६,०५,-२८०	३,३६९	८,८२,-६२०	७५	१९,२२,-७१०	५०३४
अन्य देश	४,०७,०२५	३,१००	४,६२,-८८५	३,२०५	१,६६,-३६०	७७५.	१७९-४२०	७७५	६,७६,-१९०	२,२९०
जोड़	२५,७२,-५००	१७,९६०	८,४४,-०६५	७,१२८	७,७१-६४०	४,१४४	२०,८४-४३०	८,६८६	७६,३६,-०६०	२२,८७५

बिना साफ़ की हुई चीनी का स्थल-मार्ग-द्वारा निर्यातन।

साल	क़ीमत रु०	तादाद टन
१९१२	१५,३७,२२९	९,२१७·५५.
१९१३	११,२२,३८१	८,३२०·२०·
१९१८	११,६५,९९२	६,३३६·८०
१९१९	१३,७१,६८४	५,४९५·९५
१९२०	१८,६१,४५३	६,३९८·२०

भारत में इस समय चीनी बनाने के ३० कारख़ाने हैं। १,७७, ५६९ टन चीनी इन कारख़ानों में तथा अन्य छोटी मोटी मशीनों द्वारा तैयार होती है। यह याद रखने की बात है कि पुराने ढँग से चीनी बनाने का काम अब चलने का नहीं। क्योंकि मशीन से तैयार होनेवाली चीनी सस्ती पड़ती है और पुराने ढँग से तैयार होनेवाली चीनी महँगी। और सस्ती चीनी को छोड़ कर महँगी कौन ख़रीदने जायगा? भारत की बनी चीनी लङ्काद्वीप आदि देशों को भी भेजी जाती है। परन्तु अधिक परिमाण में नहीं। नीचे के कोष्ठक से मालूम होगा, कि जल-मार्ग द्वारा कितनी चीनी किस देश को भेजी गई।

देश	१९१२		१९१३		१९१८		१९१९		१९२०	
	मूल्य रु०	तादाद टन	मूल्य रु०	तादाद टन	मूल्य रु०	तादाद टन	मूल्य रु०	तादाद टन	मूल्य रु०	तादाद टन
लङ्का	७७.६४०	३६४	६१,५३०	३०६	२,४३,६३०	७४५.	१,२९,३४०	४०६	७,३१,७८०	८१७
एशियाटिक टर्की	×	×	×	×	१३,५१,७८०	२,४९१	५,९१,०७०	१,०४२	११,८६,९००	१,४३४
ईरान	×	×	×	×	१८,३६,५७०	३,३४,३	३,२७,६६०	५५९	१,१७,४८०	१३८
अन्य देश	३,४४,७६०	१,११२	३,७२,९००	१२५७	२,२०,५००	४६७	३,४०,५००	७०८	१६,७२,१४०	१,९१२
मीज़ान	४,२२,४००	१,४७६	४,३४,४३०	१,५६३	३६,५२,४८०	७,१४६	१३,८८,६१०	२,७१५	३७,०८,३००	४,३०१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साफ़ चीनी की आमद का लेखा ।

१६ डच स्टैन्डड की चीनी जावा, मारिशस, जापान, मिस्र और हांगकांग से आती है। इन देशों में भी, जावा सबसे अधिक चीनी भेजता है और इसके बाद मारिशस टापू का नम्बर आता है। लड़ाई के पहले जर्मनी और आस्ट्रिया हंगरी ने चुकन्दर की चीनी बनाना आरम्भ किया। फिर उस चीनी को खांड़ के सबसे बड़े बाज़ार भारत में उन्होंने बेचना शुरू किया। इससे भारत का खांड़ का बाज़ार चौपट होने लगा। इसी बीच में ब्रुसेल्ल (Brussels) की पञ्चायत ने जर्मनी और आस्ट्रिया की सरकारों से सिफ़ारिश की कि खांड़ पर गवर्नमेंट द्वारा दी गई सहायता बन्द कर दी जाय। इससे ईख के कारबारियों ने बहुत कुछ लाभ उठाया, पर अभागे भारत ने नहीं! इसकी दशा कुछ सुधरने भी न पाई थी कि जावा और मारिशसवालों ने रसायनशास्त्र की सहायता से सहज और समुन्नत प्रक्रियायें निकाल कर चुकन्दर की बढ़ती को रोक दिया। जहां ब्रुसेल्ल की पञ्चायत के दस वर्ष पहले ईख की अपेक्षा चुकन्दर की खांड़ दूनी तैयार होती थी वहां वह १९१३-१४ में ईख की खांड़ के बराबर ही रह गई! अब तक भारत का बाज़ार चुकन्दर की चीनी से भरा था। अब जावा और मारिशसवालों ने अपना प्रभुत्व जमा लिया। २५ वर्षों में जावा की चीनी की आमदनी ७०,००० टन से बढ़ते बढ़ते ८,००,००० टन तक पहुँच गई है।

देखिए, सन् १९१२, १९१३, १९१८, १९१९ और १९२० में जावा और मारिशसवालों ने कितनी चीनी (१६ डच स्टैन्डर्ड) भारत को भेजी :—

देश	१९१२		१९१३		१९१८		१९१९		१९२०	
	क़ीमत रुपया	तादाद टन	क़ीमत रुपया	तादाद टन	क़ीमत रुपया	तादाद टन	क़ीमत रुपया	तादाद टन	क़ीमत रुपया	तादाद टन
जावा	९,२९-५०,२३०	४,५३,२४७	९,२७,६२ १४५	५५१,८-६४	१०,९८-७२,५७०	३८३,-५६६,	१४,४७,-८५,३८०	३४०,४-१७·	१८,६६,-६४,६००	२७१ ९४९·
मारिशस	३,०२,-४९,५-७०	१३०,४४-८	२,१०,४०० ६८०	११३,-०९१	२, २४,-२५,४२०	६८,४-३१	१,८५,११ ६५०	४४,५-२३·	१,१७,६३ ५३०	१६,९· ८७

युनाइटेट किङ्गडम्स ने लड़ाई के दो वर्ष पहले अर्थात् सन् १९१३ और १९१४ में चीनी पूर्ण परिमाण में भेजी, पर लड़ाई के बाद वहां से चीनी बहुत ही कम परिमाण में आई। हंगरी आस्ट्रिया से तो लड़ाई के बाद चीनी बिलकुल ही नहीं आई। चीन ने १९१३, १९१४, १९१८, १९१९ और १९२० में जो चीनी भेजी है उसका ब्योरा इस प्रकार है:—

देश	१९१२		१९१३		१९१८		१९१९		१९२०	
	क़ीमत रुपया	तादाद टन	क़ीमत रुपया	तादाद टन	क़ीमत रुपया	तादाद टन	क़ीमत रुपया	तादाद टन	क़ीमत रुपया	तादाद टन
चीन	१०,५४,-३०५	३,७९-६	४,६६-३२०	१९७९	१५,०२-७००	३,३३१	६०,०९-६३०	१०,८-१५	६०,३३,-७१०	७,२५१

इस समय जापानी चीनी की भी आमद भारत में खूब बढ़ रही है। लड़ाई के बाद इसने तो खूब ही तरक़ी की है १९१३-१४ में जापान सिर्फ़ १३१ ही टन चीनी भेज सका, पर १९१६-१७ में जापान ने ११,६०० टन चीनी भेजी!

और देशों का नाम न देकर इतना ही लिख देना का[illegible] होगा कि सन् १९१३ में भारत में अन्यान्य देशों [illegible] ६,०१,७७६ टन, १९१४ में ७,४९,९२६ टन, १९१८ [illegible] ५,३०,६३५ टन, १९१९ में, ४,१९, ३६१ टन और १९२[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ३,१२, ९९८ टन चीनी भारत में आई, जिसका मूल्य क्रम से १२,७५,७१,८०५, रुपया; १३,६७,५३,३५० रुपया; १५,७३,८२, ५८० रुपया १८, २६, ७०, ७६० रुपया और २१, ८०, ८९, ६५० रुपया हुआ।

इसके सिवा कुछ चीनी काबुल, नेपाल आदि देशों से भी स्थलमार्ग द्वारा आती है। स्थलमार्ग से सन् १९१२ में ९.१० टन, १९१३ में ९.५५ टन, १९१८ में ३४.९५ टन, १९१९ में ६.९० टन और १९२० में १०.५५ टन चीनी भारत में आई। इसका मूल्य क्रम से २,६००, २३,४५, १२०३५, ५५०१ और ५९८० रुपया हुआ। भारत जैसे ग़रीब देश के ऊपर यह भार! पर उपाय ही क्या है? यदि यहाँ ईख की बोआई ख़ूब होती तो हमारी यह हालत न रहती। निम्नोक्त अङ्कों से विदित होगा कि यहाँ ईख की बोवाई कितनी कम होती है।

कितनी एकड़ भूमि में ईख की बोवाई हुई।

संवत्	एकड़
१९४७	२७,५८,४५०
१९५२	२९,३०,५८३
१९६२	२२,४१,७५०
१९६८	२३,७०,०००

इससे ज्ञात होता है कि बीस वर्ष के अन्दर ईख की खेती के रक़बे में १५ प्रति शतक की कमी हो गई।

जितनी साफ़ चीनी भारत में आती है, वह सब यहीं नहीं खप जाती। इसमें से कुछ अन्य देशों को भेजी जाती है। जो चीनी यहाँ आती है उसका कुछ हिस्सा जलमार्ग और कुछ स्थलमार्ग द्वारा बाहर भेजा जाता है, और जो बाक़ी बचती है उसकी खपत यहीं हो जाती है। फिर से भेजी जानेवाली चीनी अधिकतर १६ डच स्टैन्डर्ड से ऊपर की होती है। इसका पुनः निर्यातन एशियाटिक टर्की, अदन, अरब, ईरान, पूर्वी अफ़्रीका, जंजीबार और पेम्बा को होता है। इसकी रफ़्तनी बम्बई, कलकत्ता और करांची से होती है।

नीचे की सूचियों से पुनः निर्यातन और निर्यातन का ब्योरा मालूम होगा।

सन् १९१३, १९१८, १९१९ और १९२० में जलमार्ग द्वारा चीनी के पुनः निर्यातन का ब्योरा :—

देश	१९१३		१९१८		१९१९		१९२०	
	क़ीमत रुपया में	तादाद टन में	क़ीमत रुपया में	तादाद टन में	क़ीमत रुपया में	तादाद टन में	क़ीमत रुपया में	तादाद टन में
१६ डी. एस. से ऊपर की चीनी								
अरब	४,१२.३०५.	१,७६९	१५,४०,०१०	४,०९५	९,५८,३५०	२,१२०	१४,६३,६६०	१,९६१.
ईरान	३,२८,६९५.	१,४२५.	८८,७६,११०	२१,७६२	३३,१०,२००	५,८३२.	६८,९८,५२०	८,४१६.
पूर्वीय अफ़्रीका	३,०१,२४५.	१,३४८	७,४०,६१०	१,९०४	१०,१९,७००	१,९९८.	१३,७२,८४०	१,८१४.
युनाइटेड किङ्गडम्स	×	×	×	×	६९,०३,२००	१३,७२०	२३,७५,४१०	२,८१०.
बेलजियम	×	×	×	×	५९,४४,६२०	१४,८६१	१८.५६, ९८०.	२,२९९.
एशियाटिक टर्की...	×	×	४५,१०,८५०	११,०४७.	५८,८६,४७०	९,६६९	१,१७,७० ३७०.	१४,२५१-
अदन और	×	×	१३,८४२,३०	३,५५७.	१०,८७,५३०	२,३११.	१३,१५,३३०	२०,१३.
अन्य अधीनस्थ देश...	१०,०८, ९७५.	४,९६०	२५,०५, ४३०.	६,७३५.	८०,७४,६३०	१७,८९७	३,७७,९५ ४३०	४४,१२५
जोड़...	२०,५१, २२०.	९,५०२.	१,९५,५७, २४०.	४९,१००	३,३१,८४, ७००	६८,४०८	६,४८,४८ ५४०	७७,६८९.
१५ डच स्टैन्डर्ड से नीचे की चीनी	७१,५५०	४७४	१०	×	×	×	२६०	१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थलमार्ग द्वारा साफ़ की हुई चीनी के निर्यातन का ब्योरा :—

साल	क़ीमत (रुपये में)	तादाद (टन में)
१६१३	१७,६३,२६०·	६,६२५·३०·
१६१८	६२,८३,४६६·	१५.०२३·६५·
१६१६	३४,४६,०६६·	६,७०२·८०
१६२०	५१,२६,१५६·	५.८४५·८०

अब यहाँ प्रसिद्ध चीनी (गुड़) (Raw sugar) के आयतन का विवरण दिया जाता है ।

१५ डच स्टैन्डर्ड और उससे नीचे की चीनी जावा द्वीप से आती है । १६१६ तक यह मारिशस से भी आती थी । १६१५–१६ में मारिशस से ५,४१५ टन अपरिष्कृत चीनी (गुड़) आई । परन्तु १६१८ से १६२० तक वहां से इस प्रकार की चीनी की आमद नहीं हुई ।

१६१२,१६१३,१६१८,१६१६ और १६२०, में कितने परिमाण में इसकी आमद थी, सो देखिए:—

साल	क़ीमत (रुपया में)	तादाद (टन में)
१६१२	१०,२४,५६०	५,६४३
१६१३	१२,७६,३८०	८,५६४
१६१८	१,०४०	५
१६१६	१,५६, ३२०	३४५
१६२०	४,१८, ८३०	७२४

सन् १६१६ में, भारत में ७०,६४, ६२० रुपये की ५७,२५२ टन राब (Molasses) की आमद हुई; परन्तु १६२० में १,०१,६३,२४० रुपये की ६१,६०० टन राब अन्य देशों से भारत में आई । लड़ाई के पाँच वर्ष पहले इसकी आमद ६३,३५४ टन की तादाद में हुई जिसका मूल्य ४१·५३ लाख रुपया हुआ । भारत के कारख़ानों में ३०,००० टन राब तैयार होती है । इन कारख़ानों में ईख से सीधे चीनी तैयार होती है। बाहर से आई हुई तथा यहीं तैयार हुई राब यहीं खप जाती है; अतः न इसका निर्यातन होता है और न पुनः निर्यातन । राब विशेषतः तम्बाकू की पत्तियों के साफ़ करने के काम में आती है । इसकी आमद अब केवल जावा से ही होती है । १६२० के पहले तक यह मारिशस और जापान से भी आती थी, पर अब वहाँ से इसकी आमद बन्द हो गई । मारिशस से सन् १६१६-१७ और १६१७–१८ में क्रम से २,१७५ और ५६५ टन राब आई । जापान से भी १६१५–१६ में ७३२ टन की तादाद में आई । इसके बाद इन देशों से इसकी आमद रुक गई ।

सन् १६१७ और १६१८ में राब का आना एक तरह से बन्द ही हो गया । कारण था भाड़े की वृद्धि और जहाज़ों की कमी । इसके बाद से कुछ कुछ आमद होने लगी । पर इससे भारत की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकती । भारत में जितनी राब तैयार होती है उससे चौगुनी ख़र्च होती है । इससे आशा की जाती है कि इसकी ख़ूब बिक्री रहेगी ।

सन् १६१२ में ३६,७०,०३५ रुपये की ६३,७०५ टन, सन् १६१३ में ४१,३४,५२५ रुपये की ६५,३१६ टन, १६१८ में १७,२७,८६० रुपये की १६,८०६ टन, १६२६ में ७०,६४,६२० रुपये की ५७,२५२ टन और १६२० में १,०१,६३,२४० रुपये की ६१,६०० टन राब की आमद हुई ।

उपर्युक्त अङ्कों से साफ़ ज़ाहिर होता है कि सन् १६१० में और सालों की अपेक्षा राब महँगी हो गई ।

चीनी की बनी मिठाई भारत में अधिकतर युनाइटेड किङ्गडम्स, संयुक्त राज्य और जापान से आती है । सन् १६१६ में १४,६५,१६० रुपये की ८५१ टन मिठाई की आमद हुई । १६२० में ४२,७४, ५८० रुपये की १,६०५ टन मिठाई भारत में आई । सन् १६१६ में जो मिठाई आई उसमें से १,०७,३०५ रुपये की ५५ टन मिठाई फिर यहाँ से भेजी गई । और १६२० में जितनी मिठाई आई उसमें से ४५ टन (क़ीमत ६६,६१० रु०) का पुनः निर्यातन हुआ । १६१६ में जलमार्ग द्वारा १,१३,१६० रुपये की १०४ टन मिठाई बाहर भेजी गई और १६२० में ४७, ४१० रुपये की ३४, टन मिठाई की रफ्तनी, जलमार्ग द्वारा, अन्य देशों को हुई । आगे आयतन, निर्यातन और पुनः निर्यातन का लेखा तीन कोष्ठकों में दिया जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलमार्ग द्वारा चीनी की मिठाई का आयतन।

साल	तादाद टन में	क़ीमत (रुपया में)
१९१२	३,३२९	२५,०९,०८०
१९१३	३, ९४३	२७,६७,५९०
१९१८	१८९	४,०६,५३०
१९१९	८५१	१४,६५,१८०
१९२०	१,९०५	४२,७४,५८०

जलमार्ग द्वारा मिठाई का निर्यातन।

साल	तादाद (टन में)	क़ीमत (रुपया में)
१९१२	३	२,०१०
१९१३	५	३,४३५
१९१८	४३	५३,४८०
१९१९	१०४	१,१३,१९०
१९२०	३४	४७,८१०

जलमार्ग द्वारा मिठाई का पुनः निर्यातन।

साल	तादाद (टन में)	क़ीमत (रुपया में)
१९१२	१६	९,६४५
१९१३	३१	२०,९२५
१९१८	१३	१८,१८०
१९१९	५५	१०७.३५०
१९२०	४५	९६,६१०

सन् १९२० में भारत में ८,१४, १६० रु० की २९ टन कृत्रिम चीनी (सकटीन) अन्य देशों से आई। इस चीनी का उपयोग शर्बत आदि में होता है, पर ऐसा करना हानिकारक है। कृत्रिम चीनी में चीनी के गुण का शतांश भी नहीं है—इसकी गिनती खाद्य पदार्थों में नहीं होनी चाहिए। इसके खाने से कोई लाभ नहीं है बरन हानि की अधिक सम्भावना है। चीनी की महँगी से लोग इसे ख़रीदने लगे हैं। यह लोगों की भूल है। अच्छा, कृत्रिम चीनी की आमद का लेखा देख लीजिए।

साल	तादाद (टन में)	क़ीमत (रुपया में)
१९१९	१०	२,४२,९४०
१९२०	२९	८,१४,१६०

उपर्युक्त सूचियों, अङ्कों और कोष्ठकों से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि भारत में विदेशी चीनी की खपत ७४८,५४४ टन है। इसमें १४–१५ करोड़ रुपया विदेश चला जाता है। भारत में १७७.५९९ टन चीनी तैयार होती है। इन दोनों अङ्कों से मालूम होगा कि भारत में चीनी के कारख़ाने खोलने के लिए अभी बहुत बड़ा क्षेत्र है। यदि भारतवर्ष में चीनी के कारख़ाने खुलें तो उन्हें बड़ा मुनाफ़ा होगा। क्योंकि एक तो यहाँ जितनी खपत होती है उतनी चीनी तैयार नहीं होती और दूसरे विदेशी चीज़ों पर चुंगी लगने तथा भाड़े में अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण विदेशी चीनी बड़ी महँगी हो गई है; ऐसी दशा में यदि भारत में चीनी तैयार हो तो उसकी ख़ूब बिक्री होगी। आजकल बहुत लोग विदेशी चीज़ों को लेना पसन्द भी नहीं करते स्वदेशी चीनी यदि पूर्ण रूप से मिले, तो वे उसे ही ख़रीदेंगे। कहने का तात्पर्य्य यह कि यदि भारत में चीनी के कारख़ाने खुलें, तो उन्हें अच्छा लाभ होगा। खेद है, अभी तक भारत के लोगों का ध्यान इस व्यापार की तरफ़ पूर्णरूप से आकृष्ट नहीं हुआ है।

भारत के लोगों को कल-कारख़ाना खोलना चाहिए, जिससे देश की उन्नति हो, देश समृद्धिशाली हो और दूसरे देशों का मुँह उसे न ताकना पड़े। वह सुदिन कब आवेगा जब भारत अपनी आवश्यकीय चीज़ें आपही तैयार करेगा! वाणिज्य-व्यापार की उन्नति से ही देश की उन्नति सम्भव है।

राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह

—

दादू दयाल की वाणी।



ब मुसलमानों ने भारतवर्ष में पदार्पण किया तब हिन्दी-साहित्य का उद्गम हुआ। मुसलमानों के साथ हिन्दी-साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि उन्हीं की छत्रच्छाया में हिन्दी-साहित्य की श्री-वृद्धि हुई। यही नहीं, किन्तु कितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मुसलमान कवियों ने हिन्दी-साहित्य को अपनी रचनाओं से ख़ूब पुष्ट भी किया। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि हिन्दी-साहित्य के ही द्वारा हिन्दू और मुसलमानों में एकता का पहला सूत्रपात हुआ। कुछ विद्वानों की राय है कि हिन्दू-समाज में एकेश्वरवाद का प्राबल्य मुसलमानों के ही कारण हुआ। किसी किसी की यह भी सम्मति है कि हिन्दी-साहित्य में तुकान्त कविताओं का प्रचार मुसलमानों ने ही किया। कुछ भी हो, इसमें तो सन्देह नहीं है कि मुसलमानों के शासन-काल में हिन्दी-साहित्य का प्रचार बढ़ा। पर यह कहना कठिन है कि यदि भारतवर्ष में मुसलमानों का आगमन न होता तो हिन्दी-साहित्य का कैसा स्वरूप होता। हाँ, इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि हिन्दी के आदि काल में भक्ति-वाद का आविर्भाव अवश्यम्भावी था। हिन्दू-समाज में जो जीवनधारा बह रही थी उसकी गति मुसलमानों के आगमन-काल के पहले से ही निर्दिष्ट थी। न तो मुसलमानों के आक्रमण ने और न उनके शासन-काल ने ही उसकी गति में बाधा दी। भारतवर्ष का सामाजिक सङ्गठन ही ऐसा था कि राजनैतिक क्षेत्र में उत्क्रान्ति होने पर भी भारतीय समाज उससे क्षुब्ध नहीं होता था। राजनैतिक क्षेत्र में उत्थान-पतन होता रहा, पर समाज अपने निर्दिष्ट पथ पर स्थिर रहा। जब हिन्दू साम्राज्य नष्ट हुआ और मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हुआ तब भी उसकी गति स्थिर रही। पानीपत के युद्ध ने भारतीय साम्राज्य को एक मुग़ल के हाथ सौंप दिया। पर भारतीय समाज ने अपनी सत्ता क़ायम ही रक्खी। यदि समाज की अवस्था परिवर्तित हुई तो उसका कारण राजनैतिक नहीं था। वह समाज ही के भीतर विद्यमान था। उसे जानने के लिए हमें तत्कालीन साहित्य का अवलोकन करना होगा।

धर्म साहित्य का उपादान है। बिना धर्म के साहित्य का निर्माण नहीं हो सकता। पृथ्वी के सभी देशों के साहित्य की नींव धर्म है। साहित्य की पुष्टि और विस्तृति अज्ञेयवाद और अध्यात्मवाद से होती है। विलासता और जड़वाद का प्राबल्य होने से साहित्य की अवनति होती है। भारतवर्ष में एक हज़ार वर्ष तक बौद्धधर्म का प्राबल्य रहा। बौद्धधर्म का आविर्भाव दुखःवाद में हुआ है। संसार दुःखमय है, क्योंकि वह जन्म, जरा, मृत्यु और व्याधि से ग्रस्त है। संसार से मुक्ति पाने का उपाय बतलाने के लिए संन्यास का पथ श्रेयस्कर माना गया। जब बौद्धमत शून्यवाद में परिणत हुआ तब लोगों के चित्त में केवल संशयावस्था ही थी। बौद्ध सङ्घों में अनाचार फैलने लगा। सर्व-साधारण भी सदाचार की अवहेलना करने लगे। धर्म के तत्त्व रहस्यमय हो गये। दार्शनिक विद्वान् शुष्क तर्क-जाल में पड़ गये। भगवान् शङ्कराचार्य ने हिन्दू-समाज का पुनरुद्धार किया। उनका मत मायावाद पर अवलम्बित है। यति-धर्म और संन्यास-पथ पर उन्होंने भी ज़ोर दिया। सर्व-साधारण को उनके सिद्धान्तों से समाधान हो सकता था, पर वे सन्तोष नहीं पा सकते थे। शङ्कराचार्य के पहले शैव और वैष्णव सम्प्रदाय का आविर्भाव हो चुका था, पर उनके सिद्धान्त नवीन संस्कृत-साहित्य में ही उपलब्ध हो सकते थे। सर्व-साधारण का प्रवेश वहाँ तक नहीं था। यही कारण है कि यह नवीन संस्कृत-साहित्य सौन्दर्ययुक्त होने पर भी प्राणहीन ही रहा। इसी समय मुसलमानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। उनके आगमन के दो सौ साल बाद वर्तमान भाषाओं में नवीन साहित्य का निर्माण होने लगा। यह साहित्य वैष्णव-धर्म के आन्दोलन का परिणाम था। थोड़े ही समय में इसका आधिपत्य समग्र भारतवर्ष पर हो गया। नानक, कबीर, दादू, तुलसीदास, चैतन्य, विद्यापति, तुकाराम आदि कवियों ने उसका ख़ूब प्रचार किया। इस धार्मिक आन्दोलन की विशेषता यह है कि वह प्रवृत्ति को ध्वंस नहीं करता, किन्तु प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति को क्रमशः आध्यात्मिकता की ओर ले जाना चाहता है। स्वभाव की उपेक्षा कर किसी अति मानवीय आदर्श के अनुसन्धान में व्यस्त रहने से उसका विपरीत ही प्रतिफल होता है। विषय को छोड़ कर विषयी को पकड़ने की चेष्टा करना, मनुष्य को छोड़ कर मनुष्यत्व के पीछे दौड़ना और इन्द्रिय को छोड़ कर रस ग्रहण करते जाना विडम्बना-मात्र है। इसी लिए वैष्णवों ने भगवान् के अवतार-वाद का इतना समादर किया है। वैष्णव-कवि मनुष्यों में भगवान् के स्वरूप को उपलब्ध करना चाहते हैं। रामानुज के बाद साकारोपासना प्रारम्भ हुई। परन्तु स्मार्त धर्म के प्रभाव से कृत्रिम आचार-व्यवहारों की बड़ी प्रबलता हो गई। जाति-भेद ख़ूब बढ़ गया। उच्च-नीच का बहुत ख़याल रक्खा जाता था। मुसलमानों के कारण यह भेद-भाव और भी बढ़ गया। रामानुज के समय से रामानन्द के समय तक वैष्णव-सम्प्रदाय में उच्चवर्ण के ही लोग दीक्षा ग्रहण करते थे और उन्हें ही दीक्षा देने का अधिकार था। परन्तु रामानन्द ने सर्व-साधारण के लिए धर्म का पथ प्रशस्त कर दिया। धर्म केवल ब्राह्मण और यतियों ही की साधना का विषय नहीं रहा। रामानन्द की कृपा से जुलाहे, मोची और डोम भी उसकी साधना में निरत होने लगे। रामानन्द के ऐसे शिष्यों में कबीर प्रधान थे। कबीर ने भी अपना सम्प्रदाय चलाया। उनका धर्म-मत बहुत उदार है। उसमें ज़रा भी सङ्कीर्णता नहीं है। आचार-व्यवहार की कृत्रिमता और पूजा के आडम्बर को उन्होंने सर्वथा त्याज्य समझा। इसी के बाद निर्गुण की उपासना प्रारम्भ हुई। निराकार-वादी साधकों की उपासना शास्त्र के अनुशासन से मुक्त थी, पर भाव और सौन्दर्य-प्रेम से पूर्ण थी। यही दादू दयाल का आविर्भाव-काल है।

दादू के गुरु कौन थे, किनके सत्सङ्ग से दादू साधकों में अग्रगण्य हुए, इसका उल्लेख हम यहाँ नहीं करते। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अपनी साधना से दादू ने उपासना का यथार्थ रूप देख लिया और सौन्दर्य का गूढ़ रहस्य खोज लिया। यहाँ हम उन्हीं के वचनों के आधार पर सौन्दर्य का रहस्य बतलाने की चेष्टा करते हैं।

जब दादू धर्म-साधन में प्रवृत्त हुए तब वे आँख-कान मूँद कर निर्विकल्प ध्यान में नहीं डूबे। कबीर के समान उन्होंने भी समझा :—

आँख न मूँदूँ कान न रूँधूँ काया कष्ट न धारूँ।
अगल बगल में हँस हँस देखूँ सुन्दर रूप निहारूँ॥

पहले वे असीम और निराकार के ध्यान में मग्न हो कर रूप और रस से दूर हट गये थे। किन्तु उनका सौन्दर्य-प्रिय मन जैसे भाव के लिए उत्सुक था वैसे ही रूप के लिए भी व्याकुल था। दोनों को उपलब्ध करने के लिए उन्होंने समस्त पृथ्वी खोज डाली। अन्त में, रूप में ही उन्होंने भाव को पाया। उन्होंने कहा है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा कारण जग ढूँढ़िया सो है घटहि मांहि।
डूबत नहिं प्राण में तातें जानत नाहिं ॥

अर्थात् जिसके लिए मैं जगत् भर ढूँढ़ता फिरा, देखता हूँ, वह तो घट में ही है। प्राण में बिना डूबे घट का यह रहस्य समझ में नहीं आता। इसी लिए इतने दिनों तक नहीं समझा। अब प्राण के अटल रस में गोता लगा कर मैंने रूप के रस का आविष्कार कर लिया।

साधारण मनुष्य जड़ के समान रूप की पूजा करता है परन्तु वह रूप को देखता नहीं। इसी से विश्व में सौन्दर्यरस का जो स्वाद, जो आनन्द है वह व्यर्थ ही हो रहा है। उस आनन्द को पाने के लिए हमें जागृत होना पड़ेगा। जागृत आत्मा ही उस आनन्द की उपलब्धि कर सकता है। जो जड़त्व की निद्रा से अवच्छन्न हैं वे उस स्वाद को कहाँ से पा सकते हैं। प्रेम न रहने से इस रहस्य का उद्घाटन नहीं हो सकता। इसी से इस आनन्द का पता भी नहीं चलता:—

सूते सुक्ख न पाइये प्रेम गँवाया वाद

सब कहने लगे—दादू, तुम तो साधक थे, अब शिल्प-रसिक-मात्र हो। रूप और आकार से तुम्हारा क्या प्रयोजन? तुम अरूप, असीम के सेवक हो।

दादू ने कहा—हे साधकगण, ये सब जितने रूप हैं वहा हमारी जयमाला है। धर्म के व्यर्थ आचार का पालन कर हमने देख लिया कि उससे हमारा अंत:करण पूर्ण नहीं हुआ। भगवान् के जो सुन्दर नाम हैं उनकी उपयुक्त माला विश्व के यही सब आकार हैं। विश्व के जो आकार निरन्तर परिवर्तित हो रहे हैं उन्हीं से भगवान् की माला का निरन्तर जप हो रहा है:—

माला सब आकार की, साधू सुमिरइ राम।
करणी करते क्या किया, ऐसा तेरा नाम॥

दादू का कथन है कि घट ही में सब सुख और आनन्द है। घट के इस आनन्द का स्वाद पाते ही सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। घट के इस आनन्द का जिसने अनुभव नहीं किया वह कभी सुखी भी नहीं हुआ।

लोग कहते हैं, यह संसार दु:खमय है। बतलाओ तो किस लिए तुम्हारे चारों ओर ग्रहनक्षत्र निरन्तर घूम रहे हैं। जो विश्व-चक्र घूम रहा है वही तो अमृत-दान करता है। कोल्हू के घूमने से जैसे तेल टपकता है वैसे ही विश्व-चक्र के परिभ्रमण से भाव-सौन्दर्य्य का अमृत निस्पन्दित होता है। यदि यह चक्र कभी बन्द हो जाय तो वस्तु के विषम पुञ्ज में पड़ कर संसार नष्ट हो जाय। यह चक्र नित्य चल रहा है, इसी लिए अमृत महारस की धारा भी निरन्तर बहती जा रही है:—

घर घर घट कोल्हू चलइ अमी महा रस जाइ।

विश्व की रक्षा के लिए यह नित्य यात्रा हो रही है। जिन्हें हम परिवर्तनशील आकार कहते हैं वे मानों पुकार कर कह रहे हैं कि हम सब अगम और अगोचर के मन्दिर में यात्रा कर रहे हैं। इस गोचर-मूर्ति और सौन्दर्य्य के साथ साथ हम भी उसी अगोचर के मन्दिर की यात्रा कर रहे हैं। वह रस-मन्दिर दूर नहीं है। वह हमारे अन्त:करण में है। जब हम उस मन्दिर में बैठ जाते हैं तब हम देखते हैं कि हमारे मन्दिर में मोहन आगये। वह मोहन कैसे हैं:—

पदम कोटि रवि झिल मिल अंगे, अंगे तेज अनन्त।

यह अखिल ब्रह्माण्ड भगवान् का लीला-क्षेत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यहाँ सदैव सौन्दर्य परिस्फुट होते रहते हैं, सर्वदा उत्सव होते रहते हैं। दादू उसी का अनुभव कर संसार के सौन्दर्य्य से मुग्ध हो गये। तब उन्होंने कहा—हे परमेश्वर, तुम्हारा पवन, तुम्हारा चन्द्र, तुम्हारा सलिल, तुम्हारा सूर्य, सभी ने मुझको मुग्ध कर रक्खा है। सप्त सागर धरणी धरा, अष्ट कुल पर्वत, मेरु, जिधर देखता हूँ उधर ही मुग्ध हो जाता हूँ। हे जगजीवन, तुम्हारा त्रिभुवन देख कर नेत्र शीतल हो गये। इन सभी सौन्दर्यों के भीतर तुम्हारी ही पूजा शोभा पा रही है।

दादू ने कहा—मैं रूप और सौन्दर्य के लिए इतना व्याकुल हूँ, पर इससे यह ख़याल मत करना कि मैं रूप से अतीत, निर्विकल्प और निराकार के धाम से अपरिचित हूँ। वहीं के तीर्थ में ग़ोता लगाने से मैं मोहन के इस विचित्र धाम का रहस्य समझ गया हूँ। मैं निवासी तो उसी देश का हूँ। केवल रस-मिलन की आकांक्षा से 'एक-रस' देश से इस 'विचित्र-रस' देश में आया हूँ। उसी देश का निवासी होने के कारण मैं इस सुन्दर विचित्र धाम का उपभोग कर सकता हूँ। वेद और क़ुरान इस रहस्य को क्या जानें? रस के इस रहस्य-लोक में उनका प्रवेश नहीं। अपरूप से ही रूप की सार्थकता है। भाव में ही आकार की सफलता है। तिल का प्राण तेल है, फूल का जीवन सुगन्ध है, दूध के भीतर नवनीत ही जीवन है, परमात्मा में ही आत्मा का यथार्थ जीवन है।

दादू का कहना है कि मैंने रूप के अतीत को देख लिया है तभी उस रूप का उपभोग कर सकता हूँ। रूप को पाने के लिए तृष्णा ही नहीं होती। रूप-धाम से आया हूँ तभी हमारा रोम रोम रस की पिपासा से व्याकुल हो पुकार रहा है—हे विधाता हमारे हृदय में भाव-घन की घटा छा कर रसवर्षण करो। हमारी समस्त देह रसना होकर तुमको आस्वादन करना चाहती है; वाणी होकर तुम्हारा ही यशोगान करना चाहती है; नेत्र होकर तुम्हारे अपरूप रूप को देखना चाहती है। तुमसे विरह हुआ है तभी मैं इस रूप-वैचित्र्य को देख सका हूँ। यही विरह की दृष्टि है।

हम लोगों में विरह की बड़ी व्याकुलता है। समस्त भुवन को पाकर भी हमें तृप्ति नहीं होती। बात यह है कि यह विरह उसी की तृष्णा है। वही हमारे भीतर अपना रूप देखना चाहता है। हम उसके दर्पण-मात्र हैं। हममें वह रस पान करना चाहता है। इसी लिए इस दर्पण में, अमृत रस की इस अञ्जलि में, विश्व की पिपासा निहित है। दर्पण न रहने से अपना रूप अपने को गोचर नहीं होता:—

> दरपन माहे देखिए, अपना सूझइ आप।
> दरपन बिना सूझइ नहीं, दादू पुनि रूप आप॥

यदि यह सृष्टि अकेले उसी की सृष्टि होती तो क्या हमें उससे किसी प्रकार का आनन्द मिलता? यह सृष्टि हमारी भी सृष्टि है। यदि हम नहीं रहते तो वह यह सृष्टि पाता कहाँ से। दूध बछड़े की तृप्ति के लिए है, इसलिए दूध बछड़े की सृष्टि है। क्या बिना बछड़े के दूध हो सकता है? बछड़ा होने से ही गाय दूध देती है। दूध दे कर गाय को सुख होता है और दूध पाकर बछड़े को। बछड़े के प्रति गाय में जो प्रेम है वही उसके हृदय में रस होकर भरा रहता है। इसी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे प्रेम से ही विधाता की सृष्टि है। यदि हमारे प्रति विधाता का कोई प्रेम न रहे तो उसकी सृष्टि भी असम्भव है। विधाता की शक्ति प्रेम ही के द्वारा व्यक्त होती है। इसी से यह विश्व प्रेम-रस से पूर्ण है। इसी से वह हमारी भी सृष्टि है। विश्व-सौन्दर्य के उपभोग में हमारा पूरा अधिकार है। क्या सृष्टि में और क्या भोग में, ब्रह्म के बिना हम और हमारे बिना ब्रह्म अपूर्ण है। यदि हम न रहें तब उसकी नाम-स्वरूप सार्थकता कहाँ से हो। नाम के उच्चारण से ही तो नाम की सार्थकता है:—

मैं नाहीं तब नाव क्या, कहा कहावै आप।

जैसे नाद के बिना श्रुति और श्रुति के बिना नाद व्यर्थ है, जैसे नेत्र के बिना रूप और रूप के बिना नेत्र व्यर्थ है, जैसे रसना बिना स्वाद और स्वाद बिना रसना व्यर्थ है, ठीक ऐसा ही सम्बन्ध हमारे और उसके बीच है:—

श्रवण राते नाद सों नैना राते रूप।
जिह्वा राती स्वाद सों दादू एक अनूप॥

चिरकाल से असीम इस रूप-सीमा के लिए और सीमा असीम के लिए व्याकुल है। यही विश्वव्यापी क्रन्दन है:—

बास कहै हम फूल को पाऊँ फूल कहै हम बास।
भास कहै हम सत को पाऊँ सत कहै हम भास॥
रूप कहैं हम भाव को पाऊँ भाव कहै हम रूप।
आपस में दऊ पूजन चाहे पूजा अगाध अनूप॥

यही पूजा का रहस्य है, यही विश्व-सौन्दर्य का रहस्य है, और यही दादू दयाल की वाणी का मर्म है। दादू दयाल के वचनों में विश्व-प्रेम और विश्व-वेदना की सूक्ष्म व्याख्या है। उनकी कृति हिन्दी-साहित्य की अक्षय सम्पत्ति है। यहाँ हमने उनके कुछ वचन उद्धृत कर उस सौन्दर्य का आभास-मात्र देने की चेष्टा की है, जो उनकी पदावली में पूर्ण रूप से विद्यमान है।

नवीनचन्द्र

भारत के कुछ सुन्दर स्थान।



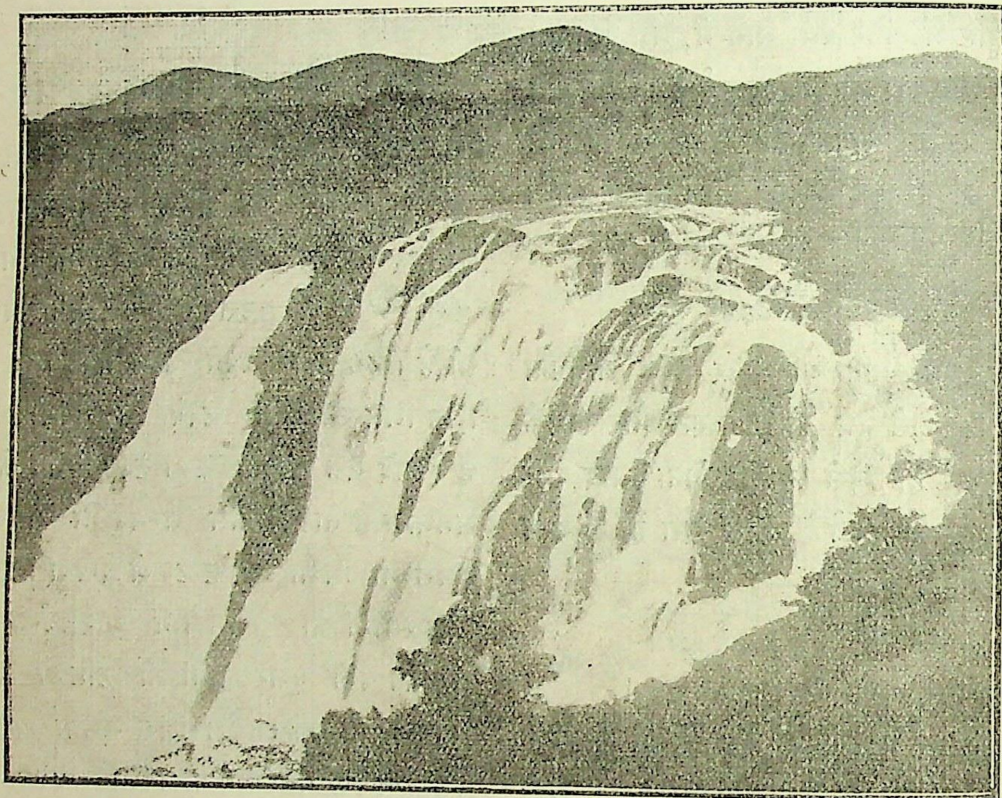
रत के कौन स्थान सुन्दर हैं? वहाँ के कौन दृश्य मनोमोहक हैं? लोग इन प्रश्नों के भिन्न भिन्न उत्तर देंगे और ऐसा स्वाभाविक भी है। हम लोग अपने रुचि-वैचित्र्य के अनुसार भिन्न भिन्न स्थानों या दृश्यों को रमणीक समझते हैं। यदि एक आदमी किसी दृश्य विशेष को सुन्दर समझता है तो यह कैसे सम्भव हो सकता है कि दूसरा भी उसको उसी दृष्टि से देखेगा। इसी तरह जिन स्थानों को दूसरे लोग आश्चर्य-जनक नहीं समझते वही दूसरे लोगों की दृष्टि में अत्यन्त ही मनोहर हो सकते हैं। इसके सिवा यह भी हो सकता है कि जो स्थान वास्तव में सुन्दर हैं वे सम्भव है कि हमें वैसे न जँचे।

जब ऐसी अवस्था में कौन स्थान या दृश्य सुन्दर कहा जाय? क्या हम प्राकृतिक दृश्यों को वैसा समझें या मनुष्य-निर्मित इमारतों को इस कोटि में लावें? या इन दोनों के संमिश्रण को सौन्दर्य का निदर्शक समझें? परन्तु ऐसे भी तो कुछ दृश्य हैं जो अपनी स्थिति या समय के अनुसार कभी कभी अत्यन्त मनोमोहक प्रतीत होते हैं, इसके विपरीत दूसरे ऐसे दृश्य भी हैं जो सदैव सुन्दर बने रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यही क्यों, हम लोगों में से कितने लोगों ने इस विशाल देश के सुन्दर स्थल देखे हैं ? भले ही अनेक लोग अपने प्रदेश से अच्छी तरह परिचित हों, पर उन्हें दूसरे प्रान्तों का ज्ञान या तो होवे होगा नहीं या होगा तो बहुत कम। अतएव इस विशाल देश में ऐसे स्थल या दृश्य हैं जिनके सम्बन्ध में कुछ उल्लेख करना आवश्यक है। यह कोई बात नहीं कि प्राकृतिक दृश्य ही सुन्दरता के स्थल होते हैं। इसके सिवा ये अल्प-संख्यक भी होते और बहुधा एक दूसरे से मेल नहीं खाते हैं। परन्तु इन प्राकृतिक दृश्यों का सौन्दर्य पर्वत, रङ्ग की विभिन्नता तथा वृक्षों एवं झाड़ियों की विपुलता पर ही निर्भर होता है। यदि इस प्रकार के दृश्यों में पूर्वोक्त बातों में से किसी एक का अभाव हुआ तो यह बात तुरन्त ही खटक जाती है कि अमुक वस्तु के न होने से दृश्य में फीकापन आ गया है और यदि कहीं उपर्युक्त प्रकार के दृश्य के साथ झील, नदी या समुद्र का समावेश हो गया तब तो उसके सौन्दर्य की सारी कमी ही नहीं दूर हो जाती, किन्तु वह और अधिक रमणीक हो जाता है।



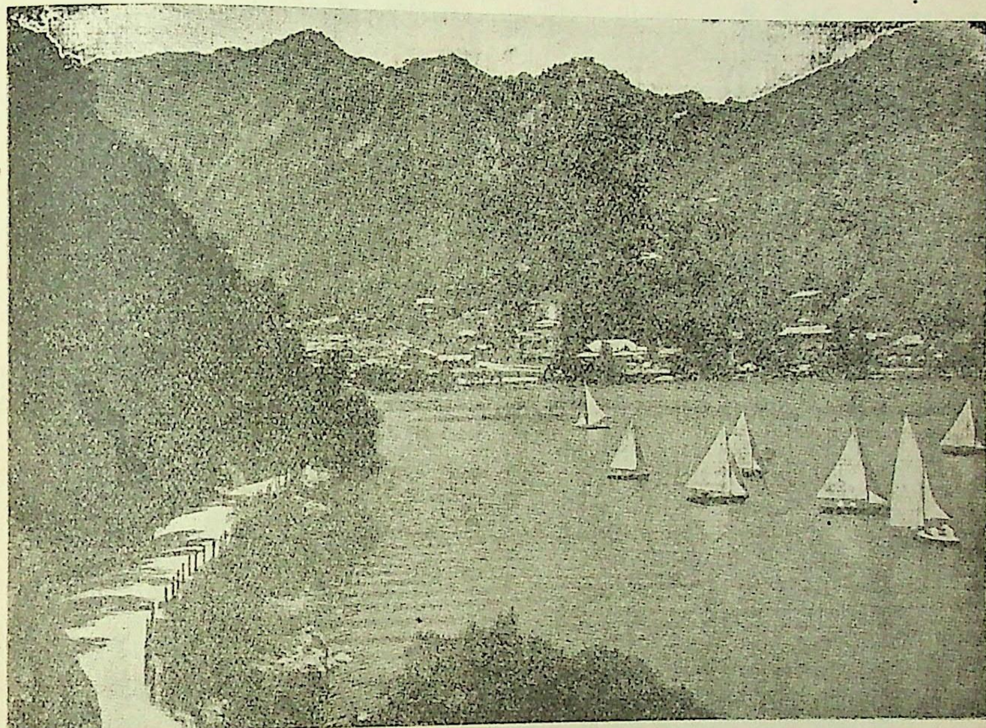
कावेरी का जल-प्रपात।

भारत के किसी किसी प्रान्त में हज़ारों प्राकृतिक दृश्य विद्यमान हैं। काश्मीर से लेकर दार्जिलिङ्ग तक हिमालय का जो विस्तृत भाग फैला हुआ है उसमें स्थान स्थान पर ऐसे अगणित रमणीक स्थल दृष्टिगोचर होते हैं जिनका अवलोकन कर दर्शक का मन आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांसारिक जीवों की तो बात ही दूसरी है योगी-यती तक यहाँ के मनोमुग्धकर दृश्यों का अवलोकन कर अपने मन को शान्ति के आनन्द में निरत रखते हैं। भारत के इस पार्वत्य भाग के दृश्यों का अवलोकन करते समय जब हम नवोदित सूर्य की सरल



नैनीताल।

रश्मियों में हिमच्छटा का आनन्द उपभोग करने लगते हैं अथवा जब कुछ समय के लिए भयङ्कर तूफ़ान उत्थित होकर संसार में सबसे अधिक उच्चतम शिखरों के अनोखे दृश्यों को हमारे दृष्टिपथ में ला खड़ा कर देता है तब हमें यही अनुभव होने लगता है कि इन दृश्यों की अपेक्षा सौन्दर्य-पूर्ण और दूसरे दृश्य इस जगत् में नहीं हैं।

एक ओर नङ्गा पर्वत और दूसरी ओर गौरीशङ्कर नामक शिखरों के दृश्यों को हम भले ही देख कर मुग्ध हो जायँ, परन्तु जब हम भारत के दूसरे भागों के दृश्यों का अवलोकन करते हैं तब हमें यह मानना ही पड़ता है कि वास्तविक सौन्दर्य हिमालय में ही सीमाबद्ध नहीं है। सुन्दर दृश्यों और रमणीक स्थलों से सम्पूर्ण भारत परिपूर्ण है। इस देश के समभाग में और वह भी जेठ की धूप और गर्द ग़ुबार में जब हम सान्ध्यकालीन दृश्यों को देखते हैं तब हमारे सन्मुख एक अप्रतिम मनोमुग्धकर चित्र खचित हो जाता है।

प्रत्येक पर्वत-श्रेणी सुन्दर स्थलों से परिपूर्ण है और इनमें से प्रत्येक स्थल के दृश्य ऐसे रमणीक हैं कि उन्हें देख कर हम लोग आनन्द से स्तम्भित हो जाते हैं। हिमालय अत्यन्त शानदार प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रदर्शन करता है, यह बात निस्सन्देह अक्षरशः सच है, परन्तु दर्शक इस बात को भी जानते हैं कि नीलगिरि पहाड़ियों के दृश्य भी उसकी अपेक्षा किसी बात में हीन नहीं हैं। कोहनूर के

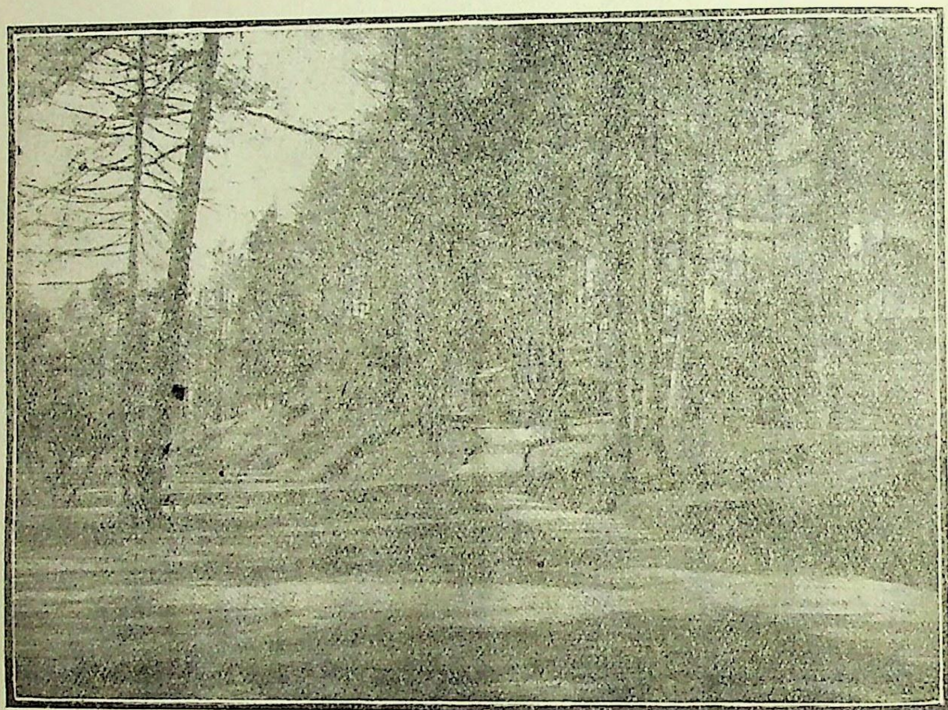
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीप से 'लैम्बस राक' तक के दृश्य की प्रसिद्धि सर्व-विदित है और पिकरा जल-प्रपात के सौन्दर्य की मनोमोहकता के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख करने की आवश्यकता ही नहीं है। यही क्यों सह्याद्रि गिरि के दृश्यों की तुलना पाश्चात्य देशों के वैसे ही दृश्यों से भले प्रकार की जा सकती है।

हज़ारों मील की लम्बाई के विचार से यद्यपि न गण्य हैं, तो भी पूर्वीय किनारे पर वाल्टेर का दृश्य अत्यन्त मनोमोहक है। पूर्वीय किनारे की अपेक्षा पश्चिमी किनारे पर सुन्दर दृश्य अधिक संख्या में देख पड़ते हैं।

कुछ नदियों के किनारों पर भी आश्चर्य-पूर्ण



वन-दृश्य।

भारत के समीपस्थ लङ्का-द्वीप भी रमणीक स्थलों से सर्वथा वञ्चित नहीं है। यद्यपि इस ऐतिहासिक सुन्दर द्वीप में ऐसे स्थल अधिक संख्या में दृष्टिगोचर नहीं होते, तो भी जो सुन्दर स्थल इस देश की शोभा-वृद्धि करते हैं वे भारत ही जैसे श्रेष्ठ और उत्कृष्ट हैं। कैन्डी के समीप के दृश्यों और पराडेनिया के बग़ीचों की गणना इसी श्रेणी में की जाती है।

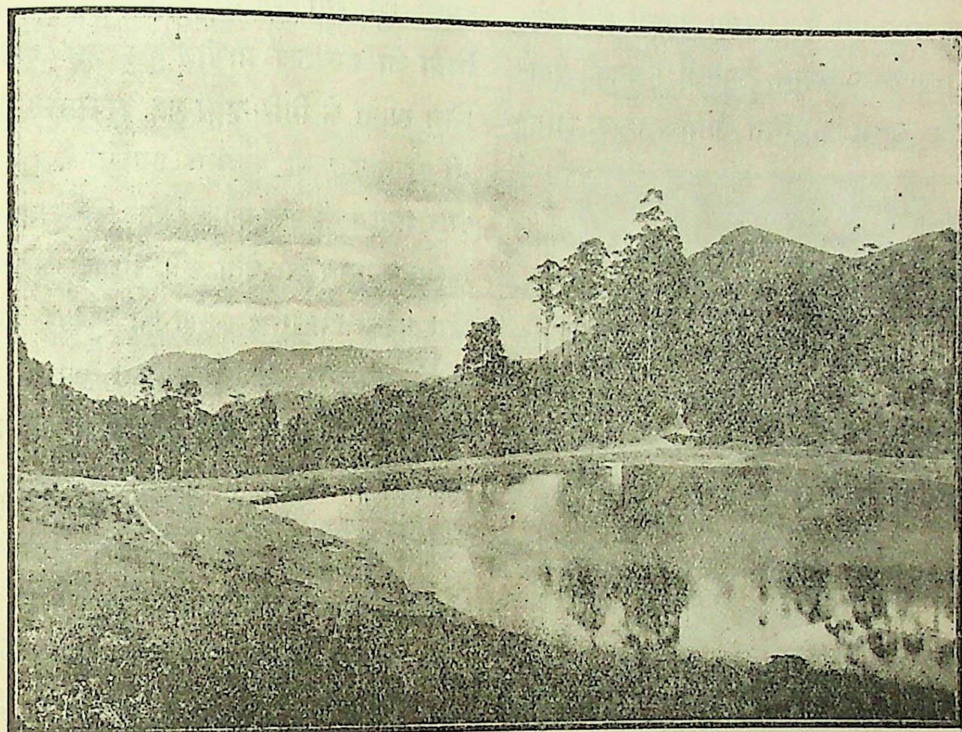
भारत के समुद्री किनारे के दृश्य उसकी

दृश्यों का अभाव नहीं है। प्रत्येक जल-प्रपात सदैव ही सौन्दर्य का निकेत रहा है। जल-प्रपातों की भी संख्या इस देश में सैकड़ों तक पहुँचती है। इनमें जेरसोप्पा का जल-प्रपात विशेष-रूप से उल्लेखनीय है। बहुत अधिक उँचाई से गिरनेवाले जल-प्रपातों में संसार में इसका तीसरा नम्बर है। बड़े बड़े जल-प्रपातों का सौन्दर्य-सुख उपभोग करने के लिए वहाँ विशेष समय में जाना चाहिए। जेरसोप्पा के देखने का उपयुक्त समय वर्षा-ऋतु के बाद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरसात में वहाँ कुछ भी नहीं देख पड़ता। इतना अधिक कुहरा और फेन छाया रहता है कि बेचारा दर्शक अपना मन मार कर लौट आता है। मैसूर राज्य के शिवसमुद्रम् में कावेरी का प्रपात भी बहुत ही मनोमोहक है। वर्षा-ऋतु में भी इस प्रपात का



उटकमंड का प्राकृतिक दृश्य।

दृश्य स्पष्ट देख पड़ता है और यों तो सब ऋतुओं में इसके अनोखेपन की छटा विद्यमान ही रहती है।

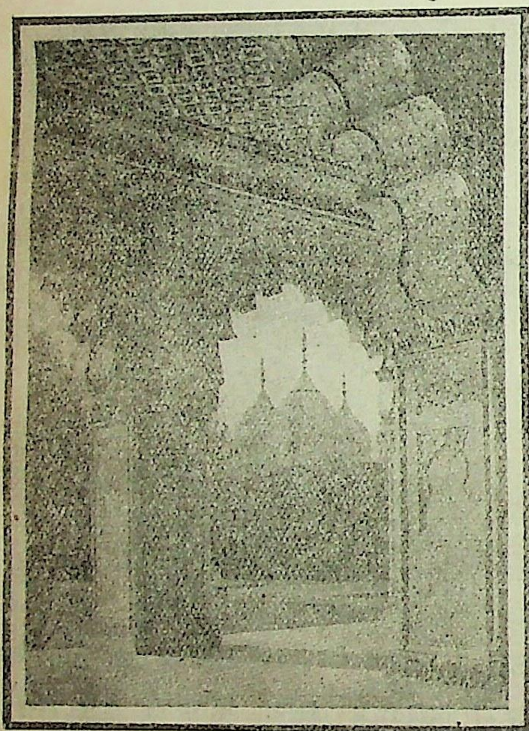
यहाँ तक तो प्राकृतिक दृश्यों के सम्बन्ध में यत्किञ्चित् वर्णन किया गया है। अब थोड़ा बहुत उन सौन्दर्य-निकेतों का उल्लेख किया जाता है जो मनुष्य हस्त-कौशल के नमूना हैं और जिनसे भारत की शोभा-वृद्धि होती है।

उत्तर-भारत में कुछ ऐसी प्राचीन सड़कें हैं जिनके दोनों किनारों पर सुन्दर वृक्षों की सघन पङ्क्तियाँ स्थित हैं। इनमें प्रायः बरगद ही के वृक्ष बहुत हैं, जिनकी विशाल शाखायें सड़क के दोनों ओर से आकर और एक दूसरी से मिल कर उस पर एक प्रकार चँदोवा सा ताने हुए हैं। जब यात्री उनकी शीतल छाया से होकर गुज़रता है तब वही उस मनोमुग्धकर दृश्य के आनन्द का अनुभव कर सकता है। जिस चँदोए के नीचे से होकर वह मन्द गति से चलता है उसके भीतर से उसे सूर्य की एक भी किरण नहीं नज़र आती। ये स्थल निस्सन्देह सुन्दर हैं। ये केवल यात्रियों को ही सुख नहीं प्रदान करते, किन्तु सौन्दर्य-पूर्ण भी हैं। परन्तु जब इसी प्रकार की वृक्षावलियाँ कश्मीर के राजपथों के दोनों ओर देख पड़ती हैं तब आश्चर्य होता है। क्योंकि उनकी उपस्थिति से समीपवर्ती प्राकृतिक दृश्य यात्रियों के दृष्टिपथ में नहीं आने पाते। पर इसका मतलब यह न समझना चाहिए कि वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की इस प्रकार की वृक्षावलियाँ मनोमुग्धकर नहीं हैं। इनके सिवा इस देश में जो बाग़-बग़ीचे हैं वे भी मानव-रुचि तथा उनके कला-कौशल के निदर्शन हैं। उनको देख कर हृदय आनन्द से पूर्ण हो जाता है और आँखें अथक भाव से उनकी शोभा के निरीक्षण में निरत हो जाती हैं। समग्र प्राच्य में पेराडेनिया के बाग़ उत्कृष्ट समझे जाते हैं। उनकी देख-रेख का प्रबन्ध बहुत समुचित रीति से किया जाता



दिल्ली की मोती मसजिद।

है। अतएव वह बग़ीचा प्रत्येक समय शोभा का पुञ्ज ही प्रतीत होता है।

इस देश की मुसलमानी इमारतें भी एक अनूठी चीज़ हैं। संसार की उत्कृष्ट इमारतों में उनकी गणना है। उनका शिल्प-चातुर्य अप्रतिम है। इन शानदार शोभाशाली इमारतों का निरीक्षण करने पर एक बार दर्शक का मन आतङ्क से पूर्ण हो जाता है। आगरे का ताज यहाँ ही की नहीं, किन्तु सारे संसार की इमारतों का ताज है। इसी प्रकार वहाँ का क़िला भी किसी बात में कम नहीं है। ये दोनों इमारतों के देखने से तत्कालीन मानव हस्त-कला की निपुणता का समुचित ज्ञान हो जाता है। इतना ही नहीं इनकी सुन्दरता भी वैसे ही अद्वितीय है। इनके सिवा जो अन्यान्य प्राचीन दुर्ग इस देश के भिन्न भिन्न स्थानों के गिरि-शृङ्गों पर अवस्थान करते हैं वे भी अपने ढङ्ग की अद्भुत इमारतें हैं। वहाँ प्रकृति और मनुष्य के हस्त-कौशल का सम्मिश्रण दर्शक को विस्मय-विमुग्ध कर देता है। ये तथा इस प्रकार की और दूसरी इमारतें इस देश की सुन्दर वस्तुयें हैं। यही नहीं आज तक फिर वैसी इमारतें नहीं बन सकी हैं। आधुनिक भारत की इमारतें क्या कला-चातुरी और क्या सौन्दर्य में इस देश की प्राचीन इमारतों के समक्ष तुच्छ हैं।

पाण्डुरङ्ग लेले

पुनरुत्थान।



स कमरे में राजा की मृत्यु हुई थी उसमें बिलकुल निस्तब्धता न थी। लोगों का आना-जाना जारी था। लोग दबे पाँव आते-जाते और उत्कण्ठा के साथ एक दूसरे से कनफुसकी करते थे। जब अनेक लोग किसी काम में लगे होते हैं और इसके साथ ही वे यथासम्भव कम शोर करने के लिए भी सावधान हों तो भी वहाँ एक प्रकार का शोरगुल हो जाना स्वाभाविक है जिसे सुकुमार लोग कठिनता से सहन कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु इससे क्या? डाक्टरों ने कह दिया था—अब महाराज कुछ नहीं सुन सकते। उसने वैसा कोई लक्षण भी तो नहीं प्रकट किया। उसकी सुन्दर युवा रानी उसकी शय्या के समीप घुटने के बल बैठी है और दुःख में आहें भर रही है। यह देख कर अवश्य ही महाराज का हृदय व्यथित हो जाता।

कई दिन तक इस बात की सावधानी रक्खी गई है कि कमरे के भीतर प्रकाश का प्रवेश न होने पावे। परन्तु इस समय शीघ्रता, घबराहट और विपत्ति के कारण पर्दे बन्द कर देने का ध्यान किसी को न रहा। राजा की निस्तेज आँखें प्रकाश से झिलमिला न जायँ, इस बात को किसी ने न सोचा परन्तु कुछ हर्ज नहीं। डाक्टरों ने कह दिया है कि वह अब कुछ भी देख नहीं सकता।

कई दिन से राजा के पास उसके अनुचरों के सिवा और कोई नहीं जाने पाया। आज उसका कमरा सबके लिए खुला है। जो चाहे चला जाय। इससे भी कुछ हर्ज नहीं है। डाक्टरों ने कही दिया है कि अब वह किसी को नहीं पहचान सकता।

राजा अपनी शय्या पर देर से पड़ा था। उसका एक हाथ बाहर निकला था। वह अलग पलँगपोश पर इस तरह पड़ा था मानो कोई चीज़ ढूँढ़ रहा हो। रानी ने धीरे से उसे अपने हाथों में ले लिया, परन्तु वह चेष्टारहित था। अन्त में राजा की आँखें और मुँह बन्द हो गये, दिल की धड़कन भी रुक गई। अब वह मर गया। लोगों ने धीरे से एक दूसरे से कहा—देखो, राजा कैसा सुन्दर लगता है?

जब राजा को फिर होश हुआ तब वहाँ पूर्ण शान्ति थी। वह उसे आश्चर्य-जनक और आनन्दप्रद प्रतीत हुई इसके पूर्व का अन्धकार भी उसे इसी प्रकार आश्चर्य-जनक और आनन्दप्रद प्रतीत हुआ था। इस शान्ति से उसे विलक्षण और अकथनीय सुख प्राप्त हुआ। उस समय वह अपनी शय्या पर इस प्रकार पड़ा था मानो स्वर्ग में हो। उसका कमरा फूलों की सुगन्ध से गमक रहा था। एक खुली खिड़की से निशाकालीन ताज़ा वायु मन्द गति से आ रहा था। पलँग के पैताने कई एक शमादान एक पंक्ति में रक्खे थे। उनमें मोमबत्तियाँ जल रही थीं। उनके मधुर प्रकाश से वहाँ की शोभा अधिक बढ़ गई थी। राजा की सारी देह तावूत पर की एक मख़मली चादर से आवृत थी। केवल उसका सिर और मुँह खुला था। चार या पाँच आदमी उसकी निगरानी के लिए वहाँ तैनात थे, परन्तु वे भी गहरी नींद में पड़े ख़र्राटे भर रहे थे। उसने इतने अधिक सन्तोष का अनुभव किया था कि वह हिलना-डुलना तक नहीं चाहता था। वह तब तक ज्यों का त्यों चुपचाप पड़ा रहा जब तक राजमहल की घड़ी में ग्यारह न बजे। एक हलकी हँसी हँस कर वह उठ बैठा।

जब राजा संज्ञा-शून्य होने लगा था तब उसने अपनी सारी शक्ति लगा कर अपनी मृत्यु के विरुद्ध करुणा-जनक प्रार्थना की थी। वह उस समय मरना नहीं चाहता था। उसे संसार में परम आवश्यकता थी। अपनी अन्तिम प्रार्थना के उत्तर में उसने जो आवाज़ सुनी थी वह उसे स्मरण हो आई। उसने सुना था—मैं तुझे एक घंटे का समय देता हूँ। यदि तुझे तीन ऐसे आदमी मिल जायँ जो तेरा जीवित रहना चाहते हों तो तू जीवित रह सकेगा।

राजा का वह घंटा यही था। इसी घंटे भर के अवकाश को उसने मृत्यु से छीन लिया था। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छा शासक था। अपनी प्रजा के हित के लिए उसने दिन-रात कार्य किया था। उसे किसी से कुछ भी भय न था। वह जानता था कि जीवित रहना कितना आनन्ददायक है, यहाँ तक कि इस बात को वह पहले नहीं जानता था। सच तो यह था कि वह स्वार्थी नहीं था। वास्तविक बात यह थी कि उसका एक काम अधूरा रहा जाता था। उसके लिए उसे बहुत दुःख था।

अस्तु, राजा कमरे के बाहर निकला। रक्षक अचेत पड़े सो रहे थे। उसे सारी बातें बहुत कुछ परिवर्तित रूप में देख पड़ीं। मेरे साथ अन्याय हुआ है, इस प्रकार की उसके हृदय की जलन भी शान्त हो चुकी थी। अब उसके मन में यह विचार उठा कि मैंने कुछ भी नहीं किया है। निस्सन्देह जो कुछ उसने किया था उससे अधिक वह नहीं कर सकता था। पर उसकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ पुरुष संसार में बहुत थे और संसार बहुत ही विशाल है—यह बात अब उसकी समझ में आ गई। प्रत्येक वस्तु पहले की अपेक्षा अधिक बड़ी उसे प्रतीत होने लगी। वह अपने देश और अपने घर का प्रेम करता था। रात में उसे ऐसा समझ पड़ा था कि ये भी मेरे ही साथ विनष्ट हो जायँगे, परन्तु इस समय उसे ये ज्यों के त्यों अपरिवर्तित रूप में देख पड़े।

दरवाज़े के बाहर राजा एक क्षण के लिए ठहर गया। वह सोचने लगा कि पहले किधर जायँ। रानी के पास नहीं जायँगे। उसके दुःख का स्मरण-मात्र होते ही वह विह्वल हो गया। उसने सोचा मैं उसके पास तब तक नहीं जाऊँगा जब तक एक बार फिर उसे अपनी गोद में लेकर उसके दुःख-जनित आँसुओं को सुख के आँसुओं में परिणत करने में समर्थ न हो जाऊँगा। जब मेरे जीवन का निश्चय हो जाय तभी उसके पास जाना समुचित होगा। मेरे पास एक ही घंटे का समय है। राजमहल के घंटे में बारह का गज्जर बजा कि मैं एक बार फिर जीवित हो गया। तब ये सब बातें मुझे स्वप्नवत् मालूम होंगी—यह सोच कर उसने एक आह भरी। अपने मृत्युकालिक समय का स्मरण कर उसने कहा—किसी दिन उन्हीं बातों को फिर करना पड़ेगा।

जिस पलँग से उठ कर राजा अभी बाहर गया था उसी के पास वह फिर लौट आया। उसने कहा—परन्तु भय के कारण अभी तक मैंने कुछ भी नहीं किया है। ज्योंही उसे अपने शर्तनामे की शर्तों की याद आई, त्यों ही उसने मुस्करा दिया। चाँदनी के प्रकाश में उसका नगर सामने ही स्थित था। उसने कहा—तीन की कौन बात, मैं तीन हज़ार निकाल सकता हूँ। क्या यहाँ के सारे निवासी मेरे भक्त नहीं हैं। यह सोच कर वह फिर चल पड़ा। जब वह फाटक के बाहर आया तब उसने एक बच्चे को ज़ार ज़ार रोते हुए सीढ़ियों पर बैठा देखा। एक क्षण ठहर कर द्वारपाल ने पूछा—लड़के, क्या बात है? उस बच्चे ने सिसकते हुए कहा—पिता और माता दोनों राजमहल को गये हैं। राजा मर गया है। वे अभी तक नहीं लौटे हैं। मैं थक गया हूँ और अत्यन्त भूखा हूँ। आज रात में मैंने कुछ भी नहीं खाया और मेरा खिलौना भी टूट गया है। भगवान् करे, राजा फिर जी उठे। इतना कह कर बच्चा फिर रोने लगा। उसकी बात सुन कर राजा कुछ कम ख़ुश नहीं हुआ! उसने कहा—लो मेरी प्रजा के बीच यह पहला व्यक्ति है जो मेरा फिर जी उठना चाहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा के कोई सन्तति न थी। उसकी इच्छा हुई कि इस छोटी कुमारिका को शान्त करते चलें, परन्तु उस समय उसे दूसरा ही कार्य करना था। अतएव वह आगे बढ़ा और अपने अत्यन्त प्रिय मित्र के घर की ओर रवाना हुआ। वह इस आदमी को सबसे अधिक चाहता था। उसने अपने मन में सोचा कि मेरा मित्र इस समय घोर दुःख में पड़ा हुआ कराहता होगा। इस बात के सोचते ही उसे एक प्रकार के ईर्ष्या-जनित आनन्द का अनुभव हुआ। उसने कहा—हतभाग्य अमियस, यदि आज मैं तेरी अवस्था में होता तो मेरी कैसी दशा हुई होती। मुझे ख़ुशी है कि तू जीवित है। तेरा विछोह मुझसे कदापि न सहा जाता।

जब राजा अपने मित्र के घर के आँगन में पहुँचा तब वहाँ लोग प्रकाश लिये हुए इधर-उधर आ-जा रहे थे। घोड़े कसे जा रहे थे और चारों ओर वैवाला मचा हुआ था। उसे वहाँ अपने मित्र का सुपरिचित मुँह न देख पड़ा। तब उसने घर में प्रवेश किया। हाल के भीतर उससे भेंट न हुई। उसने एक एक कमरा छान डाला, पर सबके सब ख़ाली मिले। सहसा वह घबरा गया। उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि दुःख के कारण कहीं अमियस मर तो नहीं गया?

अन्त में राजा एक छोटे ख़ानगी कमरे में जा पहुँचा। इस कमरे में बैठ कर वह अपने मित्र के साथ प्रायः घंटों राज्य-सम्बन्धी विचार किया करता था, परन्तु यहाँ भी उससे भेंट न हुई। वहाँ की दशा से यह ज़रूर मालूम पड़ा कि अभी ही वह उससे बाहर हुआ है। किताबें और काग़ज़-पत्र इधर-उधर विचित्र प्रकार से बिखरे पड़े थे, फ़र्श पर किसी टूटे हुए शीशे के टुकड़े छिटके हुए थे। एक छोटा सा चित्र भी वहीं पड़ा था। उसे राजा ने उठा लिया। यह चित्र उसी का था। गिर पड़ने से उसका चौखटा और शीशा टूट गया था। उसने उसे ज़मीन पर तुरन्त डाल दिया मानो उसके स्पर्श करने से वह जल गया हो। अँगेठी में आग जल रही थी। उसमें एक अधजली चिट्ठी के टुकड़े अभी तक पड़े थे। वह चिट्ठी उसी की लिखी हुई थी। उसने उसे उठा लिया, देखा कि वह उसका सबसे पिछला पत्र था। उसमें उस विधान का विवरण था जिसका प्रचलन वह हृदय से चाहता था। उसने उसे आग में फेंका ही था कि इतने में दो आदमी बातें करते हुए उस कमरे में आ उपस्थित हुए। इनमें एक स्त्री थी। मर्द के पहनावे से मालूम पड़ता था मानों वह दूर की यात्रा से आ रहा हो।

मर्द ने पूछा—अमियस कहाँ गया है? स्त्री ने कहा—वह नये राजा की सेवा में उपस्थित होने को गया है। हम लोग बहुत ही चिन्तित हैं। जैसे घृणित विचार पूर्ववर्ती राजा के थे वैसे इसके नहीं हैं। यह उसे हृदय से घृणा करता था। जिस कृपा का उपभोग अमियस अब तक करता रहा है वही इस नये राजा के दरबार में उसके मार्ग में बाधक होगी। मुझे आशा है कि वह नये राजा से यथा-समय मेल कर लेगा। स्वर्गीय राजा अपने जिन मूर्खतापूर्ण सुधारों को प्रचलित करने के लिए आग्रह किया करता था उनका वह सदैव पूर्ण रूप से विरोध किया करता था। यह बात वह सचाई से कह सकता है। निस्सन्देह, वह एक प्रकार से अपने स्वामी का भक्त था। परन्तु तुम जानते ही हो, हमें भी तो अपनी भलाई का ध्यान रखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक है। हमारी स्थिति के मनुष्य के लिए सद्भावों की ओर ध्यान देने का समय नहीं रहता। राजा की मृत्यु का समाचार पाते ही वह यहाँ से गया है। मैं उसके अनुचरों को पीछे से भेजने का प्रबन्ध कर रही हूँ।

आगन्तुक पुरुष राजा के राजदूतों में से था। उसे राजा भले प्रकार जानता था। उसने कहा—बिलकुल ठीक है। मैं भी वहीं जाता हूँ। देश के लिए यह बात हानिकर न होगी। वह बेचारा छोकड़ा राजनीति का कुछ भी ज्ञान न रखता था। उसने मुझे सुलह कर लेने को बाध्य किया था। निस्सन्देह यह बात हम लोगों के हितों की विघातक हुई होती। ख़ुशी की बात है, अब युद्ध अवश्य होगा। यदि उसकी चल गई होती, तो सेना में तरक़्क़ियाँ रुक गई होतीं.........

आगे सुनने के लिए राजा वहाँ और न ठहरा। उसने कहा—मैं साधारण जनों के पास जाऊँगा। कम से कम वे मेरे उत्तराधिकारी के साथ मेल करने के लिए कोई कामना नहीं रखते। जो मैंने उन्हें दिया है उसे वह उनसे ले लेगा। इसी समय घंटे के प्रथम पाद का गजर बजा। निस्सन्देह वह एक बहुत भला राजा था। अपने राज्य के उन भागों के मार्ग से, जहाँ ग़रीबों की बस्ती थी, वह परिचित था। गुप्त रीति से वह वहाँ प्रायः जाया करता था। वहाँ की दुरवस्था को देख कर उसका हृदय द्रवीभूत हो गया था। यही नहीं उसका प्रभाव उस पर इतना अधिक पड़ा था कि उसने उनकी दशा सुधारने के लिए वे प्रयत्न किये थे जिनकी कल्पना तक पहले कभी न की गई थी।

राज-महल में वह बात कोई नहीं जानता था कि जिस साङ्घातिक ज्वर से राजा की मृत्यु हुई थी उसका शिकार वह कहाँ हुआ था। राजा को स्वयम् इस बात का पक्का सन्देह था और शहर के उसी भाग को वह सीधा चला गया। उसने हँसते हुए कहा—अब ज्वर मेरी कुछ भी हानि न कर सकेगा। वहाँ के घर वैसे ही गन्दे और उजड़े थे, दीन-निवासी वैसे ही दुर्बल और विपन्न थे जैसे कि पहले। इतनी अधिक रात बीत जाने पर भी गलियों में उनके गुट्ट खड़े हुए थे। वे लोग परस्पर राजा की ही बातें कर रहे थे। प्रत्येक व्यक्ति की ज़बान पर राजा का नाम था। उसकी बीमारी तथा उसके जनाज़े के दिन के सम्बन्ध की चर्चा का स्थान उनकी बातों में विशेष रूप से था। दूसरी बातों की अपेक्षा उन्हें यही दो बातें विशेष रूप से चर्चा करने के योग्य ठहरीं।

एक शराबख़ाने के भीतर पाँच-छः आदमी मेज़ के आस पास बैठे शराब पी रहे थे। उन लोगों की बातचीत सुनने के लिए राजा ठहर गया। उनमें से एक ने, जिसे राजा जानता था, कहा—और रिहाई भी ख़ूब होगी! ऐसा राजा किस मतलब का है जो अपनी सामर्थ्य की अपेक्षा एक पैसा अधिक ख़र्च नहीं करता। इस ढङ्ग से व्यापार में भी समुन्नति नहीं होती। नया राजा दूसरे ही प्रकार का आदमी है। अब हमें शीघ्र ही जीविका के नये साधन मिलेंगे। दूसरा बोला—जब देखो तब वह दूसरों के कामों में दस्तन्दाज़ा किया करता था। वह सदा इसी धुन में लगा रहता था कि सफ़ाई आदि जैसी बातों की ओर लोगों का ध्यान लगा रहे। पर भला यह तो बताओ कि इन सब बातों में हस्तक्षेप करने का अधिकार उसे कहाँ था? तीसरे ने कहा—मैं कहता हूँ, सारे राजे जहन्नुम में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायँ। परन्तु यदि हम लोगों के लिए राजा होना ही चाहिए, तो उसे इस प्रकार का होना चाहिए। मैं इस नये राजा को पसन्द करता हूँ। उसका दुरुपयोग होने का भय नहीं है। वह शराब के मज़े से भी परिचित है। चौथा बोला—फाँसी की सज़ा ही मन्सूख़ कर देना चाहता था। मैं समझता हूँ, उसकी यह धारणा थी कि ऐसा करने से काम करने के लिए जेल में क़ैदियों की काफ़ी संख्या हो जायगी। इसे ठीक ही समझो। फाँसी की सज़ा को मौक़ूफ़ करने में उसका ऐसा ही कोई उद्देश ज़रूर रहा है। बिना किसी मतलब के राजा अपने ख़ास प्रजा जनों के प्राणों की रक्षा के लिए उतना व्यग्र क्यों होगा? उस सम्मति पर सबने अपना अपना सिर हिला दिया। इतने ही में घंटे के बजने का शब्द फिर सुनाई पड़ा। राजा वहाँ से चल पड़ा।

इन बातों को सुन चुकने के बाद राजा ने सोचा कि यदि इस समय मुझे किसी ऐसे आदमी की, जिसे मैंने सदा घृणा से देखा हो, गालियाँ खाने को मिल जा ँ तो मेरे हृदय की जलन बुझ जाय। अतएव जेल की ओर जाकर वह फाँसी के क़ैदी की कोठरी के द्वार पर जा खड़ा हुआ। अभी तक फाँसी की सज़ा ख़ारिज न हुई थी। और इस बात को जान कर राजा को निस्सन्देह प्रसन्नता हुई। कोठरी के भीतर एक दुबला आदमी बन्द था। वह बैठे हुए कुछ लिख रहा था। राजा ने उसे एक ही बार पहले देखा था, अतएव वह आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखने लगा।

इसी बीच में वहाँ जेलर आ गया। उसके साथ पहला राजमन्त्री भी था। इसे राजा बहुत चाहता और आदर करता था। शीघ्रता से उसकी ओर देख कर क़ैदी ने कहा—कल होनेवाली थी। यह सोच कर कि मैंने कादरता तो नहीं प्रकट की वह फिर बोला—परन्तु मैं फाँसी के लिए प्रत्येक समय तैयार हूँ। क्या आप मेरी स्त्री को यह काग़ज़ दे देने की कृपा करेंगे? गम्भीरता के साथ पहले राजमन्त्री ने जवाब दिया—राजा मर गया है। तुम बच गये हो। वर्तमान शासक की कुछ दूसरी ही धारणा है। सम्भवतः तुम कल रिहा कर दिये जाओगे। क़ैदी ने विकल होकर पूछा—मर गया? राजमन्त्री ने गम्भीर होकर कहा—हाँ, मर गया! क़ैदी खड़ा हो गया। अपनी भौंहों के ऊपर हाथ फेर कर उसने कहा—हुज़ूर, मैं उसका आदर करता था। वह हमारा राजा था और मेरे साथ सज्जन के समान व्यवहार करता था। उसकी रानी अभी युवती ही है। मैं हृदय से चाहता हूँ कि वह फिर जी जाय। यह बात कहते समय उसकी आँखों से आंसू बह रहे थे।

राजा जेल से बाहर हुआ। तीसरा घंटा बजा। अब सिर्फ़ १५ मिनट और रह गये थे। क़ैदी की बातें सुन कर राजा बहुत ही लज्जित हो गया था। मित्रों की घृणा की अपेक्षा शत्रु का यह दया-भाव उसके लिए सहन करना अधिक कठिन था। ऐसे व्यक्ति के कारण जीवन प्राप्त करने की अपेक्षा वह हज़ार बार मरना कहीं अधिक पसन्द करता। और यह इसलिए कि वह स्वयम् श्रेष्ठ पुरुष था। दूसरों में श्रेष्ठता का अस्तित्व वह न देख सका। उसने कठोरता से अपने मन में कहा—यह सब मैंने ठीक काम नहीं किया। वह अपनी स्थिति की आलोचना से कुछ बहुत प्रसन्न न हुआ। जिस प्रेम पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अपने मन में भरोसा करता था वह केवल स्वप्न ठहरा। जिन लोगों के हित के काम करने में वह प्रसन्न होता था वही अपनी समुन्नति के लिए प्रस्तुत नहीं थे। एक मूर्ख छोटी लड़की और एक दयालु शत्रु, केवल यही दो उसके हितैषी निकले। उसने सोचा—तब जीने से क्या लाभ? लौट कर चुपचाप आत्म-समर्पण कर देना और पुनर्जीवन के लिए कोई प्रयत्न न करना, क्या अच्छा न होगा? मुझे अब सबक़ मिल गया है। मैं शान्ति से शयन और विश्राम कर सकता हूँ। अविनाशी शक्तियों ने अपना कार्य न्यायानुसार ही किया है। यदि प्रत्येक व्यक्ति झूठा ठहरा तो कुछ परवा नहीं। उसके हृदय की जलन शान्त हो गई। अब उसे स्पष्ट रूप से देख पड़ने लगा।

चन्द्रमा के ऊपर सघन घन घिर आये थे। राजा को ठंढ लगी। एक विलक्षण प्रकार की एकान्तता का प्रभाव, जिसका वर्णन नहीं हो सकता, एकाएक उस पर छा गया। उसका हृदय व्याकुल हो उठा। वस्तुतः एक भी ऐसा आदमी वहाँ नहीं था जो उसके लिए चिन्तित हो? वास्तविक सहानुभूति-सूचक शब्द या निगाह के लिए वह उस समय मुँह माँगी वस्तु दे देता। प्रेम-पूर्ण आश्वासन के लिए वह उस समय आतुर हो रहा था।

राजा के समय की समाप्ति में अब केवल कुछ ही क्षण रह गये थे। इतना समय बिताने में उस पर कैसी बीती? कम से कम उसे इसी की आशा थी और उसके लिए इतना ही संसार था। उसको अब सान्त्वना और सुख प्राप्त होने लगा। उसने बाक़ी लोगों को क्षमा कर दिया—वास्तव में उसने उन्हें विस्मृत सा कर दिया। तो भी वह बहुत ही गिर चुका था। जब वह अपनी स्त्री के कमरे के द्वार पर खड़ा था तब उसे इस बात की हिचकिचाहट हुई कि कमरे में प्रवेश करूँ या न करूँ। कहीं यह भी स्वप्न न ठहरे? यहाँ का भेद जान लेने की अपेक्षा क्या लौट जाना श्रेयस्कर होगा? राजा ने कहा—परन्तु मैंने अभी तक भय से कोई काम नहीं किया है।

रानी अकेले अँगेठी के समीप अपने कमरे में बैठी थी। उसके मुँह के ऊपर उसके लम्बे बालों के आ जाने से उसका मुँह देख नहीं पड़ता था। उस पर निगाह पड़ते ही राजा के हृदय में आत्म-भर्त्सना-जन्य वेदना हुई। वह कभी कैसे सन्देह कर सकता था?

जो अँगूठी राजा ने रानी को दी थी उसे वह पहने थी। वह उसी अँगूठी को सदा पहना करती थी। उसका नग चमक रहा था। उसे छोड़ कर कमरे में दूसरा प्रकाश नहीं था। रानी के पास जाकर उसे प्रसन्न करने के लिए राजा आतुर होने लगा। राजा को आश्चर्य हुआ कि इसकी सारी दासियाँ इसे इस तरह एकान्त में छोड़ कर कहाँ चली गईं? इसके दुःख की इस पहली रात में इसके साथ कम से कम एक दासी का रहना बहुत ही ज़रूरी था। उसने रानी को विचार में लीन देखा। उसने सोचा—शायद वह कुछ कहे या मेरा नाम ही ले! परन्तु रानी बिलकुल ही चुप बैठी रही। इतने ही में एक धीमी आवाज़ हुई। उसे सुन कर राजा चौंक पड़ा। दीवार में से एक द्वार खुल गया। इसका हाल राजा और रानी को छोड़ कर दूसरे को नहीं मालूम था। इसी से निकल कर एक आदमी रानी के सामने आ खड़ा हुआ।

रानी ने अपने ओठों पर अँगुली रख कर यह भाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्त किया कि ख़बरदार, कुछ आहट न होने पावे। यह सङ्केत कर वह उसके गले जा लगी। उसने कहा—तुम आ गये, मैं बहुत प्रसन्न हुई हूँ। जब वह मर रहा था तब मुझे उसका हाथ अपने हाथों में लेना पड़ा था। मैं यहाँ अकेली बैठी डर रही थी। मैंने सोचा कि शायद उसका भूत लौट कर आवे, परन्तु अब वह नहीं आवेगा। अब हम लोग सदा सुखी रहेंगे। इतना कह कर रानी ने अपनी अँगुली से अँगूठी निकाल कर चुम्बन किया और रोकर उसे दे दी।

जब बारह बजे तब रक्षक लोग जाग उठे। उन लोगों ने उठ कर देखा कि राजा का शव पलँग पर ज्यों का त्यों पड़ा है, परन्तु उसके मुख की आकृति में भारी परिवर्तन हो गया है। उन्होंने कहा—अब इसे रानी को फिर दिखलाना ठीक न होगा।*

'ग्रामीण'

साहित्य-सुमन।

युद्ध-भूमि में संवाददाता।

कारलाइल ने अपने वीर और वीर-पूजा-सम्बन्धी व्याख्यानों में वीर पैग़म्बर, वीर विद्वान्, वीर कवि एवं इसी तरह के अन्यान्य वीरों की चर्चा की है, परन्तु वीर संवाददाता का उल्लेख उसने नहीं किया। यह बात नहीं थी कि दार्शनिक कारलाइल सम्पादन-कला का महत्त्व न स्वीकार करता रहा हो। परन्तु उसके समय में सम्पादन-कला अपनी गर्भावस्था ही में थी।

सम्पादन-कला नये युग की वस्तु है। यद्यपि इसकी उत्पत्ति एशिया में हुई है, परन्तु फूली-फली है वह योरप में और इस समय वह योरप ही की वस्तु बन गई है। गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही इस कला की उन्नति हुई है। कारलाइल के वीर और वीरपूजा-विषयक अपने व्याख्यान दे चुकने के कई वर्ष बाद संवाददाताओं ने कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होकर अपने वीरत्व का परिचय दिया था। अतएव कारलाइल की पूर्वोक्त वीरगणना में वीर संवाददाताओं का नाम भी शामिल कर लेना चाहिए।

संवाददाताओं की वीरता का परिचय पहले पहल संसार को सूडान की लड़ाई से हुआ। इस युद्ध में जितने अँगरेज़ अफ़सर काम आये थे उनकी अपेक्षा संवाददाता अधिक संख्या में हताहत हुए थे। मृत्यु को हँस कर सामना करना वीरता का एक साधारण चिह्न है। कर्तव्य-पालन करते समय जो व्यक्ति अपने इस नश्वर शरीर का त्याग करता है वही वीर कहलाता है। जो संवाददाता युद्ध-भूमि में संवाद-संग्रह करने का भार लेता है उसके प्राण प्रत्येक पल सङ्कट में रहते हैं। क्योंकि युद्ध-क्षेत्र की प्रत्येक बात के निरीक्षण की आवश्यकता उसको रहती है। एक इसी काम के लिए उसे तोप के गोलों की अग्नि-वर्षा के बीच और सङ्गीन की मार के समय घटनास्थल पर उपस्थित रहना पड़ता है। तभी वह अपने संवादपत्र का कलेवर विलक्षण और सच्ची घटनाओं के मौलिक रूप से अलंकृत कर सकता है। न तो उसे युद्ध-भूमि में तलवार चलानी पड़ती है और न बन्दूक, पर उसे वहाँ की एक एक बात प्रत्यक्ष देख कर सबसे पहले अपने संवाद-पत्र के सम्पादक को भेजनी पड़ती है। युद्ध के बन्द होने पर योद्धा विश्राम करने के लिए अपने शिविर को चले जाते हैं, परन्तु संवाद-पत्रों की सेना को तब भी छुट्टी नहीं। अभी तक उसका काम शुरू ही नहीं हुआ था। अभी तक वह केवल खड़े खड़े तथा इधर से उधर जाकर युद्ध का तमाशा ही देखती रही है।

---

* अनुवादित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवाददाताओं का मुख्य काम संवाद भेजना है और युद्ध की समाप्ति के बाद ही संवादों की प्राप्ति की सम्भावना होती है।

युद्ध के समाप्त होते ही संवाददाता अपने निरीक्षण का विवरण अपने पत्र को भेजने के लिए सन्नद्ध होता है। वह कभी कभी अपना विवरण वहीं युद्ध-भूमि पर ही लिखने को बैठ जाता है। इस काम के करने में जिन कठिनाइयों का सामना उसे करना पड़ता है और जिनको झेल कर वह अपना कर्तव्य पालन करता है उन्हें देख कर कहना ही पड़ता है कि संवाददाताओं की भी गिनती वीरों में होनी चाहिए।

ऊपर बताया गया है कि संवाददाताओं ने अपने शौर्य का परिचय पहले पहल सूडान के युद्ध में ही दिया। इस युद्ध में इँग्लेंड के सब प्रसिद्ध संवाद-पत्रों के संवाददाता उपस्थित थे और उनमें से अनेक युद्ध-भूमि ही में मारे भी गये। अतएव पहले पहल अँगरेज़ों ने ही इस कार्य में प्रसिद्धि प्राप्त की और इस समय भी वही प्रसिद्ध हैं। दूसरी जाति के लोग अभी इस ओर उतनी प्रसिद्धि नहीं प्राप्त कर सके। सूडान-युद्ध के बाद क्रीमिया के युद्ध में भी संवाददाता अपने कर्तव्य से विमुख नहीं रहे। इस युद्ध में डाक्टर रसेल ने बड़ी कीर्ति प्राप्त की। इसके लेखों का इँग्लेंड पर वह प्रभाव पड़ा था जिससे सारे देश में खलबली मच गई थी और गवर्नमेंट को अपनी त्रुटियों का उत्तर देने में नाकोदम हो गया था। क्रीमिया के युद्ध में अँगरेज़ी सेना के कुप्रबन्ध और उसके कारण सैनिकों की दुरवस्था का यथार्थ विवरण डाक्टर रसेल ने लन्दन के टाइम्स् में छपवाया था जिसे पढ़ कर इँग्लेंड के सर्वसाधारण अपनी सरकार से बहुत ही अधिक असन्तुष्ट हो गये थे। फलतः सरकार ने तुरन्त ही युद्ध-भूमि के अपने प्रबन्ध को सुव्यवस्थित किया। इसके बाद ही इटली और आस्ट्रिया में जो युद्ध हुआ उसमें भी डाक्टर रसेल ही प्रसिद्ध संवाददाता रहा।

इस समय तक अमरीकावाले सम्पादनकला में इतने प्रवीण हो गये थे कि वे भी इस ओर अग्रसर हुए और अँगरेज़ों के साथ प्रत्येक युद्ध-क्षेत्र में वहाँ के संवाददाताओं की उपस्थिति अनिवार्य सी होगई। वहाँ के संवाददाता भी अवसर पड़ने पर अपना वीरत्व प्रकट करने से कभी पराङ्मुख नहीं हुए।

फ्रैंको-जर्मन-युद्ध में आर्चीबाल्ड फ़ोर्बेस ने ख़ासा नाम पैदा किया। यह साधारण श्रेणी का संवाद-पत्रों का संवाददाता होकर युद्ध-क्षेत्र में गया था। परन्तु रूस-तुर्क-युद्ध में जो कीर्ति इसे प्राप्त हुई वह सबसे अधिक थी। शिपका-पास और प्लेवना के युद्धों में इसने अपने शौर्य का ख़ासा परिचय दिया था। युद्ध-क्षेत्र में उपस्थित रह कर और अपने जीवन को अनेक अवसरों पर सङ्कट में डाल कर इसने अपने साहस का ख़ूब परिचय दिया था। इसके साथ अमरीकन संवाददाता मिस्टर मैक गाहन भी था। इसका विवरण छपने से बलगेरिया का प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न हो गया और बलगेरिया राज्य की रचना हुई। उस समय इसके जो लेख डेलीन्यूज़ में निकले थे उनका प्रभाव इँग्लेंड पर ऐसा पड़ा कि उसने तुर्कों की हर बात में पीठ ठोकने की अपनी नीति का परित्याग सदा के लिए कर दिया। इसने अपने लेखों में उन भीषण अत्याचारों के चित्र अङ्कित किये थे जो तुर्क बलगरों पर करते थे। तुर्क-रूस-युद्ध के बाद जो छोटी मोटी लड़ाइयाँ यत्र तत्र होती रहीं उनमें बहुसंख्यक संवाददाता सम्मिलित हुए। इस समय तक संवाददाताओं की रुचि इस ओर अधिक आकृष्ट हो चुकी थी। अमरीका-वालों ने तो यह पेशा ही उठा लिया था, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योरप की दूसरी जातियों के लोग भी इस कार्य की ओर अपना उत्साह प्रकट करने लगे थे।

जब अमरीका और स्पेन के बीच लड़ाई छिड़ी तब अमरीका के संवाददाताओं ने ख़ासी धूम मचा दी। क्यूबा टापू में भीषण संग्राम हो रहा था और अमरीका तथा योरप के संवाद-पत्रों के संवाददाता अपने कर्तव्य का पालन करने में लगे थे। इनमें क्रीलमैन ने ख़ासी ख्याति प्राप्त की। पहले भी इसने प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी, एक साधारण आदमी से यह बड़ा आदमी हो गया था। इसने केवल अपने बुद्धि-बल की ही बदौलत वे काम कर दिखाये थे जो उस समय कोई भी संवाददाता न कर सका था। यह अमरीकानिवासी था, पर योरप में भी इसकी कीर्ति फैली हुई थी। इसने पोप से भी भेंट की और उसका विवरण संवाद-पत्र में प्रकाशित किया। उस समय तक एक भी प्रोटेस्टेन्ट मत का ईसाई पोप के दर्शन न कर सका था। पहला प्रोटेस्टेन्ट ईसाई क्रीलमैन ही था जिसने अपने उद्योग से पोप से मुलाक़ात करने में सफलता प्राप्त की। इसने रूस जाकर वहाँ के यहूदियों की अवस्था का निरीक्षण किया। उस समय रूस-सरकार की इस बात के लिए बड़ी निन्दा हो रही थी कि वह अपनी यहूदी प्रजा पर अत्याचार करती है। परन्तु इसने वहाँ की दशा का निरीक्षण कर संवाद-पत्र में ऐसे लेख लिखे जिससे रूस-सरकार की अपकीर्ति मिट गई। इसने काउन्ट टालस्टाय का सत्सङ्ग भी किया था।

क्रीलमैन ने सन् १८६३ के हयाती के हबशियों के युद्ध में तथा रेड इंडियनों के उपद्रव के अवसर पर घटनास्थल में उपस्थित होकर संवाददाता का काम किया। परन्तु जब चीन और जापान के बीच मुठभेड़ होगई तब वह एशिया चला गया। इसके पहले वह एशिया कभी नहीं आया था। वह 'न्यूयार्क वर्ल्ड' का संवाददाता होकर गया था। उसने इस युद्ध में शामिल होकर घटनास्थल की एक एक बात का निरीक्षण अपनी आँखों से किया। एक बार चीनियों की तोप के गोले से वह अपने घोड़े के सहित उड़ गया था। परन्तु सौभाग्यवश घोड़े को ही गोला लगा और वह बच गया, परन्तु एक कान से सदा के लिए बहरा हो गया। जब जापानी सेना ने पोर्ट-आर्थर पर आक्रमण किया तब क़िले की दीवार फाँद कर वह सबसे पहले भीतर जा पहुँचा। उसने वहाँ के उस हत्याकाण्ड को अपनी आँखों से देखा था जिसके कारण संसार में उस समय जापानियों की बड़ी भारी अपकीर्ति हुई थी। यह हत्याकाण्ड लगातार तीन दिन तक पोर्ट-आर्थर में जारी रहा और इसमें चीनी आबाल-वृद्ध-वनिता सबके सब बिना सोच-विचार के मार डाले गये। सबसे पहले इसकी सूचना संसार को उसी ने दी। यद्यपि उसके साथ दो और भी संवाददाता थे, पर उनके विवरण विलम्ब से प्रकाशित हुए थे। जापानी अधिकारियों ने उसे धन का प्रलोभन देकर उससे अपने पूर्व-विवरण का खण्डन करवाना चाहा था, परन्तु घूस के धन पर लात मार कर वह अपनी बात पर डटा रहा। मार डालने की भी धमकी उसको दी गई, पर वह अपने विचार पर ही दृढ़ बना रहा। यही नहीं उसने इतनी निर्भयता भी दिखलाई कि वह जापान में तब तक उपस्थित रहा जब तक उसका लिखा हुआ पोर्ट-आर्थर के हत्याकाण्ड का विवरण समाचार-पत्र में प्रकाशित होकर जापान न आ गया।

अमरीका वापस आकर और वहाँ कुछ समय तक विश्राम करने के बाद क्रीलमैन क्यूबा को गया। वहाँ उसने उन अत्याचारों का पूरा विवरण संग्रह किया जो स्पेनवालों ने विद्रोह दमन करते समय हबशियों पर किये थे। इस कार्य के करते समय क्रीलमैन के साथ स्पेन के जनरल वेलेर का विवाद भी हो गया था, जिससे उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रीलमैन को वहाँ से निकाल बाहर किया। इसके बाद जब स्पेन और अमरीका के बीच लड़ाई छिड़ गई तब वह फिर संवाददाता बन कर क्यूबा भेजा गया। इस युद्ध में भी क्रीलमैन ने 'एल केनी' की लड़ाई में अद्भुत साहस का परिचय दिया। जब अमरीका की सेना क़िले पर धावा करने की तैयारी कर रही थी और शत्रु क़िले से गोलों और गोलियों की वर्षा कर रहा था तब वीरवर क्रीलमैन और दो संवाददाताओं के साथ क़िले की प्राचीर के पास छिपे हुए युद्ध-भूमि के दृश्य का निरीक्षण कर रहा था। उसे वहाँ यह उपाय भी सूझ गया था कि क़िला कैसी सरलता से हस्तगत किया जा सकता है। अतएव वह वहाँ से वापस आकर अपनी सेना से आ मिला और जब अमरीका के सैनिक क़िले पर चढ़ दौड़ने को उसके साथ हो लिये तब वह उनका पथदर्शक बन कर आगे हो गया। क्रीलमैन ही पहला आदमी था जिसने क़िले के फाटक पर पहुँच कर स्पैनी सैनिकों से हथियार रख देने का आदेश दिया था। यह कितने साहस का काम था जो उसने इस प्रकार पूरा किया। जब क़िले पर अमरीकावालों का अधिकार हो गया तब उसके पास के गाँव से स्पेनवालों ने क़िले पर गोली दागना शुरू किया। इसी अग्नि-वर्षा में क्रीलमैन आहत हो गया, जिससे वह न्यूयार्क पहुँचा दिया गया।

इस युद्ध में संवाददाताओं में से केवल क्रीलमैन ही नहीं आहत हुआ था किन्तु और भी। निस्सन्देह संवाददाताओं के कार्य भी वैसे ही वीरता-द्योतक मिलते हैं जैसे युद्धभूमि के तलवारधारी सिपाही के।

नरहिर राव जोशी

चारु चयन।

१—शान्ति।

(१)

किसी से नहीं द्रोह को कीजिएगा,
न जी को कभी मोह में दीजिएगा।
रहो शान्त निर्भ्रान्त हो दान्त हो के,
सदा शौर्य से सत्य-सिद्धान्त हो के॥

(२)

करेगा प्रशंसा न संसार कैसे,
न हो जायगा हार-संहार* कैसे ?।
भलों को भलाई दिखा दें, सिखा दें,
बुरों की बुराई लखा दें, लिखा दें॥

(३)

परों के करों में घरों को न देवें,
नहीं † सत्व से अन्य के स्वत्व लेवें।
विपक्षी भले हो रहें पक्षपाती,
अघाते अघों से न विश्वासघाती॥

(४)

किसी से न कोई कहीं त्रास पावे,
नहीं प्रास ‡ खावे, नहीं ह्रास पावे।
सभी से सभी का सदा हो सहारा,
हमारा तुम्हारा, तुम्हारा हमारा॥

(५)

डरें पाप से, पापियों से बचावें,
खलों के दलों को कलों से नचावें।
हरे को हरें + हार माने न जी में
खरों से खरे खार माने न जी में॥

(६)

कभी लोभ से क्षोभ होने न पावे,
कभी क्रोध से सोध खोने न पावे।
कहें एक हो के, चहें एक हो के,
रहें एक हो के, सहें एक हो के॥

---

* हार-संहार = पराजय का नाश। † सत्व = बल।
‡ प्रास = भाला, बरछा।
+ हरे को हरें = छीने हुए को लौटालें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७)

न हिंसा करें, शाक से तुष्ट होवें,
नहीं पाप से पुष्ट हो, दुष्ट होवें ।
न रैदास * से दास के दास होवें,
नहीं गैर के पैर के पास होवें ॥

(८)

न बेकार सोवें, न बेगार ढोवें,
नहीं स्वत्व खोवें, न निःसत्व होवें ।
रहें दूर ही क्रूर की क्रूरता से,
सहें धीरता वीरता शूरता से ॥

(९)

रहे देश की वेश की वंश-लाली,
मरें क्यों करें जो न खाली दलाली ।
अकूपार † के पार व्यापार होगा,
तभी तो कभी भार-उद्धार होगा ॥

(१०)

नहीं दुःख देंगे नहीं दुःख लेंगे,
कहेंगे सही ऐसही क्यों रहेंगे ? ।
हटे दीनता से पराधीनता क्यों ?
सटे पीनता से न स्वाधीनता क्यों ?

(११)

हमें जो कहेगा सहेगा हमारा,
हमारा हमेशा रहेगा हमारा ।
हटें क्यों प्रणों से बिना प्राण जाये
बिना तत्त्व पाये बिना त्राण पाये ॥

(१२)

सदा शान्ति से क्षान्ति-विक्रान्त होवे,
न जो क्रान्ति की भ्रान्ति से कान्ति खोवें ।
तमाशा खलों का खुलासा अभी हो,
मिला सा दिलासा भुलासा अभी हो ॥

रामचरित उपाध्याय

---

* रैदास = चमार ।
† अकूपार = समुद्र ।

२—महत्तम और लघुत्तम ।

सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु कल्पनातीत है । उसी प्रकार अत्यन्त बृहत् वस्तु उनके लिए अपरिमित है । इस लेख की विवेच्य अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु परमाणु है । इनका विभाजन हो सकता है । अत्यन्त बृहद्-वस्तु से हमारा मतलब इस लेख में उस वस्तु या दूरी से है जो नापी जा सकती है ।

बहुत दिन तक परमाणु सूक्ष्मतम कण माना गया है । परन्तु क्या कोई बता सकता है कि पिन की नोक में कितने परमाणु होंगे ? पिन की नोक में ८०००००००००००००-००००००००० परमाणु होते हैं । परन्तु इतनी ही गणना से छुट्टी न मिल जायगी । क्योंकि परमाणु स्वयम् एलक्ट्रन की एक बड़ी संख्या का समूह है । एलक्ट्रन उस श्रेणी का अत्यन्त ही सूक्ष्म परमाणु है जिसे मनुष्य नाप सकता है । कहाँ यह सूक्ष्मतम एक परमाणु और कहाँ मनुष्य के रूप का आकार ! परन्तु यह कुछ भी आश्चर्य नहीं है । इस विशाल सृष्टि में मनुष्य के आकार की हैसियत ही कितनी ! जिस भूमण्डल पर हम निवास करते हैं उसकी आकार-कल्पना से हम भले ही आश्चर्य में पड़ जायँ, पर हमारे गृह-मण्डल में वह स्वयं दूसरों की अपेक्षा रेणु-कण के तुल्य है । और जिस गृह-मण्डल में इस भूमण्डल की गणना बालुका के कण के समान है वह भी तो सूर्यमण्डल की विशालता में एक क्षुद्र बिन्दु के समान केवल विस्मृत सा पड़ा हुआ है । परन्तु सबसे अधिक आश्चर्य तो यह है कि स्वयम् उक्त सूर्य-मण्डल अखिल ब्रह्माण्ड का एक अत्यन्त ही सूक्ष्म अङ्ग गिना जाता है ।

एक परमाणु का व्यास नापने पर $\frac{१}{१००००००००००}$ मीटर निकला है । परन्तु एलक्ट्रन के व्यास की अपेक्षा परमाणु का व्यास बहुत बड़ा होता है । पर मनुष्य ने अपने बुद्धि-बल से इतनी छोटी सी छोटी वस्तु का भी व्यास नाप लिया है । क्या कोई इन संख्याओं की कभी कल्पना कर सकता है ? एक मीटर के व्यास में हमें कितने परमाणु रखने पड़ेंगे । यह बात क्या कोई ध्यान में ला सकता है ? कभी नहीं । यदि हम परमाणु के एक मीटर के व्यास में आनेवाले परमाणुओं को रख कर उन्हें गिनें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यदि गिननेवाला उन्हें १० लाख फ़ी सेकेंड के हिसाब से गिने तो उसे उनके गिन डालने में पूरे १० हज़ार वर्ष लगेंगे। अनुमान तो करिए, कैसी भयङ्कर संख्या होगी? यह तो हुई अत्यन्त सूक्ष्मतम वस्तु की बात। अब अत्यन्त दीर्घतम वस्तु की बात कही जाती है।

डलवर्थ की इमारत दुनिया में सबसे अधिक ऊँची है। वह २७० मीटर ऊँची है। पेरिस के ईफ़ेल नाम के मीनार की ऊँचाई ३०० मीटर है। संसार का सबसे अधिक ऊँचा पहाड़ हिमालय का माउन्ट एवरेस्ट ८,८४० मीटर ऊँचा है। ९ हज़ार मीटर तक गहरा समुद्र भी मिला है। पृथ्वी का व्यास १२७००००० मीटर है। यदि प्रति घंटे २०० मील की चाल का हवाई जहाज़ इस पृथ्वी की परिक्रमा करे तो उसे ९ दिन लगेंगे। मतलब यह कि पृथ्वी की परिधि ४०००००००० मीटर है। पृथ्वी से चन्द्रमा ३८०००००० मीटर दूर है। सूर्य का व्यास १३८००-००००० मीटर है। नेपच्यून की परिक्रमा करने में हमारे हवाई जहाज़ को ३५०० वर्ष लगेंगे। इसका व्यास ६००००००००००००० मीटर है। अलफ़ा सेंटारिस नाम का नक्षत्र पृथ्वी से सबसे अधिक निकट है। इसका व्यास ४२०००००००००००००० है। पृथ्वी से सूर्य १५०००००००००००० मीटर दूर है। अन्ड्रोमेडा के विशाल नेबुला का व्यास पृथ्वी से सूर्य की दूरी से ३८६-५०० गुना अधिक है। इसको पार करने में प्रकाश को ९ वर्ष लगते हैं। इसकी दूरी ९८०००००००००००००० मीटर है। इस नेबुला से होकर जाने में हमारे हवाई जहाज़ को २३०००००० वर्ष लगेंगे। ग्रह-मण्डल से इसका आकार ६ हज़ार गुना अधिक बड़ा है। ध्रुवनक्षत्र की दूरी पृथ्वी से ४४०००००००००००००००० मीटर है। जो नक्षत्र पृथ्वी से सबसे अधिक दूरी पर आकाश गङ्गा में स्थित है उसका प्रकाश हम तक पहुँचने में लगभग २००० वर्ष लगेंगे। यह नक्षत्र पृथ्वी से १८००००००-००००००००००० मीटर दूर है। बेटेलजीज़ नामक नक्षत्र का आकार कितना कल्पनातीत है, यह इसी से मालूम हो जायगा कि उसका व्यास सूर्य के व्यास से ३०० गुना बड़ा है। यह केवल आकाश-गङ्गा में स्थित नक्षत्रों की बात हुई। अब उसके बाहर स्थित नक्षत्रों का कुछ हाल लिखा जाता है। स्टेलर सिस्टम का जो नक्षत्र पृथ्वी से निकटतम है उसकी दूरी लगभग ४००००००००-००००००००००० मीटर है और उसी मण्डल का जो नक्षत्र यहाँ से सबसे अधिक दूर स्थित है उसकी दूरी लगभग ६००००००००००००००००००००००० मीटर है। कितनी विशाल संख्या हुई! आओ, इस संख्या को हृदयङ्गम करने की चेष्टा तो करें। सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक आने में ८ मिनट १३ सेकेंड लगते हैं। अर्थात् सूर्य का प्रकाश इतने समय में १५०००००००००००० मीटर की दूरी तय कर लेता है। उसे ग्रह-मण्डल की यात्रा करने में ८ घंटे और २० मिनट लगते हैं। अतएव हिसाब करने से यह फल निकलता है कि प्रकाश को स्टेलर सिस्टम पार करने में ४००० वर्ष और सुदूरतम स्थित नेबुला को पार करने में उसे १००००००० वर्ष लगेंगे। उत्कृष्ट दूरबीन की सहायता से मनुष्य इस नक्षत्र को देखने में समर्थ हो सका है। स्टेलर सिस्टम में इस प्रकार के नक्षत्र अधिक संख्या में होंगे—पर हम उन्हें दूरबीनों से भी देखने में अभी तक समर्थ नहीं हुए हैं। इस अनन्त आकाश में असंख्य स्टेलर सिस्टम विद्यमान हैं, पर अभी तक मनुष्य उनको नहीं देख सका है।

यहाँ तक तो छोटाई-बड़ाई तथा दूरी की संख्यायें दी गईं। अब गति और शक्ति की संख्याओं का उल्लेख किया जाता है। साधारण आदमी की चाल फ़ी घंटा ४ मील है। तेज़ से तेज़ रेल-गाड़ी फ़ी घंटा ८० मील के हिसाब से दौड़ सकती है। और अत्यन्त शीघ्रगामी हवाई जहाज़ की चाल प्रति घंटा ४०० मील की है। बन्दूक की गोली की गति प्रति घंटा २४०० मील है। पृथ्वी की चाल प्रति घंटा ६६००० मील है। परन्तु रेडियम के कणों की किरणों की गति और भी विलक्षण है। रेडियम की ए-रेज़ तथा बी-रेज़ की गतियाँ क्रमपूर्वक प्रति सेकेंड लगभग १८००० मील और १८०००० मील हैं। परन्तु प्रकाश की गति सबसे अधिक बढ़ चढ़ कर है। वह एक सेकेंड में १८६००० मील जाता है।

एक घोड़े की शक्ति का इंजन एक सेकेंड में ५५० पौंड एक फ़ुट ऊपर उठा सकता है। इस हिसाब से मनुष्य की शक्ति घोड़े की $\frac{1}{10}$ शक्ति के बराबर है। सबसे अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिशाली लोकोमोटिव की शक्ति ४००० घोड़े की शक्ति से अधिक नहीं होती। अत्यन्त अधिक शक्तिशाली स्टीम टरबाइन की शक्ति ६०००० घोड़ों की शक्ति के बराबर होती है। बड़े बड़े जङ्गी जहाज़ों में १८०००० घोड़े की शक्तिवाले इञ्जिन लगाये जाते हैं। निगारा जल-प्रपात के हायड्रोलिक टरबाइन की शक्ति ६००००० घोड़ों की शक्ति से भी बढ़ गई है। और स्वयं उक्त जल-प्रपात की शक्ति ६०००००० घोड़ों की शक्ति के बराबर है। पृथ्वी के अपनी धुरियों पर घूमने से जिस शक्ति का विकास होता है वह ३००००००००००००००००००००००००० घोड़ों की शक्ति के बराबर है। और उसके सूर्य की परिक्रमा करते समय जिस भयङ्कर शक्ति का प्रादुर्भाव होता है वह ३००००००००००००००००००००००००००००० घोड़ों की शक्ति के बराबर है। परन्तु इससे भी विलक्षण सूर्य की शक्ति है। सूर्य पृथ्वी से ३२४००० गुना अधिक भारी है। वह हरकूलीज़ नक्षत्र मण्डल की ओर प्रति वर्ष २४०००००००० किलोमीटर की गति से घूमता है। उस दशा में जो शक्ति उसमें उत्पन्न होती है वह २०००००००००००००००००००००००००००००००००० घोड़ों की शक्ति के बराबर है जब केवल सूर्य ही की शक्ति का यह हिसाब है तब सम्पूर्ण ग्रहमण्डल की शक्ति का हिसाब कितना बढ़ चढ़ कर होगा, यह सहज में ही अनुमेय है और ऐसी दशा में सारे ब्रह्माण्ड की शक्ति की चर्चा तो एक प्रकार से व्यर्थ है।

रामकिशोर गुप्त

३—मूढ़ माली।

(१)

क्या जाता है धन जन संग में या जाता है ज्ञान भला;
संग कर्म का फल जाता है उसमें दो कुछ ध्यान भला।
पुष्पों से भी दोष कभी क्या हो सकता है यह सोचो;
नाना विधि के दुख दे करके व्यर्थ नहीं उनको नोचो॥

(२)

अपने इन असभ्य कर्मों से मानहीन तुम आज बने;
यदि करते तुम उचित कर्म तो सब तेरे थे काज बने।
तेरे ये सब बुरे कर्म असुरों से भी हैं बढ़े चढ़े;
ये तेरे हैं ठाट बाट पर तो भी उनसे नहीं बढ़े॥

(३)

डील डौल में वे भद्दे थे या सुडौल वे थे प्यारे;
सभी देश के पुष्पों से वे थे सुगन्ध में पर न्यारे॥
हो गर्वित तुम चढ़े अयश के पर्वत पर क्यों यश आये; ?
कर अपयश इस भूतल में किस मानव ने हैं सुख पाये ?

(४)

जब मेरे घर के पुष्पों ही का तुमने है नाश किया;
कैसे मेरे घर में रह कर तेरा होगा वास किया।
छोड़ो ये सब चाल-ढाल तुम धर्म-कर्म का गुण धर लो;
रह करके इस जगत जाल में ईश्वर का कुछ भय कर लो॥

(५)

फूल हमारे हरे भरें हों या गर्मी से मुर्झावें;
देख भाल उनकी करने का तेरे मन में क्यों आवे ?
कभी न उनको जल देकर के अपने मन में सुख पाया;
उनको नित तुमने दुख देकर कहो न क्या अब दुख पाया॥

(६)

माली हो सुन्दर कुरूप या गन्धर्वों से बढ़ कर हो;
पर पुष्पों के लिए नहीं क्यों वह देवों से बढ़ कर हो ?
यदि उससे तुम घृणा करो तो प्रीति-पात्र कैसे होगे ?
अपमानित जैसे करते थे अपमानित वैसे होगे॥

(७)

पड़े पड़े थे मौज उड़ाते सुख ठहरो अब होवेगा;
दुखी पुष्प के आह-शब्द में तू भी जल मर सोवेगा।
सभी धर्म ने बुरा कहा है दुख देना यह सब जानो;
पाप पुण्य का सदा जगत में फल मिलता है सच मानो॥

(८)

दर्शन करने इन पुष्पों का कई विदेशी आये थे;
सभी देश थे घूमे-घामे उनको भी ये भाये थे।
बैर-द्वेष को त्याग सदा यदि इनसे प्रेम लगाते तुम;
तो फिर क्यों इस भाँति निरादर इस भूतल में पाते तुम॥

(९)

शिक्षा भी यदि इन पुष्पों से सभी जीव जग के लेवें।
हो कल्याण जगत् का, पर को कोई भी क्यों दुख देवें॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे इन उपकारी पुष्पों को तुमने है नष्ट किया ;
तुम ही अपने मन में सोचो अपने ही को भ्रष्ट किया ॥

(१०)

बुरे कर्म के करनेवाले सदा हुए हैं अज्ञानी;
धर्म कर्म से हटनेवाले कभी नहीं होते मानी।
मत अभिमान करो अज्ञानी छोड़ चाल चण्डूल भला;
फूल नहीं हैं हूल हृदय की क्यों होवे अनुकूल भला ॥

(११)

मूढ़ बना मतवाला होकर भला ज्ञान क्योंकर होवे ;
निज शरीर में कण्टक खोंसे वह सुख से क्योंकर सोवे।
बड़े भाग्य से मिला तुम्हें भी मानव जीवन है जग में;
जिसको तुमने वृथा गँवाया कंटक बोकर निज मग में ॥

(१२)

धर्म सदा कहता है जग में दुख देना है पाप बड़ा;
दीन धनिक या भूप प्रजा हो जो माने हो आप बड़ा।
फिर उसको कुछ नहीं कभी भी ईश्वर का भय हो सकता;
जगत जाल की फुलवाड़ी में नहीं समय वह खो सकता ॥

कमलाकान्त

४—विलम्बित कुररी।

(१)

मिटी प्रतीची की लाली अब, उदय हो चुके तारे।
खेतों को कर निर्जन गृह निज श्रमी किसान सिधारे ॥
गिरता आता है चहुँ दिशि से रजनी का पट काला,
इधर उठी किंशुक-कानन में प्रबल अग्नि की ज्वाला ॥
शब्द-हीन नभ बीच, भयावह सान्ध्य-समय में ऐसे,
एकाकी ऐ विगह-विदेशी, उड़ता है तू कैसे ?

(२)

तेरी आरत-गिरा तथा यह लक्ष्य-हीन गति तेरी,
बतलाती तेरे अन्तर-तर की है व्यथा घनेरी।
जान यही पड़ता है निश्चय, साथी सब हाँ, तेरे,
चले गये मिल कर विदेश में तज कर तुझे अनेरे।
पा कर एकाकी अपने को ज्ञाति-हीन इस वन में,
मत घबड़ा भय से यों प्यारे विहग विलम्बित मन में ॥

(३)

समझ मुझे तू बन्धु एक निज हे द्वीपान्तर-वासी !
सोच अपरिचित मुझको उर में आने दे न उदासी।
जिस ईश्वर ने अमित दया करके है तुझे बनाया,
उसी ईश की अनुकम्पा से मिली मुझे यह काया।
सच देखें तो हम दोनों में भेद नहीं कुछ भारी,
हूँ मैं थलचारी तो तू है विस्तृत-व्योम-विहारी ॥

(४)

परदेशी पक्षी, आ जा तू मेरी पर्ण-कुटी में,
रक्खूँगा मैं तुझे रात भर दे कर अपने जी में।
खाने को दूँगा मैं तुझको बासमती * के दाने।
झरता शुभ्र बगल में झरना, पीएगा मनमाने ॥
बहलाऊँगा मन तेरा मैं, हर लूँगा श्रम सारा,
गाकर कभी सुगीत, बजा कर कभी मधुर इकतारा ॥

(५)

चले गये होंगे सुदूर बहु साथी अब तक तेरे।
घण्टों पहले गये निकल वे खूब पास से मेरे ॥
आ तू चली, विलम्बित कुररी, सोच नहीं कुछ मन में,
कट जावेगी रात मज़े में, इस निर्जन कानन में।
होंगे पिछड़े विहग एक दो तुझसे और अभागे,
जाने जब वे लगें सवेरे, बढ़ जाना मिल आगे ॥

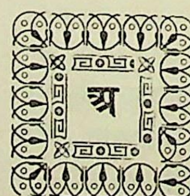
(६)

विहग विलम्बित, नहीं ठहरता, उड़ता ही तू जाता,
क्या मेरा यह कथन नहीं है तेरे मन को भाता।
नहीं ठहरना ही जो तज तो यह मन की निर्बलता,
ला तू अपने हृदय बीच नव-साहस और सबलता ॥
परमपिता जगदीश दयामय पथ-दर्शक हो तेरा।
छिटके चटक चाँदनी मग में होवे दूर अँधेरा ॥

मुकुटधर

विविध विषय।

१—आयुर्वैदिक और यूनानी चिकित्सा की सौभाग्य सूचना।



अपने देश की वैद्यक और यूनान देश की यूनानी चिकित्सा के पुनरुद्धार की चेष्टा इधर कई साल से होती आ रही है। उनके सौभाग्य-भास्कर के उदय की कई बार सम्भावना हुई, पर हर बार टाँय टाँय फिस की मसल चरितार्थ होगई। हाँ, इधर, गत वर्ष, इन प्रान्तों की गवर्नमेंट ने उन्हें कुछ यों

* एक धान का नाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही थोड़ा सा करावलम्ब देने का सूत्रपात ज़रूर किया है। पर उतने से ही इन चिकित्साओं के पृष्ठपोषकों को सन्तोष नहीं हो सकता। इसी से फिर एक बार इन लोगों ने ज़ोर मारा है। इस बार ज्ञान-विज्ञान के तत्त्वों की क़ायल गवर्नमेंट ने काफ़ी दाद देने का उपक्रम भी किया है। बात यह है कि बार बार की रगड़ से कठोर से भी कठोर वस्तु कुछ न कुछ अवश्य ही घिस जाती है। गवर्नमेंट तो ज्ञानी और विज्ञानी मनुष्यों का सभ्य समुदाय है। वह क्यों न हिल जाय।

१२ जनवरी १९२२ को, क़ानून बनानेवाली बड़ी सभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली) के अधिवेशन में, राय साहब लक्ष्मीनारायण लाल ने प्रस्ताव किया कि सरकार कृपा करके यूनानी और वैद्यक चिकित्सा को अब तो दाद दे। हैज़ा, इन्फ़्लुयंज़ा और प्लेग आदि मारक बीमारियों के कारण अनन्त जन-नाश हो रहा है। देहात में लोगों को सरकार की पसन्द की हुई विलायती चिकित्सा प्राप्य नहीं। उन्हें यदि कोई चिकित्सा प्राप्य है और हो सकती है तो वह वैद्यक और यूनानी ही है। सरकार दया करके नामी नामी वैद्यों और हकीमों की सहायता से इस प्रकार के रोग-नाश का उपाय करे। इस उद्देश की सिद्धि के लिए वह एक कमिटी का सङ्गठन कर दे और उसके मेम्बरों को आज्ञा दे दे कि वे एक रिपोर्ट तैयार करें। उस रिपोर्ट में वे यह बतावें कि किस तरह और किन उपायों से वैद्यक तथा यूनानी चिकित्सा के प्रयोग से रोगियों के इलाज का प्रबन्ध किया जाय। अब तक तो सरकार इन चिकित्सा-प्रणालियों से सिर्फ़ मौखिक सहानुभूति दिखाती आई है। अब उसे ज़रा आगे क़दम बढ़ाना चाहिए और इन चिकित्साओं से लाभ उठाने का ज़रिया भी लोगों के लिए सुलभ कर देना चाहिए।

राय साहब के इस प्रस्ताव का समर्थन और भी कई मेम्बरों ने किया। उन्होंने कहा, देहातियों को सरकार की विलायती (Allopathic) चिकित्सा न चाहिए। उसे वे लाभ-जनक नहीं समझते। जो उसे वैसा समझते हैं उन्हीं को वह मुबारक रहे। सर्व-साधारण को उनकी स्वदेशी चिकित्सा से ही अधिक लाभ पहुँच सकता है। रङ्गाचारी नाम के एक मदरासी मेम्बर ने तो कुछ कड़वी, पर सच्ची, बातें तक कह डालीं। उन्होंने कहा, स्वदेशी चिकित्सा की दुर्गति का एक कारण सरकार का दुर्लक्ष्य भी है। जब से इस देश के शासन का सूत्र उसके हाथ आया तब से उसने विलायती चिकित्सा को ही उत्तेजना दी, स्वदेशी चिकित्सा का तो अस्तित्व तक वह भूल सा गई; उसे उसने कोई चीज़ ही नहीं समझा। उसका अब कर्तव्य है कि चाहे जैसे हो इस चिकित्सा की रक्षा करे। यदि वह पूर्ववत् उदासीन रही तो इसका सर्वनाश अवश्यम्भावी है।

इस प्रस्ताव की जहाँ इस प्रकार पोषकता की गई तहाँ कुछ मेम्बरों ने इसका विरोध भी किया। उनमें से एक विरोधी तो साहब निकले। आपका शुभ नाम है—कर्नल गिडने। दूसरे दो इसी देश के देशभक्त—माननीय सर्फ़राज ख़ाँ और माननीय एन० एम० जोशी—प्रकट हुए। इन लोगों ने फ़रमाया कि कमिटी का सङ्गठन करना बेकार होगा। उसकी ज़रूरत ही नहीं। अजी, यह तो प्रान्तिक विषय है। यदि कोई प्रान्तिक गवर्नमेंट इस प्रकार की चिकित्सा जारी करना चाहे तो करे। हमसे क्या मतलब? हमारी "असेम्बली" तो सारे देश की विधि-व्यवस्था के लिए है। फिर आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा सबको सुलभ करने के लिए रुपया कहाँ है!

सरकार की तरफ़ से माननीय शार्प साहब बहादुर ने भी वही अपीलें पेश कीं जो ऊपर उल्लिखित तीन मेम्बरों ने पेश की थीं—रुपया कहाँ? विषय प्रान्तिक है, इत्यादि। यह कह सुन कर भी आपने विवेक को अर्धचन्द्र नहीं दिया। आपने इसके साथ ही यह भी कहा कि यह सब कुछ है, तथापि सरकार नहीं चाहती कि तिब्बी और आयुर्वेदिक चिकित्साओं के लाभ से लोग वञ्चित रक्खे जायँ। ये चिकित्सायें सैकड़ों वर्ष से इस देश में प्रचलित हैं। इनमें क्या गुण हैं, कहाँ तक ये लाभदायक हो सकती हैं, किस प्रकार इनका उपयोग किया जा सकता है, इत्यादि बातों की खोज करना, उन्हें लेख-बद्ध करना और सरकार को उनका ज्ञान कराना आवश्यक है। अतएव सरकार इन बातों की जाँच करावेगी। जब जांच हो चुकेगी तब वह प्रस्तुत प्रस्ताव को कार्य्य में परिणत करने का प्रबन्ध करेगी।

सो यद्यपि अभी तक यह सब ज़बानी ही जमाख़र्च है, तथापि प्रस्ताव की स्वीकृति यह बता रही है कि हवा किस रुख़ चलनेवाली है। बहुत सम्भव है कि वैद्यों और हकीमों को वर्ष दो वर्ष बाद ज़रूर दाद मिले। क्योंकि जांच करने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली कमिटी में, आशा है, अच्छे वैद्य और हकीम भी रहेंगे और वे अवश्य ही अपनी चिकित्साओं के गुणों का सप्रमाण निरूपण करके उनकी लाभदायकता सरकार के गले उतार सकेंगे।

तब तक वैद्यवरों और हकीमों को अपनी व्यवसाय-वृद्धि की तरकीबें सोच रखनी चाहिए। किस दवा के क्या दाम लिये जायँगे; दिन में रोगियों को कितनी फ़ीस देनी पड़ेगी और रात में कितनी; इक्का, ताँगा, फिटन, टमटम, मोटर, किस सवारी पर वे रोगियों को देखने जायँगे और किसका कितना किराया वे उनसे वसूल करेंगे, इत्यादि। क्योंकि जिन भिषगाचार्यों की कृपा से ये चिकित्सायें अस्तित्व में आई हैं वे सब यही करते थे। चरक और चक्रदत्त मोटर पर ही रोगी देखने जाते थे; दवाओं के विज्ञापन बादलों तक में चिपकाते थे और लवण-भास्कर की पुड़िया के भी दाम वसूल कर लेते थे। बिना फ़ीस वे बात भी न करते थे, उनकी आविष्कृत चिकित्सा से पूरा पूरा लाभ उठाने के लिए आज-कल के वैद्यविशारदों को उनका अनुकरण इन बातों में भी करना चाहिए। पर अन्य चिकित्सा-प्रणालियों से लाभ उठाने, परिश्रम-पूर्वक कुछ निज की भी खोज करने, पुरानी त्रुटियों को दूर करने की चेष्टा करने और रोगियों के साथ यदा कदा उदारता का भी व्यवहार करने की बात मन तक में न आने देना चाहिए। उनका कल्याण तभी होगा! रोगियों का दुखदर्द भी तभी दूर होगा।

२—कौंसिल में कोलाहल।

उस दिन—उस दिन क्यों ३० जनवरी को—संयुक्त-प्रान्त के क़ानूनी कौंसिल में हाहाकार मच गया। तुमुल वाग्युद्ध ठन गया। शामत के मारे कहिए, चाहे अभाग्य की प्रेरणा से कहिए, एक मेम्बर ने एक बड़ी ही बेढङ्गी तजवीज़ पेश कर दी। आप ज़िला बलिया के प्रतिनिधि हैं और शुभ नाम आपका है श्रीयुत मानकसिंह। आपने प्रस्ताव किया कि गवर्नमेंट एक ऐसा कालेज खोले जिसमें सारी शिक्षा शिक्षार्थियों की मातृ-भाषा ही में दी जाय। उसे धीरे धीरे वह विश्वविद्यालय बना दे। आपने अपने प्रस्ताव की पोषकता में युक्तिपूर्ण भाषण किया। आपकी सलाह का अनुमोदन भी कई मेम्बरों ने किया। बस फिर क्या था, कौंसिल में तूफ़ान सा आ गया। प्रतिपक्षियों ने हाय हाय मचा दी—प्रान्तिक भाषाओं के द्वारा शिक्षा देने के लिए कालेज! कालेज ही नहीं विश्वविद्यालय! असम्भव, असम्भव, असम्भव! इस सूबे के लोग दरजनों बोलियाँ बोलते हैं। हिन्दी-उर्दू का झगड़ा अलग ही है। कौन पढ़ेगा? किताबें कहाँ से आवेंगी? ख़र्च कहाँ है? हिन्दी-उर्दू के हाईस्कूल ही कहाँ हैं जहाँ से पढ़ कर लड़के इस कालेज में भर्ती होंगे?

सबसे अधिक विरोध गवर्नमेंट के मन्त्री श्रीयुत चिन्तामणि ने किया। शिक्षा-विभाग आपही की देख-रेख में है न। आपकी रूखी रूखी बातें सुन कर माननीय पण्डित हृदयनाथ कुँजरू से न रहा गया। वे खड़े हो गये। बोले—कालेज और विश्व-विद्यालय न सही, एक हाईस्कूल ही खोलिए। उसी में समस्त शिक्षा, मैट्रीकुलेशन तक, प्रान्तीय भाषा या भाषाओं के द्वारा दीजिए। किताबें मिल जायँगी, परीक्षक मिल जायँगे, उस्ताद मिल जायँगे। खोलिए तो। पहले ही से क्यों आप आकाश-पाताल की सुनाते हैं। ज़रूरत पड़ने पर, सब साधन प्रस्तुत हो जाते हैं। गवर्नमेंट ने देशी भाषाओं की उन्नति के लिए विशेष चेष्टा नहीं की। लोगों को सन्देह हो सकता है कि इसका कारण राजनैतिक होगा। आठवें दरजे तक सब विषयों की शिक्षा हिन्दी-उर्दू में देने का प्रबन्ध है ही। नवें और दसवें दर्जों में भी वैसा ही प्रबन्ध कर दीजिए। स्कूल खुल जाने पर वह चले तो भली भला। नहीं तोड़ दीजिएगा। चले तो और खोलिएगा। फिर किसी दिन कालेज भी खोलिएगा। तब तो उसमें पढ़नेवाले लड़के मिलेंगे ही।

इस पर ख़ूब भवति न भवति हुई। अधिकतर मेम्बरों को कुँजरूजी की तजवीज़ बहुत पसन्द आई। पर माननीय चिन्तामणिजी बेतरह बेज़ार हो उठे। जिन लोगों ने गवर्नमेंट पर उदासीनता-विषयक तथा और भी टेढ़े-मेढ़े इलज़ाम लगाये थे उनको आपने बड़ी कड़ी बातें सुनाईं। कुँजरूजी की भी तजवीज़ को आपने काँटों से घिरी हुई बताया। बोले, मालवीयजी से तो अपने विश्व-विद्यालय में हिन्दी में उच्च शिक्षा दिला लीजिए, फिर गवर्नमेंट से उसके लिए कहिएगा। हिन्दी-उर्दू के झगड़े को फिर से न उभाड़िए। हाई-स्कूल में भी आपकी अभीष्ट शिक्षा देने में अनन्त बाधायें हैं। मैं ज़रूर प्रान्तीय भाषाओं के द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँची शिक्षा का विरोधी हूँ। इसके अनेक कारण हैं, जिन सबका उल्लेख मैंने यहाँ नहीं किया। देशी भाषाओं के द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध न करना, गवर्नमेंट की राजनैतिक चाल नहीं—इत्यादि इत्यादि और वग़ैरह वग़ैरह।

इस प्रकार कुँजरू महाशय की तजवीज़ के ख़िलाफ़ राय देनेवालों ने यथाशक्ति ख़ूब ही गर्जन, तर्जन और आस्फालन किया। पर सब व्यर्थ। गवर्नमेंट ने हार खाई। ३८ मेम्बरों ने तजवीज़ के पक्ष में राय दी और केवल २४ ने विपक्ष में। फल यह हुआ कि कुँजरूजी की तरमीम से संशोधित हुआ ठाकुर मानकसिंहजी का प्रस्ताव, बहुमत के आधार पर, "पास" हो गया। सो अब एक ऐसा हाईस्कूल खुलना चाहिए जिसमें मैट्रिकुलेशन तक समस्त शिक्षा अपने प्रान्त ही की भाषाओं में दी जाय। देखना है, ऐसा स्कूल खुलता भी है या नहीं, क्योंकि सरकार के ख़ज़ाने में ख़र्च की कमी है।

३—साहित्य से सत्य का बहिष्कार।

कहा जाता है कि सत्य का ही रूप स्पष्ट करने के लिए साहित्य की सृष्टि होती है। काव्य, विज्ञान, इतिहास तथा दर्शन-शास्त्र सत्य ही की खोज में लगे रहते हैं। यह सच है कि भिन्न भिन्न शास्त्र भिन्न भिन्न पथों का अवलम्बन करते हैं। यही कारण है कि इन शास्त्रों के कार्य-क्षेत्रों में भिन्नता रहती है। काव्य में कभी कभी इतिहास के विरुद्ध बातें पाई जाती हैं। परन्तु इसका कारण उद्देश्य की भिन्नता है। ऐतिहासिक तथ्य की ओर कवि भले ही ध्यान न दे क्योंकि वह सर्वकालीन सत्य की खोज करता है, परन्तु वह अपने काव्य में मिथ्या को आश्रय नहीं देगा। जो लोग उपन्यास तथा आख्यायिकाओं को कल्पना-प्रसूत समझ कर मिथ्या मान लेते हैं वे भूल में हैं। उपन्यास में कवि अवश्य एक कल्पित समाज का चित्र खींचता है, परन्तु उस चित्र की सभी बातें ऐसी होती हैं कि वे मनुष्य-मात्र में घट सकती हैं। अतएव वह मिथ्या नहीं। सहस्त्ररजनीचरित्र के समान तूल तबील क़िस्सों में अलौकिक और अतिरञ्जित बातों का जमघट रहता है। परन्तु उनके भी भीतर हम मनुष्यत्व का सच्चा स्वरूप देख सकते हैं। विज्ञान इतिहास नहीं। विज्ञान में मनुष्य-समाज का वर्णन नहीं रहता, उनमें प्राकृतिक अनन्त सत्यों का दिग्दर्शन कराया जाता है। अतएव यदि कोई विज्ञान में ऐतिहासिक तत्त्वों का अभाव देख कर उन्हें मिथ्या कह बैठे तो उसकी बात उपेक्षणीय ही होगी। हमारे कहने का मतलब यह है कि यदि हम किसी की कृति में सत्य का स्वरूप देखना चाहें तो हमें उस ग्रन्थ के ध्येय का अनुगमन करना चाहिए। हम इसी दृष्टि से हिन्दी-साहित्य की एक बार पर्यालोचना करना चाहते हैं।

सबसे पहले हम सामयिक पत्र और पत्रिकाएँ ही लेते हैं। सामयिक पत्रों का काम है कि देश में जो बातें हो रही हैं उनकी सच्ची ख़बरें वे प्रकाशित करें और उन पर अपनी सच्ची सम्मति दें। यदि कोई लेखक किसी की अनुचित प्रशंसा अथवा निन्दा करता है तो वह सत्य का बहिष्कार करता है। आज-कल हिन्दी के सामयिक पत्रों में राजनैतिक विषयों की ख़ूब छान बीन की जाती है। परन्तु एक ही विषय पर दो पत्र दो तरह की बातें कहते हैं। तब क्या हम कह सकते हैं कि इनमें से किसी एक ने झूठी ख़बर दी है? सभी देशों में राजनैतिक और युद्ध-सम्बन्धी समाचारों में तो बिलकुल विपरीत बातें प्रकट की जाती हैं। एक कहता है कि अमुक देश ने अमुक देश को हरा दिया और दूसरा ठीक इसके विरुद्ध बात बतलाता है। इसी तरह कोई किसी दल के पक्ष में समाचार देता है तो कोई उसके विपक्ष में। इसी समाचार-वैपरीत्य को देख कर लन्दन विश्वविद्यालय में सर फिलिप गिब्स् ने सम्पादन-कला पर व्याख्यान देते हुए एक बार यह कहा था—आज कल सामयिक पत्रों का उत्तरदायित्व बढ़ गया है, परन्तु अब उसकी अवस्था बड़ी हीन हो गई है। सर्व-साधारण समाचार-पत्रों की ओर सन्दिग्ध दृष्टि से देखते हैं और उनका यह सन्देह करना अनुचित भी नहीं है। समाचार-पत्र से उन्हें सच्ची बातें सर्वदा नहीं मालूम होतीं। युद्ध के पहले लोगों का यह विश्वास था कि संवाद-दाता किसी भी घटना का सच्चा ही हाल देता है। परन्तु अब संवाद-दाता से जनता का विश्वास उठ गया है। यही बात गिलबर्ट चेस्टरटन नामक एक दूसरे विद्वान् ने भी कही है। आपने लिखा है कि सामयिक पत्रों में अधिकांश बातें मिथ्या ही होती हैं। इनकी अपेक्षा हमारी प्राचीन दन्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथाएँ सत्य का अधिक अनुसरण करती हैं। किसी घटना को अतिरञ्जित बनाने के लिए सामयिक पत्र के लेखक सत्य की अपेक्षा कल्पना का आश्रय अधिक ग्रहण करते हैं। फल यह होता है कि उससे सत्य का रूप बिलकुल विकृत हो जाता है।

विज्ञापनों में अतिशयोक्ति का इतना आश्रय लिया जाता है कि उनके सच्चे होने में लोगों को पूरा सन्देह हो जाता है। किसी प्रसिद्ध विज्ञापनदाता की यह राय थी कि सच्ची बात लिखने से ही विज्ञापन चित्ताकर्षक होता है। परन्तु कितने लोग इस बात का ख़याल करते हैं? विज्ञापन के द्वारा देश की समृद्धि की उन्नति होनी चाहिए। उनसे बड़ा लाभ यह होता है कि घर बैठे ही लोग देश के बड़े बड़े व्यापारियों से पत्र-व्यवहार कर माल मँगा सकते हैं। उन्हें अभिलषित वस्तु की प्राप्ति में झंझट नहीं उठानी पड़ती। हिन्दी के सामयिक पत्रों में शायद दोही चार ऐसे विज्ञापन हों जो सत्य की कसौटी पर अच्छी तरह कसे जा सकते हैं।

उपन्यासों में सत्य का प्रायः बहिष्कार किया जाता है। औपन्यासिक घटनाएँ कल्पित अवश्य होती हैं, परन्तु वे प्राकृतिक नियमों का व्यतिक्रमण नहीं कर जातीं। हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में मनुष्य के मनुष्यत्व का विकास प्रदर्शित नहीं किया जाता। उपन्यास-लेखक अपनी इच्छा के अनुकूल ही अपने पात्रों को कठपुतलियों के समान नचाया करते हैं और वे अपने पाठकों से यही आशा रखते हैं कि पाठक चुपचाप उनके पात्रों का नृत्यकौशल देखा करें। इससे उपन्यास में मिथ्या को प्रश्रय मिलता है। हिन्दी-उपन्यासों के पात्र सह्य और असह्य सभी प्रकार के कष्ट सह सकते हैं। संसार में सज्जनों पर विधाता की सदैव अनुकूल दृष्टि नहीं रहती। पर इन पात्रों के भाग्य-विधाता उनकी स्थिति को अनुकूल ही कर देते हैं। यदि कोई उपन्यास दुःखान्त हुआ है तो उसका कारण स्थिति की प्रतिकूलता नहीं, किन्तु पात्रों का दुर्भाग्य समझना चाहिए। स्वर्गीय बाबू देवकीनन्दन के समान कितने ही लोग अपने एक ही उपन्यास को सुखान्त और दुःखान्त दोनों कर डालते हैं! आपका कहना भी था कि जो दुःखान्त के प्रेमी हैं वे ग्रन्थ के अन्तिम दो पृष्ठ फाड़ डालें। सुखान्त दुःखान्त हो जायगा। विधाता के विधान का फ़ैसला दो ही पृष्ठों में कर दिया गया। हिन्दू-मात्र पूर्व जन्म पर विश्वास करते हैं। उनका ख़याल है कि विधाता निरङ्कुश नहीं है। मनुष्य अपने ही कृत्यों का फल भोगता है। पर हिन्दी के उपन्यासकार इसके क़ायल नहीं। एक ही कृत्य के लिए वे चाहें तो किसी को स्वर्ग दे सकते हैं या नरक में ढकेल सकते हैं। मानव-स्वभाव की गरिमा का ज़रा भी ख़याल न रख किसी के चरित्र को कालुष्यपूर्ण बता कर उस पर पूरा अत्याचार किया जाता है। चरित्र का उत्थान और पतन बिलकुल साधारण बात है। यही हिन्दी के उपन्यासों का मिथ्या अंश है।

हिन्दी में ऐतिहासिक ग्रन्थों का एक प्रकार से अभाव ही है। जो दो चार ग्रन्थ हैं उनमें लेखक अपनी धारणा और संस्कार के कारण सत्य का अनुसरण नहीं कर सके हैं। इतिहास में लेखक को ज़रा भी पक्षपात नहीं करना चाहिए। उसमें सहानुभूति होनी चाहिए। जिनका हृदय बिलकुल स्वच्छ रहेगा वही इतिहास का स्वच्छ स्वरूप देख सकेंगे। अभी तो इतिहास में भी सत्य का बहिष्कार किया जाता है।

४—प्राचीन स्मारकों और ग्रन्थों की रक्षा।

भारतवर्ष में प्राचीनकाल के कितने ही मन्दिरों के ध्वंसावशेष हैं। स्तूप और अन्य स्मारकों का भी अभाव नहीं। ऐतिहासिक दृष्टि से इनका महत्त्व कम नहीं है। इसी लिए भारतीय पुरातत्त्व विभाग इनकी रक्षा किया करता है। परन्तु पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारियों को छोड़ कर अन्य लोगों का ध्यान इनकी ओर कम है। वोगल साहब ने एक बार लिखा था कि सिर्फ़ ऐतिहासिक दृष्टि से ही इन स्मारकों की रक्षा करना वाञ्छनीय नहीं है, किन्तु और भी कई कारण हैं जिनसे सरकार का यह कर्तव्य है कि वह इन मन्दिरों और मसजिदों की रक्षा और इनका जीर्णोद्धार करे। प्राचीनकाल के ऐसे स्मारक किसी न किसी धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं। अतएव जब सरकार उनकी देख भाल किया करती है तब सर्वसाधारण को प्रसन्नता होती ही है। जो सरकारी कर्मचारी ऐसे स्मारकों की अवहेलना करते हैं वे यदि विचार करें तो उन्हें मालूम हो जायगा कि राजनैतिक दृष्टि से भी ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मारकों की रक्षा अभीष्ट है। एक बात और भी है—वह यह कि इन्हीं स्मारकों के कारण कुछ स्थान ऐसे प्रसिद्ध हो गये हैं कि प्रतिवर्ष दूर दूर से लोग उन्हें देखने के लिए आया करते हैं।

प्राचीन-काल में मन्दिरों के जीर्णोद्धार करने की प्रथा थी। मुसलमान बादशाह भी इसकी ओर सर्वथा उदासीन नहीं थे। इतिहास में कई एक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनसे मालूम होता है कि मुसलमान बादशाहों ने महत्त्वपूर्ण स्मारकों के पुनरुद्धार की चेष्टा की। दिल्ली के सिंहासन पर जब अकबर द्वितीय (१८०६-१८३७) आसीन था तब १८२९ में कुतुब मीनार की मरम्मत की गई। उसके बहुत पहले सुलतान फ़िरोजशाह तुग़लक ने अपने पूर्ववर्ती सम्राटों के बनाये हुए स्मारकों और इमारतों की रक्षा के लिए बड़ी चेष्टा की।

कभी कभी धार्मिक द्वेष के कारण ऐसे कितने ही स्थान नष्ट भी कर दिये गये। आज-कल भी धर्म का ख़याल कर यदि कोई यह कहने लगे कि ईसाई धर्मावलम्बियों का यह कर्तव्य नहीं है कि वे हिन्दू अथवा मुसलमानों के धार्मिक स्थानों की रक्षा करें तो हमें कहना पड़ेगा कि ऐसे मनुष्य के विचार बड़े सङ्कुचित हैं। ये स्मारक मानव-प्रतिभा के द्योतक हैं। कला का सौन्दर्य धार्मिक भाव से आच्छन्न होने पर भी सभी देशों और सभी सम्प्रदायों के अनुयायियों के उपभुज्य हो सकता है। कला में सदैव मानव-जाति का सच्चा स्वरूप विद्यमान रहता है। अतएव सभी प्रकार से भारतीय स्मारकों की रक्षा और पुनरुद्धार इष्ट है।

भारतवर्ष में सर्वसाधारण धार्मिक कृत्यों के लिए ख़र्च करने से नहीं हिचकते। जो जिस सम्प्रदाय का अनुयायी होता है वह उसकी गौरव-रक्षा के लिए बहुत कुछ दे डालता है। परन्तु अब साम्प्रदायिक भावों को छोड़ कर कला की उच्च भावना से प्रेरित हो ऐसे कामों में हाथ बटाना चाहिए।

जो बात इन प्राचीन स्मारकों के विषय में कही गई है वही प्राचीन ग्रन्थों के भी विषय में उपयुक्त है। हमारे देश में ऐसे दो-चार पुस्तकालय हैं जहाँ प्राचीन ग्रन्थ सुरक्षित रक्खे जाते हैं। कहीं कहीं उनकी खोज भी की जाती है। सरकार ऐसे कामों के लिए सहायता भी देती है। परन्तु सर्व-साधारण का अनुराग इस ओर कम है। यदि सभी लोगों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो जाय तो साहित्य का बहुत उपकार हो। पता लगाने से कितने ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की खोज लग सकती है। जिनके पास ऐसे ग्रन्थ हों उन्हें उनको सुलभ कर देना चाहिए। दूसरे लोग दूसरे प्रकार की भी सहायता दे सकते हैं। अर्थ-कृच्छ्रता के कारण भी प्राचीन ग्रन्थों की खोज में बाधा आती है। जो धनी हैं वे धन से ही सहायता दे सकते हैं। मतलब यह कि जाति के गौरव के लिए यह सर्वथा उचित है कि प्राचीन स्मारकों और ग्रन्थों के पुनरुद्धार के लिए पूरी चेष्टा की जाय।

५—जापान में निस्सहायों की शिक्षा का प्रबन्ध।

हमारे देश में शिक्षा का प्रचार धीरे धीरे बढ़ रहा है। शिक्षितों में अधिकांश लोग मध्यम श्रेणी के ही हैं। जो लोग धन और ऐश्वर्य से मण्डित हैं उन्हें शिक्षा से अनुराग नहीं और जो दारिद्र्य से ग्रस्त हैं उनके लिए शिक्षा के साधन सुलभ नहीं। हमारी सरकार शिक्षा-वृद्धि के लिए बड़ा उद्योग कर रही है। जगह जगह नये नये विश्वविद्यालय खोल रही है। उनके लिए उपयुक्त भवन बनवाने में वह लाखों रुपये ख़र्च करने के लिए तैयार है। बड़े बड़े विद्वानों को मोटी मोटी तनख़्वाहें देकर अध्यापक-पद पर नियुक्त करने में सङ्कोच नहीं करती। परन्तु भारतवर्ष के अधिकांश प्रजा गाँवों में ही रहते हैं। उसे विज्ञान और साहित्य की उच्च शिक्षा से कम लाभ है। लोग तो यही चाहते हैं कि उनके लिए कम ख़र्च में ही ऐसे स्कूल खोल दिये जायँ जहाँ वे अपने काम के लायक कुछ बातें सीख सकें। अभी जो ग्राम्य पाठशालाएँ हैं वे एक तो काफ़ी नहीं हैं और फिर उनसे अधिक लाभ भी नहीं है। उनका पाठ्य-क्रम भी ऐसा है कि उससे किसानों की ज्ञान-वृद्धि नहीं होती। किसानों के सिवा जो निस्सहाय दरिद्र हैं उनके लिए तो कहीं भी सुभीता नहीं है। कितने ही भिक्षा-वृत्ति से जीवन-निर्वाह करते हैं और जिनका पेट भीख माँगने से भी नहीं भरता वे सभी प्रकार के दुष्कर्म करते हैं। अन्य देश ऐसे लोगों की शिक्षा की ओर उदासीन नहीं हैं। हाल में ही जापान के शिक्षा-विभाग ने ऐसे लोगों की शिक्षा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए जैसा प्रबन्ध करने का विचार किया है उसका उल्लेख नीचे किया जाता है।

जापान में स्कूल जाने योग्य लड़कों की संख्या ८०,००,००० है। उनमें तीस हज़ार दरिद्रता के कारण स्कूल जाही नहीं सकते। अस्सी हज़ार तभी स्कूल में हाज़िर हो सकते हैं जब उन्हें खाने के लिए मुफ़् भोजन दिया जाय और पढ़न के लिए मुफ़् किताबें दी जायँ। इनके सिवा चालीस हज़ार ऐसे हैं जो ग़रीबी के कारण बीच ही में स्कूल छोड़ देते हैं। इस प्रकार एक लाख पचास हज़ार लड़कों को सरकारी सहायता की पूरी ज़रूरत है। यदि सरकार उनकी सहायता करे तो वे किसी तरह शिक्षित हो सकते हैं। नहीं तो उन्हें आजीवन शिक्षा से वञ्चित रहना पड़ेगा। अब जापान की सरकार ने यह सोचा है कि ऐसे लड़कों के लिए जगह जगह स्कूल खोल दिये जायँ। इस काम के लिए ४९ लाख रुपये की ज़रूरत होगी। आशा है कि थोड़े ही दिनों में शिक्षा-विभाग का यह विचार कार्य-रूप में परिणत हो जायगा।

६—डाक्टरी विद्या में चमत्कार।

गत योरोपीय युद्ध में डाक्टरों ने कमाल किया है। जिन सैनिकों के चेहरे आहत होने से बिलकुल कुरूप हो जाते थे उनको सुधार कर ज्यों का त्यों कर देने में उन्होंने अपनी असाधारण योग्यता का परिचय दिया है। जो सैनिक युद्ध में आहत होते थे उनमें से अनेकों के नाक-कान जड़ से उड़ जाते थे, अनेकों की डाढ़ें टूट जातीं और गाल छिन्न भिन्न हो जाते थे। इस प्रकार घायल हो जाने से उनके मुख की आकृति भयङ्कर रूप से विद्रूप हो जाती थी। ऐसे घायल सैनिकों के मुख के भिन्न भिन्न अवयवों को शस्त्र-क्रिया के द्वारा दुरुस्त कर देने में डाक्टरों ने अपनी विलक्षण बुद्धि का केवल परिचय ही नहीं दिया है, किन्तु उन्होंने अपने अनवरत परिश्रम से स्वयं डाक्टरी-विद्या को समुन्नत कर दिया है। यदि इस सम्बन्ध में वे अपने चमत्कार का परिचय न देते तो आज लाखों सैनिक अपने जीवन को भार-स्वरूप समझते। अगणित सैनिक इस युद्ध में इस प्रकार घायल हुए थे कि उनका चेहरा देख कर उन्हें कोई पहचान भी न सकता था। यही नहीं, किन्तु देखनेवाला उनकी ओर निगाह उठाने का साहस तक न कर सकता था। ऐसे ही सैनिकों के मुख के भिन्न भिन्न अवयवों को ज्यों का त्यों कर देने में डाक्टरों ने अद्भुत कारगुज़ारी कर दिखाई है। निस्सन्देह, इस युद्ध की बदौलत डाक्डरी विद्या को अनायास ही वह लाभ हुआ है जो उसे शायद सौ वर्ष के अनुभव के बाद प्राप्त होता।

मेजर गिलिस ने, जो युद्ध-काल में पूर्वोक्त प्रकार की शस्त्र-क्रिया में प्रसिद्धि पा चुके हैं, एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें उन्होंने अपने तथा अपने सहयोगियों के कार्यों का उल्लेख विस्तार से किया है। उसके पढ़ने से पता चलता है कि उन्होंने और उनके सहकारियों ने शस्त्रक्रिया के द्वारा कैसे अभूतपूर्व कार्य किये हैं। यदि किसी की नाक या कान कट जाता है तो डाक्टर लोग केवल कृत्रिम नाक या कान लगा कर मुख का दोष कुछ कुछ दूर कर देते हैं, परन्तु इस महायुद्ध की बदौलत इस सम्बन्ध में ऐसी उन्नति हो गई है कि मुख के भिन्न भिन्न अङ्ग शस्त्र-क्रिया द्वारा ज्यों के त्यों कर दिये जाते हैं, कृत्रिम उपायों की योजना नहीं होती। निस्सन्देह डाक्टरी विद्या के इस नये ज्ञान से मानव-जाति का ख़ासा उपकार हुआ है।

पुस्तक-परिचय।

१—आर्य जाति की प्राचीनता।

अभी तक आर्यों के मूलस्थान का निर्णय निश्चयपूर्वक नहीं हुआ है। इस सम्बन्ध में विद्वानों के कई मत हैं। पाश्चात्य विद्वानों का बहुमत अध्यापक मैक्स मूलर के पक्ष में है। अध्यापक महोदय ने मध्य एशिया को ही आर्यों का मूलस्थान निश्चित किया है। परन्तु आपका मत सर्व-सम्मत न हुआ और इस विषय की खोज में विद्वान् लोग अभी तक प्रयत्नशील हैं। पूना के श्रीयुत पावगीजी ने हाल में ही एक पुस्तक लिखी है। आर्यों के मूलस्थान-सम्बन्धी मुख्य मुख्य मतों को अपनी पुस्तक में भ्रम-पूर्ण सिद्ध कर आपने आर्यों का मूल-स्थान 'सप्तसिन्धु देश' निश्चित किया है। इस सम्बन्ध की अब एक और नई पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसे देहरादून के पण्डित भगवानदास पाठक ने अँगरेज़ी में लिखा है। आपने अपनी इस पुस्तक में केवल अपने विचारों का ही संक्षेप में उल्लेख किया है। आपने यह निश्चय किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि आर्य लोग बहुत पहले उत्तरध्रुव देश के किसी द्वीप में निवास करते थे। आपकी विचार-धारा का अवलम्ब एक-मात्र नक्षत्र-विद्या है। वेदों तथा तत्सम्बन्धी दूसरे प्राचीन ग्रन्थों एवं अन्यान्य पुस्तकों में जहाँ कहीं नक्षत्र आदि का उल्लेख हुआ है, उसी की गणना कर आपने अपनी इस Antiquity of Aryan Race नामक अँगरेज़ी पुस्तक में अपनी कल्पना की भित्ति स्थापित की है। आपने निश्चय किया है कि आर्य लोग उत्तरध्रुव देश के किसी द्वीप में ईसा के कोई १,२०,३६४ वर्ष पूर्व निवास करते थे। और जब वहाँ के जल-वायु में घोर परिवर्तन उपस्थित होने लगा तब वे वहाँ से दक्षिण को हटने को बाध्य हुए। इस तरह वे क्रमशः ईसा के कोई ८,७०० वर्ष पूर्व भारतवर्ष में, यमुना नदी के किनारे आ बसे। आपकी इस पुस्तक का नक्षत्र-विद्या से घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतएव इस विषय का ज्ञाता ही इसके सम्बन्ध में उचित सम्मति दे सकता है। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि आपके मत से लोकमान्य तिलक के सिद्धान्त की ख़ासी पुष्टि होती है। यह पुस्तक अपने ढङ्ग की पहली है और इस विषय के अध्ययन करनेवालों के बड़े काम की है। इसका मूल्य २) है और झंडा स्ट्रीट, देहरादून के पते पर लेखक को लिखने से यह मिलती है।

२—राष्ट्रीय साहित्य।

असहयोग आन्दोलन की बदौलत इस समय राष्ट्रीय-साहित्य की ख़ासी सृष्टि हो रही है। यद्यपि इस सृष्टि में अभी तक एक भी ऐसी रचना दृष्टिगोचर नहीं हुई है जिसकी गणना स्थायी साहित्य में की जाय, तथापि इस सृष्टि की वृद्धि से हम उसकी सम्भावना की आशा निकट भविष्य में कर सकते हैं। इस प्रकार की जो नई पुस्तकें हाल में प्रकाशित हुई हैं उनमें से सात पुस्तकें हमारे पास समालोचनार्थ आई हैं। इनमें एक पुस्तक का नाम **सत्याग्रह और असहयोग** है। इसे आयुर्वेदाचार्य श्रीयुत पण्डित चतुरसेनजी शास्त्री ने लिखा है। यद्यपि आप सत्याग्रह और असहयोग के अनुयायी नहीं हैं, तथापि आप उसके भक्त अवश्य हैं। भक्ति के उद्रेक में ही आपने इस पुस्तक की रचना की है। इसके पहले खण्ड में सत्याग्रह और दूसरे खण्ड में असहयोग की विवेचना की गई है। सत्याग्रह-खण्ड में सत्याग्रह की व्याख्या करने के बाद ऐतिहासिक पुरुषों के व्यक्तिगत सत्याग्रह के दृष्टान्त दिये गये हैं। असहयोग-खण्ड में अँगरेज़ी शासन के सहयोग एवं तज्जनित अत्याचारों का परिचय दिया गया है। इसके सिवा असहयोग की सिद्धि के उपाय भी बताये गये हैं। पुस्तक में विषय का साङ्गोपाङ्ग वर्णन करने की चेष्टा यथाशक्ति की गई है। इसकी भाषा दोषपूर्ण तथा विचार भी यत्र तत्र शिथिल और नीरस हैं। पुस्तक सजिल्द और सुन्दर छपी है। सादी जिल्द का मूल्य १॥।) है। हिन्दी-गौरव-ग्रन्थ-माला का यह २४ वाँ ग्रन्थ है। पता—गान्धी हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, कालबा देवी, बम्बई। दूसरी पुस्तक का नाम **गान्धी दर्शन** है। इसे श्रीयुत चन्द्रराज भण्डारी 'विशारद' ने लिखा है। इसके पहले खण्ड में महात्मा गान्धी के जीवन तथा उनके कार्यों का परिचय संक्षेप में दिया गया है, दूसरे खण्ड में सत्याग्रह, असहयोग, पाश्चात्य-सभ्यता आदि कई एक विषयों के सम्बन्ध में महात्माजी के विचारों का उल्लेख किया गया है। अन्त में महात्माजी के व्यक्तिगत विचारों तथा उनके सम्बन्ध के संसार के कुछ प्रसिद्ध लोगों के मतों का उल्लेख है। पुस्तक साधारणतया अच्छी है। यह अजमेर के गान्धी-हिन्दी-मन्दिर की पहली प्रतिमा है और वहीं से १) रुपये में मिलती है। तीसरी पुस्तक का नाम **सप्तर्षि** है। इसे श्रीयुत शिवदास गुप्त 'कुसुम' ने लिखा है। इसमें लोकमान्य तिलक, महात्मा गान्धी, लाला लाजपत राय, मालवीयजी, पण्डित मोतीलाल नेहरू, अली-बन्धु और देशबन्धु दास आदि महापुरुषों की संक्षिप्त जीवनियाँ लिखी गई हैं। इसका मूल्य ॥।=) है। पता—हिन्दी-ग्रन्थ-भण्डार कार्यालय, काशी है। चौथी और पाँचवीं पुस्तक के नाम क्रमपूर्वक **देशबन्धु चितरञ्जन-दास** और **पञ्जाब की वेदना** हैं। चौथी पुस्तक में दास बाबू का जीवन-चरित तथा उनकी एक वक्तृता एवं उनके चार लेखों का संग्रह अन्त में दे दिया गया है। इसे श्रीयुत देवनारायण द्विवेदी ने लिखा है। मूल्य ।=) है। पञ्जाब की वेदना को भारतमित्र के भूतपूर्व सहकारी सम्पादक श्रीयुत बदरीनारायणसिंह ने लिखा है। पञ्जाब के मार्शल ला के सम्बन्ध में लालाजी ने कलकत्ते की स्पेशल कांग्रेस तथा छात्र-परिषद् में जो अपने विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट किये थे उन्हीं का सङ्कलन इसमें हुआ है। पुस्तक के अन्त में लालाजी के अन्यान्य विषयों के सम्बन्ध के विचार भी कुछ पृष्ठों में सन्निविष्ट कर दिये गये हैं। इसका मूल्य ॥) है। ये दोनों पुस्तकें आदर्श पुस्तक-माला, प्रयाग से मिलती हैं। छठी और सातवीं पुस्तकों के नाम राष्ट्रीय सन्देश और बाबू अरविन्द घोष के पत्र हैं। यह राष्ट्रीय सन्देश तीसरी बार छपा है। स्वामी रामतीर्थ के कुछ चुने हुए अँगरेज़ी लेखों को हिन्दी में अनुवाद कर श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा ने इसका प्रकाशन किया है। आदि में स्वामीजी का परिचय तथा अन्त में स्वर्गीय माधव मिश्र द्वारा स्वामीजी पर लिखित एक कविता भी सङ्कलित है। खेद है कि अरोड़ाजी ने मिश्रजी का नाम न देकर उसे एक बिहारी के नाम से छापा है। इसका मूल्य ॥।) और पता—भीष्मपण्ड ब्रादर्स, पटकापुर, कानपुर है। अरविन्द बाबू के पत्र वही पत्र हैं जो उन्होंने अपनी स्त्री को बड़ोदा से लिखे थे। और ये अलीपुरवाले बम के मुक़द्दमे में उनके विरुद्ध उपयोग में लाये गये थे। इनको श्रीयुत पशुपाल वर्मा ने हिन्दी में अनुवाद किया है और यह ।) में श्रीयुत माँगीलालजी आर्य, बड़ा सराफ़ा, इन्दौर को लिखने पर मिलती है।

३—चतुर्वेदीजी की चार पुस्तकें।

पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी हिन्दी के सुलेखक हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनों में जो निबन्ध और भाषण आपने समय समय पर पढ़े थे उन्हीं को पुस्तकाकार छपवा कर हिन्दी-प्रेमियों के लिए आपने सुलभ कर दिया है। इनमें से (१) अनुप्रास का अन्वेषण (२) सिंहावलोकन और (३) हिन्दी लिङ्गविचार बम्बई के सम्मेलन में पढ़े गये थे। पहली और दूसरी पुस्तक का मूल्य चार चार आना है और तीसरी का तीन आना है। चौथी पुस्तक है आपका वह भाषण जो आपने सभापति की हैसियत से विहार प्रादेशिक साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर पढ़ा था। इसका मूल्य ।) है। आपकी ये चारों पुस्तकें छोटी होने पर भी काम की हैं। मिलने का पता—चतुर्वेदी भोलानाथ शर्मा, ६० सीताराम घोष स्ट्रीट, कलकत्ता।

४—उपन्यास और नाटक।

(१) बाबू ललिताप्रसाद पेंशनर, नम्बर १६ नारियल गली, लखनऊ ने ललित मोहिनी नाम का एक उपन्यास समालोचनार्थ भेजने की कृपा की है। उपन्यास चार भागों में समाप्त हुआ है। प्रत्येक भाग में लगभग १०० पृष्ठ हैं। ग्रन्थकार के शब्दों में इस उपन्यास में "सच्चा प्रेम—जादूगरी के दिलकश नज़ारे—अय्यारी और तिलस्मात के हैरत अङ्गेज़ करश्मे—ईश्वर के नाम की महिमा और योगबल का प्रभाव निहायत मोअस्सर पैराये में दिखाया है।" जो ऐसे उपन्यासों के प्रेमी हैं उन्हें एक बार इसे पढ़ कर देखना चाहिए कि ग्रन्थकार अपने उद्देश में कितना सफल हुए हैं।

(२) राई का पर्वत—यह एक गुजराती नाटक का हिन्दी में अनुवाद है। मूल-लेखक हैं साक्षर श्रीरमणभाई महीपतिराम नीलकंठजी और अनुवादक हैं श्रीगिरिधर शर्मा। झालरापाटन की हिन्दी-साहित्य-सभा ने इसका प्रकाशन किया है। अनुवादक महोदय का कथन है कि यह नाटक क्या, उत्तम उत्तम भावनाओं का आगार है और ललित कल्पनाओं का ख़ज़ाना है। इसमें स्त्री-जाति का महत्त्व, सचाई का महत्त्व और न्याय-परायणता का अच्छा चित्र खींचा गया है। अनुवादक का यह कथन अत्युक्ति नहीं है। मूल्य १॥।) है।

(३) काशी की हिन्दी-पुस्तकमाला की १३ वीं संख्या गजरा है। इसमें दस छोटी छोटी कहानियों का सङ्ग्रह किया गया है। सभी कहानियाँ पढ़ने योग्य हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी है। मूल्य ॥।≡)

(४) अञ्जनादेवी—इसको विद्यारत्न पण्डित रामस्वरूप शर्मा शार्दूल ने लिखा है। जगदीश-पुस्तक-भण्डार, लुहारी दरवाज़ा, लाहोर ने इसका प्रकाशन किया है। लेखक वैयाकरण हैं। आपको शाही लकड़हारा नामक उपन्यास पसन्द नहीं है, क्योंकि उसमें चरित्र-चित्रण नहीं है। अतएव इस अभाव को दूर करने के लिए आपने यह उपन्यास लिखा है। जो मानव-चरित्र-विश्लेषण में पटु हैं उन्हें एक बार इसका अवलोकन करना चाहिए। हमारी समझ में यह उपन्यास बिलकुल मनोरञ्जक नहीं है, इसलिए चरित्र-चित्रण के प्रेमी ही इसका पाठ करें। मूल्य ॥≈) है।

Printed and Published by Apurva Krishna Bose, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भाग २३, खण्ड १] एप्रिल १९२२—चैत्र १९७८ [संख्या ४, पूर्ण संख्या २६८

हिन्दू-साहित्य में अध्यात्मवाद।

मनुष्य ने संसार से अपना जो सम्बन्ध स्थापित किया है वह उसके धार्मिक विश्वासों से प्रकट होता है। ज्यों ज्यों उसके धार्मिक विश्वास परिवर्तित होते जाते हैं त्यों त्यों संसार से उसका सम्बन्ध भी बदलता जाता है। धार्मिक विश्वास में शिथिलता आने से उसका सांसारिक जीवन भी शिथिल हो जाता है और उसकी यह शिथिलता उसके सभी कृत्यों में दिखलाई देती है। साहित्य में मनुष्यों के धार्मिक परिवर्तन का प्रभाव साफ़ लक्षित हो जाता है। यही नहीं, किन्तु उससे साहित्य का स्वरूप भी बदल जाता है। धर्म से साहित्य का अभेद्य सम्बन्ध है। डाक्टर बीचर नामक एक विद्वान् ने एक बार कहा था—प्रत्येक भाषा और साहित्य का एक धर्म होता है। ईसा-धर्मावलम्बी योरप के सभी सभ्य देशों की भाषा का धर्म ईसाई मत का ही अवलम्बन करता है। वहाँ ईसाई धर्म ही प्रत्येक देश और जाति की विशेषता को ग्रहण कर साहित्य में विद्यमान है। बीचर साहब के इस मत का समर्थन कितने ही विद्वानों ने किया है। अब यह सर्व-सम्मत सिद्धान्त हो गया है कि जिस जाति का जो धर्म है उस जाति की भाषा, साहित्य और सभ्यता उसी धर्म के अनुकूल होगी। इतना ही नहीं, किन्तु भाषा के प्रत्येक शब्द, रचना-शैली, अलङ्कार के समावेश और रस के विकाश में भी उसी धर्म की ध्वनि श्रुति-गोचर होगी। साहित्य से धर्म पृथक्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं किया जा सकता। किसी भी काल का साहित्य हो, उसमें तत्कालीन धार्मिक अवस्था का ही चित्र अङ्कित होगा।

हिन्दू-साहित्य में धर्म के तीन स्वरूप लक्षित होते हैं—प्राकृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक। हिन्दू-साहित्य के आदिकाल में धर्म की प्राकृतिक अवस्था विद्यमान थी। मध्ययुग में नैतिक अवस्था का आविर्भाव हुआ, और जब भारतीय समाज में धार्मिक उत्क्रान्ति हुई तब, साहित्य में नवोत्थित काल उपस्थित होने पर, आध्यात्मिक भावों की प्रधानता हुई।

धर्म की पहली अवस्था में प्रकृति की ही ओर हमारा लक्ष्य रहता है। तब हम बाह्य जगत् में ही रहते हैं। उस समय हमारी साधना का केन्द्रस्थल प्रकृति में ही स्थापित होता है। इस अवस्था में भी तन्मयता की ओर भारतीय कवियों का लक्ष्य रहता है। सभी देशों के प्राचीन साहित्य में प्रकृति की उपासना विद्यमान है। प्राचीन ग्रीक-साहित्य में प्राकृतिक शक्तियों को दिव्य स्वरूप देकर उनका यशोगान किया गया है। परन्तु उसमें हिन्दू-जाति की तन्मयता नहीं है। प्रकृति भारत के लिए आत्मीय थी। पशुपक्षी, फूल-पत्ते और नदी-पहाड़ सभी से उनकी घनिष्ठता थी। हिन्दू साधक विश्वदेवता के साथ एक होकर रहना चाहते थे। विश्व के सभी पदार्थों में भगवान् की विभूति का दर्शन कर हिन्दू-जाति ने गङ्गा और हिमाचल की पूजा की, और मनुष्य को देवता के रूप में तथा देवता को मनुष्य के रूप में देखा। ग्रीक-साहित्य में एस्काइलीस, सफ़ोक्लीस, इरोपिडिस, अरिस्टोफ़ीनिस आदि की रचनाओं में भावुकता है। पर वह इस कोटि की नहीं। उनकी दौड़ दैव पर्यन्त थी। वे एक अलक्षित शक्ति की विद्यमानता स्वीकार करते थे। परन्तु उनका लक्ष्य एक-मात्र इहलोक था। हिन्दू की दृष्टि में उनकी उपासना सात्त्विक नहीं, राजसिक थी। हिन्दू के मतानुसार कला के तीन आदर्श हो सकते हैं। जिससे केवल प्राणरक्षा हो वह तामसिक है। जब कला अपने ऐश्वर्य और शक्ति के द्वारा समस्त समाज पर प्रभुत्व स्थापित कर लेती है और केवल सौन्दर्य की सृष्टि की ओर उसका लक्ष्य रहता है तब वह राजसिक होती है। सात्त्विक कला में अनन्त के लिए सान्त की व्याकुलता रहती है। तब मनुष्य प्रकृति को जड़ नहीं समझता। वह उसको अपने जीवन में ग्रहण करना चाहता है, उसको रसरूप में परिणत करना चाहता है। प्रकृति के सात्त्विक उपासकों के लिए प्रकृति दयामयी और प्रेममयी रहती है। उससे मनुष्य का सम्बन्ध केवल ज्ञान द्वारा स्थापित नहीं होता, यथार्थ सम्बन्ध-सूत्र प्रेम होता है। ग्रीक-साहित्य में जिन देवताओं की सृष्टि की गई है वे मानव जाति से सर्वथा पृथक् थे। परन्तु हिन्दू-देवता मानव जाति से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते थे। वैदिक ऋषियों ने विश्व के प्रति जैसी प्रीति प्रकट की है उससे यही मालूम होता है कि स्वर्ग की अपेक्षा पृथ्वी ही उनके लिए अधिक सत्य थी। एक स्थान में पृथ्वी को सम्बोधन कर उन्होंने कहा है—'हे पृथ्वी, तुम्हारे पहाड़, तुम्हारे तुषारावृत पर्वत, तुम्हारे अरण्य हमारे लिए सुखकर हों'। दूसरे स्थान में उन्होंने कहा है कि—'भूमि हमारी माता है और हम पृथ्वी के पुत्र हैं।' फिर लिखा है—'हे माता भूमि, तुम्हारा ग्रीष्म,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी वर्षा, तुम्हारा शरद्, हेमन्त, शिशिर, वसन्त, तुम्हारा सुविन्यस्त ऋतु-संवत्सर, तुम्हारे दिवा और रात्रि, तुम्हारे वक्ष की दुग्ध-धारा के समान क्षरित हो, इन उद्गारों से विश्व-प्रकृति के साथ उनका साहचर्य प्रकट होता है।

सभ्यता के विकास से प्रकृति के साथ यह घनिष्ठता नहीं बनी रहती। क्रमशः जब मनुष्य इन्द्रियों से, मन से, कल्पना से और भक्ति से बाह्य प्रकृति का संसर्ग-लाभ कर लेता है तब वह उसके परिचय की अन्तिम अवधि तक पहुँच जाता है। तब एक-मात्र प्रकृति ही उसका आश्रय नहीं रह जाती। प्रकृति के भिन्न भिन्न स्वरूपों में वह सदैव अस्थिरता ही देखता है। प्रकृति के शक्ति-पुञ्जों में भी वह सम्पूर्णता नहीं उपलब्ध कर सकता। इससे उसको सन्तोष नहीं होता। फिर वह देखता है कि जिस चैतन्य-शक्ति का अनुभव उसने प्रकृति में किया वह उसके अन्तर्जगत् में भी विद्यमान है। अतएव अब उसका लक्ष्य अन्तर्जगत् हो जाता है। वह प्रकृति के स्थान में मनुष्य-समाज को ग्रहण करता है। यही धर्म की नैतिक अवस्था है। यह अवस्था उपस्थित होने पर कवियों ने मानव-जीवन में सौन्दर्य उपलब्ध करने का प्रयत्न किया। उन्होंने राम अथवा कृष्ण, सीता अथवा सावित्री के चरित्र में एक विचित्र प्रकार के सौन्दर्य का अनुभव किया। तब उन्होंने देखा कि बाह्य जगत् में सौन्दर्य का पूर्ण विकाश नहीं होता। जहाँ जीवन का प्रकाश पूर्ण मात्रा में विद्यमान है वहीं यथार्थ सौन्दर्य है। तब कला का लक्ष्य मुख्यतः जीवन ही है और निर्मलता ही सौन्दर्य है। पवित्र स्वभाव अधिक मनोमोहक है। रमणी-मूर्ति में मातृ-मूर्ति अधिक चित्त आकृष्ट करती है। पुरुषों में शौर्य, दया और दाक्षिण्य अधिक आदरणीय है। तब मनुष्य के इन्हीं गुणों की पराकाष्ठा दिखलाने के लिए आदर्श चरित्रों की सृष्टि होने लगी। प्रकृति को अन्त में गौण स्थान मिल गया। यदि वह है तो मनुष्य के लिए है। कुछ ने तो उसे मायाविनी समझ कर सर्वथा त्याज्य समझ लिया है।

मानव-चरित्र के विश्लेषण में कवियों और साधकों ने ज्यों ज्यों चरित्र की महत्ता देखी त्यों त्यों उन्होंने अन्तर्निहित शक्ति का अधिक अनुभव किया। उन्होंने यह अच्छी तरह देख लिया कि यदि इस शक्ति का पूर्ण विकाश हो जाय तो मनुष्य देवोपम हो जाता है। राम, कृष्ण, बुद्ध और ईसा के चरित्रों में उन्होंने एक ऐसी महत्ता देखी जो संसार में अतुलनीय थी। तब यही उनकी उपासना के केन्द्र हो गये। आज-कल हम लोगों के लिए ये चरित्र अतीतकाल के हो गये हैं। परन्तु मध्ययुग में कवि और कलाकोविद इनका प्रत्यक्ष अनुभव करते थे। हमारे कवियों और साधकों के विषय में जो दन्तकथाएँ प्रचलित हैं उनमें यही बात कही जाती है कि उन्होंने भगवान् से साक्षात्कार लाभ किया। यह मिथ्या नहीं है। यदि तुलसीदास और सूरदास राम और कृष्ण का दर्शन अपने अन्तःकरण में न करते तो उनकी रचनाओं में वह शक्ति भी न रहती जो है। दान्ते ने स्वर्ग और नरक का ऐसा वर्णन किया है कि मानों उसने सचमुच वहाँ की यात्रा की हो। उसके वर्णन में एक भी बात नहीं छूटने पाई है। प्रत्यक्ष दर्शन न सही, परन्तु प्रत्यक्ष अनुभव का यह अवश्य परिणाम है।

क्रमशः राम, कृष्ण, बुद्ध और ईसा के चरित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक जगत् में लीन होगये। संसार से पृथक् होकर उन्होंने भावजगत् में अक्षय स्थान प्राप्त कर लिया। जो सौन्दर्य और प्रेम की धारा उनके चरित्रों से उद्गत हुई थी वह मानव-समाज में फैल कर विस्तृत होगई। कबीर, चैतन्य, दादू, मीराबाई आदि वैष्णव कवियों ने अन्तर्निहित सौन्दर्य-राशि को प्रकट करने की चेष्टा की। उनकी आध्यात्मिक भावना का यह परिणाम हुआ कि अब प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्जगत् का रहस्योद्घाटन करने का प्रयत्न किया जाता है। आस्कर वाइल्ड ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है कि बाह्य सौन्दर्य उसको कितना ही मुग्ध क्यों न करे, वह सौन्दर्य के पीछे एक आत्मा को देखना चाहता है। संसार में जो सौन्दर्य आप्लावित है वह किसी एक ही स्थान में आबद्ध नहीं रह सकता। नीच और उच्च का भेद उसके लिए नहीं है। इसी लिए सभी स्थानों में उसकी खोज की जाती है। एक प्रसिद्ध विद्वान् का कथन है कि यदि यथार्थ वस्तु का संसर्ग इन्द्रिय और चैतन्य से हो सके, यदि हम स्वयं अपनी सत्ता और वस्तु-सत्ता के साथ प्रत्यक्ष संयोग-लाभ कर सकें तो हम कला का रहस्य जान लें। तब अपनी आत्मा के गम्भीरतम स्थल में हम अपने अन्तर्जगत् के सङ्गीत को सुन लें। यह सङ्गीत कभी आनन्दमय, कभी विषाद-पूर्ण, परन्तु सर्वदा नवीन ही बना रहता है। यह हमारे चारों ओर व्याप्त है, हमारे भीतर भी है। परन्तु हम उसका स्पष्ट अनुभव नहीं कर सकते। हमारे और विश्व-प्रकृति के बीच, हमारे और हमारे चैतन्य के बीच, एक पर्दा पड़ा हुआ है। आध्यात्मिक कवि उस पर्दे के भीतर से भी अन्तर्गत रहस्य को देख सकते हैं। परन्तु सर्व-साधारण के लिए वह पर्दा रुकावट है।

आधुनिक साहित्य में जिस अध्यात्मवाद की धारा बह रही है उसकी गति इसी ओर है। वह मनुष्यमात्र के चरित्र का विश्लेषण कर उसमें आत्मा का सौन्दर्य देखना चाहता है। यही भाव अब नव हिन्दू-साहित्य में भी प्रविष्ट हो रहा है। जड़वाद के स्थान में यदि आत्म-चिन्तन और आत्म-परीक्षा के द्वारा मनुष्य अन्तःसौन्दर्य का दर्शन कर सके तो यह उसके लिए श्रेयस्कर ही है, क्योंकि तभी वह पुनः शान्ति के पथ पर अग्रसर होगा।

नवीनचन्द्र

उमर ख़ैयाम।



फ़ारसी में अनेक कवि रुबाइयाँ (चतुष्पदियाँ) लिख कर यशस्वी हुए हैं। परन्तु सबसे अधिक कीर्ति जिस कवि ने इस सम्बन्ध में प्राप्त की है उसका नाम उमर ख़ैयाम है। कविवर उमर ख़ैयाम का जन्म कब हुआ था, इस बात का ठीक ठीक पता नहीं लगता। कहा जाता है कि उमर का जन्म ईसा की ग्यारहवीं सदी के प्रथमार्द्ध में हुआ था। फ़ारस के पूर्वोत्तर भाग में स्थित नीशापुर नाम के एक ऐतिहासिक नगर में ही कविवर उमर का जन्म हुआ था। मृत्यु के पश्चात् वहीं वह गाड़ा भी गया था।

उमर का नाम ग्यास-उद्-दीन था। पिता का नाम इब्राहीम था। अरबी भाषा में ख़ैयाम शब्द का अर्थ ख़ेमा सीनेवाला, तम्बू बनानेवाला है। कहा जाता है कि कविवर के पिता का उद्यम तम्बू बनाने अथवा सीने का था, इसलिए विनयी उमर 'ख़ैयाम' शब्द को अपनाने से बाज़ न रह सका। वह सारे संसार में उमर ख़ैयाम अथवा उमर बिन ख़य्याम* के नाम से ही विख्यात हुआ।

*बिन शब्द का अर्थ पुत्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा तथा प्रतिष्ठा।

उमर ख़ैयाम के समय में नीशापुर में एक सुप्रसिद्ध महाविद्यालय था। विद्यालय के शिक्षकों में उस समय एक धुरन्धर विद्वान् थे। उन्हीं की बदौलत वहाँ उच्च शिक्षा का ख़ूब प्रचार हुआ था। उन्हीं की सेवा में रह कर ख़ैयाम ने भी उच्च शिक्षा प्राप्त की। उमर के दो सहपाठी और थे। एक का नाम नसीरउद्दीन था। वह तूस का निवासी था। मुहक्किक़ तूसी अथवा निज़ामुलमुल्क के नाम से वह इतिहास में विख्यात है। उसके दूसरे सहपाठी का नाम इब्नसब्बाह अथवा हसन बिन सब्बाह था। वह भी फ़ारस का ऐतिहासिक पुरुष माना जाता है। कहा जाता है कि एक दिन जब ये तीनों सहपाठी पाठ पढ़ कर जा रहे थे और आपस में पाठ-विषयक बात-चीत हो रही थी तब इब्न सब्बाह ने कहा कि लोग कहते हैं कि नीशापुर के विद्यालय में जो लोग पढ़ते हैं वे अवश्य उच्च पद पर पहुँचते हैं। इसलिए यदि हम में से कोई उच्च आसन पावे तो वह अपने साथियों का ध्यान रक्खे। इब्न सब्बाह का यह प्रस्ताव कहाँ तक कार्य में परिणत हुआ यह उस समय के इतिहास से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है।

जो अक्षय कीर्ति उमर ने संसार में प्राप्त की है वह उसे उसकी रुबाइयों के कारण मिली है, किन्तु सबसे पहले वह अपनी ज्योतिष तथा गणित विद्या की बदौलत प्रसिद्ध हुआ था। उसने ज्योतिष-सम्बन्धी कई प्रचलित त्रुटियों को दूर किया था। सन् १०९२ में उमर नीशापुर से देश-देशान्तर की यात्रा करने को रवाना हुआ। वह ख़ुरासान, काबुल, ग़ज़नी और बलख़ आदि देशों में काफ़ी समय तक भ्रमण करता रहा। जब वह फ़ारस लौट आया तब शाह के दरबार में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। दैवयोग से उस समय उमर का सहपाठी मुहक्किक़ तूसी बादशाह का मन्त्री था। उसने यह उद्योग किया कि उमर को शाही दरबार में कोई पद मिल जाय। किन्तु उमर इस पर राज़ी ही न हुआ। तब तूसी ने दस हज़ार दीनार (अशरफ़ी) का वार्षिक वज़ीफ़ा नीशापुर के शाही कोश से उमर के लिए बँधवा दिया।

पहले ही से उमर का रङ्ग-ढङ्ग विलक्षण था। किन्तु जब वह यात्रा से लौट आया और निश्चिन्त होकर अपना जीवन व्यतीत करने लगा तब वह लोगों को अपनी प्रतिभा का परिचय देने लगा। ज्योतिष का वह आचार्य ही था, किन्तु उसके विचारों में दार्शनिक भावों की भी कमी न थी। ऐसी अवस्था में अनेक कट्टर मुसलमानों ने उसकी गूढ़ बातों का अर्थ न समझ कर उन्हें अपने धर्म के विरुद्ध समझा, जिसका परिणाम यह हुआ कि लोग उसे खुल्लमखुल्ला बुरा-भला कहने लगे और यहाँ तक कि गालियाँ भी मिलने लगीं। इसी कारण कुछ मुसलमान विद्वानों ने उमर के विषय में बुरी सम्मति भी प्रकट की है।

जब नीशापुर में उमर के बहुत लोग शत्रु हो गये तब उत्तर देने या उनसे भिड़ने के स्थान में उसने नीशापुर का ही त्याग कर देना उचित समझा। अतएव उसने हज्ज करने का विचार प्रकट किया और सब कुछ छोड़-छाड़ कर मक्का को चल खड़ा हुआ। हज्ज से लौटते समय वह बग़दाद गया। वहाँ उसकी कीर्ति पहले से ही फैली थी, इसलिए उसके पहुँचते ही सारे नगर में धूम मच गई। चारों ओर से आकर लोग वहाँ एकत्र हुए थे। वे उमर के श्रीमुख से कुछ सुनने की अभिलाषा से ही आये थे। किन्तु उमर ने अपना कुछ मत प्रकट न किया।

मृत्यु तथा क़ब्र।

जब उमर बग़दाद में भी शान्तिपूर्वक न रह सका तब उसने फिर नीशापुर की राह ली और अपना सारा जीवन वहीं बिताया। सन् ११२३ में नीशापुर ही में उसकी मृत्यु हुई। एक लेखक का मत है कि जब उमर अपनी पहली यात्रा में बलख़ में था तब उसने कहा था कि मेरी क़ब्र एक ऐसे स्थान पर बनेगी जिस पर उत्तरी वायु प्रत्येक वसन्त-ऋतु में पुष्प की वर्षा किया करेगा और मेरी मिट्टी से नये बहार का दृश्य दिखलाई पड़ेगा। कहा जाता है कि मृत्यु के पश्चात् उमर ऐसे ही स्थान में गाड़ा गया था। पर काल की गति से उसकी क़ब्र की हालत ज्यों की त्यों न रह सकी। पिछले दिनों में उसकी मरम्मत के लिए धन की अपील हुई थी जिससे उसके अन्तिम चिह्न का अस्तित्व न मिट जाय।

उमर ने अपने जीवन-काल में कई ग्रन्थ रचे, किन्तु इस समय सबसे अधिक प्रसिद्धि उसकी रुबाइयों की ही है। मौलाना रूम, सादी, हाफ़िज़ आदि के कथनों की बानगी वस्तुतः उमर की रुबाइयों में ही मिलती है। हाफ़िज़ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद शराब और माशूक़ के स्वरूप में जिसने सब कुछ कहा है और बड़े मज़े से कहा है वह अकेला उमर ख़ैयाम ही है। उसके रङ्ग-ढङ्ग को देख कर कुछ लोगों ने उमर के पहचानने में बड़ी भूल भी की है, किन्तु इस प्रकार की बातों का जो अभिप्राय है वह विवेकी पुरुषों की दृष्टि से छिपा नहीं है।

उमर की कुछ रुबाइयों के नमूने।

जहाँ तक हो सके किसी को न सता अथवा ऐसा कोई कार्य न कर जिससे किसी को दुःख पहुँचे। यदि तू चिरस्थायी जीवन का अभिलाषी है, तो स्वयं दुःख को भोग और किसी अन्य को दुःख न दे।

धिक्कार है उस हृदय को जिसमें प्रेम नहीं है और न जिसमें आनन्दमय प्रेम के लिए स्थान ही है। वह दिन जिसे तू बिना प्रेम के व्यतीत करता है उससे अधिक निरर्थक तेरा और कोई दिन नहीं है।

मैं झूँठमूठ उपासना कब तक करूँ। मैं तो मन्दिरों के पुजारियों से तङ्ग आगया हूँ। हे ख़ैयाम, कौन कह सकता है कि अमुक पुरुष अवश्य नरक को जायगा! कौन ऐसा है जो नरक को गया हो अथवा स्वर्ग ही से आया हो?

जब आयु का ही बीतना है तब वह चाहे बग़दाद में बीते चाहे बलख़ में। जब अन्तिम दिन आ पहुँचा है तब कुछ परवाह नहीं। यह चाहे अच्छा हो, चाहे बुरा। मदिरा का पान कर। मेरे और तेरे बाद बहुत से महीने ऐसे बीतेंगे कि प्रतिपदा के पश्चात् पूर्णमासी और पूर्णमासी के पश्चात् प्रतिपदा आवेगी।

हम ऐसे मनुष्य नहीं हैं जो मरने से डरते हैं। हम पारलौकिक जीवन को लौकिक जीवन से श्रेष्ठ समझते हैं। ईश्वर ने यह जीवन हमें मँगनी दिया है। अतएव जब लौटाने का समय आवेगा तब लौटा दूँगा।

जीवन की घड़ियाँ बड़े विचित्र रूप से बीत रही हैं। आनन्द की एक घड़ी को भी कोई पकड़े नहीं रह सकता। हे मदिरापान करानेवाले, तू आनेवाले काल की चिन्ता में क्यों पड़ा है? मदिरा दे, क्योंकि रात बीती जा रही है।

मैंने एक दिन देखा कि एक मनुष्य एक स्थान पर मिट्टी को ख़ूब कूट रहा था। इस पर मिट्टी ने उससे करुणामय शब्दों में कहा—ठहर जा, मेरी दुर्दशा न कर, नहीं तो तेरी भी बड़ी दुर्दशा होगी *।

मदिरा-पान कर, क्योंकि तेरा शरीर पृथ्वी में मिल कर मिट्टी हो जायगा। उसके बाद तेरी मिट्टी से प्याले और मटके बनेंगे। स्वर्ग और नरक के विचार से दूर रह। बुद्धिमान् को भला कहीं ऐसी बातों के धोके में रहना चाहिए?

ठगी के लिए बकुलाभगत बनने की अपेक्षा मदिरा पीना और किशोरियों के निकट रहना अधिक अच्छा है। यदि अनुरागी और मतवाले नरक को जायँगे तो स्वर्ग को कौन जायगा?

मैंने दुनिया में से एक कोना और दो रोटियों को छाँट कर चुना है। यहाँ की माया और प्रतिष्ठा से मुँह मोड़ लिया है। हृदय और आत्मा से ग़रीबी को ख़रीदा है और इस ग़रीबी में अमीरी को देखा है।

परमात्मन्! यदि मैं अपनी गुप्त बातों को तुझ पर प्रकट कर दूँ, तो मेरा ऐसा करना इस बात से अधिक अच्छा है कि मैं बिना श्रद्धा तथा विश्वास के मसजिद में निमाज़ पढ़ूँ। ऐ सारी सृष्टि के आदि तथा अन्त! तू ही मालिक है। तू चाहे मुझे सुख दे, चाहे दुःख!

जिसके पास संसार में केवल आधी रोटी है और बैठने के लिए थोड़ी सी जगह भी है और जो न तो किसी का दास है, न किसी का स्वामी ही है, उससे कह दो कि वह आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करे। वास्तव में उसी का जीवन मज़े से गुज़र रहा है।

स्वर्ग, नरक, सुख, दुःख, संसार, ईश्वर आदि के सम्बन्ध में ख़ैयाम ने जो कुछ कहा है उसका यत्किञ्चित् परिचय ऊपर दिया गया है। किन्तु ईश्वर तथा मदिरा-सम्बन्धी उसके विचार विशेष रूप से अवलोकनीय हैं, अतएव आगे उनका कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है।

ईश्वर के प्रति।

आँखों से ओट में रहनेवाली वस्तु को कोई नहीं जान

* मिट्टी कहे कुम्हार से तू क्या रौंदे मोय।
एक दिन ऐसा होयगा मैं रौंदूँगी तोय॥
—कबीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सका और न ईश्वरीय गुप्त रहस्य को ही कोई पा सका है। प्रत्येक मनुष्य ने अपनी अटकल के अनुसार कुछ न कुछ अवश्य कहा है, किन्तु मर्म की बात किसी को कुछ मालूम ही नहीं हुई और न यह मामिला ही समाप्त होने में आया।

मेरे मार्ग में हज़ारों स्थानों पर तूने जाल बिछा रक्खा है। तू कहता है कि यदि तू (मैं) इस पर पैर रक्खेगा तो मैं तुझे पकड़ लूँगा। संसार का कोई परमाणु भी तेरे आदेश से बाहर नहीं है। फिर क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि सब कुछ तेरे ही आदेश से हो और हम द्रोही (पापी) कहे जायँ ?

मैं पापी दास हूँ, तेरी दयालुता कहाँ है ? मेरा हृदय काला है, तेरा उज्ज्वल चमत्कार कहाँ है ? यदि तू मुझको स्वर्ग में मेरी भक्ति और उपासना के कारण भेजेगा, तो यह एक लेन-देन का सौदा हो जायगा। तेरी दयालुता और कृपालुता का क्या होगा ?

मदिरा के प्रति।

जब मैं मदिरा का पान करता हूँ उस समय मेरे विरोधी दाहने और बायें दोनों ओर से कहते हैं कि मदिरा का सेवन न कर, क्योंकि यह धर्म-कर्म का शत्रु है। अब जब मैं जान गया कि मदिरा हमारे धर्म-कर्म का शत्रु है तब मैं इसका पान अवश्य करूँगा, क्योंकि शत्रु का रक्त पीना सर्वथा उचित है।

एक प्याली मदिरा का मूल्य सौ दिलों और धर्मों के बराबर है। एक घूँट का मूल्य चीन देश के बराबर है। भूमण्डल पर मदिरा के सिवा अन्य कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिसकी कड़ुआहट का मूल्य सैकड़ों मीठी जानों के बराबर हो।

जब मेरा सिर मृत्यु के पैर के नीचे हो जाय, मेरी आयु की आशा न रह जाय तब मेरी मिट्टी की सुराही अवश्य बनाना, क्योंकि सम्भव है कि जब वह मदिरा से भरी जाय तो मैं फिर जी जाऊँ।

अध्यापक से गदहा।

नीशापुर के जिस विद्यालय में उमर ने शिक्षा ग्रहण की थी उसी में उसको अध्यापक का पद भी प्राप्त हो गया था। उमर के विषय में उस समय की एक बात प्रायः कही जाती है। विद्यालय की मरम्मत के लिए गदहों पर लद कर ईंटें वहाँ आती थीं। एक दिन उमर अपने कुछ विद्यार्थियों के साथ विद्यालय में टहल रहा था। उसने देखा कि बहुतेरा उद्योग करने पर भी एक गदहा विद्यालय के भीतर न आ सका। इस बात से उमर को हँसी आ गई। गदहे के पास जाकर उसने जो रुबाई पढ़ी थी उसका भाव इस तरह है—

> मनुष्य होने के पश्चात् पशु बन कर तू अब एक अति हीन दशा को प्राप्त होगया है। तू अब मनुष्य नहीं रहा। मनुष्य होने की अवस्था में जो तेरे नाख़ून थे वे सारे अब एकत्र होकर सुम बन गये और डाढ़ी पीछे की ओर होकर पूँछ बन गई है।

कहा जाता है कि इसके बाद गदहा तुरन्त भीतर चला गया। विद्यार्थियों के पूछने पर उमर ने कहा कि इस समय गदहे में जो जीवात्मा है वह पहले इसी विद्यालय के एक अध्यापक में थी। इस कारण वह भीतर नहीं आता था। परन्तु अब वह इस रहस्य को जान गया कि उसको उसके एक सहयोगी ने पहचान लिया है। इसलिए वह अब भीतर आने पर विवश होगया है।

उमर की एक मार्मिक कविता का नमूना।

उमर के कुछ विचारों से यह भाव व्यक्त होता है कि वह आवागमन के सिद्धान्त को मानता था। ऐसी ही बातों से लोग उसके शत्रु हो गये थे। उसकी जिस कविता का अनुवाद आगे दिया जाता है उससे यह बात भली भाँति ज्ञात हो सकती है कि यह सूफ़ी कवि क्या और कैसा था। उमर ने इस कविता को एक वार्तालाप के ढँग पर कहा है। अतएव उसी ढँग पर उसका भाव दिया जाता है—

१ कल बुद्धि के साथ मुझसे बातचीत हुई थी। उससे मुझे कुछ बातें मालूम हुई हैं।

२ मैंने (बुद्धि से) कहा—हे सारे चतुराइयों की पूँजी, मैं तुमसे कुछ बातें पूछना चाहता हूँ।

३ मैंने पूछा—सांसारिक जीवन क्या है ? उसने कहा—स्वप्न है अथवा कुछ कल्पित विचारों का संग्रह है।

४ फिर मैंने पूछा—भला जीवन से क्या प्राप्त होता है ? बुद्धि ने उत्तर दिया—दर्दसर और कुछ झंझट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५ मैं—दुष्ट इन्द्रिय किस प्रकार दासी बन सकती है ?
बुद्धि—गोशमाली (कान मरोड़ने) अर्थात्, कुछ दण्ड देने से।

६ मैं—अत्याचारी लोग कैसे हैं ?
बुद्धि—भेड़िया, कुत्ता और गीदड़ हैं।

७ मैं—सांसारिक लोगों के विषय की बातचीत कैसी है ?
बुद्धि—कुछ निरर्थक बातें हैं।

८ मैं—संसार के लोग किस फेर में पड़े हैं।
बुद्धि—कुछ धन एकत्र करने के फेर में।

९ मैं—विवाह क्या है ?
बुद्धि—कुछ दिनों का सुख और बहुत दिनों के लिए क्रोध मोल लेना।

१० मैं—ख़ैयाम की बातें क्या हैं ?
बुद्धि—शिक्षायें हैं और कुछ आप बीती हैं।

इतिहास से इस बात का भी पता चलता है कि उमर की बुद्धि और स्मरण-शक्ति बड़ी तीव्र थी। एक बार की बात है कि उसने असफ़हान नगर में एक ग्रन्थ को सात बार भली भाँति पढ़ा। उसके बाद जब वह नीशापुर गया तब उसने उस ग्रन्थ को ज्यों का त्यों ठीक ठीक लिख दिया।

योरप में उमर की चर्चा।

जैसे मार्ग में मिट्टी या धूल मारी मारी फिरती है उसी प्रकार सूरमा अपने स्थान में अनादृत होकर पड़ा रहता है, किन्तु जब स्थान (देश) त्याग कर वह कहीं दूसरी जगह पहुँच जाता है तब उसका बड़ा आदर-सत्कार होता है और लोग उसे अपनी आँखों में स्थान देते हैं—यह भावार्थ एक अरबी कहावत का है जो पूर्णरूप से उमर ख़ैयाम की रुबाइयों पर चरितार्थ होता है। योरप में उमर की रुबाइयों की जैसी धूम है वैसी न तो ईरान में ही है और न एशिया के किसी दूसरे देश में है।

योरप में ख़ैयाम की रुबाइयों की ख़ासी चर्चा है। योरप में शायद ही कोई ऐसी जीती जागती भाषा होगी जिसमें उनका अनुवाद न हो गया हो और उन अनुवादों के कई एक संस्करण न निकाले गये हों। विशेष कर अँगरेज़ी में रुबाइयों के अनुवादों के जितने संस्करण निकले हैं उनकी संख्या कई दर्जन है। प्रायः प्रत्येक वर्ष कोई न कोई संस्करण किसी विशेषता के साथ अवश्य ही निकल जाता है। इनमें फ़िट्ज़ जेराल्ड़ (Fitz Gerald) के अनुवाद का सबसे अधिक आदर है। वास्तव में इस अनुवाद से उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है।

अँगरेज़ी के सचित्र संस्करण।

चित्रों से पुस्तक का सौन्दर्य बहुत ज़्यादा बढ़ जाता है। पुस्तक में विषय के अनुसार चित्रों के सम्मिलित करने की प्रथा इस समय पश्चिमी देशों में बहुत अधिक है। परन्तु इस कला का श्रीगणेश भारत ही में हुआ था और भारत (तथा चीन भी) इस कार्य्य में दक्ष था। कहा जाता है कि सबसे पहले एक भारतीय वैद्य ने वैद्यक-सम्बन्धी एक छोटे से ग्रन्थ में कुछ चित्र खींचे थे। उसके बाद सचित्र पुस्तकों का प्रचार बढ़ने लगा। अस्तु। उमर ख़ैयाम की रुबाइयों के अनुवाद का सचित्र संस्करण निकालने का विचार विलायत में हुआ और फ़िट्ज़ जेरल्ड का अनुवाद ही इसके लिए उपयुक्त समझा गया। सचित्र संस्करण के निकलने पर उमर की चर्चा और भी अधिक हो गई। यहाँ तक कि उन अनुवादों के कई एक सचित्र संस्करण निकले। प्रत्येक संस्करण को श्रेष्ठ बनाने की पूरी कोशिश की गई। फ़िट्ज़ जेराल्ड का अनुवाद अँगरेज़ी साहित्य में एक आदरणीय स्थान पा चुका है, इस कारण अँगरेज़ी के सारे सचित्र संस्करणों में उन्हीं का अनुवाद रक्खा गया है। इस प्रकार फ़िट्ज़ जेराल्ड की बदौलत संसार के सारे अँगरेज़ी जाननेवालों में उमर ख़ैयाम की असाधारण धूम मच गई है।

महेशप्रसाद मौलवी फ़ाज़िल

मधुमक्खियों का वीरोचित त्याग।

व्यास भगवान् ने भीष्म को स्वार्थ-त्याग की शिक्षा देते हुए कहा था कि त्याग में परम शान्ति और महासुख दोनों सम्मिलित हैं। स्वार्थ-बलिदान ही विवेक का विजय है। इस सुख के आगे स्वार्थ-सिद्धि के सुख वैसे ही फीके पड़ जाते हैं जैसे रवि के सम्मुख खद्योत। निःसन्देह त्याग ही मनुष्यत्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का स्वरूप है। मानव-समाज में इसकी जैसी महिमा और किसी दूसरे नैतिक गुण की नहीं है। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि ऐसे नैसर्गिक देवता के अनन्य भक्तों की कमी उसके बड़प्पन के धूल में मिला रही है—उसकी आन, बान और शान में ख़लल पहुँचा रही है। पर हमें यह न समझ लेना चाहिए कि मानव-समाज के पूर्णतः स्वार्थदस्यु बन जाने और अपने इष्ट-देव के विमुख हो जाने से संसार में त्याग-मन्त्र के वीणा की झनकार सुन ही न पड़ेगी। सच तो यह है कि जब तक संसार स्थित है तब तक उस महामन्त्र की ध्वनि होती ही रहेगी। चाहे मनुष्य उसे गौरवान्वित करना छोड़ दे, परन्तु यह सम्भव नहीं है कि उसके सहवासी अन्यान्य जीव-जन्तु उसकी आराधना त्याग देंगे। सम्भव तो यह जान पड़ता है कि कालान्तर में वही जीव-जन्तु कर्तव्यभ्रष्ट मनुष्य-जाति के आचार्य बन जायँगे और अपने कर्तव्य-बल से उन्हें उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिए त्याग की शिक्षा देने लगेंगे। कई एक पाठकों को हमारे कथन की सत्यता पर सन्देह होता होगा और वे हमारी बातों पर हँसते भी होंगे, अतएव उनसे हमारा यह आग्रह है कि यदि वे दूर जाना नहीं चाहते तो वे अपने बाग़ीचे तक ही चलने का कष्ट उठावें और वहाँ मधुमक्खी के छत्ते में त्यागदेव का वीरोचित पूजा-उत्सव देख कर अपनी शङ्का का समाधान कर लें। उनसे हमारा यह भी आग्रह है कि उत्सव देखने के पूर्व वे प्रसिद्ध प्राणिशास्त्री और नाट्यकार मेटरलिङ्क साहब के तत्सम्बन्धी विचारों का मर्म पढ़ लें जिससे उत्सव के देखने में किसी प्रकार की त्रुटि न हो।

जब शरद-काल बीत जाता है तब रानी मधुमक्खी अण्डा देने लगती है। इधर मधु-संग्रह करनेवाली मधुमक्खियाँ, मटर, पलास, आम और मौलसिरी के पुष्पों पर उड़ने लगती हैं। वसन्त-ऋतु के आते ही छत्ते का मधुकोष मधु और पराग परिपूर्ण हो जाता है। उधर दिन प्रतिदिन सैकड़ों मधुमक्खियों का जन्म लेना भी प्रारम्भ हो जाता है। कुछ दिनों में ही इस उन्नतिपूर्ण नगरी में इतनी अधिक भीड़ हो जाती है कि मधु-संग्रह करनेवाली मक्खिकाओं को भीतर स्थान ही नहीं मिलता। उन बेचारियों को द्वार पर ही रात बितानी पड़ती है।

उद्योगी नागरिकों की इस दुःखमयी अवस्था को देख कर बूढ़ी रानी के मन में दुःख और चिन्ता का सञ्चार होता है। उसे मालूम हो जाता है कि शीघ्र ही कोई अघटित घटना घटित होनेवाली है। उसने एक सम्भावित प्राणी के समान अपने कार्य का सम्पादन किया है, परन्तु उस कार्य का परिणाम उसे आपत्ति और दुःख ही दिखाई पड़ता है। एक अदृश्य शक्ति उसे यह कह कर धमकाती है कि अब इस नगरी से तुम्हें शीघ्र विदा होना पड़ेगा। परन्तु यह नगरी उसके कार्य का प्रतिफल है। वह भला उसे क्यों छोड़ने चली! रानी शब्द का जैसा अर्थ होता है वैसी रानी वह नहीं है। वह आज्ञा नहीं देती, परन्तु एक सम्भावित नागरिक के समान राज्य-नियमों का पालन करती है। फिर राज्य-कार्य चलाता कौन है? छत्ते की अदृश्य शक्ति ही वहाँ बुद्धिमत्ता से राज्य करती है। रानी केवल प्रेम-मूर्त्ति है, नगर की जननी है। उसी ने अनिश्चित भाव से उसे दरिद्रावस्था में बनाया और अपने सत्त्व से बसाया है। कामकाजी, नर, इल्ली, टहलुए, सुन्दर युवती और राजकुमारी (जिसके जन्मते ही रानी के नगरी छोड़ना पड़ेगी और जो उसकी उत्तराधिकारिणी होगी) ये सबके सब उसी के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं।

छत्ते की अदृश्य शक्ति है क्या और वह रहती कहाँ है? वह शक्ति किसी प्रकार की स्वाभाविक बुद्धि नहीं है और न वह स्वभाव ही है। उसे जीवन की अन्ध उत्कण्ठा भी नहीं कह सकते। हाँ, वह निर्दय बन कर मधुमक्खियों का धन, आनन्द, जीवन और उनकी स्वतन्त्रता हरण करने में अवश्य तत्पर रहती है। परन्तु वह जो कुछ कार्य करती है वह सब विवेक से; माने उसे किसी बृहत् कार्य की प्रेरणा होती हो। वह छत्ते के आस पास खिलनेवाले पुष्पों का हिसाब लगा कर मधुमक्खियों की संख्या को घटाती बढ़ाती; रानी को देश का त्याग करने के लिए आदेश देती और उससे अपना प्रतिरोध उत्पन्न करने के लिए अनुरोध करती है। वही शक्ति राज्याधिकारिणी का पालन-पोषण करती, उसे रानी के राजनैतिक द्वेष से बचाती और उसे अपनी अन्यान्य बहिनों को दुष्काल की आशङ्का होने पर मार डालने तथा मधु की अधिकता होने पर जीवनदान देने के लिए उभाड़ती है।

जब कभी मौसम में ख़ुश्की नहीं रहती या फूल खिलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दिन कम रह जाते हैं तब वह कामकाजियों के द्वारा शाही अण्डा सेनेवाली दाइयों को क़त्ल करवाती और राज्य का परिवर्तन रोक देती है। इस तरह सबका मुख्य उद्देश केवल कार्य ही करना रह जाता है। वह शक्ति है तो दूरदर्शी, परन्तु मितव्ययी और पक्षपात-रहित भी है। वह धूर्त भी इतनी अधिक होती है कि जब फूलों की अधिकता रहती है तब छत्ते में तीन चार सौ नर मधुमक्खियों तक का जमाव होने देती है, जिसमें जन्म लेनेवाली नई रानी के स्वयंवर में कुमारों की कमी न रहे। परन्तु रानी के गर्भ धारण करते ही यदि फूलों की कमी रही या फूल खिलने का समय देरी से आने को हुआ तो वह एक ही साथ सम्पूर्ण नर-मधुमक्खियों का संहार करा देती है।

वह अपने कामकाजियों को उनकी उम्र के लिहाज़ से कार्य-भार सौंपती है। सुन्दर युवतियों और राजकुमारियों की सेवा-शुश्रूषा का भार दाइयों को दिया जाता है। वह दासियों को रानी की टहल चाकरी में लगाती और उसे पल भर भी निगाह से बाहर न होने देने के लिए ताक़ीद भी करती है। गृह-प्रबन्ध करनेवाली मधुमक्खियों को छत्ते के भीतर हवा करने, आवश्यकतानुसार ठंढक तथा गरमी पहुँचाने और अधिक जलयुक्त मधु का जल भाफ बना कर उड़ाने की आज्ञा देती है। मोम तैयार करनेवालियों और राज-मधुमक्खियों का निज का काम बताती है। भोजन ढूँढ़नेवाली मधुमक्षिकाओं को मधु, पराग, पानी और नमक लाने का काम सौंपती है। रसायन-शास्त्री मधुमक्षिका को मधु को बिगड़ने से बचाने के लिए उसमें डंक से तेज़ाब डालने को कहती है। झाड़ूदारिन मधुमक्खी से जन साधारण के स्थान और मार्गों की सफ़ाई करवाती है। योधा मधुमक्खियों की सेना को छत्ते के द्वार पर तैनात करती और उन्हें आने-जानेवालों से पूछ-ताछ करने, लुच्चे, लफङ्गे लुटेरे और चोरों के जासूसों को मार भगाने, ज़बर्दस्ती करनेवालों को निकाल बाहर करने और आवश्यकता पड़ने पर छत्ते का द्वार बन्द कर देने की हिदायत देती है।

वह नगरी के उन्नत दशा पर पहुँचते ही रानी और नागरिकों को अपनी भावी सन्तान के लिए अपना स्थान और परिश्रम का फल त्याग कर देने को कहती है और इस महान् त्याग के लिए समय भी नियत कर देती है। वह उन्हें इस आपत्ति के समय सन्तोषी बनने की शिक्षा देती है। यह तो कोई नहीं जानता कि इस महान् त्याग में वे जान बूझ कर या अनजान में योग देती हैं, परन्तु इतनी बात अवश्य है कि उनका यह त्याग मनुष्य-धर्माचार की सीमा से परे है। यद्यपि इस त्याग का प्रतिफल एक-मात्र नाश ही है तो भी वे उसमें योग देती हैं और आनन्द मनाने की अपेक्षा राज्य-नीति के पालन में अपना अहोभाग्य समझती हैं।

वह देखिए, हमारी भावना तथा स्वाभाविक बुद्धि के विरुद्ध, अदृश्य शक्ति के आज्ञानुसार अस्सी-नब्बे हज़ार में से साठ-सत्तर हज़ार मधुमक्खियाँ अपनी पैत्रिक नगरी का त्याग करने और अपने कुल-देवता के चरणों में बलि हो जाने के लिए तैयारी कर रही हैं। वे जिस निर्धारित समय की राह अब तक धैर्यपूर्वक देख रही थीं वह निकट है। यदि छत्ते में क़हत, बीमारी या युद्ध का घोर नाद सुनाई पड़ता अथवा राज्य-घराने को आपत्ति का बादल ढक लेता, तो वे उसकी ज़रा भी परवा न करतीं और छत्ते में डटी रहतीं। परन्तु अब वे उसे ऐसे अवसर पर छोड़ रही हैं जब उन्नति ने वहाँ अपना अड्डा जमा लिया है और उनके कठिन परिश्रम का फल वहाँ के बीस सहस्र बड़े बड़े कोठों में भरा हुआ है।

वीरोचित त्याग के सन्ध्या-काल में छत्ते की शोभा द्विगुणित हो जाती है। चलिए, छत्ते का दृश्य देखें। परन्तु वैसा नहीं जैसा कि मधुमक्खी को उसके छः सात सहस्र चक्षुओं से दिखाई देता है।

देखिए, मधुमक्खी की हवेली उतनी ही ऊँची है जितना कि पुरी में जगन्नाथजी का मन्दिर। उसकी दीवारों की नीव शून्यता और अन्धकार में है। वहाँ बनी हुई ज्यामिति के लम्ब और समानान्तर आकृतियों की शुद्धता और बड़प्पन की तुलना के लिए संसार भर में मनुष्य-कृत कोई भी इमारत नहीं है। जिस द्रव्य से दीवारें बनी हैं उसमें पवित्रता, सुगन्ध और चाँदी के सदृश चमक है। हवेली के भीतर नगर-निवासियों को कई सप्ताह तक के लिए खाद्यवस्तु का संग्रह करने के लिए हज़ारों पारदर्शक कोठे बने हैं। इन कोठों के समीप ही अप्रेल का शुद्ध सुगन्धित मधु रखने के हेतु बीस सहस्र और कोठे हैं। यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मधु केवल दुष्काल के समय ख़र्च किया जाता है। इसके निचले भाग में खुले मुँह का एक बड़ा भारी कुण्ड है। इसमें मई का परिपक्व मधु सञ्चित रहता है। छत्ते के मध्य और गरम भाग में भविष्य प्रान्त है। इसके द्वार तक ही सूर्य भगवान् की किरणें आ जा सकती हैं। यहाँ रानी के लिए महल, अण्डे रखने के लिए दस सहस्र गुफायें, इल्लियों के लिए पन्द्रह-सोलह हज़ार कमरे और सुन्दर युवतियों के लिए चालीस हज़ार मकान बने हैं। सेवा-शुश्रूषा करनेवाली नौकरनियों और दाइयों के लिए भी स्थान यहीं बने हैं। इस प्रान्त के अत्यन्त पवित्र स्थान में बारह मोहरबन्द प्रासाद हैं, जहाँ राजकुमारियाँ पड़ी पड़ी अपने समय की राह देखा करती हैं।

जब राज्य-परिवर्तन का समय आता है तब नगर की कुछ मधुमक्खियाँ भविष्य प्रान्त के भीतर जातीं और राजकुमारियों में से एक को निश्चित नियमानुसार छत्ते की रानी के पद पर विभूषित करती हैं। यही सुप्त नगरी में सोनेवाले नर-मधुमक्खियों में से शाही प्रेमी चुनती हैं और भविष्य प्रान्त के किशोरावस्था के रक्षक मधुमक्खियों और सहस्रों कामकाजी मधुमक्खियों में से कुछ को सञ्चित कोष की रक्षा के लिए और कुछ को परम्परा का कुलाचरण बनाये रखने के लिए मुक़र्रर करती हैं। इससे सिद्ध है कि मधुमक्खियों के समुदाय का भाग्य-निर्णय रानी के हाथ में नहीं—छत्ते की अदृश्य शक्ति के हाथ में है।

राज्य-परिवर्तन की सूचना के मिलते ही छत्ते के बाहर भीतर खलबली सी मच जाती है और ऐसा बोध होने लगता है मानो वहाँ झगड़ा बखेड़ा हो रहा हो। मधुमक्खियों की चित्तवृत्ति कभी तो उत्तेजित और कभी खिन्न दिखाई देती है। क्या वर्तमान शोक के साथ उनकी बुद्धि संग्राम कर रही है या उनकी सभा में बिदाई-विषयक वादानुवाद हो रहा है, यह तो हम नहीं जानते। परन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि वहाँ होनेवाले मधु और गन्धयुक्त गम्भीर नाद में आनन्द, भय, नाश और क्रोध के भावों की सप्तस्वर-मिश्रित ध्वनि निकल रही है, जिसमें कामकाजियों का उत्सव-गान, पुष्पों के आनन्दभैरव की सुवासित प्रतिध्वनि, रानी का दुःख-स्तोत्र और किशोरी रानी का युद्ध-सङ्गीत सम्मिलित हैं।

पहले लोगों की यह धारणा थी कि मधुमक्खियाँ मूर्खतावश या दैवयोग से अपना राज्य और कोष परित्याग कर जीवन के अनिश्चित पथ में जा भटकती हैं। परन्तु छत्ते के कुछ रहस्यों के प्रकट हो जाने से यह पता लगा है कि इन धूर्त, दूरदर्शी और मितव्ययी मधुमक्खियों के नाटक का अन्तिम दृश्य न तो स्वाभाविक है, न अटल है और न अन्धवत् देश-त्याग ही है। सच तो यह है कि वे जानबूझ कर अपनी भावी सन्तति के लिए आत्म-बलिदान करती हैं।

यह देखा गया है कि जब मधुमक्खी पालनेवाले गतिहीन किशोरी राजकुमारी को उसकी गुफा में मार डालते हैं और इल्ली तथा सुन्दर युवतियों की संख्या अधिक होने पर उनका भी संहार कर देते हैं तब उत्तराधिकारिणी के अभाव में बूढ़ी रानी प्रधान हो जाती है और फिर मातृ-कर्तव्य करने लगती है। इधर कामकाजी मधुमक्खियाँ भी अपने अपने कार्य में यथावत् लग जाती हैं। यहाँ भविष्यद् राष्ट्र के लिए वर्तमान राष्ट्र के प्रेम के अतिरिक्त मूर्खता या दैवी योग का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता।

मधुमक्खियों को भविष्य का ज्ञान रहता है। वे भली भाँति जानती हैं कि नगर का त्याग करने के अनन्तर उन पर क्या क्या बीतने को है। इसी लिए वे छत्ते से विदा होते समय अपने साथ इतना मधु रख लेती हैं जितना उन्हें पाँच छः दिन के ख़र्च के लिए चाहिए। वे इस मधु से मोम तैयार करतीं और छत्ता बनाती हैं। सम्भव है कि देश का त्याग करने के अनन्तर पानी बरसे, आँधी चले या ठंड के कारण फूल न खिलें। यदि उनमें दूरदर्शिता का अभाव होता तो ऐसे कुअवसर में वे बेचारी भूख के कारण बिना मारे ही मर जातीं। वहाँ उनकी सहायता के लिए कोई नहीं जाता और न उन्हीं को सहायक ढूँढ़ने का अवसर प्राप्त होता है। यह देखा गया है कि प्रबल से प्रबल आपत्ति आ पड़ने पर भी वे अपने छत्ते को सहायतार्थ नहीं लौटतीं। वे अपने पूर्व-परिचित स्थान के आनन्द को बिलकुल भूल जाती हैं। यदि उन्हें ठंड और भूख के कारण मरना पड़े तो वे अपनी बूढ़ी रानी के समीप रह कर मरना पसन्द करेंगी, परन्तु अपने जन्मस्थान को, जिसे छोड़े अभी कुछ ही देर हुई है और जहाँ से उनके सञ्चित मधु की महक आ रही है, भूल कर भी नहीं जायँगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य ऐसी बात कभी नहीं करता है। इसी से वह मधुमक्खियों को बुद्धिरहित कहता है। क्या उसकी यह राय सही है? सच तो यह है कि मधुमक्खियों का संसार हमारे संसार से बिलकुल भिन्न है। वह हमसे इतना अधिक दूर है कि उसकी ओर उत्सुकता से देख कर भी हम वहाँ की सम्पूर्ण बातों को ठीक ठीक नहीं जान सकते हैं। उनकी विचित्र कारगुज़ारी को देख कर हम उनके विषय में वैसा ही निर्णय करते या अन्दाज़ लगाते हैं जैसा कि मङ्गलग्रह का कोई निवासी हमें धब्बे के समान सड़कों पर घूमते फिरते देख लेने या हमारी बनाई हुई इमारत, यन्त्र और नहर की ओर दूर से दृष्टिपात करने से हमारे धर्माचरण, ज्ञान, जीवन, उद्देश आदि बातों के सम्बन्ध में अपना ऊटपटाङ्ग मत स्थिर करेगा। मधुमक्खियो, यह सही है कि तुम प्रकृति की पवित्रता का भोजन करती हो। तुम्हारे विचित्र प्रजातन्त्र-राज्य में गम्भीरता, तर्क, परिपक्व विचार, दृढ़ विश्वास आदि सब बातें मौजूद हैं, परन्तु वे सब मनुष्य के बृहत् और अनिश्चित शिकार-मात्र हैं। कौन कह सकता है कि तुमने ऐसा क्यों निश्चय किया है। यदि यह निश्चय अन्धी श्रद्धा या प्राचीन रीति का परिणाम है, तो तुम्हारी कन्याएँ ऐसा निन्दनीय कार्य करने के लिए अपना मत क्यों देती हैं जिसे एक गुलाम भी पसन्द न करेगा। वे तुम्हारे सङ्ग रह कर जितना सुखी होंगी उतना तुम्हारे बिना कदापि नहीं हो सकतीं। क्या तुम प्राकृतिक नियम के वशीभूत होकर अपनी इच्छा के विरुद्ध सर्वस्व त्याग रही हो?

अच्छा, इन सब बातों को छोड़ कर हमें अब उस छत्ते की ओर लौटना चाहिए जहाँ मधुमक्खियाँ धीरज छोड़े बैठी हैं। वे अब न तो शान्तिप्रिय हैं, न परिश्रमी और न उन्हें घर-गृहस्थी का कुछ ध्यान ही है। आज इन सबके स्वभाव में परिवर्तन हो गया है। केवल थोड़ी सी मधुमक्खियाँ गृह-कार्य में लगी हुई देख पड़ती हैं। इन्हें महोत्सव में शरीक होने या रानी का साथ देने की मनाई है। इनकी ज़िम्मेदारी पर छत्ते की रक्षा और उसके दस सहस्र अण्डों, अठारह सहस्र इल्लियों, छत्तीस सहस्र सुन्दर युवतियों और सात-आठ राजकुमारियों के लालन-पालन का भार सौंपा गया है। यही कारण है कि त्याग-उत्सव की ओर इनका ध्यान तक नहीं है।

त्यागोत्सव तभी मनाया जाता है जब आकाश निर्मल और मौसम खुश्क रहता है। इस महोत्सव में सम्मिलित होनेवाली मधुमक्खियों में से एक भी छत्ते में नहीं रह जाती। एक दिन के आनन्द, भूल और मूर्खता के कारण भविष्य की जयजयकार मनाती हुई वे सब महोत्सव में शरीक हो जाती हैं। उस समय उन्हें ऐसी खुशी होती है मानो क़ैदख़ाने से आज़ादी मिली हो। और दिन वे एक पल भी निरर्थक नहीं गँवाती थीं, परन्तु आज वे अपना समय छत्ते के बाहर भीतर आने-जाने ही में बिता रही हैं। इस आवागमन का उद्देश्य सम्भवतः रानी की तैयारी की ख़बर पाने के लिए है। आज उनके मन में न दुःख है, न चिन्ता और न वे भयभीत ही जान पड़ती हैं। आज उनके समीप कोई भी व्यक्ति आ जा सकता है। वे कदापि डंक का प्रयोग नहीं करेंगी। उन्होंने आनन्द के कारण क्रोध को तिलाञ्जलि दे दी है। उनमें केवल भविष्य-विश्वास ही शेष रह गया है। ध्यान रहे कि रानी ही उनका भविष्य है। अतः उससे उन्हें विलग कर देने में वे हानि और कष्ट दोनों पहुँचावेंगी।

इधर रानी मधुमक्खी का हाल अजीब है। और दिन वह महल के बाहर झाँकती तक न थी, परन्तु आज वह पागल की तरह छत्ते के बाहर जमी हुई उग्र और उद्दण्ड भीड़ में घुसी जा रही है। क्या वह उन्हें शीघ्र कूच करने को कह रही है या विलम्ब करने को कह रही है? क्या वह आज्ञा दे रही है या अदृश्य शक्ति से प्रार्थना कर रही है? क्या वह वर्तमान चित्तवृत्ति की जन्मदात्री है या उसका शिकार है? यह तो निश्चय है कि मधुमक्खियों का त्याग-महोत्सव बूढ़ी रानी की इच्छा के प्रतिकूल होता है। उसकी प्रजा उस पर इतनी श्रद्धा और भक्ति करती है कि उस पर अचानक आपत्ति आ पड़ने पर वे रोने बिलखने लगती हैं। यदि ऐसे अवसर पर, जब कि उसकी कोई उत्तराधिकारिणी न हो और यदि हो भी तो वह केवल दो तीन दिवस का बच्चा हो, रानी को कोई क़ैद कर ले, तो सारे नगर में हाहाकार मच जायगा। कामकाजी मधुमक्खियाँ अपना कार्य छोड़ देंगी। पहरेदारिनें हताश होकर पहरे से अलग हो जायँगी। उस समय नगर में चाहे शत्रु घुस आवे या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोर उनका सर्वस्व चुरा कर ले जाय, वे कुछ परवा नहीं करेंगी। धीरे धीरे नगर भर में दरिद्रता की ज्वाला भभकने लगेगी और सैकड़ों मधुमक्खियाँ रानी के वियोग में प्राण का त्याग करने लगेंगी। इसी समय यदि रानी छत्ते में छोड़ दी जाय तो मृतप्राय नगरी पुनः जीवित हो जायगी और वहाँ पूर्ववत् कारोबार चलने लगेगा। इतना ही नहीं, किन्तु मुफ़्तख़ोरों और लुटेरों को दण्ड भी दिया जायगा और छत्ते में आनन्द का स्रोत बहने लगेगा। ऐसा देखा गया है कि रानी के लिए मधुमक्खियाँ अपना प्रिय प्राण तक न्योछावर कर देती हैं। उसके जीवित रहने तक निराशा उन्हें छू नहीं पाती। बीसों बार उनका मधुकोष क्यों न तोड़ा जाय, बीसों बार उनका भोजन और उनके बच्चे क्यों न चुरा लिये जायँ, परन्तु वे भविष्य के लिए कदापि चिन्तित नहीं होंगी। किसी ने ठीक कहा है कि इनके समान बुद्धिमान् और धैर्यवान् प्रकृति-साम्राज्य में बहुधा मिलते ही नहीं। इनके समान विश्वस्त और साहसी तो मनुष्य भी नहीं होते।

मधुमक्खियों का रानी के प्रति जो स्नेह होता है उससे उनकी राजनैतिक बुद्धिमत्ता, धीरता, दृढ़ता, उदारता और भविष्य-भक्ति का पूरा पूरा पता चलता है। मधुमक्खी पालनेवालों का विश्वास है कि रानी पर अधिकार पा लेने से छत्ते की अदृश्य शक्ति और भविष्य दोनों अधीन हो जाते हैं। इसी लिए वे एक छत्ते के दल को कई भागों में विभाजित करते, उन्हें अलग अलग रखते, उनकी संख्या को घटाते बढ़ाते और न जाने क्या क्या खेल करते रहते हैं। परन्तु यह उनकी भूल है। मधुमक्खियाँ कभी धोखे में नहीं आतीं, न वे रानी की उपस्थिति से अन्धी ही बन जाती हैं। आत्मिक और अनन्त—यही उनका निश्चित विचार रहता है। यदि यह कहा जाय कि वे विचार-शून्य होती हैं, उनमें जो भविष्य की चिन्ता, जाति-प्रेम और अन्यान्य चेतनाएँ होती हैं वे सब दुःख, मृत्यु-भय और जीवन-सुख के आवश्यक रूप हैं, तो इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य की आवश्यकता, आनन्द-प्रेम और दुःख-भय के वशीभूत है और उसकी बुद्धि भी पशुपक्षियों की स्वाभाविक बुद्धि से उत्पन्न हुई है।

परन्तु ब्यूफ़न साहब की राय है कि कुत्ते, बन्दर तथा इसी प्रकार के अन्यान्य प्राणियों से मधुमक्खी की योग्यता कम होती है अर्थात् सीखने के लिए जिस शक्ति, प्रेम और गुण की आवश्यकता पड़ती है वह उसमें बहुत ही कम रहती है। इससे सिद्ध होता है कि उनकी प्रकट बुद्धि एकत्र समुदाय से जागृत होती है और वह उचित विचार के अधीन नहीं रहती। उनका समाज स्वाभाविक है और प्राकृतिक प्रेरणा से सङ्गठित होता है। ऐसी दशा में कारण और विचार से उनके ज्ञान का स्वतन्त्र रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसके सिवा छत्ते की दस सहस्र मधुमक्खियों का जन्म एक ही उदर से एक ही समय और स्थान में होता है। वे सब सङ्ग ही सङ्ग रहतीं, सङ्ग ही सङ्ग काया पलटती, एक सी आदत डालतीं और जीवन के लिए सादृश्य कार्य करती हैं। इसी से निरीक्षक उन्हें तर्क और बुद्धि-सम्पन्न प्राणी कहता है और उनके प्रत्येक कार्य को योग्यतापूर्ण और कारणयुक्त बताता है। इसी से उनमें गृह-निर्माण, रेखा-गणित, प्रबन्ध, अग्रविचार, नगर-प्रेम आदि बातें अङ्कुरित होती हैं और वे असंख्य दैवी विचारों की ज्ञाता मानी जाती हैं।

इस विचार में स्वाभाविकता की झलक तो है, परन्तु सार कुछ भी नहीं है। क्या दस सहस्र मधुमक्खियों का समुदाय में विचरना और आपस में एक दूसरे को किञ्चित् हानि नहीं पहुँचाते हुए अन्तिम समय तक सहायता देना उनकी आदर्श बुद्धि का परिचायक नहीं है? हमारी बुद्धि, सुकृति और नीति का भी तो यही परिणाम है कि मनुष्य-जाति अहंकार और स्वाभाविक हानिकर उद्दण्डता को रोक कर समाज-बन्धन में पड़ता है और सर्व-साधारण की भलाई में योग देता है।

यह तो निश्चय ही है कि मधुमक्खियाँ अपनी जाति के अनन्त भविष्य की अपेक्षा रानी पर कम भक्ति करती हैं। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि उनमें मातृ-प्रेम का अभाव रहता है और वे माता के बूढ़ी तथा अशक्त हो जाने पर किसी अन्य छत्ते से आनेवाली रानी को अपनी साम्राज्ञी मान लेती हैं। सच तो यह है कि रानी के पूर्णतः बाँझ हो जाने पर उसका स्थान शाही कुमारियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में से किसी एक को दिया जाता है और बूढ़ी रानी छत्ते के एक गुप्त स्थान में रक्खी जाती है जिसमें मधुमक्खियाँ उसकी रक्षा कर सकें और उसे अपनी राज्य-भक्ति का परिचय दे सकें। उसे गुप्त स्थान में रखने का अभिप्राय यह है कि एक रानी दूसरे पर इतना द्वेष रखती है कि दोनों के साक्षात्कार होने पर एक न एक अवश्य ही मारी जाती है। इससे भी सिद्ध होता है कि मधुमक्खियों की बुद्धिमत्ता और धूर्त्तता किसी प्रकार सङ्कीर्ण नहीं होती और उनका इरादा हमारे ख़याल से ज़्यादा पेचदार होता है।

यहाँ हम प्रकृति के अचल नियम से दूर चले गये। यदि हम चालाकी से या बल-पूर्वक किसी दूसरी रानी को उनके छत्ते में रख दें तो मधुमक्खियाँ क्या करेंगी? सम्भव है कि इस अवसर पर उनकी बुद्धि मारी जाय और वे घुस आनेवाली रानी के शरीर को अपने डङ्कों के प्रहार से छिन्न भिन्न कर डालें। परन्तु ऐसा नहीं होता है। क्योंकि मधुमक्खियाँ रानी के ऊपर अपने डङ्क का प्रयोग नहीं करतीं, न रानी ही अपना डङ्क मनुष्य, पशु या साधारण मधुमक्खियों को मारती है। हाँ, वह अपना शस्त्र दूसरी रानी के सङ्ग युद्ध करते समय निकालती है। यह मधुमक्खियों का नियम है कि वे रानी की हत्या का पाप अपने माथे नहीं लेतीं और जब कभी वे प्रजातन्त्र राज्य की उन्नति और सुव्यवस्था के लिए रानी को मारना चाहती हैं तब वे उसे स्वाभाविक मृत्यु से मारती हैं जिसमें उन्हें कलङ्क का टीका न लगे।

घुस आनेवाली रानी को मधुमक्खियाँ इस प्रकार घेर लेती हैं कि उसके चारों ओर मधुमक्षिकाओं का व्यूह सा बन जाता है। वहाँ क़ैदी २४ घण्टे तक रक्खा जाता है और दम घुट कर या भूख से मर जाता है। यदि उसकी मृत्यु के पूर्व वहाँ छत्ते की रानी आ जाय तो मधुमक्खियों का व्यूह उठ जाता है और दोनों रानी आपस में लड़ने लग जाती हैं। इस युद्ध में मधुमक्खियाँ योग नहीं देतीं, न पक्षपात ही करती हैं। यदि दोनों में कोई विजयी न हो और उनमें से कोई, चाहे वह छत्ते की रानी हो या भीतर घुस आनेवाली रानी हो, भागना चाहे तो वे पराजित रानी को व्यूह बना कर फिर क़ैद कर लेती हैं और उसे तब तक क़ैद में रखती हैं जब तक वह फिर युद्ध करने की इच्छा प्रकट नहीं करती। इस विषय की जितनी परीक्षायें की गई हैं उन सबमें प्रायः छत्ते की रानी ही विजयी हुई है। इससे पता लगता है कि किस ढङ्ग और दाँव से मधुमक्खियाँ, मनुष्य के धोखेबाज़ी और उसकी इच्छा पर पानी फेर देती हैं और अपनी राज-भक्ति पर दृढ़ बने रहने के लिए किस साहस से अचिन्तित घटनाओं को प्रकृति का नूतन मनोविकार समझ कर झेल लेती हैं। इन्हीं बातों से और उनके पेंचीले रीति-रवाज, शान्तिप्रियता, समाज-सङ्गठन, भविष्य अनुराग, धूर्त्तता, कार्य-कुशलता आदि देख कर मनुष्य उन्हें समुचित बुद्धि-सम्पन्न कहने में सङ्कोच नहीं करता।

हम पहले कह आये हैं कि रानी छत्ते की अधिष्ठात्री और शाही सेवक है। वह प्रेम का प्रतिनिधि और उसका रक्षक भी है। उसकी प्रजा उसकी सेवा और वन्दना करती है; परन्तु उसकी प्रजा को इस बात का ध्यान रहता है कि जिसकी वह सेवा तथा वन्दना करती है वह रानी नहीं, किन्तु भवितव्यता की प्रतिनिधि है। यहाँ हमें मधुमक्खियों के स्वार्थ-त्याग का एक और उदाहरण मिलता है। मनुष्य उनके इस स्वार्थ-त्याग की प्रशंसा चाहे न करे, परन्तु वह उससे होनेवाले परिणाम पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। वे इसे अपना बृहत् कार्य समझती हैं और भविष्य के लिए कार्य करने में सुखी भी होती हैं। नहीं तो रानी को स्वतन्त्रता से और कामकाजी मधुमक्खियों को अपने पाँच छः वर्ष के शेष जीवन से उदासीन होने की क्या गरज़ पड़ी थी और वे इस कर्तव्य-पालन में अपनी इच्छा क्यों प्रकट करतीं।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि मधुमक्खियों की बुद्धि का वास रहता कहाँ है, जो उनके वर्तमान और भविष्य को तोले हुए है। इसके उत्तर में केवल इतना ही कह देना बस होगा कि वह एक-मात्र अदृश्य शक्ति है। परन्तु वह अदृश्य शक्ति मधुमक्खियों के समुदाय में कहीं भी नहीं देख पड़ती। यदि उसे देखना ही है तो ख़ुर्दबीन का सहारा लीजिए और किसी मधुमक्खी के सिर के भीतर ग़ौर से देखिए। जिसे हम साधारण बोलचाल में दिमाग़ कहते हैं वहीं उस अदृश्य शक्ति की साकार मूर्ति देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ेगी। मधुमक्खियों का भेजा जितना सुन्दर और पेचीदा होता है उतना प्रकृति-साम्राज्य में मनुष्य के अतिरिक्त और किसी जीव का नहीं होता। भेजा, बुद्धि का प्रमाण और सभ्यता का बल है। अतएव मधुमक्खियों के बुद्धि-सम्पन्न होने में अब कोई सन्देह नहीं रह गया है।

चलिए, अब छत्ते की ओर लौट चलें अन्यथा हम अपने विचारों की उधेड़-बुन में ही पड़े रह जायँगे और जिस उत्सव के देखने के लिए हम इतने उत्सुक हैं वह हमारे विचारों की समाप्ति के पूर्व समाप्त हो जायगा। जान पड़ता है कि मधुमक्खियों को छत्ता त्यागने की सूचना मिल गई है। यही कारण है कि छत्ते का द्वार खुल गया है और वहाँ से मधुमक्खियाँ इस प्रकार बाहर निकल रही हैं मानो काली स्याही की धारा प्रवाहित होती हो। इस समय शान्ति और पंखों की ध्वनि का मिश्रण बहुत ही भला मालूम पड़ता है। स्वार्थ-त्यागी मधु-मक्खियाँ काल तक छत्ते के ऊपर एक सीध में उड़ती रहती हैं। फिर वे सबकी सब किसी एक ओर को आकाश-मण्डल में ऊपर नीचे ग़ोता खाती हुई आगे बढ़ती चली जाती हैं। और जिस वृक्ष की डाली पर रानी उतरती है वहीं सबकी सब उसे घेर कर बैठ जाती हैं। वे उस वृक्ष की शाखा पर तब तक अड़ी रहती हैं जब तक उनके स्वयं-सेवक निवास करने के योग्य कोई अच्छी जगह तलाश कर वापस नहीं आ जाते।

मधुमक्खियों का यह नियम है कि पहले वे छत्ते के समीप के किसी वृक्ष पर जा उतरती हैं। उनके अधिक दूर न जाने का कारण यह है कि रानी अण्डों के बोझ से लदी रहती है और अँधेरे में चुपचाप पड़ी रहने के कारण अपने पंखों का उपयोग प्रायः भूल सी जाती है। इसी अवसर पर मधुमक्खी पालनेवाला अपना छत्ता लिये हुए उनके समीप बेखटके चला जाता और डाली को हिला कर उन सबको बन्दी बना लेता है। बेचारी मधुमक्खियाँ आनन्द में इतनी मस्त रहती हैं कि उस समय क्रोध-भाव से वे सर्वथा रहित होती हैं। वे पकड़नेवालों के चारों ओर मँडराती रहती हैं और उसके मुँह तथा हाथ में बैठती भी हैं, परन्तु डङ्क का प्रयोग नहीं करतीं। पकड़नेवाला भी जानता है कि न उनका समुदाय विभाजित हो सकता है, न वह रौद्ररूप धारण कर सकता है और न तितर-बितर होकर भागने की कोशिश ही कर सकता है। आज उनके आनन्द का दिन है। इसी से वे सम्पत्ति-भंडार की निगरानी से विरत हैं। उनके मन में शत्रुता का भाव नहीं और न वे किसी को अपना शत्रु ही समझती हैं। इस आनन्द का एक-मात्र कारण कर्तव्य-पालन ही कहा जा सकता है। प्रकृति ने इस प्रकार के आनन्द की रचना संसार के सभी प्राणियों के लिए की है और वह उन सबको उस समय प्राप्त होता है जब उनका अन्तिम समय निकट रहता है।

जब मधुमक्खी पालनेवाले के छत्ते पर रानी उतरती है तब उसकी प्रजा भी उसके पीछे हो लेती और छत्ते पर आ जमती है। फिर वे छत्ते के प्रत्येक स्थान, उसकी बनावट, रङ्गत आदि की बातों की जाँच कर उन सबको तथा समीप के भूमि-चिह्नों को अपने ध्यान में ठीक ठीक जमा लेतीं और उस अपरिचित गृह को अपनाकर नूतन नगरी की नीव डालती हैं।

यदि मनुष्य उन्हें अपने अधीन न करले तो उनका इतिहास यहीं पर समाप्त न होजाय। वे सबकी सब स्वयं-सेवकों के वापस आने तक उसी वृक्ष-शाखा पर बैठी रहेंगी। जब सब स्वयं-सेवक भिन्न भिन्न दिशाओं से बसने योग्य स्थान तलाश कर लौट आते हैं तब एक सभा की जाती है और वहाँ प्रत्येक स्वयंसेवक अपने खोजे हुए स्थान का विस्तृत वर्णन कह सुनाता है। यह तो प्रकट नहीं होता कि स्वयंसेवक क्या कहते हैं, पर सभासदों के हाव-भाव से इतना पता अवश्य लगता है कि वे स्वयंसेवकों की बात को बड़े ग़ौर से सुनते हैं। सम्भव है कि स्वयंसेवकों में से कोई अपने देखे हुए खोखले वृक्ष को चलने को कहता हो या किसी टूटे-फूटे मकान में निवास-स्थान बनाने की सलाह देता हो। इसके अनन्तर मधुमक्खियाँ राय क़ायम करती हैं और दूसरे दिन सबेरे, जिस समय मार्ग में किसी प्रकार की बाधा की आशङ्का नहीं रहती सबकी सब गाँव, नदी, झील और मैदान पार करती हुई निश्चित स्थान में जा पहुँचती हैं और परिश्रम से निर्मित अपनी अमरावती को दूसरों के लिए छोड़ कर मरुस्थल में एक नवीन नगरी की नीव डालती हैं। धन्य है इनका साहस और

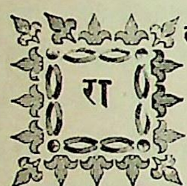
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याग जो अपनी हज़ारों पुत्रियों को पलने में सोती छोड़कर आई हैं, जिनसे फिर इनकी भेंट होना दुर्लभ है। इतना नहीं, किन्तु कठिन परिश्रम से एकत्र किये हुए साठ सेर मधु को भी तिनके के समान तुच्छ समझ कर छोड़ आई हैं, जिसका वज़न नगर भर की मधुमक्खियों के वज़न से बारह गुना और प्रत्येक मधुमक्खी के वज़न से छः लाख गुना अधिक होता है। इस नवीन स्थान में इनके पास न एक बूँद शहद है और न कण भर मोम। क्या यह वीरोचित त्याग की अन्तिम सीमा नहीं है?

वनमालीप्रसाद शुक्ल

महाकवि माघ का प्रभात-वर्णन।



रात अब बहुत ही थोड़ी रह गई है। सुबह होने में कुछ ही कसर है। ज़रा सप्तर्षि नाम के तारों को तो देखिए। वे आसमान में लम्बे पड़े हुए हैं। उनका पिछला भाग तो नीचे को झुका सा है और अगला ऊपर को। वहीं, उनके अधोभाग में, छोटा सा ध्रुव-तारा कुछ कुछ चमक रहा है। सप्तर्षियों का आकार गाड़ी के सदृश है—ऐसी गाड़ी के सदृश जिसका जुवाँ ऊपर को उठ गया हो। इसी से उनके और ध्रुव-तारा के दृश्य को देख कर श्रीकृष्ण के बालपन की एक घटना याद आ जाती है। शिशु श्रीकृष्ण को मारने के लिए एक बार गाड़ी का रूप बना कर शकटासुर नाम का एक दानव उनके पास आया। श्रीकृष्ण ने पालने में पड़े ही पड़े, खेलते खेलते, उसे एक लात मार दी। उसके आघात से उसका अग्रभाग ऊपर को उठ गया और पश्चाद्भाग खड़ा ही रह गया। श्रीकृष्ण उसके तले आ गये। वही दृश्य इस समय सप्तर्षियों की अवस्थिति का है। वे तो कुछ उठे हुए से लम्बे पड़े हैं; छोटा सा ध्रुव उनके नीचे चमक रहा है।

पूर्व-दिशा-रूपिणी स्त्री की प्रभा इस समय बहुत भली मालूम होती है। वह हँस सी रही है। वह यह सोचती सी है कि इस चन्द्रमा ने जब तक मेरा साथ दिया—जब तक यह मेरी सङ्गति में रहा—तब तक उदित ही नहीं रहा, इसकी दीप्ति भी ख़ूब बढ़ी। परन्तु, देखो. वही अब पश्चिम-दिशारू-पिणी स्त्री की तरफ़ जाते ही (हीन-दीप्ति होकर) पतित हो रहा है। इसी से पूर्व-दिशा, चन्द्रमा को देख देख, प्रभा के बहाने, ईर्षा से मुसका सी रही है। परन्तु चन्द्रमा को उसके हँसी-मज़ाक़ की कुछ भी परवा नहीं। वह अपने ही रङ्ग में मस्त मालूम होता है। अस्त समय होने के कारण, उसका बिम्ब तो लाल है; पर किरणें उसकी पुराने कमल की नाल के कटे हुए टुकड़ों के समान सफ़ेद हैं। स्वयं सफ़ेद होकर भी बिम्ब की अरुणता के कारण वे कुछ कुछ लाल भी हैं। कुङ्कुम-मिश्रित सफ़ेद चन्दन के सदृश उन्हीं लालिमा मिली हुई सफ़ेद किरणों से चन्द्रमा पश्चिम-दिग्वधू का शृङ्गार सा कर रहा है—उसे प्रसन्न करने के लिए उसके मुख पर चन्दन का लेप सा लगा रहा है। पूर्व-दिग्वधू के द्वारा किये गये उपहास की तरफ़ उसका ध्यान ही नहीं।

मद्यपान करने से, नशे के कारण, स्त्रियों के मुख पर लालिमा आ जाती है। इस दशा में मदमाती स्त्रियों की स्वाभाविकी लज्जा जाती रहती है और वे अपने मुँह से घूँघट हटा देती हैं। अरुणोदय हो जाने के कारण पूर्वदिग्रूपिणी स्त्री का भी मुख इस समय मदमाती स्त्री ही के मुख के सदृश लाल हो रहा है। घूँघट हट जाने की कसर थी। सो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमा ने अपनी सफ़ेद सफ़ेद किरणों का जाल उसके मुख से हटा कर उस कमी की भी पूर्ति कर दी। इस कारण चन्द्रमा की बदौलत पूर्व-दिगङ्गना का खुला हुआ अरुण मुख, घूँघट से निकला हुआ सा, बहुत ही शोभायमान हो रहा है।

जब कमल शोभित होते हैं तब कुमुद नहीं और जब कुमुद शोभित होते हैं तब कमल नहीं। दोनों की दशा बहुधा एक सी नहीं रहती। परन्तु, इस समय, प्रातःकाल, दोनों में तुल्यता देखी जाती है। कुमुद बन्द होने को हैं, पर अभी पूरे बन्द नहीं हुए। उधर कमल खिलने को हैं, पर अभी पूरे खिले नहीं। एक की शोभा आधी ही रह गई है और दूसरे को आधी ही प्राप्त हुई है। रहे भ्रमर, सो अभी दोनों ही पर मँडरा रहे हैं और गुञ्जारव के बहाने दोनों ही की प्रशंसा के गीत से गा रहे हैं। इसीसे, इस समय, कुमुद और कमल दोनों ही समता को प्राप्त हो रहे हैं।

सायङ्काल जिस समय चन्द्रमा का उदय हुआ था उस समय वह बहुत ही लावण्यमय था। क्रम क्रम से उसकी दीप्ति—उसकी सुन्दरता—और भी बढ़ गई। वह ठहरा रसिक। उसने सोचा, यह इतनी बड़ी रात यों ही कैसे कटेगी; लाओ खिली हुई नवीन कुमुदिनियों (कोकावेलियों) के साथ हँसी-मज़ाक ही करें। अतएव वह उनकी शोभा के साथ हास-परिहास करके उनका विकास करने लगा। इस तरह खेलते कूदते सारी रात बीत गई। वह थक भी गया; शरीर पीला पड़ गया; कर (किरण-जाल) स्रस्त अर्थात् शिथिल हो गये। इससे वह दूसरी दिगङ्गना (पश्चिम दिशा) की गोद में जा गिरा। यह शायद उसने इसलिए किया कि रात भर के जगे हैं; लावो अब उसकी गोद में आराम से सो जायँ।

अन्धकार के विकट वैरी महाराज अंशुमाली अभी तक दिखाई भी नहीं दिये। तथापि उनके सारथि अरुण ने ही, उनके अवतीर्ण होने के पहले ही, थोड़े ही नहीं, समस्त तिमिर का समूल नाश कर दिया। बात यह है कि जो प्रतापी पुरुष अपने तेज से अपने शत्रुओं का पराभव करने की शक्ति रखते हैं उनके अग्रगामी सेवक भी कम पराक्रमी नहीं होते। स्वामी को श्रम न देकर वे खुदही उसके विपक्षियों का उच्छेद कर डालते हैं। इस तरह, अरुण के द्वारा अखिल अन्धकार का तिरोभाव होते ही बेचारी रात पर आफ़त आगई। इस दशा में वह कैसे ठहर सकती थी। निरुपाय होकर वह भाग चली। रह गई दिन और रात की सन्धि, अर्थात् प्रातःकालीन सन्ध्या। सो अरुण कमलों ही को आप इस अल्पवयस्क सुता-सदृश सन्ध्या के लाल लाल और अतिशय कोमल हाथ-पैर समझिए। मधुप-मालाओं से छाये हुए नील कमलों ही को काजल लगी हुई इसकी आँखें जानिए। पक्षियों के कल-कल शब्द को ही इसकी तोतली बोली अनुमान कीजिए। ऐसी सन्ध्या ने जब देखा कि रात इस लोक से जा रही है तब पक्षियों के कोलाहल के बहाने यह कहती हुई कि अम्मा मैं भी आती हूँ वह भी उसी के पीछे दौड़ गई।

अन्धकार गया; रात गई; प्रातःकालीन सन्ध्या भी गई। विपक्षि-दल के एक-दम ही पैर उखड़ गये। तब, रास्ता साफ़ देख, वासर-विधाता भगवान् भास्कर ने निकल आने की तैयारी की। कुलिशपाणि इन्द्र की पूर्व दिशा में, नये सोने के समान उनकी पीली पीली किरणों का समूह छा गया। उनके इस प्रकार आविर्भाव से एक अजीब ही दृश्य दिखाई दिया। आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वडवानल का नाम तो सुनाही होगा। यह एक प्रकार की आग है जो समुद्र के जल को जलाया करती है। सूर्य्य के उस लाल-पीले किरण-समूह को देख कर ऐसा मालूम होने लगा जैसे वही वाडवाग्नि समुद्र की जलराशि को जला कर, त्रिभुवन को भस्म कर डालने के इरादे से, समुद्र के ऊपर उठ आई हो! धीरे धीरे दिननाथ का बिम्ब क्षितिज के ऊपर आगया। तब एक और ही प्रकार के दृश्य के दर्शन हुए। ऐसा मालूम हुआ जैसे सूर्य्य का वह बिम्ब एक बहुत बड़ा घड़ा है और दिग्वधुयें ज़ोर लगा कर समुद्र के भीतर से उसे खींच रही हैं। सूर्य्य की किरणों ही को आप लम्बी लम्बी मोटी रस्सियाँ समझिए। उन्हीं से उन्होंने बिम्ब को बाँध सा दिया है और खींचते वक्त, पक्षियों के कल-रव के बहाने, वे यह कह कह कर शोर मचा रही हैं कि खींच लिया है; कुछ ही बाक़ी है; ऊपर आने ही चाहता है; ज़रा और ज़ोर लगाना।

दिगङ्गनाओं के द्वारा खींच खाँच कर किसी तरह सागर की सलिल-राशि से बाहर निकाले जाने पर सूर्य्य-बिम्ब चमचमाता हुआ लाल लाल दिखाई दिया। अच्छा, बताइए तो सही, यह इस तरह का क्यों है। हमारी समझ में तो यह आता है कि सारी रात पयोनिधि के पानी के भीतर जब यह पड़ा था तब वाडवाग्नि की ज्वाला ने इसे तपा कर ख़ूब दहकाया होगा। तभी तो खैर (खदिर) के जले हुए कुन्दे के अङ्गार के सदृश, लालिमा लिये हुए यह इतना शुभ्र दिखाई दे रहा है। अन्यथा, आपही कहिए, इसके इतने अङ्गार-गौर होने का और क्या कारण हो सकता है?

सूर्य्य-देव की उदारता और न्यायशीलता तारीफ़ के लायक़ है। तरफ़दारी तो उसे छू तक नहीं गई—पक्षपात की तो गन्ध तक उसमें नहीं। देखिए न, उदय तो उसका उदयाचल पर हुआ; पर क्षणही भर में उसने अपने नये किरण-कलाप को उसी पर्वत के शिखर पर नहीं, किन्तु सभी पर्वतों के शिखरों पर फैला कर उन सबकी शोभा बढ़ा दी। उसकी इस उदारता के कारण इस समय ऐसा मालूम हो रहा है जैसे सभी भूधरों ने अपने शिखरों—अपने मस्तकों—पर दुपहरिया के लाल लाल फूलों के मुकुट धारण कर लिये हों। सच है, उदारशील सज्जन अपने चारु चरितों से अपने ही उदय-देश को नहीं, अन्य देशों को भी आप्यायित करते हैं।

उदयाचल के शिखररूप आँगन में बालसूर्य्य को खेलते हुए धीरे धीरे रेंगते देख, पद्मिनियों को बड़ा प्रमोद हुआ। सुन्दर बालक को आँगन में जानु-पाणि चलते देख स्त्रियों का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही है। अतएव उन्होंने अपने कमल-मुख के विकास के बहाने हँस हँस कर उसे बड़े ही प्रेम से देखा। यह दृश्य देख कर माँ के सदृश अन्तरिक्ष-देवता का हृदय भर आया। वह पक्षियों के कल-रव के मिस बोल उठी—आ जा, आ जा; आ बेटा, आ। फिर क्या था; बाल-सूर्य्य बाल-लीला दिखाता हुआ, झट अपने मृदुल कर (किरणें) फैला कर, अन्तरिक्ष की गोद में कूद गया। उदयाचल पर उदित होकर ज़रा ही देर में वह आकाश में आ गया।

आकाश में सूर्य्य के दिखाई देते ही नदियों ने विलक्षण ही रूप धारण किया। दोनों तटों या कगारों के बीच से बहते हुए जल पर सूर्य्य की लाल लाल प्रातःकालीन धूप जो पड़ी तो वह जल परिपक्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदिरा के रङ्ग सदृश हो गया। अतएव ऐसा मालूम होने लगा जैसे सूर्य्य ने अपने किरण-बाणों से अन्धकाररूपी हाथियों की घटा को सर्वत्र मार गिराया हो; उन्हीं के घावों से निकला हुआ रुधिर बह कर नदियों में आ गया हो; और उसी के मिश्रण से उनका जल लाल लाल हो गया हो। कहिए, यह सूझ कैसी है ? बहुत दूर की तो नहीं ?

तारों का समुदाय देखने में बहुत भला मालूम होता है, यह सच है। यह भी सच है कि भले आदमियों को न कष्ट ही देना चाहिए और न उनको उनके स्थान से च्युत ही करना—हटाना ही—चाहिए। परन्तु सूर्य्य का उदय अन्धकार का नाश करने ही के लिए होता है और तारों की श्री-वृद्धि अन्धकार ही की बदौलत है। इसीसे लाचार होकर सूर्य्य को अन्धकार के साथ ही तारों का भी विनाश करना पड़ा—उसे उनको भी ज़बरदस्ती निकाल बाहर करना पड़ा। बात यह है कि शत्रु की बदौलतही जिन लोगों को सम्पत्ति और प्रभुता प्राप्त होती है उनको भी मार भगाना ही पड़ता है—शत्रु के साथ ही उनका भी विनाश-साधन करनाही पड़ता है। न करने से भय का कारण बनाही रहता है। राजनीति यही कहती है।

सूर्य्योदय होते ही भयभीत होकर अन्धकार भागा। भाग कर वह कहीं गुहाओं के भीतर और कहीं घरों के कोनों और कोठरियों के भीतर जा छिपा। मगर वहाँ भी उसका गुज़ारा न हुआ। सूर्य्य यद्यपि बहुत दूर आकाश में था तथापि उसके प्रबल तेज:प्रताप ने छिपे हुए अन्धकार को उन जगहों से भी निकाल बाहर किया। निकाला ही नहीं, किन्तु उसका सर्वथा नाश भी कर दिया। बात यह है कि तेजस्वियों का कुछ स्वभाव ही ऐसा होता है कि एक निश्चित स्थान में रह कर भी वे अपने प्रताप की धाक से दूर-स्थित शत्रुओं का भी सर्वनाश कर डालते हैं।

सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों ही आकाश की दो आँखों के समान हैं। उनमें से सहस्रकिरणात्मक-मूर्तिधारी सूर्य्य ने ऊपर उठ कर जब अशेष लोकों का अन्धकार दूर कर दिया तब वह ख़ूबही चमक उठा। उधर बेचारा चन्द्रमा किरणहीन हो जाने से बहुत ही धूमिल हो गया। इस तरह आकाश की एक आँख तो ख़ूब तेजस्क और दूसरी तेजोहीन हो गई। अतएव ऐसा मालूम हुआ जैसे एक आँख प्रकाशवती और दूसरी अन्धोवाला आकाश काना हो गया हो।

कुमुदिनियों का समूह शोभाहीन हो गया और सरोरुहों का समूह शोभासम्पन्न। उलूकों को तो शोक ने आ घेरा और चक्रवाकों को अत्यानन्द ने। इसी तरह सूर्य तो उदय हो गया और चन्द्रमा अस्त। कैसा आश्चर्यजनक विरोधी दृश्य है ! दुष्ट दैव की चेष्टाओं का परिपाक कहते नहीं बनता। वह बड़ा ही विचित्र है। किसी को तो वह हँसाता है, किसी को रुलाता है।

सूर्य्य को आप दिग्वधुओं का पति समझ लीजिए और यह भी समझ लीजिए की पिछली रात वह कहीं और किसी जगह, अर्थात् विदेश, चला गया था। मौक़ा पाकर, इसी बीच, उसकी जगह पर चन्द्रमा आ विराजा। पर ज्योंहीं सूर्य्य अपना प्रवास समाप्त करके, सबेरे, पूर्व-दिशा में फिर आ धमका त्योंहीं उसे देख चन्द्रमा के होश उड़ गये। अब क्या हो ? और कोई उपाय न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख, अपने किरण-समूह को कपड़े-लत्ते के सदृश छोड़, उपपति के समान गर्दन झुका कर, वह पश्चिम-दिशारूप खिड़की के रास्ते निकल भागा।

महा-महिम भगवान् मधुसूदन जिस समय, कल्पान्त में, समस्त लोकों का प्रलय, बात की बात में, कर देते हैं उस समय अपनी समधिक अनुरागवती श्री (लक्ष्मी) को धारण करके—उन्हें साथ लेकर—क्षीरसागर में अकेले ही जा विराजते हैं। दिन चढ़ आने पर महिमामय भगवान् भास्कर भी उसी तरह एक क्षण में सारे तारा-लोक का संहार करके, अपनी अतिशायिनी श्री (शोभा) के सहित, क्षीरसागर ही के समान आकाश में, देखिए, अब ये अकेले ही मौज कर रहे हैं।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

यहूदी जाति के कुछ पुरुष-रत्न।



साई योरप में यहूदियों ने अपना अस्तित्व क़ायम रखने में कमाल कर दिखाया है। ये लोग प्राचीन रोम के उदय-काल में योरप में आये थे। जो यहूदी इस समय योरप में निवास करते हैं उनमें से अधिकांश लोग उन्हीं के वंशधर हैं। उन्हें योरप में निवास करते हुए लगभग दो हज़ार वर्ष बीता चाहते हैं, पर वे अपना राष्ट्रीयत्व अभी तक अक्षुण्ण बनाये हुए हैं। योरप में इस अभागी जाति पर सदैव भीषण अत्याचार होते रहे हैं, यहाँ तक कि पूर्वी योरप में अभी तक उनकी गणना अन्त्यजों में की जाती है, पर ईश्वर की यह सबसे प्रिय जाति (chosen people) अपनी मौलिकता गँवा देने को कभी तैयार नहीं हुई।

जब यहूदी लोग फ़िलिस्तीन में निवास करते थे, जब वहाँ के आदिम-निवासियों को पराजित कर उन्होंने वहाँ अपना राज्य स्थापित किया था, उस समय मिस्र, असीरिया बैबोलोनिया के शक्तिशाली शासकों ने अवसर पाने पर यहूदी राज्य को बार बार पराभूत किया था। अतएव हमारा अस्तित्व कहीं मिट न जाय, इस विचार से उस समय यहूदी लोगों ने अपने धर्म तथा समाज की रक्षा के लिए कुछ विशेष नियमों की रचना की थी। उन्हीं नियमों को दृढ़ता के साथ पालन करते रहने के कारण ही यहूदियों का अस्तित्व संसार में क़ायम रह सका है। उन नियमों की रचना यहूदी-जाति के नेताओं ने उस समय की थी जब ईसा के कोई ५३६ वर्ष पूर्व बैबोलोनियावालों ने फ़िलिस्तीन के यहूदी राज्य को अपने राज्य में मिला लिया था।

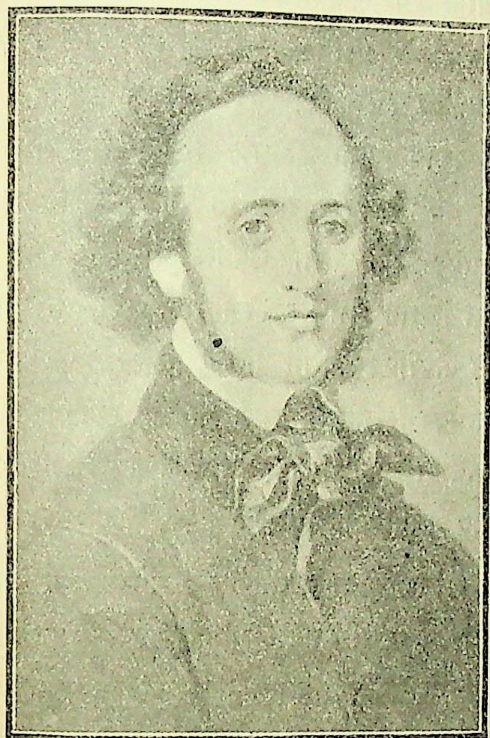
योरप में आने पर यहूदी लोग अपनी विलक्षण बुद्धि के कारण सदा ही समृद्धिशाली रहे हैं। व्यापार की कुशलता में वे उस समय भी अप्रतिम थे। उनकी मितव्ययिता तथा व्यावसायिक प्रवीणता भी कुछ अंशों में ईसाइयों द्वारा उनके अनादर का कारण रही है। अभी पिछली सदी तक उन्हें योरप में भारत के अन्त्यजों की भाँति किसी स्थान के निर्दिष्ट भाग में निर्धारित समय तक ही रहना पड़ता था। इसके सिवा उन्हें एक विशेष प्रकार की पोशाक ही नहीं पहननी पड़ती थी, किन्तु उन्हें उस पर एक पीला चिह्न भी लगाना पड़ता था। यह इसलिए कि ईसाइयों को उन्हें शीघ्र पहचान लेने में कठिनाई न पड़े। इस प्रकार शताब्दियों तक तरह तरह के अपमानों को धैर्यपूर्वक सहते हुए संसार की यह विलक्षण प्राचीन जाति योरप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

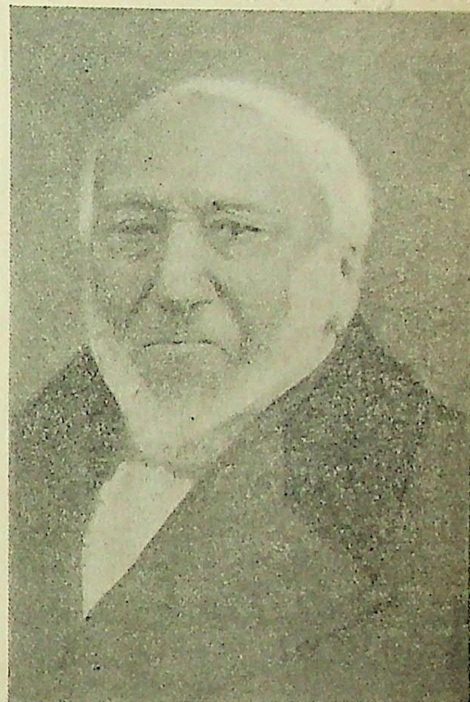
अपनी प्रतिपत्ति पूर्णतया स्थापित करने में सर्वथा समर्थ हुई है।

परन्तु जब से मोजेज़ मेंडेल्सोन नाम के प्रसिद्ध यहूदी सुधारक ने यहूदी समाज को सब प्रकार समुन्नत करने का बीड़ा उठाया तब से यहूदी जाति



फ़ेलिक्स मेंडेलसोन-बर्थाल्डी ।

की ऐसी उन्नति हो गई कि इस समय वह संसार की श्रेष्ठ जातियों में परिगणित हो गई है। उसीके अनवरत परिश्रम की बदौलत यहूदी लोग अपने समाज को देश-काल के अनुरूप बना लेने में सर्वथा समर्थ हुए हैं। उसके लेखों, व्याख्यानों एवं उसके व्यक्तित्व का प्रभाव यहूदियों पर ख़ूब पड़ा। बहुत काल तक यहूदी लोग अपने सिद्धान्तों का पालन दृढ़ता के साथ करते रहे, परन्तु मेंडेल्सोन ने एक नये सम्प्रदाय को जन्म दिया। प्राचीन सिद्धान्तों में से कुछ को त्याग और अवशिष्ट सिद्धान्तों को देश-काल के अनुरूप बना कर उसने यहूदी जाति का ख़ासा सुधार किया। प्राचीन सिद्धान्तों के कट्टर अनुयायियों के भी सम्प्रदाय इस समय अस्तित्व में हैं। उनके सिवा एक तीसरा दल भी सङ्गठित हो गया है जो



सर मोजेज़ मांटीफ़र ।

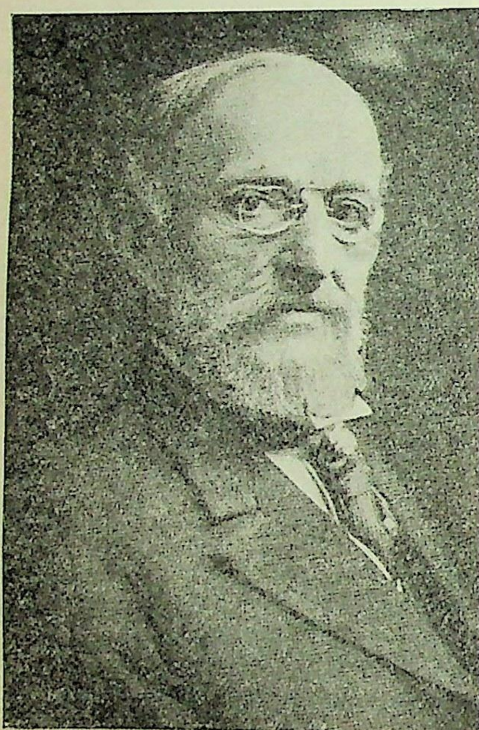
न तो प्राचीन सिद्धान्तों का कट्टर पक्षपाती है और न उनके प्रति अधिक उदार ही है। फलतः नये सुधारक दल का प्रभाव यहूदियों के लिए सब प्रकार से हितकारक हुआ।

नये सुधारों के हो जाने से यहूदी समाज में जिस नवजीवन का सञ्चार हुआ उससे उसकी प्रतिपत्ति ख़ूब बढ़ी। इसके फल-स्वरूप पिछली शताब्दियों में पाश्चात्य देशों में ऐसे अनेक यहूदी नर-रत्नों ने जन्म ग्रहण किया जिनकी गणना संसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के श्रेष्ठ पुरुषों में की गई। सङ्गीत-कला में यहूदी लोग पहले ही से प्रवीण थे। मोजेज़ मेंडेल्सोन के पौत्र मेंडेल्सोन-बर्थाल्डी का नाम इस सम्बन्ध में आदर से लिया जाता है। योरप की दो सर्वश्रेष्ठ नटियाँ, सारह बर्नहार्ट और रेचल यहूदी जाति की हैं। फ़्रांस और इटली में यहूदियों को मन्त्रियों के उच्च-पद प्राप्त हुए



ओस्कार एस स्ट्रास।

हैं। संसार के नामी नामी मानव-हितैषी तथा दान-वीरों में सर मोजेज़ मान्टी फ़र की भी गणना की जाती है। बेनजमिन डिसराइली इँग्लेंड के प्रधान मन्त्री तक हो चुके हैं। प्रसिद्ध धन-कुबेर लायनल नाथन राथ चाइल्ड योरप के एक प्रसिद्ध यहूदी घराने के हैं। इन्हें अँगरेज़ी पार्लियामेंट का सदस्य बनाने के लिए उसके नियमों में परिवर्तन करना पड़ा था। इसके बाद तो अनेक प्रतिभाशाली यहूदी नररत्नों का सम्मान इँग्लेंड में हुआ। इस समय भी इस सम्बन्ध में भारत के स्टेट सेक्रेटरी मिस्टर मांटेगू और भारत के वायसराय लार्ड रीडिंग का नाम उल्लेखनीय है। तुर्क सरकार के प्रसिद्ध मन्त्रिप्रवर उस्कार एस० स्ट्रास ने अपनी प्रतिभा की बदौलत न्यूयार्क के पबलिक सर्विस कमीशन के सभापति आदि जैसे पदों को सुशोभित कर अपनी जाति के गौरव को बढ़ाया है।

यद्यपि जर्मनी में यहूदियों को शासन-सम्बन्धी उच्च पद नहीं प्राप्त हुए, तो भी वहाँ के यहूदियों ने पाण्डित्य में ख़ासी ख्याति प्राप्त की। कई एक यहूदी विद्वान् साहित्य, विज्ञान और इतिहास में उच्च कोटि के पण्डित गिने गये हैं। एम्सटर्डम के दार्शनिक-प्रवर स्पिनोज़ा, अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो और साम्यवादी कार्ल मार्क्स का नाम संसार में प्रसिद्ध है। ये सब यहूदी-जाति-सम्भूत हैं।

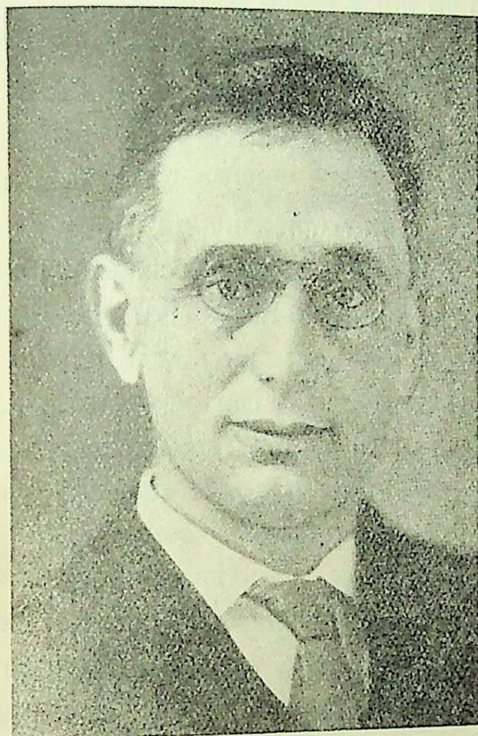
संसार के अन्य नगरों की अपेक्षा अमरीका के न्यूयार्क नगर में यहूदी अधिक संख्या में रहते हैं। वहाँ उनकी संख्या पन्द्रह लाख के ऊपर पहुँच गई है। संयुक्त-राज्यों में उन्होंने अपने बुद्धि-बल से अपनी प्रतिपत्ति बढ़ाने में बहुत कुछ सफलता प्राप्त की है। लुई डी० ब्रेंडिस संयुक्त-राज्यों के एक प्रसिद्ध क़ानून-दाँ हैं। प्रेसीडेन्ट विलसन ने इन्हें वहाँ के सुप्रीम कोर्ट का न्यायाधीश बना कर गौरवान्वित किया था। इसी प्रकार एक दूसरे यहूदी विद्वान् फ़ेलिक्स एडलर का भी वहाँ ख़ूब सम्मान है।

जिस रूस-साम्राज्य में यहूदियों की ज़रा भी वक़त न थी, जहाँ अभी गत युद्ध के पहले तक यहूदी पतित समझे जाते थे, उसी कट्टर ईसाई साम्राज्य के भाग्य-विधाता इस समय केवल दो यहूदी हो रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इनके नाम लेनिन और ट्रोज़की हैं। यही रूस की वर्तमान सोविट सरकार के कर्णधार हैं। सारांश यह कि इस समय यद्यपि यहूदियों का कोई निजी देश नहीं है, यद्यपि उनकी आदि निवास-भूमि में उनके जाति-बन्धुओं की अवस्था संतोषजनक नहीं है तो भी वे संसार के उन देशों को, जहाँ वे इस



लुई डी० ब्रेंडिस।

समय निवास कर रहे हैं, अपना देश मान कर उनके श्रेष्ठ नागरिक हो जाने में सर्वथा कृतकार्य हुए हैं। यहाँ यह बात ध्यान में रख लेनी चाहिए कि इस स्थिति को प्राप्त कर लेने पर भी उन्होंने अपना रूप मिटा नहीं दिया। वे यहूदी के यहूदी ही बने रहे। यही नहीं, किन्तु उनके नेतागण अपने मूल स्थान को यहूदियों के लिए प्राप्त करने की चेष्टा में इस समय भी संलग्न हैं। यही इस जाति की एक अद्भुत विशेषता है।

गिरिजाशङ्कर वाजपेयी

साहित्य-सम्मेलन की योजना।



मैं साहित्य का बड़ा अभिमानी हूँ, साहित्य-सेवा करने की इच्छा मेरे हृदय में बचपन ही से हो रही थी, पर कुछ कार्य कर दिखाने का अवसर अब तक नहीं मिला। एक बार मेरे हृदय की वह (साहित्य-सेवा) भावना इस प्रकार उद्दीप्त हुई थी कि अपने गाँव में साहित्य-सम्मेलन करने की चेष्टा मैं कर बैठा। उसी का इतिहास मैं आज साहित्य-सेवकों के सामने सादर उपस्थित करता हूँ।

एक दिन मैं एक हिन्दी दैनिक पत्र पढ़ रहा था, उसमें पटना के साहित्य-सम्मेलन का वृत्तान्त प्रकाशित हुआ था। उसे पढ़ते ही मैंने निश्चय कर लिया कि किसी प्रकार अपने गाँव में भी साहित्य-सम्मेलन होना चाहिए।

गाँव में मेरे दो मित्र थे। एक तो थे सुखराम चौबे और दूसरे का शुभ नाम ढोलकसहाय पाँड़े था। इनके चरित्र की चर्चा मैं इस समय करना नहीं चाहता, पर कुछ बातें अवश्य कह दूँ। मैं तथा पाँड़ेजी समानशील हैं। हम दोनों के मन में सनातन-धर्म का अभिमान तथा पाश्चात्य आचार-विचारों की घृणा विराजमान है। चौबेजी के चरित्र के बारे में कुछ कहना मेरी शक्ति के बाहर है। उनके स्वभाव का वर्णन करने को कालिदास तथा शेक्सपीयर जैसे कवि भी असमर्थ हैं। साहित्य-सम्मेलन का विचार मन में आते ही मैंने अपने परम प्रिय मित्रों को अपने घर बुलाया और उनसे अपना विचार निवेदन किया। उन्होंने भी अपनी सम्मति दे दी।

आकाश से स्पर्धा करनेवाला महल बनाने के लिए उसकी नींव पाताल तक गहरी देने से ही कार्य का आरम्भ करना पड़ता है। अतएव सम्मेलन करने की चेष्टा करने के पूर्व हमें लेखक तथा ग्रन्थकार बनना आवश्यक था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन के लिए लेखकों को हमें निमन्त्रण देना पड़ता और लेखकों को निमन्त्रण देना लेखक को ही शोभा देता है। सम्मेलन में कुछ प्रस्ताव ग्राम-वासियों द्वारा उपस्थित करना रूढ़ि की बात है और इस काम के लिए ग्रन्थकार ही योग्य समझे जाते हैं।

स्वयं ग्रन्थ लिखने की चर्चा जब हम करने लगे तब चौबेजी के मुखचन्द्र को ग्रहण सा लगने लगा, पर हमने उन्हें इस काम में सहायता करने का वचन दिया तब वे भी ग्रन्थ लिखने को राज़ी हो गये। पर उन्होंने हमारी सहायता लेना बिलकुल इन्कार कर दिया। हर एक ने अपना ग्रन्थ एक ही महीने के भीतर छपवा कर तैयार करने का निश्चय किया। दूसरे ही दिन से मैं अपने एक मित्र की सहायता से एक अँगरेज़ी उपन्यास का अनुवाद करने लगा। अनुवाद का कार्य एक सप्ताह में समाप्त हो गया। मैंने अपने मित्र को छुट्टी दे दी। दूसरे हफ़्ते में उसके अँगरेज़ी नाम बदल उनकी जगह देशी नाम रखने का कठिन कार्य समाप्त कर दिया गया। अँगरेज़ी उपन्यास होने के कारण उसमें पाश्चात्य-सभ्यता का चित्र-चित्रण स्वाभाविक ही है। मैंने उसके सब पात्रों को देशी जंटलमैन बना दिया। इसे करने में मुझे अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता न पड़ी और लगे हाथ अपने अँगरेज़ी-शिक्षित समाज की टीका करने का सुअवसर मिल गया। उस उपन्यास में दुष्ट पात्र के दुराचार का जब जब वर्णन आता था तब तब मैं "यह देखो अँगरेज़ी शिक्षण का प्रभाव" "देखिए कालर नेकटाई लगाने का परिणाम !!" इस प्रकार चुटकियाँ लेना कभी न भूलता। उक्त उपन्यास सुखान्त था। पाश्चात्य सुधारों का अनुकरण करनेवाले नायक ने अन्त में अपने दिन सुख से व्यतीत किये, यदि यह मैं अपने उपन्यास से हिन्दू-समाज को प्रदर्शित कर दूँ तो इसका प्रभाव सारे समाज पर बुरा पड़ेगा। अतएव मैंने अपने अनुवाद में उसका अन्त इस प्रकार किया:—

"हमारे कथानक की नायिका अपने पति के साथ रेलगाड़ी में जा रही थी। जब रेलगाड़ी एक पुल पर पहुँची तब उनका डिब्बा अचानक पुल से नदी में गिर पड़ा और वह अपने पति के साथ वहीं डूब कर मर गई। गाड़ी के दूसरे डिब्बों में से एक भी नहीं गिरा, क्योंकि उसके यात्री हरिद्वार के मेले को जानेवाले भावुक हिन्दू थे। देखिए, भगवान् अपने भक्तों तथा दुष्टों की ओर किस दृष्टि से देखता है!" उपन्यास अनुवादित है, यह मैं प्रकट करना नहीं चाहता था। और उसके प्रकाशित होने पर चोरी का दोष मुझे न लगे, इस दूर दृष्टि से उसकी भूमिका में मैंने एक वाक्य इस प्रकार लिख दिया—

"यह उपन्यास किसी पुस्तक का अनुवाद नहीं है। यदि यह उपन्यास (यहाँ मैंने अँगरेज़ी उपन्यास का नाम लिखा दिया) इस नाम के उपन्यास से मिलता हो तो कुछ भी अनुचित नहीं है, क्योंकि मेरे विचार एक प्रसिद्ध अँगरेज़ लेखक से ठीक मिल जाने से मैं प्रशंसा का पात्र हूँ'। भूमिका के अन्त में मैं अपने मित्र को अनुवाद करने में सहायता देने के लिए धन्यवाद देना न भूला।

जब उपन्यास तैयार होगया तब मैंने शीघ्र प्रकाशित करने के लिए उसे कलकत्ते भेज दिया। प्रकाशक की सलाह के अनुसार उसमें कुछ चित्र तथा पुस्तक के आरम्भ में लेखक (मेरा) का फ़ोटो भी लगा दिया गया। पर चित्रकार ने चित्र अङ्कित करने में भूलें कर दी थीं। चित्रों के नीचे लिखे जानेवाले जो वाक्य उसने अङ्कित किये थे उनके अक्षर अस्पष्ट थे। उपन्यास-लेखक से विरोध रहने के कारण ही उसने ऐसा किया था। एक जगह नायिका-नायक के आलिङ्गन का वर्णन था। पर चित्रकार ने अपने चित्र में नायिका-उपनायक का आलिङ्गन चित्रित किया था। उपनायक कृष्ण रात्रि के समय दान-पत्र की चोरी कर रहा है, इसका चित्र खींचने में चित्रकार ने बड़ी कुशलता की। चित्र का सम्पूर्ण भाग ठीक रीति से पाठकों को दीख पड़े, इसलिए उसने आकाश में सूर्य रख दिया और दान-पत्र के पढ़ने में तकलीफ़ न हो, इसलिए उसे स्कूल का "ब्लैक बोर्ड" बना कर उसके अक्षर ख़ूब बड़े बड़े अङ्कित कर दिये।

एक जगह तो आप कमाल कर बैठे। उपन्यास के अन्त में उपनायक को फाँसी देने का वर्णन था, पर कोमल हृदय होने के कारण चित्रकार ने अपने चित्र में उपनायक को जङ्गल को भगा कर फाँसी पर स्वयम् ग्रन्थकार को ही लटका दिया था। ख़ैर, चित्रकार के दोषों को शुद्धि-पत्र में मैंने शुद्ध कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँड़ेजी साहित्य के ललित-भाग को बिलकुल नापसन्द करते थे। उपन्यास तथा नाटक का नाम सुनते ही उनका सिर घूमने लगता था, भारत की शोकजनक स्थिति होने के जो कारण वे बताते थे उनमें से उपन्यास तथा नाटकादि का साहित्य प्रमुख कारण था। छोटे छोटे बच्चों को गल्प की किताब देने की अपेक्षा गणित, भूगोल तथा व्याकरण की पुस्तकें देना ही हितकारक है, यह वे प्रायः कहा करते थे।

पाँड़ेजी गम्भीर तथा शास्त्रीय साहित्य के भक्त होने से उनका ग्रन्थ भी गम्भीर-विषयक ही होगा, यह हम समझते थे और यही हुआ भी। पाँड़ेजी ने एक महीने के भीतर अङ्कलिपि की एक पुस्तक प्रकाशित कर दी। शायद कोई महाशय यह कह बैठें कि अङ्कलिपि में लेखक की कल्पना-शक्ति को प्रश्रय नहीं मिल सकता, परन्तु पाँड़ेजी तो कल्पना के अवतार ही थे। उन्होंने अपनी कल्पना-शक्ति का उपयोग अङ्कलिपि में अच्छी तरह किया था। उन्होंने विषयों की योजनाही भिन्न कर दी। जहाँ दो का पहाड़ा चाहिए वहाँ सत्रह का पहाड़ा आपने लिखा और जहाँ "सवाई" चाहिए वहाँ "अढ़ाई" लिखा था। अढ़ाई चाँवल की खिचड़ी किस प्रकार अलग पकाई जाती है, इसका परिचय आपने करा दिया। कहने का सारांश यह कि कम्पोज़ीटरों ने उसे भूकम्प होते समय कम्पोज़ किया था, पाँड़ेजी की कल्पना ने एक जगह और भी लम्बी उड़ान भरी। उन्होंने अन्दाज़ कर देखा कि केवल अङ्कलिपि की पुस्तक बहुत छोटी होगी। उसका आकार बड़ा करना आवश्यक है। अतएव अङ्कलिपि के साथ एक "भूल-सुधार" जोड़ने का निश्चय उन्होंने किया। "भूल-सुधार" बड़ा हो, इसलिए उन्होंने अङ्कलिपि में जान-बूझ कर अनेक अशुद्ध प्रयोग किये। दो दूने सात, चार तियाँ उन्नीस, चार एकम् पाँच, आदि जैसी अनेक "भूलें" थीं और इनका "सुधार" "भूल-सुधार" में किया गया था। इस प्रकार पाँड़ेजी ने अपने ग्रन्थ का कार्य समाप्त किया। अब रहे चौबेजी! सो उनसे मैं निराश होने लगा। मैंने सोचा कि उनके ऊपर मैंने व्यर्थ ही जञ्जाल लाद दिया। निर्धारित समय के आठ दिन चौबेजी ने अपना मस्तक खुजलाने ही में बिता दिये। उन्होंने उसे इस प्रकार खुजलाया कि उस पर एक बड़ा भारी फोड़ा निकल आया, पर ऊपर के फोड़े ने मस्तक के भीतर का समाधान नहीं किया। वे रोज़ मेरे यहाँ आते और "ग्रन्थ किसे कहते हैं?" "कितने पृष्ठों का होना चाहिए?" "हर एक पृष्ठ पर कितने अक्षर लिखना चाहिए?" "ग्रन्थ के पन्ने किस रङ्ग के होना चाहिए?" इत्यादि प्रश्न किया करते। ऐसे ही प्रश्नों के समाधान में आठ दिन खो देने पर चौबेजी आगे क्या कर दिखावेंगे, इसका अनुमान हमने कर लिया।

पर कुछ दिन बाद मुझे यह प्रतीत होने लगा कि मैंने ग़लत अनुमान किया था। अब चौबेजी घर के बाहर भी न निकलने लगे। रात में बारह बजे तक उनके शयन-मन्दिर में चिराग़ का उजेला दिखाई पड़ने लगा। एक दिन वे मुझसे कलंडर माँग ले गये। मैंने समझा कि अब वे अपने अवशिष्ट दिनों को काम में लगावेंगे।

तीसरे सप्ताह के अन्त में मुझे ख़बर मिली कि उनका ग्रन्थ भी छपने के लिए भेज दिया गया। यह सुन कर मैं चौबेजी की प्रतिभा की सराहना करने लगा। मैंने यह भी सुना कि उनके ग्रन्थ की पृष्ठ-संख्या लगभग चार सौ पहुँचेगी। यह समाचार पाते ही मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। कभी कभी नर का नारायण किस प्रकार बन जाता है उसका साक्षात् दृष्टान्त चौबेजी हैं। उनसे भेंट होने पर मैं उनकी प्रतिभा की ख़ूब तारीफ़ करता। जब वे मुझसे मिलते तब मैं उनके साथ बड़े आदर से बर्ताव करता। अगले महीने की पहली तिथि की राह में उत्सुकता से देखने लगा। उसी दिन चौबेजी के ग्रन्थ के देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त होनेवाला था। इस तरह चौबेजी के ग्रन्थ के आगे मैं अपने ग्रन्थ का नाम तक भूल गया। दूसरे महीने की पहली तिथि के आते ही मैं अपने ग्रन्थ की एक कापी लेकर चौबेजी के यहाँ पहुँचा। चौबेजी के सामने उनके प्रचण्ड ग्रन्थों की राशि लगी थी, वे उसकी ओर अभिमानभरी दृष्टि से देख रहे थे।

मुझे देखते ही चौबेजी ने कहा—सत्य ही ग्रन्थ लिखना कोई बड़ी बात नहीं है। जब तक उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता तब तक वह कठिन दीखता है, पर कार्य में भिड़ जाने पर वह बिलकुल सरल प्रतीत होता है।

अपने भारी ग्रन्थ-लेखन से मैं निराश न होऊँ इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश से वे फिर बोले, "अच्छा, आप तो अपना ग्रन्थ दिखावें। फिर मैं अपना ग्रन्थ दिखाऊँ। आप निराश न हों। आपका यह पहला ही प्रयत्न है और मैं आपसे अधिक आशा भी नहीं करता"।

मैंने बड़ी कठिनाई से लजाते लजाते अपनी पुस्तकें चौबेजी के सामने रख दीं। उन्हें दोनों हाथों में लेकर उनके वज़न का अन्दाज़ा करते चौबेजी ने कहा, "एक महीने के भीतर इतने वज़न की पुस्तक लिख कर आपने जो साहित्य-सेवा की है वह सराहनीय है। मैंने भी अपनी बुद्धि के अनुसार यह चार सौ पृष्ठ का ग्रन्थ लिखा है।" इतना कह कर उन्होंने कपड़े की जिल्द बँधी हुई एक बड़ी किताब पाँड़ेजी के सामने रख दी।

पाँड़ेजी उस पुस्तक के कुछ पन्ने देख कर और उसका नाम पढ़ कर ख़ूब ज़ोर ज़ोर से हँसने लगे। पेट भर हँस लेने के बाद उन्होंने चौबेजी से कहा, "वाह! चौबेजी, यह तो डायरी है! इसी के लिए आप मुझे एक महीना धोखा देते रहे। इसके कोरे पन्ने तुम्हारे कोरे मस्तिष्क को ही शोभा देंगे। ख़ैर, डायरी ही होती तो वह आगामी अथवा इस वर्ष की तो होती, पर आपकी अक्ल तो मात कर बैठी। यह पिछले साल की डायरी कौन ख़रीदेगा"। बेचारे चौबेजी सिर नीचा किये ही बैठे रहे। फिर वे बोले, "इस डायरी की दो हज़ार प्रतियों में से यदि एक भी न बिकी तो भी हमें समाधान ही होगा।"

"वह कैसे?"

"इस डायरी में कई अशुद्धियाँ रह गई हैं और इसका शुद्धि-पत्र डायरी के साथ जोड़ना भूल से रह गया। जिस वर्ष की डायरी लिखी है उस वर्ष में फ़रवरी महीने के उनतीस दिन थे, पर डायरी में भूल से तीस दिन हो गये! उसका परिणाम यह हुआ कि आगे की तारीख़ों के दिनों में गड़बड़ी हो गई। अधिक मास भी इसी वर्ष में था, पर उसका नाम तक डायरी में नहीं है। इससे एक बात यह भी हो गई कि दिवाली हमारे डायरी में एक मास पूर्व आ गई। ख़ैर, मैंने जो भूलें कीं सो तो कीं, पर कम्पोज़ करनेवाले भी मूरखचन्द ही निकले।"

मैंने चौबेजी से कहा—"चौबेजी, डायरी पिछले साल की है, इसमें कई अशुद्धियाँ रह गई हैं। इन बातों का विचार आप न करें। ग्रन्थकार होना तो इससे सिद्ध ही हो गया। अब आगे का काम देखना चाहिए।

अगले रविवार को वाचनालय में एक सभा करने का निश्चय हुआ। उस सभा की सूचना आम लोगों को मिल जाय, इस उद्देश से मैंने निमन्त्रणपत्र छपवाये और गाँव भर में बाँट दिये। उसके नीचे हम तीनों के हस्ताक्षर "नूतन स्वतन्त्र उपन्यासलेखक" "स्वतन्त्र अङ्कलिपि लेखक" तथा "सम्मेलन डायरीकार" इस प्रकार थे।

सभा का समय हो गया। शाम को चार बजे यथासमय हम सभा-स्थान पहुँचे। सभा में ख़ूब भीड़ होगी, इस विचार से हम बन्दोबस्त के लिए दो पुलिसमैन अपने साथ ले आये। सभास्थान पहुँचे पर हमें वहाँ एक भी व्यक्ति न देख पड़ा। बुढ़ापे से दृष्टि मन्द हो गई हो, इसलिए हमने ऐनक को ख़ूब साफ़ कर आँखें फाड़ फाड़ कर वहाँ देखा, पर कोई भी व्यक्ति हमें न दीखा। भीड़ का बन्दोबस्त करने को हम पुलिस ले गये थे, पर वहाँ भीड़ थी ही नहीं! वे आनन्द से इधर उधर टहलने लगे। नियमित समय पर न आने की हम लोगों की आदत होती है, इस विचार से हम सभासदों की प्रतीक्षा करने लगे।

इस प्रकार दो घंटे बीत गये, पर एक भी सभासद न आया। वाचनालय में पुस्तकें लेने रोज़ कोई न कोई अवश्य आया करता था, पर आज कोई भी न आया। साढ़े चार के समय कुछ लोग इस ओर आ रहे थे, पर पुलिस को देख कर वे घर लौट गये। उस गाँव में हमारे विषय में कई तरह की गप्पें उड़ी थीं। उसका सारांश यह था कि पुलिस ने हमें पकड़ कर वाचनालय में क़ैद कर दिया है।

बहुत देर तक प्रतीक्षा करने तथा किसी को न आया देख कर हम तीनों ही ने सभा का कार्य समाप्त करने का निश्चय किया। पाँड़ेजी को सभापति बनाने का प्रस्ताव मैंने पेश किया और उसका समर्थन चौबेजी ने किया। पाँड़ेजी की योग्यता के कारण यह प्रस्ताव सबने स्वीकृत कर लिया। पाँड़ेजी सभापति के आसन पर उपस्थित हुए। "इस सभा में मेरी अपेक्षा अधिक योग्य पुरुष होने पर भी आपने मुझे सभापति बना कर सम्मानित किया है, इसके लिए मैं आपका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतज्ञ हूँ'', ऐसा विनयपूर्ण भाषण पाँड़ेजी ने किया। उसे सुन कर प्रस्तावक और समर्थक महाशयों ने करतलध्वनि की।

अपने गाँव में साहित्य-सम्मेलन करना आवश्यक है, इस अर्थ का एक प्रस्ताव चौबेजी ने सभा के सम्मुख उपस्थित किया। मैंने उसका समर्थन किया। समर्थन करते समय मैंने इतना प्रभावशाली वक्तव्य दिया कि दो पुलिसमैनों के चिलम फूँकने की क्रिया छोड़ कर सारी सभा संगमर्मर के पुतले के समान शान्त हो गई। तीसरा प्रस्ताव स्वयं सभापति महोदय ने उपस्थित किया। वह प्रस्ताव सम्मेलन में आनेवाले साहित्य-भक्तों के रहने और खाने-पीने के बन्दोबस्त के सम्बन्ध का था। वह भी पास हुआ।

इस प्रकार वह सभा शांत रीति से समाप्त हो गई। पुलिस के सिपाही सभा का बन्दोबस्त ठीक रीति से करने का इनाम माँग कर चले गये। हम भी अपने घर लौटे।

दूसरे दिन से हम चन्दा वसूल करने लगे। इस कार्य में ऐसा विचित्र अनुभव हुआ कि यदि परमेश्वर हमें ''वासिल बाक़ी नवीस'' बनाता तो भी उतना कष्ट न होता जितना इस कार्य में हुआ। हमें आते देख कर कई लोग अपने नौकरों द्वारा ''मालिक घर में नहीं हैं'' का सन्देश सुनाते तो कई महाशय स्वयं ''मैं घर में नहीं हूँ'' ऐसा स्पष्टोत्तर दे देते थे। उनके वचनों पर शङ्का प्रकट करते ही वे कहते ''मैं स्वयं घर में नहीं हूँ, कहने पर भी यदि आपको विश्वास न होता हो तो आपकी भलाई को हम दूर से प्रणाम करते हैं''। कई महोदय हमें आते देख कर एकाध पुस्तक खोल कर पढ़ने में इतना मग्न हो जाते कि उनका कान खींच कर उनसे अपने आगमन की बात कहे बिना काम ही न चलता। हमें देख कर कई लोग अपने नौकरों पर क्रोधित होकर गालियाँ देने लगते, और उसका अर्थ समझ कर हमें अपने मार्ग पर चला जाना ही योग्य दीखता। हम एक महाशय के यहाँ चन्दा वसूल करने को गये थे। हमें देखते ही उन्होंने अपने कुत्ते को छू कर उसे हमारा स्वागत करने को भेज दिया। उसे अपनी ओर आता देख कर चौबेजी अपना लम्बा उदर हाथों से सँभाल कर भागने लगे और पाँड़ेजी इतने घबराये कि उनकी मृत्यु के बाद उनकी इस्टेट की क्या व्यवस्था करनी होगी यह जल्दी जल्दी मुझसे कह गये।

कई लोगों ने चन्दा देना स्वीकार किया और शीघ्र ही अदा कर देने का वचन भी दिया। पर इसके बाद वे अपने घर ही पर न रहने लगे। हम लोग चन्दा वसूल करने को सवेरे निकलते हैं, यह समाचार गाँववालों को मालूम होते ही वे उस समय अखाड़े को जाने लगे। सारांश यह कि व्यायाम-सम्बन्धी अनेक व्याख्यानों के देने से व्यायाम के प्रचार में जो सफलता न होती वह हमारे चन्दा वसूल करने से अनायास ही होने लगी। सारा गाँव हमसे इतना डरने लगा कि जिस महल्ले में हम पधारते वहाँ से ऊजड़ कर गाँव के दूसरे भाग में मनुष्यों की भीड़ लग जाती। एक सहृदय महाशय ने हमें घर आते देख कर कुँए में कूद कर आत्महत्या कर ली। यह सब देख कर हमने चन्दा वसूल करना बन्द कर दिया। जो कुछ इकट्ठा हुआ था उसी से सम्मेलन का कार्य निपटाना निश्चित किया। इतने थोड़े चन्दे में सम्मेलन का ख़र्च कैसे चलेगा, यह हम सोचने लगे। हमने हर एक बात में कम ख़र्च करने का विचार किया। सम्मेलन के लिए अलग मण्डप न बना कर वाचनालय ही में उसका अधिवेशन करने का निश्चय किया गया। इसके बाद अतिथियों के ठहराने का प्रश्न उपस्थित हुआ। चौबेजी का घर ख़ूब लम्बा-चौड़ा था और उसमें अतिथियों के ठहरने की व्यवस्था हो सकती थी। पर छापाख़ानेवालों ने उनकी डायरी के छपाई तथा काग़ज़ आदि के ख़र्च के लिए उस मकान पर कुड़की निकलवा ली थी। यदि वहाँ अतिथि ठहराये जायँ तो उनके भी सामान के कुड़क हो जाने की सम्भावना थी। पाँड़ेजी का भी घर अच्छा था, पर उसमें खटमल इतने अधिक थे कि वहाँ एक रात्रि सोने पर दूसरे दिन अतिथियों को सम्मेलन में उपस्थित होने का अवसर मिलना असम्भव था। अन्त में हमने अतिथियों के लिए धर्मशाला ठीक की। धर्मशाला अधिक बड़ी न थी। अधिक अतिथियों के आने से उनके रहने के लिए स्थान की कठिनाई थी, इसलिए वे अधिक संख्या में न आवें, इसके लिए हमने एक युक्ति सोची।

निमन्त्रण-पत्र भेजते समय उसमें एक वाक्य इस प्रकार लिख देने का विचार किया गया—

''गाँव में प्लेग होने के चिह्न दीख पड़ते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिथियों के ठहरने का बन्दोबस्त जिस जगह किया गया है वहाँ भी प्लेग से मरे हुए दो-चार चूहे मिले। पर साहित्य के सच्चे सेवक इन कठिनाइयों पर ध्यान नहीं देवेंगे, ऐसी हम आशा करते हैं।''

फिर विचार करने पर हमें यह प्रतीत होने लगा कि ऐसा लिखने से लाभ नहीं। कई साहित्य-सेवक "इना-कुलेशन" करवा कर यहाँ पधारेंगे और यदि किसी के यहाँ सचमुच प्लेग हो तो वह अपने साथ प्लेग लेता आवेगा। अन्त में वह वाक्य निमन्त्रण-पत्र में न जोड़ा गया। अब इनके खाने पीने का क्या बन्दोबस्त किया जाय? चन्दा तो था ही नहीं। फिर यह काम कैसे हो सकता था? इसके लिए क्या उपाय करना चाहिए? हम लोग अपना सिर खुजलाने लगे।

पाँड़ेजी की कल्पना-शक्ति का परिचय पाठकों को थोड़ा बहुत हो ही गया है। उसका उपयोग यहाँ भी किया गया। हमारे धर्मशास्त्र में तप को आदर्श माना है। तपस्वी मनुष्य का आदर राजद्वार में भी होता था। किसी भी वस्तु के साध्य होने में तप करना पड़ता था। जब पार्वतीजी तप करती थीं उस समय वे कुछ वृक्षों के पत्ते खाकर रहती थीं। पर जब उससे उनके तप में बाधा पड़ने लगी तब उन्होंने पर्ण (पान) भी खाना छोड़ दिया। इसी से उनका नाम 'अपर्णा' पड़ा। कहने का सारांश यह कि उपवास तप का एक प्रमुख अङ्ग है। पांड़ेजी ने अपनी इस कल्पना को साहित्य-सेवकों के निमन्त्रण-पत्र में सूचित कर दिया। साहित्य-सेवा भी एक तप है। उसकी सिद्धि के लिए उसके भक्तों को तप करना आवश्यक है। इसी लिए साहित्य-सम्मेलन का कार्य धार्मिक विधि से किया जायगा। अतएव सम्मेलन भर साहित्य-सेवकों को उपवास करना पड़ेगा। यदि कोई अधार्मिक साहित्य-सेवक भोजन करने की इच्छा करे तो उसे स्वयं अपना बन्दोबस्त करना पड़ेगा। किसी का काम बिना दूध पीये अटक जाय तो रुपया का सोलह सेर के हिसाब से दुधिया रङ्गी पानी का ठेका भोलाराम अहिर को हमने दे रक्खा।

हमने ऊपर कह ही दिया है कि सम्मेलन में धर्म को अग्रस्थान दिया गया था। उसकी पूर्ति के लिए हमने कुछ नियम बनाये थे जिन्हें यहाँ आनेवाले साहित्य-सेवकों को पालन करने पड़ते। वे इस प्रकार थेः—

१. यदि साहित्य-सेवक ब्राह्मण हो तो गाड़ी से उतरते ही उसे स्वागतकारिणी समिति को अपना जनेऊ और शिखा बतानी होगी।

२. प्रातःकाल और सन्ध्या समय सबको परमेश्वर की प्रार्थना करनी पड़ेगी।

३. सबको सम्मेलन के दिन उपवास करना आवश्यक है।

४. इन नियमों का पालन जिन ग्रन्थकारों तथा साहित्याभिमानियों से न हो सके वे कृपया यहाँ आने का कष्ट न उठावें।

इस प्रकार ख़र्च का बन्दोबस्त हमने कुशलता से कर लिया। स्वागतकारिणी समिति को स्वागत के काम में अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ेगा, इसलिए उन्हें रोज़ पेट भर हलुवा-पूरी का भोजन सम्मेलन से मिलने का प्रस्ताव हमने पास कर लिया। चौबेजी ने हलुवा-पूरी बनाने का भार अपने ऊपर लेने का विचार प्रकट किया, पर हलुआ-पूरी बनाने के साथ ही वे स्वयं उसे अपने विशाल उदर में स्थान देवेंगे, इस डर से हमने उनकी सूचना को अस्वीकृत किया।

सम्मेलन में जो कई प्रस्ताव ग्राम-निवासियों द्वारा उपस्थित किये जाने को थे उनमें से कुछ ये हैंः—

पाँड़ेजी के प्रस्ताव।

१—प्रकाशकों को ग्रन्थकार से बिना कुछ लिये ग्रन्थ प्रकाशित कर देना चाहिए।

२—साहित्य में धर्म को अग्रस्थान दिया जाय।

३—सरकार से प्रार्थना की जाय कि वह सिक्कों की संख्या दुगनी बढ़ा दे जिससे ग्रन्थों की क़ीमत दुगनी करने में अड़चन न होगी और ग्रन्थकार की आमदनी भी बढ़ जायगी।

४—उपन्यास समाज को दुर्नीति सिखाते हैं और साहित्य को कलङ्कित कर देते हैं। इसलिए बेचते समय उनके साथ एक एक दियासलाई की डिब्बी मुफ़्त दी जाय जिससे ग्राहक को उसे जला देने में सुभीता हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौबेजी के प्रस्ताव।

१—व्याकरण भाषा-वृद्धि का शत्रु है। लिखते समय व्याकरण की ओर ध्यान जाने से लिखने में कठिनाई होती है। इसलिए व्याकरण को देश बाहर कर देना चाहिए। हिन्दी-भाषा का व्याकरण लिखनेवाले को साहित्य का शत्रु समझना चाहिए।

२—गूढ़ विषयों के ग्रन्थों में भी तीन से अधिक अक्षरों का शब्द और पाँच शब्दों से अधिक का वाक्य न आवे।

३—साहित्य-ग्रन्थों में डायरी को स्थान दिया जाय।

स्वयं मेरे प्रस्ताव।

१—इतिहास-ग्रन्थों में भी अपनी विजय की कथा—झूठ होने पर भी—कही जाय। सत्य कथन इतिहास का कार्य है तो भी प्रिय वस्तु सत्य ही गिनी जाती है।

२—समाज पर टीकात्मक पुस्तकें लिखना बन्द कर दिया जाय।

इस प्रकार के प्रस्ताव ग्राम-वासियों के द्वारा उपस्थित किये जाते। इसके पश्चात् अन्य शहरों के साहित्य-सेवियों को निमन्त्रण-पत्र भेजने का कार्य रह गया। हमने निमन्त्रण पत्रिकायें छपा कर उस पर हर एक साहित्य-सेवियों का नाम लिख दिया। लक्ष्मी से शत्रुत्व रखनेवाले सरस्वती-भक्त को भी हमने "श्रीयुत" बना दिया। निमन्त्रण-पत्रों पर नाम लिखने के पश्चात् उन्हें लिफ़ाफ़ों में बन्द कर उन पर पता लिख भेजने का कार्य चौबेजी को दे दिया।

निमन्त्रण-पत्र भेजे बहुत दिवस हो जाने पर भी उत्तर एक का भी न आया। कदाचित् सब लोगों ने ठीक सम्मेलन के दिन यहाँ पधार कर हमें चकित कर देने का विचार किया हो।

सम्मेलन के ठीक पहले दिन हम स्टेशन पहुँच कर गाड़ी का हर एक डिब्बा ढूँढ़ने लगे। यहाँ तक कि हमने मालगाड़ी तक न छोड़ी। पर कोई भी ग्रन्थकार, कम्पोज़ीटर, बुकसेलर हमें न मिला। लोग रात की आख़िरी गाड़ी से आवेंगे, यह सोच कर हम रात को भी स्टेशन पधारे। गाड़ी आते ही हमारी आँखों से प्रेम-जल की धारा बहने लगी। उसमें के हर एक व्यक्ति को हम साहित्य-सेवी समझने लगे। इसी भावना के कारण चौबेजी ने गार्ड को गाढ़ आलिङ्गन कर लिया और पाँड़ेजी "फ़ायरमैन" को हृदय से लगाने लगे। कई मुसाफ़िर हमें अपना सामान उठाते देख कर चोर चोर चिल्लाने लगे और कई हमें कुली समझ कर पैसे देने लगे। हमने पैसे लेकर क्रोध से जेब में डाल लिये। अन्त में हमें प्रतीत हो गया कि गाड़ी में एक भी साहित्य-सेवक नहीं है।

पर इतनी गड़बड़ी होने का कारण क्या है, यह समस्या हम हल न कर सके। पर शीघ्र ही वह हल हो गई। स्टेशन पर हमें "डेडलेटर" आफ़िस से एक लिफ़ाफ़ों का गट्ठा मिला। चौबेजी लिफ़ाफ़ों पर पता लिखना भूल गये थे।*

श्रीकृष्ण

—

प्राणियों के बुद्धि-बल का परिचय।



स जाति के प्राणी में कितने दर्जे की मानसिक शक्ति होती है, इसके ज्ञान का साधन मिलना कठिन है। परन्तु जब हम सारे प्राणियों की परीक्षा कर उन्हें श्रेणि-बद्ध करते हैं तब यह बात स्पष्ट ज्ञात हो जाती है कि परस्पर उनकी तुलना करने पर उनका वर्गीकरण मानसिक शक्ति के अनुसार भी किया जा सकता है। यह कार्य कठिन और अध्ययन-साध्य है। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए प्रत्येक प्राणी की भिन्न भिन्न जातियों तथा उनके देश-काल एवं उस प्राणी की शारीरिक रचना, जीवनचर्या आदि बातों का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। क्षुद्र जीव से लेकर मनुष्य तक सारे प्राणी अपनी विभिन्नता के अनुसार श्रेणि-बद्ध किये जाने चाहिए। सम्भवतः सब प्राणियों के मन का कार्यक्षेत्र एक ही प्रकार का होता है। अतएव जानने की बात केवल एक यही है कि किस प्राणी की मानसिक शक्ति किसकी अपेक्षा कम ज़्यादा होती है।

जब हम प्राणियों पर अपनी दृष्टि डालते हैं तब हमें उनकी विभिन्नता का परिचय मिलता है। पानी में रहने के कारण जलचर प्राणी का कार्य-क्षेत्र बहुत ही सङ्कुचित होता

* मराठी से अनुवादित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वह अपनी स्थिति के कारण अपने आस पास की स्थिति का कुछ भी ज्ञान नहीं रखता। अतएव जलचर प्राणियों की मानसिक शक्ति निम्नतम श्रेणी की होती है। यही बात वायुचर प्राणियों के सम्बन्ध में भी घटित है। इनकी मानसिक शक्ति जलचर प्राणियों से कुछ ही अधिक होती है।

अनुभव द्वारा बुद्धि के विकास का लाभ स्थलचर प्राणियों के ही हिस्से में पड़ा है। इनमें रात्रिंचर प्राणी की अनुभव-वृद्धि में बाधा पहुँचती है। उसकी अपेक्षा दिन-चर प्राणियों को अनुभव द्वारा बुद्धि-वृद्धि के लिए पर्याप्त सुविधा रहती है। दिनचर प्राणी दिन में जाग कर अपना समय बिताता है। दिन के प्रकाश में देशकाल का जैसा प्रभाव उसके मस्तिष्क पर पड़ता है वैसा रात्रिचर प्राणी पर नहीं पड़ता है। अतएव अपना जीवनयापन करने के लिए उन्हें फुर्ती, बुद्धिमानी तथा चतुरता की कम आवश्यकता पड़ती है। इन प्राणियों में से अनेक केवल अपनी इन्द्रियों की शक्तियों को क्षीण करते रहते हैं तथा उनके शरीर मस्तिष्क की अपेक्षा बहुत बड़े होते हैं। मांसाहारी, सरीसृप तथा और भी निम्न-श्रेणी के प्राणी, जिनमें से अधिकांश एकान्त जीवन व्यतीत करते हैं, अपनी जाति के ही प्राणियों से बहुत कम रब्त-ज़ब्त रखते हैं। परन्तु उनकी दृष्टिशक्ति दिवाचर प्राणियों की अपेक्षा तीक्ष्णतर होती है। पर तो भी इन प्राणियों की मानसिक शक्ति इनकी अपेक्षा बहुत ही हीन होती है। झुंडवाले प्राणियों में पूर्वोक्त दोनों प्रकार के प्राणियों के स्वभाव का सम्मिश्रण है, और उनका इनसे वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि खगचरों का स्थलचर और जलचर प्राणियों से है। झुंडवाले प्राणी झुंड बाँध कर रहते हैं। सामाजिक जीवन का प्रारम्भिक रूप उनमें विद्यमान है। वे पक्के शाकाहारी होते हैं। सम्भवतः मांसाहारियों की अपेक्षा उन्हें अपने शत्रुओं से अधिक भय रहता है। इससे उनकी निरीक्षण तथा चपलता की शक्तियाँ विकसित होती हैं और शत्रु के आक्रमण से बचने की सम्भावना भी उनके लिए खूब रहती है।

मस्तिष्क-शक्ति के क्षेत्र में मनुष्य का स्थान सबसे अधिक ऊँचा है। अतएव शरीर-रचना में मनुष्य से जो प्राणी जितना अधिक मिलता-जुलता होगा वह उसी तारतम्य से उतना ही अधिक बुद्धिमान् भी होगा। डाक्टर आर० एल० गारनर ने लगातार २५ वर्ष तक इस बात का अध्ययन किया है। उन्हें परीक्षा से अनुभव हुआ है कि मनुष्य-सदृश एप जाति के प्राणी में अन्य निम्नश्रेणी के प्राणियों की अपेक्षा अधिक मस्तिष्क शक्ति होती है। उन्होंने यह भी निश्चय किया है कि इस सम्बन्ध में एप श्रेणी के प्राणियों में चिम्पान्ज़ी का दर्जा सबसे अधिक ऊँचा है। उन्होंने इस जाति के प्राणी से गिनती गिनवा ली है और वह भिन्न भिन्न पाँच रङ्ग के नाम जान तथा उन्हें पहचान सका है। वैज्ञानिकों की अब तक यह धारणा थी कि गणित की शक्ति मनुष्य को छोड़ कर और किसी प्राणी के मस्तिष्क में नहीं होती। पर पूर्वोक्त डाक्टर साहब के प्रयोगात्मक अनुभव से उनकी धारणा निर्मूल सिद्ध हुई और यह बात प्रमाणित होगई कि मनुष्य के सिवा दूसरे प्राणियों में बन्दर जाति के चिम्पान्ज़ी के मस्तिष्क में मनुष्य जैसी गणित की थोड़ी बहुत शक्ति होती है।

बुद्धिबल में चिम्पाञ्जी का दर्जा मनुष्य से दूसरा है। एप जाति के इस श्रेणी के प्राणी की शरीर-रचना भी मनुष्य से बहुत कुछ मिलती-जुलती होना स्वाभाविक ही है। यही नहीं, उसके शरीर का अस्थि-जाल मनुष्य के अस्थि-जाल से और भी अधिक साम्य रखता है। अन्तर है तो केवल दो ही स्थानों की हड्डियों की रचना में। पर ये भेद बहुत महत्त्व-पूर्ण नहीं हैं। बुद्धि-बल में चिम्पाञ्जी के बाद गोरीला का नम्बर आता है। चिम्पान्ज़ी की शरीर-रचना से गोरीला नर के केवल सिर की खोपड़ी में भेद है। इस भेद को छोड़ कर इन दोनों श्रेणियों के प्राणियों का अस्थि-पञ्जर बिलकुल अभिन्न होता है। हाँ, चिम्पान्ज़ी की अपेक्षा इसका अस्थि-पञ्जर मनुष्य के अस्थि-पञ्जर से और भी कम साम्य रखता है। इसी प्रकार मनुष्य से और भी कम मिलता-जुलता अस्थि-पञ्जर ओरङ्ग ओटङ्ग श्रेणी के एप का होता है। अतएव बुद्धि-बल में इसका दर्जा गोरीला के बाद आता है। अस्थि-पञ्जर की दृष्टि से गिबन मनुष्य के सादृश्य-क्षेत्र से और भी दूर निकल गया है। इसकी मस्तिष्क-शक्ति ओरङ्ग ओटङ्ग की अपेक्षा न्यून होती है।

एप जाति की भिन्न भिन्न श्रेणी के कुछ प्राणियों के बुद्धि-बल की घटती-बढ़ती का जो तारतम्य ऊपर दिखाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है वह भिन्न भिन्न प्राणियों की शरीर-रचना के भेदाभेद पर निर्भर करता है। अनेक लोग इसका विचार तक करने से झिझकते हैं कि मनुष्य बन्दर का विकसित रूप है। परन्तु वे लोग बन्दर और मनुष्य का साम्य देख कर चकित अवश्य हो जाते हैं। यदि किसी बन्दर का एक इञ्च चमड़ा लेकर खुर्दबीन से देखा जाय तो उसमें उतने ही रोयें निकलेंगे जितने मनुष्य के उसी स्थान के उतने ही चमड़े में होते हैं। बन्दर के ही सदृश मनुष्य की देह पर भी बड़े बड़े बाल होते थे, परन्तु ज़माने से कपड़े के उपयोग से वे उसी प्रकार झड़ गये जैसे जूता पहनने से उसके पैर से किसी वस्तु को पकड़ने की शक्ति जाती रही। बन्दर का मनुष्य से इतना गहरा साम्य है कि मनुष्यों की जो अनेक बीमारियां मनुष्येतर दूसरे प्राणियों को नहीं सतातीं उनसे बन्दर जाति आक्रान्त होती रहती है। पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालय के डाक्टर रिचर्ट ने प्रयोग करके देखा है कि चिम्पाञ्जी और गोरीला के रक्त-कण मनुष्य के रक्त-कण से इतना अधिक सादृश्य रखते हैं जितना दूसरी जाति के बन्दरों के रक्त-कण नहीं रखते।

बन्दर से हीन श्रेणियों के प्राणियों का हँसुआ क्रम-पूर्वक अपने प्रारम्भिक रूप में मिलता चला जाता है। इस प्रकार मनुष्य की शरीर-रचना का सादृश्य किसी न किसी अंश में प्राणी-मात्र में पाया जाता है। अतएव बुद्धि का अस्तित्व भी उसी क्रम से उतने ही अंश में भिन्न भिन्न प्राणियों में विद्यमान है जितने अंश का सादृश्य उनकी शरीर-रचना का मनुष्य से है।

प्राणियों की किसी श्रेणी की मस्तिष्क-शक्ति का ज्ञान-सूचक एक दूसरा साधन उनका आहार भी है। जिन प्राणियों की आहार-सामग्री में भिन्न भिन्न वस्तुओं का समावेश जितनी ही अधिक संख्या में रहता है तथा अपना आहार पसन्द करने तथा उसके तैयार करने में जो जितना ही अधिक प्रवीण होते हैं उनकी मस्तिष्क शक्ति भी उतनी ही ऊँचे दर्जे की होती है। इस बात में भी मनुष्य पहले आता है। उसकी आहार-सामग्री में कई वस्तुओं का समावेश रहता है। आहार की विभिन्नता की खोज में जीवधारी को अनुभव के लम्बे-चौड़े क्षेत्र में से होकर निकलना पड़ता है, विभिन्न प्रकार की अवस्थाओं का ज्ञान-लाभ करना पड़ता है और भय-स्थानों का सामना भी करना पड़ता है। इन सब बातों के लिए उसे बहुत कुछ बुद्धि लगानी पड़ती है। फलतः विभिन्न प्रकार के आहार के प्रेमी को बुद्धिमान् होना स्वाभाविक है।

बुद्धि-बल के तारतम्य के सम्बन्ध में जो भोजन की बात कही गई है उसके साथ ही एक और बात भी कह देनी उचित है। जो प्राणी अपनी भोजन-प्राप्ति के सम्बन्ध में मनुष्य के पड़ोस में निवास करता है उसका बुद्धि-बल वनवासी प्राणियों की अपेक्षा अधिक होता है। इन प्राणियों को अपनी भोजन-प्राप्ति के लिए मनुष्य से मोर्चा लेना पड़ता है। अतएव उनका मस्तिष्क दूसरे प्राणियों की अपेक्षा अधिक उर्वर रहता है। बन्दरों में चिम्पाञ्जी विभिन्न प्रकार का भोजन करता है और रुचि तथा खाने के ढङ्ग के सम्बन्ध में अत्यन्त ही तुनुक मिज़ाज़ होता है। वह अपने रहने का अड्डा आबादी के समीप बनाता है। उसके भोजन के अधिकांश भाग की पूर्ति मनुष्य से चोरी करके होती है। वह अपने कुटुम्ब के साथ खेतों और बाग़ों में आ जाता है और वहाँ की चीज़ों को उड़ा ले जाने में अपने बुद्धि-बल का उचित परिचय देता है। कभी कभी अनुपयुक्त अवसरों में भी वह अपने उद्योग में विलक्षणता-पूर्वक सफलता प्राप्त करता है। इस फ़न में गोरीला भी ख़ूब तेज़ होता है, यद्यपि उसका भोजन चिम्पाञ्जी के समान विभिन्न नहीं होता। इसके सिवा वह जङ्गल के अगम्य भाग में जाकर रात्रि का समय व्यतीत करता है। परन्तु चिम्पाञ्जी, बस्ती से कुछ दूर किसी वृक्ष पर ही, अपनी रात बिताता है। ऐसे जोखिम के स्थान में रहना, इस बात को सिद्ध करता है कि वह अपनी रक्षा के लिए गोरिला की अपेक्षा अपने बुद्धि-बल पर निर्भर रहता है। जिस ओरङ्ग ओटङ्ग का बुद्धि-बल में तीसरा दर्जा है वह न तो अपनी भोजन की खोज में अधिक प्रयत्नशील ही होता है और न उसके आहार में अधिक संख्या में भिन्न भिन्न वस्तुओं का समावेश ही रहता है। वह जङ्गली फल-मूलों ही पर निर्भर रहता और जो पा जाता है उसी पर सन्तोष करता है। बन्दर-जाति में गिबन का दर्जा इस सम्बन्ध में सबसे नीचा होता है। इसी से उसकी खाद्य की चीज़ें बहुत परिमित होती हैं। उनको प्राप्त करने में भी वह अधिक तत्परता नहीं दिखाता। वह अधिकतर वृक्षों पर ही चढ़ा रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार जब हम बन्दरों की भिन्न भिन्न जातियों की स्वभाव-परीक्षा करते हैं तब हमें उनमें से प्रत्येक के बुद्धि-बल के तारतम्य का ज्ञान हो जाता है। बन्दर की जो जाति जितना ही कम भिन्नता के आहार का उपयोग करती है तथा मनुष्य के सहवास से जितना ही दूर जाकर निवास करती है वह उस बन्दर-जाति की अपेक्षा बुद्धि-बल में हीनतर होती है जिसकी आहार-सामग्री में अधिकाधिक भिन्न भिन्न वस्तुओं का समावेश होता है और जो दूसरों की अपेक्षा बस्ती के निकट ही निवास भी करता है। यही बात बन्दर से हीन श्रेणी के प्राणी लीमर, रैकून सिवेट प्रभृति के सम्बन्ध में भी घटती है।*

विद्याधर पाण्डेय

चीन की व्यावसायिक उन्नति।

किसी भी देश की सामाजिक तथा साम्पत्तिक वृद्धि का ज्ञान उस देश के तत्सम्बन्धी विवरणों के अङ्कों से जाना जा सकता है। यही नहीं, किन्तु किसी देश के व्यापारिक विवरण से उसके साम्पत्तिक भविष्य का भी ज्ञान हो सकता है। चीन के ऐसे ही औद्योगिक विवरणों के अङ्कों को देखने से अब यह बात सिद्ध हो जाती है कि चीन व्यापार के उन्नति-पथ पर शीघ्र ही अग्रसर होनेवाला है।

अपनी व्यावसायिक उन्नति के लिए चीन अमरीका का ऋणी है। प्रारम्भ में सहस्रों चीनी नवयुवकों ने अमरीका में ही जाकर ज्ञान-सञ्चय किया। वहाँ से लौट कर उन्होंने अपने देश में आधुनिक सभ्यता का प्रचार किया। चीन में जो शीघ्र ही जागृति हुई उसका कारण आधुनिक शिक्षा का प्रचार है। आज-कल चीन में जितने उद्योग-धन्धे चल रहे हैं उन सबका सञ्चालन अमरीका के ही शिक्षा-प्राप्त व्यापारियों और वैज्ञानिकों द्वारा हो रहा है। इस प्रकार नव शिक्षित चीनी अपने देश का पुनर्निर्माण कर रहे हैं। प्राचीन अन्धविश्वासों का मूलोच्छेद कर अपने अशिक्षित हज़ारों देश-बन्धुओं को शिक्षित बनाने की चेष्टा में वे संलग्न हैं। स्त्रियों की भी मानसिक और नैतिक उन्नति की ओर उनका ध्यान गया है। उन्होंने अपने देश में स्त्री-शिक्षा का अच्छा प्रचार किया है। यह उनके ही उद्योग का फल है कि चीनी बालिकाएँ गत वर्ष के जून में शांघाई की सुदूर पूर्वीय ओलंपिक खेल में गर्ल्स-स्काउट्स की हैसियत से सम्मिलित हुई थीं।

चीन संसार से पृथक् रह कर अपनी उन्नति नहीं करना चाहता। परन्तु वह संसार से अपना सम्बन्ध स्थिर कर लेना चाहता है जिससे उसकी उन्नति में कोई बाधा न हो। वह वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने के लिए उत्सुक है। वह अपने सामाजिक एवं साम्पत्तिक समस्याओं को भी हल कर लेना चाहता है। उसकी इस उत्सुकता की तृप्ति अमरीका की सहायता पर निर्भर है। यदि यह सहायता सद्भाव की प्रेरणा से दी जायगी तो उससे दोनों देशों के हित की सम्भावना है।

ऋद्धि-सिद्धि-सम्पन्न देश ही सभ्यता के सोपान पर सफलतापूर्वक चढ़ सकता है। इसी लिए चीन अपनी आर्थिक अवस्था को उन्नत करने की कोशिश कर रहा है। निस्सन्देह, इस उद्देश की सिद्धि के लिए अध्यवसाय की आवश्यकता है। अमरीका औद्योगिक उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुका

* एक अँगरेज़ी लेख का भावार्थ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। देश की सारी आवश्यकताएँ पूरी कर लेने के बाद भी उसके कारख़ानों का माल इतना अधिक परिमाण में बच रहता है कि उसे उसकी खपत के लिए दूसरे देशों को भेजना पड़ता है। इसी अनिवार्य आवश्यकता के कारण चीन से अमरीका का व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ है।

चीन के उन्नतिशील औद्योगिक भविष्य के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं कर सकता है। प्रकृति ने खनिज-सम्पत्ति से उसका घर भर दिया है। कदाचित् अमरीका के अतिरिक्त संसार के अन्य किसी देश में इतना कोयला और लोहा नहीं है जितना कि चीन में। उसके ताँबा और टीन के भण्डार को देख कर आश्चर्य होता है। विगत तीन वर्षों में उसके लोहे के कारोबार ने आश्चर्यजनक उन्नति की है। हायांग के लोहे के कारख़ाने का एक छोटा सा कोना देख कर ही विश्वास हो जाता है कि चीन की खनिज सम्पत्ति कितनी अधिक है। अब वहाँ कपड़े के बड़े बड़े कारख़ाने स्थापित हो रहे हैं। आटे की पंचक्कियों की संख्या बेतरह बढ़ रही है। दूसरे उद्योग-धन्धे की भी ख़ूब वृद्धि हुई है। माल का चलान करने में जो असुविधायें थीं उनमें भो बहुत कुछ सुधार कर लिया गया है।

अपनी उन्नति के लिए चीन राष्ट्र-सम्पत्ति एवं पर-राष्ट्र-पूँजी का अधिकाधिक व्यय कर रहा है। वहाँ मज़दूरी सस्ती होने के कारण चीनियों का उद्देश शीघ्रता से सफल होता हुआ देख पड़ता है। अगणित श्रमजीवी थोड़ी मज़दूरी लेकर वहाँ के कारख़ानों में सहर्ष काम करते हैं। चीन की औद्योगिक उन्नति की आशा का एक कारण यह भी है। चीन की इस उन्नति से अमरीका का व्यापार-क्षेत्र विस्तृत हो गया है और उसकी पूँजी की वृद्धि में भी आशातीत सफलता हुई है।

यदि चीन में अमरीका के माल की खपत ख़ूब हो तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। अमरीका में शिक्षा ग्रहण करते समय चीनी विद्यार्थी उन नई विचित्र वस्तुओं से प्रेम करना सीख गये हैं जिनसे उनके पूर्वज बिलकुल अपरिचित थे। सच तो यह है कि लोगों की रुचि आधुनिक सभ्यता में जितनी ही अधिक होती जाती है उनकी आवश्यकताएँ भी उतनी ही अधिक होती जाती हैं। यही कारण है कि सुई, मशीन, फ़ोनोग्राफ़, खाद्य-पदार्थ तम्बाकू, मादक-द्रव्य, रङ्ग और न जाने कितने प्रकार की अन्यान्य वस्तुएँ प्रतिवर्ष अधिकाधिक परिमाण में अमरीका से चीन में आती हैं। इस प्रकार व्यवसाय के क्षेत्र में चीन से अमरीका का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया है।

इस व्यापार की उन्नति का चित्र अमरीका के व्यापार-संघ ने एक विवरण पत्र के द्वारा प्रकट किया है। उसके अङ्कों से विदित होता है कि सन् १९१० ईसवी में चीन ने अमरीका को २,९९,९०,००० डालर का माल बेचा और १,६३,२०,००० डालर का ख़रीदा था। सन् १९२० में उसने अमरीका को २२,६८,८७,००० डालर का माल दिया और ११,९१,४३,००० डालर का माल उससे लिया। इस प्रकार लगातार दस वर्ष तक चीन ने अपने व्यापार की दशा को लाभदायक ही बनाये रक्खा। उसके विक्रय का पलड़ा क्रय से भारी ही रहा। इस समय चीन अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर बचे हुए माल का सोलह फ़ी सदी भाग अमरीका को बेच देता है। परन्तु चीन में अन्य देशों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से आनेवाले माल में केवल सत्रह फ़ी सदी भाग ही अमरीका का होता है।

अमरीका में चीनी वस्तुओं की बड़ी माँग है। इसी से वहाँ चीनी माल की अच्छी खपत है। अमरीका भी अपने व्यापार की वृद्धि के लिए चीनियों में अमरीका की वस्तुओं के प्रति रुचि उत्पन्न करने के प्रयत्न से विरत नहीं है। इसी प्रयत्न के कारण चीन में अमरीका का माल ख़ूब बिकता है। सर राबर्ट हार्न ने बहुत ही सच कहा है—"विदेशी व्यापारियों को अपने माल के उसी परिमाण में बिकने की आशा करनी चाहिए जिस परिमाण में वे चीनियों में नवीन रुचि उत्पन्न करा सकते हैं और उन्हें नूतन आवश्यकताओं की प्रतीति करा सकते हैं।"

संसार की परिवर्तन-शीलता के कारण चीन का भी रूप-रङ्ग बदल रहा है। नवीन सभ्यता के प्रचार से वहाँ अब उन वस्तुओं की भी वृद्धि हो रही है जो आधुनिक सभ्यता के लिए सर्वथा आवश्यक हो गई है। इस समय पेकिङ्ग के आकाश-मंडल में मैनिला से लौटे हुए चीनी नवयुवक वायुयानों के दृश्य से नगर-निवासियों को आश्चर्य-चकित करते हैं। शांघाई के मासिक पत्र लोगों को उन मोटर-वालों के मन्सूबों से परिचित करा रहे हैं जो उत्तरी चीन की सड़कों का मानचित्र खींच कर उन पर मोटर दौड़ाने का प्रस्ताव कर रहे हैं। खेती की उन्नति के लिए आधुनिक हलों का प्रचार बढ़ रहा है। पेकिङ्ग-सुयन-रेलवे के पैशू तक खुल जाने से अब सर्व-साधारण की पहुँच वहाँ की अमूल्य उर्वरा भूमि तक हो जायगी। शांघाई, हांकाऊ, मकूदन, शींसिन और शीशाऊ के कपड़े के कारख़ानों में इस समय १७,४७,००० चर्खे चल रहे हैं। सन् १८६१ में केवल ६५,००० चर्खे चलते थे। हाल ही में लॅशिंगस्टन से यह समाचार आया है कि चीन में टेलीफोन के विस्तार की व्यवस्था की जायगी। सीने की मशीन के प्रचार का उल्लेख करना ही व्यर्थ है। इनका प्रचार तो वहाँ घर घर है।

इन सारी बातों से एक इसी बात की ध्वनि निकलती है कि चीन औद्योगिक उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। हांकाङ्ग बन्दरगाह के किनारे पर स्थित जहाज़ों की संख्या से भी इस अनुमान की पुष्टि होती है। परन्तु यह भी सत्य है कि अवसर मिलने पर अमरीका अनुचित लाभ उठाने से बाज़ न आवेगा। अमरीकन व्यापारिक सङ्घ के विवरण को देखने से तो चीन के प्रति अमरीका की व्यापारिक नीति सङ्कुचित नहीं मालूम पड़ती है। परन्तु कौन कह सकता है कि उस विवरण के तैयार करने में राज-नैतिक भाव से काम नहीं लिया गया है और सत्यता पर पर्दा नहीं डाला गया है।

यह अविश्वास सर्वथा अनुचित नहीं है। अमरीका के चीनस्थ मन्त्री डाक्टर रेंश का यह कथन है कि चीन संसार में सबसे अधिक सुसङ्गठित देश है। वहाँ न तो सामाजिक क्रान्ति ही है और न व्यापारिक विप्लव ही है। रेंश महोदय को राजनैतिक व्यवस्था से शून्य चीनी भूमि पर चारों ओर औद्योगिक उन्नति की ही महिमा दिखाई दी। उन्हें चीन के अन्यान्य दुःख-दर्द की बातें दिखलाई ही न पड़ीं। यह एक आश्चर्य की बात है। स्वार्थ बहुधा दृष्टि को धुँधला कर देता है, सम्भव है कि यह उक्ति डाक्टर महोदय पर लागू हो जाय, क्योंकि इधर कई वर्षों से चीन की राजनैतिक स्थिति सन्तोषप्रद नहीं रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी ही बातों से भय होता है कि कहीं इस प्रकार की औद्योगिक उन्नति से चीन को हानि न उठानी पड़े। आज-कल की व्यापारिक नीति का आधार छल-कपट ही है। अन्य देशों से व्यापारिक नाता जोड़ना कुछ हँसी-ठट्ठा की बात नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में व्यापारिक दाँव-पेचों में दक्ष देश ही लाभ में रहता है। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि अभी तो चीन का भविष्य उज्ज्वल जान पड़ता है।

जे० बहादुर

पलिटाना का सिद्धाचल।



तो जैनियों के कई एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान हैं और वहाँ के मन्दिर लोक-प्रसिद्ध हैं, पर काठियावाड़ के पलिटाना का सिद्धाचल सबसे श्रेष्ठ है। जिस दृष्टि से मुसलमान मक्काशरीफ़ को देखते हैं उसी प्रकार जैनी सिद्धाचल को पूज्य मानते हैं। अपने जीवन में कम से कम एक बार प्रत्येक जैनी इस पवित्र स्थान की यात्रा करना आवश्यक समझता है। यही नहीं किन्तु इस स्थान में मन्दिर बनवाना भी वह अपना परम धर्म मानता है। भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के रहनेवाले भावुक धनी जैनी अपने इस परम पूज्य तीर्थ में अपने द्रव्य का सद्-व्यय ज़माने से करते रहे हैं। इसी कारण इसके शिखर पर मन्दिरों का नगर सा बस गया है।

सिद्धाचल के इक्कीस नाम हैं। उनमें से एक शत्रुञ्जय भी है। इस पर जैनों के सर्व-प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् आदिनाथ के मन्दिर स्थापित हैं। यह पवित्र पहाड़ी पलिटाना नगर से दक्षिण एक मील के अन्तर पर स्थित है। चैत्र की पूर्णिमा को यहाँ ख़ासा मेला लगता है। भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों से हज़ारों जैन तथा दूसरे यात्री यहाँ आकर मन्दिरों में दर्शन करते हैं।

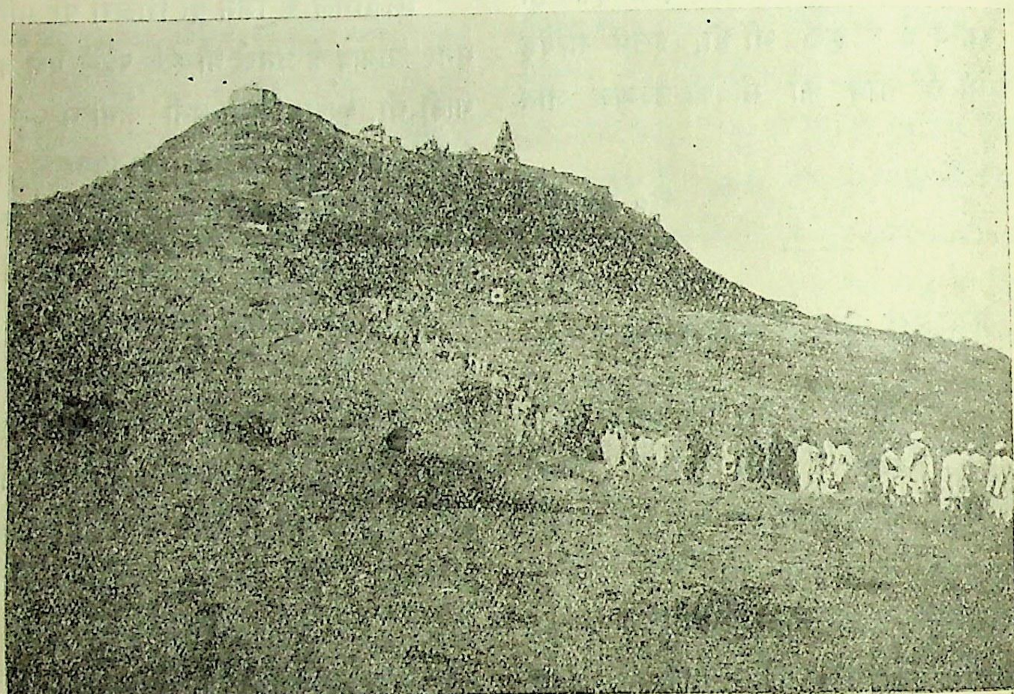
सिद्धाचल के जिन दो शिखरों पर मन्दिरों का नगर आबाद है उनके बीच में पहले एक बड़ी भारी घाटी थी, परन्तु किसी धनी जैनी ने उसे पूर कर दोनों शिखरों को एक में मिला दिया है। इस कार्य में कितना द्रव्य व्यय हुआ होगा, यह कल्पना के बाहर की बात है। इसके दोनों शिखरों पर जो विशालकाय अहाते बने हुए हैं वे बड़े बड़े राजप्रासादों से टक्कर लेनेवाले हैं। वे अहाते क्या हैं मानो छोटे मोटे दुर्ग हैं। समुद्र की सतह से ७,६७७ फ़ुट ऊँचे पर्वत-शृङ्ग पर इनकी एकान्त स्थिति जैसी भव्य और गम्भीर है वैसी ही मनोमुग्धकर तथा शान्तिप्रद भी है। इसका प्रत्येक शिखर ३५० गज़ के लगभग लम्बा होगा। ये शिखर तथा इनके बीच की घाटी एक बृहत्काय तथा सुपुष्ट प्राचीर से घिरी हुई है। इसी के भीतर नौ अहाते अलग अलग बने हुए हैं। ये अहाते भी उसी प्रकार मज़बूत दीवारों और सिंहद्वारों से सुरक्षित हैं। इन्हीं के भीतर जैनियों के प्राचीन और नये सारे मन्दिर स्थापित हैं। छोटे बड़े मिला कर मन्दिरों की संख्या कुल ८३६ है। इनमें १०० बड़े बड़े मन्दिर हैं। मन्दिरों की मूर्तियों की संख्या ११,४७४ है। इनके सिवा जैन अर्हतों के पदचिह्न भी ८,६६१ हैं।

सिद्धाचल पर चढ़ने के मार्ग पर पत्थर लगे हुए हैं। बीच बीच में आवश्यकतानुसार सीढ़ियाँ भी हैं। यात्रियों के लिए राह भर में अनेकों छोटे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे विश्राम-गृह तथा कुण्ड भी बने हुए हैं। जिन लोगों ने इनका निर्माण किया है उनके नाम उन पर अङ्कित हैं। मार्ग में एक जगह बहुत खड़ी चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। वहाँ के निवासी जब इस स्थान पर पहुँचते हैं तब वे प्रायः प्रकट होकर उस राक्षस को एक ही मुक्के से मार गिराया। मरते समय उसने भगवती से प्रार्थना की कि मेरे बाद आप मेरा नाम धारण कर किसी यात्रा-पथ पर अवस्थान करें। अतएव हिङ्गलाज के नाम से अम्बिका देवी सिद्धाचल के मार्ग पर आ विराजीं।



सिद्धाचल का शिखर।

यह मसला कहते हैं—हिङ्गलाज नो हादो, कदे हाथ मुकी चाधो, अर्थात् यह हिङ्गलाज की चढ़ाई है, कमर पर हाथ रख कर चढ़ो। चढ़ाई के ऊपर भगवती हिङ्गलाज माता का मन्दिर मिलता है। कहा जाता है कि प्राचीन-काल में कराची के समीप एक जङ्गल में हिङ्गल नामक एक राक्षस रहता था। वह यात्रियों को प्रायः मार कर खा जाया करता था। एक बार उसने एक साधु पर आक्रमण किया। साधु ने अम्बिका देवी की प्रार्थना की। भगवती ने

इस स्थान से आगे बढ़ने पर हनुमान्‌जी का मन्दिर मिलता है। यहाँ से दो मार्ग गये हैं। दाहना मार्ग उत्तरी शिखर को और बायाँ घाटी हो कर दक्षिणी शिखर को गया है। दाहने मार्ग से जाने पर कुछ दूर चलने के बाद एक मुसलमान पीर का मकबरा मिलता है। अङ्गारशा के नाम से इनकी पूजा होती है। कहा जाता है कि शहाबुद्दीन गोरी के समय में मुसलमानों ने सिद्धाचल की पवित्रता भङ्ग करने का उपक्रम किया था। उस समय भगवान् आदिनाथ ने

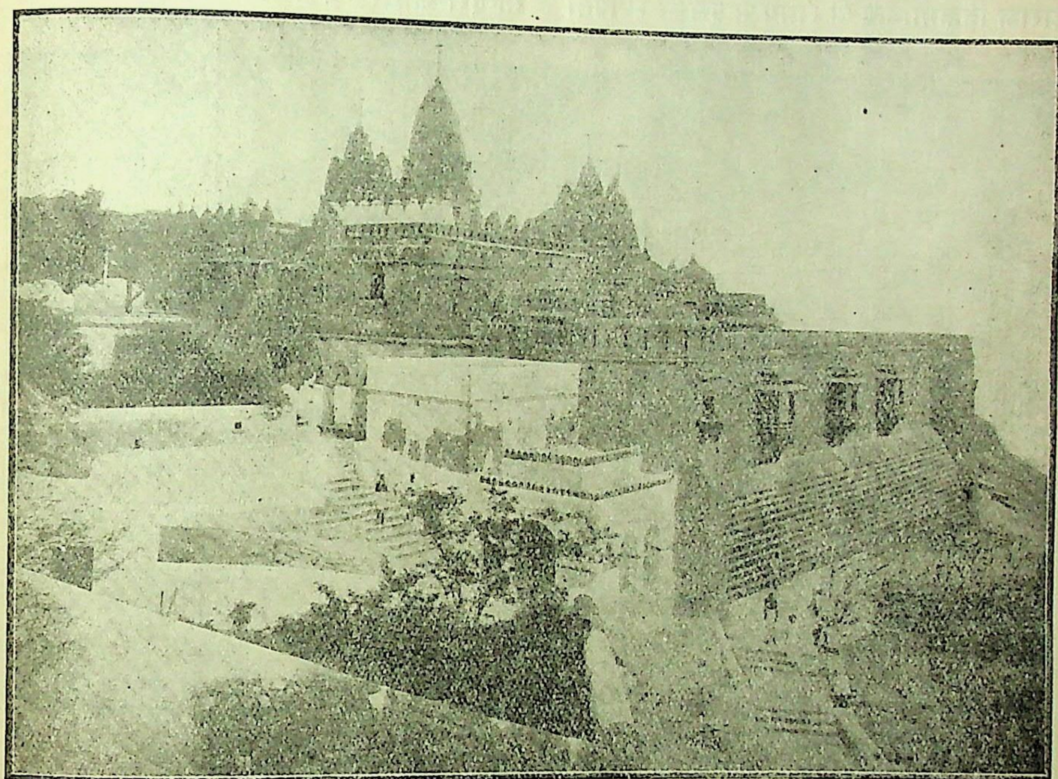
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रुद्ध होकर आक्रमणकारी मुसलमान नेता को भस्मीभूत कर दिया था। तभी से उसकी अर्चना भी प्रारम्भ होगई। इसके आगे जाने पर यात्री मुख्य स्थान पर जा पहुँचता है। वही जैनियों का सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है, जो भव्य मन्दिरों के नगर में परिणत होकर मूर्तिमान जैनधर्म हो गया है।

वह दुर्गमय दीवार की फ़सील पर चढ़ कर अपने चारों ओर निगाह डालता है तब उसे जिस प्रकार की नैसर्गिक शोभा निरीक्षण करने को मिलती है वह उस पवित्र स्थान के लिए सर्वथा अनुरूप है।

सिद्धाचल के मुख्य सिंहद्वार के भीतर प्रवेश करने पर सबसे पहले भगवान् आदिनाथ का प्राचीन मन्दिर मिलता है। इस तीर्थस्थान का मुख्य मन्दिर यही है। यहाँ की प्रसिद्ध रथ-यात्रा का आयोजन इसी मन्दिर के आगे मैदान में होता है। जो यात्री वृद्ध या निर्बल होते हैं अथवा जिन्हें समयाभाव होता है उनकी यात्रा यहीं से समाप्त हो जाती है। पर अवशिष्ट यात्रियों की यात्रा यहाँ से आरम्भ होती है। वे सब अहातों के मुख्य मुख्य मन्दिरों



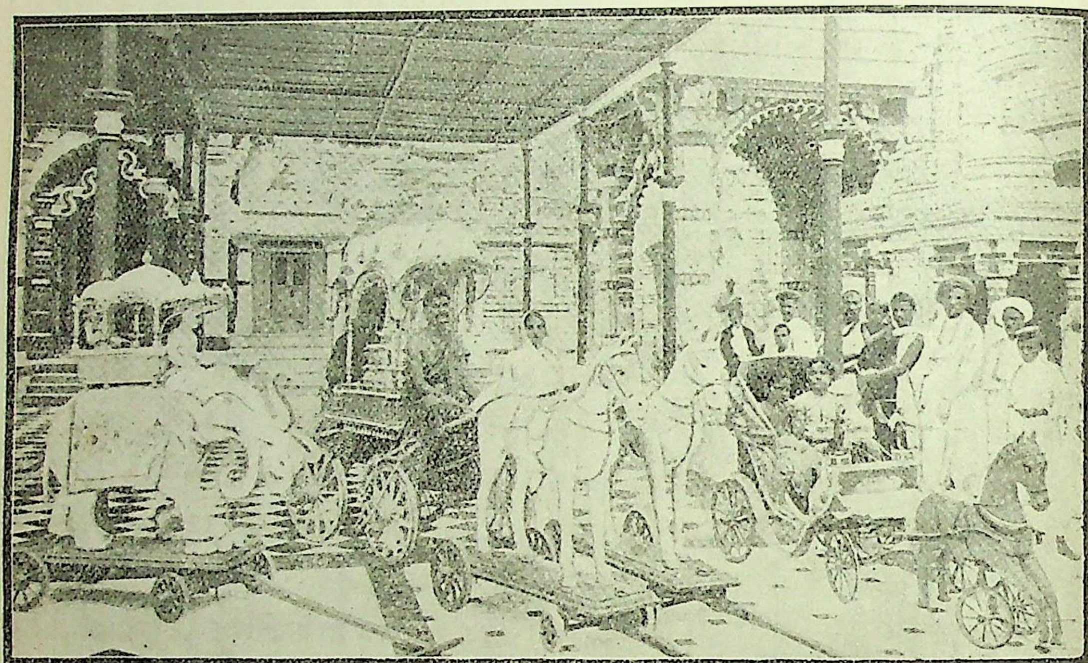
शिखर के एक अहाते का दृश्य।

जब यात्री मन्दिरों के नगर के सिंहद्वार के भीतर प्रवेश करता है तब उसके ऊपर वहाँ की विचित्रता का आतङ्क छा जाता है। वहाँ की निराली शान्ति तथा एकान्तता के प्रभाव से संसार-तप्त प्राणियों के हृदय-कमल खिल जाते हैं। वहाँ के शताब्दियों से किये गये पवित्रता के आयोजन को देख कर दर्शक विस्मय-विमुग्ध हो जाता है। जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा प्रतिमाओं के दर्शन करते हैं। जिन अगणित मन्दिरों से यह तीर्थ-स्थान परिपूर्ण है उनमें आदिनाथ, कुमार पाल, विमलाशाह, सम्प्रति राजा और चौमुख नाम के मन्दिर विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। चौमुख नामक मन्दिर इतना विशाल और ऊँचा है कि वह २५ मील दूर से स्पष्ट देख पड़ता है। कहा जाता है कि महाराज विक्रमादित्य के समय में इसकी स्थापना हुई थी। पर वर्तमान मन्दिर को संवत् १६१९ में जहाँगीर के शासन-काल में अहमदाबाद के धनाधिप शिव सोमजी ने निर्माण किया था। इस मन्दिर में भगवान् आदिनाथ की जो विशाल मूर्ति स्थापित है वह मरकाने के शुद्ध संगमरमर की है। यह चतुर्मुखी मूर्ति है। इसी से यह मन्दिर चौमुख कहलाता है। यह मूर्ति दस फुट ऊँची है और इतनी बड़ी यहाँ के किसी दूसरे मन्दिर में नहीं है। इस मन्दिरों के नगर में यद्यपि अधिकांश मन्दिर अर्वाचीन हैं और लगभग सबके सब ग्यारहवीं सदी के इधर के ही हैं तो भी कारीगरी और सुन्दरता में वे हीन नहीं कहे जा सकते हैं। इस पवित्रस्थान में अर्वाचीन काल की भारतीय कारीगरी को जैन धनाधिपों ने लाखों रुपये ख़र्च कर स्थायी रूप से अङ्कित कर दिया है। अतएव मन्दिरों के सम्बन्ध में और अधिक न लिख कर यहाँ की दो एक अन्य बातों का उल्लेख कर हम इस लेख को समाप्त करते हैं।



रथ-यात्रा।

सिद्धाचल के तीर्थस्थान में श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैनियों का प्राधान्य है। अतएव इस स्थान में इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत जिन भिक्षुकाओं के दर्शन होते हैं वे भी इस तीर्थ की पवित्रता की मूर्ति प्रतीत होती हैं। भिक्षुका-सङ्घ में अधिक संख्या विधवा जैन महिलाओं की होती है। दिगम्बर सम्प्रदाय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनों का जो एक मन्दिर यहाँ है उसमें शान्तिनाथ तीर्थङ्कर की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इसके सिवा एक



जैन-भिक्षुकायें।

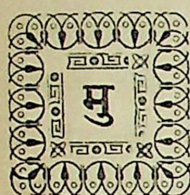
शिव का भी मन्दिर है। इस तीर्थ-स्थान के पुजारी शैव धर्मावलम्बी हैं। अतएव उनकी उपासना के लिए वहाँ शिव के मन्दिर की स्थापना की गई है और इस तरह सिद्धाचल का शान्ति राज्य इस धार्मिक सहिष्णुता के प्रत्यक्ष प्रमाण से स्वतः सिद्ध हो जाता है।

सूरजमल जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुग़लों के मक़बरे।



ग़ल सम्राट् इमारत बनवाने के बड़े प्रेमी थे। उनमें कई एक ने बड़े सुन्दर नगर बसाये हैं। अद्भुत राजप्रासाद और विशाल दुर्गों का निर्माण करना तो उनके लिए एक साधारण बात थी। परन्तु उनकी बनवाई हुई इमारतों में मक़बरों का स्थान निराला है। मृत्यु के बाद उनका शव इन्हीं मक़बरों में दफ़न किया जाता था। प्रायः वे अपने जीवन-काल में नगर के बाहर कोई स्थान पसन्द करते थे। उसे एक पुष्ट प्राचीर से घेर कर वे पहले उसमें ऐशबाग़ लगवाते थे। उसमें फ़ौवारे तथा हौज़ बनवा कर वे उसे सुन्दर सुन्दर वृक्षों तथा फूलों से सुशोभित करते थे। उनका यह बाग़ उस अहाते के ठीक बीच में होता था। उसमें प्रवेश करने के लिए पूर्वोक्त प्राचीर में सिंहद्वार बने रहते थे। फिर धीरे धीरे उसी के भीतर वे चतुष्कोण या अष्टकोण की इमारत बनवाने लगते थे। राज-काज से छुट्टी पाने पर अथवा ग्रीष्म ऋतु में वे यहाँ रह कर प्रायः विश्राम किया करते थे। ऐसी दशा में यह बात स्वाभाविक है कि यदि वे अपनी मृत्यु के बाद अपने शव को उसी स्थान पर दफ़नाये जाने का आदेश कर जायँ, जहाँ वे अपने जीवन-काल में भाँति भाँति के सुखों का उपभोग करते रहे हैं, तो कुछ भी आश्चर्य नहीं है। अतएव जब किसी मुग़ल सम्राट् की मृत्यु होती थी तब उसकी मृत-देह उसके जीवन-काल के इच्छानुसार ही दफ़न की जाती थी। तब वे स्थान विहार-भूमि के बदले मक़बरों में परिणत हो जाते थे और उनकी देख-भाल का भार मुल्लाओं को सौंप दिया जाता था। मुल्लाओं की निगरानी में इन मक़बरों के बाग़-बाग़ीचों का समुचित प्रबन्ध न हो पाता था, अतएव धीरे धीरे वे विनष्ट हो जाते थे। परन्तु मक़बरे ज्यों के त्यों खड़े रहते और जिस महान् पुरुष की मृत-देह उनके भीतर दफ़न रहती उसकी स्मृति को वे स्थायी बनाये रखने का कारण हो जाते हैं। एक अँगरेज़ लेखक का कथन है कि मनुष्य के शिल्प-नैपुण्य के नमूनों में से इस प्रकार की इमारतें अपने ढङ्ग की एक ही हैं। उसने लिखा हैः—

"इस पृथ्वी के जिन बादशाहों और वज़ीरों ने अपने जीवन का समय दिल्ली, आगरा तथा फ़तेहपुर सीकरी में व्यतीत किया है उन्होंने अपनी मृत्यु के बाद अपनी शव-देह को भी उसी प्रकार की सजावट के साथ भूमि-गत किया है। अपने तथा अपनी पत्नियों के लिए मक़बरे बनवाना उनका एक प्रकार का मनोविनोद था। अपने अवकाश का समय वे इसी कार्य में व्यतीत करते थे। युद्ध तथा यात्रा से, षड्यन्त्र तथा महत्त्वाकांक्षा की व्यग्रता से एवं नाना प्रकार के भोग-विलासों से जब वे छुट्टी पाते थे तब उनका ध्यान इसी ओर झुकता था। उस समय वे भविष्यद् अनन्त निद्रा की कल्पना करते थे। जीवन-काल क्षणिक है। वह दुःखों से परिपूर्ण है एवं शत्रुताओं से वह प्रतिक्षण भयाकुल है। पदभ्रष्ट नरपति या कृपापात्र सरदार सभी बातों से निराश हो जाता है। उसका सर्वस्व उसे पदच्युत करनेवाले की दया पर निर्भर हो जाता है। परन्तु उस दशा में भी कोई मुसलमान उसके मक़बरे को नहीं विनष्ट करेगा। वहाँ पदच्युत बादशाह, अनादृत और अपराधी वज़ीर भी शान्ति में चिर-निद्रा का उपभोग कर सकेगा। अतएव इसी विश्वास के कारण मुग़लों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने अपना सारा वैभव मक़बरों की उत्कृष्ट रचना में दिल खोल कर लगाया था। शिल्पकला के क्षेत्र में इसलाम-धर्म ने यह सर्वश्रेष्ठ विजय प्राप्त की है"।

इस समय जहाँ मुग़लकालीन शाही इमारतें मुग़ल सम्राटों के वैभव का परिचय दे रही हैं किसी समय, जब ये इमारतें वहाँ न बनी थीं तब, ये स्थान मुग़ल-सम्राटों के क्रीड़ा-स्थल थे। वे अपने जीवन-काल में यहाँ रह कर अपने अवकाश का समय भोग-विलास में व्यतीत करते थे। मृत्यु के बाद वहीं उनका शव-दफ़न किया गया और एक समय के ये ऐशबाग़ मक़बरों में परिणत हो गये। यहाँ उनकी मृत-देह भविष्यद् काल में चुपचाप सदियों तक पड़ी रह सकती हैं। उनकी आत्मा को शान्ति-प्रदान करने के उद्देश से दरवाज़ों के तोरणों पर कुरान शरीफ़ की आयतें उत्कीर्ण हैं।

यद्यपि जैसा कला-नैपुण्य ताज और सिकन्दरे के मक़बरों में दृष्टिगोचर होता है वैसा पुरानी दिल्ली के मक़बरों में नहीं है, तथापि भारत की इमारतों के बीच वे भी अत्यन्त सुन्दर इमारतें हैं, और उनमें से कुछ उच्च शिल्प-नैपुण्य के निदर्शक भी हैं। उन मक़बरों के बाग़-बग़ीचे बहुत कुछ विनष्ट हो गये हैं, परन्तु वे स्वयं समय के प्रहारों को सह कर इस समय भी ज्यों के त्यों विद्यमान हैं। यद्यपि एक ज़माना बीत गया और उनकी सुरक्षा का कुछ भी प्रबन्ध नहीं होता रहा है तो भी उनकी गणना सुन्दर इमारतों में ही है। दिल्ली-निवासी मुग़लों ने किस प्रकार की इमारतें बनवाई थीं, इसका परिचय पाठकों को करा देने के लिए यहाँ उन भिन्न भिन्न मक़बरों का संक्षेप में उल्लेख किया जाता है जो दिल्ली के दस पुराने उजड़े हुए नगरों में विद्यमान हैं और अपने निर्माताओं के वैभव तथा रुचि का निदर्शन करते हैं। नई दिल्ली या शाहजहानाबाद से जो सड़क दक्षिण-पूर्व को गई है उसी पर सफ़दर जङ्ग का मक़बरा स्थित है। सफ़दर जङ्ग बादशाह अहमदशाह का वज़ीर था। यह मक़बरा एक अहाते के भीतर है। इसके बाँयें ओर यात्रियों के ठहरने के लिए एक सराय बनी है। मक़बरा ९९ .फुट लम्बा और चौड़ा है। यह तीन मरातिब ऊँचा है। बीच के कमरे में संगमर्मर की क़ब्र है। यह इमारत बहुत सुन्दर है। पर फ़र्गुसन इसके शिल्प-नैपुण्य की विशेष प्रशंसा नहीं करता। हाँ, फ़ारेस्ट ने इतना ज़रूर लिखा है कि इसका निर्माण उस समय हुआ था जब मुग़ल-कालीन शिल्पकला का पतन शीघ्रता-पूर्वक शुरू हो गया था और यह इमारत उस समय के अद्भुत उदाहरणों में से एक है। इसमें सजावट का अभाव है और नक़ाशी का काम विशेष रूप से दृष्टिगोचर नहीं होता है। इसके मेहराब के नीचे जो वाक्य उत्कीर्ण है उसका आशय यह है—अपने मानव-बन्धुओं के समक्ष कोई आदमी कैसा ही गौरवपूर्ण और श्रेष्ठ क्यों न हो, वह ईश्वर के सामने तुच्छ और दीन ही है।

सफ़दर जङ्ग के मक़बरे से दो मील से कुछ ऊपर दूर एक दूसरा मक़बरा देख पड़ता है। पुरानी दिल्ली की इन इमारतों में से यह मक़बरा सर्व-श्रेष्ठ है। यह सम्राट् हुमायूँ का मक़बरा है। इसे उसके पुत्र सम्राट् अकबर तथा उसकी विधवा मा ने बनवाया था। यह यमुना के किनारे पर स्थित है और इसी में उदार हुमायूँ की मृतदेह दफ़न है। फ़ारेस्ट ने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि प्रकृति की पवित्रता और कला की सुकुमारता में यह मक़बरा अब तक अप्रतिम ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है। फ़र्गुसन कहता है कि ताज का निर्माण इसी की शैली पर हुआ है, किन्तु इसमें उसकी जैसी न तो कारीगरी है और न कला है। तो भी यह एक श्रेष्ठ मक़बरा है और दूसरे स्थान में एक अद्भुत इमारत समझी जायगी। यह अष्टकोणात्मक संगमर्मर की इमारत है और गुलाबी मायल लाल पत्थर के चबूतरे पर स्थित है। इसका गुम्मज़ संगमर्मर का ही है और बिलकुल ईरानी ढङ्ग का है। प्रत्येक चौथे कोने पर पचास .फुट ऊँची मेहराबें बनी हुई हैं और मेहराबों के ऊपर दीवार की उँचाई १४ .फुट के लगभग है। प्रत्येक कोनों पर भी संगमर्मर के ही गुम्मज़ बने हुए हैं। इसमें प्रवेश करने का मार्ग उत्तर से है। इसी ओर से संगमर्मर के मक़बरे में जाने का मार्ग है। इसके भीतर बग़ल के कमरे में सम्राट्, उसकी विधवा पत्नी, उसकी कन्या, तथा उसके कुछ वंशधरों की क़ब्रें हैं। अन्तिम मुग़ल-सम्राट् बहादुर शाह ने यहीं अपने शव को दफ़नाये जाने की इच्छा प्रकट की थी, परन्तु सिपाही-विद्रोह में भाग लेने के कारण ब्रिटिश गवर्नमेंट ने उसे देश से निर्वासित कर रङ्गून में क़ैद कर दिया था। अतएव उसकी यह अन्तिम इच्छा पूरी न हो सकी। जिस अहाते के भीतर हुमायूँ का मक़बरा है वह लगभग ग्यारह एकड़ भूमि में है।

हुमायूँ के मक़बरे से कुछ ही दूर एक दूसरा मक़बरा है। यह निज़ामुद्दीन अवलिया का मक़बरा है। यह भी एक बहुत सुन्दर इमारत है। जिस अहाते के भीतर यह मक़बरा है उसके भीतर और कई एक मक़बरे तथा मस्जिदें हैं। निज़ामुद्दीन अवलिया अपने समय का बड़ा भारी महात्मा था। प्रसिद्ध चिश्ती साधु परिवार में यह सर्वश्रेष्ठ पुरुष हो गया है। इसका मक़बरा सफ़ेद पत्थर का है और १८ .फुट लम्बा और उतना ही चौड़ा है। इसके आगे आठ .फुट चौड़ा एक बरामदा भी है। इसे मीर मीरन के पुत्र ने बनवाया था। क़ब्र के ऊपर एक बहुमूल्य कपड़ा ओढ़ाया रहता है। उसे मुसलमान के सिवा दूसरा कोई नहीं उठा सकता। इसमें जाली और पच्चीकारी काम बहुत ही सुन्दर है। इस स्थान को मुग़ल-सम्राट् बहुत पवित्र समझते थे। उनमें से अनेक की इच्छा यही थी कि उनके शव इसी महात्मा के मक़बरे में दफ़न किये जायँ। इस कारण वहाँ पास ही पास बहुत सी क़ब्रें दृष्टिगोचर होती हैं। इन्हीं क़ब्रों में शाहजहाँ की प्रियपुत्री शाहज़ादी जहाँआरा की भी क़ब्र है। यह राजकुमारी आजीवन कुमारी रही और जब औरङ्ग़ज़ेब ने सम्राट् को नज़रबन्द कर दिया था तब यह उसके पास बराबर रहती रही। सम्राट् की क़ैद में यह उसके अन्त समय तक विद्यमान रही और उसके सारे कार्यों की देखरेख करती रही। मुग़लों के इतिहास में इस सम्राट्-कन्या की कहानी करुणा-रस-पूर्ण है। मृत्यु के उपरान्त इसका शव इसी मक़बरे में दफ़न किया गया था। इसकी क़ब्र के शिरोभाग में छः फुट ऊँचा जो पत्थर खड़ा है उस पर अरबी भाषा में जो शब्द उत्कीर्ण हैं उनका अर्थ यह है—ईश्वर हमारा जीवन और क़यामत है। इसी के नीचे फ़ारसी भाषा की जो शेरें उत्कीर्ण हैं उनका भी भाव यहाँ दिया जाता है:—'सिवा हरी वनस्पति के मेरे सिर पर और कुछ न रक्खा जाय। तुच्छ मृत व्यक्ति के लिए केवल यही चादर उपयुक्त है। दीन जहाँआरा यहीं पड़ी है। उसका प्रभु शाहजहाँ था और उसका गुरु चिश्ती। ईश्वर करे, गाज़ी सम्राट् का प्रमाण स्पष्ट कर दे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस क़ब्र की तारीख़ सन् १६८१ है। चिस्ती की क़ब्र के पास ही रँगीले मुहम्मद शाह की क़ब्र है। इसी सम्राट् के समय फ़ारस के नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया था। यह मक़बरा अनेक इमारतों का एक विचित्र संग्रहालय है। यहाँ के दूसरे मक़बरे और उनकी विचित्र कारीगरी के नमूने देखने की चीज़ हैं। पूर्वोक्त महात्मा का बनवाया हुआ एक कुआ भी बहुत सुन्दर है। प्रायः लड़के पास की इमारत की छत से कोई ५० .फुट की उँचाई से जल में कूदा करते हैं।

चौसठ खम्भे के मक़बरे में सम्राट् अकबर के धाय का पुत्र अज़ीज़ कोका का शव-दफ़न है। यह सम्पूर्ण मक़बरा संगमर्मर का बना है। इसके खम्भे इस समय भी ख़ूब चमकदार और चिकने हैं। इनके नीचे और ऊपर के भाग में सुन्दर सुन्दर बेल-बूटे तराशे हुए हैं। जिन पत्थरों से बाहर के खम्भे परस्पर मिले हुए हैं उनमें जालियाँ कटी हुई हैं। ये दस .फुट चौड़े हैं। इनकी कारीगरी अद्भुत और अनोखी है। यह मक़बरा मुग़ल-शिल्प-कला का अपने ढंग का एक ही नमूना है। इसमें पवित्र सौन्दर्य का स्पष्ट निदर्शन है। इसके निर्माण-समय तक इस कला में अधिक बारीक़ी और छोल तराश न घुस पाई थी।

जो मक़बरा कुतुब मीनार के पास स्थित है वह सम्भवतः भारत का सबसे अधिक प्राचीन मक़बरा है। यह पठान बादशाह सुलतान अलतमश का मक़बरा है। प्राचीन हो जाने के कारण यह बहुत कुछ नष्टप्राय है। पर इस समय भी इसका सुन्दर भाग बहुत कुछ बचा हुआ है। इस मक़बरे के सम्बन्ध में फ़र्गुसन ने लिखा है:—हिन्दू-कला का यह एक उत्कृष्ट नमूना है। मुसलमानों ने उसे अपने मतलब के लिए अपने उपयोग में लिया था। यद्यपि मुसलमानों का उद्देश व्यक्त करने में कारीगर पूर्ण रीति से नहीं सफल हुए तो भी यह एक बहुत सुन्दर इमारत है।

तुग़लकाबाद की दक्षिणी दीवार के बाहर तुग़लक का मक़बरा स्थित है। यह इमारत एक कृत्रिम झील के बीच में है। वहाँ एक ऊँची सड़क बनी हुई है जिससे यह मक़बरा क़िले से मिला हुआ है। यह सड़क ६०० .फुट के लगभग लम्बी है। लाल पत्थर में बीच में संगमर्मर की पटियाँ लगा कर इसकी नक्क़ाशी की सौन्दर्य-वृद्धि की गई है। इस पर जो गुम्मज़ है वह भी संगमर्मर ही का है। इस मक़बरे की ढलुई दीवारें बहुत ही भारी और पुष्ट हैं। इनके साथ साथ जो दुर्गमय विशाल-काय मीनारों से यह घिरा हुआ है उससे यह बात सिद्ध होती है कि यह मक़बरा किसी सैनिक का है। इस ढंग का दूसरा मक़बरा अन्यत्र नहीं देख पड़ता है। मुग़लों के मक़बरों की, संक्षेप में, यही कथा है।

'यात्री'

कामसूत्र तथा वात्स्यायन का समय।

देश-प्रथा तथा पण्डित मण्डली-प्रथा प्रायः इसी पक्ष में है कि कामसूत्र का निर्माता तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र का संगृहीता वात्स्यायन एक ही व्यक्ति का नाम है। कौटिलीय अर्थशास्त्र चन्द्रगुप्त मौर्य के उद्धारक चाणक्य का है, इसमें प्रायः अब मत-भेद नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामसूत्र का बनानेवाला भी चाणक्य ही है, इसमें पूरी सहमति नहीं दी जा सकती।

सबसे पहली बात तो यह है कि कामसूत्र का निर्माण मौर्यकाल से पहले नहीं रक्खा जा सकता। कामसूत्र में लिखा है कि "प्रजा को उत्पन्न कर प्रजापति ने उसकी स्थिति के लिए एक लाख अध्यायों में त्रिवर्ग का साधन लिखा। स्वायम्भू मनु ने उसमें से एक भाग को पृथक् कर धर्म्माधिकार का निर्माण किया। इसी प्रकार बृहस्पति ने अर्थाधिकार का और नन्दी ने एक हज़ार अध्यायों में कामसूत्र का प्रचार किया। औद्दालकि श्वेतकेतु ने इसी का संक्षेप पाँच सौ अध्यायों में किया। उसके बाद बाभ्रव्य पाञ्चाल ने सात प्रकरणों में दो सौ पचास अध्यायों को विभक्त कर कामसूत्र को जनता के सम्मुख रक्खा। पटना की वेश्याओं के कहने पर दत्तक ने उसके छठे अधिकरण या प्रकरण की व्याख्या पृथक् तौर पर की। उसी प्रसङ्ग में चारायण ने साधारण अधिकरण को, सुवर्णनाभ ने सांप्रयोगिक को, घोटकमुख ने कन्या-सम्प्रयुक्त को, गोनर्दीय ने भार्य्याधिकार को, गोणिकापुत्र ने पारदारिक को और कुचुमार ने औपनिषद को स्पष्ट किया। इस प्रकार भिन्न भिन्न आचार्यों ने काम-शास्त्र की पृथक् पृथक् व्याख्या की। दत्तक का ग्रन्थ एक भाग से सम्बद्ध था और बाभ्रव्य का ग्रन्थ बहुत बड़ा था। इसलिए वात्स्यायन ने सम्पूर्ण ग्रन्थों का संक्षेप कर कामसूत्र का निर्माण किया" (१) इस संदर्भ से स्पष्ट है कि पटना की समृद्धि के दिनों में या उसके चिरकाल के बाद वात्स्यायन ने कामसूत्र का निर्माण किया। भगवान् बुद्ध के समय में पटना एक छोटा सा गाँव था। अजातशत्रु ने इसको छावनी बनाया। धीरे धीरे यह गाँव से एक बड़ा नगर बन गया। चन्द्रगुप्त से अशोक तक पटना की समृद्धि दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई। इस प्रकार स्पष्ट है कि वात्स्यायन तथा कामसूत्र का उद्भव मौर्यकाल से पहले नहीं रक्खा जा सकता।

दूसरी बात यह है कि कौटिलीय अर्थ-शास्त्र तथा काम-सूत्र का प्रकरण-विन्यास एक दूसरे से सर्वथा मिलता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि कौटिलीय अर्थ शास्त्र को सर्व-प्रिय देख कर उसकी शैली पर वात्स्यायन ने कामसूत्र का निर्माण किया। दृष्टान्त-स्वरूप दोनों ग्रन्थों का प्रकरण-विन्यास इस प्रकार है:—

कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्

(क) पृथिव्या......अर्थशास्त्रं कृतम्।

(ख) तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः॥

(ग) इत्यौपनिषदं चतुर्दशमधिकरणम्।

(घ) शास्त्रसमुद्देशः पञ्चदशाधिकरणानि स पञ्चाशदध्यायशतं साशीतिप्रकरणशतं षट्श्लोकसहस्राणीति॥

कामसूत्रम्

धर्मार्थकामेभ्यो नमः......कामसूत्रमिदं प्रणीतम्।

तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः।

इत्यौपनिषदिकं सप्तममधिकरणम्।

एवं षट्त्रिंशदध्यायाः। चतुःषष्टि प्रकरणानि।

अधिकरणानि सप्त। सपादं श्लोकसहस्रम्॥

आश्चर्य्य की बात है कि दोनों ही ग्रन्थों में औपनिषदिक नाम का अधिकरण समान है।

कौटिलीय अर्थ-शास्त्र तथा कामसूत्र में विचारों तथा वाक्यों की समता भी बहुत ही अधिक मौजूद है। कौटि-

(१) प्रजापतिर्हि प्रजाः सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्धनं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच। तस्यैकदेशं स्वायंभुवो मनुर्धर्माधिकारं पृथक् चकार ॥६॥ बृहस्पतिरर्थाधिकारम् ॥७॥ महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक्कामसूत्रं प्रोवाच ॥८॥ तदेव तु पञ्चभिरध्यायशतैरौद्दालकिः श्वेतकेतुः संचिक्षेप ॥९॥ तदेव तु पुनरध्यर्धेनाध्यायशतेन साधारण, सांप्रयोगिक, कन्यासंप्रयुक्तक, भार्य्याधिकारिक, पारदारिक, वैशिकौपनिषदिकैः सप्तभिरधिकरणैर्बाभ्रव्यः पाञ्चालः संचिक्षेप ॥१०॥ तस्य षष्ठं वैशिकमधिकरणं पाटलिपुत्रिकाणां गणिकानां नियोगाद्दत्तकः पृथक् चकार ॥११॥ तत्प्रसंगाच्चारायणः साधारणमधिकरणं पृथक् प्रोवाच ॥१२॥ सुवर्णनाभः सांप्रयोगिकम् ॥ घोटकमुखः कन्यासंप्रयुक्तम् ॥ गोनर्दीयो भार्याधिकारिकम् ॥१५॥ गोणिकापुत्रः पारदारिकम् ॥१६॥ कुचुमार औपनिषदिकम् ॥१७॥ तत्र दत्तकादिभिः प्रणीतानां शास्त्रावयवानामेकदेशत्वात् महदिति च बाभ्रवीयस्य दुरध्येयत्वात्, संक्षिप्य सर्वमर्थमल्पेन ग्रन्थेन कामसूत्रमिदं प्रणीतम् ॥१९॥ कामसूत्रम् ॥ चौखम्भा सं० सू० पृ० ४-७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीय में लिखा है कि व्यापार-व्यवसाय अध्यक्षों से सीखा जाय (२)। यही कामसूत्र में दुहराया गया है (३)। इसी के सदृश दोनों ही ग्रन्थों में निम्न-लिखित वाक्य समान रूप से आया है।

यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामात् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानस्सबन्धुराष्ट्रो विननाश (४)। इन्द्रियजय तथा काम के लक्षण में दोनों ग्रन्थों में विचित्र प्रकार की समानता है। मालूम पड़ता है कि वात्स्यायन ने कौटिल्य के अक्षरों को उलट कर काम का लक्षण बना दिया है। दोनों ग्रन्थों के लक्षण इस प्रकार हैं।

कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः (५) श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाऽधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषये स्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः (६)

कौटिलीय अर्थशास्त्र तथा वात्स्यायनकृत काम-सूत्र का एक प्रकरण का प्रकरण आपस में मिलता है। दोनों के विषय का आधार एक ही वर्गीकरण है जिसको इस प्रकार दिखाया जा सकता है।

कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्(७)

(क) अर्थो धर्म्मः कामः इत्यर्थत्रिवर्गः॥ पृ० ३६१॥

(ख) अनर्थोऽधर्म्मः शोक इत्यनर्थत्रिवर्गः॥ पृ० ३६१॥

(ग) शत्रुमुत्पाद्य पार्ष्णिग्राहादानमर्थोऽर्थानुबन्धः ॥ पृ० ३५८॥

(घ) उदासीनस्य दंडानुगतफलेन अर्थो निरनुबन्धः॥ पृ० ३५९॥

(ङ) परस्यान्तरुच्छेदनमर्थोऽनर्थानुबन्धः॥ पृ० ३५९॥

(च) शत्रुप्रतिवेशस्यानुग्रहः कोशदण्डाभ्यामनर्थोऽर्थानुबन्धः॥ पृ० ३५९॥

(छ) हीनशक्तिमुत्साह्य निवृत्तिरनर्थो निरनुबन्धः॥ पृ० ३५९॥

(ज) ज्यायांसमुत्थाप्य निवृत्तिरनर्थोऽनर्थानुबन्धः॥ पृ० ३५९॥

वात्स्यायनीयं कामसूत्रम् (८)

(क) अर्थो धर्म्मः काम इत्यर्थत्रिवर्ग०॥ पृ० ३४६॥

(ख) अनर्थोऽधर्मो द्वेष इत्यनर्थत्रिवर्गः॥ पृ० ३४६॥

(ग) यस्योत्तमस्याभिगमने प्रत्यक्षतोऽर्थलाभो ग्रहणीयत्वमायतिरागमः प्रार्थनीयत्वं चान्येषां स्यात्सोऽर्थोऽर्थानुबन्धः॥१२॥ पृ० ३४७-३४८॥

(घ) लाभमात्रे कस्यचिदल्पस्य गमनं सोऽर्थो निरनुबन्धः॥१३॥ पृ० ३४८॥

(ङ) अन्यार्थपरिग्रहे सक्ता दायतिच्छेदनमर्थस्य निष्क्रमणं लोकविद्विष्टस्य वा नीचस्य गमनमायतिघ्नमर्थोऽनर्थानुबन्धः॥१४॥ पृ० ३४८॥

(च) स्वेन व्ययेन शूरस्य महामात्रस्य प्रभवतो वा लुब्धस्य गमनं निष्फलमपि व्यसनप्रतीकारार्थं महतश्चार्थघ्नस्य निमित्तस्य प्रशमनमापत्तिजननं च सोऽनर्थोऽर्थानुबन्धः॥ १५ पृ० ३४८॥

(छ) कंदर्पस्य सुभगमानिनः कृतघ्नस्य वाऽतिसंधानशीलस्य स्वैरपि व्ययैस्तथाऽऽराधनमन्ते निष्फलं सोऽनर्थो निरनुबन्धः॥ १६ पृ० ३४८॥

(ज) तस्यैव राजवल्लभस्य क्रौर्यप्रभावाधिकस्य तथैवाराधनमन्ते निष्फलं निष्कासनं च दोषकरं सोऽनर्थोऽनर्थानुबन्धः॥ पृ० ३४९॥

कौटिलीय अर्थ शास्त्र के एक श्लोक को पलट कर

---

(२) कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्। १ अधि० ५ अध्या० २ प्रक० पृ० १०॥

(३) कामसूत्रम्। वात्स्यायनकृतम्॥ १ अधि० २ अध्या० २ प्रक० सूत्र ९॥ पृ० १३॥ चौखंभा सं० (१९१२)

(४) कौटली०—१ अधि० ५ अध्या० ३ प्रक० पृ० ११॥ कामसूत्रम् १ अधि० २ अध्या० २ प्रक० सू० ४४। पृ० २४।

(५) कौटिली० १ अधि० ५ अध्या० ३ प्रक० पृ० ११॥

(६) कामसूत्रम्—१ अधि० २ अध्या० २ प्रक० सूत्र ११॥ पृ० १४ चौखं० सं० (१९१२)

(७) कौ० अर्थ०॥ ९ अधि० ७ अध्या० १४५—१४६ प्रकरण॥ पृ० ३५८-३६३॥ द्वितीय संस्करणम्।

(८) वात्स्या० कामसूत्रम्॥ ६ अधि० ६ अध्याय० १ प्रकरण॥ पृ० ३४५-३६०॥ चौखं० सं० (१९१२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दूसरा श्लोक कामसूत्र में बनाया गया है। दोनों श्लोक इस प्रकार हैं:—

कौटिलीयं अर्थशास्त्रम् (६)

एते चान्ये च बहवः शत्रुषड्वर्गमाश्रिताः
.... बुभुजाते चिरं महीम् ॥

कामसूत्रम् (१०)

एते चान्ये च बहवः ....
निगृहीतारिषड्वर्गस्तथा विजयते महीम् ॥

शब्द तथा प्रकरण-विन्यास की समता के सदृश ही दोनों ग्रन्थों में विषय की भी समता है। दृष्टान्त-स्वरूप **गणिका** तथा **रूपजीवा** को ही लीजिए। पहली उत्तम वेश्या और दूसरी साधारण वेश्या समझी जाती थी। कुंभदासी, परिचारिका, कुलटा, स्वैरिणी, नटी, शिल्पकारिका, प्रकाशविनष्टा आदि अनेक भेद तीसरी श्रेणी की वेश्याओं के थे। इनमें से कुंभदासी आदि का उल्लेख कौटिलीय में मिलता है (११)। गणिका तथा रूपाजीवा का तो वहाँ विशेष तौर पर उल्लेख है (१२)। काम-सूत्र में वात्स्यायन ने ही गणिका रूपाजीवा, कुंभदासी आदि का भेद विस्तृत तौर पर प्रकट किया है जब कि चाणक्य ने इसका कुछ भी वर्णन नहीं किया है। वात्स्यायन के अनुसार उद्यान, बग़ीचा, देवकुल, तालाब, हज़ार गौ का दान देनेवाली उत्तम गणिका, सजधज से बैठनेवाली मध्यम आयवाली वेश्या रूपाजीवा और जिनके पास कुछ सोने के गहने हों और खाने पीने के लायक जो कमा लेती हों वह कुंभदासी के नाम से पुकारी जाती हैं। (१३)

दोनों ही ग्रन्थों में **देवकुल** शब्द का आना ध्यान देने के योग्य है। यदि कौटिलीय अर्थ-शास्त्र चन्द्रगुप्त के समय का है तो कामसूत्र भी सर्वथा आधुनिक नहीं कहा जा सकता। (१४)

देवकुल के सदृश ही मधुमैरेय आसव नामक शराबों का दोनों ही ग्रन्थों में एक सदृश ही व्यवहार है (१५) कौटिलीय ने तो इनके बनाने का तरीक़ा भी दिया है (१६)। चाणक्य का मत है कि काम के वश में न होनेवाले लोग ही अन्दर तथा बाहर की विहार-भूमियों की रक्षा करें

---

(९) कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्। १ अधि० ६ अध्या० ४ प्रक० पृष्ठ १२। द्वितीय संस्करण।

(१०) कामसूत्रम्। ५ अधि० ६ अध्या० १ प्रक० पृ० २८८। चौखंभा संस्करण (१९१२)।

(११) गणिकादासी रङ्गोपजीवनी च ॥ कौ० २ अधि० २७ अध्या० ४४ प्रकरण ॥ पृ० १२५ ॥

(१२) गणिकाध्यक्षः गणिकान्वयामगणिकान्वयां वा ॥ कौ० २ अधि० २७ अध्या० ४४ प्रक०। पृ० १२३॥ रूपाजीवा भोगद्वयगुणं मासं दद्युः ॥ कौ० २ अधि० २७ अध्या० ४४ प्रक०। पृ० १२५ ॥

(१३) देवकुलतडागारामाणां करणं, स्थलीनामग्निचैत्यानां निबन्धनं गोसहस्राणां पात्रान्तरितं ब्राह्मणेभ्यो दानं, देवतानां पूजोपहारप्रवर्तनं, तदुभयसहिष्णोर्वा धनस्य ग्रहणमित्युत्तमगणिकानां लाभातिशयः ॥ २५ ॥ सर्वाङ्गिकोऽलङ्कारयोगो, गृहस्योदारस्य करणं महार्घैर्भाण्डैः परिचारकैश्च गृहपरिच्छदस्योत्कृष्टतेति रूपाजीवानां लाभातिशयः ॥ २६ ॥ नित्यं शुक्लमाच्छादनमपक्षुधमन्नपानं नित्यं सौगन्धिकेन कङ्कतेन च योगः सहिरण्यभागमलङ्करणमिति कुम्भदासीनां लाभातिशयः ॥ २७ ॥ कामसूत्रम्, ६ अधि० ५ अध्या० १ प्रक० पृ० ३४०-३४१ ॥ चौखं० सं० (१९१२)

(१४) देवकुलतडागारामाणां करणं। कामसूत्र ६ अधि० ५ अध्या० १ प्रक० पृ० ३४०-३४१ ॥ तेनतपोवनविवीत महापशुपथश्मशानदेवकुलयजनपुण्यस्थानविवादाः व्याख्याताः ॥ कौ० ६ अधि० ९ अध्या० ६१ प्रक० पृ० १६९ ॥ देवकुल का महत्त्व—इस पर देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग १ अंक १ ॥

(१५) कौ० २ अधि० २५ अध्याय ४२ प्रकरण। पृ० १२०। द्वितीय संस्करण। कामसूत्रम्। १ अधि० ४ अध्या० ४ प्रक० सूत्र ३८ ॥ पृ० ५२ ॥ चौखंभा संस्करण।

(१६) कौ० २ अधि० २५ अध्याय ४२ प्रक०। पृ० १२० ॥ द्वितीय संस्करण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१७)। काम-सूत्र में इसी वाक्य को दुहराया है और लिखा है कि पुराने आचार्यों का यही मत है (१८)। यह वाक्य ध्यान देने योग्य है क्योंकि इससे काम-सूत्र का अर्थ-शास्त्र के बाद बनाया जाना मालूम पड़ता है। वात्स्यायन ने कौटिलीय के मत का जो खंडन किया है (१९) उससे भी यही स्पष्ट है। यहाँ पर बस न कर वात्स्यायन ने बाभ्रव्य के इस मत का उल्लेख किया है कि "गुप्त वेश में रहनेवाली औरतों के सहारे स्त्रियों की वास्तविक दशा को जाने और उनकी पवित्रता की परीक्षा करे (२०) इस मत के खण्डन में वात्स्यायन ने कौटिलीय की इस युक्ति का कि "स्वच्छ निर्दोष पुरुष एक बार परीक्षा द्वारा गिराया जाकर बहुधा उठने में असमर्थ हो जाता है" (२१) अवलम्बन किया है और लिखा है कि "पवित्र स्त्री एक बार परीक्षा द्वारा गिर कर सदा के लिए ख़राब हो जाती है अतः जहाँ तक हो सके ऐसी परीक्षा से बचे" (२२)। दोनों ही ग्रन्थों के श्लोकों के शब्द तथा भाग आपस में मिलते हैं।

उपरिलिखित सन्दर्भ को देखते हुए भी बहुतों को यह सन्देह हो सकता है कि कौटिलीय से कामसूत्र कहीं पुराना न हो। निस्सन्देह समता उलझन बढ़ा देती यदि काम-सूत्र में निम्नलिखित तीन सूत्र न आये होते।

कर्त्तर्याः कुन्तलः शातकर्णिः
शातवाहनो महादेवीं मलयवहीम् (२३)
रतियोगे कीलयागणिकां
चित्रसेनां चोलराजो जघान (२४)
नरदेवः कुपाणिर्विद्धया
दुष्प्रयुक्तया नटीं काणां चकार (२५)

नरदेव पाण्ड्यराज का सेनापति था। कुन्तल शात-कर्णि शातवाहन पहला आन्ध्र राजा था जिसने २७ बी० सी० में मौर्य्यवंश का ध्वंस कर पटना पर प्रभुत्व प्राप्त किया (२६) चोलराज का भी काम-सूत्र में उल्लेख है ही। पांड्य चोल तथा अन्ध्रों की प्रख्याति अशोक के समय में हुई। इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि वात्स्यायनकृत काम-सूत्र विक्रमाब्द के प्रारम्भ में लिखा गया। काम-सूत्र में "मृगाः सन्तीति भवाः नोप्यन्ते, भिक्षुकाः सन्तीति स्याल्यो नाधिश्रयन्ते" यह वाक्य आता है। यही वाक्य पतञ्जलि ने अपने नवाह्निक में दिया है। इसी प्रकार कालिदास का सबसे प्रसिद्ध श्लोक का यह भाग "भूयिष्ठं भव दक्षिणा

(१७) कामोपधाशुद्धान्—बाह्याभ्यन्तरविहाररक्षासु ॥ कौ० १ अधि० १० अध्या० ६ प्रक० । पृ० १७ ॥

(१८) कामोपधाशुद्धान् दक्षिणोऽन्तःपुरे स्थापयेदित्याचार्य्याः ॥ कामसूत्र आदि० ६ अध्या० २ प्रक० पृ० २९६५ ॥

(१९) ते हि भयेन चार्थेन नान्यं प्रयोजयेयुस्तस्मात्काम-भयोपधाशुद्धानिति गौणिकापुत्रः ॥ अहो हो धर्म-स्तमपि भयाज्जह्यादतो धर्मभयोपधाशुद्धानिति वात्स्यायनः ॥ काम० ५ अधि० ६ अध्याय २ प्रक० पृ० २९६ ॥

(२०) परवाक्याभिधायिनीभिश्च गूढ़ाकाराभिः प्रमदाभि-रात्मदारानुपदध्याच्छौचाशौचपरिज्ञानार्थमिति बाभ्र-वीयाः ॥ कामसूत्र ५ अधि० ६ अध्या० २ प्रक० सू० ४० । पृ० २९६ ॥

(२१) न दूषणमदुष्टस्य विषेणैवाम्भसश्चरेत् ।
कदाचिद्धि प्रदुष्टस्य नाधिगम्येत भेषजम् ॥
कृता च कलुषा बुद्धिरुपधाभिश्चतुर्विधा ।
नागत्वा विनिवर्तेत स्थिता सत्ववतां धृतौ ॥
कौटि० अर्थ० १०१० ६ अध्या० ६ प्रक० ॥ पृ० १०॥ द्वितीय संस्करण ।

(२२) दुष्टानां युवतिषु सिद्धत्वान्नाकस्माददुष्टदूषणमाचरे-दिति वात्स्यायनः ॥ काम० ५०६०२० सू० ४८ पृ० २९६ ॥

(२३) कामसूत्रम् । २ अधि० ७ अध्या० २ प्रकरण ० सूत्र २८ ॥ पृष्ठ १४९ ॥

(२४) कामसूत्रम् । २ अधि० ७ अध्या० २ प्रकरण० सूत्र २७ ॥ पृष्ठ १४९ ॥

(२५) कामसूत्रम् । २ अधि० 'अध्या० २ प्रक० सूत्र २९ ॥ पृ० १४९ ॥

(२६) विंसन्ट स्मिथ-लिखित भारत का प्राचीन इतिहास (इंग्लिश) प्रथम संस्करण पृ० १८३ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिजने भाव्येष्वनुत्सेकिनी" (२७) कामसूत्र के परिजने दाक्षिण्यं न चाधिक्यमात्मानं पश्येत् (२८) से बहुत ही अधिक मिलता है। इस प्रकार वात्स्यायन, पतञ्जलि तथा कालिदास की त्रिमूर्ति यह उलझन पैदा करती है कि कौन किससे पुराना है? हमारी समझ में तो वात्स्यायन ही प्राचीन मालूम पड़ता है। ऊपर लिखे हुए तीनों वाक्यों से यही झलकता है कि अंध्र पाण्ड्य तथा चोलराज की प्रधानता के दिनों में ही वात्स्यायन ने कामसूत्र का निर्माण किया।

प्राणनाथ, विद्यालङ्कार

चारु चयन।

१—नव वर्ष।

(१)

नया वर्ष आया हमें हर्ष होवे,
समुत्कर्ष होवे, न सङ्घर्ष होवे।
दयालो! नयाऽऽलोक को लोक देखे,
नहीं स्तोक भी शोक के ओक देखे॥

(२)

सुखाधार सी भारतीया धरा हो,
चराचार में तत्परा उर्वरा हो।
पराक्रान्ति से हीन हो, कान्ति से हो—
भरी शान्ति से हो भरी क्षान्ति से हो॥

(३)

नहीं ईति का भीति का भान होवे,
हमें प्रीति का नीति का ज्ञान होवे।
मिले तत्त्व सत्सत्व का स्वत्व का भी,
महत्त्वात्प्यभीकीत्व एकत्व का भी॥

(४)

नहीं देश को क्लेश का लेश होवे,
समावेश आवेश का वेश होवे।
रहे भक्ति भी शक्ति में व्यक्त होके,
रहें भुक्ति में मुक्ति संसक्त होके॥

(५)

खलों के बलों की कला निष्फला हो,
भलों के दलों की बला निर्बला हो।
लड़ी कूट की फूट की टूट जावे,
प्रभो! वूट भी लूट भी छूट जावे॥

(६)

परों के करों से परे हिन्द होवे,
धृतानन्द गोवृन्द गोविन्द! होवे।
न उद्वेल हो जेल को आर्य झेलें,
खलों को खलें, मेल के खेल खेलें॥

(७)

पराधीनता में नहीं लीनता हो,
नहीं दीनता हो, सुखासीनता हो।
हमें वीरता धीरता शूरता हो,
अकूपार के पार ही क्रूरता हो॥

(८)

असन्तुष्ट हों दुष्ट या तुष्ट होवें,
सदा आर्य सत्कार्य में पुष्ट होवें।
खलों से भलों का गला छूट जावे,
भला, निर्बलों की बला छूट जावे॥

(९)

न निष्कान्त होवें, न उद्भ्रान्त होवें,
सविक्रान्त हों, शान्त हों, दान्त होवें।
न सङ्ग्राम से वाम हो धाम खोवें,
नहीं काम से क्षाम हो दाम खोवें॥

(१०)

बुरों की बुराई न राई-तुली हो,
बड़ों की बड़ाई कड़ाई-तुली हो।
बने विप्र भी क्षिप्रता से प्रतापी,
न कोई प्रलापी, न कोई सुरापी॥

(११)

सदा वृद्धि भी ऋद्धि की सिद्धि की हो,
सदा शुद्धि भी युद्ध-दुर्बुद्धि की हो।

(२७) अभिज्ञानशाकुन्तलम्। कालिदासग्रथितम्। ४० श्लो० १७

(२८) कामसूत्रम्। ४ अधि० २ अध्या० ४ प्रक० पृ० २४१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुराचार का हो न संचार जी में,
समाहार का हो न संहार जी में ॥
(१२)
अनय का अघ-पोत नहीं चले,
सकल भूतल पुष्पित हो फले।
विजय भारत के तन में रहे,
सुजनता जनता-मन में रहे ॥

रामचरित उपाध्याय

२—समालोचना-रहस्य।

हम अपने अधिकार की रक्षा करने में हमेशा सर्वथा सावधान नहीं रहते। अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान यथेष्ट होने पर भी हम पर अक्सर प्रलोभनों का असर होजाता है। जो काम हमें सौंपा जाता है केवल उसी को पूर्ण करने के सिवा हम और कुछ भी कर बैठते हैं; और ऐसा अक्सर जान-बूझ कर करते हैं, धोखे से तो बहुत ही कम। मान लीजिए कि पण्डित तमाखूनन्दन बहुत ही उच्च-श्रेणी के विद्वान् हैं, भगवान् का उन्हें बहुत डर रहता है और अपने अधिकारों की सीमा पर भी उनकी नज़र जमी रहती है। ऐसे गुण-निधान व्यक्ति को न्याय-वितरण करने का भार किसी राज्य ने सौंप दिया। अब इनके इजलास में किसी प्रसिद्ध व्यक्ति पर अभियोग चलाया गया। वादी और प्रतिवादी दोनों ओर के क़ानूनदाँ लोगों ने दर्जनों नज़ीरें पेश करके क़ानून को अपने पक्ष में बतलाया। अब न्यायाधीश को सिर्फ़ यह देखना चाहिए कि अभियुक्त पर वास्तव में अभियोग सिद्ध होता है या नहीं और उस विषय में क़ानून का सच्चा अर्थ क्या है। न्यायाधीश को इस बात पर दृष्टि डालने की ज़रूरत नहीं कि अभियुक्त कौन है, समाज में उसकी मान-मर्यादा की इयत्ता कितनी है, उस पर छिपे तौर पर अधिकारी-तन्त्र की विष-दग्ध-दृष्टि तो नहीं रहती है और उसके सम्बन्ध में गुप्त रूप से कोई बेजा कार्रवाई तो नहीं होती रही है। न्यायाधीश तो इतना ही करे कि कच्चे तागे से बँधी नङ्गी तलवार को अपने सिर पर झूलती हुई समझ कर वह न्याय-दृष्टि से दूध और पानी को अलग अलग कर दे। अभियुक्त पर यदि अपराध प्रमाणित हो तो वह अपराध की गुरुता के लिहाज़ से अपराधी को दण्ड दे और यदि अभियोग साबित न हो तो अभियुक्त को बेदाग़ छोड़ दे। वह यह न सोचे कि इसे छोड़ देने से मेरे ऊपर के हाकिमों की भौंहें तन जायँगी और नासा कुञ्चित होजायगी। यदि ऐसा हो तो हुआ करे, इन बातों की उसे तनिक भी परवा न करनी चाहिए। और यदि वह इतना निर्भीक न हो, न्याय की सम्मान-रक्षा करने का साहस उसमें न हो तो वह न्यायासन पर रहम करे—अपना पेट पालने के लिए किसी और पेशे को अख़्तियार कर ले। जिसे किसी की भृकुटि और नासिका के विकार का भय है वह न्याय क्या करेगा ख़ाक़। एक तो उसे न्याय करते समय किसी का डर होना ही न चाहिए और यदि डर ही हो तो उस जगन्नियन्ता का कि जिसके कारण उसके हाथ से अन्याय—अधर्म—न हो सके।

साहित्य के राज्य में न्यायाधीश कौन है?—समालोचक। जब वह गम्भीर स्वभाव के साथ आलोचना करने बैठता है तब उसकी दृष्टि में कोई शत्रु-मित्र नहीं रह जाता। उस दशा में उसके या तो सभी मित्र हैं या सभी अपरिचित। वह सबकी लिखी पुस्तकें पढ़ता है; लेखक के भावों का अनुभव करता है, भाषा की चाशनी देखता है, प्रयोगों के मुरब्बे को चखता है और उसके अलङ्कारों को कसौटी पर कस कर परखता है। व्याकरण की सहायता से वह पुस्तक की भाषा के गुण-दोषों की जाँच करता है और देखता है कि लेखक अपने प्रयत्न में कहाँ तक यशस्वी हुआ है। उसका यह काम साहित्य की रक्षा के लिए है, जनता के भले के लिए है। जब वह अपने अधिकार का उपयोग नेकनीयत के साथ करता रहता है तब साहित्य की रम्य वाटिका में एक तो जङ्गली पौदे, काँटे और कचड़ा रहने ही नहीं पाता और यदि कहीं मिल जाता है तो वह उसे तुरन्त हटवा देता है। समालोचक की तीखी आलोचना के कारण पहले तो ऐसी किताबें लिखने और छापने का कोई साहस ही नहीं करता जिनके कारण जनता को हानि होने की सम्भावना हो और साहित्य-सरोवर गँदला होजाय; और यदि उसकी धाक की परवा न करके कोई दुस्साहस कर ही बैठता है तो वह अपने वाग्बाणों से उसकी धज्जियाँ उड़ा देता है, मीठी चुटकियाँ लेकर उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेदम कर देता है और उपहास करके उसका नाक में दम कर देता है। उसके इस प्रयत्न से साहित्य-संसार में सभी सावधान रहते हैं—सभी चौकन्ने रहते हैं। अपने कर्तव्य की कोई अवहेला नहीं करता। सभी को डर बना रहता है कि जहाँ ज़रा चूके और हण्टर पड़ा।

समाज में जिस प्रकार न्यायाधीशों की संख्या परिमित होती है उसी प्रकार समालोचकों की भी विपुलता न होनी चाहिए। जो सभी समालोचक हो जायँ तो एक तो उस कला में क्षीणता आ जायगी—उसका गौरव नष्ट हो जायगा—और दूसरी बात यह कि समालोचकजी समालोचना करेंगे ही काहे की। इनकी अधिकता से एक यह भी नुक़सान होगा कि फिर ये स्वयं लेखक भी होंगे और समालोचक भी। तब समालोचना का विनिमय होने लगेगा अर्थात् आप "राम" की लिखी पोथी की अच्छी "समालोचना" कीजिए तो आपकी लिखी पोथी की अच्छी आलोचना करने को "राम" तैयार हैं; यानी जैसा आप करेंगे वैसा ही दूसरे लोग आपके साथ सलूक करने लग जायँगे। इस कारण इनकी संख्या परिमित रहनी चाहिए।

इस समय हिन्दी-संसार में समालोचना की, अधिक अंशों में, यही दशा है। पुस्तक की आलोचना करने के पहले यह देख लिया जाता है कि उसका लेखक कौन है; वह अपना परिचित, मित्र या और किसी प्रकार के सम्बन्ध से आबद्ध तो नहीं है। यदि लेखकजी किसी भी सूत्र से सम्बद्ध निकले तो छपाई, सफ़ाई, पृष्ठ-संख्या, मूल्य और प्रकाशक आदि का उल्लेख करके नपे-तुले शब्दों में ऐसी आलोचना लिख दी जो पकड़ से बाहर रहे और सर्व-साधारण समझें कि पुस्तक अच्छी होगी—फिर चाहे वह अच्छी न भी हो; और यदि किसी ऐसे लेखक की पुस्तक आगई जिससे समालोचकजी कभी का ख़ार खाये बैठे हों तो फिर तमाखू फाँक कर या सिगरेट के कलेवर को भस्म करके वे पुस्तक के गुणों पर भी दोषों का अध्याहार करने लग जाते हैं, भले ही लेखक ने ख़ूब सँभल कर सावधानी से काम लिया हो। इस प्रकार समालोचकजी के दिल का ग़ुबार निकलते देख जनता अन्त में समझ लेती है कि यह आलोचना नहीं दिल की जलन है और लेखकजी भी उसकी विशेष परवा नहीं करते। कभी कभी तो वे ख़म ठोक कर अखाड़े में उतर पड़ते हैं और प्रत्यालोचना लिख कर—अपने दोषों को भी गुणों का चोग़ा पहनाते हुए—आलोचना का उत्तर देते हैं। इस तरह की आलोचना-प्रत्यालोचना से उनके लेखकों के सिवा जनता को कुछ लाभ नहीं होता, हाँ जिन पत्रों में ऐसी आलोचनाएँ प्रकाशित होती हैं उनके ग्राहक अवश्य घाटे में रहते हैं। दूसरों का पाप उन्हें भोगना पड़ता है।

कुछ ऐसे भी लेखक हैं—और उनकी संख्या बहुत बड़ी है—जो अपनी पुस्तक की आलोचना का अर्थ समझते हैं उसकी बिक्री में सहायता होना। यदि उनका अभीष्ट सिद्ध होगया तब तो वे समालोचकजी के निकट कृतज्ञ, चिरऋणी और विनयावनत रहेंगे वर्ना ज्वालामुखी पहाड़ की तरह धुँधुवाते रहेंगे और उपयुक्त समय पाकर घोर गर्जन के साथ फट पड़ेंगे। सुना है, एक बार लाला विद्या-बुद्धि-वृद्धजी की लिखी पुस्तक एक मासिक-पत्र-सम्पादक के पास आलोचनार्थ प्रेरित हुई। सम्पादक ने उसमें कुछ ऐसी बातें देखीं जिनका उल्लेख उसने संक्षिप्त आलोचना में कर दिया। बस, फिर क्या था; लेखकजी यहाँ तक अप्रसन्न हुए कि अपने द्वारा सम्पादित पत्रिका को बदले में भेजना गुपचुप बन्द कर बैठे और बदले का पत्र इमानदारी के साथ महीनों ग्रहण करते रहे। इसी प्रकार एक श्रेणी के समालोचक भी हैं जो पुस्तक की आलोचना तो करते नहीं, लेखक के रूप-रङ्ग और स्वभाव तक की आलोचना कर बैठते हैं। वे यह सोचने का कष्ट नहीं उठाते कि आलोच्य लेखक नहीं, उसकी कृति है। कुछ समय हुआ, एक मासिक पत्रिका में "भारत-दर्शन" नामक पुस्तक की आलोचना प्रकाशित हुई है। आलोचना में पुस्तक-सम्बन्धी बातें कम और उसकी बिक्री के लिए समाचार-पत्रों में दिये गये नोटिस की समीक्षा अधिक है। सोचने की बात है कि सम्पादकजी के पास प्रकाशक ने आलोचना करने के लिए पुस्तक भेजी थी या समाचार-पत्रों में बिक्री के लिए छपाया गया उसका विज्ञापन। लेकिन सम्पादकजी को इन बातों पर ध्यान देने के लिए फ़ुरसत कहाँ? वे तो आलोचना करने बैठे हैं और जो बात उनके दिल में पहले से जमी हुई है उसे समालोचना के नाम पर लिखेंगे और फिर लिखेंगे। देखें कोई क्या किये लेता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समालोचना छोटी हो अथवा बड़ी उसमें समालोचक को समालोच्य पुस्तक के विषय में अपनी सच्ची राय दे देनी चाहिए। जो समालोचना सचाई का अनुसरण करेगी उसकी क़दर अवश्य होगी। आशा है की हिन्दी के समालोचक इस ओर ध्यान देंगे।

बल्लीप्रसाद पाण्डेय

३—भारत-वैभव।

(१)

लखिए भारत-विभव चित्त-हारक कैसा है ?
प्रेम नियम का निलय मनो सुरपुर जैसा है
उसके दर्शन हेतु न किसका मन चलता है ?
देवराज भी जिसे देखकर कर मलता है॥

(२)

गगन विचुम्बित-शिखर विविध गिरिराज प्रेम से,
भारत के हित अड़े खड़े हैं नेम चेम से।
फूल-फलों से लदी लताएँ जहाँ हरी हैं,
अगणित नदियाँ सुधा-जलों से जहाँ भरी हैं॥

(३)

रजताचल का वत्त सूर्य सा चमक रहा है,
कनकाचल का शृङ्ग शशी सा दमक रहा है।
मृग मृगपति शार्दूल वनों में विचर रहे हैं,
जलनिधि में बहु रत्न यत्न से बिखर रहे हैं॥

कमलाकान्त

४—प्रियतम।

(१)

अच्छा, प्रियतम तुम्हीं बता दो, कैसे करूँ तुम्हें मैं प्यार ?
जाकर जो प्रसन्न हो स्वामी, ऐसा क्या दूँ प्रिय उपहार ?
होते ही आगमन उषा का, नयन खोल निज देती,
कञ्चन-माल लिये कर प्रिय को, जब सन्मुख लख लेती।
मन्दिर के निर्जन-पथ में, तब मौन चली जाती हूँ,
मस्तक ज्यों नत करती जाकर, मुँदे द्वार पाती हूँ॥
खड़ी खड़ी सोचा करती हा! किधर से जाऊँ, पाऊँ द्वार ?
अच्छा, प्रियतम तुम्हीं बता दो, कैसे करूँ तुम्हें मैं प्यार ?

(२)

विश्व-मञ्च पर स्तुति-सुगीत जब गाती सन्ध्या आकर,
सजती हूँ तब प्रेम-आरती अहा! तुम्हारी जाकर।
लेकर सत्वर पास तुम्हारे, उत्सुक-सी हूँ आती,
कम्पित-कर से माल खिसकती, दीप-शिखा बुझ जाती॥
अन्धकार में कुछ न सूझता, हे मेरे जीवन-आधार!
अच्छा, प्रियतम तुम्हीं बता दो, कैसे करूँ तुम्हें मैं प्यार ?

(३)

हे मेरे आराध्य देव, यह कैसी है तव माया,
जब जब तुमसे मिलने धाई, कभी न तुमको पाया।
नेत्र थके प्रभु, बाट जोहते अब तो अश्रु निकलता,
कैसे खोजूँ, कहाँ मिलोगे? होती बड़ी विकलता॥
दया-सिन्धु हो, दया न क्यों आती सुन मेरी दीन-पुकार।
अच्छा, प्रियतम तुम्हीं बता दो, कैसे करूँ तुम्हें मैं प्यार ?

(४)

हुई निराश, चली जब गृह को, एक आर्त की वाणी
पड़ी कान में, देखा पथ पर पड़ा एक था प्राणी।
वयोवृद्ध निर्धन था भूखा, निराधार था रोता,
स्वयं दुखी थी, अनुभव भी था दुख कैसा है होता॥
हुई वेदना उसे देख, घर लाकर किया योग्य उपचार।
अच्छा, प्रियतम तुम्हीं बता दो, कैसे करूँ तुम्हें मैं प्यार ?

(५)

हुआ स्वस्थ जब, हम पर उसने सजल-दृष्टि निज डाली,
थी कृतज्ञता-नत, होती थी करुणा-वृष्टि निराली।
हँय, यह कैसी झलक, अहा! यह मन्द हास है किसका,
इधर उधर खोजती जिसे थी, यहीं वास है उसका॥
प्यारे, तुमने सिखा दिया हमको अब जगत-प्रेम का सार।
अच्छा, प्रियतम तुम्हीं बता दो, कैसे करूँ तुम्हें मैं प्यार ?

मदनमोहन मिहिर।

५—काग़ज़।

अब से ढाई हज़ार पहले काग़ज़ बनाना कोई नहीं जानता था। संसार में सबसे पहले काग़ज़ का प्रचार भारत में हुआ था। इसके बाद वह चीन में भी बनाया जाने लगा, जिससे मुसलमानों ने सीखा और उन्होंने उसका प्रचार योरप में किया। यद्यपि इन देशों में अब भी काग़ज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनता है तथापि योरप के काग़ज़ के मुक़ाबले इनके काग़ज़ की खपत नहीं है। भारत में मुसलमानों का जब राज्य था तब काग़ज़ बनानेवालों की एक जाति ही बन गई थी। जो मुसलमान काग़ज़ बनाने का पेशा करते थे वे 'काग़ज़ी' कहलाते थे। भारत के भिन्न भिन्न स्थानों में काग़ज़ बनते थे। इनमें मालदह, ढाका, शाहाबाद, मुज़फ़्फ़रपुर, औरङ्गाबाद, दौलताबाद, अहमदाबाद, धारवार और कोल्हापुर विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। औरङ्गाबाद का बना काग़ज़ सबसे उत्तम समझा जाता था। दौलताबाद में एक विशेष प्रकार का सुनहरा काग़ज़ बनता था। राजा-रईस उसी पर लिखते थे। वह अफ़सानी कहलाता था। मुग़ल सम्राट् ज़्यादातर काश्मीर का काग़ज़ काम में लाते थे। वहाँ का बना काग़ज़ भी श्रेष्ठ समझा जाता था। परन्तु जब से योरप का काग़ज़ यहाँ आने लगा और उसकी खपत ख़ूब होने लगी तब से काग़ज़ के देशी कारख़ाने धीरे धीरे बन्द हो गये।

इस समय जो देशी काग़ज़ यहाँ बनता है वह मशीनों से बनाया जाता है। देश में इसके कई बड़े बड़े कारख़ाने खुले हैं। ऐसे कारख़ाने इस समय आठ स्थानों में हैं। बङ्गाल में तीन कारख़ाने हैं, दो टीटागढ़ में और एक रानीगञ्ज में। एक कारख़ाना संयुक्त-प्रान्त के लखनऊ में है। दो कारख़ाने बम्बई में, एक सूरत में और एक पूना में है। इनके सिवा एक ट्रावनकोर और एक ग्वालियर में है।

काग़ज़ के प्रचार के पहले लोग अपने लेखन-कार्य में दूसरी चीज़ों का उपयोग करते थे। पत्थर, ईंट, मिट्टी के बर्तन, धातु-पत्र, हाथी-दाँत, लकड़ी, बाँस की पटरी, चमड़ा, रेशम, वृक्ष की छाल और पत्ती इत्यादि का उपयोग कर लोग अपने लिखने की आवश्यकता की पूर्ति करते थे। राजाओं के आदेश, क़ानून, धर्म-ग्रन्थ, धर्माचार्यों के अनुशासन, राजाओं के शासन की स्मरणीय घटनाओं के सम्बन्ध के चित्र तथा संक्षिप्त सूचनायें और सर्व-साधारण के दान-पत्र भिन्न भिन्न देशों में पूर्वोक्त वस्तुओं ही पर लिखे जाते थे। मिस्र के पिरामिड की दीवारों पर ऐसे ही लेख उत्कीर्ण हैं। चॉल्डिया के भग्नावशेषों को खोद कर ऐसी ईंटे निकाली गई हैं जिन पर ज्योतिष-सम्बन्धी गणनायें खुदी हैं। अशोक के शिलालेख सारे भारत में पाये जाते हैं। यही नहीं, किन्तु इस प्राचीन देश में ऐसे भी शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो पूर्व बौद्ध-काल के प्रमाणित होते हैं। पञ्जाब के और विहार के कुछ शिला-लेख ऐसे ही लेख हैं। ये अभी तक नहीं पढ़े जा सके हैं। ये अशोक के शिला-लेखों से भी पुराने माने जाते हैं।

प्राचीनकाल में धातु-पत्र भी कागज़ के स्थान में व्यवहृत होते थे। इटली में सीसे के पत्रों पर लिखा जाता था। हेसियड ऐसे ही पत्रों पर उत्कीर्ण किया गया था। रोम के कुछ क़ानून पीतल के पत्रों पर उत्कीर्ण किये गये थे। सम्राट् वेस्पेसियन के शासनकाल में ३०० पीतल-पत्र आग लगने से नष्ट हो गये थे। सीरिया के एक प्राचीन मठ में डाक्टर बुकानन ने मिश्रित धातु के छः पत्र ढूँढ़ निकाले थे। भारत के अनेक स्थानों में ऐसे ताम्र-पत्र प्राप्त हुए हैं जिनमें राजा के आदेश, राजाओं के वंश-वृत्त तथा उनकी वंशावली, युद्ध की घटनायें और दान उत्कीर्ण हैं। दिल्ली के लौह-स्तम्भ पर जो लेख उत्कीर्ण है वह ब्राह्मी लिपि में है। ईसा के कुछ सदी पहले वह स्थापित किया गया था।

प्राचीन समय में लकड़ी की तख़्तियों पर भी लेख खोद कर रक्खे जाते थे। सोलन के क़ानून ऐसी ही तख़्तियों पर खोद कर पुस्तकाकार में रक्खे गये थे। यूनान में हाथी-दाँत भी इस काम में लाया जाता था। चीन, जापान, और ब्रह्मा में ऐसे लकड़ी के तख़्ते प्राप्त हुए हैं जिन पर लेख उत्कीर्ण हैं। इन देशों में हाथी-दाँत भी इस कार्य के उपयुक्त होता था।

चमड़ा भी बहुत प्राचीन-काल से लिखने के कार्य में उपयुक्त होता रहा है। सेंट मार्क की धर्म-पुस्तक पहले पहल भेड़ के चमड़े पर लिखी गई थी। होमर के इलियड और ओडेसी नामक महाकाव्य एक विशेष जाति के सर्प के पेट की मुलायम खाल पर लिखे गये थे। राजाओं के आदेश तथा क़ानूनों के लिखने के लिए जानवरों के चमड़े का उपयोग साधारण रूप से होता था।

चाल्डिया में वृक्ष की छाल भी लिखने के काम में आती थी। मिस्र में भी पेपिरस नाम के वृक्ष की छाल बहुत पहले से काग़ज़ के स्थान पर व्यवहृत होती थी। भारत में भी लोग भोज-पत्र और ताड़-पत्र पर लिखते थे।

रामकिशोर गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—जीवन की असफलता।

परिश्रम करके मैंने कठिन लिखे थे नाथ पृष्ठ दो चार।
कहा लोगों ने इन्हें अशुद्ध, बताया इनमें है अविचार॥
मान कर मैंने उनकी बात तुरत संशोधन किये अनेक।
लगा आगे लिखने कुछ और उच्च आदर्श लक्ष्य कर एक॥
नई रचना विद्वज्जन देख लगे कहने यह है निर्मूल।
उन्होंने दिये प्रमाण अनेक, दिखाई जगह जगह की भूल॥
शुद्ध करनी थी रचना मुझे, कहीं दी काट कहीं दी छाँट।
अन्त को देखा यह हर कहीं पड़ गई है उलझन की गाँठ॥
पढ़े अब इसे कौन फिर भला, कौन समझे यह काट-खरोट।
इसी से चिपका कर सब पृष्ठ कर दिये उन्हें आँख की ओट॥
जगत में लिखना रोज़ हिसाब लगा है जीवन ही के साथ।
इसी से होकर मैं लाचार बढ़ा फिर से कुछ आगे नाथ॥
दृष्टि-पथ पर रख पिछली भूल कर रहा था पन्ने तैयार।
बट गया ध्यान एक क्षण-मात्र, गिर गई स्याही अब की बार॥
मिटाऊँ इसको कैसे कहो, छिपाऊँ क्योंकर यह अपवाद।
रङ्ग गया काला पृष्ठ तमाम, होगई पुस्तक ही बरबाद॥
देख कर इसे करोगे क्रोध, कहूँगा गिरा अश्रु दो चार।
कठिन है जग में सबसे प्रभो यही पुस्तक-लेखन-व्यापार॥

रामानुजलाल श्रीवास्तव

——

विविध विषय।

१—सरकारी वज़ीफ़े।

इस देश में जब अँगरेज़ी सरकार का राज्य दृढ़ हो गया तब अँगरेज़-अफ़सरों ने कहा कि लावो यहाँवालों को कुछ पढ़ावें भी। ऐसा न हो जो ये लोग बिलकुल ही मूर्ख या जड़-भरत हो जायँ। यदि ऐसा हुआ तो हमारे लिए बड़ी बदनामी की बात होगी। क्योंकि हमारे देशवासी कहेंगे कि क्या इन लोगों ने हिन्दुस्तानियों को घोंघा-बसन्त बनाने के लिए ही उनके देश का शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया है। इस पर सब लोग अपनी अपनी राय देने लगे। किसी अधिकारी ने कहा कि संस्कृत में वेद, पुराण, ज्योतिष और धर्मशास्त्र आदि, जो ये पढ़ते आये हैं, पढ़ा कर इन्हें धुरन्धर पण्डित और महामहोपाध्याय बना डालें। किसी ने कहा, नहीं, इन्हें अरबी, फ़ारसी भाषाओं में तरह तरह की पोथियाँ पढ़ा कर मुल्ला और मौलवी बना दें। इस तरह की बातें सुन कर मेकाले नाम के एक अधिकारी बोले—वाह खूब सोचा! पण्डित बन कर ये लोग क्या करेंगे और मौलवी होकर भी ये क्या कर लेंगे। अजी, इन्हें अँगरेज़ी पढ़ाइए। योरप के ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा दीजिए। उसी से इनका जन्म-कर्म्म सुधरेगा; उसी से इनकी कूप-मण्डूकता छूटेगी; उसी से इनकी आँखें खुलेंगी। ऐसा करने से ही ये लोग समुद्र के भीतर जलनेवाली वाडवाग्नि और दही-दूध से लबालब भरे हुए समुद्रों के सुख-स्वप्न देखना छोड़ेंगे। तभी ये लोग जानेंगे कि दुनिया में क्या हो रहा है और कैसे कैसे ज्ञान-विज्ञान की उद्भावना हो रही है। ऐसी शिक्षा से अँगरेज़ अधिकारियों को भी लाभ पहुँचेगा। हम लोगों को इनकी कौड़ियों भाषायें सीखने में वक्त न बरबाद करना पड़ेगा। वही लोग हमारी भाषा सीख कर हमारी संस्थापित कचहरियों और दफ़्रों में काम करेंगे। हमारा बोझ हलका हो जायगा। इनका भी पेट भरेगा। इस तरह की शिक्षा से इनको जो ज्ञान-लाभ होगा, वह घाते में रहेगा।

मेकाले साहब की यह सलाह अधिकारियों को खूब पसन्द आई। सबने धन्य धन्य और वाह वाह की झड़ी लगाई। मेकाले ने सलाह दी भी ठीक थी। वह सलाह जिस मतलब से दी गई थी वह मतलब कहाँ तक निकला है, यह हम लोग प्रत्यक्ष देख रहे हैं। मेकाले ने खूब दूर तक सोच कर अपनी तजवीज़ पेश की थी। हज़ार विघ्न-बाधायें आने और सैकड़ों तरह की काट-छाँट होने पर भी, अँगरेज़ी-शिक्षा की ही बदौलत, हम स्वराज्य का महत्त्व समझने और स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए लार टपकाने लगे हैं।

अस्तु। अँगरेज़ी ढँग की शिक्षा देने का सूत्रपात हुआ। जगह जगह मदरसे खुल गये; स्कूल खुल गये; कालेज भी खुल गये। यहाँ तक कि विश्वविद्यालयों तक की भी सृष्टि हो गई। कुछ समय से तो विश्वविद्यालयों की बढ़ती का तूफान सा आ रहा है। एक बनारस में,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा ढाके में, तीसरा लखनऊ में। कानपुर, आगरे और देहली में भी विश्वविद्यालय खुलनेवाले हैं। हाँ, अलीगढ़ के विश्वविद्यालय की बात हम भूल ही गये। वहाँ भी एक की सृष्टि हुए बहुत दिन हो चुके।

नुकताचीनी करनेवाले कहते हैं कि गवर्नमेंट ने यह जो कुछ किया है बहुत ही कम है। सौ में दस-बीस आदमी पढ़ लिख गये तो क्या हुआ—कोई बड़ी बात न हुई। और कितने ही देशों में तो एक भी निरक्षर आदमी नहीं। सरकार ने अपने मतलब भर के लिए ही—दफ़्रों में मुंशीगरी करने और मुक़द्दमों की उलझनें सुलझाने के लिए वकील पैदा करने के लिए ही—यह इतनी शिक्षा दी है। ख़ैर, यही सही। पर आपको इतना तो ज़रूर ही क़बूल करना पड़ेगा कि यदि आप गवर्नमेंट के खोले हुए स्कूलों और कालेजों में शिक्षा न पाते तो आज़ादी हासिल करने और खद्दर के कपड़े पहन कर देश की सम्पत्ति बढ़ाने के विचार कहाँ से लाते? अच्छा, जाने दीजिए, इस बहस से मतलब नहीं। जिस बात से मतलब है वह सुन लीजिए।

यहाँ के स्कूलों और कालेजों में पढ़नेवाले कुछ तेज़ लड़कों को तो सरकार मुद्दत से वज़ीफ़े देते आती है। इधर कुछ समय से वह यदा कदा बड़े बड़े वज़ीफ़े देकर दो चार युवकों को विदेश भी भेजने लगी है। यह इसलिए कि वहाँ अपनी विद्या और शिक्षा की ख़ूब वृद्धि करके वे लोग भारत को लौटें और लौट कर बड़े बड़े काम कर दिखावें और बड़े बड़े ओहदों की शोभा बढ़ावें। पर इतने ही से हम लोगों को सन्तोष न हुआ। हमारे मुखिया महाशयों ने कहा—और वज़ीफ़े दीजिए, और वज़ीफ़े दीजिए। बहुत से नवयुवकों को इँगलिस्तान, फ़्रांस, अमेरिका आदि को भेजिए। वहाँ यंजिनियरी पढ़ाइए। कला-कौशल पढ़ाइए, डाक्टरी पढ़ाइए, काश्तकारी पढ़ाइए, स्कूल-मास्टरी पढ़ाइए, संस्कृत ही नहीं, अरबी-फ़ारसी भी पढ़ाइए। सुनते सुनते सरकार तङ्ग आगई। आजिज़ आकर उसने एक कमिटी बना दी। उसने कहा, ये लोग जैसे और जितने वज़ीफ़े देने की सिफ़ारिश करेंगे वैसेही और उतने ही वज़ीफ़े हम देंगे। सात-पाँच की बात तुम सहज ही मान लोगे। हम यदि कुछ करेंगे तो तुम पखें लगाओगे। कहोगे, यह नहीं किया, वह नहीं किया। सो, बाबा, धीरज धरो। कमिटी जब तक अपनी रिपोर्ट न भेजे तब तक ठहरो।

कमिटी बनी। उसके मेम्बरों ने सलाह-मशविरा और वाद-विवाद करके अपनी रिपोर्ट भी गवर्नमेंट को भेज दी। अब गवर्नमेंट ने उसे अपने गैज़ट में छाप कर प्रकाशित कर दिया है। गवर्नमेंट से मतलब अपने प्रान्त की गवर्नमेंट से है और माँगे गये वज़ीफ़ों का सम्बन्ध भी उसी से है।

कमिटी ने सिफ़ारिश की है कि इस प्रान्त की गवर्नमेंट भिन्न भिन्न प्रकार की शिक्षाओं के लिए पहले साल २१ वज़ीफ़े दे। इनमें से १ वज़ीफ़ा एक हिन्दुस्तानी स्त्री को और एकही किरानी स्त्री को भी दिया जाय। इन वज़ीफ़ों की संख्या दूसरे साल से बढ़ा दी जाय और वह धीरे धीरे ४१ तक कर दी जाय। हर वज़ीफ़ा ३०० पौंड अर्थात् कोई ४½ हज़ार रुपये साल का हो। पहले साल इस मद में सरकार १ लाख ६० हज़ार रुपये के क़रीब ख़र्च करे। यह रक़म धीरे धीरे, ४१ वज़ीफ़ों के लिए, बढ़ा कर २¾ लाख रुपये तक कर दी जाय। सरकारी, ग़ैरसरकारी और इमदादी सभी कालेजों के छात्रों और उनके अध्यापकों आदि के लिए ये वज़ीफ़े दिये जा सकें।

सो अब गवर्नमेंट की उदारता की बदौलत साल में ४१ तक वज़ीफ़ेदार शिक्षा-प्राप्ति के लिए विदेश जा सकेंगे। गवर्नमेंट ने कमिटी की रिपोर्ट और वज़ीफ़ों की तफ़सील गैज़ट में छाप कर संयुक्तप्रान्तवासियों से पूछा है—कहो यह तजवीज़ कैसी है? इसमें भी यदि किसी को कुछ मीन-मेख करना हो तो करे। हम उसकी आलोचना सुनने को तैयार हैं। सबकी सुनकर और फिर पूर्ण विचार करके हम पक्का हुक्म देंगे। अतएव जिसे जो कुछ कहना हो कहे। जल्दी करे—

"अलं विलम्ब्य त्वरितुं हि वेला"।

२—कविता की परीक्षा।

कविता के विषय में भिन्न भिन्न विद्वानों की भिन्न भिन्न राय है। परन्तु कविता की चाहे जैसी व्याख्या की जाय, इतना तो सभी स्वीकार करेंगे कि उसका उद्देश्य मानव-समाज के लिए अवश्य श्रेयस्कर है। कविता केवल विलास की सामग्री नहीं है। यदि कविता से केवल रसिकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का चित्त-विनोद हुआ, यदि कविता से केवल क्षणिक उत्तेजना उत्पन्न हुई तो क्या कविता का उद्देश्य पूरा हो गया? कविता के विषय में कितने विद्वानों का भी यही ख़याल है कि सामाजिक जीवन में कविता से कुछ लौकिक लाभ नहीं। उसकी अपेक्षा इतिहास, विज्ञान और दर्शन-शास्त्र की चर्चा से देश और समाज का अधिक कल्याण है। कवि के कल्पित राज्य में रहने से किसी प्रकार की व्यावहारिक दक्षता नहीं आ सकती। पर सच बात यह है कि मनुष्य-समाज से पृथक् कर देने पर कला का कोई भी मूल्य नहीं। सभी देशों में और सभी कालों में कविता मनुष्यों के दैनिक जीवन की सहचरी थी। सामाजिक जीवन पर भी कविता तथा अन्य ललित कलाओं का प्रभाव बड़ा काम करता है। समाज में उच्च आदर्श स्थापित कर कविता चरित्र-गठन में सहायता करती है। प्राचीन ग्रीस में शिल्प, नाटक और सङ्गीत आदर्श चरित्र-गठन के प्रधान उपादान माने गये हैं। अँगरेज़ी के एक प्रसिद्ध लेखक डिकिन्सन साहब ने ग्रीस की सङ्गीत-चर्चा के प्रसङ्ग में ग्रीक जाति की इस विशेषता का उल्लेख किया है। योरप के मध्ययुग में काव्य, साहित्य तथा सङ्गीत द्वारा ईसाई-धर्म और क्षात्र-धर्म (chivalry) ने समाज में प्रसार लाभ किया। युद्ध में न्याय-धर्म का पालन, सबलों के अत्याचार से दुर्बलों का उद्धार, स्त्री-जाति के प्रति सम्मान और एक-निष्ठ प्रेम की साधना, इन आदर्शों का प्रचार समाज में साहित्य ही के द्वारा हुआ। भारतवर्ष में रामायण, महाभारत, श्रीमद्-भागवत आदि काव्यों के आदर्श हिन्दू-समाज के गार्हस्थ्य और धार्मिक जीवन में स्वीकृत हुए। इन्हीं के प्रभाव से आधुनिक हिन्दू-समाज सङ्गठित हुआ है। पारस्परिक व्यवहार में प्रतिदिन इन्हीं आदर्शों का अनुसरण किया जाता है। कहने का मतलब यह कि समाज पर अपना प्रभाव चिरस्थायी करके ही कवि अक्षय हो गये हैं।

हिन्दी में कवियों की तुलनात्मक समालोचना की जाती है। भिन्न भिन्न कवियों की काव्य-कलाओं का विश्लेषण कर यह बतलाया जाता है कि अमुक कवि अमुक कवि से श्रेष्ठ अथवा हीन है। हमारी समझ में कवियों की परीक्षा में यह कसौटी ठीक नहीं। समाज में जिस कवि का प्रभाव सबसे अधिक है वही सर्वश्रेष्ठ कवि है। जिसकी रचना का पाठ कर प्रतिदिन हज़ारों मनुष्य आनन्द-लाभ करते हैं और जिससे शिक्षा-लाभ कर अपने दैनिक जीवन में भी उस शिक्षा का उपयोग करते हैं उसी की कृति साहित्य में प्रथम श्रेणी पाने का दावा कर सकती है। जो कविता कुछ अल्प-संख्यक काव्य-रसिकों के मनोविनोद के लिए है, जिसके अर्थ-गाम्भीर्य और भाव-सौन्दर्य का रसास्वादन कर कुछ ही विद्वान् क्षणिक उत्तेजना प्राप्त करते हैं, जो रचना शब्द-सौष्ठव और अलङ्कार-चमत्कार से पूर्ण होकर भी मनुष्य के दैनिक जीवन में व्यवहृत नहीं होती वह कभी श्रेष्ठ स्थान नहीं पा सकती। विहारी, देव, भूषण आदि कवियों ने हिन्दी-साहित्य में जो सौन्दर्य-राशि निर्मित की है उसका प्रभाव हिन्दू-समाज पर कितना पड़ा है? यदि हिन्दी के विद्वान् समालोचक अपनी समालोचनाओं में इसका भी उल्लेख कर देते तो हिन्दी-साहित्य में इनका स्थान निर्दिष्ट हो जाता। आल्हा-छन्दों के निर्माता कवि में वह कला-सौष्ठव नहीं है जो भूषण में विद्यमान है, परन्तु समाज पर किसका प्रभाव अधिक है, इसकी विवेचना करना विद्वान् समालोचकों का काम है।

साहित्य-समालोचना में एक विषय और भी विचारणीय है। वह है कवियों की अनुकरण-शीलता। यह कहा जाता है कि अमुक कवि ने अमुक कवि का अनुकरण किया है। अतएव अमुक कवि में अमुक कवि से अधिक मौलिकता है। मौलिकता का स्वरूप निश्चित करते समय हमें तत्कालीन समाज की भावना पर ध्यान देना चाहिए। प्रत्येक युग में एक विशेष भावना का प्राबल्य रहता है और वह भावना उस समय के सभी कवियों की रचनाओं में विद्यमान रहती है। अँगरेज़ी में इसको The Spirit of the Age कहते हैं। जब हिन्दी-साहित्य में शृङ्गार-रस का प्राबल्य हुआ तब उस रस के सूक्ष्म विश्लेषण में सभी कवि प्रवृत्त हुए। शृङ्गाररस-संबन्धी संस्कृत साहित्य का भी मन्थन किया गया। फल यह हुआ कि सभी कवियों ने उससे यथेष्ट भाव-ग्रहण किया। जब हम कहते हैं कि अमुक हिन्दी-कवि ने अमुक हिन्दी-कवि से भाव-ग्रहण किया तब अधिक सम्भावना इस बात की भी होती है कि उन दोनों कवियों ने एक तीसरे ही कवि से भाव-ग्रहण किया हो। पर मौलिकता भाव-ग्रहण में नहीं, किन्तु विषय की विवेचना में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी कभी छोटे कवि भी ऐसी बातें लिख जाते हैं जो बड़े कवि नहीं लिख सकते। अँगरेज़ी के उल्फ़ नामक कवि ने सर जान मूर की मृत्यु पर एक बड़ी हृदय-ग्राहिणी कविता लिखी है। कवि ने उस पर अपना नाम नहीं दिया। विद्वानों ने यही समझा कि वह लार्ड बायरन की रचना है। लार्ड बायरन ने कहा—मैं चाहता हूँ कि मैं ऐसी अच्छी कविता लिख लेता परन्तु वह मेरी रचना है नहीं। मतलब यह कि किसी विशेष भाव को प्रकट करने में कोई विशेष कवि समर्थ होता है। यहाँ बड़प्पन का विचार नहीं किया जा सकता। फिर कविता का भाव कहीं से लिया गया हो, यदि उसकी विवेचना में विलक्षणता है तो वह आदरणीय है। उल्फ की उपर्युक्त कविता का उपादान किसी अख़बार का एक नोट था। विद्वानों ने पता लगाया है कि उस कविता के कितने ही शब्द तक उस नोट से ज्यों के त्यों लिये गये हैं। यह सब होने पर भी उसी एक रचना के कारण उल्फ का नाम अँगरेज़ी-साहित्य में अक्षय हो गया है। अतएव किस कवि ने किससे भाव ग्रहण किया, यह पाठकों की कौतूहल-निवृत्ति के लिए है। उससे कवियों की हीनता नहीं सूचित होती। बातें तो सभी ने कहीं, पर उन बातों को किसने जनता तक पहुँचाया, किसके सन्देश को जनता ने अधिक आग्रह के साथ ग्रहण किया, किसके उपदेश को जनता ने अपने हृदय में सदा के लिए स्थान दिया और उसका प्रभाव कितना स्थायी हुआ। कविता की परीक्षा में विद्वानों को इन बातों पर विचार कर कवियों की श्रेष्ठता अथवा हीनता निश्चित करनी चाहिए।

३—सामयिक पत्रों की समाज-सेवा।

पाश्चात्य देशों के समाचार-पत्रों ने सम्पादन-कला में बड़ी उन्नति की है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के मामलों की सदा चर्चा करते रहने के कारण उनकी मान-मर्यादा पहले से भी अधिक बढ़ गई है। अब वे समाज की सेवा करने के लिए तरह तरह के उपाय निकाल कर समाज के एक उपयोगी अङ्ग बन गये हैं। कोई दरिद्रों की दुरवस्था का प्रतीकार करने के लिए एक फंड खोल कर अपने पाठकों से चन्दा वसूल करता है। कोई किसी दुर्भिक्षपीड़ित देश के लिए अपील करता है। कोई मज़दूरों के बच्चों के लिए कुछ व्यवस्था करना चाहता है। कोई किसी संस्था का उपकार करना चाहता है। इस तरह वहाँ के सभी पत्रों ने अपनी सेवा का कोई न कोई कार्य-क्षेत्र निर्धारित कर रक्खा है।

समाचार-पत्रों के प्रकाशन में संयुक्त-राज्य योरप से भी आगे हो गया है। क्या संख्या में और क्या सम्पादन-कला में योरप का कोई देश उसका सामना नहीं कर सकता। वहाँ २३,००० सामयिक पत्रों का प्रकाशन इस समय होता है, जिनमें कोई २५०० दैनिक पत्र ही निकलते हैं। पाँच हज़ार तक की आबादी के कस्बे से एक दैनिक पत्र का प्रकाशित होना आवश्यक बात समझी जाती है। ऐसी दशा में शहरों के सम्बन्ध में क्या कहना है। एक शिकागो से ही जब चालीस दैनिक पत्र निकलते हैं तब साप्ताहिक, मासिक आदि दूसरे प्रकार के सामयिक पत्रों की संख्या का उल्लेख करना व्यर्थ है। बात यह है कि संयुक्त-राज्यों में समाचार-पत्रों का पठन-पाठन केवल शौक की ही बात नहीं रह गई है, किन्तु अब वह वहाँ के निवासियों का कर्तव्य सा बन गया है। कोई कोई समाचार-पत्र पाठक तो ऐसे प्रेमी होते हैं कि बिना तीन चार दैनिक पत्र पढ़े हुए उनको मनस्तुष्टि ही नहीं होती। ऐसे लोगों के घर में उनकी स्त्री तथा सन्तानों के लिए भी अलग अलग पत्र आते हैं।

संयुक्त-राज्य में समाचार-पत्रों के प्रचार की वृद्धि का कारण उनके सञ्चालकों की आदर्श नीति है। पत्रों के पठन-पाठन की ओर लोगों को प्रवृत्त करने के लिए वे पहले भी ध्यान देते रहे हैं और अब तो उन्होंने समाज की सेवा करने का बीड़ा ही उठा लिया है। मनोरञ्जन की काफ़ी सामग्री रखते हुए भी वे अपने पत्रों को अधिक लोकोपयोगी बनाने में समर्थ हुए हैं। सर्व-साधारण को जिन बातों का ज्ञान आवश्यक है उनके लिए पत्रों में अलग अलग कई एक स्तम्भ रक्खे जाते हैं, जिनमें विशेषज्ञ लोग अपने अपने विषयों पर उपयोगी और सामयिक लेख लिखते रहते हैं। क़ानून, स्वास्थ्य, ओषधि, खेल-कूद, साहित्य, सङ्गीत, कला, धर्म, यात्रा, बच्चों की शिक्षा आदि अनेक आवश्यक विषयों के लिए वहाँ के पत्रों में अलग अलग स्तम्भ खोल दिये गये हैं। इस तरह वहाँ के समाचार-पत्र सर्व-साधारण के परामर्श-दाता बन बैठे हैं। वहाँ ऐसे भी पत्रों का प्रकाशन होता है जो अपने पत्र-पाठकों को इस बात की सूचना देते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते हैं कि इस समय किस वक्ता का व्याख्यान सुनना चाहिए, कौन सा दृश्य दर्शनीय है, कौन पुस्तक पढ़ने के योग्य है, शेयर-बाज़ार में कौन शेयर ख़रीदने से लाभ होगा और कौन खेल खेलने चाहिए। इतना ही नहीं, किन्तु अनेक समाचार-पत्रों के कार्यालयों में पत्र पाठकों के आमोद-प्रमोद की आयोजना भी रहती है। किसी में व्याख्यानों का प्रबन्ध है तो किसी में सङ्गीत की व्यवस्था है। उनमें प्रसिद्ध वक्ता अपने व्याख्यान देते हैं और सङ्गीत-विशारद अपनी प्रतिभा का परिचय। इस तरह नाना प्रकार से वहाँ के समाचार-पत्र सारी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यथासमय तत्पर रहते हैं। यही बात है, जिससे वे वहाँ के समाज के एक अनिवार्य अङ्ग हो गये हैं।

समाज की सेवा में तो सामयिक पत्र लगे ही रहते हैं, व्यक्तिगत सेवा के भी लिए वे तत्पर रहते हैं। यदि किसी को कोई भी बात जानने की ज़रूरत पड़ी तो वह पत्र-सम्पादक से लिख कर पूछ लेता है। सम्पादकों के पास ऐसे पत्र प्रायः भेजे जाते हैं जिनमें पूछा जाता है, क्या आप बतला सकते हैं कि मैं अपनी प्रियतमा के प्रेम को किस प्रकार चिरस्थायी रक्खूँ? हिन्दी के एक पत्र ने भी कुछ समय से ऐसा ही सेवा-भार उठा रक्खा था। उसने अपने पाठकों के लिए यह प्रबन्ध किया था कि पाठक जो कुछ पूछेंगे उसका उत्तर उन्हें दिया जायगा।

अमरीका के एक पत्र, बुकलिन डेली ईगल, ने अपने पाठकों को बच्चों के मनोविनोद का भार उठाया है। उसने एक कमरा ठीक कर रक्खा है, जहाँ छोटे छोटे लड़कों के लिए तरह तरह के मनोविनोद की सामग्री रक्खी रहती है। लड़के वहीं आकर अपना मन बहलाया करते हैं। एक दूसरे पत्र ने अपने विज्ञापनदाताओं के लाभार्थ व्यवसाय-सम्बन्धी तरह तरह के समाचार पहुँचाने की व्यवस्था की है। उसने अपनी पाठिकाओं के मनोविनोद के लिए भी प्रबन्ध किया। जिन्हें सैर-सपाटे का शौक है उनकी भी इच्छा पूर्ण करने के लिए वह तत्पर रहता है।

मतलब यह कि वहाँ के पत्रों ने अपना कार्य-क्षेत्र खूब बढ़ा लिया है। जितना उनसे हो सकता है अपने पाठकों की उतनी सेवा करने के लिए वे तैयार रहा करते हैं।

४—सहकारिता-समिति की उन्नति।

भारत के किसानों की बुरी दशा है। पर उन्हीं के परिश्रम से हमारे देश का निर्वाह होता है। जो लोग देश की उन्नति करना चाहते हैं उन्हें किसानों की दुरवस्था का प्रतीकार करना चाहिए। यह तो सभी स्वीकार करेंगे कि किसानों को शिक्षा देने, उनकी आकांक्षा को बढ़ाने और उनको उत्साह-प्रदान करने की बड़ी आवश्यकता है। इसके बिना उनकी दुःस्थिति का निवारण करना असम्भव है। किसानों की उन्नति में सबसे बड़ा बाधक है उनकी अर्थ-कृच्छ्रता। दारिद्र-ग्रस्त होने के कारण वे कृषि-सुधार के अच्छे अच्छे उपायों से भी लाभ नहीं उठा सकते। साधारण रीति से भी खेती करने के लिए उन्हें ऋण लेना पड़ता है। फल यह होता है कि सूद देते देते बेचारे किसान तबाह हो जाते हैं। इसके लिए सहकारी बैङ्कों की संख्या बढ़ानी चाहिए। सहकारिता-समिति के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट निकली है उसे देखने से मालूम होता है कि १९१९-२० में ऐसे बैङ्कों की संख्या में कुछ वृद्धि हुई है। पहले ३३३ बैङ्क थे, अब वे बढ़कर चार सौ हो गये हैं। मेम्बरों की संख्या भी १०७०१७ से १२७०२६ हो गई है। मूल धन भी ७२९०००००) से ८८५०००००) हो गया है। लाभ में भी वृद्धि हुई है। इस साल १७५०६७८ रुपये का लाभ हुआ। कृषि-समितियाँ पहले २८९७७ थीं, अब ३६२९९ हो गई हैं। उनके मेम्बरों की संख्या ११७५१०९ है और मूल धन ९६५ लाख रुपया है। कृषि-समितियों की इस उन्नति से देश को थोड़ा बहुत लाभ अवश्य हुआ।

५—हिन्दी-साहित्य की वर्तमान स्थिति और उसका भविष्य।

गत पचीस वर्षों में हिन्दी-साहित्य की बहुत कुछ उन्नति हुई है। पहले जिन विषयों की चर्चा कम होती थी अथवा बिलकुल नहीं होती थी उनका भी समावेश अब हिन्दी-साहित्य में होने लगा है। हिन्दी-ग्रन्थ-प्रकाशक मण्डलियों की वृद्धि से ग्रन्थों की संख्या बढ़ रही है। सामयिक विषयों पर अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं। स्थायी साहित्य की पुष्टि के लिए भी प्रयत्न किया जा रहा है। प्रतिवर्ष साहित्य-सम्मेलन की योजना की जाती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसमें अनेक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये जाते हैं। ये प्रस्ताव सिर्फ़ लिपिबद्ध ही नहीं बने रहते, उनको कार्य-रूप में लाने की भी थोड़ी बहुत चेष्टा की जाती है। देश के वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन का प्रभाव हिन्दी-साहित्य के लिए श्रेयस्कर ही होगा। अतएव हिन्दी-साहित्य की वर्तमान परिस्थिति को देख कर हम उसके भविष्य के विषय में तरह तरह की आशाएँ कर सकते हैं।

आज-कल हिन्दी में जिन विषयों की चर्चा हो रही है उनमें से अधिकांश का महत्त्व अस्थायी है। देश की राजनैतिक और सामाजिक अवस्थाओं में परिवर्तन होते ही उनका महत्त्व घट जायगा। ऐसे विषयों को छोड़ देने पर भी दो चार विषय ऐसे रह जाते हैं जिनसे हिन्दी-साहित्य की भविष्य गति का अनुमान किया जा सकता है। यहाँ हम उन्हीं विषयों की चर्चा किया चाहते हैं।

हिन्दी में आज-कल जितनी कवितायें निकल रही हैं वे या तो राष्ट्रीय भावों से पूर्ण हैं या आध्यात्मिक भावों से। भाषा पर सबसे अधिक प्रभाव कविता का ही पड़ता है। चाहे कविताएं अच्छी हों अथवा बुरी, पर साहित्य में नये नये भावों के प्रचार और तदनुकूल भाषा के निर्माण में वे काम कर जाती हैं। हमारा विश्वास है कि वर्तमान हिन्दी-कविताओं के भावाधिक्य से हिन्दी-भाषा का स्वरूप परिवर्तित हो रहा है। कुछ समय पहले लोग खड़ी बोली की कविताओं पर यह आक्षेप किया करते थे कि उनमें संस्कृत शब्दों की भरमार अधिक रहती है। हम देखते हैं कि आज-कल हिन्दी के पत्रों में ऐसी कविताएँ निकल रही हैं जिनकी भाषा विशुद्ध उर्दू है। अन्य भाषाओं के शब्द ग्रहण करने से हानि नहीं है, परन्तु हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक भाषा की एक विशेषता होती है। विदेशी भाव और भाषा के प्रभाव से यदि उसकी वह विशेषता लुप्त होगई तो समाज के लिए यह बात हानिकर होगी। जिस प्रकार कोई देश अथवा राष्ट्र अपनी राष्ट्रीयता को नष्ट नहीं करना चाहता उसी प्रकार किसी भी भाषा की विशेषता नष्ट नहीं होनी चाहिए। यदि हम हिन्दी के प्राचीन काव्य-साहित्य का ख़याल न करें, केवल वर्तमान कविताओं से ही यह जानना चाहें कि हिन्दी-साहित्य की विशेषता क्या है तो हमें निराश होना पड़ेगा। हिन्दी के कवि नवीनता के फेर में पड़ कर अपनी उस काव्य-कला का द्वार रुद्ध कर रहे हैं जिसके कारण उनके साहित्य का आदर है। अन्य भाषा-भाषी हिन्दी-साहित्य की ओर यदि आकृष्ट होते हैं तो उसकी वही विशेषता देख कर। जो लोग हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा बनाने का दावा करते हैं वही प्राचीन कला की उपेक्षा कर बँगला, उर्दू अथवा अँगरेज़ी के अगण्य भावों से हिन्दी-साहित्य को विकृत कर रहे हैं। हिन्दी के पत्रों में उर्दू की जो कवितायें प्रकाशित होती हैं क्या वे उर्दू-साहित्य की कविताओं का मुक़ाबला कर सकती हैं? इसी प्रकार बँगला-साहित्य के अनुकरण पर जो रचनाएँ प्रकाशित होती हैं उनका भी मूल्य अधिक नहीं है। क्या हिन्दी के वर्तमान कवियों को प्राचीन काव्य-साहित्य से कविता का ऐसा आदर्श नहीं मिलता जिसका वे अनुकरण कर सकें। कम से कम हिन्दी के छन्दों की तो उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

यह बात सच है कि साहित्य की उन्नति के लिए भावों का आदान-प्रदान आवश्यक है। उससे कला का कार्य-क्षेत्र व्यापक होता है। विदेशीय साहित्य में यदि हम अपनी कला के अनुकूल ऐसी बात पावें जिससे हमारी कला उन्नत हो सके तो उसे ग्रहण करने में सङ्कोच नहीं करना चाहिए। जो बातें हमारी प्रकृति के विरुद्ध हैं, जिनसे हमारी रुचि के परिष्कृत होने के बदले विकृत ही होने की अधिक सम्भावना है वैसी बातें सदैव उपेक्षणीय होनी चाहिए। जो लोग देश में राष्ट्रीय भावों की रक्षा करना चाहते हैं उन्हें तो इसका विशेष ख़याल करना चाहिए। इसके सिवा एक बात और भी विचारणीय है। वह है साहित्य में अनुदारता का प्रवेश। हिन्दी में आज-कल जितने नये नाटक और उपन्यास निकले हैं उनमें से अधिकांश अनुदार भावों के पोषक हैं। पाश्चात्य शैली का अनुकरण तो किया जाता है, परन्तु राष्ट्रीयता के नाम पर सङ्कुचित विचारों को प्रथम स्थान दिया जाता है। इधर अपनी कला का बहिष्कार किया जाता है उधर अनुदारता का प्रचार किया जाता है। इन दोनों के मिलन से साहित्य की उन्नति के स्थान में अवनति ही होने की सम्भावना है। हिन्दी-साहित्य में प्रेम, दया, दाक्षिण्य आदि सद्गुणों के आदर्श तो अब दिखलाई नहीं देते, उनके स्थान में एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकृत समाज का विकृत चित्र ही दृष्टि-गोचर होता है। जब कोई पाश्चात्य साहित्य की किसी विशेषता की प्रशंसा करता है अथवा जब वह उनकी कला का आदर्श बतलाता है तब हम उस पर मनमाने आक्षेप कर बैठते हैं। पर हम स्वयं विदेशी कला की निकृष्ट शैली का अनुकरण करने से बाज़ नहीं आते। हमें चाहिए कि हम अपनी यथार्थ अवस्था की भली भाँति परीक्षा करलें, अपने गुण और दोषों की अच्छी तरह विवेचना करलें, विदेशी साहित्य की भी कला और आदर्श की समीक्षा कर उनसे अपनी राष्ट्रीयता के अनुकूल विश्व-भाव ग्रहण करलें। अनुदारता और असहिष्णुता से अपनी ही हानि होती है। जो हिन्दी-साहित्य के भविष्य का निर्माण करनेवाले हैं उन्हें ऐसे भावों से दूर रह कर अपने साहित्य की उन्नति करनी चाहिए।

६—जर्मनी में पढ़ने की सुगमताएँ।

जर्मनी जानेवाले विद्यार्थियों के लिए श्रीयुत मेघनाद-साह ने फ़रवरी के 'माडर्न रिव्यू' में एक लेख छपाया है। आप अभी योरप से लौटे हैं और आपको जर्मनी की दशा का पूरा ज्ञान है। अतएव आपके उस लेख का सार यहाँ दिया जाता है।

इस समय जर्मनी में विद्या-प्राप्ति का सुअवसर है। भारत के विद्यार्थी वहाँ सब प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। जर्मनी की पढ़ाई की श्रेष्ठता एक प्रसिद्ध बात है।

जब श्रीयुत साह गत सितम्बर में बर्लिन में थे तब एक विद्यार्थी का मासिक व्यय २०००) मार्क पड़ता था। सुन्दर सुसज्जित कमरा २००) या ३००) मार्क मासिक किराया देने पर मिल सकता था और भोजन चाय आदि में १६००) मार्क से अधिक नहीं लगते थे। वहाँ बहुतेरे दरिद्र जर्मन विद्यार्थी ७००) या ८००) मार्क में ही अपना ख़र्च चला लेते हैं।

जर्मन-भाषा का अच्छा ज्ञान होना सदा वाञ्छनीय है। जिन लोगों ने कभी विदेश-यात्रा का अनुभव नहीं किया है वे उसकी कठिनाइयों को प्रायः नहीं समझते। जिस देश का भ्रमण तुम कर रहे हो यदि तुम उस देश की भाषा नहीं जानते, तो तुम बहिरे और गूँगे ही नहीं कुछ हद तक अन्धे भी हो। तुम बहिरे हो, क्योंकि जो शब्द तुम सुनते हो वे तुम्हारी समझ में नहीं आते। तुम गूँगे हो, क्योंकि तुम कुछ बातचीत नहीं कर सकते और तुम कुछ कुछ अन्धे भी हो क्योंकि जो अक्षर तुम्हारे सामने पड़ते हैं उन्हें तुम पढ़ नहीं पाते।

यह ठीक है कि बहुत से शिक्षित जर्मन अँगरेज़ी की पुस्तकें पढ़ सकते हैं, पर शुद्ध अँगरेज़ी बोलनेवाले वहाँ बहुत ही कम मिलते हैं। जब वे अँगरेज़ी बोलते हैं तब अपनी तर्ज़ से बोलते हैं और यह अँगरेज़ी उन लोगों की समझ में नहीं आती जो जर्मन ढँग से बोली गई अँगरेज़ी सुनने के अभ्यस्त नहीं। जो विदेशी विद्यार्थी बिना जर्मन-भाषा पढ़े हुए वहाँ जाता है उसे जर्मन-भाषा पढ़ने में पूरा एक वर्ष लग जाता है, तब कहीं वह अपने सहपाठियों की बातचीत या अध्यापकों का व्याख्यान समझने के योग्य होता है। विद्याभ्यास के ध्यान से यह समय व्यर्थ जाता है, क्योंकि विद्यार्थी का सारा समय केवल भाषा सीखने में ही चला जाता है। वह अपना कुछ भी समय उस कार्य के लिए जिसके लिए वह आया है नहीं दे सकता। यह कहना व्यर्थ होगा कि कुल व्याख्यान जर्मन भाषा में ही होते हैं। जो विद्यार्थी थोड़ी बहुत जर्मन जानता हो वह वहाँ एक ऐसा सिखलानेवाला साथी करले जिससे वह शीघ्रता से जर्मन भाषा में बातचीत करने की शक्ति प्राप्त करले।

जर्मनी जाकर क्या करना होगा, यह पहले ही से निश्चय कर लेना चाहिए। यहाँ यह बतला देना ठीक होगा कि जर्मनी की शिल्प-शालाएँ (Technical institutions) बहुत भरी रहती हैं। योरपीय समर के बाद से वहाँ साहित्यिक अथवा वैज्ञानिक जीवन में रह कर रोटी कमाने की सम्भावनाएँ इतनी कम रह गई हैं कि वही विद्यार्थी, जिनके पास खाने-पीने को पर्याप्त धन होता है, यूनिवर्सिटी में प्रवेश करते हैं। अच्छे लड़के सभी शिल्प-शालाओं में आते हैं, यदि उन्हें वहाँ स्थान मिल जाता है। अतएव इन शालाओं में प्रवेश करने में बड़ी कठिनाइयाँ पड़ती हैं और श्रीयुत मेघनाद साह को एक जर्मन-अध्यापक ने बतलाया था कि जर्मन विद्यार्थियों के बाद जर्मनी के समरसाथी आस्ट्रिया, हङ्गरी, टर्की और बलगेरिया के ही विद्यार्थियों को प्रथम स्थान मिलता है। यह कहना ठीक होगा कि जर्मनी के कुल विद्यालयों में योरप की पूर्वी रियासतों, टर्की, मिस्र, चीन [illegible] पान के विद्यार्थियों की अच्छी संख्या है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि कोई विद्यार्थी किसी टेक्निकल हाईस्कूल में पढ़ना चाहे तो उसे पहले से ही अधिकारियों से पत्र-व्यवहार करना चाहिए। यदि उसे किसी विशेष विषय का अभ्यास करना हो तो वह उस विषय के अध्यापक से पत्र-व्यवहार करे। अध्यापक का नाम, Robert Riepert, Bookseller, Hardenburg-Strasse 4 and 5 Charlottenburg, Berlin द्वारा प्रकाशित जर्मन-विद्यालयों और टेक्नीकल संस्थाओं के कलेंडर से विदित हो सकता है।

किस विद्यालय या टेक्निकल स्कूल में पढ़ना ठीक होगा यह बात सबके लिए नहीं कही जा सकती। ज्ञानवृद्ध विद्यार्थी जानते ही होंगे कि कौन अच्छा अध्यापक है और कहाँ अच्छी पढ़ाई होती है। इसी दृष्टि से उन्हें निर्वाचन करना चाहिए। यह बहुधा होता है कि किसी विशेष विषय के अध्ययन में गाटिंजन (Gottingen) या बान (Bonn) के प्रान्तीय विद्यालयों में बर्लिन (Berlin) या म्यूनिक (Munich) के विद्यालयों की अपेक्षा अधिक सुगमताएँ हों। जैसे कि गाटिंजन की Ærological Laboratory (आकाश-सम्बन्धी रसायनशाला) सबसे उत्तम है। अतएव इस विषय के अध्ययन के लिए जर्मनी गये हुए विद्यार्थियों की यह मूर्खता होगी यदि वे बर्लिन का नाम सुन कर वहाँ पढ़ने चले जायँ। श्रीयुत साह का कहना है कि लिपज़िग (Leipzig), गाटिंजन और म्यूनिक की विज्ञान-सम्बन्धिनी रसायनशालायें बर्लिन से कई बातों में श्रेष्ठ हैं। इसके सिवा छोटे स्थान में विद्यार्थी प्रायः अधिक देखरेख से पढ़ाये जाते हैं।

इस समय बहुतेरे भारतीय कल-कारख़ानों का कार्य्य तथा व्यवसाय के प्रकार सीखने के लिए जर्मनी जाना चाहते हैं। श्रीयुत साह से पूछा गया है कि जर्मन व्यवसायी उन्हें अपने कल-कारख़ानों में शिक्षा ग्रहण करने देंगे?

साहजी बतलाते हैं कि कोई शिल्पी अपना व्यवसाय-सम्बन्धी भेद किसी विदेशी को प्रसन्नतापूर्वक न बतलावेगा। फिर भी प्रायः बहुत से निर्गम द्वार होते हैं। यदि जर्मन शिल्पकर्मी को यह विश्वास दिला दिया जाय कि उसके निर्माण के भेद किसी भारतीय को बतला देने से उसकी अथवा उसके सहयोगी की कोई हानि न होगी बरन उसके शत्रु देशों के व्यवसाय की हानि होगी, तो वह भारतीय विद्यार्थी को अपने व्यवसाय के उतने भेद जितने उसके शत्रु देशों को मालूम हों बतला सकता है। जिन फ़र्मों के प्रतिनिधि जर्मनी से कलें मँगाते हैं उनके निर्माण-सम्बन्धी रीतियों के जानने के लिए यह अच्छा अवसर है। क्योंकि जिन फ़र्मों से कलें मँगाई जाती हैं वही उनकी शिक्षा का प्रबन्ध कर देती हैं। कभी कभी गहरी रक़म घूस देने से भी काम चल जाता है।

साहजी वहाँ लगभग ६ सप्ताह तक रहे। वे बतलाते हैं कि वहाँ के विद्यार्थियों और अध्यापकों का व्यवहार बड़ा विनीत है। बर्लिन के जिस फ़िज़िकल केमेस्ट्री इन्स्टीट्यूट में उन्होंने कार्य किया था वहाँ के अध्यापकों ने उनको बड़ी सहायता दी। वहाँ ऐसे भी बहुत से विद्यार्थी हैं जो वहाँ बिना किसी जान-पहचान के गये हैं। वे भी अपने अध्यापकों के व्यवहार से बहुत प्रसन्न हैं। भारतीय विद्यार्थियों के एक सङ्घ का सङ्गठन अभी हाल ही में बर्लिन में हुआ है। उसके सेक्रेटरी श्रीयुत योगेन्द्र कुमार चौधरी एम० एस-सी हैं। श्रीयुत यस० आर० बोमनजी उस समय बर्लिन में ही थे। इन्होंने उक्त सङ्घ को १००००) मार्क का दान दिया। इस सङ्घ का एक उद्देश यह भी है कि जर्मनी जानेवाले जिस भारतीय विद्यार्थी को जो आवश्यकता हो उसे उसकी सूचना वह दिया करे। उसका पता यह है Wullen weber Strasse 12, bei Schmidt, Berlin, N. W. 87.

आशा है, हमारे उत्साही विद्यार्थी भाई इस लेख से लाभ उठावेंगे।

कुँवर ख़ुशवक्तराय

७—हिन्दी में चिकित्सा-विज्ञान।

हिन्दी में अब वैज्ञानिक विषयों की चर्चा होने लगी है। इलाहाबाद के विज्ञान-परिषद् द्वारा एक वैज्ञानिक पत्रिका प्रतिमास प्रकाशित हो रही है। कभी कभी वैज्ञानिक विषयों की दो चार पुस्तकें भी निकल आती हैं। वैज्ञानिक विषयों में सबसे अधिक अनुराग कदाचित् चिकित्सा-विज्ञान के प्रति है। वैद्यकग्रन्थों की संख्या काफ़ी हो गई है। इनमें से कुछ तो भारतीय आयुर्वेद शास्त्र के आधार पर लिखे गये हैं और कुछ योरप के नवीन चिकित्सा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान के आधार पर। कुछ समय से जल-चिकित्सा पर पुस्तक प्रकाशित करने की ओर प्रकाशकों का ध्यान गया है। अभी तक इस विषय की छोटी बड़ी कई पुस्तकें छप गई हैं। भारतीय आयुर्वेद शास्त्र पर जो छोटे बड़े ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें से अधिकांश का उद्देश सर्व-साधारण में वैद्यक-ज्ञान का प्रचार करना है। यह उद्देश स्तुत्य है। वैद्यक-शास्त्र की कुछ बातों का ज्ञान होना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। इस शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यक बातें मालूम कर लेने पर स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्राणनाशक भूलें होने का कम डर रहता है। परन्तु एक बात की बड़ी कठिनाई है। जहां सभी लोग वैद्य-पञ्चानन बनने की चेष्टा में संलग्न हैं वहां यदि वैद्य-विद्या की दुर्गति हो तो आश्चर्य नहीं। अभी तो यह हाल है कि जिन्हें यथेष्ट संस्कृत का ज्ञान नहीं वे भी वैद्यक-शास्त्र का तत्त्व समझाने का दावा रखते हैं। आज-कल हमारे देश में डाक्टरी-चिकित्सा का ही अधिक आदर है। उसका कारण यह है कि शिक्षित लोग आयुर्वेद शास्त्र को वैज्ञानिकी भित्ति पर स्थित नहीं समझते। यह होने पर भी अशिक्षितों की श्रद्धा आयुर्वेद-शास्त्र पर कम नहीं हुई। उन्हीं की बदौलत भारतवर्ष के कितने आयुर्वेद-मार्तण्डों की जीविका चलती है।

गांवों में अल्प शिक्षित लोगों को वैद्य-विद्या में निपुण करने के लिए हिन्दी में दो एक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। ऐसी पुस्तकों में नगेन्द्रनाथ सेन की वैद्यक-शिक्षा नामक ग्रन्थ का अच्छा प्रचार हुआ है। अभी हाल में कलकत्ते के बाबू हरि-दास वैद्य ने भी इसी उद्देश्य से चिकित्सा-शास्त्र पर चिकित्सा-चन्द्रोदय नाम की एक बड़ी पुस्तक प्रकाशित की है। अभी तक उसके दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं। सम्भव है, उसके अन्य भाग भी शीघ्र प्रकाशित हों। इस पुस्तक के प्रथम भाग में जिन विषयों पर विचार किया गया है उनमें से मुख्य ये हैं:—आयुर्वेद की उत्पत्ति, आयुर्वेद की अतीत तथा वर्तमान दशा, चिकित्सा-कर्म आरम्भ करनेवालों के के लिए शिक्षा, मनुष्य-शरीर का वर्णन, दोष-विचार, धातुओं का धर्म, ऋतुचर्य्या, रोग-परीक्षा, नाड़ी-परीक्षा, ओषधि-परीक्षा, मलमूत्र आदि तेरह प्रकार के वेगों को रोकने से उत्पन्न हुए रोग और उनकी सहज चिकित्सा। दूसरे भाग में प्रधानतया ज्वरों का वर्णन और उसके बाद स्त्री-रोग और बाल-रोग-चिकित्सा की भी विवेचना है। प्राचीन और आधुनिक प्रायः सभी ज्वरों पर विशद रीति से विचार किया गया है। इस विषय में डाक्टरी तथा यूनानी मतों का भी उल्लेख है। दूसरे खण्ड के कई अध्यायों में रस, क्वाथ आदि के बनाने की क्रियाएँ भी लिखी गई हैं। यन्त्रों के चित्र भी दिये गये हैं। इस तरह पुस्तक को उपादेय बनाने की अच्छी चेष्टा की गई है।

भारतीय आयुर्वेद-शास्त्र का हमें गर्व होना चाहिए। प्राचीन काल में ही उसने आश्चर्यजनक उन्नति करली थी। यह भी सच है कि आयुर्वेद-शास्त्र में कुछ ऐसी भी बातें हैं जो इस बढ़े हुए विज्ञान के ज़माने में भी डाक्टरी-चिकित्सा में नहीं है। परन्तु हमें यह अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिए कि जिज्ञासा के भाव से प्रेरित होने ही पर विज्ञान की उन्नति होती है। प्राचीन काल में वैद्य-विद्या की जो उन्नति हुई थी उसका कारण यह है कि उस समय विद्वान् अपनी ज्ञान-वृद्धि के लिए प्रयत्न करते थे। किसी पर अन्ध-विश्वास रख आविष्कार करना छोड़ नहीं देते थे। किसी भी शास्त्र को पूर्ण समझ लेने पर उसकी उन्नति नहीं हो सकती। ज्ञान की सदैव परीक्षा करनी चाहिए, तभी उसकी क्रमशः परिष्कृति और उन्नति होती रहती है। आज हम जिसे सत्य समझ कर अपनाये हुए हैं सम्भव है कि कल उसे असत्य प्रमाणित करके दूर कर दें। अतएव जो लोग भारतीय आयुर्वेद-शास्त्र की उन्नति के इच्छुक हैं उन्हें अब वैज्ञानिक रीति से अपने शास्त्र की परीक्षा करनी चाहिए। यदि उसमें कुछ त्रुटियाँ हैं तो उनको वे दूर करें। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान ने जिन विषयों में पूर्णता प्राप्त करली है उनका भी समावेश किया जाय। यदि आयुर्वेद-शास्त्र के विद्वान् ऐसे ग्रन्थ लिखें तो उससे लोगों की श्रद्धा उनके शास्त्र पर बढ़ जाय और सभी लोग अल्प मूल्य पर आयुर्वैदिक ओषधियों से लाभ उठाने लगें। तस्मात् प्रवर्तय सखे सततं परीक्षाम्।

पुस्तक-परिचय।

१—भारत-दर्शन।

भारत-दर्शन—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ३९२, लेखक, सुखसम्पतिराय भण्डारी; प्रकाशक, जीतमल लूणिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-साहित्य-मन्दिर इन्दौर, बिना जिल्द की पुस्तक का मूल्य २॥)

इस पुस्तक के आवरण-पृष्ठ पर मुग़ल-दर्बार में अँगरेज़ वणिक-दूत का एक चित्र है। पुस्तक की छपाई साधारण है, परन्तु यत्र तत्र छापे की ग़लतियाँ रह गई हैं। इस पुस्तक के भूमिका-लेखक हैं पञ्जाब-केसरी लाला लाजपतरायजी। उसमें उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है कि "मैंने इस पुस्तक को सारा नहीं पढ़ा, सिर्फ़ वर्क़ें उलट कर देखा है"—लालाजी ने इस बात को गुप्त नहीं रक्खा कि हमने पूरी पुस्तक पढ़े बिना ही भूमिका लिख दी है। इस सत्य बात को कितने भूमिका-लेखक स्वीकार करते हैं?

अनेक पुस्तकों, मासिक पत्रों तथा अन्य पत्रों में समय समय पर भारत की आर्थिक और राजनैतिक दशा पर जो प्रबन्ध, टिप्पणियाँ आदि प्रकाशित हुई हैं उनका इस पुस्तक में लेखक ने उपयोग करके दिखलाया है कि पहले भारत क्या था और अब क्या होगया है। भिन्न भिन्न अवसरों पर सुयोग्य व्यक्तियों ने जो बातें इस सम्बन्ध में कही हैं उनका भी उपयोग किया गया है। आरम्भ में लेखक ने देशी-विदेशी धुरन्धर लेखकों के प्रमाण देकर बतलाया है कि भारत की आर्थिक दशा का ह्रास किस प्रकार हुआ है और इस समय उसकी क्या दशा है। इसके बाद राजनैतिक दशा का, ऐतिहासिक दृष्टि से, विचार किया गया है और अन्त में असहयोग आन्दोलन आरम्भ किये जाने की आरम्भिक दशा से लेकर वर्तमान परिस्थिति—नागपुर कांग्रेस और स्वदेशी बहिष्कार—तक का वर्णन है। हमारी समझ में विषय के क्रम से पुस्तक यदि दो तीन भागों में बाँट दी जाती तो अच्छा होता।

केवल ऐतिहासिक दृष्टि से पुस्तक लिखी जाने के कारण यह त्रुटि रह गई है कि उसमें आर्थिक दशा सुधारने के तरीक़े नहीं बताये जा सके। पुस्तक में यह तो बहुत अच्छी तरह से बतलाया गया है कि किसानों की दशा कैसे बिगड़ी, परन्तु उसमें यह नहीं बतलाया गया कि अब वह शीघ्र किस तरह सुधर सकती है। इसी तरह आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के दोष तो बतलाये गये हैं, परन्तु यह भली भाँति नहीं बतलाया गया कि राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली कैसी होनी चाहिए और उसका पाठ्य-क्रम कैसा। यदि लेखक महाशय ने आर्थिक दशा सुधारने के तरीक़ों पर भी संक्षिप्त रूप से विचार किया होता तो पुस्तक की उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ जाती।

वैसे पुस्तक है तो बड़े काम की, परन्तु कितने ही महत्त्वपूर्ण विषयों का उसमें दिग्दर्शन-मात्र हो सका है। होम चार्जेज़ जैसे महत्त्वपूर्ण विषय को चार पाँच पृष्ठों से अधिक स्थान नहीं दिया गया। इस विषय पर विशद रूप से विचार होना आवश्यक था। इसी प्रकार पृष्ठ १७७ में 'खाद्य-पदार्थों पर सरकार का नियन्त्रण' भी मुश्किल से १५-२० वाक्यों में समाप्त कर दिया गया है। पुस्तक के आर्थिक भाग का विषय-क्रम ठीक नहीं मालूम होता। कहीं कोई विषय पड़ा है तो कहीं कोई, इससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ती नहीं है। विषय का प्रतिपादन करते हुए लेखक ने अपने वक्तव्य की पुष्टि में जो अङ्कतालिकाएँ उद्धृत की हैं उनके विषय में कहीं यह नहीं बतलाया गया कि लेखक ने स्वयं हिसाब लगा कर ये तालिकाएं प्रस्तुत की हैं या किसी ग्रन्थ से ली हैं। इसका स्पष्ट खुलासा न होने से प्रामाणिकता का महत्त्व घट जाता है।

लेखक ने अपने निवेदन में कहा है कि हिन्दी-भाषा में ऐसी पुस्तकों की बड़ी कमी है जिनमें भारत की अधोगति का सच्चा ऐतिहासिक वर्णन हो, और इसी कमी को कुछ अंश में पूरा करने के उद्देश से यह पुस्तक लिखी गई है। हम यह कह सकते हैं कि आर्थिक और राजनैतिक अधोगति के सम्बन्ध में उनका यह अभीष्ट इस पुस्तक से बहुत कुछ सफल हुआ है। पुस्तक अच्छी है और काम की है। ऐसे ग्रन्थों का लिखा जाना और उनका प्रचार होना वाञ्छनीय है।

दयाशङ्कर दुबे

२—टीका और अनुवाद।

(१) साहित्य-दर्पण, विमला-नामक हिन्दी-टीका-सहित। पण्डित शालग्राम शास्त्री, शास्त्री होने के सिवा साहित्याचार्य भी हैं। अतएव आप शास्त्रज्ञ भी हैं और साहित्यज्ञ भी। किसी विरले ही भाग्यवान् में ये दोनों ही बातें पाई जाती हैं। पहले आप काङ्गड़ी के गुरुकुल में अध्यापक थे, फिर शायद हरद्वार के ऋषिकुल में। आज-कल आप लखनऊ में हैं। आपका पता है—श्रीमृत्युञ्जय-औषधालय, ३२६ अमीनाबाद। आप ही ने इस सटीक साहित्य-दर्पण की रचना की है। पुस्तक दो खण्डों में प्रकाशित हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले खण्ड की पृष्ठ-संख्या कोई ३५० है। मूल्य है ३) रुपया। इसमें आरम्भ से छठे परिच्छेद तक ग्रन्थांश है। दूसरे खण्ड में बाक़ी के चार परिच्छेद हैं। पृष्ठ-संख्या लगभग २५० के और मूल्य २) है। आकार दोनों जिल्दों का बड़ा है। छपाई और काग़ज़ सन्तोष-जनक है। संस्कृतज्ञों में साहित्य-दर्पण का बड़ा आदर है। कितनी ही परीक्षाओं में वह पाठ्य-पुस्तक नियत है। साहित्यशास्त्र में प्रवेश करने की इच्छा रखनेवाले प्रायः पहले इसी का अध्ययन करते हैं। साहित्य-विषयक सभी बातों का सन्निवेश भी इसमें है—किसी का विवेचन कुछ अधिक है, किसी का कम। इसी से इस अकेले ही ग्रन्थ के परिशीलन से पढ़नेवालों की बहुत कुछ ज्ञानवृद्धि हो सकती है। साहित्याचार्य्यजी ने इसकी टीका हिन्दी में करके हिन्दी जाननेवालों पर बड़ा उपकार किया। संस्कृतज्ञ होने पर भी आपने हिन्दी में टीका लिखी, इससे प्रकट है कि अपनी मातृ-भाषा पर आपकी भक्ति है। आपकी इस टीका से सभी का उपकार होगा। परीक्षार्थी छात्र भी इससे लाभ उठा सकेंगे, इतर जन भी। टीका योग्यतापूर्वक लिखी गई। मूल का अर्थ ही नहीं, मतलब भी, बड़ी बारीकी और मार्मिकता से समझाया गया है। अनेक स्थलों पर टीकाकारजी ने मूलपुस्तक के कर्ता और संस्कृत-टीकाकार तर्कवागीशजी के साथ शास्त्रार्थ भी किया है। कहीं कहीं इन लोगों की "गजनिमीलित" भी आपने दिखाई है। संस्कृत-भाषा और साहित्य-शास्त्र के धुरन्धर पण्डित आपकी इस कृति से तृप्त होंगे या नहीं, यह तो हम नहीं कह सकते; पर इसमें सन्देह नहीं कि आपकी इस सटीक पुस्तक से अनेक छात्रों और अनेक साहित्यानुरागियों का बहुत काम निकलेगा। इस ग्रन्थ पर, हमारी समझ में, यही पहली हिन्दी टीका है। साहित्याचार्य्यजी को ही लिखने से यह मिल सकती है।

२—हिन्दी-मेघदूत-विमर्श। हिन्दी में मेघदूत के कई पद्यात्मक और गद्यात्मक अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। तो भी हमें विश्वास है कि हिन्दी-साहित्य के प्रेमी इस पुस्तक का आदर करेंगे। इसमें मेघदूत का समश्लोकी पद्य में अनुवाद किया गया है। गद्य में भी प्रत्येक श्लोक का भावार्थ दे दिया गया है। प्रारम्भ में ११० पृष्ठों की भूमिका है। उसमें कालिदास के स्थिति-काल पर विचार किया गया है और मेघदूत के आधार पर कालिदास की कवित्व-कला का भी दिग्दर्शन कराया गया है। इस विमर्श के लेखक श्रीयुत कन्हैयालाल पोद्दार हैं। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई अच्छी है। जिल्द बँधी हुई किताब का मूल्य २) है। पुस्तक मिलने का पता यह है—पण्डित नरसिंहलाल शर्मा, नं० ६ कन्नूलाल लेन, बरतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता।

कालिदास के साथ विक्रमादित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध होगया है। इसका आधार सिर्फ़ प्रचलित दन्तकथा है। उसमें यदि कोई ऐतिहासिक सत्यता है तो वह विश्वस-नीय है। जो लोग ईसा के पहले विक्रमादित्य के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं वे यह भी मान लेंगे कि कालिदास उसी विक्रमादित्य के सभासद थे। जो लोग कालिदास को पाँचवीं, छठी अथवा सातवीं शताब्दी में रखते हैं वे भी विक्रमादित्य उपाधिधारी किसी राजा से कालिदास का सम्बन्ध अवश्य बतलाते हैं। पोद्दारजी को ऐसे विद्वानों की सभी युक्तियाँ शिथिल और निर्मूल प्रतीत होती हैं। कालिदास ने स्पष्टरूप से कहीं विक्रम का नामो-ल्लेख नहीं किया। कालिदास किसी राजा के आश्रय में ज़रूर रहते थे, पर वह राजा विक्रम नहीं, अग्निमित्र था। कालिदास ने प्रत्यक्ष अनुभव से अग्निमित्र के चरित्र को अपने मालविकाग्निमित्र नाटक में ग्रथित किया है। अग्नि-मित्र के साथ कालिदास का सम्बन्ध मान कर पोद्दारजी ने वैसे ही प्रमाण दिये हैं जिन्हें आपने पहले निर्मूल बतलाये थे। आपने भी रघुवंश में अग्निमित्र और पुष्पमित्र का चित्र देखा है जिस प्रकार दूसरे विद्वानों ने उसमें समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त और कुमारगुप्त के वैभव का दर्शन किया। यदि उनकी कल्पना भ्रामक है तो पोद्दारजी का भी सिद्धान्त प्रामाणिक नहीं।

पोद्दारजी को मेघदूत के अनुवाद में अच्छी सफलता हुई है। आपकी पद्य-रचना सरस है और उसमें मूल श्लोक का भावार्थ भी अच्छी तरह आगया है। पुस्तक में चार चित्र भी हैं, जिनसे पुस्तक की शोभा बढ़ गई है।

(३) बिहारी-बोधिनी—यह बिहारी कृत सतसई की सरल टीका है। टीकाकार हैं लाला भगवानदीन। साहित्य-सेवा-सदन, काशी ने इसका प्रकाशन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य २॥) है। मुकुन्ददास गुप्त एण्ड कम्पनी, बनारस सिटी, को लिखने से यह किताब मिल सकती है।

बिहारी-बोधिनी के विषय में बाबू रामदास गौड़ ने प्रस्तावना में लिखा है कि टीकाकार ने एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की है। साधारण विद्यार्थियों की जितनी आवश्यकताएँ हैं सभी पूरी की गई हैं। महत्त्व के शब्दों के अर्थ दे दिये गये हैं, अलङ्कार बतलाये गये हैं, स्थान स्थान पर कवि के चमत्कार का निदर्शन भी किया गया है। भाषा स्पष्ट है। लाला भगवानदीन हिन्दी-साहित्य के मर्मज्ञ हैं। अतएव टीका की उत्तमता के विषय में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। हमें आशा है कि बिहारी की कविता के प्रेमी इस टीका का आदर करेंगे।

(४) बम्बई के गान्धी पुस्तक भंडार ने **कादम्बरी** का अनुवाद प्रकाशित किया है। अनुवादक श्रीयुत पण्डित ऋषीश्वरनाथ भट्ट, बी० ए, एल-एल० बी० हैं। पुस्तक सुन्दर टाइप और अच्छे कागज़ पर छपी है। जिल्द भी अच्छी है। मूल्य ३।) है।

बाणभट्ट की कृति का परिचय देने की ज़रूरत नहीं है। अनुवाद में उसकी भाषा का सौन्दर्य आ ही नहीं सकता। उसकी कथा अवश्य लिखी जा सकती है। अनुवादक महोदय ने मूल ग्रन्थ के भावों की रक्षा कर अच्छी भाषा में कादम्बरी की कथा लिख दी है। प्रस्तावना में बाणभट्ट का परिचय दे दिया गया और कथा का सारांश भी लिख दिया गया है। कादम्बरी पर रवीन्द्र बाबू का एक समालोचनात्मक लेख है। उसका भी अनुवाद प्रारम्भ में जोड़ दिया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक सभी तरह से अच्छी है।

३—दक्षिणामूर्त्ति-विद्यालय से सम्बन्ध रखनेवाले पत्रक और पुस्तकें—

आज-कल सरकारी मदरसों और स्कूलों में जैसी शिक्षा दी जाती है वैसी शिक्षा अनेक देश-भक्त भारतवासियों को पसन्द नहीं। वे चाहते हैं कि शिक्षा ऐसी हो जिससे शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक ही विकास न हो, किन्तु छात्रों के हृदयों में अपने देश, अपने धर्म्म और अपने पूर्व पुरुषों के विषय में श्रद्धा और गर्व भी उत्पन्न हो। वे अपने आदर्शों को भूल न जायँ; विदेशी रङ्ग में ही न डूब जायँ। वे चरित्रवान् भी हों, ज्ञानवान् भी हों और विद्वान् भी हों। इन्हीं कल्याणकारिणी प्रेरणाओं से प्रेरित होकर काठियावाड़ के कुछ साधुशील पुरुषों ने भावनगर से कोई एक मील दूर, एक पहाड़ी के नीचे, पहले एक विद्यार्थि-भवन खोला और वहाँ विद्यार्थियों के रहने का प्रबन्ध किया। पीछे से वहीं एक विद्यालय की भी संस्थापना कर दी। इन्हीं संस्थाओं से सम्बन्ध रखनेवाले कई पत्रक हमें प्राप्त हुए हैं। एक को छोड़ कर वे सब गुजराती-भाषा में हैं। उनमें से एक कुछ बड़ा है और सचित्र भी है। उसमें इन संस्थाओं के उद्भव और सञ्चालन आदि का वर्णन है। उसके पाठ से ज्ञात होता है कि जिन उद्देशों से इस भवन और विद्यालय की सृष्टि हुई है उसकी यथेष्ट सिद्धि हो रही है। कुछ समय से वहाँ ६ वर्ष तक के बच्चों (लड़कों और लड़कियों) की भी शिक्षा का प्रबन्ध हो गया है। यह शिक्षा मॉंटेसोरी नामक पद्धति के अनुसार दी जाती है। छात्रों का ज्ञान-विस्तार—उनको हर तरह की शिक्षा का दान—उनकी मातृ-भाषा गुजराती ही के द्वारा किया जाता है। पर साथ ही, भाषा-दृष्टि से, उन्हें अँगरेज़ी भी पढ़ाई जाती है। सरकारी शिक्षा-विभाग के नियमों की पाबन्दी नहीं की जाती। विद्यालय सर्वथा स्वतन्त्र है। उसने अपनी निज की पाठ्य-पुस्तकें भी बना ली हैं। उनमें से भी कई एक हमारे पास समालोचनार्थ आई हैं। एक में गौतम बुद्ध का जीवन-चरित है, दूसरी में मुहम्मद साहब का। तीसरी में छोटी छोटी कहानियाँ हैं। वे सारी की सारी प्रान्तिक हैं—अर्थात् ऐसी जिनका प्रचार काठियावाड़ में सार्वत्रिक है। चौथी पुस्तक में प्रसिद्ध प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुषों का संक्षिप्त वृत्तान्त है, यथा—रामचन्द्र, पाण्डव, अशोक, पृथ्वीराज, अकबर, औरङ्गज़ेब, वास्को ड गामा और क्वीन विक्टोरिया। यदि ऐसी ही नमूनेदार शिक्षण-संस्थायें हर प्रान्त में खुल जायँ तो देश को बहुत लाभ पहुँचे। इनके व्यवस्थापकों को धन की बड़ी ज़रूरत है। सामर्थ्यवानों को चाहिए कि दान-द्वारा उनकी सहायता करें। ऐसे अच्छे काम के लिए दान देना बड़े पुण्य का काम है।

———

Printed and Published by Apurva Krishna Bose, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भाग २३, खण्ड १] मई १९२२—वैशाख १९७९ [संख्या ५, पूर्ण संख्या २६९

काशिनाथ त्र्यम्बक तैलङ्ग।



तैलङ्ग महाशय दक्षिणी, गौड़-सारस्वत, ब्राह्मण थे। उनका जन्म १८५० ईसवी में हुआ था। उनके पूर्वज गोत्रा के रहनेवाले थे। वे उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में, बम्बई के पास, थाना नगर में, आ बसे थे। पिता का नाम था, बापू रामचन्द्र तैलङ्ग। परन्तु आपके चचा, त्र्यम्बक रामचन्द्र, ने आपको गोद लिया था। इसी से आप अपने नाम के आगे अपने पिता का नहीं, चचा का नाम (त्र्यम्बक) लिखते थे।

साधारण शिक्षा।

आपकी मराठी-शिक्षा एक छोटे से मदरसे में शुरू हुई। वहाँ अपनी मातृभाषा द्वारा पढ़ाई समाप्त करके आप, १८५९ ईसवी में, बम्बई के एलफिंस्टन हाई-स्कूल में भरती हुए। १८६४ ईसवी में उन्होंने, सिर्फ़ १४ वर्ष की उम्र में, बम्बई-विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा पास की। फिर आप एलफिंस्टन कालेज में दाख़िल हुए। वहाँ आपको बड़े योग्य अध्यापक मिले। वे अपने छात्रों की मानसिक उन्नति की ओर ख़ूब ध्यान देते थे। सबसे बड़ी बात उनमें यह थी कि वे लोग विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के लिए नियत पाठ्य पुस्तकों के सिवा और भी पुस्तकें अपने छात्रों को पढ़ाते थे। ये पुस्तकें उत्तम और चुनी हुई होती थीं। उनके अध्ययन से छात्रों में ख़ुद बख़ुद सोचने की शक्ति उत्पन्न होती थी।

तैलङ्ग महोदय ने १८६६ ईसवी में बी० ए० और १८६८ में एम० ए० पास किया। १८६९ में आपने संस्कृत-विद्वत्ता का परिचायक एक पुर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कार और १८७० में एल-एल० बी० की पदवी प्राप्त की। इसके पहले ही—१८६७ में—आप अपने कालेज के "फेलो" नियत किये जा चुके थे। कालेज में अध्यापक नियत होने पर आपको अँगरेज़ी और संस्कृत-भाषायें पढ़ानी पड़ती थीं। इस ओहदे पर आप पाँच वर्ष तक रहे। क़ानून की परीक्षा पास करने के बाद, कोई दो वर्ष तक, आप हाई-कोर्ट में वकालत का तजरिबा भी हासिल करते रहे। १८७२ में जब आपने "ऐडवोकेट" की परीक्षा पास कर ली तब आप वकालत करने लगे।

विशेष शिक्षा।

तैलङ्ग महोदय ने इतना समय केवल परीक्षायें ही पास करने में नहीं लगाया। उन्होंने अपने ज्ञान-भाण्डार की भी विशेष उन्नति की। एम० ए० पास करने पर उन्हें मालूम हुआ कि अब तक जो कुछ उन्होंने सीखा है वह उसके मुक़ाबले में कुछ भी नहीं जो अभी सीखना बाक़ी है। क़ानूनी किताबें पढ़ने के साथ साथ उन्होंने अँगरेज़ी-साहित्य, दर्शन और सम्पत्ति-शास्त्र का गहरा अध्ययन किया। प्लेटो, हक्सले और मिल के ग्रन्थों को वे बड़े ध्यान से पढ़ते रहे। इतने पर भी सन्तुष्ट न होकर वे रेखागणित के कुछ गूढ़ प्रश्नों को नित्य हल किया करते थे। क्योंकि, उनका ख़याल था कि इससे विचार-शक्ति ख़ूब बढ़ती है। इसके सिवा वे अक्सर अख़बारों में लेख लिखते, सभाओं में लेख पढ़ते और भिन्न भिन्न विषयों पर व्याख्यान देते थे। उनकी राय थी कि जो मनुष्य देश का उपकार करना चाहता हो उसके लिए ऐसी शिक्षा प्राप्त करना बहुत ज़रूरी है। वे प्रार्थना-समाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में बराबर जाते थे और वहाँ जितने उपदेश होते थे उनको बड़े ध्यान से सुनते थे। इसके बाद उनका सारांश लिख कर उपदेशक को इसलिए दिखलाते थे कि वे उपदेशक का तात्पर्य ठीक ठीक समझ कर अपने शब्दों में प्रकट कर सके हैं या नहीं। वे अक्सर कहा करते थे कि कोई मनुष्य तब तक पक्का विचार-शक्ति-सम्पन्न नहीं हो सकता जब तक कि उसने दूसरों के विचारों को ठीक ठीक समझना और अच्छी तरह प्रकट करना न सीख लिया हो। यह इसी प्रकार की शिक्षा का प्रभाव था जिसने उन्हें बम्बई-प्रान्त में अपने समय का सर्वोत्कृष्ट वक्ता और लेखक बना दिया। उस समय जान स्टुअर्ट मिल के तर्क-शास्त्र, सम्पत्ति-शास्त्र, और प्रतिनिधि-शासन-प्रणाली नामक ग्रन्थ उनको बहुत प्रिय थे। कुछ दिनों बाद हर्बर्ट स्पेन्सर के भी वे बड़े भक्त हो गये। इसके सिवा कारलाइल के निबन्ध, टेनिसन की कविता, सिनबर्न के अटलान्टा और जार्ज इलियट के उपन्यास भी वे बड़े प्रेम से पढ़ते थे। इसी समय उन्होंने संस्कृत-साहित्य का भी ख़ूब अध्ययन किया।

वकालत।

तैलङ्ग महाशय ने, १८७२ में, वकालत शुरू की थी। थोड़े ही दिनों में उनकी वकालत ऐसी चमकी कि उनकी गिनती बम्बई के प्रसिद्ध वकीलों में हो गई। उनकी वक्तृत्व-शक्ति और जिरह करने की चतुरता की ख्याति ऐसी फैली कि ढेर के ढेर मुअक्किल उनके पास आने लगे। बम्बई-हाईकोर्ट के तत्कालीन चीफ़-जस्टिस, सर माइकेल वेस्ट्राप, आपकी योग्यता, विद्वत्ता, न्यायपरता और क़ानूनदानी की अक्सर तारीफ़ किया करते थे। तैलङ्ग महाशय की संस्कृत-विद्वत्ता हिन्दू-धर्मशास्त्र-सम्बन्धी मुक़द्दमों में बड़ी सहायक होती थी। जज लोग आपको इतना मानते थे कि यदि हिन्दू-धर्मशास्त्र-सम्बन्धी कोई बात उनकी समझ में न आती थी तो वे आपसे सलाह लेते थे।

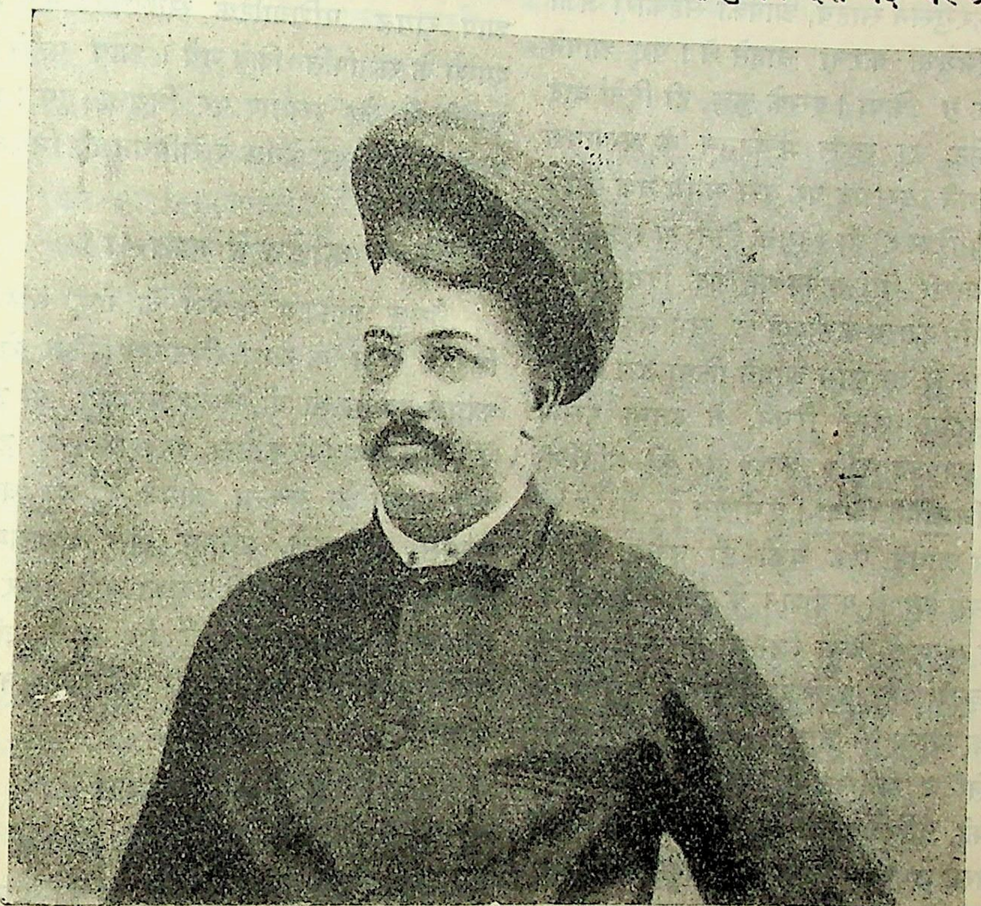
वक्तृतायें।

तैलङ्ग महाशय बड़े प्रभावशाली वक्ता थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी धुवाँधार वक्तृतायें सुन कर बड़े बड़े अँगरेज़ दङ्ग रह जाते थे। उन्होंने सबसे पहली वक्तृता, १८७३ में, नमक के क़ानून पर दी। उसमें इन्होंने इस क़ानून का विरोध किया था। इसे लोगों ने बहुत पसन्द किया। परन्तु आपकी वह वक्तृता जिसने आपको बम्बई का प्रधान वक्ता बना दिया,



काशिनाथ त्र्यम्बक तैलङ्ग।

१८७६ में, हुई थी। वह साल से सम्बन्ध रखनेवाले क़ानून के विरोध में थी। उसे सुन कर बम्बई के बड़े बड़े अधिकारी चकित हो गये। उस समय बम्बई के प्रायः सभी अख़बारों ने जी खोल कर आपकी प्रशंसा की। इसके बाद आपकी जितनी वक्तृतायें हुईं प्रायः सभी एक से एक बढ़ कर हुईं।

विश्वविद्यालय से सम्बन्ध।

१८७६ में, तैलङ्ग महाशय बम्बई-विश्वविद्यालय के फ़ेलो बनाये गये। इसके बाद, १८८१ में, विश्वविद्यालय की प्रबन्ध-कारिणी सभा ने आपको अपना सभासद चुना। इस पद पर आप १८९२ तक रहे। इस साल आप विश्वविद्यालय के उपसभापति (Vice-Chancellor) नियुक्त किये गये। विश्वविद्यालय से आपका सम्बन्ध कोई सत्तरह वर्ष तक रहा। इतने दिनों तक उसकी उन्नति करने की चेष्टा आप बराबर करते रहे। उसका काम आप बड़े शौक़ से करते थे। विश्वविद्यालय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः सभी अधिवेशनों में आप बराबर उपस्थित होते थे।

सरकारी सम्मान।

गवर्नमेंट ने, १८८० ईसवी में आपको जस्टिस आव् दि पीस बनाया। इसी समय बम्बई के गवर्नर, सर जेम्स फरगुसन साहब, आपको सहकारी जजी के पद पर नियुक्त करना चाहते थे। पर आपने उसे स्वीकार न किया। इसके कुछ ही दिनों बाद आप गवर्नमेंट ला स्कूल में क़ानून के अध्यापक नियत किये गये। इस पद पर उस समय तक केवल योरोपियन बारिस्टर ही नियुक्त होते थे। आपही पहले भारतवासी थे जिनको यह पद दिया गया। १८८२ में आप शिक्षा-कमीशन के सभासद् बनाये गये। कमीशन में जो काम आपने किया उसे तत्कालीन वायसराय, लार्ड रिपन, ने इतना पसन्द किया कि आपको सी० आई० ई० की प्रतिष्ठित उपाधि से विभूषित किया। कमीशन के मेम्बर की हैसियत से आपने एक बड़ी ही उत्तम रिपोर्ट लिखी। उसमें आपने कमीशन के उन सभासदों के विचारों का खण्डन किया जिनका मत यह था कि सरकारी स्कूलों और कालेजों में नैतिक पुस्तकों के द्वारा नैतिक शिक्षा दी जाय। १८८४ में आप बम्बई के लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर बनाये गये। कौंसिलर की हैसियत से आपने बम्बई-प्रान्त की प्रजा का जैसा उपकार किया वैसा बहुत कम लोगों ने किया होगा।

सभाओं से सम्बन्ध।

बम्बई में साहित्य, विज्ञान, राजनीति और समाज-सुधार से सम्बन्ध रखनेवाली शायद ही कोई ऐसी सभा हो जिससे तैलङ्ग महाशय का थोड़ा बहुत सम्बन्ध न रहा हो। वहाँ की प्रायः सभी बड़ी बड़ी सभाओं के आप मेम्बर थे। बम्बई-असोसियेशन, ईस्ट इंडिया असोसियेशन और विद्यार्थियों की साहित्य तथा विज्ञान-सम्बन्धिनी सभा (Students' Literary and Scientific Society) के आप बहुत दिनों तक सहकारी मन्त्री रहे। १८८५ में आपने सर फ़ीरोज़शाह मेहता के साथ बम्बई प्रेसीडेंसी असोसियेशन की नींव डाली। उसके भी मन्त्री आपही बनाये गये। १८९२ में आप रायल एशियाटिक सोसाइटी की बम्बई-शाखा के सभापति किये गये। आप पहले हिन्दुस्तानी थे जो इस पद पर नियुक्त हुए। आपके पहले इस पद पर केवल योरोपियन ही नियत किये जाते थे।

कांग्रेस से सम्बन्ध।

तैलङ्ग महाशय कांग्रेस के एक स्तम्भ थे। मिस्टर ह्यूम के साथ मिल कर जिन लोगों ने कांग्रेस क़ायम की थी, तैलङ्ग महाशय भी उन्हीं में थे। सन् १८८८ में कांग्रेस इलाहाबाद में हुई थी। उस समय जो वक्तृता आपने दी थी वह ऐसी गम्भीर, युक्तिपूर्ण, मनोहर और प्रभावशालिनी थी कि विपक्षियों तक ने उसकी भूरि भूरि प्रशंसा की। लोगों का ख़याल है कि अपने जीवन में उन्होंने जितनी वक्तृतायें दी थीं वह उन सबसे उत्तम थी।

हाईकोर्ट के जज।

तैलङ्ग महाशय, १८८९ में, हाईकोर्ट के जज नियत किये गये। आपकी नियुक्ति को प्रायः सभी श्रेणी के लोगों ने पसन्द किया। हाईकोर्ट के जज में जो जो गुण होने चाहिए वे सब आपमें पहले ही से मौजूद थे। उनका उपयोग करके आपने राजा, प्रजा, दोनों को मोहित कर लिया। क़ानून की रिपोर्टों में प्रकाशित आपके फ़ैसलों को पढ़ कर अब तक लोग आपकी गहरी क़ानूनदानी और असाधारण योग्यता की तारीफ़ करते हैं। यद्यपि जज हो जाने पर आपका राजनैतिक मामलों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शामिल होना बन्द हो गया तथापि कांग्रेस से आपकी वैसी ही सहानुभूति बनी रही जैसी कि पहले थी।

मृत्यु ।

तैलङ्ग महाशय का स्वास्थ्य, १८९२ के अन्त में, बिगड़ने लगा। कई महीने तक कठिन रोग की यातनायें झेलने के बाद आपकी आत्मा, पहली सितम्बर सन् १८९३ को, इस नश्वर शरीर को त्याग कर परलोक को सिधार गई। आपकी मृत्यु की ख़बर फैलते ही बम्बई भर में शोक छा गया। क्या योरोपियन क्या हिन्दुस्तानी सभी ने आपके लिए शोक किया। जगह जगह पर शोक-सभायें हुई और आपके गुण गाये गये।

समाज-सुधार-सम्बन्धी कार्य ।

तैलङ्ग महाशय केवल वकील, राज-नीतिज्ञ और विद्वान् ही न थे, किन्तु समाज-सुधारक भी थे। वे बाल-विवाह और जाति-भेद के विरोधी तथा विधवा-विवाह के पक्षपाती थे। मरने के कोई दस वर्ष पहले आपका मत था कि समाज-सुधार-सम्बन्धी मामलों में गवर्नमेंट को हस्तक्षेप न करना चाहिए और न इस विषय में कोई क़ानून ही बनाना चाहिए। पर पीछे से आपका यह मत पलट गया था। जिस समय, १८९० ईसवी में, बड़े लाट की कौंसिल में सम्मतिदान-सम्बन्धी मसविदा (Age of Consent Bill) पेश था उस समय आपने टाइम्स आव् इंडिया नामक पत्र में एक लेखमाला लिखी थी। उसमें इस बिल का समर्थन करते हुए आपने लिखा था कि गवर्नमेंट को यह बिल ज़रूर पास कर देना चाहिए, क्योंकि समाज-सुधार-सम्बन्धी मामलों में हस्तक्षेप करना राजा का परम कर्त्तव्य है। आप बम्बई की विधवा-विवाह-प्रचारिणी सभा के सभापति भी थे। पर तैलङ्ग महाशय में एक दोष यह था कि वे व्यावहारिक सुधारक (Practical Reformer) न थे। यद्यपि वे बाल-विवाह के विरोधी थे तथापि उन्होंने अपनी आठ वर्ष की कन्या का विवाह कर दिया था। इस पर लोगों ने आपकी बड़ी निन्दा की थी। पर आप सदा यही कहते रहे कि "इसमें हमारा कुछ बस नहीं; हम पर हद से ज़ियादह दबाव डाला गया और तन्दुरुस्ती ख़राब होने के कारण हमें उसे मानना पड़ा"।

स्वभाव आदि ।

तैलङ्गजी का स्वभाव और चाल-चलन बहुत ही अच्छा था। वे प्रायः सभी प्रकार के दोषों से बचे थे। उनके खान-पान, कपड़े-लत्ते, रहन-सहन से सादापन टपकता था। मिलनसारी में वे अपना सानी न रखते थे। यद्यपि वे कामों के बोझ से दबे रहते थे तथापि हिन्दू-यूनियन क्लब में नित्य शाम को जाते थे और सब श्रेणी के मेम्बरों से मित्रभाव से मिलते थे। इस क्लब में उन्होंने यह नियम प्रचलित किया था कि कोई मेम्बर अँगरेज़ी बोलते समय मराठी और मराठी बोलते समय अँगरेज़ी शब्द का प्रयोग न करे। वे कहा करते थे कि शिक्षित भारतवासियों की यह आदत पड़ गई है कि वे अपनी मातृ-भाषा बोलते समय अँगरेज़ी शब्दों और वाक्यों की बेतरह भरमार करते हैं। इस आदत को वे बुरा समझते थे।

लेख और ग्रन्थ ।

तैलङ्ग महाशय अँगरेज़ी और मराठी दोनों भाषाओं के लेखक थे। उन्होंने अँगरेज़ी में कई छोटे बड़े निबन्ध और ग्रन्थ लिखे, जिनमें से कुछ के नाम ये हैं:—

(१) (Bhagvad Gita) यह गीता का अँगरेज़ी पद्यानुवाद है। अध्यापक मैक्समूलर के "पूर्वीय पवित्र ग्रन्थ" (Sacred Books of the East) नामक पुस्तक-माला में यह प्रकाशित हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) (Bhartrihari-Niti-Shatak) भर्तृहरि-कृत नीतिशतक का अँगरेज़ी-अनुवाद। इसमें जगह जगह पर उपयोगी टिप्पणियाँ भी दी गई हैं।

(३) (Mudra-Rakshasha) कविवर विशाखदत्त-कृत प्रसिद्ध मुद्राराक्षस नाटक का अँगरेज़ी-अनुवाद। इसमें भी स्थान स्थान पर अनुवादकर्ता ने विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियाँ देकर ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ा दी है।

(४) (Life of Shankar) यह आठवीं शताब्दी के जगद्विख्यात वेदान्त-प्रचारक श्रीमच्छङ्कराचार्य्य का संक्षिप्त जीवन-चरित है। शङ्कर-दिग्विजय, आनन्दगिरि-कृत शङ्करविजय और कावेरी वेङ्कटरामस्वामी-कृत दक्षिणी कवियों के चरित पढ़ कर इस छोटी सी किताब को आपने लिखा है।

(५) (Was the Ramayan Copied from Homer ?) इस निबन्ध में आपने अध्यापक वेबर के इस विचार का खण्डन किया है कि रामायण लिखने में वाल्मीकि ने होमर के महाकाव्य की नक़ल की है। जिस समय यह निबन्ध आपने विद्यार्थियों की पूर्वोल्लिखित सभा में पहले पहल पढ़ा उस समय इसकी धूम मच गई। योरप और हिन्दुस्तान के प्रायः सभी विद्वानों ने इसे बहुत पसन्द किया और इसकी प्रशंसा जी खोल कर की।

(६) (Ancient Inscriptions etc.) इसमें प्राचीन काल के शिला-लेखों और ताम्रपत्रों का वर्णन है। इसे आपने पहले पहल इंडियन पेंटिक्वरी नामक पुरातत्त्व-सम्बन्धी मासिक पत्र में छपाया था।

आपकी लिखी तथा अनुवाद की हुई मराठी पुस्तकों के नाम ये हैं:—

(१) नाथन का जीवन-चरित। यह लेसिंग साहब-कृत अँगरेज़ी-पुस्तक का अनुवाद है।

(२) स्थानिक स्वराज्य। यह कामर साहब की लिखी हुई लोकल सेल्फ़ गवर्नमेंट (Local Self Government) का अनुवाद है।

(३) क्या रस्म-रिवाज की अपेक्षा शास्त्र श्रेष्ठ है? यह निबन्ध आपने पहले पहल हिन्दू यूनियन क्लब के सामने पढ़ा था। पीछे से यह पुस्तकाकार छापा गया।

इसके सिवा आपने और भी न मालूम कितने लेख लिखे, जिनकी गिनती करना मुश्किल है। केवल मुख्य मुख्य लेखों का ही ज़िक्र ऊपर किया गया है।

उपसंहार।

तैलङ्ग महाशय बम्बई में अपने समय के प्रधान वकील, शिक्षक, वक्ता, लेखक और राजनीतिज्ञ थे। वे हमेशा वही काम करते थे जिससे भारत का दुख दूर हो और उसका मुख संसार के सामने उज्ज्वल हो। उनमें ऐसे कई गुण थे जिन्हें ग्रहण करके आज-कल के शिक्षित नवयुवक बेहद लाभ उठा सकते हैं और देश का उपकार कर सकते हैं।

(सङ्कलित)

महावीरप्रसाद द्विवेदी

जातिवाद वा स्वातन्त्र्यवाद।

वैजहाट ने कहा है, "आधुनिक समय में मनुष्य स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी इच्छा के अनुसार अपने जीवन-निर्वाह के लिए कोई पेशा पसन्द कर सकता है और जो काम चाहे कर सकता है। परन्तु आदि काल में उसे यह स्वतन्त्रता प्राप्त न थी। उस समय अवस्थिति का साम्राज्य था। समाज में प्रत्येक मनुष्य का स्थान निर्द्धारित रहता था। और उसे अपनी निश्चित स्थिति में जीवन-यापन करना पड़ता था। समाज में उसके स्थान के अनुसार उसके लिए कार्य भी निश्चित रहते थे और उनके सम्पादन के अतिरिक्त उसका अन्य कोई कर्तव्य नहीं था। सर हेनरी मेन ने सच ही कहा है कि प्राचीन क़ानून का अस्तित्व स्वतन्त्रता, स्वरुचि वा समझौते पर निर्भर नहीं है बरन अवस्थिति—अवस्था-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थैर्य, जाति-गत मर्यादा पर है। जिस अवस्था में जीवन का प्रायः प्रत्येक कार्य रवाज द्वारा निश्चित होता था उसी में प्राचीन सभ्यता की जड़ है। मनुष्य इन रवाजों और परम्परागत परिपाटियों पर विचार या तर्क नहीं करता था, परन्तु वह समझता था कि इनमें बड़े बड़े गुह्य आशय अवश्य निहित हैं तथा इनको अक्षुण्ण और अपरिवर्तित रखना नितान्त आवश्यक है।*

प्राचीन समय में जाति वा जन्म के द्वारा ही मनुष्य का कार्य निश्चित होता था अथवा यों कहें कि जन्म के पूर्व से ही मनुष्य के लिए उसका कार्य्य निर्दिष्ट रहता था। जो ग़ुलाम के घर पैदा हुआ है वह ग़ुलाम ही रहेगा। जो मज़दूर के घर पैदा हुआ है वह मज़दूर तथा जो पुरोहित के कुल में पैदा हुआ है वह पुरोहित ही रहेगा—प्राचीन मर्यादा (Status) का यही विधान था।

प्राचीन समय में मानव-समाज का सर्वथा यही हाल था। हमारे यहां की जाति-प्रथा तो जगद्विख्यात है ही, परन्तु जब हम समस्त प्राचीन एशिया और अफ़्रीका पर दृष्टिपात करते हैं तब हमारी आंखों के सामने इसी तरह की सामाजिक संस्थाएँ उपस्थित होती हैं।† प्राचीन मिस्त्रियों, खुल्दियों, पारसियों और बाबुलवालों का सामाजिक सङ्गठन प्रायः इसी तरह का था। प्राचीन योरप की अवस्था भी भिन्न न थी। हम प्राचीन एथेन्स के "यूपेट्रिडस" और "थेटिस" के विभेद को पूर्ण रूप से जानते हैं। स्पार्टा की शूद्र जाति से संसार परिचित है। यूबिया के निवासी क्षत्रिय और साधारण नाम की दो जातियों में विभक्त थे। रोम का इतिहास "पेटरीसियन" और "प्लेबियन" जातियों के झगड़ों से परिपूर्ण है। प्रत्येक सेबाइन लैटिन और एटरूसकन नगरों में भी यही दृश्य हमारी आंखों के सामने उपस्थित होता है।"*

सम्भवतः योरप के मध्य-युग की जाति-प्रथा हमारी जाति-प्रथा से कुछ भी भिन्न न थी। इस सम्बन्ध में स्कैन्डीनेविया के प्राचीन निवासियों के 'एल्डर एड्डा' नामक ग्रन्थ के कुछ अंश का भावार्थ यहां दिया जाता है—एडा ने एक पुत्र को प्रसव किया। उसका रंग काला था। उसका नाम थ्रैल (दास) पड़ा। उसके हाथ के चमड़े में झुर्रियां पड़ी हुई थीं। उसकी अँगुलियां भद्दी और कुरूप थीं। उसका मुख मलिन और मैला

* Bagehot—Physics and Politics p. 29, 157

† उस समय प्रत्येक समाज में भारत की तरह जाति-भेद का मिलना आकस्मिक न था—वह केवल संयोग की बात न थी। एम० लुई जकोलियट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "दी बाइबिल इन इन्डिया" में यह सिद्ध कर दिया है कि भारत ही सभ्यता का मूल स्थान था तथा भारत ने ही संसार को सभ्य बनाया है। भारत के वीरों ने मिस्त्र में अपना उपनिवेश स्थापित किया था एवं योरप के भीतरी भागों में भी उन्होंने प्रवेश किया था। इसी लिए हम प्रत्येक स्थान में एक ही तरह की संस्थाएँ, एक ही तरह के क़ानून, एक तरह की रीति-रस्में प्रचलित पाते हैं। इसी कारण हमें प्रत्येक स्थान में जाति-प्रथा का अस्तित्व मिलता है। एम० लुई जकोलियट की पुस्तक पचास वर्ष से भी अधिक पुरानी है, परन्तु उसके तर्क अभी तक वैसे ही प्रबल हैं जैसे वे पुस्तक के लिखे जाने के समय में थे। इस निबन्ध में पाठकों को जकोलियट के तर्कों से अवगत कराने का स्थान नहीं है। अतएव इतनाही कहना पर्याप्त होगा कि प्राचीन जगत् के सभी समाजों में जाति-प्रथा की नक़ल जान बूझ कर की गई थी। हिन्दू-क़ानून और धर्म-शास्त्र के सर्वप्रथम प्रणेता मनु हैं। मिस्त्र के आदि नियम-विधायक का नाम मेनस है। यूनान के आदि नियम-निर्माता का नाम माइनस है। यहूदियों का समाज-संस्थापक मोज़ेज (मूसा) के नाम से प्रसिद्ध है। क्या इन नामों का सादृश्य कम सङ्केतात्मक है? मनु की ही स्मृति के आधार पर ज़ोरास्टर ने पारसी समाज का संस्थापन किया था। जकोलियट कहते हैं कि ज़ोरास्टर हिन्दू ही थे और इनका वास्तविक नाम सूर्यास्त था। यह बात केवल जकोलियट की ही मनगढ़न्त नहीं है, बरन भाषा-विज्ञान से भी उनके तर्कों का बहुत अच्छी तरह समर्थन होता है। भारत में जाति-च्युत करने की जो प्रथा प्रचलित है उसकी रोमन क़ानून (Capitis munitio) से तुलना जाति-प्रथावाद के अध्ययन करनेवालों को बहुत कुछ लाभदायक प्रतीत होगी।

* The Ancient City—Fustel de Conlanges, Smalls' English Translation p. 301.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उसकी पीठ टेढ़ी थी। वही लड़ाई की खाइयाँ खोदता, ज़मीन में खाद डालता और खेतों को साफ़ और तृणरहित करता। दास जाति की उत्पत्ति इसी मनुष्य से हुई। अम्मा को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम कार्ल पड़ा। वह लाल वर्ण का था। उसने गायों का पालना, हलों और गृहों का बनाना तथा खलिहान का लगाना सीखा। उसी से कृषक जाति का जन्म हुआ है। मोडिर ने एक पुत्र प्रसव किया। उसका नाम जार्ल पड़ा। उसके केश सुनहरे थे। उसके गाल सुन्दर और स्वच्छ थे। उसकी आँखें ज्योतिर्मयी थीं। उसने भाला और तलवार चलाना तथा घोड़े की सवारी सीखी। ईश्वर ने उसे पवित्र मन्त्रों से दीक्षित किया और उसे अक्षरों का बोध कराया एवं परम्परा के जन्म-स्थान की रक्षा का भार सौंपा"*।

जेंक्स कहते हैं कि इस तरह का सामाजिक वर्गीकरण हमें प्रत्येक स्थान में देख पड़ता है। इँगलेंड निवासी सैक्सन जातियों का "इथलिंग," "चर्ल," "थीयो" या "लीट" प्रभृति वर्गों में विभाजन, योरप के अन्य देशों में बसनेवाली सैक्सन जातियों का "ईढलिंग" "फ्रिलिंग" और "लाज" आदि वर्ग-विभाग या फ्रीज़ियन जातियों का "नोबिलिस" "लाईबर" वा "लिटस" प्रभृति श्रेणियों का वर्गीकरण प्रमाणित करता है कि प्राचीन समाज-सङ्गठन एक ही प्रकार का था। तत्कालीन समग्र जातियाँ एक ही प्रकार की थीं उनमें केवल नाम-मात्र की भिन्नता थी"†।

अनेक असभ्य जातियों की सामाजिक अवस्था तथा उनके सङ्गठन का अध्ययन करके एक दूसरी पुस्तक में जेंक्स ने यही निष्कर्ष निकाला है। वे कहते हैं, "प्राचीन समाज में प्रतियोगिता का अस्तित्व ज़रा भी नहीं मिलता। हम ऐसे समाज में रहते हैं जिसमें मनुष्य जिस पेशे और काम को चाहे कर सकता है। कुछ शान्ति-सम्बन्धी क़ानूनों का पालन करने के अतिरिक्त प्रत्येक बात में प्रत्येक मनुष्य को पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्त है। वह जो काम चाहे कर सकता है। यदि कोई किसान यह सोचे कि अपने पड़ोसियों की अपेक्षा कुछ पहले बीज बोने से फ़सल अच्छी होगी, तो वह निस्सन्देह ऐसा कर सकता है। यदि कोई बढ़ई यह सोचे कि किसी सन्दूक़ के बनाने में प्रचलित रीति के विरुद्ध पेंचों के बदले कील लगाना ही श्रेयस्कर है, तो वह उनका उपयोग कर सकता है। यदि कोई बजाज़ यह निश्चय करे कि कपड़ा बेचने की अपेक्षा चाय का व्यापार अधिक लाभकर है, तो वह ख़ुशी से चाय की दूकान खोल सकता है। परन्तु कुलपति द्वारा शासित समाज का इस प्रकार का स्वेच्छाचार दुःखकारक है। उस समाज का सञ्चालन एक-मात्र परम्परागत प्रथा द्वारा होता है और उससे ज़रा भी डिगना अधार्मिकता के अन्तर्गत है।"*

सारांश यह है कि प्राचीन समाज में मनुष्यों के व्यक्तिगत अधिकारों की कुछ भी प्रतिष्ठा न थी। मनुष्य पूर्ण रूप से समाज की पूर्व निर्द्धारित परिपाटी के अधीन था। व्यक्तिगत मनुष्य का जीवन एक-मात्र समष्टि के उद्देश की पूर्ति का साधन समझा जाता था। समाज का अस्तित्व व्यक्तिगत मनुष्यों की अभिलाषा-पूर्ति के लिए न था, बरन व्यक्ति ही समाज के कल्याण के लिए जीवन धारण करता था। सारे अधिकार केवल समाज को ही प्राप्त थे। व्यक्ति सर्वथा अधिकारविहीन था। प्राचीन समाज की मूलभित्ति अधिकार पर नहीं, किन्तु कर्तव्य पर थी। प्राचीन राजन्य वर्ग भी समाज का उसी प्रकार गुलाम था जिस प्रकार साधारण मनुष्य। प्रचलित परिपाटी का अतिक्रमण—सङ्गठन का विरोध—उनके लिए भी उतना ही

* Quoted by Genks—' Law and Politics in the Middle Ages, pp. 246 47. इस अवतरण के साथ मनुस्मृति के निम्न श्लोक की तुलना कीजिए:—

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्॥
मनुस्मृति—१, ३१॥

इस वेदोक्ति को भी स्मरण कीजिए:—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
ऋग्वेद १०, ९०, १२

† Law and Politics in the Middle Ages, p.247.

* History of Politics, p. 20.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिन था जितना किसी साधारण मनुष्य के लिए। वह भी समाज में अपना कर्तव्य उसी तरह पालन करता था जिस तरह साधारण मनुष्य।

परन्तु पाश्चात्य समाज ने पूर्वोक्त प्राचीन व्यवस्था का परित्याग करने का निश्चय किया और अपनी उद्देश-सिद्धि के लिए उसने कभी कभी विप्लवों और क्रान्तियों से भी काम लिया। पाश्चात्य समाज की मूल-भित्ति का आधार अब परिपाटी पर नहीं किन्तु स्वतन्त्रता, समझौता, आत्मरुचि या स्पर्धापरक है, वह इस समय अधिकतर प्रजातन्त्रात्मक है। उनके कर्तव्यवाद को छोड़ कर अधिकारवाद को अपनाया है। प्रजातन्त्र शासन और अवस्थिति में स्वाभाविक विरोध है। अतएव सर फ़्रेडरिक पोलक की सूचना* को स्मरण रखते हुए भी मेन का यह कथन कि पाश्चात्य समाज अवस्थिति के मंज़िलों को तय कर स्वतन्त्रता, स्वरुचि या समझौते पर आ पहुँचा है अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है। मेन लिखते हैं कि जिस स्थिति में मनुष्य का अधिकार वा कर्तव्य कुल वा वंश के साथ उसके सम्बन्ध-विशेष पर निर्भर था "इतिहास की उस हद से चल कर हम सामाजिक व्यवस्था के बाद उस स्थिति पर पहुँचते हैं जिसमें मनुष्य का पारस्परिक सम्बन्ध समझौते द्वारा उत्पन्न होता है......उदाहरणार्थ, ग़ुलामी की प्रथा अन्तर्द्धान हो गई है। इसके बदले मालिक वा नौकर का स्वरुचि-विशिष्ट सम्बन्ध पैदा हुआ है। प्राचीन समय में स्त्रियों को स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त थी। वे बालिग़ कभी नहीं समझी जाती थीं। क़ानून के अनुसार वे सदा शैशवावस्था में ही रहती हैं और अपने हित-अहित का निर्णय नहीं कर सकतीं। पुरुषों के अधीन रहना ही उनका कर्तव्य है। †

परन्तु वर्तमान समय में उनकी हीनावस्था का भी अन्त हुआ है। इसी प्रकार कुल-पति के अधीन पुरुषों का जोड़ा आधुनिक समय में प्राप्त नहीं होता। क़ानून के मत में यदि इस समय किसी बालिग़ सन्तान और उसके पिता के मध्य कोई सम्बन्ध है तो वह वही है जिसका जन्म किसी समझौता विशेष के द्वारा हुआ है।"*

अवस्थिति के विनाश का काम प्राचीन यूनान ने ही आरम्भ कर दिया था। परन्तु ईसाई धर्म के आविर्भाव से योरप के मध्ययुग में इस नई प्रवृत्ति का प्रायः लोप सा हो गया था और जातिवाद का साम्राज्य एक प्रकार से फिर क़ायम हो गया था। आधुनिक पाश्चात्य ने प्राचीन परिपाटी का ध्वंस किया। उसने जातिगत अधिकार और कर्तव्य का विनाश किया और उनके स्थान पर स्वतन्त्रता और स्वरुचि का अधिष्ठान हुआ।

कुछ दिनों तक पाश्चात्य देशों के विद्वान् और दार्शनिक स्वातन्त्र्यवाद और अधिकारवाद की तन्त्री बजाते रहे। परन्तु पीछे पाश्चात्य देशों ने देखा कि पूर्ण स्वतन्त्रता और विश्रृङ्खल स्पर्धा के स्थापित होने से भी जातियों का विनाश नहीं हुआ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय प्रभृति जातियों के स्थान पर इस नये युग में पूँजीवाले और निर्धन श्रमजीवी प्रभृति नई जातियों का जन्म हो गया है। एक लेखक कहता है, "आधुनिक समाज में प्राचीन मंसबदारी प्रथा-जनित (feudal) और नवीन पूँजी-मूलक-व्यवसाय-प्रसूत (capitalist industrialism) असमानताओं का समावेश हुआ है। कैथलिक मंसबदारी (Roman Catholic feudalism) की प्रथा में आज्ञा देने और उसके पालन करने का सिलसिला था। इसका सङ्गठन शक्ति और असत्य के बल पर प्रतिष्ठित था। पर ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि बड़ों के दिल में छोटों का ख़याल और छोटों के दिल में बड़ों का सम्मान

* See Note "L" to Maine's "Ancient Law."

† हमारे प्राचीन क़ानून में भी यही बात देख पड़ती है:—

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थावरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥
मनु० ९,३.

मनु के अनुसार स्त्री और पुत्र भी ग़ुलामों और अन्य वस्तुओं के सदृश कुलपति की सम्पत्ति हैं। उन्हें स्वयं कोई स्वत्व प्राप्त नहीं है; वे किसी सम्पत्ति के स्वामी नहीं हो सकते:—

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाऽधनाः स्मृताः।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम्॥
मनु० ८,४१६.

* Ancient Law, p. 173.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रथा की कठोरता को बहुत कुछ कम कर देता था। किन्तु आधुनिक व्यवसायवाद के प्रभाव से प्राचीन परिपाटी का आकार तो ज्यों का त्यों रह गया है, परन्तु पुरानी प्रथा की कठोरताओं को कम कर देनेवाली वस्तुओं का पूर्णतः विनाश हुआ है और इनके स्थान पर अन्धाधुन्ध स्वार्थ की अराजकता व्याप्त होगई है।"*

योरप के विद्वानों और दार्शनिकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। अब मिल और स्पेन्सर के अक्षत स्वातन्त्र्य और व्यक्तिवाद की बाँसुरी कोई नहीं बजाता। वहाँ की सरकारों का कार्य्य-क्षेत्र पहले की अपेक्षा इस समय बहुत अधिक विस्तृत हो गया है और वहाँ का समाज भी कुछ कुछ साम्यवाद की ओर झुक रहा है। हाबहौस सदृश विद्वानों को भी प्रजा-तन्त्र-शासन खटकने लग गया है। कौम्टे ने तो अपने 'आदर्श राष्ट्र' को प्राचीन स्थिति ही के ऊपर स्थापित करना चाहा है। योरप की क्रान्ति, वहाँ के अन्धाधुन्ध स्वार्थ की अराजकता, अशान्ति और राजाज्ञा-पालन में शिथिलता को देख कर काम्टे ने यह निर्णय किया कि प्रजातन्त्र-शासन उत्तम शासन नहीं है और अशान्ति, अभिद्रोह और अराजकता से बचने के निमित्त तथा मानव-समाज को स्थायी बनाने के हेतु मनुष्य को पुनः प्राचीन पद्धति का अवलम्बन करना होगा। वह कहता है कि जाति-प्रथा ही लोगों की अनिवार्य धन-तृष्णा को कम कर सकती है। अतएव काम्टे के आदर्श राष्ट्र में मनुष्यों का बहुत बड़ा अंश अधिकार-विहीन रक्खा गया है। काम्टे के आदर्श राष्ट्र में स्त्रियों और श्रमजीवियों को कोई अधिकार नहीं दिया गया है। प्राचीन समय में पुरोहित वर्ग शासन-शक्ति को नियन्त्रित रखता था, अतएव काम्टे के आदर्श-समाज में भी एक पुराहित जाति की रचना की गई है और यह जाति वैज्ञानिकों की है। शासन-शक्ति अपनी सीमा को उल्लङ्घन तो नहीं करती। इसके निरीक्षण का भार वैज्ञानिकों और दार्शनिकों को सौंपा गया है। इसके सिवा ये लोग नियम बनाने और शासन-कार्य में उसे उचित उपदेश दिया करेंगे और न्याय का पथ बतावेंगे। उसके आदर्श राष्ट्र में प्राचीन मंसबदारों के सदृश भी एक जाति बनाई गई है और यह जाति आधुनिक पूँजीवालों की है। यही नवयुग के क्षत्रिय और वैश्य होंगे। संसार से युद्ध के अन्तर्द्धान होने तथा समग्र शान्तिमूलक व्यवसाय-वाद के स्थापित हो जाने के कारण क्षत्रियों की कोई आवश्यकता नहीं रह जायगी। अतएव प्राधान्य वैश्यों ही का होगा। लड़ने-भिड़ने के बदले शान्तिपूर्वक समाज के धन की वृद्धि तथा ज्ञान-विज्ञान की उन्नति करना ही मनुष्यों का एक-मात्र कर्तव्य होगा। काम्टे कहता है कि अधिकारवाद घृणा, स्पर्धा और विश्लेषण का मूल-मन्त्र है, शान्ति, उन्नति और संश्लेषण का नहीं। क्या शान्ति और उन्नति से भी उत्तम मनुष्य के लिए कोई ध्येय हो सकता है? जब से यूनान में प्राचीन जाति-प्रथा का विरोध आरम्भ हुआ है तब से मानव-समाज विप्लवमयी अवस्था में है। इस अवस्था के अन्त होने पर जन्म-सिद्ध जातियां फिर क़ायम हो जायँगी और समाज की स्थिति अधिकार पर नहीं, बरन कर्तव्य पर होगी। उदारमना श्रेष्ठ पुरुष ही समाज के हिताहित और मङ्गलामङ्गल का निर्णय करेंगे और समस्त समाज उनका आज्ञापालन करेगा।

क्या पाश्चात्य पुनः प्राचीन परिपाटी का अवलम्बन करेगा? भविष्यद्वाणी बहुत कठिन है और ज्योतिषियों की बातें प्रायः मिथ्या सिद्ध होती हैं। तो भी यदि पाश्चात्य देशों का इतिहास, वहाँ के लोगों का मानसिक भाव तथा घटनाओं की प्रगति को देख कर यदि कोई निश्चय करना चाहे तो वह अवश्य यही राय स्थिर करेगा कि पाश्चात्य देश फिर प्राचीन संस्था की शरण न लेगा। जिन अधिकारों को उसने इतने आत्मोत्सर्ग द्वारा प्राप्त किया है—जिस प्रजा-तन्त्र को उसने इतना रक्त बहा कर उपलब्ध किया है—उसे वह शीघ्र ही न उत्सर्ग कर देगा।

अरस्तू का कथन है कि सबसे प्राचीन शासन-पद्धति एकाधिकार मूलक (Monarchical) होती है। परन्तु राजा के हृदय में स्वार्थ के जन्म-ग्रहण करने तथा उसके अन्याय और अत्याचार करने पर कुलीन-सत्तात्मक (Aristocratic) शासन-पद्धति का आविर्भाव होता है। पश्चात्, इन लोगों के भी स्वार्थ के वशीभूत होने पर प्रजासत्तात्मक (Democratic) शासन-पद्धति जन्म-ग्रहण करती है। जब तक प्रजा-वर्ग के हृदय में पर-

* The Liberal State—by Thomas Whittaker, p. 112.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पर के अधिकारों का सम्मान बना रहता है, जब तक वह क़ानून को पवित्र और आदरणीय समझ कर पालन करता रहता है तब तक प्रजातन्त्र राज्य स्थायी रहता है। परन्तु इन गुणों के नष्ट होने पर वह राज्य तितिर-बितिर हो जाता है और पुनः सीज़र और नेपोलियन के सदृश नरसिंह राष्ट्र की बागडोर को अपने हाथों में ले लेते हैं। इस प्रकार एकाधिकार-मूलक राज्य-पद्धति की स्थापना फिर हो जाती है। इसके बाद फिर क्रम से कुलीन-जन-सत्तात्मक और प्रजासत्तात्मक राज्यों की उत्पत्ति होती है और यह सिलसिला इसी प्रकार जारी रहता है।* अरस्तू की यह भविष्यद्वाणी—प्राचीन यूनान में चाहे जहाँ तक घटित हुई हो—आधुनिक योरप में चरितार्थ नहीं हो सकती। प्राचीन यूनान और आधुनिक योरप में बड़ा अन्तर है। प्राचीन यूनान की सी शासन-व्यवस्था इस समय योरप में कहीं नहीं है, आधुनिक प्रजातन्त्रों और प्राचीन यूनान के प्रजातन्त्रों में बड़ा अन्तर है। अतएव यह अनुमान करना कि योरप में पुनः जाति-प्रथा का प्रचार होगा, बिलकुल निराधार प्रतीत होता है।

अभी ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि कामटे के सिद्धान्तों पर पाश्चात्यों का ध्यान गया है। वर्तमान समय में पाश्चात्य राष्ट्रों के मिल और स्पेन्सर के सिद्धान्तों के अनुसार व्यवहार न करने तथा साम्यवाद की ओर कुछ कुछ झुकने से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि वे पुनः प्राचीन संस्था को स्थापित करेंगे। वास्तव में पाश्चात्यों की यह नई प्रवृत्ति भी प्रजासत्तात्मक शासन का ही फल है। साम्यवादियों को भी यथार्थ में समानता ही का पक्षपाती कहना चाहिए। वे भी यही चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य समस्त राष्ट्रीय धन का उपयोग समान रूप से करे, कहीं अन्याय और असमानता शेष न रह जाय। समानता, स्वतन्त्रता और न्याय यही तीन बातें प्रजा-सत्तात्मक शासन की जान हैं न ? तब फिर सामाजिक असमानताओं के हटाने की चेष्टा को—अभीष्ट लाभ करने के लिए सबको समान अवसर देने के प्रयत्न को—हम प्रजाधिकार मूलक शासन के विरुद्ध कैसे ठहरा सकते हैं ? निस्सन्देह राष्ट्र को व्यक्तिगत कामों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए एवं स्वेच्छा और स्वतन्त्रतापूर्वक लोग जो समझौता करें—जो सम्बन्ध परस्पर स्थापित करें—उसे दृढ़ करना चाहिए। निस्सन्देह परस्पर का समझौता पवित्र है और उसका दृढ़ीकरण राष्ट्र का कर्तव्य है, पर क्या राष्ट्र यह नहीं देख सकता कि समझौते के समय उभय पक्ष के लोग समान बुद्धि और विचार से युक्त थे या नहीं तथा उसके करने में किसी को भ्रम तो नहीं हुआ है—किसी को धोखा तो नहीं दिया गया है तथा किसी की मूर्खता या अज्ञानता से अनुचित लाभ तो नहीं उठाया गया है ? * अथवा किसी पर दबाव तो नहीं डाला गया है ?

पाश्चात्य लोग जो कुछ चाहे करें—अपने समाज को चाहे जिस प्रकार सङ्गठित करें, परन्तु यह प्रश्न इस समय हमारे लिए बड़े महत्त्व का है। यह केवल विद्वत्-परिषद् का प्रश्न नहीं है—विद्वानों के तर्क-वितर्क की वस्तु नहीं है। हमें अपने व्यावहारिक जीवन में अति शीघ्र इससे सामना करना है। हमारा समाज अभी तक जाति-प्रथा के ऊपर दण्डायमान है, यद्यपि उसमें अब पूर्व समय जैसी दृढ़ता शेष नहीं रह गई है। यद्यपि क़ानून की दृष्टि में सब कोई बराबर हैं और प्रत्येक व्यक्ति को क़ानून सब काम करने का अधिकार प्रदान करता है, तथापि हम नहीं कह सकते कि प्रत्येक मनुष्य के सामाजिक अधिकार बराबर हैं और मनुष्य के ऊँची या नीची जाति में जन्म लेने के कारण उसे अपने व्यावहारिक जीवन में कोई लाभ या हानि नहीं होती। नहीं, हमारे हिन्दू लॉ में भी अभी तक जाति-जनित असमानता स्थल स्थल पर स्पष्ट रूप से झलक रही है। वर्ण-विभेद को क़ानून भी कहीं कहीं मानता है।

परन्तु पाश्चात्य-स्वतन्त्रता का झोंका भारतवर्ष में भी पहुँच गया है। इस समय भारत में भी प्रजा-तन्त्रात्मक शासन का भाव जागृत हुआ है। अतएव उसे अपने सामाजिक सङ्गठन को बदलना पड़ेगा। ऊपर बताया गया है कि प्रजा-सत्तात्मक शासन और जाति-प्रथा में भारी विरोध है। एक का अस्तित्व अधिकारवाद पर है तो दूसरे का कर्तव्यवाद पर—एक स्वतन्त्रता का आश्रय लेता

* See Aristotle's Politics—Jowetts' English translation Book III esp. ch. XV; and Woodrow Wilson—"The State" §§ 1395—97

* Cf. The Liberal State, p. 137.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तो दूसरा आज्ञापरक है—एक का लक्ष्य समानता पर है तो दूसरा सब लोगों को समान अधिकार नहीं देता। हमें याद रखना होगा कि शासन-संस्था या देश की सरकार मानव-समाज के कार्य निर्वाहक अवयव के समान हैं। उससे समाज का स्वभाव—उसकी इच्छा—कार्य में परिणत होती है—बाह्य और कार्य्यात्मक स्वरूप धारण करती है। उससे समाज अपने आपको अपनी परिस्थितियों के अनुकूल बनाता है और अपने अभीष्ट को प्राप्त करने—अपने जीवन को पूर्ण बनाने—का प्रयत्न करता है। समाज और गवर्नमेंट में घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गवर्नमेंट का जन्म होता है। अतएव सामाजिक आवश्यकता के ही अनुसार गवर्नमेंट का भी स्वरूप होता है। यदि हम प्रजा-सत्तात्मक शासन की कामना रखते हैं तो हमें अपने समाज को उसके उपयुक्त बनाना पड़ेगा। इसके बिना प्रजा-सत्तात्मक स्वराज्य का पदार्पण नहीं हो सकता। हम समाज में जातिवादी हों और राजनीति में प्रजातन्त्रवादी, यह बात असम्भव है। हम अपने समाज में तो श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम तथा लघु, लघुतर, और लघुतम का क्रम बनाये रक्खें, परन्तु राजनीति में समानता के पक्षपाती हों यह कैसे सम्भव हो सकता है?

जो देखना चाहे वह देख सकता है कि भारत जाति-प्रथा की कठोरता को कम करने की ओर कुछ कुछ अग्रसर भी हुआ है। देश के नेता बड़ाई-छुटाई के ख़याल को हटाने तथा वास्तविक भ्रातृभाव स्थापन करने के लिए उपदेश दे रहे हैं। यदि देश की यही प्रगति रही तो कुछ दिनों में जाति-प्रथा का वर्तमान स्वरूप भी न रह जायगा। इस देश से जाति-प्रथा का लोप हो जाना साधारण बात नहीं है। शताब्दियों से भारत में इस प्रथा का अस्तित्व है, क्या उसके लिए इस प्रथा का परित्याग अच्छा है? इसका उत्तर देना मानों यह निर्णय करना है कि समाज के जिन दो आदर्शों का उल्लेख अभी हो चुका है उनमें से कौन सा श्रेष्ठ है?

जाति-प्रथा के गुणों का वर्णन ऊपर हो चुका है। इसका विशेष गुण समाज का स्थायित्व है। ऐसी सामाजिक प्रथा से समाज आन्तरिक झगड़ों से निरापद रहता है। लोगों में ईर्ष्या और घृणा की आशङ्का नहीं रहती और लगातार वंशानुक्रमागत कार्यों के करते रहने से उनकी कार्यदक्षता भी बढ़ जाती है और समाज के प्रत्येक काम का सम्पादन निपुणता के साथ किया जा सकता है। इस प्रथा से समाज अधिक समुन्नत भी हो जाता है। संसार की प्राचीन सभ्यताओं पर दृष्टिपात करने से इस कथन की सत्यता सिद्ध हो जाती है। भारत के अद्भुत दर्शन-शास्त्र को देखो। प्राचीन मिस्र, खुल्द, बैबिलान प्रभृति के ज्ञानोपार्जन का स्मरण करो। अलैकजैन्ड्रिया के कौतुकागार और पुस्तकालय को, मिस्र के स्तूपों, फ़ारस की सुन्दर चारदीवारी, प्राचीन बैबिलोन के मध्याकाश में लटकनेवाले बाग़ीचे, इन देशों की भौतिक उन्नति, सुख-सौन्दर्य्य और समृद्धि तथा इन देशों के भौतिक विज्ञान की वृद्धि की याद करो। इसी लिए काम्टे ने पुनः प्राचीन पद्धति की संस्थापना का सिद्धान्त निश्चित किया है।

क्या शान्ति और उन्नति (order and progress) से भी बढ़ कर मनुष्य के लिए कोई दूसरा आदर्श हो सकता है? प्रेम को मूल मन्त्र मान कर, शांति को साधक बना कर उन्नति पथ पर अग्रसर होने से भी बढ़ कर क्या कोई दूसरा ध्येय हो सकता है? (Love the Principle, Order the Basis, Progress the End)

जाति-प्रथा के विरोधी—समानता के पक्षपाती—कहते हैं कि शान्ति और उन्नति से श्रेष्ठ एक दूसरा महामन्त्र है। क्या शान्ति और उन्नति के स्थान पर न्याय और स्वतन्त्रता का मन्त्र नहीं जपा जा सकता है? क्या स्वतन्त्रता को अन्तिम लक्ष्य समझ कर न्याय के पथ पर चलना उत्तम ध्येय नहीं प्रतीत होता है? शान्ति तभी सन्तोषजनक प्रतीत हो सकती है जब वह उत्तम और न्यायसम्मत हो। उन्नति उसी समय प्यारी लग सकती है जब वह स्वतन्त्रता की बैरिन न हो। जाति-प्रथा में मनुष्य का आत्मसम्मान लुप्त हो जाता है; वह गुलाम बना रहता है। इस प्रथा के जाल में मनुष्य छत्ते की मधुमक्खियों के सदृश दीख पड़ते हैं। मनुष्य का स्वाभाविक गौरव प्रस्फुटित नहीं होने पाता। या यों कहें कि मनुष्य निष्प्राण यन्त्रों की अवस्था में परिणत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता है। वह प्राण-हीन कठपुतलियों की भांति कार्य-सम्पादन करता है। प्रथा से आबद्ध पराधीन मनुष्य के सुख का भी ख़ून होता है, क्योंकि सुख स्वतन्त्रता में ही है। यही नहीं, बलवानों और ऊँची जातियों को अत्याचार करने का अवसर भी ख़ूब प्राप्त होता है। उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। हमारे समाज में इसके अनेक प्रमाण विद्यमान हैं। नैतिक दृष्टि से भी यह प्रथा निन्द्य है। हमें किसी को सदा के लिए हीन स्थिति में रखने तथा उसे मनोवाञ्छित कार्यों के करने से रोकने का क्या अधिकार है? समाज के किसी अंश को—बहुतांश ही को क्यों न सही—उसके किसी दूसरे अंश के लिए अपने हित-साधन का यन्त्र बनाने का क्या अधिकार है?

स्वाभाविक स्वातन्त्र्य के अपहरण होने के कारण इस प्रथा के प्रभाव से मनुष्य की प्राकृतिक शक्तियों का विकास नहीं हो पाता। मिल के तर्कों में कुछ अत्युक्ति हो सकती है, परन्तु उसका कहना कई अंशों में सर्वथा सत्य है। मिल ने कहा है कि मनुष्य-स्वभाव ऐसी वस्तु नहीं है जिसे साँचे में ढाल कर किसी दिये हुए नमूने का स्वरूप—मनमाना रूप—दिया जा सके बरन् मनुष्य-स्वभाव एक वृक्ष के सदृश है, जिसे उसकी आन्तरिक प्रवृत्तियों—उसके धर्म—के अनुसार चारों ओर बढ़ने और फैलने की आवश्यकता है। मनुष्य-स्वभाव जड़ नहीं, बरन् चेतन वस्तु है।* इस प्रथा के अन्दर रहते हुए मनुष्य का व्यक्तिगत बुद्धि-चमत्कार, उसके गुण और उसकी योग्यता कोई भी वस्तु उसे अपने पिता की जाति या पदमर्यादा से ऊँचे नहीं ले जा सकती। जन्म-सिद्ध सङ्कुचित कार्यक्षेत्र के भीतर ही रह कर वह अपनी योग्यता का परिचय दे सकता है।

इस प्रथा के कारण प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन के अनुसार उन्नति करने का अवसर प्राप्त नहीं होता। फलतः समाज वास्तव में दरिद्र हो जाता है। वह मरुभूमि सा बन जाता है। उसमें गुणोत्कर्ष का प्रस्फुटन नहीं हो सकता। यह प्रथा मौलिकता का शत्रु है।

नानात्व और असादृश्य ही में जीवन है—इसी में जीवन का सौन्दर्य है। परन्तु यह प्रथा लोगों को बलात्कार एक ही प्रकार का बनाना चाहती है। मिल ने सच ही कहा है कि यह प्रथा मनुष्य-स्वभाव के प्रत्येक अंश को चीनी स्त्रियों के पैर के समान छोटा बनाती है।

इन बातों को और भी स्पष्ट करने के लिए स्वामी विवेकानन्द के एक पत्र का कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है—इस प्राणघातिनी प्रथा के कुपरिणामों का ज्वलन्त उदाहरण हमारा देश है। भारत-समाज व्यक्ति को रत्ती भर भी आज़ादी नहीं देता। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त वह नियम के बन्धनों से जकड़ा रहता है। यहाँ मनुष्य शास्त्रोक्त नियम के अनुसार जन्म लेता, उसी के अनुसार जीवन व्यतीत करता और नियमानुसार मरता भी है। उसके जन्म लेने के पूर्व ही उसका स्थान समाज में निर्द्धारित रहता है। परम्परा उसे अपना स्थान नहीं बदलने देती। समाज की जिस श्रेणी में वह पैदा होता है उसी में वह मरता भी है। उसका सारा जीवन नियमों ही द्वारा सञ्चालित होता है। खान-पान, आहार-विहार इत्यादि सब कुछ वह शास्त्र-नियमानुसार ही करता है। उसके भोजनाच्छादन, विवाह-सन्तानोत्पादन, चलने-फिरने, हँसने-रोने इत्यादि सभी बातों के लिए शास्त्रीय नियम विद्यमान हैं। हाथ धोने तथा दातून करने के लिए भी क़ायदे निर्द्धारित हैं। इन नियमों के पालन से हानि के सिवा कुछ लाभ नहीं होता। यदि कुछ उपकार होता है तो यही कि बहुत समय तक एक ही प्रकार के कामों को करते करते मनुष्य को अभ्यास पड़ जाता है और वह उन कामों को बड़ी सुगमतापूर्वक बिना कुछ कठिनाई अनुभव किये हुए कर सकता है। जो दाल, भात, तरकारी यहाँ का एक साधारण आदमी तीन ढेले मिट्टी और दो-चार लकड़ियों की सहायता से बना सकता है वह और कहीं नहीं हो सकता। किसी कल-पुर्ज़े की सहायता के बिना स्वयम्भू मनु के समय से प्रचलित चरखे द्वारा, जिसका मूल्य एक रुपये से अधिक नहीं होता, जो बीस रुपये गज़वाला किमख़ाब यहाँ तैयार हो जाता है वह और कहीं नहीं बन सकता। एक फटी चटाई, रेंड़ी का तेल का दिया और अन्यान्य ऐसी ही ऐसी वस्तुओं द्वारा विचित्र ज्ञानशील महात्मा और पण्डित इसी देश में तैयार होते हैं। एक महान् कुरूपा अथवा स्वयं काली के समान विकराल शकलवाली स्त्री के साथ विवाह-धर्म निवाहने का उदाहरण आपको केवल

* Liberty—(Every Man's Library Series) p. 117.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी देश में मिलेगा। लम्पट, कुरूप और अत्यन्त कुमार्गी पति के साथ प्रेम-व्यवहार करने का उदाहरण भी आपको यहीं मिलेगा। लेकिन ये सभी काम कलों की भांति निर्जीव मनुष्यों द्वारा सम्पादित होते हैं। उनमें न तो कुछ मानसिक उत्तेजना उत्पन्न होती है, न हृदय का कुछ विकास होता, न आशा की नदी उमड़ती और न श्रद्धा तथा प्रबल इच्छा की तुङ्ग तरङ्गें ही समुत्थित होती हैं। और न अत्यन्त आह्लाद तथा दुःसह दुःख का ही अनुभव होता है।*

सारांश यह कि हम एक निर्जीव यन्त्र हैं। जीते-जागते मनुष्य होने के बदले हम मनुष्याकार जैसी कठपुतलियां हैं, जिन्हें समाज-नियम यथार्थ कठपुतलियों की भांति नचाते फिरते हैं। नई चीज़ों के आविष्कार करने तथा उनके पीछे दौड़ने की इच्छा हमारे हृदयस्थल में अङ्कुरित नहीं होती। हमारा मस्तिष्क सदा मेघाच्छन्न और अन्धकार-मय रहता है। सुख और प्रेम, आनन्द और सौन्दर्य्य का अनुभव हम कभी नहीं करते। प्रभातारुणोदय की हृदय-हारक छटा का प्रभाव हमारे हृदय-पटल पर कुछ भी नहीं पड़ता। मृदु मन्द सुगन्ध-पूरित मलय समीर भी हमारे मुरझाये हुए हृदय-कमल को विकसित नहीं कर सकता। शुभ्र शशि की अनिर्वचनीय, हृदय-हारिणी, जड़-चेतन सभी को हँसानेवाली हँसी भी हमें नहीं हँसा सकती। अमृत-प्रवाह में मज्जन करने से भी हम नवजीवन प्राप्त नहीं कर सकते। नन्दन कानन का स्वर्गीय सौरभ भी हमारे पाषाण-हृदय में प्रेमोच्छ्वास उत्थित नहीं कर सकता। विहङ्ग का कलरव तथा मत्त अलिगण के गुञ्जार से भी हमारे हृदय में कोई नये भाव नहीं उठते। इस अद्भुत संसार में हमें कुछ शोभा नहीं दीख पड़ती तथा अपने ही समान हम समस्त संसार को भी यन्त्रवत् ही अनुमान करते हैं। हमें अपने जीवन से कुछ प्रेम नहीं है। वह हमें कुछ आनन्द नहीं प्रदान करता। ज्यों त्यों करके अपना जीवन समाप्त कर देना ही हमारा चरम उद्देश है।

हम स्वतन्त्रता और समानता के पक्षपाती हैं। हम जाति का विरोध करते हैं। इसका अर्थ यही है कि अपने स्वभाव और धर्म के अनुसार हम सबको उन्नति करने का समान अवसर देना चाहते हैं—अत्याचार को दूर करना चाहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम सबको समान बनाना चाहते हैं। याद रखना होगा कि प्रकृति में समानता नहीं है तथा प्रकृति ने प्रत्येक मनुष्य को समान नहीं पैदा किया है। अतएव हज़ार प्रयत्न करने पर भी असमानता मौजूद ही रहेगी। यदि समाज की सारी सम्पत्ति आज समस्त मनुष्यों में बराबर बराबर बांट दी जाय तो भी कल ही असमानता फिर उत्पन्न हो जायगी। यदि किसी मनुष्य में अधिक बल, बुद्धि, विद्या अथवा ज्ञान है, यदि कोई मनुष्य स्वप्रयत्न और न्याययुक्त उपायों से धनवान् हो गया है तो हमारा उससे द्वेष करना उतना ही व्यर्थ है जितना किसी आरोग्य और स्वस्थ मनुष्य से उसके अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए द्वेष करना। आदर्श समाज में योग्य पुरुषों को उचित स्थान मिलना चाहिए। न्याय का वही सिद्धान्त, जो हमें प्रजातन्त्रात्मक शासन तथा सामाजिक स्वतन्त्रता की ओर खींच ले जाता है, हमें यह भी आदेश देता है कि स्वभावतः श्रेष्ठ पुरुषों का यथेष्ट आदर और सम्मान किया जाय तथा उनकी श्रेष्ठता के उपयुक्त उनको स्थान दिया जाय। अत्याचार अत्याचार ही है चाहे उसका करनेवाला ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र हो। मज़दूरों, श्रम-जीवियों और शूद्रों द्वारा किये गये अत्याचार भी उतने ही कटु हैं जितने ब्राह्मणों, क्षत्रियों या वैश्यों द्वारा किये गये अत्याचार। दोनों ही न्याय के विरुद्ध हैं। अतएव सर्वसाधारण के लिए श्रेष्ठ पुरुषों का सम्मान करना नितान्त आवश्यक है। निस्सन्देह वह समाज क्षण-मात्र भी नहीं टिक सकता जिसमें बड़ों के प्रति सम्मान और प्रतिष्ठा का भाव एक-दम नष्ट हो गया है। अतएव जातिवाद और अधिकारवाद में सन्धि होने की आवश्यकता है। अधिकार के साथ कर्तव्य का भी सम्मेलन होना चाहिए। प्राच्य और पाश्चात्य में मित्रता की ज़रूरत है। समाज के दोनों आदर्शों में जो अपूर्णता है, उसे हटाने का प्रयोजन है। न्याय ही प्रजासत्तात्मक शासन-पद्धति की मूल भित्ति है। पक्षपात का विरोध करने के लिए ही इस संस्था की उत्पत्ति हुई है। अतएव स्वभावतः श्रेष्ठ पुरुषों के साथ भी अवश्य न्याय का व्यवहार किया जाना चाहिए और उनका

* Complete Works of Swami Vivekananda (Mayavati Memorial Edition), pt. IV, p 976.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथेष्ट आदर करना चाहिए। घृणा और ईर्षा से काम नहीं चल सकता। प्रत्येक मनुष्य को समान अधिकार है इसके साथ ही हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य समान नहीं है।

यदि पाश्चात्य मनुष्य इस साधारण बात को स्मरण रखते तो वहां रक्त की नदियां न बहतीं, वहां के सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलन इतना भयङ्कर रूप न धारण करते। वहां की साधारण जनता व्याघ्र के समान हिंसक-प्रवृत्ति की न होती।

अतएव भारत के समाज-सुधारकों को यह बात स्मरण रखने की बड़ी आवश्यकता है कि सामाजिक असमानताओं और भेद-भावों के हटाने का सहज साधन क्रान्ति नहीं है। यथार्थ काम प्रेम से होता है, घृणा से कुछ भी नहीं। घृणा की प्रतिक्रिया घृणा ही होती है और इसका परिणाम होता है विप्लव। जाति-प्रथा की ही बदौलत किसानों और मज़दूरों के इतने दरिद्र होने पर—उन्हें एक शाम भर पेट भोजन न मिलने पर, कुछ जातियों के अस्पृश्य होने पर तथा उनके पशुओं से भी तुच्छ अनुमान किये जाने पर—भारत को अभी तक विप्लव, रक्तपात, घृणा और युद्ध का सामना नहीं करना पड़ा है। हमें सदा यह देखते रहना चाहिए कि भारत में पाश्चात्य देशों जैसी अवस्था न उपस्थित हो जाय। इसलिए हमें धैर्य से काम लेना होगा, हमें धीरे धीरे अपना काम करना होगा। क्रान्तियों और विप्लवों से यथार्थ सामाजिक उन्नति नहीं होती।

यदि जाति-प्रथा बुरी वस्तु है तो पाश्चात्य देशों की वर्तमान विश्रृङ्खल स्पर्धा भी आदर की वस्तु नहीं है। यदि एक का परिणाम हमारे समाज का पिछड़ जाना और अनुन्नतशील होना है तो दूसरे का परिणाम रक्तपात, घृणा, विद्रोह, क्रान्ति और विप्लव है। इन दोनों में किसी से काम न चलेगा। आदर्श समाज में इन दोनों के संश्लेषण की आवश्यकता है। हम यह नहीं कहते कि आवश्यकता पड़ने पर भी हम प्राचीन परिपाटियों के बदलने का प्रयत्न न करें और लकीर के फ़क़ीर बने रहें। नहीं, कदापि नहीं। प्राणि-शास्त्र के इस सिद्धान्त की अवहेलना नहीं की जा सकती कि जीवित रहने के लिए जीवधारियों को परिवर्तित परिस्थिति के अनुकूल बनना ही पड़ेगा अन्यथा वे जीवित ही नहीं रह सकते। मैं केवल इतना ही स्मरण करा देना चाहता हूँ कि भूत और भविष्य में अभेद्य सम्बन्ध है और यथार्थ उन्नति के दुर्ग का निर्माण भूत की ही दीवारों पर हो सकता है।

गोवर्द्धनलाल

अमरीकावासियों की भाषा में लिङ्ग-विचार।



जो मनुष्य अन्धे लड़के का नाम "कमल लोचन" रखता है वह सर्व-साधारण में उपहासास्पद होता है। यह जान कर भी हम लोग पुत्र-कन्या के नामकरण के समय यह बात भूल जाते हैं कि हमारे अधिकांश नाम की सार्थकता ही नहीं है। अनेक समय देखा जाता है कि 'करुणामय' या 'दयालचाँद' नाम से विभूषित आदमी इस नाम के विपरीत धर्म का ही आधार होता है। परन्तु भाषा-सृष्टि के प्रथम युग में जब वस्तु अथवा व्यक्तियों का नामकरण आरम्भ हुआ तब नामकरण की प्रथा ऐसी नहीं थी। क्योंकि वस्तु-विशेष को प्रकट करने के लिए ही भाषा निर्मित हुई है। भाषा का कार्य ही है 'भाषण' 'बतला देना'; भूल समझा देना या आधा बोलना भाषा का काम नहीं है। यदि किसी वस्तु में एकाधिक भाव या लक्षण का समावेश हो तो सभ्य जाति की भाषा में उन भावों और लक्षणों में से किसी एक भाव या लक्षण को लेकर उस वस्तु का नामकरण हो जाता है। यथा 'हस्ती' और 'केसरी' शब्दों में। नर या वानर का हाथ रहने पर भी 'हस्ती' शब्द से उनकी अभिव्यक्ति नहीं होगी। अश्व का केसर रहने से भी वह केसरी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

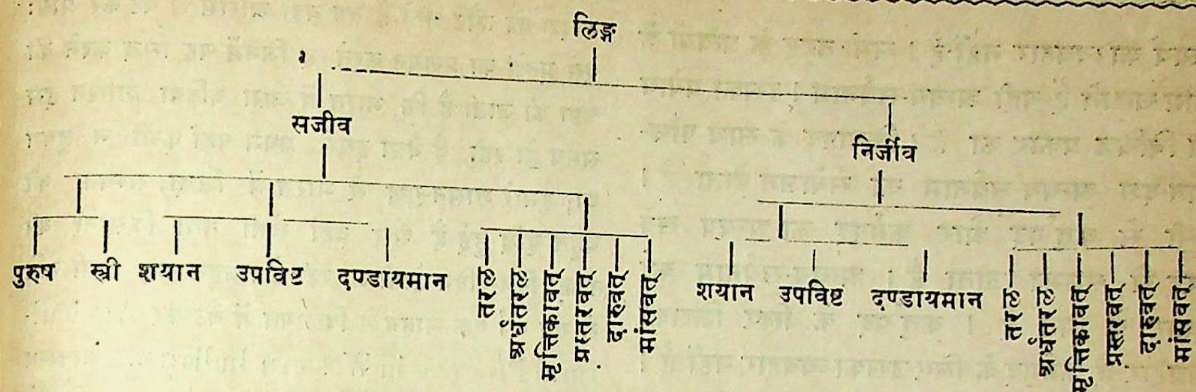
है। यहाँ नामकरण-प्रणाली का वैशिष्ट्य यह है कि यदि किसी वस्तु का भाव या उसके लक्षणों की समष्टि क+ख+ग हो तो केवल-मात्र 'क', अथवा 'ख', अथवा 'ग' लक्षण से उसका नाम हो सकता है। परन्तु जिसमें तीन लक्षण हैं, एक-मात्र लक्षण से उसके भाव का आंशिक प्रकाश होता है; समग्र नहीं। पुनश्च एक-मात्र लक्षण परिग्रहण करने से वह प्रधान लक्षण होगा, इसका भी कोई कारण नहीं है। पूर्वोक्त उदाहरण-द्वय में अप्रधान लक्षण का ही परिग्रह हुआ है। वैसे ही 'कुर्सी का हाथ', 'पलँग का पाया' आदि में 'पाया' शब्द के अर्थ से यदि 'चलन शक्ति' का अपरित्याज्य सम्पर्क हो तो पलँग का पाया नहीं हो सकता है। 'कर्म कारिता' हाथ का प्रधान लक्षण माना जाय तो चेयर का भी हाथ नहीं है। सुतराम् अप्रधान लक्षण से वस्तु का नामकरण सभ्य भाषा का एक लक्षण है। भाषा-सृष्टि के प्रथम सोपान में नामकरण-पद्धति ऐसी थी कि वस्तु-विशेष द्वारा प्रकाश्य समग्र भाव को स्फुट कर देना पड़ता था। क्रमशः नर-जाति की उन्नति के साथ साथ वस्तु-प्रकाश्य लक्षण-समष्टि से कुछ ही परिगृहीत होने लगे; अर्थात् प्रधान लक्षण से वस्तु का नामकरण अनुमोदित हुआ। फिर अप्रधान लक्षण से भी वस्तु का नामकरण प्रचलित हुआ है। असभ्य या अर्ध-सभ्य जाति के लिए वस्तु के नामकरण में उसके मुख्य-भाव का वर्जन करना दुःसाहस है।

अमरीका के आदिम अधिवासियों की भाषा में नामकरण-प्रणाली का वैचित्र्य यह है कि वे लोग वस्तु के यावतीय लक्षण तथा समग्र धर्म को एकत्र करने के लिए बहुत कोशिश करते हैं। इसी लिए उनकी भाषा में असंख्य भाव और लक्षणों का समावेश (extreme connotive-ness of many qualities and characteristics) परिलक्षित होता है। अमरीका की भाषा का यही प्रधान लक्षण है। वे लोग जैसे अपनी चित्र-लिपि में बहु वाक्य-प्रकाश्य भाव को समग्र रूप से प्रकाशित करते हैं, वैसे ही भाषा में भी बहुतेरे भावों और लक्षणों को एकत्र कर देते हैं। वे लक्षणों में प्रधान-अप्रधान का भेद नहीं कर सकते हैं; अप्रधान भाव का वर्जन तो कभी नहीं होता। उनकी भाषा-रचना और चित्र-रचना एक ही प्रकार की है। चित्र-रचना में अवान्तर लक्षण भी नहीं छोड़ दिया जाता है। समूचे शरीर में जहाँ जो कुछ है चित्र में उसका प्रकाश होना चाहिए। अमरीका की भाषा में भी यही बात है।

अमरीका के आदिम लोगों के विचित्र लिङ्ग विचार का भी वही एक लक्षण प्रधान है—भाव बाहुल्य। इनके लिङ्ग-वाचन को समझने के लिए हमको यह एक-दम भूल जाना पड़ेगा कि लिङ्ग से भाषा में पुं-स्त्रीत्व-वाचन होता है। पुं-स्त्रीत्व-वाचन इनकी भाषा का अति अप्रधान लक्षण है। कभी पुं-स्त्रीत्व-वाचन होता है, कभी नहीं होता है; और यह होने में कुछ हर्ज भी नहीं है। परन्तु लिङ्ग के विचार में पहले पहल यह सोचना पड़ता है कि कोई वस्तु सजीव है या निर्जीव। सजीव वस्तु या प्राणी का पुं-स्त्रीत्व-वाचन भी कभी कभी होता है। वस्तु की सजीव-निर्जीवता का विचार कर लेने के बाद यह सोचना पड़ेगा कि वह **दण्डायमान** है या **शयान** है अथवा **उपविष्ट**। इसके बाद यह विचारणीय होगा कि उसका गठन कैसा है। छः प्रकार के गठन (आकृति) इनके लिङ्ग-वाचन में कल्पित हुए हैं।—(१) **तरल** (watery), (२) **अर्धतरल** (mushy or pulpy), (३) **मृत्तिकावत्** (earthy), (४) **प्रस्तरवत्** (stony), (५) **दारुवत्** (woody) और (६) **मांसवत्** (fleshy)। इनके लिङ्ग-वाचन का क्रम आगे के नक़्शे में परिस्फुट किया जाता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अतएव पुं-स्त्रीत्व-वाचन को छोड़ देने से भी इनकी भाषा में विभिन्न लिङ्गों की संख्या अठारह है। पुरुष और स्त्री को लेकर होंगे बीस। एक उदाहरण देखिए। हम लोग बोलते हैं—उसने एक ख़रगोश को (hare) मारा है। इतने ही से हम वाक्य-रचना करके समग्र भाव को प्रकाशित कर लेते हैं। वह कैसा आदमी है? किस अस्त्र से मारा है? ख़रगोश कैसा है? इत्यादि बातें न पूछ कर भी हम इस वाक्य के भाव को समझ लेते हैं। मगर अमरीकावासी इतने ही में बात नहीं समझेगा। उसके वाक्य की रचना ऐसी होगी—

"वह—एक--सजीव---मांसवत्---दण्डायमान—कर्तृपद इच्छापूर्वक—बाण से—मार डाला ख़रगोश—वह—एक—सजीव—मांसवत्--उपविष्ट--कर्मपद।"

बिना इतनी बातें कहे अमरीकावासी का भाव व्यक्त नहीं होता है। केवल एक-मात्र 'वह' पद से कर्तृत्व का भाव नहीं स्फुट होगा। पहले उसको यह समझाना चाहिए कि वह 'वह' एक-वचन है या द्विवचन है, अथवा बहुवचन है। उसके बाद जानना होगा कि वह 'वह' सजीव-लिङ्ग या निर्जीव-लिङ्ग है। फिर सोचना चाहिए कि वह दण्डायमान है, या शयान है, अथवा उपविष्ट है। उसका अवस्थान जान लेने के बाद फिर सोचना चाहिए कि उसका गठन कैसा है, तरल, अर्धतरल, मृत्तिकावत्, प्रस्तरवत्, दारुवत्, अथवा मांसवत्। ये सब जान लेने के बाद कर्तृपद का प्रत्यय उसके साथ जोड़ा जायगा। तब समग्र भाव स्फुट होगा। किसी किसी भाषा में पुं-स्त्रीत्व-वाचन भी होता है। हिन्दी 'वह' पद के लिए अमरीका की भाषा में इतनी रचना करनी पड़ेगी। फिर क्रियापद में भी बहुत सोचना है। कार्य में इच्छा थी या नहीं थी, यह भी जानना चाहिए। मारने का साधन क्या था, यह भी बतलाना होगा। कर्मपद भी कर्तृपद के अनुरूप होगा।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये लोग सार और असार की भेद-कल्पना नहीं कर सकते हैं। इनके लिए असार को छोड़ कर सार वस्तु का वाचन सम्भव नहीं है। इसी लिए सार-असार सबको मिला कर ये भाषा की रचना करते हैं। हमारे नाटकों में एक श्रेणी की दासी का चरित्र अङ्कित होता है जो किसी व्यापार का वर्णन करने के समय अवान्तर बातों में ही बहुत समय बिता देती हैं; सार अथवा असार में भेद-कल्पना करना इनकी शक्ति के बाहर है। अमरीकावासी की मनोवृत्ति भी वैसी है। इसी लिए उसकी भाषा में इतनी जटिलता है।

लिङ्ग, वचन और पुरुष (gender, number and person) समझाने के लिए अमरीकावासी की भाषा में एक प्रकार के अव्यय-सर्वनाम (article pronoun) का व्यवहार होता है। इनकी भाषा में किसी प्रकार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यय का व्यवहार नहीं है। सभी तरह के प्रत्ययों के काम चलाते हैं यही अन्वय-सर्वनाम। इसका प्रयोग भी विचित्र प्रकार का है। क्रियापद के साथ पाँच-सात-दश अन्वय-सर्वनाम का संयोजन होता है। उसी से कर्तृपद और कर्मपद का अन्वय सब तरह से समझा जाता है। अन्वय-सर्वनाम कई प्रकार के होते हैं। कर्तृपद के लिए जिसका व्यवहार है कर्मपद के लिए उसका व्यवहार नहीं है। लिङ्ग, वचन, पुरुष, कारक सबकी अभिव्यक्ति इसी के प्रयोग से होती है।

अमरीका की भाषा में पद-विभाग नहीं है। प्रत्ययादि भी नहीं हैं। विशेष्य (नाम, noun) और क्रिया के रूप में कोई भी प्रभेद नहीं है। एक क्रिया के साथ सब पदों को जोड़ कर एक पद अथवा वाक्य की (sentence-word) रचना की जाती है। इसी लिए ये भाषाएँ बहु-संयोजनशील (या poly-synthetic), समग्र-प्रकाशी, (holophrastic) अथवा संयोजन-धर्मी (synthetic) कही गई हैं।

अमरीका में असंख्य जातियाँ और असंख्य भाषायें हैं। इन भाषाओं की संख्या चार सौ और पाँच सौ के बीच में है। सभी भाषाओं की प्रकृति एक ही प्रकार की है। साधारणतः भेद भी बहुत हैं। उनमें से कतिपय जातियाँ अपेक्षाकृत सभ्य हैं, इसी लिए उनका साहित्य भी है और लिपि भी है। सभी लिपियाँ चित्र-लिपि हैं।

श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय

पश्चिम भारत में कृषि की उन्नति।



विलायत से जो सिविलियन यहाँ अच्छी अच्छी तनख़्वाहों पर भर्ती होकर आते हैं वे यहाँ रहते समय प्रजाहित का कार्य जैसा करते हैं उसे सभी जानते हैं। परन्तु जब वे यहाँ से पेंशन लेकर या लम्बी छुट्टी लेकर अपने स्वदेश को लौट जाते हैं तब वहाँ आराम से बैठ कर प्रायः ऐसे ग्रन्थों का प्रणयन करते हैं जिनमें यह सिद्ध करने की चेष्टा की जाती है कि भारत में जैसा बढ़िया शासन इस समय हो रहा है वैसा इससे प्रथम वहाँ कभी न हुआ था; हमारे शासन-गुण से भारत में शिक्षा, सभ्यता की बहुत वृद्धि हुई है और वहाँ खेती तथा किसानों की तरक़्क़ी दिन-बदिन होती जा रही है। बहुत कुछ इसी दृष्टि से गत वर्ष एक साहब ने विलायत में बैठ कर Agricultural Progress in Western India* नाम का ग्रन्थ लिखा है। आपने बम्बई प्रान्त की सेवा में २७ वर्ष बिताये हैं और लगातार १४ वर्ष तक वहाँ के कृषि-विभाग की डायरेक्टरी की है। इस पद पर रहते समय आपको जो अनुभव हुआ है उसके आधार पर आपने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बम्बई प्रान्त में अब पहले की अपेक्षा किसानों की दशा सुधर रही है। इस लेख में हम कीटिङ्ग साहब की युक्तियों का उल्लेख करेंगे और बतलायँगे कि वे कहाँ तक उनके अभिप्राय को सिद्ध करती हैं।

इस पुस्तक के आरम्भ में आपने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि संसार के भिन्न भिन्न देशों में कृषि की कहाँ कैसी उन्नति हुई है। भिन्न भिन्न देशों की खेती की उन्नति की तुलना भारत की उन्नति के साथ करते हुए साहब बहादुर ने दबी ज़ुबान में स्वीकार किया है कि अन्यान्य देशों की कृषि में जैसी उन्नति हुई है उसके मुक़ाबले में बम्बई-प्रान्त में खेती की दशा बहुत अच्छी नहीं है। फिर भी आप कहते हैं कि उन्नति हुई ज़रूर है और अपनी इस सम्मति के प्रमाण में यह लिखा है:—

पहले की अपेक्षा अब अधिक परिमाण में ज़मीन जोती-बोई जाने लगी है और बहुत ही कम ज़मीन अब ऐसी रह गई है जिसमें खेती की जा सकती है।

पहले की अपेक्षा लगान अधिक बढ़ गया है और ज़मीन की क़ीमत में भी बहुत वृद्धि हुई है। इसके प्रमाण में वे आगे लिखे अङ्क देते हैं:—

* 'Agricultural Progress in Western India' by G. Keatinge, C.I.E., I.C.S., Longmans, Green & Co., London, 1921. Price 6 shillings.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्	रावेर तालुका		यावल तालुका	
	वार्षिक लगान फ़ी एकड़ रुपये	ज़मीन की क़ीमत फ़ी एकड़ रुपये	ज़मीन की क़ीमत फ़ी एकड़ रुपये	वार्षिक लगान फ़ी एकड़ रुपये
१८८८-९०	५	४८	३४	४ १/४
१९१०-१४	१०	१६५	१७०	८ १/२

साहब बहादुर का कहना कि जब ज़मीन की क़ीमत इतनी अधिक बढ़ गई है तब यह स्पष्ट है कि खेती में मुनाफ़ा भी अधिक होने लगा होगा और यह खेती की उन्नति का एक लक्षण है।

ये हैं साहब बहादुर की पहली और दूसरी दलीलें। इस पर वक्तव्य यह है कि भारत में अधिकांश मनुष्य शहरों में नहीं, गांवों में रहते हैं और अधिकांश ग्राम-वासियों का पेशा खेती है, फिर चाहे वे अपने निज के खेतों में काम करते हों, चाहे दूसरों के खेत जोतते हों, और चाहे दूसरों के खेतों में मज़दूरी करते हों। गरज़ यह कि किसी न किसी रूप में उनकी जीविका खेती पर ही अवलम्बित है। अब देहाती लोग यदि खेती न करें तो उनका पेट किस तरह भरे? पहले ज़माने में भारत की ग्रामीण प्रजा खेती के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय भी किया करती थी जैसे कातना, बुनना और अन्य धन्धे। किन्तु सस्ते विदेशी माल की आयत के कारण ये सब रोज़गार धीरे धीरे चौपट हो गये। इसलिए लोगों को लाचार होकर खेती ही करनी पड़ी और जब अधिक संख्यक लोग खेती करने पर उतारू हो गये तब लगान का भी परिमाण बढ़ा और कृषि के क्षेत्रफल का भी। अतएव, खेती के क्षेत्रफल का और लगान का बढ़ जाना इस बात का प्रमाण नहीं कि भारतवासी सम्पन्न हैं और खेती से अधिक लाभ होने लगा है। बल्कि उससे तो यहां के उद्योग-धन्धों की अधोगति सूचित होती है। एक एक खेत को जोतने के लिए चार चार छः छः किसान लालायित रहते हैं और जो बढ़ कर दाम देता है उसी को खेत मिलता है। लगान की अधिकता के कारण खेतों की क़ीमत भी अधिक बढ़ गई है।

साहब बहादुर ने यह भी कहा है कि चूंकि चीज़ों का मूल्य बढ़ गया है इसलिए उन चीज़ों की उपज का अधिक मूल्य मिलने से किसानों की आर्थिक दशा सुधर गई है। माना कि चीज़ों की क़ीमत बढ़ जाने से किसानों को जहां पहले ३०) मिलते थे वहां अब ४५) या ५०) मिलने लगे हैं, किन्तु इस बढ़ी हुई आमदनी के हिसाब से ही उनका ख़र्च भी तो बढ़ गया है। जो काम पहले उनका चार आने में होता था उसके लिए अब उन्हें दूने और तिगुने दाम देने पड़ते हैं। बम्बई प्रान्त के कृषि-कालेज के प्रिंसिपल डाक्टर मैन ने अपनी Land and Labour in a Deccan Village Study No. 2 नामक पुस्तक में यह साबित किया है कि वस्तुओं की मूल्य-वृद्धि का असर ग्रामों के अधिकांश मनुष्यों पर बहुत बुरा पड़ा है और उनकी दशा उससे सुधरने के बजाय अब और अधिक बिगड़ गई है। कीटिङ्ग साहब ने नये कुओं का खोदा जाना उन्नति का लक्षण माना है। सन् १८९६ में बम्बई प्रान्त में कुओं की संख्या क़रीब दो लाख थी और वह बढ़ कर सन् १९१२ में २ लाख ६० हज़ार होगई थी। अर्थात् १६ वर्षों में केवल ६० हज़ार कुओं की वृद्धि हुई। जिस प्रान्त में पानी का बेहद कष्ट प्रायः हमेशा रहता हो उस प्रान्त में यह वृद्धि क्या सन्तोषप्रद कही जा सकती है? सन् १९०१-०३ के आबपाशी-सम्बन्धी कमीशन ने आशा की थी कि कुओं द्वारा सींची जानेवाली ज़मीन का रक़बा शीघ्र ही दूना हो जावेगा। परन्तु १६ वर्षों की उपर्युक्त वृद्धि तो इसके लिए एक तिहाई से भी कम है।

लेखक ने निम्नलिखित कोष्टक देकर यह बतलाया है कि सरकार द्वारा नहरों के बनाये जाने से उपज की वृद्धि हुई है।

दक्षिण भारत की नहर का नाम		नहर खुलने का समय	नहर द्वारा सींची गई ज़मीन का रक़बा (एकड़ में)
१ कड़वा	नहर	१८६८	८०००
२ कृष्णा	,,	१८६६	२०००
३ जमदा	,,	१८७०	६०००
४ इक्रूक	,,	१८७२	४०००
५ मूथा	,,	१८७४	१७०००
६ गोकाक	,,	१८८४	६०००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण भारत की नहर का नाम		नहर खुलने का समय	नहर द्वारा सींची गई ज़मीन का रक़बा (एकड़ में)
७ पश्चिमी			
नीरा	,,	१८८५	५४०००
८ गोदावरी	,,	१९११	४५०००
९ प्रवर	,,	अभी बन रही है	५७०००
१० पूर्वी नीरा	,,	,,	१०१०००
११ नवीन गोकाक		बनना शीघ्र आरम्भ होगा	१३२०००

हम यह मानने को तैयार हैं कि इन नहरों से किसानों को लाभ हुआ है और भविष्य में होगा भी। परन्तु नहरों के बनाने में सरकार ने दिल खोल कर प्रयत्न नहीं किया। उपर्युक्त कोष्टक से पता लगता है कि सन् १८८५ से १९११ तक क़रीब २५ वर्षों तक—नहरों के बनाने का काम बन्द ही रहा। इसका कारण लेखक महाशय यह बतलाते हैं कि नहरों के बनवाने में ख़र्च बहुत लगा और जो नहरें सन् १८८५ तक बन चुकी थीं उनसे सरकार को इतनी आमदनी नहीं हुई कि जिससे वार्षिक ख़र्च निकालकर पूँजी का ब्याज दिया जा सके। इस मुनाफ़े के अभाव के कारण सरकार ने नई नहरों के बनाने का काम सम्भवतः स्थगित कर रक्खा। परन्तु हमारी समझ में सरकार को साधारण पूँजीपतियों के समान प्रत्यक्ष मुनाफ़े के लिए लालायित नहीं रहना चाहिए। उसको तो ऐसे काम जनता के हित की दृष्टि से ही करना चाहिए। यह निर्विवाद है कि नहरों से किसानों को लाभ होता है और देश की उपज बढ़ती है। इससे प्रकारान्तर से सरकार का भी लाभ है। यदि सरकार को इनके बनवाने में कुछ घाटा भी उठाना पड़े तो भी दक्षिण भारत के समान कम वर्षा होनेवाले भाग में नहरों का शीघ्र बनवाना सरकार का पहला कर्तव्य है। सन् १९०१-०३ के आबपाशी सम्बन्धी कमीशन ने भी यही सिफ़ारिश की थी। आख़िर की तीन बड़ी बड़ी नहरें, जिनके बनाने का काम अभी आरम्भ किया गया है, यदि १५-२० वर्ष पहले बनाई जातीं तो दक्षिण भारत की दशा आज-कल कुछ और ही होती।

लेखक महाशय बम्बई प्रान्त के किसानों की आर्थिक दशा सुधरने का एक प्रमाण यह देते हैं कि उस प्रान्त में ऐश-आराम अथवा भोग-विलास की चीज़ों की खपत पहले से अब अधिक होगई है। इस दलील का समर्थन करने के लिए उन्होंने एक लम्बा कोष्टक दिया है जिसका सारांश हम नीचे देते हैं:—

बम्बई प्रान्त में आयात	१९००-०१ (लाख रुपये)	१९१३-१४ (लाख रुपये)
(१) छुरा, कैंची, चाक़ू और लोहे पीतल इत्यादि की वस्तुएँ	२६	४६
(२) विदेशी कपड़े	६५	२२०
(३) चाय (Tea)	३	११
(४) शकर	१२०	१८८
शराब की खपत बम्बई प्रान्त में :—	५५	१०७

उपर्युक्त कोष्टक से यह पता लगता है कि १९००-०१ से १९१३-१४ तक बम्बई प्रान्त में विदेशी कपड़े पहनने का शौक़ बढ़ता गया, शराब पीने की आदत बढ़ी और चाय का अधिक प्रचार हुआ, जिससे शकर की खपत भी बढ़ी। चाय और शराब का प्रचार बढ़ना अवनति के लक्षण हैं न कि उन्नति के। कई सरकारी अफ़सर ऐसे ही ऊटपटाङ्ग प्रमाणों से देश की उन्नति साबित करने का असफल प्रयत्न किया करते हैं। यदि देशवासियों की आर्थिक दशा सुधरती तो उनका रहन-सहन सुधरता; उनको पहले से अच्छा खाने को मिलता, और उनको पहले से अच्छा पहनने तथा रहने को भी मिलता। लेखक महाशय ने यह जानने का प्रयत्न नहीं किया है कि किसानों को आज-कल कैसा खाने को मिलता है। यदि वे थोड़ा प्रयत्न करते तो उनको मालूम हो जाता कि अब कितने ही मनुष्यों को आधा पेट भोजन पाकर ही अपना सारा जीवन व्यतीत करना पड़ता है। पहले ज़माने के समान दूध, घी और अन्य पौष्टिक पदार्थों को प्राप्त करना अब धनवान् किसानों को भी कठिन हो गया है। अधिकांश मनुष्यों के भूखों मरने को ही साहब बहादुर आर्थिक उन्नति के नाम से तो नहीं पुकार रहे हैं?

अन्त में लेखक ने बम्बई प्रान्तवालों के सम्पन्न होने के प्रमाण में एक नई बात लिखी है। आप कहते हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकाल के समय के पहले समय में रिलीफ़-सम्बन्धी कामों पर मज़दूरी करके पेट पालनेवाले जितने अधिक होते थे उनके मुक़ाबले में अब बहुत कम होते हैं। इसके लिए आपने लिखा है कि सन् १८९९-१९०० में जहां अकाल के कामों पर १९ लाख आदमी मजूरी करते थे और सहायता पाते थे वहां सन् १९१८-१९ के अकाल में, जब कि अकाल पहले से भी अधिक भयङ्कर था, सिर्फ़ डेढ़ लाख आदमी ही मज़दूरी कर सहायता प्राप्त करने को आये। इससे साहब ने अनुमान किया है कि सम्पन्न होने के कारण लोगों में अकाल से सामना करने की शक्ति आ गई है। लेकिन वास्तव में देखा जाय तो इसके कारण कुछ और ही हैं। एक तो यह कि सुकाल में भी किसानों को बहुत कुछ अकाल जैसी कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं, दूसरे अकालों से अब इधर उनका घना परिचय भी हो गया है, इसलिए वे अब पहले की भांति घबराते भी नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त सन् १९१८ में इन्फ़्लूएन्ज़ा का जैसा प्रकोप था उसको देखते हुए अकाल-पीड़ित व्यक्ति मज़दूरी करने जाते या रोग के शिकार होकर चिरनिद्रा में शयन करते! उस साल कोई स्वयं बीमार था, कोई रोगी को (दवा-तो नहीं क्योंकि वह तो उसके लिए अप्राप्य थी) पानी पिलाने के लिए घर में रहना आवश्यक समझता था और कोई इतना जीर्ण-शीर्ण था कि काम पर जाने लायक़ उसमें शक्ति ही न थी। उपर्युक्त सब बातों पर यदि लेखक महाशय ने ध्यान दिया होता तो पुस्तक का कुछ और ही रूप होता।

लेखक महाशय ने यह स्वीकार किया है कि कुछ किसानों की दशा आज-कल बिगड़ रही है। उन्होंने सब किसानों को ४ श्रेणियों में विभाजित किया है। पहली श्रेणी में उन्होंने उन किसानों को रक्खा है जो ज़मीन के लगान से ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं और यदि उन्होंने खेती की भी तो मज़दूर लगा कर। वे स्वयं अपने हाथों से खेती का कुछ काम नहीं करते। दूसरी श्रेणी में वे किसान हैं जिनके पास काफ़ी ज़मीन है, और जो स्वयं खेती करते हैं किन्तु आवश्यकता पड़ने पर थोड़े बहुत मज़दूर लगा लेते हैं। तीसरी श्रेणी में वे किसान रक्खे गये हैं जिनके पास थोड़ी ज़मीन रहती है, जो खेती से ही अपना पूरा जीवन-निर्वाह नहीं कर पाते और जिनको अन्य काम भी करना पड़ता है। चौथी श्रेणी में वे किसान हैं जिनके पास ज़मीन बिलकुल नहीं है और जो खेतों में मज़दूरी करने को जाते हैं। साहब बहादुर के मत से तीसरी श्रेणी के किसानों की दशा आज-कल ख़राब हो रही है। वे यह स्वीकार करते हैं कि इनकी संख्या बहुत अधिक है, परन्तु उन्होंने यह बताने का प्रयत्न नहीं किया कि इस श्रेणी के किसानों की संख्या फ़ी सैकड़ा कितनी है। उनकी संख्या अवश्य ही आधे से बहुत अधिक होगी। जिस देश में आधे से अधिक मनुष्यों की दशा ख़राब होती चली जाय और केवल थोड़े मनुष्यों की दशा कुछ सुधरने लगे तो क्या वह देश उन्नतिशाली कहा जा सकता है?

पूना-कृषि-कालेज के प्रिंसिपल डाक्टर मैन ने दक्षिण भारत के दो गांवों की आर्थिक दशा की बहुत बारीकी के साथ जांच की। उसकी रिपोर्ट उन्होंने दो पुस्तकों* के रूप में प्रकाशित कराई है। इन गांवों का नाम है पिंपला सौदागर और जटगांव बुदरुक। डाक्टर मैन ने इन गांवों के रहनेवालों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। पहली श्रेणी में उन्होंने उन किसानों को रक्खा है जिनकी (खेती द्वारा प्राप्त) आमदनी इतनी है कि वे साधारण वर्ष में उससे अपना जीवन-निर्वाह अच्छी तरह से कर सकते हैं। दूसरी श्रेणी में डाक्टर मैन ने उन किसानों को रक्खा है जिनकी सब प्रकार की आमदनी इतनी है कि वे साधारण वर्ष में अपना जीवन-निर्वाह अच्छी तरह से कर सकते हैं। तीसरी श्रेणी में वे किसान रक्खे गये हैं जिनकी सब प्रकार की आमदनी इतनी कम है कि वे अपना जीवन-निर्वाह अच्छी तरह से नहीं कर सकते। या तो वे आधा पेट खाकर ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं या वे अधिक कर्ज़दार होते जाते हैं। इन दोनों गांवों में उपर्युक्त तीनों श्रेणियों के किसानों के कुटुम्बों की संख्या नीचे लिखे अनुसार है।

	पिंपला सौदागर	जटगांव बुदरुक
प्रथम श्रेणी	८	१०
द्वितीय श्रेणी	२८	१२
तृतीय श्रेणी	६७	१२५
	१०३	१४७

* Land and Labour in a Deccan village Study No. 1
Land and Labour in a Deccan village Study No. 2.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त तालिका से यह पता लगता है कि १०३ में से ६७ कुटुम्ब अर्थात् ६९ फ़ी सैकड़ा पहले गांव में और १४७ में से १२५ अर्थात् ८५ फ़ी सैकड़ा कुटुम्ब दूसरे गांव में ऐसे हैं जिनकी सब प्रकार की आमदनी इतनी कम है कि वे साधारण वर्ष में भी अपना जीवन-निर्वाह अच्छी तरह नहीं कर सकते। यदि अकाल पड़ गया तो इनकी दशा और भी ख़राब होती जाती है। क्या इसी को कीटिङ्ग साहब आर्थिक उन्नति का फल कहते हैं?

दयाशङ्कर दुबे

लखनऊ-विश्वविद्यालय।

भारतवर्ष का कोई ऐसा प्रान्त नहीं जिसमें इतने अधिक विश्वविद्यालय हों जितने कि संयुक्त-प्रान्त में हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय को जाने दीजिए, क्योंकि इसकी जोड़ के भारतवर्ष में अनेक विश्वविद्यालय हैं। परन्तु इधर ५ वर्ष के अन्दर इस प्रान्त में तीन विश्वविद्यालय और स्थापित हो गये हैं। पहला काशी में, दूसरा अलीगढ़ में और तीसरा लखनऊ में। इनके आदर्श एक दूसरे से भिन्न हैं। परन्तु एक बात में ये प्रयाग-विश्वविद्यालय से अलग और आपस में समान हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय का उद्देश्य शिक्षा का प्रचार था। परीक्षा लेना और डिग्री बांटना उसका प्रधान कर्तव्य था। इन विद्यालयों का प्रधान कर्तव्य शिक्षा देना और चरित्र-सङ्गठन करना है। इनका कार्यक्षेत्र रक़बे के हिसाब से सङ्कीर्ण है, परन्तु उद्देश्य इनके विस्तीर्ण हैं।

इस लेख में हम लखनऊ-विश्वविद्यालय के ही विषय में अपने विचार प्रकट करते हैं। यदि काशी के साथ मालवीयजी और अलीगढ़ के साथ सर सैयद अहमद के शुभनाम लगे हुए हैं तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि लखनऊ के साथ संयुक्त-प्रान्त के गवर्नर महोदय सर हारकोर्ट बटलर का नाम भी क़ायम रहेगा।

सर हारकोर्ट बटलर संयुक्त प्रान्त के गवर्नर नियुक्त हुए ही थे कि आपका एक भाषण हुआ। आपने कहा कि जब मैं लोहे के पुल पर खड़ा होकर पूर्व की ओर देखता हूँ तब दाहिनी तरफ़ छतर मंज़िल के गुम्बद और बाईं ओर बादशाहबाग़ की इमारतें देख कर मुझे आक्सफ़र्ड याद आता है। उसी रोज़ निश्चय हो गया कि ईश्वर इस लखनऊ के भक्त को सही सलामत रक्खे। यह आये और लखनऊ-विश्वविद्यालय की नींव पड़ी। कब और कितनी कमिटियां बैठीं और उनके क्या मन्तव्य थे—इनके विवरण देने की कोई आवश्यकता नहीं। सारांश यह कि १९१९ में सरकार की तरफ़ से कुछ सभायें हुईं। दूसरे वर्ष अवध के ताल्लुक़दारों तथा और रईसों से चन्दे लिखाये गये और लेजिसलेटिव कौंसिल से लखनऊ-युनिवर्सिटी ऐक्ट् पास कर दिया गया और तीसरे वर्ष सन् १९२१ से, विश्वविद्यालय स्थापित भी होगया। रायबहादुर ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती वाइसचैन्सलर नियुक्त हुए। मेजर टी० एफ़० ओडानल रजिस्ट्रार हुए, और प्रोफ़ेसरों, रीडरों, तथा लेकचरारों की भरती शुरू होगई।

कुछ लोगों का यह विचार था कि सरकारी कोशिश से प्राप्त विश्वविद्यालय में वही दोष होंगे जिनको दूर करने के लिए नये विश्वविद्यालय स्थापित किये जा रहे हैं। अँगरेज़ों का ऊँचे ओहदे पर क़ब्ज़ा—लियाक़त या काम से कोई मतलब नहीं, तनख़्वाह के लिए शोर, नवयुवक छात्रों की कोई परवाह नहीं, लेक्चर ख़तम किया, अर्थात् रटे हुए नोट एक किताब से बोल दिये, बस, तुम्हारा रास्ता उधर हमारा इधर। परन्तु यह ख़ुशी की बात है कि अभी तक अध्यापकों के चुनाव में कोई ग़लती नहीं हुई। लखनऊ-विश्वविद्यालय की सेवा में बड़े बड़े विद्वान् एकत्र हैं। चक्रवर्तीजी ने एक बार कहा था कि उनको विद्वान् जहां से मिलेंगे लायेंगे। बराबर की जोड़ के विद्वानों में से वही चुना जायगा जो इस देश का होगा। इस वादे को चक्रवर्तीजी अक्षरशः पूरा कर रहे हैं। सम्पत्ति-शास्त्र के प्रधान अध्यापक डाकृर राधाकमल मुकर्जी हैं। प्राचीन इतिहास उनके भाई डाकृर राधाकुमुद मुकर्जी के अधीन है। डाकृर बली मोहम्मद फ़िज़िक्स के प्रधान अध्यापक हैं और डाकृर वीरबल साहनी बोटनी के। इनमें से जो महाशय जिस विषय के लिए नियुक्त हैं, उसके वे पूर्ण विद्वान् हैं। भारतवर्ष में उनकी जोड़ के कम विद्वान् मिलेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्रवर्तीजी तथा विश्वविद्यालय के अन्य सञ्चालकों का यह उद्देश्य है कि लखनऊ एक जातीय विश्वविद्यालय का केन्द्र हो। हम इस उद्देश्य के लिए उन्हें बधाई देते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे अपने इस मनोरथ में सफल हों।



ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती।

आदर्श हमेशा ऊँचे ही रहा करते हैं परन्तु उस आदर्श तक पहुँचने के लिए जो मार्ग स्वीकृत किया जाता है उसी से मालूम हो जाता है कि कभी उस आदर्श के निकट तक पहुँचेंगे या नहीं। अभी विश्वविद्यालय को स्थापित हुए दिन ही कितने हुए कि आशा न की जाय। जो कुछ हुआ आशाजनक है और विश्वविद्यालय के सञ्चालक जो कुछ करने का विचार कर रहे हैं उनमें से बहुत कुछ सराहनीय कार्य होंगे। परन्तु उनमें से कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो हमारे आदर्श के प्रतिकूल हों। यह ठीक है कि अधिकतर अध्यापक भारतवर्ष के हों, परन्तु यह ठीक नहीं है कि उनकी तनख़्वाहें बहुत ऊँची हों। यह माना जा सकता है कि भारतवर्ष में सब जगह तनख़्वाहें ऊँची हैं। जब दूसरी सरकारी नौकरियों में भी तनख़्वाहें ऊँची हैं तब कम तनख़्वाह देने से योग्य अध्यापक न मिल सकेंगे। प्रश्न कठिन है—सिर्फ़ लखनऊ-विश्वविद्यालय से ही यह हल नहीं हो सकता। इसमें जब सभी विश्वविद्यालय तथा सरकारी विभाग भी योग दें तभी सफलता हो सकती है। अस्तु, जब तक यह प्रश्न भी हल न हो तब तक अच्छी तनख़्वाह देना आवश्यक है।

इतना मानना पड़ेगा कि तनख़्वाहें ऊँची होते हुए भी यहां उतनी ऊँची नहीं हैं कि इंडियन एज्यूकेशनल सर्विस Indian Educational Service के अफ़सरों से मुक़ाबला कर सकें। योग्यता को देखते हुए अध्यापकों की तनख़्वाहें कम ही हैं। तो भी आदर्श से अवश्य हटी हुई हैं। विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा लम्बे बजट पर निर्भर नहीं है। जातीय चरित्र के बनाने और विद्या की सीमा को बढ़ाने ही में उसकी प्रतिष्ठा है।

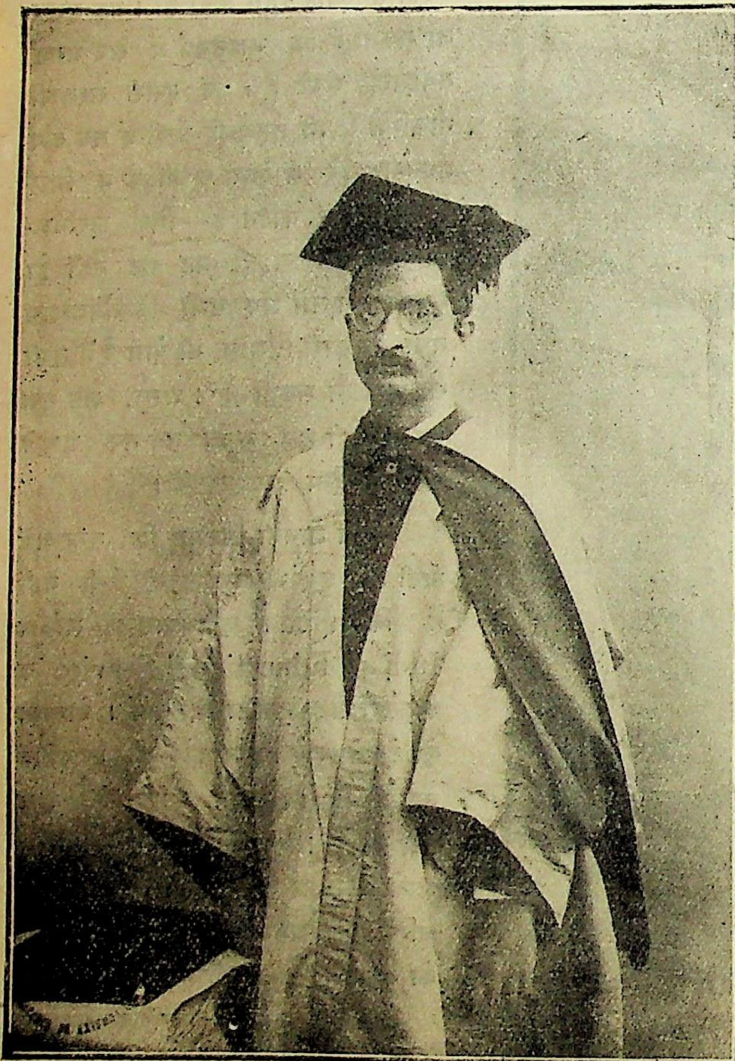
आवश्यक ख़र्च पर किसी को एतराज़ नहीं हो सकता। परन्तु ईंट-गारे में ज़रूरत से ज़्यादा ख़र्च करने में प्रजा पर कर्ज़ का बोझ लदता है और विश्वविद्यालय के असली उद्देश्य सिद्ध नहीं होते। सरस्वती के लिए आलीशान महलों की आवश्यकता नहीं, वह हमेशा झोपड़ों में रही है। अपना आदर कराने के लिए चाहे वह महलों तक पहुँच जाती हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु वहाँ रही कि उसकी ज़बान बन्द हुई और उसकी लेखनी में ज़ङ्ग लगा।

लखनऊ-विश्वविद्यालय के लिए कैनिङ्ग कालेज में काफ़ी जगह है। बनी बनाई इमारतों में से बहुत सी ऐसी हैं जो दफ़्रों का काम दे सकती हैं। कुछ नई इमारतों तथा बँगलों का बनाना आवश्यक है परन्तु जो प्लैन इस



डाक्टर राधाकमल मुकर्जी।

के लिए तैयार किया गया है वह यदि मंज़ूर हुआ तो एक करोड़ से कम लागत न होगी। गोमती-नदी के एक तरफ़ कनवोकेशन हाल और विश्वविद्यालय के अजायब-घर होंगे। दूसरी तरफ़ वाइसचैंसलर और रजिस्टार के दफ़्र, आर्ट्स और साइंस के लिए इमारतें और वाइसचैंसलर तथा रजिस्ट्रार के बँगले होंगे। लोहे का पुल क़रीब है, परन्तु विश्वविद्यालय के लिए एक नया पुल चाहिए। विश्वविद्यालय का नक़्शा एक शिल्प-विद्या-विशारद महाशय का बनाया हुआ है। परन्तु यदि इनके प्लैन के अनुसार काम छिड़ा तो कुछ समय तक विश्वविद्यालय की इमारतें ही बनती रहेंगी। आवश्यक काम रुक जायँगे या उनके लिए काफ़ी रुपया ख़र्च न किया जा सकेगा।

उद्देश्य-साधन के लिए सबसे अधिक रुपया होस्टलों, अध्यापकों के मकानों, और अध्यापकों के वेतन के लिए ख़र्च करना है। सञ्चालकों का यह उद्देश्य है कि कालेज में जो लेक्चर हों उनके अलावा तीन से लेकर पांच लड़कों तक के लिए एक एक अध्यापक हो जो उनके पढ़ने ही में उनकी मदद न करे, उनका संरक्षक भी हो। तात्पर्य यह कि गुरु से शिष्यों को मिलने का इतना अधिक अवसर मिले कि वे उनमें विद्या ही की योग्यता नहीं किन्तु चरित्र बल भी पैदा कर सकें।

चरित्र-सङ्गठन के लिए यह बहुत आवश्यक है कि अध्यापक और उनके शिष्य एक साथ रह सकें। इस सम्बन्ध में गुरुकुल-प्रणाली से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। बहुत बड़े होस्टलों का होना ठीक नहीं। छोटे छोटे होस्टल हों और उनके साथ अध्यापकों के बङ्गले हों। होस्टलों में यह प्रबन्ध हो कि लड़के रह सकें और अध्यापकों से पढ़ भी सकें। जगह अधिक हो, अध्यापक अधिक हों। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि इमारतें देखने में आलीशान हों।

चरित्र-सङ्गठन के लिए विश्वविद्यालय ने किसी ख़ास धर्म या सम्प्रदाय का सहारा नहीं लिया है। इस सम्बन्ध में विश्वविद्यालय का वही सिद्धान्त है जो सरकारी शिक्षा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाग का है। इस मामले में लखनऊ या अलीगढ़ तथा काशी से गहरा भेद है।

अब प्रश्न यह है कि यदि किसी धर्म की शिक्षा नहीं दी जाती तो इस कमी का प्रभाव छात्रों के आचरण पर पड़ेगा या नहीं। हम अपने विचार पहले भी प्रकट कर चुके हैं कि अकेले धर्म की शिक्षा देने से कोई भी लाभ नहीं, उलटी हानि हो सकती है। यदि धर्म में दीक्षा देनेवाले खुद अधर्मी हों तो वे धर्म तो नहीं, धूर्तता अवश्य सिखा सकते हैं। इसलिए यदि धर्म की शिक्षा नहीं दी जाती तो कोई हर्ज नहीं। अध्यापक चरित्रवान् हों, संयमी हों, और छात्रों के सच्चे मित्र हों—इतना ही चाहिए।

भाग्यवश अभी तक जितने नये अध्यापक नियुक्त हुए हैं उनमें से अधिकतर ऐसे ही हैं जो अपने चरित्र-बल ही से अपने छात्रों को चरित्रवान् तथा संयमी बना सकते हैं। उनके रहते हुए धर्म की ख़ास शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु ऐसे अध्यापक हमेशा नहीं रहते। यह प्रश्न हो सकता कि उनके आचरण के साथ कुछ धर्म का उपदेश भी होना चाहिए। परन्तु देश में दो धर्मों के होते हुए लखनऊ में इसका हल होना कठिन है। हाँ, धर्मनीति की शिक्षा हो सकती है। इससे चाहे कुछ लाभ पहुँचे।

विश्वविद्यालय की शिक्षा-पद्धति क्या होगी, कौन कौन विषय पढ़ाये जायँगे और किस तरह पढ़ाये जायँगे—इन सब बातों के विषय में अभी ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। सञ्चालकों की नीति तो यह मालूम होती है कि उन विषयों पर विशेष ध्यान दिया जायगा जिनकी जातीय पुष्टि के लिए अधिक आवश्यकता है। उदाहरणतः इतिहास को लीजिए। योरपीय इतिहास पर इतना ध्यान नहीं दिया जायगा जितना कि भारतीय इतिहास पर। यदि योरपीय इतिहास पढ़ाया जायगा तो भारतीय इतिहास तथा उसकी सभ्यता को समझाने के लिए। इतिहास के जो नये



डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी।

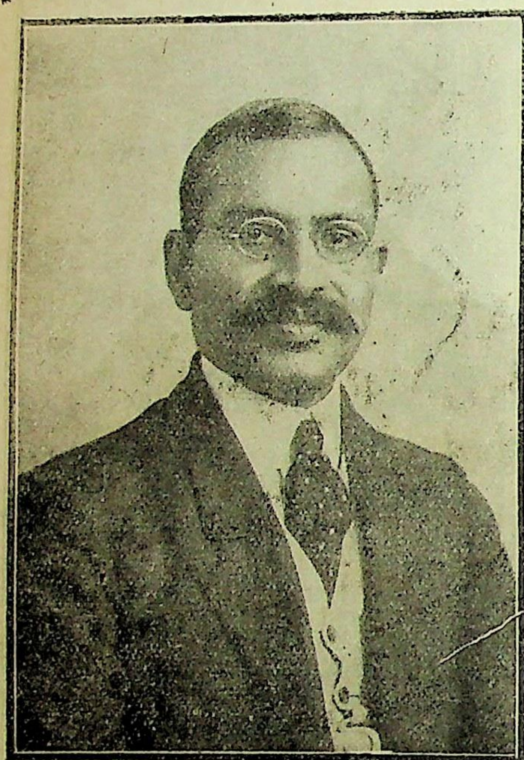
अध्यापक आये हैं उनके कथन से तो यही मालूम होता है। सम्पत्ति-शास्त्र के अध्यापक महाशय ने अपना जो पहला वक्तृत्व पढ़ा था उसमें भी इसी बात पर ज़ोर दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था। अब तक सम्पत्ति-शास्त्र भारतवर्ष में अँगरेज़ी रुख़ से पढ़ा गया है। रैनाडे महाशय ने दूसरे रुख़ की कुछ झलक दिखाई थी, परन्तु वे अपना काम पूरा न कर सके। आशा है कि नवीन विश्वविद्यालय के ये नवयुवक अध्यापक अपने इस उद्देश्य में कृतकार्य होंगे।

विषय तो सभी पढ़ाये जायँगे, क्योंकि विश्वविद्यालय ही है। तो भी यह निश्चय कर लेना ज़रूरी है कि लखनऊ में किस विषय पर सबसे अधिक ध्यान दिया जायगा।



डाक्टर वली मुहम्मद।

अभी कुछ इस पर कहा नहीं जा सकता। शायद सञ्चालक ढूँढ़ रहे हैं कि किस विषय के विद्वान् यहाँ एकत्र होते हैं और किस ओर विद्यार्थियों का सबसे अधिक ध्यान जाता है।

हमें आशा है कि विश्वविद्यालयों के विषयों में हमारी देशी भाषाओं को अवश्य स्थान मिलेगा। अब तक तो यह रङ्ग था कि संसार भर के सब विषयों के लिए विश्व-विद्यालय में जगह थी, परन्तु देशी भाषायें इस योग्य भी नहीं थीं कि वे पर्याय विषयों की श्रेणी में स्थान पा सकें। शायद किसी दिन रामचरितमानस की चौपाइयों की मधुर ध्वनि कैनिङ्ग कालेज के दरजों में गूँजे। अभी तक तो हिन्दी बोलने तथा लिखने में भी पाप है।

शिक्षा-प्रणाली के विषय में भी सञ्चालकों के विचार बहुत अच्छे हैं, परन्तु देखना है कि वे उन्हें कार्यरूप में परिणत कर सकते हैं या नहीं। अभी तक तो इसमें कोई अधिक फ़र्क़ नहीं आया है। पुराना ढर्रा चला जा रहा है और यदि इमारतों पर रुपया ख़र्च होना शुरू हो गया तो सञ्चालकों के मन की मन ही में रह जायगी।

उनका विचार यह है कि विश्वविद्यालय में शिक्षक चार श्रेणी के हों। प्रथम श्रेणी में वे हों जो किसी विषय के पूर्ण विद्वान् हों, जो अपने तथा अपने योग्य शिष्यों द्वारा उस विषय में नये आविष्कार कर सकें और विद्या की सीमा को बढ़ा सकें। ऐसे अध्यापक अपना सम्बन्ध उन्हीं शिष्यों से रक्खें जो विश्वविद्यालय की परीक्षागत शिक्षा को पूर्ण कर चुके हों। इन अध्यापकों तथा इनके शिष्यों का यह काम हो कि खोज करें और नई पुस्तकें लिखें। साथ ही साथ सर्व-साधारण को व्याख्यानों द्वारा अपने विषय की ओर आकर्षित करें। दूसरी श्रेणी के अध्यापक विश्वविद्यालय की सर्वोच्च परीक्षा के लिए छात्रों को तैयार करें। अर्थात् विश्वविद्यालय के एम० ए० तथा एम० एस-सी०, दरजों को पढ़ाने का भार इन पर हो। तीसरी श्रेणी के अध्यापक, बी० ए० के लड़कों को कालेज में व्याख्यान देकर पढ़ावें और चतुर्थ श्रेणी के अध्यापक तीन से लेकर पाँच तक लड़कों के समूह की देख-भाल करें, पक्ष में एक दो बार उनके काम को देखें, ठीक करें, तैयार करने में सहायता दें और उनकी विशेष कठिनाइयों को दूर करें। अभी तक विश्वविद्यालय में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के अध्यापक तो नियुक्त हो गये हैं—अँगरेज़ी में वे प्रोफ़ेसर, रीडर तथा लेक्चरर की उपाधि से विभूषित हैं—परन्तु चतुर्थ श्रेणी के अध्यापक अभी तक नियुक्त नहीं हुए हैं। कैनिङ्ग कालेज के प्रधान अध्यापक श्रीयुत कैमरन साहब का यह विचार है कि इस काम को वही अध्यापक करें जो दरजे में उनको पढ़ाते हैं। उनकी योजना में चतुर्थ श्रेणी के अध्यापकों की कोई आवश्यकता नहीं है। वे अपने इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न कर रहे हैं। देखना है कि उन्हें कहां तक सफलता होती है।

व्यूटोरियल क्लासों के क़ायम किये जाने की तथा खोज का काम करनेवाले विद्यार्थियों की इस विश्वविद्यालय में बहुत आवश्यकता है। अभी तक तो इस विश्वविद्यालय को बड़ा कैनिङ्ग कालेज ही कह सकते हैं। इन कामों में कम मनुष्यों में अधिक रुपया ख़र्च करने का सिद्धान्त ठीक नहीं। अभी तक नये व्यूटर या रिसर्च स्कालर मुक़र्रर नहीं किये गये हैं। इसी से निवेदन है। यह आवश्यक नहीं है कि व्यूटर हर वक्त के लिए विश्वविद्यालय के नौकर हों। कलकत्ता-विद्यालय के पोस्ट ग्रेजुएट डिपार्टमेन्ट का हम अनुकरण कर सकते हैं। एक व्यूटर का काम हफ़्ते में ६ घंटे पढ़ाने का हो और पांच ग्रूप में लड़के उससे सप्ताह में एक बार पढ़ने आवें तो वह तीस लड़कों को पढ़ा सकता है; और यदि वह किसी और धंधे में भी हो तो १००) से १२०) तक में बहुत योग्यता के साथ विश्वविद्यालय के इस कार्य को कर सकता है। खोज करने के लिए विश्वविद्यालय को योग्य छात्र १००) महीने में मिल सकते हैं। इस ओर जितना भी ख़र्च किया जाय, जितने ही अधिक व्यूटर और रिसर्च स्कालर होंगे, उतने ही योग्य विश्वविद्यालय के स्नातक होंगे, और उनके यश का विश्वविद्यालय भी भागी होगा।

सञ्चालकों के विचार जो कुछ हों परन्तु विश्वविद्यालय का क्या रूप होगा यह उसकी भिन्न भिन्न सभाओं की राय तथा प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल की उदारता पर निर्भर होगा। लखनऊ यूनिवर्सिटी एक्ट ख़राब नहीं है। कोर्ट कार्यकारिणी कौंसिल, तथा एकडिमिक कौंसिल के मन्तव्यों द्वारा ही विश्वविद्यालय का कार्य होगा। और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा द्वारा इन कार्यों के लिए ख़र्च मिलेगा। परन्तु इन सबकी क्या राय होगी यह विश्वविद्यालय की प्रारम्भिक नीति पर अधिकतर निर्भर रहेगा। हमें आशा है कि यह नीति आदर्श के रास्ते से बहुत अलग नहीं है। हमारा फिर यही निवेदन है कि जहां तक सम्भव हो ख़र्च सीमा के अन्दर रखिए और कार्य का क्षेत्र बढ़ाइए। लीडर में अभी किसी छिद्रान्वेषक ने विश्वविद्यालय के लिए एक गुरुमन्त्र तजबीज़ किया था—वेतन अधिक काम कम। सञ्चालक होशियार रहें, कहीं यह मन्त्र उनके विश्वविद्यालय पर सिद्ध न हो जाय।

अध्यापक

कुबेर की निधि।

एक बार एक घर-घमण्डी यह डींग मार रहा था कि जो बात मैं नहीं जानता उसका जानना ही व्यर्थ है। इस पर एक नाविक बोल उठा—क्या तुम उस वस्तु को जानते हो जो समुद्र के तल भाग में है और भूमण्डल के आधे से भी अधिक भाग को आवृत किये है? साथ ही एक वनस्पतिविद् ने पूछा—नीला गुलाब उत्पन्न करना क्यों असम्भव कहा गया है? तब एक इतिहासज्ञ ने कहा—सत्रहवें लुई का भाग्य ही बता दो? एक जासूस ने पूछा—मोनालिसा को किसने चुरा लिया था? एक पुरातत्त्वविद् ने पूछा—ईसा के चार हज़ार वर्ष पूर्व विस्मिया नामक नगर में किस प्रकार के मनुष्य निवास करते थे? इस तरह जब दूसरे लोग प्रश्न के ऊपर प्रश्न करने लगे और शोर-गुल मच गया तब उसी मण्डली के एक चश्माधारी सीधे-सादे व्यक्ति ने धीरे से कहा—कृपा कर दो का वर्गमूल ही बतला दो? इन प्रश्नों को सुन कर वह घमण्डी चुप हो गया। पर प्रश्न-कर्त्ता शान्त न हुए। जो लोग वहां एकत्र थे वे आपस में तरह तरह की गप्पें उड़ाने लगे। छिपे ख़ज़ानों की बातों, भूतों की सच्ची लीलाओं, विचित्र मसलों एवं अतीत काल के कूटों की धूम मची थी। जो अद्भुत बातें वहां सुनने में आईं उनमें पहले दक्षिण अमरीका के पेरू देश के एक बड़े भारी ख़ज़ाने की बात यहां कही जाती है। वक्ता ने कहा कि ११,००,००० पौंड वज़न ख़ालिस सोना वहां के अज़नगारों के पास उच्च पार्वत्य देश के गिरि-गह्वरों में सुरक्षित रक्खा है। कहा जाता है कि पेरू के कुज़को नामक स्थान के किसी इनका को स्पेनवालों ने क़ैद कर लिया था। उन्होंने उसे छोड़ देने के लिए एक बहुत गहरी रक़म मांगी, जिसे पेरू-निवासी इनका लोग भर देने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज़ी हो गये। उन्होंने वह रक़म सोने के रूप में अपने विश्वासी पुरोहितों की संरक्षा में ग्यारह हज़ार लामाओं पर लाद कर स्पेनवालों को देने के लिए रवाना भी कर दिया। प्रत्येक लामा पर १०० पौंड सोना लदा था। परन्तु स्पेनवालों ने अपनी स्वाभाविक निर्दयता से उस बन्दी इनका को मार डाला। वे नहीं जानते थे कि उनकी मुँह माँगी सम्पदा उनको देने के लिए आ रही है। जब यह भयङ्कर समाचार उन पुरोहितों को मिला तब वे बहुत ही क्रुद्ध हो गये। उन्होंने आपस में सलाह कर अपने क़ाफ़िले की बाग़ दूसरी ओर मोड़ दी और उसे एक गुप्त स्थान में ले जाकर सारा सोना ज़मीन में गाड़ दिया। जिस स्थान से क़ाफ़िले ने राज-पथ का त्याग किया था उसे लोग इस समय भी बताते हैं, पर उन क्रुद्ध पुरोहितों का गाड़ा हुआ सोना अभी वहीं का वहीं पड़ा है। अनेक बार लोगों ने उस अपार ख़ज़ाने को खोज निकालने के लिए प्रयत्न किये, पर सब व्यर्थ। रायल ज्याग्रेफ़िकल सोसायटी के भूतपूर्व सभापति सर क्लीमेन्टस् जब पेरू में थे तब उन्होंने भी इस ओर ध्यान दिया था। एक बार वे एक ऐसे आदमी के घर जाकर ठहरे थे जो पन्द्रह पुश्त से उस ख़ज़ाने की खोज में था। सौभाग्यवश उसने एक ऐसा तहख़ाना अवश्य खोज निकाला था जिसमें ममी रक्खी हुई थी। परन्तु वहाँ भी उस ख़ज़ाने का पता न लगा।

कोलम्बिया की ग्वाटाविटा नामक झील में भी अतीतकाल से अपरिमित धन-राशि पड़ी है। पूर्वैतिहासिक काल में इंडियन जातियाँ अपने उपास्य देव को स्वर्ण-दान दिया करती थीं। वे अपने इस प्रकार के दान अगम्य गहरे जल में डाल दिया करती थीं। कहा जाता है कि न मालूम इस प्रकार का कितना सुवर्ण ग्वाटाविटा झील में पड़ा हुआ है। लोगों ने अनुमान किया है कि उस झील में लगभग १००,०००,००० पौंड का सोना होगा। इसे निकाल लेने के लिए भूतकाल में घोर प्रयत्न किये गये। जब हमबोल्ट (Humbolt) ने इस झील का निरीक्षण किया था तब उसे वहाँ कुछ इमारतों के ऐसे भग्नावशेष मिले थे जिनसे यह विदित हुआ कि झील में जलमग्न सोने को निकालने के लिए ही वे इमारतें बनाई गई थीं।

इँग्लेंड के राजा जान का जो धन विनष्ट हो गया था वह इस समय भी लिङ्कनशायर में ज़मीन के नीचे गड़ा पड़ा है। उसमें राज-मुकुट तथा अन्यान्य राजचिह्न तथा दूसरी बहुमूल्य वस्तुयें भी शामिल हैं। जब जान 'किङ्गस लीन' से 'वाश' के रेतों से होकर जा रहा था तब सहसा समुद्र में बाढ़ आ गई और वह तथा उसकी सेना वहीं समाप्त हो जाने से बाल बाल बच गई। उसी समय उसकी बहुमूल्य सामग्री तथा राजकोष प्राण-रक्षा करते समय न बचाया जा सका, वहीं का वहीं रह गया।

कई वर्ष हुए, 'गिडने ड्रोव एन्ड' के पास एक देहाती रेती पर कुछ खोद रहा था। एकाएक उसका फावड़ा किसी कड़ी चीज़ से जा टकराया। उसने खोद कर देखा तो मिट्टी से आवृत एक प्याला निकला। वह उसे बिलकुल साधारण वस्तु समझ कर घर ले आया और कमरे के एक ताख़ पर रख दिया। वह प्याला उसी स्थान पर कोई १२ महीने तक रक्खा रहा। इसके बाद एक ईंटवाले की नज़र उस पर पड़ी। उसने उसे एक शिलिङ्ग में उससे ले लिया। घर लाकर जब उसने उसे अच्छी तरह साफ़ किया तब वह चाँदी का प्याला निकला। वह ८ इंच ऊँचा और वज़न में २½ पौंड था। उस पर ११६२ सन् पड़ा था और वह कामदार था।

अँगरेज़ी टापुओं में अकेले राजा जान का ही ख़ज़ाना ज़मीन के नीचे नहीं दबा पड़ा है। कौन कह सकता है कि वहाँ ऐसे ही और ख़ज़ाने नहीं हैं जिन्हें कोई नहीं जानता। केंट के क्रेफ़र्ड नामक स्थान में सोने की कुछ प्राचीन चूड़ियाँ खोज निकाली गई थीं। कुछ वर्ष हुए, केनिङ्गटन में एक मज़दूर को गिन्नियों से परिपूर्ण एक हंडा मिला था। अबरडीन के रास कोर्ट नाम की रियासत में कुछ समय हुआ १४ हज़ार से ऊपर ऊपर मूल्यवान् प्राचीन सिक्के प्राप्त हुए थे। ग्लैस्टनबरी से तीन मील दूर एक गाँव के समीप डाक्टर ए० बुलीड ने एक ऐसे प्राचीन नगर के चिह्न खोद निकाले जो ईसा के ४०० या ३०० वर्ष पूर्व अस्तित्व में था। ये केवल इँग्लेंड के कुछ उदाहरण हैं जिनसे ज्ञात हो सकता है कि कितनी अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी धन-राशि ज़मीन के नीचे गड़ी पड़ी है जिस तक किसी की पहुँच अभी तक नहीं हुई। परन्तु इन द्वीपों का विशाल ख़ज़ाना स्काट्लेंड के पश्चिम टोबर गोरी की खाड़ी में स्थित है। कहा जाता है कि जब स्पेन का जङ्गी बेड़ा इँग्लेंड पर चढ़ आया था तब उसमें का फ़्लोरिडा नाम का एक जहाज़ भटक कर वहाँ जा पहुँचा था। उस पर ५६ तोपें चढ़ी थीं और ३,००,००,००० पौंड के मूल्य का माल लदा था। वह जहाज़ उस खाड़ी में सन् १५८६ में पहुँचा। उसने मुल नामक टापू के पास जाकर लङ्गर डाला। उसी समय समीपवर्ती भूमि के निवासी एक वीर सैनिक ने उसका स्वागत किनारे से किया। उसने जहाज़ के कप्तान से १०० सैनिक माँगे, जिनके बदले में उसने अधिक परिमाण में भोजन सामग्री देने का वचन दिया। कप्तान को खाद्य-सामग्री की आवश्यकता थी, अतएव वह उस प्रस्ताव पर राज़ी हो गया। इधर जहाज़ का कप्तान सामग्री ग्रहण कर ताज़े भोजन पर हाथ फेरने लगा उधर पूर्वोक्त योद्धा नये सैनिकों को लेकर अपने शत्रुओं पर चढ़ गया। भोजन कर चुकने के बाद जहाज़ के कप्तान को ज्ञात हुआ कि उसने कैसी भयङ्कर भूल की है। उसे इस बात की ख़बर तुरन्त ही मिल गई कि उक्त योद्धा डुअर्ड वंश का सरदार सर लौचलन मैकलीन है। वह स्काट्लेंड के राजा प्रथम जेम्स का राजद्रोही है और उस समय मैक-लीन की अपनी प्रतिद्वन्द्विनी जाति से युद्ध कर रहा था। ऐसी दशा में यदि वह स्वयं फ़्लोरिडा के विरुद्ध ही अपने दलवालों को चढ़ा लावे तो आश्चर्य ही क्या है।

अतएव कप्तान ने मिनगरी नामक स्थान को अपना दूत भेज कर अपने आदमी वापस माँगे। सर लौचलन उस समय इसी स्थान से अपने शत्रु के दुर्ग पर आक्रमण कर रहा था। कुछ समय के बाद जब कप्तान ने अपने आद-मियों को वापस आते देखा तब वह बहुत ख़ुश हुआ। उसके ९७ सैनिकों को लेकर डगलस ग्लेस मैकलीन आ उपस्थित हुआ। यह अपने वंश में सबसे छोटा, पर सबसे अधिक प्रचंड था। कप्तान ने उससे पूछा कि और तीन आदमी कहाँ गये? डगलस ने कहा कि तुम अभी हमारे ऋण से उऋण नहीं हुए, अतएव हमने तुम्हारे तीन आदमी रोक लिये हैं। जब तुम हमारी भोजन-सामग्री का पूरा बदला दे दोगे तब हम उन्हें छोड़ देंगे। परन्तु कप्तान ने उसकी दलील की ओर विशेष ध्यान न दिया और डगलस को निरस्त्र कर क़ैद कर लिया। इस अन्याय से डगलस रुष्ट हो गया और उसने जहाज़ की मैगज़ीन में आग लगा दी, जिससे वह ध्वंस होकर वहीं का वहीं समुद्र में बैठ गया। फ़्लोरिडा की यही संक्षिप्त कहानी है। सैकड़ों धनलोलुपों ने मुल के किनारे अपना सिर मारा है। फ़्लोरिडा के डूबने के ठीक सौ वर्ष बाद उस ख़ज़ाने का कुछ अंश प्राप्त करने में मान का गवर्नर सचेवीरल समर्थ हुआ था। सन् १७४० में सर आर्चीबाल्ड ग्रांट और कैप्टन रोज़ ने भी प्रयत्न किये, पर सफल न हुए। तब से कई एक प्रयत्न किये गये, पर कुछ विशेष हाथ न लगा।

अफ़्रीका के अद्भुत द्वीप की प्रहेलिका इस समय भी अनेक लोगों को विस्मृत न हुई होगी। एक दिन एक नाविक उस टापू से लौट कर स्वदेश आया। उसकी जेबें मूल्यवान् रत्नों से परिपूर्ण थीं। उसने कहा—संयोगवश मैं एक ऐसे टापू में जा पहुँचा था जिसके किनारे रत्नों से आच्छादित थे। उसके कथन में किसी को किसी प्रकार के सन्देह की गुंजाइश न थी, क्योंकि उसने समुचित प्रमाणों से अपने कथन का समर्थन किया। परन्तु वह यह न बता सका कि उक्त टापू किस स्थान पर स्थित है। इसके सिवा उसे इतना अधिक धन प्राप्त हो गया था कि वह उसकी खोज के लिए जाना भी नहीं चाहता था। जब उसकी मृत्यु हुई तब उसकी चीज़ों के साथ एक साधारण काग़ज़ मिला। उसमें उस द्वीप के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख था। तभी उस टापू की खोज करने का साधन लोगों को प्राप्त हुआ, पर विशेष उद्योग करने पर भी कोई उसका पता न लगा सका।

सन् १६१२ की जुलाई में दो स्त्रियों ने प्रशान्त महा-सागर के कोकोस टापू की यात्रा की। इनका दल एक प्रसिद्ध ख़ज़ाने की खोज में निकला था। कहा जाता है कि उस ख़ज़ाने का कुछ भाग सन् १८२१ में समुद्री डाकुओं ने और कुछ भाग स्पेन के नाविकों ने उसी द्वीप में गाड़ा था। लोगों का अनुमान है कि उक्त ख़ज़ाने में एक करोड़ साठ लाख पौंड का धन होगा। इस ख़ज़ाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्राप्ति के लिए कई बार निष्फल उद्योग किये गये। लुटाइन नामक एक पुराना अँगरेज़ी जहाज़ ज़ूडर ज़ी में डूब गया था उसमें कोई सवा दस लाख पौंड का ख़ज़ाना अनुमान किया जाता है। उसका द्रव्य निकालने के लिए भी सन् १९१२ में प्रयत्न किया गया था। इसके पहले भी इस कार्य में सफलता हुई थी और थोड़ा-बहुत धन पहले निकाला भी गया था।

यदि अधिकारी लोग वेस्ट मिनस्टर के गिरजाघर में स्थित एडमंड स्पेंसर की क़ब्र खोदने की अनुमति दें तो उसके भीतर बहुत कुछ अद्भुत वस्तुओं की प्राप्ति की सम्भावना है। क्योंकि कैम्डेन ने लिखा है कि स्पेंसर की शव-यात्रा के साथ कवि लोग थे और जो शोक-सूचक कवितायें लिखी गई थीं वे सब क़लम इत्यादि के सहित क़ब्र में दफ़न कर दी गई थीं। कैम्डन उस समय वहां उपस्थित था। अतएव उसने अपनी आंखों देखी लिखी है। यद्यपि उस गिरजे की ज़मीन, जहां कवियों की क़ब्रें हैं इतनी रूखी और रेतीली है कि नई क़ब्र खोदते समय अगल बग़ल की क़ब्र से पुराने अस्थि-पञ्जरों के टुकड़े प्रायः निकल पड़ते हैं। एक खोपड़ा जो बेन जानसन का बताया जाता है दो बार निकला था और उसकी जांच हुई थी। बहुत सम्भव है कि उन कवियों की हस्त-लिखित प्रतियां स्पेंसर के तावूत में अब भी सुरक्षित हों। उनमें शेक्सपियर की लिखी हुई शोक-सूचक कविता भी होगी। क्योंकि वह भी उस जनाज़े के जुलूस में शामिल था। शेक्सपियर के हस्ताक्षरों के उदाहरण बहुत कम उपलब्ध होते हैं। अतएव यदि उस क़ब्र से शेक्सपियर के हाथ की लिखी हुई रचना प्राप्त हो जाय तो कम से कम इस सन्देह को निर्मूल करने में बहुत कुछ सहायता मिल जाय कि शेक्सपियर पढ़ना-लिखना जानता था या नहीं।

यद्यपि पूर्वोक्त प्रकार की कहानियों में कुछ विचित्रता अवश्य है, तो भी ऐसी भी अनेक दूसरी कहानियां लोगों को मालूम हैं जो इनसे अधिक चमत्कार-पूर्ण कही जा सकती हैं। उदाहरण के लिए सैलिसबरी के मैदान में जो पत्थर के स्तम्भ खड़े हैं वे जैसे प्राचीन हैं, वैसे ही उनकी कथायें भी रहस्यपूर्ण हैं। लोगों का कहना है कि प्राचीन काल में ब्रीटेन के ड्रयूड नामधारी पुरोहितों ने उन्हें खड़ा किया था, परन्तु यह बात ग़लत सिद्ध हो जाती है जब हम उसके इसी प्रकार के दूसरे स्थापत्य कला के नमूनों से इनकी तुलना करते हैं। इनके सम्बन्ध की एक कथा यह भी कही गई है कि इन्हें अन्तिम ब्रीटेन नरेश एमरिस या अम्ब्रोसियस ने एक जादूगर की सहायता से उन ४६० ब्रीटन वीरों की स्मृति के लिए स्थापित किया था जो सैक्सन डाकू हेंजिस्ट द्वारा मार डाले गये थे। परन्तु यह भी सम्भव है कि ये स्तम्भ और भी अधिक पहले के हों। चाहे जो हो इनका तथ्य अभी तक पुरातत्त्वविद् नहीं जान सके हैं। यही नहीं, किन्तु वहां के स्तम्भों पर जो बेड़े शिला-खण्ड रक्खे हुए हैं वे कैसे रक्खे गये थे—यह बात भी, जब हम उस समय की सभ्यता की स्थिति का ध्यान करते हैं, समझ में नहीं आती हैं। अधिक आश्चर्य तो उन विशाल शिलाखण्डों को देख कर होता है जो इस प्रकार अपने स्थान पर स्थित हैं कि ज़रा से धक्के में तो वे आगे या पीछे को हिल जाते हैं, पर लुढ़कते नहीं, अपने स्थान पर ज़माने से डटे हुए हिल रहे हैं। ऐसे शिला-खण्ड संसार के भिन्न भिन्न देशों में पाये जाते हैं। लोग अनुमान करते हैं कि इनसे भविष्य की परीक्षा की जाती रही होगी।

मिस्र के पिरामिडों को देख कर यह मानना ही पड़ता है कि प्राचीन काल में पूर्वी देश पाश्चात्य देशों की अपेक्षा सभ्यता में बहुत कुछ आगे थे। पूर्व ऐतिहासिक काल के मिस्र में विज्ञान जैसी स्थिति को पहुँच गया था उसके आगे इस समय का विज्ञान-युग एक साधारण वस्तु है। पेलेस्टाइन के गेज़र नामक स्थान में जो सुरङ्ग निकला है वह भी प्राचीन काल के कलानैपुण्य का एक अद्भुत उदाहरण है। अध्यापक मैकअलिस्टर के पुत्र की निगरानी में इस सुरङ्ग की खोदाई का काम हुआ था। उसका कहना है कि यह सुरङ्ग ईसा के २०० वर्ष पूर्व की है। इसकी रचना का क्या मतलब था, यह पता नहीं लगता। यह उतना ही ऊँचा है जितना कि 'ट्र पेनी ट्यूब'। इसकी चौड़ाई उसकी आधी है। इसमें ८० सीढ़ियां हैं और यह ज़मीन के भीतर १३० फ़ुट तक गया है।

यदि हम ज्योतिष की ओर अपना ध्यान देते हैं तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे सवाल हमारे सामने आ उपस्थित होते हैं जिनके उत्तर आज तक किसी ने नहीं दिये। दुमदार सितारा क्या है? हमारा सूर्य जिस शक्ति के अधीन है वह कहाँ है? और उस शक्ति का सञ्चालक कहाँ है? क्या ग्रह सूर्य के समीपतम है। क्या मङ्गल ग्रह के बाँधों से यह सूचित होता है कि वहाँ मनुष्य आबाद हैं? ऐसे ही अन्य प्रश्न भी हैं जो अभी तक हल नहीं हुए।

और जाने दीजिए। सूर्य के धब्बों का ही विचार कीजिए। ये धब्बे क्या हैं, इस सम्बन्ध में ज्योतिषियों का मत नहीं मिलता। कोई कुछ कहता है तो कोई कुछ। यद्यपि यह नहीं निश्चय होता कि वे क्या हैं, किन्तु आश्चर्य तो इस बात में होता है जब हम उनका विचित्र सम्बन्ध नाविकों के दिग्सूचक यन्त्र से पाते हैं। सूर्य के ये धब्बे किसी किसी समय अधिक संख्या में देख पड़ते हैं। जब जब सूर्य पर अधिक धब्बे नज़र आने लगते हैं तब तब कम्पास की सुई ध्रुव का ठीक सङ्केत नहीं करती। परन्तु जब वे धब्बे कम संख्या में देख पड़ते हैं तब उक्त सुई अपना काम बहुत दुरुस्त करती है। ऐसा क्यों होता है, यह मसला भी अभी तक न हल हो सका।

हम देखते हैं कि लोग निरर्थक खोज का काम सदा से करते रहे हैं। एक ऐसे आदमी की मृत्यु सन् १९०२ में हुई थी जिसने अपने जीवन के अन्तिम ४५ वर्ष एवं कोई १५,००० पौंड केवल नीला गुलाब उत्पन्न करने में लगा दिये। डी कैन्डोली का मत है कि नीला गुलाब का उत्पन्न होना असम्भव है। फूलों में असली रङ्ग केवल दो ही—नीले और पीले—होते हैं और प्रकृति के नियम के अनुसार वे एक दूसरे से सर्वथा भिन्न रहते हैं। यदि कोई विशेष प्रकार की प्रक्रिया की भी जाय तो पीला लाल में परिणत हो सकता है। परन्तु वे दोनों एक दूसरे में कदापि परिणत नहीं हो सकते। अतएव पीला गुलाब तो उत्पन्न किया जा सका है, पर नीला नहीं। परन्तु डी कैन्डोली का तर्क पूर्वोक्त व्यक्ति को मान्य न हुआ। जैकाब मारकेलिस नामक एक दूसरे अध्यापक ने वृत्त को समकोण में परिणत करने के लिए अपनी आयु के ४३ वर्ष खपा दिये। उसने यह परिणाम निकाला कि परिधि का व्यास ठीक ३ १००८४४९०८७३७७५४१६७९८९४२८२१८४८९४ / ६९९७१८३६३७५४०८१९४४००३५२३९२७१७०२ गुणा होता है। खेद से कहना पड़ता है कि उसकी गणना ग़लत सिद्ध हुई। यह प्रमाणित हो गया है कि गणना करने से वह ७०७ दशमलव से कम नहीं जाती।

अभी तक दो का वर्गमूल भी नहीं निकाला जा सका है। डाक्टर डब्ल्यू० एच० कोलविली ने इसमें सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न किया था, पर वे १११ दशमलव स्थान तक ही गणित कर सके। उनके गणित का फल यह निकला था—१·४१४२१३५६२२३
७०९५०४८८०१६८८७२४२०९६९८०७८५६९६७१८७
५३७०९४८०७३१७६६७९७३७९९०७३२४७८४६२१०७
०३८८५०३८७५३४३२७६४१५७२७३५०१३८४६२३।
परन्तु सम्भवतः सबसे अधिक समय और जानें शाश्वत-गति का ज्ञान प्राप्त करने में खपी हैं। शायद ही कोई आदमी ऐसा हो जो यह समझता हो कि ऐसा इञ्जिन बन सकता है जो बाहर की शक्ति के बिना अपने आप सदा-सर्वदा चलता रहे। परन्तु ऐसे लोगों का भी अस्तित्व इस संसार में है जो इस प्रकार के इञ्जन के बनाने की चिन्ता में तल्लीन रहते हैं। उनमें से कुछ यह समझते हैं कि हम एक लुप्तप्राय विद्या को पुनरुज्जीवित करने की चेष्टा में निरत हैं और कुछ के प्रयत्न का यह उद्देश है कि इस कार्य को पूर्ण करनेवाले के लिए बहुत बड़ा सरकारी पुरस्कार अलग किया रक्खा है।

अब हम एक दूसरी बात कहते हैं। ग्लामिस कैसल नामक किले के रहस्यपूर्ण कमरे का भेद सिवा तीन आदमियों के और कोई नहीं जानता। यदि उनसे उसके सम्बन्ध में कुछ पूछा जाता है तो वे इस सम्बन्ध में बात तक नहीं करते। लोग समझते हैं कि उसके भीतर कोई भयङ्कर वस्तु रक्खी है। वह १५ फुट मोटे पत्थर से लपेटी हुई है। वह क्या है, यह उस कैसल का स्वामी या उसका उत्तराधिकारी बता सकता है या उस स्थान के सम्बन्ध की बातों से उसका भेद खुल सकता है। पर इनमें से एक से भी उसका भेद नहीं खुलने पाता।

इस कैसल के उस कमरे के भेद की रक्षा खूब सावधानी के साथ की गई है। उसके स्वामी के सिवा और कोई कभी नहीं जान सका है। उसके स्वामियों का सदा यह कर्तव्य रहा है कि उसका कुछ भी हाल किसी को ज्ञात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न होने पावे। एक बार कैसल की मरम्मत हो रही थी। संयोगवश एक कारीगर को उस कमरे के सम्बन्ध की कोई ख़ास बात मालूम हो गई। उसने जाकर उसके स्वामी के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। दूसरे ही दिन सुना गया कि कैसल के स्वामी ने एक बड़ी रक़म देकर उसे बाल-बच्चों सहित आस्ट्रेलिया भेज दिया।

एक समय एक नवयुवक डाक्टर को ग्लामिस कैसल में ठहराना पड़ा था। सोने के लिए जब वह अपने बिस्तरे पर जाने लगा तब उसे यह जान कर कि फ़र्श की दरी बेतर्तीब हो गई है बड़ा ताज्जुब हुआ। क्योंकि उसके पहले वहां कोई नहीं गया था। उसने उसे फिर ठीक कर दिया। ऐसा करते समय उसे एक चोर दरवाज़ा दिखाई पड़ा। वह चकित होकर उसके भीतर गया। वहां उसे एक दीवार मिली। जिस पर ताज़ा ही पलस्तर किया गया था। जब उसने उसका स्पर्श किया तब उस पर उसकी अँगुलियों का निशान बन गया। आश्चर्य में पड़ कर वह अपने कमरे को लौट आया। उसने निश्चय किया कि कुछ समय तक इसका भेद किसी से न कहूँगा। परन्तु दूसरे ही दिन उसके स्वामी लार्ड स्ट्राथ मोर ने उसे जवाब दे दिया। उन्होंने कहा—अब यहां आप का कुछ काम नहीं है। यह तो अन्य देशों की बात हुई। भारतवर्ष में भी ऐसे अनेक रहस्यमय स्थान बतलाये जाते हैं। गड़े हुए ख़ज़ानों का तो यहां ठिकाना नहीं हैं। इनका भी हाल बतलाने की कभी चेष्टा की जायगी।

गजाधरप्रसाद दुबे

भारतीय दर्शन-शास्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति।

भारतीय दर्शन-शास्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में तीन सिद्धान्त हैं अर्थात् आरम्भवाद, परिणामवाद और विवर्तवाद। न्याय, वैशेषिक और पूर्व-मीमांसा का मत आरम्भवाद है, सांख्य और योग का मत परिणामवाद है और वेदान्त का सिद्धान्त विवर्तवाद है।

आरम्भवाद—जैसे किसी प्राचीन भवन के नाश होने पर उसकी ईंट, पत्थर आदि सामग्री से नवीन भवन का निर्माण होता है वैसेही सृष्टि के नष्ट होने पर उसके पञ्चतत्त्वों के परमाणुओं से, जो ज्यों के त्यों बने रहते हैं, नई सृष्टि का आरम्भ होता है। ये परमाणु फिर आपस में मिल कर वस्तुओं के रूप में आ जाते हैं। इस मत में कार्य-कारण का भेद माना गया है अर्थात् कार्य से कारण पृथक् है। सृष्टि का उपादान कारण परमाणु अर्थात् प्रकृति है और निमित्त कारण ईश्वर है।

परमाणु का लक्षण यह है :—

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
भागस्तस्य च षष्ठो यः परमाणुः स उच्यते॥

जाल के भीतर सूर्य-किरणों के जाने से जो सूक्ष्म रज दिखाई देती है, उस रज के छठे हिस्से का नाम परमाणु है। इसके खण्ड नहीं हो सकते हैं। अपने रूप में परमाणु नित्य हैं और जब परमाणु आपस में मिल जाते हैं तब वे अनित्य और नाशवान् हो जाते हैं। संसार की सब वस्तुएँ इन्हीं की बनी हुई हैं।

पहले पहले ईश्वर की इच्छा से दो परमाणु आपस में मिलते हैं और इस अवस्था में वे अणु कहलाते हैं। जब तीन अणु मिलते हैं तब वे दिखाई देने लगते हैं। फिर चार अणु मिलते हैं। इसी प्रकार आपस में मिलते मिलते ये संसार की सब वस्तुओं के रूप में हो जाते हैं। संसार की उत्पत्ति का आरम्भ परमाणुओं के मिलने से होता है, इसलिए इस मत का नाम आरम्भवाद है।

आरम्भवाद का नाम पाश्चात्य दार्शनिक शास्त्रों में Atomic Theory है। इसका प्रचार यूनान के प्राचीन तत्त्ववेत्ताओं के समय से आज तक हो रहा है, पर इस विचार के कई अंशों में परिवर्तन हो गया है। परमाणु कितना भी सूक्ष्म क्यों न हो, उसमें आकार और विस्तार अवश्य रहेंगे। जिसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तार और आकार है उसके खण्ड अवश्य हो सकते हैं, क्योंकि आकारवाली वस्तु का अखण्ड होना कल्पना से परे है। आरम्भवाद में यह दोष आता है; अतः यह सिद्धान्त बहुत उच्चकोटि का नहीं माना गया है।

परिणामवाद—परिणाम का अर्थ रूपान्तर होना है, जैसे दुग्ध का परिणाम दही है। एक ही वस्तु रूपान्तर होने से दूसरी दिखाई देने लगे तो वह परिणत हुई कहलाती है। सांख्य मत में जगत्, प्रकृति का परिणाम वैसे ही है जैसे दुग्ध का परिणाम दही है। इस मत में कार्य-कारण का अभेद है। न्यायमत में कार्य-कारण का भेद है—

परिणामवाद का सिद्धान्त बहुत प्राचीन है और इस मत को आधुनिक विज्ञान ने भी बड़े महत्त्व का माना है—डार्विन Darwin की Evolution Theory इसी परिणामवाद की नक़ल है। डार्विन साहब तो आधुनिक युग के हैं, पर इस देश में परिणामवाद सहस्रों वर्षों से प्रचलित है।

सांख्यमत में प्रकृति का परिणाम इस प्रकार है—

प्रकृति में सत्व, रज, तम, तीन गुण हैं। इन्हीं को प्रकृति की तीन शक्तियाँ समझनी चाहिए—

सत्वगुण के लक्षण निर्मलता, प्रकाश, आरोग्य और सुख हैं।

रजोगुण का लक्षण—राग और तृष्णा उत्पन्न करना है।

तमोगुण के लक्षण—प्रमाद, आलस्य, निद्रा, मोह आदि हैं।

इन तीनों गुणों का कार्य प्रकृति में हमेशा होता रहता है—कभी सत्वगुण रज, तम गुणों को दबा कर प्रधान हो जाता है—कभी रजोगुण सत्व और तम गुणों के ऊपर बाज़ी मार जाता है और कभी तमोगुण ही सबके ऊपर हो जाता है। इन गुणों की विषमता के कारण ही सृष्टि बनती बिगड़ती रहती है। जब ये तीनों गुण साम्यावस्था को प्राप्त हो जाते हैं—अर्थात् तीनों बराबर एक सी अवस्था में हो जाते हैं तब सृष्टि का कार्य बन्द हो जाता है। इस रूप में प्रकृति को प्रधान कहते हैं। इस साम्यावस्था में जब किसी प्रकार क्षोभ होता है—चाहे यह ईश्वर की इच्छा से हो चाहे पुरुष के संयोग से हो—तब प्रकृति का विकास होने लगता है।

अव्यक्त प्रकृति की वह अवस्था है जिसमें अभी तक विकासारम्भ नहीं हुआ है। अव्यक्त अवस्था में सत्वगुण प्रधान होने से बुद्धि का विकास होता है। बुद्धि का परिणाम अहंकार है और अहंकार से ५ तन्मात्राएँ अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनके सूक्ष्मतत्त्व उत्पन्न होते हैं। यही ८ प्राकृतिक तत्त्व हैं अर्थात् ऐसे तत्त्व जो दूसरे तत्त्वों को उत्पन्न करें, १६ विकार ऐसे हैं जो दूसरे तत्त्वों को नहीं उत्पन्न करते हैं।

९—१४ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण।

१५—१८ पाँच कर्मेन्द्रियाँ—हस्त, पद, वाणी, गुदा, उपस्थ।

१९—मन।

२०—२४ पाँच महाभूत—आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी।

यह सब विकास पुरुष के सामने होता है। जिस क्रम से विकास होता है उसे संक्रम कहते हैं और इससे विपरीत क्रिया जिससे प्रलय होती है प्रतिसंक्रम कहलाती है—यही हेगिल का Evolution and desolution Hegel सिद्धान्त है। इसी परिणामवाद को शङ्कराचार्य से पृथक् वेदान्त सम्प्रदाय के आचार्य अर्थात् श्रीरामानुजाचार्य, श्रीवल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि इस प्रकार मानते हैं—

ईश्वर में चित् और अचित् दोनों तत्त्व हैं—उसके चित् तत्त्व का परिणाम चेतन पदार्थ हैं और अचित् तत्त्व का परिणाम जड़ पदार्थ हैं। दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर तत्त्वों के परिणाम हैं—जगत् ईश्वर के अचित् तत्त्व का परिणाम है और उसका शरीर है और जीव उसके चित्तत्त्व का परिणाम है।

विवर्तवाद—विवर्त का अर्थ कल्पित कार्य है—जो वस्तु हो नहीं लेकिन दिखाई दे। जैसे रज्जु अँधेरे में सर्प दिखाई देने लगती है—रज्जु सर्प नहीं है परन्तु अज्ञान भ्रम से सर्परूप दिखाई देती है। रज्जु अधिष्ठान से विषम सत्तावाला अन्यथा स्वरूप सर्प दिखाई देता है—यह सर्प रज्जु का विवर्त है अर्थात् कल्पित रूप है। इसी प्रकार ब्रह्म अधिष्ठान से विषम सत्तावाला अन्यथारूप जगत् दिखाई देता है—वास्तव में कुछ नहीं है—कल्पना-मात्र है।

दूसरे शब्दों में जगत्, ब्रह्म का विवर्त है अर्थात् कल्पित कार्य है—यह अज्ञान के कारण दिखाई देता है। इस सिद्धान्त में कार्य-कारण का बाधकृत अभेद है अर्थात् कार्य का नाश होने पर कारण ही एक रह जाता है।

शुद्ध ब्रह्म तत्त्व ही एक है—प्रपञ्च अर्थात् जगत् इसका विवर्त होने से मिथ्या है। यह प्रपञ्च हुआ कैसे, इसका यह उत्तर है। इस प्रपञ्च, जगत्, का आरोप ब्रह्म में अज्ञान से हुआ है। जब अज्ञान का नाश हो जाता है तब प्रपञ्च का भी लोप हो जाता है। अनादि शुद्ध ब्रह्म के साथ अनादि कल्पित प्रकृति का अनादि कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध है, जो कल्पित भेद सहित है पर वास्तव अभेदरूप सम्बन्ध है। प्रकृति के तीन रूप हैं—माया, अविद्या और तमः रज, तम गुणों को दबाता हुआ सत्वगुण शुद्ध सत्वगुण कहलाता है। शुद्ध सत्वगुण युक्त प्रकृति का नाम माया है। ऐसा सत्वगुण जिसे रज या तम गुण दबा ले, मलिन सत्वगुण है। मलिन सत्व-गुण युक्त प्रकृति का नाम अविद्या है। तमोगुण युक्त प्रकृति का नाम तमः या अज्ञान है। माया में ब्रह्म के प्रतिबिम्ब को ईश्वर कहते हैं जो सर्वत्र है। यही जगत्कर्त्ता है—शुद्ध ब्रह्म नहीं।

अविद्या में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव है जो अल्पज्ञ है। माया ईश्वर की उपाधि है—इसी के द्वारा वह कुम्भकार की तरह जगत् का निमित्त कारण है। तम-प्रधान प्रकृति के द्वारा वह मृत्तिका की तरह जगत् का उपादान कारण है अर्थात् ईश्वर जगत् का उपादान और निमित्त दोनों कारण है—जगत् रचना से शुद्ध ब्रह्म का कोई सम्बन्ध नहीं है।

भारतीय दर्शनों में सृष्टि अनादि मानी गई है। मतलब यह कि अनादि काल से वह प्रकट और लुप्त होती आई है। इसलिए किसी सृष्टि से पूर्व जीवों की उपाधि अविद्या जीवों के कर्मसहित माया में लीन होकर रहती है। सुषुप्ति में जैसे अविद्या जीव से भिन्न नहीं होती वैसे ही माया ब्रह्म से भिन्न प्रतीत नहीं होती है। अतः सृष्टि से पहले सजातीय और विजातीय स्वगत भेदरहित एक ही अद्वितीय सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म रहता है। सृष्टि के आरम्भ में जीवों के परिपक्व हुए कर्मरूप निमित्त से ब्रह्म की ऐसी इच्छा हुई कि मैं एक से बहुरूप हूँ। इस इच्छा से ब्रह्म की उपाधि माया में क्षोभ हुआ और इससे आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी ये पञ्च भूत उत्पन्न हुए। इन्हीं पञ्च भूतों से समष्टि-व्यष्टि-रूप सूक्ष्म सृष्टि उत्पन्न हुई। फिर ईश्वर की इच्छा से इन पञ्चभूतों का पञ्चीकरण हुआ अर्थात् प्रत्येक भूत का ऐसा रूप हो गया कि उसमें अर्द्धांश तो उस भूत का रहा और बाक़ी अर्द्धांश में अन्य चारों तत्त्वों के बराबर के एक एक अंश आगये। ऐसे पञ्चीकृत तत्त्वों से समष्टि-व्यष्टिरूप स्थूल सृष्टि उत्पन्न हुई। इस सृष्टि में कारण, सूक्ष्म और स्थूल, ये तीन शरीर हैं और अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय पाँच कोश हैं।

यही प्रपञ्चविकाश का क्रम है—ब्रह्म में इस प्रपञ्चरूप जगत् का आरोप वैसे ही है जैसे रज्जु में सर्प का, साक्षी में स्वप्न का और दर्पण में नगर-प्रतिबिम्ब का। जैसे ये सब मिथ्यारूप हैं वैसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत्प्रपंच भी मिथ्या है। दार्शनिक विचार-दृष्टि से यह प्रश्न करना कि यह आरोप कब और क्यों हुआ निष्प्रयोजन है—इसकी निवृत्ति का उपाय करना चाहिए। इसकी निवृत्ति ब्रह्मज्ञान से ही हो सकती है। दूसरे शब्दों में ब्रह्मज्ञान से माया और अविद्या की निवृत्ति होती है। इस निवृत्ति से कार्य सहित प्रकृति की निवृत्ति होती है जिससे ब्रह्म और प्रकृति के सम्बन्ध की निवृत्ति होती है और उस निवृत्ति से जीवभाव और ईश्वरभाव की निवृत्ति होती है। उससे जीव-ईश्वर भेद की निवृत्ति होती है और उससे बन्ध की निवृत्ति होती है और तब मोक्ष सिद्ध होता है।

अद्वैत वेदान्त की प्रशंसा अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने मुक्तकंठ से की है—मैक्समूलर साहब ने तो इसके सिद्धान्तों को सभी पाश्चात्य तत्त्ववेत्ताओं के सिद्धान्तों से उच्च और श्रेष्ठ बताया है। पाश्चात्य देशों में भी अद्वैत वेदान्त के विचार मिलते हैं, पर वे इस कोटि के नहीं हैं। प्लोटिनस, पारमीमिडिज, प्लेटो, कान्ट, फिकटे, हेगिल, हरेकलिटीज, ब्रूनो, स्पिनोजा आदि बड़े बड़े धुरन्धर तत्त्ववेत्ताओं के विचार वेदान्त से मिलते जुलते हैं; पर इनमें से वेदान्त की पराकाष्ठा को कोई नहीं पहुँचा है। अद्वैत वेदान्त में भी कई मत हैं जैसे अवच्छेदवाद, आभासवाद, प्रतिबिम्बवाद, एकजीववाद और नानाजीववाद।

मायावच्छिन्न चेतन ईश्वर है और अविद्यावच्छिन्न अथवा अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन जीव है—यह अवच्छेदवाद है।

शुद्ध चेतन और माया में शुद्ध चेतन का आभास ईश्वर है, और अविद्या या बुद्धि या अन्तःकरण, अविद्या या बुद्धि या अन्तःकरण का अधिष्ठान कूटस्थ और उसका आभास अविद्या या बुद्धि या अन्तःकरण में जीव है—यह आभासवाद है।

माया उपहित शुद्ध चेतन ईश्वर है अथवा माया में शुद्ध चेतन का प्रतिबिम्ब ईश्वर है और अविद्या में शुद्ध चेतन का प्रतिबिम्ब जीव है—यह प्रतिबिम्बवाद है।

शुद्ध चेतन अपने आश्रित अज्ञान की उपाधि ले करके जीव हुआ। इसी एक जीव ने नाना जीव ईश्वर और संसार की कल्पना अपने विषय में की अथवा शुद्ध चेतन में हिरण्यगर्भ एक जीव कल्पित हुआ—यह एकजीववाद है।

मायावच्छिन्न चेतन ईश्वर और अज्ञान नानांश अवच्छिन्न चेतन नाना जीव—यह नाना जीववाद है। इन मतों के और भी कई भेद हैं।

इन सब मतों का अन्तिम सिद्धान्त एक ही है और वह है—

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।

अर्थात् ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव ब्रह्म से पृथक् नहीं है।

कन्नोमल एम० ए०

सामाजिक नाटक।

(१)

हिन्दी-संसार में सामाजिक नाटकों की लोक-प्रियता बढ़ती जा रही है। जनता की माँग पूरी करने के यत्र तत्र प्रयास भी हो रहे हैं। फिर भी समालोचक को यह कहते संकोच नहीं हो सकता कि वृद्धि संख्या की ही हो रही है, गुणगरिमा की नहीं। अपने देश के ही सर्व्वश्रेष्ठ नाटककार कह गये हैं कि "आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्"। पर, आज विद्वानों के परितोष की किसे परवा है! टिकट ख़रीदनेवालों का परितोष हुआ और नाट-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ककार ने अपना प्रयत्न सफल समझा। मैं उसे इसके लिए दोष नहीं देता, पर मैं यह कैसे भूल सकता हूँ कि दर्शकों की आँखों में धूल झोंकना और बात है, काव्य-परीक्षकों से प्रशंसापत्र प्राप्त करना और। जो हो, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि हिन्दी में ऐसे पद-चिह्न भी नहीं मिलते जिनके अनुसरण से हिन्दी नाट्यकार विशेष उपकृत हो सकें। संस्कृत-नाटक के भस्मावशेष से व्रजभाषा में किसी नाटक का आविर्भाव न हो सका। हिन्दी में नाटक का श्रीगणेश तो उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से होता है। अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी सामाजिक नाटक की अवस्था विशेष उन्नत नहीं। अपने देश में, हम आदर्शों के लिए संस्कृत-साहित्य का दरवाज़ा खट-खटा सकते हैं, पर अर्वाचीन समाज प्राचीन समाज से इतनी दूर जा पड़ा है कि वहाँ हमारे प्रश्नों के जो उत्तर मिलते हैं उनसे हमें पूरा सन्तोष नहीं होता। आज से प्रायः चालीस बरस पहले "भारतेन्दु" को भी यही अनुभव हुआ था। अपने "नाटक"—ग्रन्थ में वे लिखते हैं:—"प्राचीन काल के अभिनयादि के सम्बन्ध में तात्कालिक कवि लोगों की और दर्शकमण्डली की जिस प्रकार रुचि थी वे लोग तदनुसार ही नाटकादि दृश्य काव्य रचना करके सामाजिक लोगों का चित्तविनोदन कर गये हैं, किन्तु वर्तमान समय में इस काल के कवि तथा सामाजिक लोगों की रुचि उस काल की अपेक्षा अनेकांश में विलक्षण है, इससे सम्प्रति प्राचीन मत अवलम्बन करके नाटक आदि दृश्य काव्य लिखना युक्ति-सङ्गत नहीं बोध होता"।

अवश्य ही कोई यह प्रस्ताव करने या परामर्श देने की धृष्टता नहीं कर सकता कि नाटक-रचना में प्राचीन पद्धति का पूर्णतया परित्याग कर दिया जाय। लक्ष्य तो यही होना चाहिए कि काम की बातें जहाँ मिलें वहाँ से उन्हें लाना और अपनाना। जहाँ तक इस लेख का सम्बन्ध है यह केवल एक ऐसी दिशा में, तत्त्वान्वेषण की सलाह देता है जिस ओर भारतवर्ष ने अभी तक बहुत कम ध्यान दिया है। यह दिशा है पाश्चात्य जगत् के "आधुनिक नाटकों" की। पश्चिम की वस्तु पूर्व के काम की नहीं हो सकती, पर उसकी वस्तु-निर्म्माण की विधि या प्रणाली इसके लिए कितने ही क्षेत्रों में सर्वथा अनुकरणीय है। संसार-मात्र की अवस्थाएँ धीरे धीरे एक समतल प्रदेश में आ रही हैं—क्या नाटककार यह नहीं देखते? और जब फ़ोटोग्राफी यहाँ भी आने ही वाली है तब हम 'केमेरा' के विषय से पूरे अनभिज्ञ क्यों बने रहें?

तो यह "आधुनिक नाटक" है क्या चीज़? जब कोई यह सुनता है कि "सामाजिक नाटक", "समस्या-सम्बन्धी नाटक" इसी "आधुनिक नाटक" की विशेष संज्ञाएँ हैं तब वह पहला प्रश्न यही करता है कि क्या प्राचीन काल में नाटक का सम्बन्ध समाज या समस्या से न रहता था? पश्चिम की तो बात ही जाने दीजिए, अपने नाटकों में, "लोकातीत असम्भव कार्यों की अवतारणा" करनेवाले भारतवर्ष ने ही तो "मृच्छकटिक", "मुद्राराक्षस" और "प्रबोध-चन्द्रोदय" को जन्म दिया था, जिनमें तत्कालीन समाज का जीता-जागता आंशिक चित्र हमें इस समय भी मिल सकता है। यदि आज-कल के "सामाजिक नाटक" कुछ भी महत्त्व रखते हैं—और ऐसे लोगों की कमी नहीं जिनकी दृष्टि में वह कुछ नहीं, बहुत महत्त्व रखते हैं—तो उनकी विशेषता क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले मैं पाठकों को साहित्य-निर्म्माण के उद्देश या उद्देशों की याद दिलाता हूँ।

साधारणतः, हम साहित्यिक के उद्देश के सम्बन्ध में यह कह सकते हैं कि वह या तो हमें अपनी वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान कराना चाहता है, या हमें एक ऐसे प्रदेश में ले जाना चाहता है जिसे हमने अभी तक देखा नहीं, पर हो सकता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके लिए हमारी अन्तरात्मा तरस रही है। इसी लिए साहित्य के दो प्रधान लक्ष्य माने गये हैं, और उसकी सभी प्रवृत्तियाँ "वस्तुवाद" और "आदर्शवाद" के अन्तर्गत समझी गई हैं। "वस्तुवादी" और "आदर्शवादी" बहुधा एक ही लेखक में मिले होते हैं, और यही कारण है कि अधिकांश काव्य-कृतियाँ किसी एक श्रेणी में नहीं रक्खी जा सकतीं। कहने के लिए तो "आदर्शवादी" कवि के विषय में यह कहा गया है कि :—

"जीवनमन्थन से निकला जो
विष, वह उसने पान किया
और अमृत जो ऊपर आया
उसे जगत् को दान दिया"—

पर ख़ालिस अमृत देनेवालों की संख्या कितनी थोड़ी होती है। विचार करने के लिए केवल प्रधानता देखी जाती है। किसी साहित्य के स्वरूप का निरूपण करते समय हमें यही देखना होता है कि इसमें प्रधान "वस्तुवाद" है या "आदर्शवाद"— इसका प्रधान लक्ष्य यथार्थता की भूमि चित्रित करना है अथवा भावों का कनक-भवन खड़ा करना।

पर 'यथार्थता का चित्राङ्कण' कह देना आसान है, उसे कर दिखाना साहित्य में कठिन से कठिन काम है। प्राचीन से प्राचीन नाट्यग्रन्थों में आपको सामाजिक समस्याओं का उल्लेख मिलेगा, पर अभी हाल तक की परिपाटी यह थी कि उनका नग्न रूप पाठकों या दर्शकों के सामने रखना एक भारी अपराध माना जाता था। जब कभी नाटककार उन्हें उपस्थित करता तब उनके ऊपर एक ऐसा आवरण डाल देता जो उनकी विरूपता या भयङ्करता का एक बहुत बड़ा भाग आच्छादित कर लेता। जीवन में सुख और दुःख दोनों ही भोगने पड़ते हैं:—"काहु पै दुःख सदा न रह्यौ, न रह्यौ सुख काहु के नित्त अगारी। दोऊ फिरैं रथचक्र मनो तर ऊपर आपनि आपनि बारी"— फिर भी, संस्कृत नाट्यकारों को इस नियम का पालन करना पड़ता कि नाटक कभी दुःखान्त न हो। मानो सुख और दुःख के द्वन्द्व में जीत सदा सुख की ही रहती है, मानो मनुष्य के जीवन-नाटक का अन्तिम या कोई पर्दा विपत्ति-वर्षा की रात में नहीं गिरता। यह बात हमारे देश में ही न थी। जिन पाश्चात्य देशों में दुःखान्त नाटकों की रचना ने विशेष उन्नति की वहाँ भी इस बात का बराबर ध्यान रक्खा जाता था कि दृश्य इतना कठोर न हो कि दर्शकों को असह्य हो उठे। नतीजा क्या हुआ? एक पक्षी-विशेष के सम्बन्ध में कहा जाता है कि विपद् की सम्भावना देख कर वह बालुका में अपना सर गाड़ लेता है और अपने को निरापद समझता है। तत्कालीन समाज ने भी इस विश्वास-बालुका में अपना सर गाड़ लिया कि प्रत्येक कार्य्य का परिणाम मङ्गलमय ही होता है, अतएव हम सर्वथा निरापद हैं और रहेंगे। नाटककारों ने समय समय पर किसी समस्या की असलियत को किस प्रकार हमारी आँखों की ओर कर दिया है इसका एक उदाहरण नीचे देता हूँ—

नायक-नायिका के प्रेम की कहानी बहुत पुरानी है। यह कहानी कभी किसी भौगोलिक सीमा से मर्य्यादित भी न रही। पर, देखिए, संसार-मात्र के कवियों ने समाज को नायिका के साथ सहानुभूति के सूत्र में बाँधने के लिए किन उपायों का अवलम्बन किया है और किस ख़ूबी से हमें एक कठोर से कठोर सामाजिक समस्या की विस्मृति करा दी है—

नायिका नायक पर प्रेमासक्त हुई। प्रारम्भ में उसकी आँखें कहीं एकान्त में लगी थीं, पर आँखें भी क्या चीज़ हैं!—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"छिपाये छिपत न नैन लगे।
उघरि परत सब जानि जात हैं घूंघट में न खगे—"

फल यह हुआ कि बात घर-गाँव में सब पर विदित हो गई—

"छिपी न कैसहुँ प्रीति निगोड़ी
अन्त गये सब जानि।"

लगी जहाँ-तहाँ इसी की बात चलने, तरह तरह की आलोचना-प्रत्यालोचना होने। किसी को नायिका से सहानुभूति न हुई, पर वह तो जिसे अपना तन-मन समर्पण कर चुकी थी उससे फिर उसे लौटा न सकती थी। जब उसने देखा कि विरोध की मात्रा दिन दूनी रात चौगुनी होती जा रही है तब उसने खुल्लमखुल्ला कहना शुरू किया कि मैं किसी के मतामत की परवा न करूँगी, जिसकी हो चुकी हूँ उसी की बराबर रहूँगी—

"लोकलाज, कुल की मरजादा
दीनी है सब खोय
हरीचन्द ऐसेहि निबहैगी
होनी होय सो होय!"

प्रकृत जीवन में इस प्रेम का परिणाम चाहे जो हुआ हो, पर कवि को उस प्रेम-विह्वला की दशा से सच्ची सहानुभूति थी और वह चाहता था कि उससे जनसमाज भी अपनी सहानुभूति दिखावे। उसने क्या किया? सबसे पहले उसने नायक को नायिका से दूर कर दिया; फिर, नायिका के अङ्ग-अङ्ग में विरह की आग लगा दी। वह अधमरी सी हो रही है; दिक्काल का उसे ज्ञान न रहा; उसे केवल प्राणनाथ की प्रतिपल चिन्ता है; जब उनका नाम लेती है तब आँखों में आँसू उमड़ आते हैं, जब उसकी सखी उसकी पीठ पर हाथ फेरती है तब वह जल्दी से उठ उसका हाथ पकड़ कहने लगती है:—"कहो, प्राणनाथ! अब कहाँ जाओगे?" और जब वही सखी उससे कुछ कहना चाहती है तब वह उसे यह कह कर रोकती है कि:—"बक मत! चित्त का चोर मेरी आँखों में आ चुका है, जो तू चिल्लायगी तो वह निकल भागेगा"। पर उसके पागलपन का यही अन्त नहीं होता। वह एक एक पेड़ से जाकर गले लगती है और पूछती है:—

"अहो कदम्ब! अहो अम्ब! निम्ब! अहो बकुल तमाला!
तुम देख्यौ कहुँ मनमोहन सुन्दर नँदलाला?
अहो कुंजवन-लता-विरुध-तृन पूछत तो सों
तुम देखे कहुँ "श्याममनोहर? कहहु न मोसों"!!

कवि अपनी उद्देश-सिद्धि के लिए जिन जिन युक्तियों का अवलम्बन करता है सबके परिचय-प्रदान की आवश्यकता नहीं। ऊपर के अवतरण "श्रीचन्द्रावली नाटिका" से दिये गये हैं, पर इस विषय में वह पश्चिम के भी कितने ही नाटकों का प्रतिनिधि-स्वरूप है। हाँ, यह ज़रूरी नहीं कि नाटककार ने नायिका को विरहिनी के ही रूप में प्रकट किया हो। हो सकता है नायक उससे दूर नहीं, उसे भूला भी नहीं, पर नायिका के अभिभावकों को दोनों का परिणय-सम्बन्धी वाञ्छनीय नहीं। ऐसी अवस्था में कवि उन्हें हमारी घृणा का पात्र बनाने के लिए कुछ उठा नहीं रखता। अर्थात् चाहे उस नायिका की दशा शोचनीय से शोचनीय बना कर हो, अथवा उसके मार्ग में रुकावट डालने-वाले उसके अभिभावकों को शैतान के शागिर्द बना कर हो—कवि हमें उस प्रणयिनी का समव्यथी और उसका निमन्त्रण करनेवाले पुरुषों या प्रथाओं का विरोधी बना देता है और, सचमुच, जब जवनिका गिरती है तब हम यही आश्चर्य्य करते उठते हैं कि कौन वह हृदय-शून्य पुरुष होगा जो लोक-लाज खोने और कुल-मर्य्यादा-भङ्ग करने के लिए भी इसे दोष दे सकेगा!

पर, समय बदलता है—पश्चिम में नाट्यकारों की विचार-पद्धति बदलती है। वही पुरानी कहानी एक बार फिर हमारे सामने आती है, फिर भी वह हमारे मन में उन भावों का उद्रेक नहीं कराती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज-कल के सामाजिक नाटक की नायिका के हृदय में भी प्रेम का अङ्कुर एकान्त में ही उगा; और "चन्द्रावली" की तरह वह भी उसे अधिक काल तक गुप्त न रख सकी। पर वह करती क्या है? वह किसी तरह की बे-ख़बरी नहीं दिखाती; अपनी सखी को कभी अपना प्रेमी मान लेने की भूल नहीं करती। वह जितना पहले खाती थी उतना ही अब भी खाती है; उसकी नींद में भी कुछ कमी नहीं हुई है। वह न तो दर्पण में रात दिन इस उद्देश से मुँह देखती रहती है कि उसकी आँखों में बसनेवाले उसके प्यारे का उसे दर्शन मिलता रहेगा, न वह वाटिका में जाने पर ही किसी वृक्ष से यह पूछती है कि:—"बताओ तो मेरा लुटेरा कहाँ छिपा है"? उसे मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं, कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, पर वह अपने आँसुओं से समाज के पद-प्रक्षालन की बात अपने मन में क्षण भर के लिए भी नहीं आने देती! और एक दिन वह भी आता है जब वह बिना किसी से कुछ कहे-सुने सीधे प्रेमी के घर की राह लेती है और बात की बात में दो जनों के जीवन-स्रोत मिल कर एक हो जाते हैं!! दर्शक आँखें मूँद लेते हैं, उस पर दया करने की बात तो दूर रही कोई उस पर दृक्-पात भी करना नहीं चाहता। नाटक समाप्त होने के पहले ही अधिकांश लोग यह आश्चर्य्य करते चल देते हैं कि समाज में ऐसी भी निर्लज्ज स्त्रियाँ हैं!

पर आँखें मूँद लेने से काम नहीं चलने का। और आँखें आप आज क्यों मूँदते हैं, ऐसी नायिका को निर्लज्ज आप आज क्यों कहते हैं। प्रश्न यह है कि, कुल या समाज की मर्य्यादा का, ऐसे मामले में, उल्लङ्घन करने का अधिकार व्यक्ति को है या नहीं? यदि नहीं, तो आप स्त्री के अनाचार का अनुमोदन उस समय क्यों करते हैं जिस समय आप उसका सारा बदन आँसुओं से तर पाते हैं, जिस समय वह आपको कदम्ब या कालिन्दी को अपनी दुःख-गाथा सुनाते मिलती है। सत्य किसी के लिए कोमल हो सकता है, किसी के लिए कठोर,—पर क्या उसने भी कभी अपना रङ्ग-रूप बदला है? कुल या समाज का नियन्त्रण मानना ही यदि धर्म्म है तो हमारी सहानुभूति भी इस धर्म्म के पालन से रहे, इसके उल्लङ्घन से नहीं। पर सच तो यह है कि जो समस्या समाज के सामने थी उस पर उसका ध्यान ही पहले केन्द्रीभूत न हुआ था। जब कभी वह प्रकट होने पर होती तब नाट्यकार उसे निम्ब, अम्ब और कदम्ब की ओट कर देते। यही सिलसिला सदियों तक जारी रहा। अन्त में जब वैयक्तिक स्वतन्त्रता के प्रश्न ने ज़रा सर उठाया, नाट्य-संसार में नये भावों का आविर्भाव हुआ तब किसी नाट्यकार ने एक ऐसी नायिका की उद्भावना की जो समाज से उसकी सहानुभूति नहीं, बल्कि अपना स्वत्व माँगती है। चारों ओर से "धिक् धिक्" की आवाज़ उठ पड़ी—मानो सहानुभूति का नाम लेने से जो सत्य रहता वह स्वत्व का नाम लेने से असत्य हो गया। पक्षी-विपक्षी सबके सामने एक ऐसी समस्या खड़ी हो गई जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। फिर भी समस्या नई नहीं थी, नाटक-द्वारा उस पर प्रकाश डालने की रीति या पद्धति नई थी। ऐसी पद्धति का आविष्कार और अवलम्बन ही "आधुनिक" अथवा "सामाजिक" अथवा "समस्या-सम्बन्धी" नाटक का गौरव और विशेषता है।

पारसनाथसिंह

आचार्य पाणिनि।

संस्कृत-साहित्य में पाणिनि का स्थान गौरव-पूर्ण है। पाणिनि ने मानो एक महान् व्याकरणार्णव को कुछ परिमित सूत्रों के एक छोटे से घड़े में भर कर रख दिया है। आज कौन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी असामान्य प्रतिभा को देख कर दाँतों तले उँगली नहीं दबाता? तनिक विचार तो कीजिए शब्द-शास्त्र का पारावार कितना बड़ा है। महाभाष्यकार अपनी अवतरणिका में लिखते हैं—

'बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच, न चान्तं जगाम। बृहस्पतिश्च वक्ता, इन्द्रश्चाध्येता, दिव्यं वर्षसहस्रमध्ययनकालः, न चान्तं जगाम। किम्पुनरद्यत्वे? यः सर्वथा चिरञ्जीवति, स वर्षशतं जीवति। चतुर्भिश्च प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति—आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेनेति। तत्र चागमकालेनैव कृत्स्नमायुः पर्युपभुक्तं स्यात्, तस्मादनभ्युपाय एष शब्दानां प्रतिपत्तौ प्रतिपदपाठः। कथं तर्हीमे प्रतिपत्तव्याः? किञ्चित्सामान्यविशेषवल्लक्षणं प्रवर्त्यम्, येनाल्पेन यत्नेन महतो महतः शब्दौघान् प्रतिपद्येरन्।' अर्थात् एक सहस्र दिव्य वर्ष तक बृहस्पतिजी ने इन्द्र को शब्द-शास्त्र पढ़ाया, पर चुका नहीं। जहाँ इन्द्र ऐसे पढ़नेवाले, बृहस्पति ऐसे पढ़ानेवाले और एक सहस्र दिव्य वर्ष पढ़ने का समय हो, तब भी शब्द-शास्त्र का अन्त नहीं मिला। फिर आज-कल क्या कहना?

पाणिनि कब हुए, उन्होंने अपने जन्म से किस कुल को अलङ्कृत किया, उनका जीवन कैसे व्यतीत हुआ, इन प्रश्नों का उत्तर देना कठिन है। कविवर मैथिलीशरण ने ठीक लिखा है—

पाणिनि सदृश वैयाकरण संसार भर में कौन है?
इस प्रश्न का सर्वत्र उत्तर उत्तरोत्तर मौन है।

होरेस हेमन विलसन अपनी इण्डियन विज़डम नामक पुस्तक में लिखते हैं कि पाणिनि गन्धार देश के शलातुर ग्राम के रहनेवाले थे और इसी लिए वे शलातुरीय कहे जाते हैं। उनकी माता का नाम दाक्षी था जैसा कि महाभाष्य के इस श्लोक से प्रकट होता है—सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः। एकदेशविकारे हि नित्यत्वं नोपपद्यते॥ इससे उनका नाम दाक्षेय भी है। यह पाणिन ऋषि के गोत्र में होने से पाणिनि कहलाये। इनके पितामह का नाम देवल ऋषि था जोकि एक प्रसिद्ध स्मृति के कर्त्ता हैं। यह देवल ऋषि व्यासजी से पहले हुए हैं क्योंकि इनका नाम महाभारत में आया है। अन्यत्र भी असितो देवलो व्यासो...ऐसे पाठ में देवल का नाम ही प्रथम आया है।

अब यह देखना है कि पाणिनि किस समय हुए। यद्यपि यह बात निश्चय-पूर्वक नहीं कही जा सकती है, तथापि प्रमाणों और अनुमानों से हम इसे सिद्ध करने की चेष्टा करेंगे। प्रो० गोल्डस्टकर कहते हैं कि उनके पास ऐसे पर्याप्त कारण हैं जिनसे वह सिद्ध कर सकते हैं कि पाणिनि बुद्धजी से पहले हुए। बुद्धजी का समय ५६३-४८३ बी० सी० है, अतएव पाणिनि का समय भी ईसा के पहले छठी शताब्दी ठहरता है। और कुछ लोगों के मत में वे ईसा से चार शताब्दी पहले हुए थे। पर हमें यह दोनों मत किसी प्रकार मान्य नहीं हो सकते।

अष्टाध्यायी के 'गवि युधिभ्यां स्थिरः' ८।३।९५। और 'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्' सूत्र से प्रकट होता है कि पाणिनि कृष्ण और पाण्डवों से परिचित थे। बाह्वादिभ्यश्च ४।१।९६। सूत्र के गणपाठ में कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, प्रद्युम्न, राम आदि शब्दों से भी यह बात पुष्ट होती है। इसके अतिरिक्त पाणिनि जनमेजय से भी अवश्य परिचित थे, क्योंकि गवि युधिभ्यां स्थिरः सूत्र जैसे युधिष्ठिर पद-सिद्धि के लिए है वैसे ही एजेः खश्। ३।२।२८। जनमेजय पद की सिद्धि के लिए है। एज् धातु से खिदन्त प्रत्यय होने से अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्। ६।३।६७। करके मुमागम होने से जनमेजय बनता है। पाण्डवों के सहयोगी व्यासजी थे और उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता पराशर ऋषि से भी पाणिनि परिचित थे, जैसा कि 'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः' ४। ३। ११०। सूत्र में पाराशर्य शब्द से ज्ञात होता है। पराशर के पुत्र होने से पाराशर्य व्यासदेव की संज्ञा है। पाराशर्य शब्द 'गर्गादिभ्यो यञ्' ४। १। १०५। सूत्र से यञ् प्रत्यय विहित करने से सिद्ध होता है। गर्गादिगण में पराशर का भी पाठ है। जिन्हें आज-कल हम ब्रह्मसूत्र कहते हैं वे उस समय भिक्षुसूत्र कहलाते थे, क्योंकि अधिकतर संन्यासी लोग ही उन्हें पढ़ते थे। भिक्षुसूत्र पद के ग्रहण से ज्ञात होता है कि उस समय व्यासजी वेदान्तदर्शन बना चुके होंगे और उनमें और पाणिनि में कम से कम पचास वर्ष का अन्तर अवश्य रहा होगा, या पाणिनि का उनसे इतना निकट का परिचय होगा कि पाणिनि को इन सूत्रों का पता हो।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि पाणिनि को इनका समकालीन मानने की अपेक्षा इनका उत्तराधिकारी क्यों न मान लिया जाय? हमारा कहना है कि ऐसा मानने में कई आपत्ति पड़ेंगी। एक तो सुधातुरकङ् च। ४। १। ९७। सूत्र में पाणिनि ने केवल सुधातृ शब्द का ग्रहण किया है और अकङ् और इञ् प्रत्यय विधान करके अपत्यार्थ में सौधातकिः पद सिद्ध किया है। जब सुधातृ ऐसे अप्रसिद्ध ऋषि का ग्रहण है तब यह कैसे मान लिया जाय कि पाणिनि व्यास को भूल गये हों, क्योंकि उसी नियम के अनुसार व्यासस्यापत्यं वैयासकिः शुकः सिद्ध करने के लिए कात्यायन को व्यासवरुडनिषादचाण्डालबिम्बानां चेति वक्तव्यम् अलग वार्तिक बनाना पड़ा है। इससे यह बात स्पष्ट ज्ञात होती है कि पाणिनि के समय में व्यास जी के कोई पुत्र न था अथवा छोटा होने के कारण अप्रसिद्ध था जोकि परीक्षित् को कथा सुनाने के कारण कात्यायन के समय में खूब प्रसिद्ध हो गये थे। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जब पाणिनि जनमेजय से परिचित थे तब यह कैसे सम्भव है कि वे शुकदेव से परिचित न हों।

हम इसका समाधान इस प्रकार कर सकते हैं कि महाभारत के युद्ध में अभिमन्यु की मृत्यु के समय परीक्षित् गर्भ में थे। उसके पाँच-छः महीने बाद वे उत्पन्न हुए होंगे। युधिष्ठिर ने कुल ३६ वर्ष ८ मास ६ दिन राज्य किया अर्थात् उनके जन्मकाल ही में परीक्षित् पूर्ण युवा हो चुके थे और सम्भव है कि उनके जनमेजय नामक पुत्र भी हो चुका था और भावी क्षत्रियवंश का मूलकारण होने के कारण प्रसिद्ध भी हो गया हो।

पाणिनि को पाण्डवों का समकालीन मानने के लिए एक और कारण यह भी है कि कात्यायन ने जो वार्तिक बनाये हैं वे पाणिनि से बहुत पीछे के हैं। सम्भव है पाणिनि के समय में जो शब्द साधु न होते हों वे भाषा में परिवर्तन होने के कारण कात्यायन के समय में सिद्ध होने लगे हों। कात्यायन मनुजी के पहले हुए हैं। देखिए मनुजी शिष्ट का लक्षण करते हैं—धर्मेणाधिगतो यस्तु वेदः सपरिबृंहणः। ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ १२। १०६॥ जब कि कात्यायन का लक्षण यह है—'एतस्मिन्नार्यावर्ते निवासे ये ब्राह्मणाः। कुम्भीधान्या अलोलुपा अगृह्यमाणकारणाः किञ्चिदन्तरेण कस्याश्चिद् विद्यायाः, तत्र भवन्तः शिष्टाः। ६। ३। ३। अर्थात् कात्यायन के समय में आर्यावर्त देश में निवास-मात्र से शिष्टत्व माना जाता था, पर मनुजी के समय में वेदों का पढ़ना शिष्टत्व का लक्षण हो गया था। इसी प्रकार आर्यावर्त देश की सीमा वर्णन करने में भी दोनों में बहुत अन्तर है। मनु—आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योः (विन्ध्यहिमवतोः) आर्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ २। २२॥ कात्यायन—प्राक् आदर्शात्, प्रत्यक् कालवनात् ॥ उत्तरेण हिमवन्तम्, दक्षिणेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिपात्रम् । इस महदन्तर से प्रकट होता है कि मनु और कात्यायन के समय में बहुत अन्तर है। मनु का समय ईसा से ८०० वर्ष पूर्व निश्चित है। कात्यायन का समय उससे भी ३००, ४०० वर्ष पूर्व मानना चाहिए। और पाणिनि को कात्यायन से भी हज़ार वर्ष पूर्व का मानना पड़ता है, क्योंकि इतने समय से कम में पाणिनि और कात्यायन के प्रयोगों में इतना घना अन्तर कैसे सम्भव हो सकता है। अब देखना चाहिए कि पाण्डव पृथ्वी पर कब हुए। कल्हण राजतरङ्गिणी में कहते हैं—

शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले ।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन्कुरुपाण्डवाः ॥ १।५०॥

अर्थात् कलियुग के ६५३ वर्ष बीतने पर कौरव और पाण्डव पृथ्वी में हुए। कुछ लोगों का विश्वास है कि महाभारत द्वापर के अन्त में हुआ और तभी कौरव पाण्डव हुए। इस बात का भी खण्डन कल्हण ने किया है जिससे ज्ञात होता है कि यह मिथ्या प्रवाद उनके समय में भी प्रचलित रहा होगा।

भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः ।
केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे ॥ १।४६॥

अर्थात् महाभारत द्वापर के अन्त में हुआ था इस मिथ्या विश्वास से प्रेरित होकर किसी किसी ने इनमें समय की गणना ग़लत कर डाली। शाकद्वीप-निवासी वराहमिहिराचार्य ने अपनी बृहत्संहिता में भी यह बात लिखी है—

आसन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्यस्य ॥

अर्थात् युधिष्ठिर के राज करते समय मुनि (Great Bear) मघा नक्षत्र में थे और युधिष्ठिर शक संवत् से २५२६ वर्ष पूर्व हुए। इसलिए २५२६ में वर्तमान शक संवत् १८४३ जोड़ने से ४३६९ वर्ष अब से पूर्व युधिष्ठिर का समय आता है।

कल्हण के हिसाब से भी वर्तमान कलि-संवत् ५०२२ में से ६५३ घटाने से ४३६९ वर्ष पूर्व यौधिष्ठिर काल निकलता है। इस प्रकार वराहमिहिर और कल्हण दोनों का हिसाब परस्पर ठीक मिलता है इसलिए सबको मान्य है।

युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष ८ मास ६ दिन, परीक्षित् ने ६० वर्ष और जनमेजय ने ८४ वर्ष ७ मास २३ दिन राज्य किया। पाणिनि, युधिष्ठिर और परीक्षित् के ही समकालीन थे, अतएव उनका समय कलि संवत् की सातवीं सदी का अन्त्य-भाग और आठवीं सदी का आदि-भाग आता है। हम नहीं कह सकते कि हमारा यह निर्णय सबको मान्य ही हो। पर भारतीय सभ्यता का आदि विकास ईसा से कुछ सदी पहले माननेवालों की चर्चा हम छोड़ते हैं। हमारा विश्वास तो यह है कि अब से लाखों वर्ष पूर्व वह अपने असली रूप में आ चुकी थी।

हम समझते हैं कि पाणिनि के सत्ता-काल के निर्णय करने के विषय में हम काफ़ी लिख चुके हैं। अब उनके विषय में दो-चार और बातें कहना भी आवश्यक प्रतीत होता है।

पाणिनि के गुरु का नाम वर्ष था जिनके समीप वे अन्य साथियों के साथ विद्या पढ़ा करते थे। कहते हैं कि यह अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा मन्दबुद्धि थे जिससे इन्हें कुछ न आता था। एक दिन इनकी गुरु-पत्नी ने इन्हें तपस्या करने के लिए हिमालय को भेज दिया। वहाँ शङ्करजी की कड़ी आराधना की जिससे प्रसन्न होकर शिवजी ने इन्हें वरदान दिया। सोमदेव भट्ट ने अपने कथा-सरित्सागर के प्रथम कथापीठ की चतुर्थ तरङ्ग में लिखा है—

अथ कालेन वर्षस्य शिष्यवर्गो महानभूत् ।
तत्रैकः पाणिनिर्नाम जडबुद्धितरोऽभवत् ॥ १॥
स शुश्रूषापरिक्लिष्टः प्रेषितः वर्षभार्यया ।
अगच्छत्तपसे खिन्नो विद्याकामो हिमालयम् ॥ २॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र तीव्रेण तपसा तोषितादिन्दुशेखरात् ।
सर्वविद्यामुखं तेन प्राप्तं व्याकरणं नवम् ॥३॥

इसी को जयादित्य ने काशिका में लिखा है—

नृत्यावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम् ।
उद्धर्तुकामस्सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥

अर्थात् सनकादि सिद्धों के उद्धार के लिए जो नटेश ने नृत्य किया था उसके अन्त में चौदह बार डमरू बजा कर व्याकरण के मूलभूत अइउण् आदि चौदह सूत्र उत्पन्न किये । खैर पौराणिक उपाख्यान जो कुछ भी हो, शब्द-शास्त्र-वेत्ताओं का कहना है कि लाघवार्थ यह चौदह सूत्र पाणिनि के ही निर्माण किये हुए हैं । इन्हीं चौदह सूत्रों के आधार पर पाणिनि ने अष्टाध्यायी की रचना की । पाणिनि इस संसार में कितने दिन रहे यह कुछ ज्ञात नहीं, पर उनका अन्त एक सिंह के द्वारा वन में हुआ यह नीचे के उद्धट श्लोक से ज्ञात होता है—

सिंहो व्याकरणस्य कर्तुरहरत्प्राणान्प्रियान्पाणिने-
र्मीमांसाकृतमुन्ममाथ हस्ती सहसा मुनिं जैमिनिम् ।
छन्दोज्ञाननिधिं जघान मकरो वेलातटे पिङ्गलम्,
अज्ञानावृतचेतसामतिरुषां कोऽर्थस्तिरश्चां गुणैः ॥

अर्थात् व्याकरण के कर्त्ता पाणिनि मुनि को सिंह ने मार खाया, पूर्व-मीमांसा के कर्ता जैमिनि मुनि को हाथी ने रौंद डाला और छन्दः-शास्त्र के कर्त्ता पिङ्गलाचार्य को मगर ने निगल लिया । अब हम दो एक बात अष्टाध्यायी के विषय में कह कर इस लेख को समाप्त करते हैं । अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय चार पादों में विभक्त है, कुल ३९६३ सूत्र हैं ।

अष्टाध्यायी में अत्रि, शाकल्य, काश्यप, भृगु, कुत्स, वसिष्ठ, गोतम, कौण्डिन्य, जावालि, बडवा, यस्क, शाकटायन, कौरव्य, मण्डूक, मधु, बभ्रु, पीला, कलापि, वैशम्पायन, तित्तिरि, कौशिक, शौनक, गालव, भारद्वाज, चाक्रवर्मा, स्फोटायन, आपिशलि, अंगिरस आदि ऋषियों के नाम आये हैं । प्रयोग-विशेषों के कारण व्याकरण में इन ऋषियों की भी सम्मति मानी जाती रही होगी, पर शाकटायन को छोड़ कर और किसी का कोई व्याकरण नहीं मिलता । वोपदेव ने अपने कविकल्पद्रुम में—इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्न्यापिशली शाकटायनः । पाणिन्यमरजैनेन्द्राः जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः ॥ श्लोक में जो इन्द्र चन्द्रादि वैयाकरण गिनाये हैं वे शाकटायन को छोड़ कर सब पाणिनि के बाद हुए हैं । चन्द्र तो राजतरङ्गिणी के 'चन्द्राचार्यादिभिर्लब्ध्वा देशं तस्मात्तदागतम् । प्रवर्तितं महाभाष्यं स्वञ्च व्याकरणं नवम् ॥१।७६॥ श्लोक के अनुसार पतञ्जलि से भी बाद के मालूम पड़ते हैं । जैनेन्द्र का व्याकरण प्रसिद्ध है, पर अष्टाध्यायी की समता को नहीं पहुँचता । अष्टाध्यायी के ऊपर सैकड़ों प्रमुख ग्रन्थ बने हैं जिनमें पतञ्जलि-कृत महाभाष्य, जिसे आकर भी कहते हैं, व्याडिकृत संग्रह, भर्तृहरिकृत सार, जिस पर हेलाराज का हरिकारिकाव्याख्यान प्रसिद्ध है, तथा भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय, भट्टोजिदीक्षित-कृत वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, जिस पर ज्ञानेन्द्रस्वामीकृत तत्त्वबोधिनी, मनोरमा, शब्दकौस्तुभ, कौण्डिन भट्टकृत वैयाकरणभूषण, नागेशकृत शब्देन्दुशेखर, परिभाषेन्दुशेखर, बृहन्मञ्जूषा, जयादित्यकृत काशिका, उस पर हरदत्तकृत पदमञ्जरी और वामनकृत काशिका-वृत्ति, कैयटकृत प्रदीप, उस पर नागोजीभट्टकृत प्रदीपोद्योत तथा रत्नाकर और हरिदीक्षितकृत शब्दरत्न इत्यादि मुख्य हैं । संग्रह एक लक्ष श्लोकात्मक ग्रन्थ था । (भर्तृ) हरिकृत सार के विषय में, जिसमें एक लक्ष कारिकाएँ थीं, डा० कीलहार्न ने लिखा है कि उन्हें उसकी एक भी प्रति ढूँढ़ने से भारतवर्ष में नहीं मिली । हाँ, बर्लिन के अजायबघर में एक प्रति है जिसके कुछ पृष्ठ खो गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। उसे आठ लेखकों ने पूरा किया है। हेलाराजकृत हरिकारिकाव्याख्यान की, जिसका प्रमाण मल्लिनाथ ने कई जगह दिया है, दो प्रतियाँ हस्तलिखित डा० कीलहार्न के पास थीं। अब सम्भवतः वे नागपुर के अजायबघर में हों। शेष सब ग्रन्थ मिलते हैं।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी के अतिरिक्त शिक्षा गणपाठ, धातुपाठ, लिङ्गानुशासन और बनाये हैं। शिक्षा में वर्णों के ठीक ठीक उच्चारण-स्थान, प्रयत्न, करण और स्वर बताये गये हैं। गणपाठ अष्टाध्यायी की ही पूर्ति के लिए है। धातुपाठ में क़रीब १९४४ धातु हैं। लिङ्गानुशासन में शब्दों के अनियत और नियत लिङ्गों का निर्देश है। सूत्र इतने छोटे बनाये गये हैं कि लाघव की पराकाष्ठा हो गई है। आज-कल के मनुष्यों का 'मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः' वाली उक्ति के अनुसार विना टीका और भाष्य के उनमें प्रवेश हो ही नहीं सकता। सूत्रों के लाघव के बल पर ही नागेश ने परिभाषेन्दुशेखर बनाया है। कहते हैं अर्धमात्रालाघवं हि पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः अर्थात् एक व्यञ्जन-मात्र की यदि सूत्र में कमी हो सके तो वैयाकरणों को पुत्र-जन्म के समान आनन्द होता है। एक सूत्र है गेरणौ यत्कर्मणौ चेत्स कर्ताऽनाध्याने।१।३।६७। इस पर दीक्षित ने लिखा है—

णेरणाविति सूत्रस्य अर्थं जानाति पाणिनिः।
अहं वा भाष्यकारो वा चतुर्थो नैव विद्यते॥

अर्थात् इस सूत्र का जो विना भाष्य और टीका के अर्थ जान ले, ऐसा मनुष्य पाणिनि, भाष्यकार, और मुझे छोड़ कर और चौथा नहीं है॥

बी० एस० अग्रवाल

साहित्य-सुमन।

१—ऐतिहासिक उपन्यास और नाटक।

काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने श्रीयुत राखालदास वन्द्योपाध्याय के दो ऐतिहासिक उपन्यासों का अनुवाद प्रकाशित किया है। राखाल बाबू का सम्बन्ध पुरातत्त्व-विभाग से है। भारत के प्राचीन इतिहास का आप अच्छा ज्ञान रखते हैं। आपने अपने उपन्यासों में तत्कालीन समाज का चित्र विशद रीति से अङ्कित किया है। 'प्राचीन काल में कैसे कैसे नाम होते थे, कैसा वेश होता था, पद के अनुसार कैसे सम्बोधन होते थे, राजकर्मचारियों की क्या क्या संज्ञाएँ होती थीं, राज-सभाओं में किस प्रकार की शिष्टता बरती जाती थी,' इन सब बातों का ध्यान रख कर आपने उपन्यासों की रचना की है। इसमें सन्देह नहीं कि इससे राखाल बाबू का ऐतिहासिक ज्ञान प्रकट होता है। परन्तु आपका उपन्यास इतिहास नहीं, और न कोई उन्हें सिर्फ़ ऐतिहासिक तथ्य ग्रहण करने के लिए पढ़ेगा। यदि राखाल बाबू को ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन ही अभीष्ट रहता तो वे उपन्यास न लिख कर इतिहास ही लिखते। इतिहास में भी कल्पना का उपयोग किया जा सकता है, और मेकाले के समान प्रसिद्ध लेखकों ने इतिहास-रचना में कल्पना का यथेष्ट उपयोग किया भी है। इन्हीं सब बातों को सोच कर हम यह जानना चाहते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यास और नाटक लिखे क्यों जाते हैं, और क्या उनमें इतिहास का पूरा अनुसरण किया जाता है।

साहित्य के दो भेद किये जा सकते हैं, एक काव्य और दूसरा विज्ञान। काव्य में कल्पना का साम्राज्य है और विज्ञान में तर्क का। काव्य कभी भी तर्क का सामना नहीं कर सकता। उपन्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और नाटक काव्य के अन्तर्गत हैं और इतिहास विज्ञान में सम्मिलित किया जा सकता है । काव्य का कार्यक्षेत्र अन्तर्जगत् है और विज्ञान का उपादान बहिर्जगत् है । हम लोग प्रायः बहिर्जगत् की ओर ध्यान देते हैं । अधिकांश लोगों के लिए प्रायः सत्य का रूप बाह्य जगत् में ही परिमित होता है । अन्तर्जगत् की घटनाओं में वे सहसा सत्य का स्वरूप नहीं देख सकते । पत्थर के लगने से फल का गिरना सत्य है । उसको सभी मान लेंगे । परन्तु किसी अलक्षित कारणविशेष से मनुष्य के अधःपतन में सत्य का दर्शन कर लेना सभी के लिए साध्य नहीं है । वैज्ञानिकों के आविष्कारों की सत्यता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता, परन्तु जब कवि अपनी कल्पना-द्वारा अन्तर्जगत् का गूढ़ रहस्य समझाने लगता है तब कुछ लोग संदिग्धचित्त हो सकते हैं । कितने ही लोग ऐसे हैं जो कल्पना को सत्य का विरोधी समझते हैं ।

यह तो सभी को स्वीकार करना पड़ेगा कि कल्पना निराधार नहीं हो सकती । उसका आश्रय सत्य ही होना चाहिए । जिसका अस्तित्व नहीं, उसकी कल्पना कैसे की जा सकती है । हम कल्पना-द्वारा यह कह सकते हैं कि मनुष्य आकाश में उड़ता है । कहानियों में हमने मनुष्यों के उड़ने की बात सुनी भी है । इसमें न तो मनुष्य मिथ्या है, न आकाश असत्य है और न उड़ना शब्द ही ग़लत है । तो भी यह बात सच है कि मनुष्य आकाश में नहीं उड़ सकता । संसार में यह बात होती नहीं । तब इस कथन में सत्य क्या है ? यदि कोई जन्मान्ध से कहे कि सोने का रङ्ग हरा होता है तो वह इसे स्वीकार कर लेगा और यह मिथ्या बात स्वीकार कर लेने पर भी उसे अपने जीवन में किसी प्रकार की अड़चन न उठानी पड़ेगी । सोने का रङ्ग हरा मान कर भी वह सोने के मूल्य को कम नहीं करेगा । रङ्ग उसके लिए गौण है । सोना ही उसके लिए महत्त्वपूर्ण है । इसी प्रकार कहानियों में मनुष्यों के उड़ने की बात मिथ्या होने पर भी कहानी का महत्त्व नहीं घट जाता । चन्द्रकान्ता और चपला के अस्तित्व पर कोई विश्वास नहीं करेगा । तो भी हम उनके सुख-दुख की कथा में इतने व्यस्त रहते हैं कि हम उनके अस्तित्व की ओर ध्यान नहीं देते । कहानी में पात्र की चरित्र-कथा ही मुख्य है, स्वयं पात्र नहीं । यदि चन्द्रकान्ता के स्थान में कमल-कुमारी रख दी जाय तो भी उससे कथा का रस नष्ट नहीं होगा ।

सभी भाषाओं में ऐतिहासिक नाटक और उपन्यास लिखे जाते हैं । ऐतिहासिक नाटक और उपन्यास की विशेषता यह है कि उसके पात्र ऐतिहासिक व्यक्ति होते हैं, कल्पित नहीं । अब प्रश्न यह है कि ऐसे ग्रन्थों के लेखक अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में इतिहास का अनुसरण करते हैं कि नहीं। क्या उन्हें अधिकार है कि वे किसी ऐतिहासिक व्यक्ति को किसी अन्य रूप में प्रदर्शित कर सकें ? कुछ समय पहले बङ्गाल के एक प्रसिद्ध चित्रकार ने लक्ष्मणसेन का पलायन नाम का एक चित्र बनाया था । कितने ही ऐतिहासिकों का कहना था कि ऐसी घटना हुई नहीं। तब उसका चित्र क्यों बनाया गया ? इससे मिथ्या को प्रश्रय मिलता है । बङ्किम बाबू के कुछ उपन्यासों में इतिहास-विरुद्ध बातें पाई जाती हैं । द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों में महावत ख़ाँ प्रतापसिंह के भाई माने गये हैं । हिन्दी में एक बार ईला नाम का एक उपन्यास प्रकाशित हुआ था । वह एक बँगला-उपन्यास का अनुवाद था । इतिहास-विरुद्ध होने के कारण शायद उस पर कुछ विवाद भी हुआ था और कदाचित् उस पुस्तक का प्रचार भी रोक दिया गया । बात यह थी कि वह अँगरेज़ी के एक प्रसिद्ध लेखक शेरीडन के एक नाटक का अनुवाद-मात्र था । बँगला के अनुवादक महोदय ने उसके पात्रों के नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदल कर ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम कर दिये। फल यह हुआ कि उसमें उदयपुर के महाराणा उदयसिंह आ गये और हेमू के साथ उनका घोर युद्ध हुआ। अब यह कहा जा सकता है कि इन लेखकों ने इतिहास-विरुद्ध बातें लिखी क्यों?

उपन्यास-लेखक का पहला कर्तव्य यह है कि वह अपनी कथा को सजीव बनावे। कथा की सजीवता का मतलब यही है कि पाठक अपनी कल्पना-द्वारा उन पात्रों को प्रत्यक्ष देख लें। कथा में मानव-चरित्र का विकास प्रदर्शित किया जाता है, और वही मुख्य भी है। परन्तु उसके प्रभाव को बढ़ाने के लिए उपन्यासकार ऐसे व्यक्तियों का नामोल्लेख कभी कभी कर देते हैं जिनसे पाठकों का चित्त कथा की ओर अधिक आकृष्ट हो जाता है। इतिहास भी कथा के प्रभाव को बतलाने के लिए उपयुक्त होता है। द्विजेन्द्रलाल राय ने महावत ख़ाँ को प्रतापसिंह का भाई बना दिया है। इससे उनके मेवाड़-पतन के कथा-भाग का प्रभाव ख़ूब बढ़ गया है, कथा सजीव हो गई है। हमें ऐसे स्थानों में स्मरण रखना चाहिए कि ऐतिहासिक होते भी ये पात्र कवि की सृष्टि ही हैं। अतएव हमें कथा-भाग पर ख़याल रख कर उनके चरित्र के विकास की ओर ध्यान देना चाहिए। यदि कवि को उसमें असफलता हुई है तो हम उसकी आलोचना कर सकते हैं। अँगरेज़ी के एक समालोचक ने यह निर्णय किया है कि कवि, नाटककार अथवा चित्रकार को यह अधिकार है कि वे परिमित रूप में इतिहास के विरुद्ध भी अपनी कथा की सृष्टि कर सकते हैं। परन्तु एक-दम ऐसी झूठ बात भी न लिख देनी चाहिए जिससे कथा का प्रभाव ही नष्ट हो जाय।

रवीन्द्र बाबू ने एक स्थान में लिखा है कि विधि-प्रणीत इतिहास और मनुष्य-रचित कहानी, इन्हीं दोनों के मेल से तो मनुष्य का संसार बना है। मनुष्य के लिए सिर्फ़ अशोक और अकबर ही सत्य नहीं है। जो राजपुत्र मणि-माणिक के अनुसन्धान में सातसमुद्र को पार कर चला गया था वह भी सत्य है। हनुमान् ने गन्धमादन पहाड़ को उखाड़ लिया था, यह भी उनके लिए सत्य है। कौन अधिक प्रामाणिक है और कौन कम प्रामाणिक है, यह उनके लिए कसौटी नहीं है। कथा की दृष्टि से, मनुष्यत्व की दृष्टि से, कौन सच्चा है, यही उनकी सत्यता की यथार्थ कसौटी है।

२—उपमा और अनुप्रास।

अलङ्कार दो प्रकार के माने गये हैं, शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार। शब्दालङ्कारों में अनुप्रास मुख्य है और अर्थालङ्कारों में उपमा। भाव को स्फुट रूप देने के लिए कवि उपमा का प्रयोग करते हैं। कहा जाता है कि कविता में भाव प्रधान है, भाषा नहीं। परन्तु भाषा का यथार्थ सौन्दर्य्य उपमा-द्वारा स्पष्ट होता है। केवल सुन्दर शब्दों की योजना में ही भाषा का सौष्ठव नहीं है। उपमा के द्वारा भाव स्पष्ट होता है और भाषा का सौन्दर्य्य भी बढ़ता है। अनुप्रास अवश्य सिर्फ़ भाषा-सौन्दर्य्य के लिए परियुक्त होता है, इसी लिए उसकी गणना शब्दालङ्कारों में की जाती है। तो भी अनुप्रास से कविता के मूलगत भाव ध्वनि-द्वारा अवश्य स्पष्ट होता है। कुछ लोग अनुप्रास को सिर्फ़ शब्दाडम्बर समझते हैं। यह उनकी भूल है। यह सच है कि कितने ही कवियों ने केवल शब्दाडम्बर के लिए ही अनुप्रास का प्रयोग किया है। परन्तु अनुप्रास की सार्थकता इसी में नहीं है। जैसे रूप के सादृश्य से उपमा की सृष्टि होती है वैसेही शब्दों के सादृश्य से अनुप्रास की रचना होती है। शब्दों में एक प्रकार का पारस्परिक आकर्षण है। पत्ते पत्ते मिल कर मर्मर-ध्वनि उत्पन्न करते हैं। तरङ्गों के पारस्परिक आघात से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकल-नाद उत्पन्न होता है। इसी प्रकार शब्दों के मिलन से काव्य में एक अपूर्व सङ्गीत-ध्वनि उत्पन्न होती है। अनुप्रास का एक उदाहरण लीजिए—दामिनी दमक सुर चाप की चमक श्याम घटा की घमक अति घोर घन घोर तें। अनुप्रास की इस छटा में वर्षा की लीला का सादृश्य अवश्य है। एक विद्वान् का कथन है The sound must echo to the sense अर्थात् कविता के लिए यह भी आवश्यक है कि शब्दों की ध्वनि-मात्र से कविता का मूलगत अर्थ स्पष्ट हो जाय। कहने का मतलब यह कि चाहे अनुप्रास का प्रयोग किया जाय अथवा उपमा का, इन अलङ्कारों की सार्थकता तभी है जब वे भाव का अनुसरण करते हैं। भावों के अनुसरण न करने से उपमा की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। स्वाभाविक उपमा वही है जिसके प्रयोग-मात्र से भाव झलक जाय। उपमेय के साथ उपमान का सादृश्य ढूँढ़ने में किसी प्रकार का प्रयास न करना पड़े। तभी उपमा का प्रयोग उचित है। परन्तु कष्ट-कल्पित और असङ्गत उपमाओं से कविता का भाव ही सिर्फ़ अस्पष्ट नहीं होता, किन्तु उसका सौन्दर्य्य भी नष्ट हो जाता है। हिन्दी में कष्ट-कल्पित उपमाओं और अनुप्रासों का बाहुल्य है। जब साहित्य में भावों की उपेक्षा कर रचना-शैली पर ध्यान दिया जाता है तब यही हाल होता है। जहाँ रस का अभाव है वहाँ कवि अपने रचना-चातुर्य्य के द्वारा आन्तरिक शुष्कता को छिपाने की चेष्टा करते ही हैं। तभी पाठकों को मुग्ध करने के लिए विचित्र उपमाओं और अनुप्रासों का आश्रय ग्रहण किया जाता है।

सभी देशों के साहित्य में कभी ऐसा समय आता है जब कविता में स्वाभाविकता के स्थान में कृत्रिमता का ही प्राधान्य रहता है। ऐसा समय आने पर कविता आह्लादकारिणी न होकर उन्माद-कारिणी हो जाती है। साहित्य-क्षेत्र से कृत्रिमता दूर करने की चेष्टा में कुछ लोग उपमा और अनुप्रास को त्याज्य समझते हैं। हिन्दी में जब तक व्रज-भाषा का प्राधान्य था तब तक अलङ्कारों की उपेक्षा नहीं की जाती थी। खड़ी बोली की कविताओं में अब अलङ्कारों की शोभा नहीं। अधिकांश कविताएँ, जो भावपूर्ण कही जाती हैं, शब्दालङ्कारों से विहीन हैं। यह हाल सिर्फ़ हिन्दी का ही नहीं, अन्य भाषाओं का भी है। अन्य देशों के आधुनिक कवि भी काव्य को निराभरण रखना आवश्यक समझते हैं। उनकी राय है कि अलङ्कार के अन्तराल में भाव का सौन्दर्य्य लुप्त हो जाता है। अतएव मनोभाव को हम जितना ही अलङ्कार-विहीन रक्खेंगे उसका रूप उतना ही अधिक स्पष्ट होगा। अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि वर्डस्वर्थ की भी यही राय थी। उन्होंने उपमा के प्रयोग में बड़ी कृपणता की है। जब कभी हठात् उन्होंने कोई उपमा भी दी है तब वह Phantom of delight, आनन्द का अप्रत्यक्ष रूप ही रही, जो अनुभव-गम्य होने पर भी इन्द्रिय-गम्य नहीं है।

हम देखते हैं कि साहित्य-क्षेत्र में अब दो दल हो गये हैं। एक अलङ्कार पर इतना अनुरक्त है कि उन्हीं के निर्माण में निरत रहता है। दूसरा दल अलङ्कारों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। हमारा ख़याल है कि यदि उपमा और अनुप्रास काव्य-देह के सिर्फ़ अलङ्कार-मात्र हैं, उसकी शोभा-वृद्धि के लिए हैं तो उनकी उपेक्षा किसी प्रकार की जा सकती है। परन्तु ये शोभा-वृद्धि के लिए नहीं हैं। सच पूछो तो ये काव्य के अलङ्कार नहीं, प्राणस्वरूप हैं। यह क्यों, सो सुनिए।

संसार में हम जो कुछ देखते हैं उनकी अप्रत्यक्षमूर्त्ति हमारे हृदय में अङ्कित हो जाती है। आकाश, वायु, जल, अग्नि आदि सभी वस्तुएँ हमारी अनुभूति के साथ बिलकुल मिल जाती हैं और उन्हीं की सहायता से अनिर्वचनीय भाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदल कर ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम कर दिये। फल यह हुआ कि उसमें उदयपुर के महाराणा उदयसिंह आ गये और हेमू के साथ उनका घोर युद्ध हुआ। अब यह कहा जा सकता है कि इन लेखकों ने इतिहास-विरुद्ध बातें लिखी क्यों?

उपन्यास-लेखक का पहला कर्तव्य यह है कि वह अपनी कथा को सजीव बनावे। कथा की सजीवता का मतलब यही है कि पाठक अपनी कल्पना-द्वारा उन पात्रों को प्रत्यक्ष देख लें। कथा में मानव-चरित्र का विकास प्रदर्शित किया जाता है, और वही मुख्य भी है। परन्तु उसके प्रभाव को बढ़ाने के लिए उपन्यासकार ऐसे व्यक्तियों का नामोल्लेख कभी कभी कर देते हैं जिनसे पाठकों का चित्त कथा की ओर अधिक आकृष्ट हो जाता है। इतिहास भी कथा के प्रभाव को बतलाने के लिए उपयुक्त होता है। द्विजेन्द्रलाल राय ने महावत ख़ाँ को प्रतापसिंह का भाई बना दिया है। इससे उनके मेवाड़-पतन के कथा-भाग का प्रभाव ख़ूब बढ़ गया है, कथा सजीव हो गई है। हमें ऐसे स्थानों में स्मरण रखना चाहिए कि ऐतिहासिक होते भी ये पात्र कवि की सृष्टि ही हैं। अतएव हमें कथा-भाग पर ख़याल रख कर उनके चरित्र के विकास की ओर ध्यान देना चाहिए। यदि कवि को उसमें असफलता हुई है तो हम उसकी आलोचना कर सकते हैं। अँगरेज़ी के एक समालोचक ने यह निर्णय किया है कि कवि, नाटककार अथवा चित्रकार को यह अधिकार है कि वे परिमित रूप में इतिहास के विरुद्ध भी अपनी कथा की सृष्टि कर सकते हैं। परन्तु एक-दम ऐसी झूठ बात भी न लिख देनी चाहिए जिससे कथा का प्रभाव ही नष्ट हो जाय।

रवीन्द्र बाबू ने एक स्थान में लिखा है कि विधि-प्रणीत इतिहास और मनुष्य-रचित कहानी, इन्हीं दोनों के मेल से तो मनुष्य का संसार बना है। मनुष्य के लिए सिर्फ़ अशोक और अकबर ही सत्य नहीं है। जो राजपुत्र मणि-माणिक के अनुसन्धान में सातसमुद्र को पार कर चला गया था वह भी सत्य है। हनुमान् ने गन्धमादन पहाड़ को उखाड़ लिया था, यह भी उनके लिए सत्य है। कौन अधिक प्रामाणिक है और कौन कम प्रामाणिक है, यह उनके लिए कसौटी नहीं है। कथा की दृष्टि से, मनुष्यत्व की दृष्टि से, कौन सच्चा है, यही उनकी सत्यता की यथार्थ कसौटी है।

२—उपमा और अनुप्रास।

अलङ्कार दो प्रकार के माने गये हैं, शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार। शब्दालङ्कारों में अनुप्रास मुख्य है और अर्थालङ्कारों में उपमा। भाव को स्फुट रूप देने के लिए कवि उपमा का प्रयोग करते हैं। कहा जाता है कि कविता में भाव प्रधान है, भाषा नहीं। परन्तु भाषा का यथार्थ सौन्दर्य्य उपमा-द्वारा स्पष्ट होता है। केवल सुन्दर शब्दों की योजना में ही भाषा का सौष्ठव नहीं है। उपमा के द्वारा भाव स्पष्ट होता है और भाषा का सौन्दर्य्य भी बढ़ता है। अनुप्रास अवश्य सिर्फ़ भाषा-सौन्दर्य्य के लिए परियुक्त होता है, इसी लिए उसकी गणना शब्दालङ्कारों में की जाती है। तो भी अनुप्रास से कविता के मूलगत भाव ध्वनि-द्वारा अवश्य स्पष्ट होता है। कुछ लोग अनुप्रास को सिर्फ़ शब्दाडम्बर समझते हैं। यह उनकी भूल है। यह सच है कि कितने ही कवियों ने केवल शब्दाडम्बर के लिए ही अनुप्रास का प्रयोग किया है। परन्तु अनुप्रास की सार्थकता इसी में नहीं है। जैसे रूप के सादृश्य से उपमा की सृष्टि होती है वैसेही शब्दों के सादृश्य से अनुप्रास की रचना होती है। शब्दों में एक प्रकार का पारस्परिक आकर्षण है। पत्ते पत्ते मिल कर मर्मर-ध्वनि उत्पन्न करते हैं। तरङ्गों के पारस्परिक आघात से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकल-नाद उत्पन्न होता है। इसी प्रकार शब्दों के मिलन से काव्य में एक अपूर्व सङ्गीत-ध्वनि उत्पन्न होती है। अनुप्रास का एक उदाहरण लीजिए—दामिनी दमक सुर चाप की चमक श्याम घटा की घमक अति घोर घन घोर तें। अनुप्रास की इस छटा में वर्षा की लीला का सादृश्य अवश्य है। एक विद्वान् का कथन है The sound must echo to the sense अर्थात् कविता के लिए यह भी आवश्यक है कि शब्दों की ध्वनि-मात्र से कविता का मूलगत अर्थ स्पष्ट हो जाय। कहने का मतलब यह कि चाहे अनुप्रास का प्रयोग किया जाय अथवा उपमा का, इन अलङ्कारों की सार्थकता तभी है जब वे भाव का अनुसरण करते हैं। भावों के अनुसरण न करने से उपमा की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। स्वाभाविक उपमा वही है जिसके प्रयोग-मात्र से भाव झलक जाय। उपमेय के साथ उपमान का सादृश्य ढूँढ़ने में किसी प्रकार का प्रयास न करना पड़े। तभी उपमा का प्रयोग उचित है। परन्तु कष्ट-कल्पित और असङ्गत उपमाओं से कविता का भाव ही सिर्फ़ अस्पष्ट नहीं होता, किन्तु उसका सौन्दर्य्य भी नष्ट हो जाता है। हिन्दी में कष्ट-कल्पित उपमाओं और अनुप्रासों का बाहुल्य है। जब साहित्य में भावों की उपेक्षा कर रचना-शैली पर ध्यान दिया जाता है तब यही हाल होता है। जहाँ रस का अभाव है वहाँ कवि अपने रचना-चातुर्य्य के द्वारा आन्तरिक शुष्कता को छिपाने की चेष्टा करते ही हैं। तभी पाठकों को मुग्ध करने के लिए विचित्र उपमाओं और अनुप्रासों का आश्रय ग्रहण किया जाता है।

सभी देशों के साहित्य में कभी ऐसा समय आता है जब कविता में स्वाभाविकता के स्थान में कृत्रिमता का ही प्राधान्य रहता है। ऐसा समय आने पर कविता आह्लादकारिणी न होकर उन्माद-कारिणी हो जाती है। साहित्य-क्षेत्र से कृत्रिमता दूर करने की चेष्टा में कुछ लोग उपमा और अनुप्रास को त्याज्य समझते हैं। हिन्दी में जब तक व्रज-भाषा का प्राधान्य था तब तक अलङ्कारों की उपेक्षा नहीं की जाती थी। खड़ी बोली की कविताओं में अब अलङ्कारों की शोभा नहीं। अधिकांश कविताएँ, जो भावपूर्ण कही जाती हैं, शब्दालङ्कारों से विहीन हैं। यह हाल सिर्फ़ हिन्दी का ही नहीं, अन्य भाषाओं का भी है। अन्य देशों के आधुनिक कवि भी काव्य को निराभरण रखना आवश्यक समझते हैं। उनकी राय है कि अलङ्कार के अन्तराल में भाव का सौन्दर्य्य लुप्त हो जाता है। अतएव मनोभाव को हम जितना ही अलङ्कार-विहीन रक्खेंगे उसका रूप उतना ही अधिक स्पष्ट होगा। अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि वर्डस्वर्थ की भी यही राय थी। उन्होंने उपमा के प्रयोग में बड़ी कृपणता की है। जब कभी हठात् उन्होंने कोई उपमा भी दी है तब वह Phantom of delight, आनन्द का अप्रत्यक्ष रूप ही रही, जो अनुभव-गम्य होने पर भी इन्द्रिय-गम्य नहीं है।

हम देखते हैं कि साहित्य-क्षेत्र में अब दो दल हो गये हैं। एक अलङ्कार पर इतना अनुरक्त है कि उन्हीं के निर्माण में निरत रहता है। दूसरा दल अलङ्कारों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। हमारा ख़याल है कि यदि उपमा और अनुप्रास काव्य-देह के सिर्फ़ अलङ्कार-मात्र हैं, उसकी शोभा-वृद्धि के लिए हैं तो उनकी उपेक्षा किसी प्रकार की जा सकती है। परन्तु ये शोभा-वृद्धि के लिए नहीं हैं। सच पूछो तो ये काव्य के अलङ्कार नहीं, प्राणस्वरूप हैं। यह क्यों, सो सुनिए।

संसार में हम जो कुछ देखते हैं उनकी अप्रत्यक्षमूर्त्ति हमारे हृदय में अङ्कित हो जाती है। आकाश, वायु, जल, अग्नि आदि सभी वस्तुएँ हमारी अनुभूति के साथ बिलकुल मिल जाती हैं और उन्हीं की सहायता से अनिर्वचनीय भाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचनीय होते हैं। हम कोई बात कहना चाहते हैं। यदि हम उसके लिए कोई उपमा दे सकें तो वह बात स्पष्ट हो जाती है, क्योंकि तब हम उसे एक रूप दे देते हैं। स्त्री के मुख की शोभा को देख लेने पर भी कोई उसको दूसरे के लिए प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। इसलिए जब वह यह कहता है कि मुख चन्द्रमा के सदृश है तब मानों वह सौन्दर्य्य को मूर्तिमान कर देता है। भाव को रूप देना उपमा का ही काम है। कवि के हृदय की भावना उपमा ही के द्वारा नाना आकारों में प्रकट हो जाती है।

अब प्रश्न यह है कि क्या उपमा सत्य को प्रकट करती है। जब हम मुख को चन्द्रमा के सदृश बतलाते हैं तब क्या हम यथार्थ वस्तु से श्रोता का ध्यान हटा कर एक दूसरी ही वस्तु की ओर आकृष्ट नहीं करते? तब उपमा की सार्थकता कैसी हुई? यही कारण है कि कभी कभी हम यह समझ लेते हैं कि कवि की अनुभूति में सत्य नहीं है। जो लोग वस्तु-मात्र के यथार्थ स्वरूप को देखना चाहते हैं वही ऐसा प्रश्न करते हैं। उनका कथन है कि विज्ञान ही वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करता है। उपमा, उनकी समझ में, सत्य की शुभ्र ज्योति को मलिन करती है। परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि सत्य कोई स्थिर पदार्थ नहीं है। एक रूप से दूसरे रूप में जाने से ही उसका परिचय पूर्णतर होता है। यही काम उपमा भी करती है। वह एक रूप का परिचय दूसरे रूप में देती है। उपमा सत्य को आबद्ध नहीं करती। वह केवल यही कहती है कि वह इस प्रकार है—अनिर्वचनीय को वह सिर्फ़ वचन-गम्य करती है।

३—कला का विकास।

कला के साथ हमारे जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव-जीवन से पृथक् कर देने पर कला का महत्त्व ही नहीं रहता। पर्सी ब्राउन नामक एक विद्वान् का कथन है कि सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्य-सृष्टि की चेष्टा मानव-जाति की उत्पत्ति के साथ ही है। शिक्षा और सभ्यता के साथ सौन्दर्यानुभूति का उन्मेष और विकास होता है। अँगरेज़ी में जिस भाव को (Art Impulse) कहते हैं वह मनुष्य-मात्र में है। असभ्य जातियों में भी यह कला-वृत्ति विद्यमान है। कविता, सङ्गीत और चित्र-कला के नमूने कन्दरा में रहनेवाली जाति में भी पाये जाते हैं। अपनी सौन्दर्यानुभूति को व्यक्त करने की यह स्वाभाविक चेष्टा ही कला का मूल है।

कला की उन्नति तभी होती है जब व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य रहता है। जब मनुष्य को यथेष्ट सुखोपभोग की स्वतन्त्रता रहती है, जब उसे अपने हृद्गत भाव को दबाने की ज़रूरत नहीं रहती, तभी वह सौन्दर्य-सृष्टि के लिए चेष्टा करता है। उल्लास के इस भाव में एक प्रकार की स्वच्छन्दता रहती है। जब यह स्वच्छन्दता संयत हो जाती है, जब उस भाव में सामञ्जस्य प्रबल हो जाता है तब कला की सृष्टि होती है। सौन्दर्य की अनुभूति के लिए सभी स्वच्छन्द हैं, पर कला-कोविद का कार्य शृङ्खला-बद्ध और प्रणाली-सङ्गत होना चाहिए। मतलब यह कि सौन्दर्य के उपभोग का सामर्थ्य तभी होता है जब चित्त-वृत्ति स्वच्छन्द रहती है, परन्तु चित्त-वृत्ति को सर्वथा निरङ्कुश न रख कर संयत रखना चाहिए। तभी सौन्दर्य का निर्मलतर रूप प्रकट होता है।

कुछ लोगों का ख़याल है कि जब देश में सर्वत्र शान्ति रहती है तब कला की उन्नति होती है। ब्राउन साहब की यह राय नहीं है। आपका कथन है कि जब समाज में शान्ति है तब कला की उन्नति होगी ही नहीं। इसके विपरीत जब समाज क्षुब्ध होता है, जब मनुष्य अपने हृदय में अशान्ति का अनुभव करने लगते हैं, जब देश में युद्ध होने लगता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, तब कला की गति उन्नति के पथ पर अग्रसर होती है। जिगीषा का भाव मनुष्य की अन्तर्निहित शक्ति को जागृत करता है। शान्ति के समय में उसकी कर्मण्यता लुप्त हो जाती है। ऐसे समय में वह अपने ज्ञान का विस्तार कर सकता है, परन्तु वह नवीन सृष्टि नहीं कर सकता। विजय की इच्छा उसको नवीन रचना करने के लिए उत्साहित करती है। यही कारण है कि ग्रीस में युद्ध और अन्तर्विप्लव के काल में ही कला की उन्नति हुई। योरप में गाथिक कला का विकास भी इसी तरह हुआ। यदि युद्ध-काल उपस्थित न होता तो कदाचित् योरप में रेनेसान्स पीरियड, पुनरुत्थान-काल, भी न आता। युद्ध की इच्छा से चित्त-वृत्ति में स्वतन्त्रता आ जाती है और कला की उन्नति के लिए यह स्वतन्त्रता आवश्यक है। जो जाति दासत्व की शृङ्खला से बद्ध होती है उसकी चित्त-वृत्ति का स्वातन्त्र्य भी नष्ट हो जाता है, उसकी मानसिक शक्ति कुण्ठित हो जाती है। विजय की भावना से उद्दीप्त हो जब मनुष्य अपनी शक्ति का अनुभव कर लेता है तब वह प्रकृति के ऊपर भी अपना कर्तृत्व प्रकट कर देना चाहता है। तभी उसकी इच्छा होती है कि प्राकृतिक सौन्दर्य पर भाव को प्रतिष्ठित कर उसे किस प्रकार अधिक सुन्दर करें। यही नहीं, वह सौन्दर्य-विकास के साथ अनन्त और अज्ञेय को भी अपनी कल्पना के द्वारा अधिगम्य करना चाहता है।

ब्राउन साहब ने यहीं कला के साथ धर्म का भी सम्बन्ध बतलाया है। आपका कथन है कि प्रकृति के सौन्दर्य के भीतर जो अनन्त रूप विद्यमान है उसे धर्म ही विश्वास और कल्पना के द्वारा मनुष्य के लिए अनुभव-गम्य कर देता है। प्रातःकाल में सूर्योदय की शोभा देख कर मनुष्य मुग्ध हो सकता है, परन्तु उसका यह मोह क्षणिक है—जब तक सूर्य की लालिमा है तभी तक वह मोह है। परन्तु धर्म उसको बतलाता है कि इस प्रातःकालीन लालिमा में एक महाशक्ति विराजमान है—तत्सवितुर्वरेण्यम्। तब वह सौन्दर्य-भावना स्थायी हो जाती है। यदि समाज में धर्म का भाव है और धर्म में सौन्दर्य का, तो कला की उन्नति अवश्य होगी।

भारतवर्ष में जब तक व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य था और धर्म की भावना प्रबल थी तब तक कला की उन्नति हुई। स्वतन्त्रता लुप्त हो जाने पर भी अपने धर्म की भावना से भारत-वासियों ने कला की रक्षा की। परन्तु अब स्वाधीनता और धार्मिक भावना दोनों को खोकर वे अपनी कला भी खो बैठे।

मनोहरलाल श्रीवास्तव

चारु चयन।

१—कायापलट।

(१)

यह सृष्टि परिवर्तित स्वयं होती चली आई सदा,
स्थिति एक ही मन में किसी को भी नहीं भाई सदा।
यह काल-वश काया पलटती है कभी रुकती नहीं,
इच्छा हुई इसकी जहाँ अतिवेग से झुकती वहीं॥

(२)

वह स्थिर रहेगा क्यों भला संसार जिसका नाम है,
बहुरूपियों का भूप बनना नित्य जिसका काम है।
वह भीरु बनता है कभी वह वीर बनता है कभी,
वह मूढ़ बनता है कभी मति-धीर बनता है कभी॥

(३)

रहता पराये हाथ वह स्वाधीन रहता है कभी,
धनवान रहता है कभी धनहीन रहता है कभी।
वह नींद में रहता कभी जाग्रत-अवस्था में कभी,
सहता सभी कुछ मौन हो वह दुर्व्यवस्था में कभी॥

(४)

वह दुर्जनों को भी सुजन-सम मान लेता है कभी,
होता दुखी निज भूल पर जब ध्यान देता है कभी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब दुःख दूना है उठाता दुख घटाने के लिए,
बन्धन हटाने के लिए अपयश मिटाने के लिए ॥

(५)

नवनीत सा उसका हृदय तब वज्र सा हो जायगा,
सुख दुःख सम हो जायगें, भय चित्त से खो जायगा।
उन्मत्त सा होगा निछावर देश के ऊपर स्वयम्,
उसका रहेगा बोलबाला सत्वमय भू पर स्वयम् ॥

(६)

अपकीर्ति थी जिससे उसी से कीर्ति होवेगी उसे,
शोकाश्रु-धारा ही सुधा बन कर भिगोवेगी उसे।
बन्धन उसे हो जायगा आनन्दप्रद उन्मुक्ति से,
तन हो विवश उसका न मन परवश रहेगा युक्ति से ॥

(७)

शाले दुशालों से अधिक होंगे सुखद कंबल उसे,
होगा समुन्नति-मार्ग का केवल स्वबल संबल* उसे।
नवपुष्प-शय्या सी उसे हो जायगी कंकड़-मही,
जिसने न निज कर जल लिया, चक्की चलावेगा वही॥

(८)

तनज़ेब सा तनजेब देगा मोटिया खद्दर उसे,
शव के लिए उपयुक्त होगी मोटिया चद्दर उसे।
जो फ्रांस से था वस्त्र धुलवा कर मँगाता भूल से,
वर्दी उसे भा जायगी जो धूसरित है धूल से ॥

(९)

ऋणिया हुआ जो मूढ़ कुरसी तोड़ने के वास्ते,
होगा वही अति व्यग्र कुरसी छोड़ने के वास्ते।
धन धाम जिसका चुक चला था नाम लेने के लिए,
देगा वही सर्वस्व दैशिक काम लेने के लिए ॥

(१०)

छूता विधर्मी की नहीं था छांह तक जो द्रोह से,
मिल कर वही सबसे रहेगा मोह से या छोह से।
मत के झमेले में फँसा जो मर रहा था भूल कर,
उसका स्वदेशी व्रत रहेगा सब मतों को भूल कर ॥

(११)

प्रतिवर्ष जो लाखों कमा कर भी अघाता था नहीं,
सुख-भोग के उपयोग का कुछ अन्त पाता था नहीं।

*संबल = पाथेय कलेवा।

बन कर असहयोगी वही योगीन्द्र-सम हो जायगा,
पहने लँगोटी शान्ति-दायक शाक सत्तू खायगा ॥

(१२)

परदेशियों की चाल भाषा भी जिसे भाती रही,
खल-दासता ही की क्रिया केवल जिसे आती रही।
होगा विभूषित देश-भाषा-वेश-भूषा से वही,
स्वच्छन्द हो होगा सुखी व्यापार-पूजा से वही ॥

(१३)

करके अदालत की दलाली जेब था जो भर रहा ॥
धिक् पेट था जो भर रहा विषयान्ध हो था मर रहा।
कृषिकर्म या दूकानदारी को लगा करने वही,
दुष्कर्म से हट कर लगा निज धर्म पर मरने वही ॥

(१४)

जो था हुजूरों की हुजूरी में मजूरे सा खड़ा,
वह आत्म-बल का ज्ञान पा कर अग्रसर अब हो पड़ा।
जो पार्टियों पर पार्टियां देने लगा था चाव से
वह दीन दुखियों पर दया करने लगा सद्भाव से ॥

(१५)

आतुर हुआ था आतुरों की चातुरी से जो वृथा,
पीता सुरा था नित्य ही मति आसुरी से जो वृथा।
वह शान्ति संयम से जितेन्द्रिय हो गया अब देखिए,
वह हो फलाहारी स्वयं-सेवक बना सबके लिए ॥

(१६)

कोरी जुलाहे सर्वदा जिस काम को करते रहे,
करके परिश्रम कष्ट से निज पेट को भरते रहे।
पर कौन ऐसी जाति है जो वस्त्र अब बुनती नहीं ?
सोती रही चिरकाल से अब जग गई मानो मही ॥

रामचरित उपाध्याय

२—हिन्दी का बन्धन।

कुछ काल से हिन्दी के कुछ लेखकों और विद्वानों की प्रवृत्ति इस भाषा को बन्धनों से जकड़ कर रखने की ओर अग्रसर हुई है। व्याकरण अथवा संस्कृत भाषा के जो आचार्य हैं उनकी प्रवृत्ति तो इस ओर बहुत ही अधिक है। हाल में जबलपुर से निकलनेवाली 'श्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारदा' नामक पत्रिका में श्री कामताप्रसाद गुरुजी ने 'हिन्दी में विभक्ति-संयोग' पर लेख लिखा है। इस लेख में भी यही प्रवृत्ति देख पड़ती है। हिन्दी पर साधारणतः दो प्रकार के बन्धन रक्खे जाते हैं। (१) वैयाकरण लोग भाषा को अपने नियमों के पाबन्द बनाना चाहते हैं, उसे इधर-उधर बिलकुल हिलने डुलने नहीं देना चाहते। व्याकरण के नियमों का उल्लंघन न हो, इसलिए हिन्दी को ही बांध रखना चाहते हैं। (२) दूसरे प्रकार का बन्धन संस्कृत है। कई लोग संस्कृत के शब्दों का अत्यधिक उपयोग करते हैं, संस्कृत के शब्दों का अर्थ बदलते देख उन्हें ठीक नहीं लगता और संस्कृत के बड़े बड़े समास उन्हें बहुत प्रिय हैं। सारांश, हिन्दी को वे संस्कृतमय बना डालना चाहते हैं। साथ ही मराठी, बँगला, गुजराती, उर्दू आदि भाषाओं के प्रभाव से वे उसे कोसों दूर रखना चाहते हैं—इन भाषाओं का हिन्दी को स्पर्श होते ही 'अब्रह्मण्यम्' उनके मुख से सहसा निकल पड़ता है। अब प्रश्न है, क्या ये प्रवृत्तियां ठीक हैं, लाभदायक हैं, हितकारक हैं अथवा उनसे कोई बुराई या अनिष्ट परिणाम उत्पन्न होने की सम्भावना है।

व्याकरण के नियमों की सख़्ती दिखलाने के लिए हम ऊपर का ही उदाहरण ले सकते हैं। विभक्ति और कारक का प्रश्न उठा कर वैयाकरण इतने लड़ बैठे हैं, वे एक दूसरे का सिर इतना फोड़ चुके हैं कि कुछ कह नहीं सकते। तिस पर भी यह झगड़ा न मिटा! इस विषय के अनेक झगड़ों में से यह भी एक है कि हिन्दी में विभक्तियों को शब्दों के साथ जोड़ कर लिखना चाहिए। इस सम्बन्ध में श्री गुरुजी का निम्नलिखित कथन है :—

(१) सर्वनामों में उन्हें जोड़ कर लिखते हैं; यथा, मेरा, उसका आदि।

(२) सर्वनामों के समान संज्ञाओं का भी प्रकृति-रूप बदल जाता है; यथा, 'घोड़े' का।

(३) "हमारी हिन्दी भाषा अन्यान्य आर्य भाषाओं से रचना, प्रयोग, व्युत्पत्ति आदि में विशेष समानता रखती है और अन्यान्य आर्य भाषाओं में, थोड़ा बहुत मतभेद होने पर भी, संज्ञाओं के साथ विभक्तियों को मिलाने की प्रणाली प्रचलित है। इस अवस्था में भी हिन्दी के विभक्ति-संयोग की प्रथा का समर्थन करना उचित है।'

(४) 'विभक्ति को शब्द से मिला कर लिखने की प्रथा से हिन्दी-व्याकरण की दूषित कारक-प्रणाली का भी परिहार हो सकता है। अभी तक हिन्दी-व्याकरण की कारक-प्रणाली अँगरेज़ी व्याकरण के अनुसार तथा आधुनिक आर्य-भाषाओं की कारक-प्रणाली के विरुद्ध है। इस विषय में भी हमें अन्यान्य आर्य्यभाषाओं का अनुकरण करना चाहिए।''

हम व्याकरण को अनुपयोगी नहीं समझते, न हमारा यह कहना है कि विभक्तियों को अलग लिखना ही शुद्ध है। बहुत काल से यह प्रथा है। इसके कुछ कारण भी हैं, नहीं तो इसका झगड़ा न मचा होता और गुरुजी को उपर्युक्त लेख लिखने की आवश्यकता न पड़ती। शायद गुरुजी ने हिन्दी की विशेषताओं पर पूर्ण ध्यान दिया हो, और इस कारण ऐसा वे कहते हों। 'राम का' न लिख कर 'रामका' लिखना कठिन नहीं है। परन्तु 'राम और लक्ष्मण का' कहते समय कुछ कठिनाई उपस्थित होती है। हिन्दी में विभक्ति एक ही शब्द के साथ लगाने की रीति है। विभक्ति-संयोग का नियम प्रचलित किया जाय तो प्रत्येक शब्द के साथ अलग अलग विभक्ति जोड़नी होगी। फिर हमें 'रामका और लक्ष्मणका' लिखना और कहना पड़ेगा। अब स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य भाषा को अत्यन्त सरल बनाने का प्रयत्न करता रहता है। इसी कारण, व्याकरण के नियमों का उल्लंघन, शब्दों के अपभ्रंश और आख़िर में नई भाषाओं की सृष्टि होती है इसलिए प्रश्न उठता है कि क्या लोग 'रामका और लक्ष्मणका' जैसे प्रयोग कहने लगेंगे? विभक्ति-संयोग के विषय में श्री गुरुजी ने दूसरी भाषाओं का हवाला दिया है। परन्तु दूसरी भाषाओं में यह कठिनाई कई तरह से मिट गई है। संस्कृत में प्रत्येक शब्द के साथ विभक्ति लगती है या शब्दों का समास हो जाता है। 'रामस्य लक्ष्मणस्य भरतस्य' कहेंगे या 'रामलक्ष्मणभरतानाम्' कहेंगे। हिन्दी में ये दोनों रीतियां नहीं हैं। मराठी में (१) 'रामाच्या आणि लक्ष्मणाच्या' या (२) 'रामलक्ष्मणांच्या' या (३) राम आणि लक्ष्मणायांच्या' कहेंगे। अर्थात् मराठी में भी हिन्दी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिनाई नहीं है। सारांश, जब तक हिन्दी में प्रत्येक शब्द के साथ अलग अलग विभक्ति नहीं आती तब तक उनको जोड़ कर लिखने की प्रथा प्रचार में आना कठिन है।

परन्तु यह कठिनाई यहीं समाप्त नहीं होती। जब किसी के नाम के साथ पिता का नाम, उपनाम तथा जाति या पन्थ विशेष का नाम भी लिखा जाय तब क्या करना चाहिए? विभक्ति किस शब्द के साथ जोड़नी चाहिए? जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, संस्कृत में यह कठिनाई है ही नहीं। इस भाषा में प्रत्येक शब्द का विभक्तियुक्त रूपान्तर हो जाता है। 'कामताप्रसाद गुरु का' संस्कृत में 'गुरू-पनाम्नः कामताप्रसादस्य' कहा जायगा। परन्तु हिन्दी में प्रश्न है कि 'का' किसके साथ जोड़ा जाय? कामता-प्रसाद' के साथ या 'गुरु' के साथ? संस्कृत के समान दोनों के साथ जोड़ने की रीति हिन्दी में है ही नहीं। अब आगे एक प्रश्न और है। पदवियाँ, उपाधि, निवासस्थान आदि लिखने की अँगरेज़ी रीति हिन्दी में पड़ गई है। जैसे, 'गोपाल दामोदर तामसकर, एम० एस०, एल० टी०, लेक्चरर, ट्रेनिङ्ग कालेज, जबलपूर, का' मत है। अँगरेज़ी की प्रथा हिन्दी में चल गई है। अब 'का' किसके साथ जोड़ा गया? फिर कुछ विभक्तियाँ ऐसी हैं जो 'का' 'के' जैसी सरल नहीं हैं। 'के लिए' 'के समान' 'के साथ' इत्यादि किस प्रकार लिखे जायँ। सारांश, हिन्दी में शब्दों के साथ विभक्तियों का संयोग करना सरल कार्य नहीं है।

वास्तविक बात यह है कि प्रत्येक भाषा की कुछ विशिष्ट रचना होती है—प्रत्येक भाषा में रचना की कुछ विशेषता रहती है। सब भाषा के व्याकरण एक से नहीं हो सकते हैं। संस्कृत से उद्भूत होने तथा संस्कृत भाषा के विचार और शब्दों से पुष्ट होते रहने के कारण हिन्दुस्तान की भाषाओं में बहुत कुछ समानता पाई जायगी। तथापि वे जब तक भिन्न भिन्न भाषायें बनी रहेंगी तब तक उनकी विशेषताएँ भी बनी रहेंगी। हिन्दी की विशेषता से यह आवश्यकता पैदा होती है कि विभक्तियाँ अलग अलग लिखी जायँ। गुरुजी जैसे वैयाकरण कहेंगे कि हम व्याक-रण के नियम किस प्रकार निश्चित करें? इस पर हमारा आप ही के शब्दों में उत्तर है कि 'प्रयोगशरणा वैयाकरणाः'।

अब हम दूसरे प्रकार के बन्धनों का विचार करेंगे। ऊपर कह ही चुके हैं कि कई लोग 'अस्पर्शता' से बहुत डरते हैं। इतना ही नहीं, वे भाषा को संस्कृतमय बनाना चाहते हैं। दूसरी भाषाओं के शब्द देखते ही वे हाथ पैर सिकोड़ने लगते हैं। क्या यह प्रवृत्ति ठीक है? भाषा को संस्कृतमय बनाने का पहला परिणाम यह होता है कि उनकी भाषा संस्कृताचार्यों को छोड़ कर अन्य किसी की समझ में नहीं आती। केवल थोड़े इने-गिने लोग उनकी रचना को समझ सकते हैं। इस कारण उनकी रचना से सर्व-साधारण को लाभ नहीं पहुँचता। वे अपने विचार दूसरों को नहीं समझा सकते, न दूसरों के ही वे अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस तरह उनमें और सर्व-साधारण में अन्तर बढ़ता जाता है। हमारे किसी किसी मित्र ने तो ऐसे लोगों की भाषा के विषय में यहाँ तक कह डाला है कि संस्कृत का बड़ा भारी कोष लिये बिना इन लोगों का कहना समझना कठिन है। शायद यह अत्युक्ति हो। तथापि इस कथन में सत्यांश बहुत है। हम मानते हैं कि लिखने और बोलने की भाषा में महदन्तर रहता है, विषय जितना कठिन और शास्त्रीय होता है, भाषा भी उतनी कठिन और पारिभाषिक होती है, तथापि यह बात झूठ नहीं कि कई लोग भाषा को व्यर्थ ही क्लिष्ट बनाया करते हैं। ऊपर दिखला ही चुके हैं कि इससे अनेक हानियाँ होती हैं। सारांश में कह सकते हैं कि इन रचनाओं का उद्देश सफल नहीं होता। विषय के अनुसार भाषा सरल या कठिन होनी चाहिए। सर्व-साधारण के लिए लिखी गई पुस्तकें यथाशक्य सरल रहें, तभी उनसे सबको लाभ हो सकता है।

इसी प्रवृत्ति का एक दूसरा यह भी अङ्ग है कि मराठी, बँगला, गुजराती, उर्दू आदि भाषाओं के शब्दादि का स्पर्श हिन्दी के विद्वान् अपनी भाषा से नहीं होने देना चाहते। वे लोग भूल सा जाते हैं कि भाषा प्रगतिशील होती है। जिस प्रकार लोगों के रहन सहन तथा आचार-विचार पर परिस्थिति का प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार भाषा पर भी। भाषा और साहित्य एक रीति से मनुष्य के जीवन का दर्पण है। मनुष्य के जीवन में जो परिवर्तन होंगे वे भाषा और साहित्य में भी देख पड़ेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय हिन्दुस्तान में नाना प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं। आचार और विचार का विनिमय बड़े ज़ोरों से हो रहा है प्रत्येक मनुष्य दूसरे से आचार और विचार की कुछ न कुछ बातें रोज़ सीख रहा है, और इस प्रकार समानता की प्रवृत्ति प्रत्येक बात में बढ़ रही है। यह कह नहीं सकते कि सारे हिन्दुस्तान में एक भाषा और एक साहित्य कब होगा। परन्तु यह कह सकते हैं कि सब शक्तियों का प्रवाह इसी ओर है। मराठी, हिन्दी, उर्दू, बँगला, गुजराती आदि भाषाओं और साहित्य का एक दूसरे पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ रहा है। प्रति दिन सभी भाषायें एक दूसरे से कुछ न कुछ ग्रहण किया ही करती हैं। इसी प्रकार के पारस्परिक आदान-प्रदान से एक भाषा और साहित्य का निर्माण होगा। यदि हिन्दी को राष्ट्र भाषा या स्थान चाहिए तो दूसरी भाषाओं की रगड़ सहने के लिए उसे तैयार रहना चाहिए। मराठी, बँगला, गुजराती, उर्दू आदि का भाव ही लेने से काम न चलेगा—उसे इन भाषाओं के शब्द और मुहावरे भी लेने होंगे। इस प्रकार इस भाषा का शब्द-भाण्डार जब तक न बढ़ेगा तक तक उसे राष्ट्रीय भाषा का स्थान पाना दुष्कर है। हिन्दी की प्रवृत्ति है भी इसी ओर। हिन्दी पर इन भाषाओं का प्रति दिन कुछ न कुछ प्रभाव पड़ ही रहा है। इस प्रवाह को कोई मन्द कर सकता है, पर उसे सर्वथा रोक देना किसी की शक्ति में नहीं है, और ऐसा करना अदूरदर्शिता का काम होगा। भाषा में जो जीवन-शक्ति पैदा हो गई है और उसके कारण उसका जो विकास हो रहा है उसे रोकने से राष्ट्र का नुक़सान हो सकता है, लाभ नहीं।

हमारा यह मतलब नहीं है कि इन भाषाओं का चाहे जैसा सम्मिश्रण होने दो। हमारा यही मतलब है कि यदि हिन्दी में अच्छे मुहावरे नहीं हैं, अच्छे सार्थक छोटे छोटे शब्द नहीं हैं, पारिभाषिक शब्दों की कमी है, तो दूसरी भाषाओं से लेने में न हिचको। खुद कमा सकते नहीं और माँग कर खायँगे नहीं, तो भूखे अवश्य मरेंगे। शरीर जब भोजन चाहता है तब उसे भोजन देना अत्यन्त आवश्यक है। जो लोग ऐसा नहीं करने देते वे उसे भूखा अवश्य मारना चाहते हैं। संसार के इतिहास से यही जान पड़ता है कि सब उन्नतिशील भाषाओं ने दूसरी भाषाओं से शब्दादि लिये हैं। हिन्दी यदि ऐसा करे तो कौनसा पाप है? इस बात की आवश्यकता सबको जँचती है और लाचार होकर कुछ लोगों को ऐसा करना भी पड़ता है। फिर इस आवश्यकता को मान लेने में ही कौनसी बुराई है? अँगरेज़ी भाषा इतनी उन्नत होने पर दुनिया की अन्य भाषाओं से शब्द लेकर अपना भाण्डार अब तक बढ़ा रही है। हिन्दी यदि ऐसा करे तो उससे उसका क्या अपमान होगा? जब हिन्दी के पास निजी भाण्डार पूरा नहीं तो दूसरे से लेने में उसका कुछ भी अपमान न होगा। जिस प्रकार प्रत्येक पुरुष को दूसरों से विचार और शब्द सीखने पड़ते हैं उसी प्रकार प्रत्येक भाषा और साहित्य को भी थोड़ा बहुत करना ही पड़ता है। इसमें शरम की कोई बात नहीं है। ऐसा किये बिना भाषा और साहित्य पुष्ट न होंगे।

आशा है, हिन्दी-प्रेमी इस पर ध्यान देंगे और राष्ट्र के लाभ पर दृष्टि देकर निर्णय करेंगे।

गोपाल दामोदर तामसकर

——

३—कृष्ण-वट।

भारत में तीन वृक्ष प्रसिद्ध हैं और बहुतायत से पाये जाते हैं—आम्र, वट और पीपल। इनमें वट की विशालता विश्व-विख्यात है। यह अन्य वृक्षों की अपेक्षा बड़ा होता है; इसकी छाया लोगों को सुखकर प्रतीत होती है; और इसके फल पक्षियों को सुस्वादु मालूम होते हैं। भारतीय चिकित्सा-शास्त्र के ग्रन्थों में लिखा है कि वट-वृक्ष की छाया ग्रीष्म-ऋतु में शीतल और शीतकाल में उष्ण रहती है। सम्भवतः इसी लिए अशोक ने अपने राज्य की सड़कों के किनारे वट-वृक्ष लगाने की आज्ञा दी थी। यह चौड़ाई में बहुत फैलता है। दरभङ्गा ज़िले के कमतोल स्टेशन से एक कोस उत्तर, कमला-नदी के पश्चिम तट पर, भागवन में पांच बीघा भूमि में फैला हुआ एक वट का वृक्ष है। कलकत्ते के पास के बोटैनिकल गार्डेन का वट-वृक्ष तो संसार में प्रख्यात है ही। हमारे ग्राम के समीप ही एक वट का वृक्ष है जिसकी चौड़ाई प्रायः तीन बीघों में होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वट की एक विचित्र जाति है जिसे कृष्ण-वट कहते हैं। बनस्पतिशास्त्र के प्रसिद्ध ज्ञाता मि॰ सी॰ डी॰ कैन्डोली ने इसका लैटिन नाम Ficus Krishnae रक्खा है। इसकी उत्पत्ति कहां से हुई, कैसे हुई इत्यादि बातों का अभी तक कोई प्रमाणयुत पता नहीं लगा है। शब्दकल्पद्रुम, विश्वकोश, अमरकोश आदि ग्रन्थों में भी इसका नाम नहीं पाया जाता। संस्कृत की अन्यान्य पुस्तकों में भी इसकी कहीं चर्चा नहीं है। इस वृक्ष की विशेषता इसकी पत्तियों में है। अन्य जितने वट-वृक्ष होते हैं उनकी पत्तियां चैाड़ी, साधारणतः और वृक्षों की तरह, होती हैं, परन्तु इस वट की पत्तियां प्याले का आकार लिये होती हैं। दूसरी विचित्रता यह है कि अन्यान्य वृक्षों की पत्तियों के समान इसकी पत्तियां भीतर से चिकनी नहीं होतीं बरन् इनके भीतर रुखड़ापन रहता है। जहां तक विदित है और किसी भी वृक्ष की पत्तियां इस तरह की नहीं होतीं। प्रश्न यह है कि इसे कृष्ण-वट क्यों कहते हैं। यदि इसकी पत्तियां श्याम रङ्ग की होतीं तो कृष्ण-वट कहना युक्तिसङ्गत भी होता, पर वे ऐसी होती नहीं। इसके सम्बन्ध में बहुत सी किंवदन्तियां प्रचलित हैं। इनमें से तीन का उल्लेख नीचे किया जाता है।

बनवास के दिनों में श्रीरामचन्द्र ने, भोजन के लिए कटोरे की आवश्यकता समझ कर, अपनी ईश्वरीय शक्ति द्वारा, साधारण वट को कृष्ण-वट के रूप में परिणत कर दिया। पर यहां एक शङ्का हो सकती है कि यदि यह सत्य हो तो इसका नाम राम-वट न पड़ कर कृष्ण-वट क्यों पड़ा?

दूसरी किंवदन्ती यह है, कि जब श्रीकृष्ण, कंस के भय से, अपना बाल्य-काल ग्वाल-सखाओं तथा गोपियों के सङ्ग बिता रहे थे, ग्वालगण—विशेषतः गोपियां—प्रेम से प्रेरित हो, उनके लिए वट की सूखी पत्तियों के कटोरों में मक्खन लाया करती थीं। भला पत्तियों में मक्खन ठहरता है? परिणाम यह होता था कि अधिकांश बाहर बह जाया करता था। इससे एक दिन श्रीकृष्ण को बड़ा क्रोध हुआ। बस, इसे बचाने की इच्छा से श्रीकृष्ण ने अपनी अद्भुत चमत्कारिता द्वारा इन पत्तियों का आकार कांच-पात्र के समान बना डाला। इसी लिए इस तरह की पत्तियां जिस वट की होती हैं, उन्हें कृष्ण-वट कहते हैं।

तीसरी किंवदन्ती यह है कि श्रीकृष्ण, कानन के एक एकान्त स्थान में, किसी ख़ास वट-वृक्ष के नीचे रास-लीला किया करते। आदेशानुसार गोपियां वहां निश्चित समय पर पहुँच जाया करती थीं। परन्तु कभी कभी ऐसा होता था कि उन्हें इसकी खोज में बहुत भटकना पड़ता था। सहस्रों वट-वृक्षों में एक विशिष्ट वृक्ष को खोज निकालना क्या सहल काम है? एक दिन गोपियों के आने में बड़ी देरी हुई। जब वे आ पहुँचीं तब श्रीकृष्ण ने देखा कि वे पसीने से तर हैं, उनके वस्त्र ढीले पड़ गये हैं, उनकी सांस बड़ी तेज़ी से चल रही है। श्रीकृष्ण ने मुसकुराते हुए इसका कारण पूछा। गोपियों ने सारा हाल कह सुनाया और श्रीकृष्ण से प्रार्थना की, कि कुछ ऐसा चिह्न बना दो कि हम शीघ्र इसका पता पा जाया करें। प्रार्थनानुसार श्रीकृष्ण ने इसकी पत्तियों का आकार प्याले की तरह बना दिया। और इसी से इसका नाम पड़ा—कृष्ण-वट।

सम्भव है इन कहानियों में कुछ भी सार न हो—ये असङ्गत प्रतीत हों—परन्तु यदि इन किंवदन्तियों पर सूक्ष्म दृष्टि डाली जाय तो इसकी उत्पत्ति इत्यादि के सम्बन्ध में कुछ पता चल सकता है।

और वट-वृक्षों की तरह यह सब जगह प्राप्य भी नहीं है। कलकत्ते के अड़ोस-पड़ोस के बग़ीचों में ही इस प्रकार के वट-वृक्ष पाये गये हैं। हाँ, जहां जहां इन बग़ीचों से कटिङ्ग भेजे गये हैं, वहां भी ये देखे जा सकते हैं। इस वृक्ष की ओर लोगों का ध्यान प्रायः २४ वर्ष पहले आकृष्ट हुआ और तभी से इसकी उत्पत्ति इत्यादि के सम्बन्ध में अनुसन्धान हो रहा है पर अभी तक कोई फल नहीं निकला है। वनस्पति-शास्त्र के पण्डितों ने इस सम्बन्ध में बड़ा प्रयत्न किया है और कर रहे हैं।

वैज्ञानिकों ने यह जानने का भी यत्न किया है कि इसके रस से रब्बर बन सकता है या नहीं। यह वृक्ष रहस्यमय है, देखें इसके सम्बन्ध की कौन कौन सी बातें मालूम होती हैं।

राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—वियोग ।

प्रिय जन-वियोग सदा हमारे हृदय को है बेधता,
पाषाण सा भी हो हृदय तो वज्र-सम है छेदता ।
संसार की निःसारता संतत रुलाती है हमें,
इस मोह-बन्धन में कदापि न शांति आती है हमें ॥१॥
है निराली चाल तेरी काल इस संसार में,
डालती है यह सभी को शोक-सिन्धु अपार में ।
कल तक हमारे साथ में जो खेलते थे मोद में,
हे चितानल, आज वे हैं सो रहे तव गोद में ॥२॥
क्रूराग्नि, जब तू दीप्त हो चण में जलाती देह को,
भस्म कर देती सभी सौन्दर्य गुण छवि नेह को ।
लख रूप और स्वरूप तेरी गोद में हैं सो रहे,
सहसा अभी संसार से सम्बन्ध अपना खो रहे ॥३॥
आपकी इस निठुरता का, नाथ, क्या परिणाम है
सृष्टि की जब शक्ति है, संहार का क्या काम है ?
क्या हमारे प्राण-प्रिय हमसे मिलेंगे फिर हरे,
बुझ जायँगे या नेत्र ये जो आज जल से हैं भरे ॥४॥
क्या दूर देशों के लिए वे अब पथिक हैं होगये,
या नींद गहरी में चिता की सेज में हैं सो गये ।
है मनोरम मूर्ति मन में सामने अब भी खड़ी
देखते हैं हम उसे करके हृदय छाती कड़ी ॥५॥
है दुःख यह दुस्सह प्रभो अब हम इसे कैसे सहें
कब तक रटें गुण शील उनके, यह व्यथा किससे कहें ।
जीवन-मरण संसार में उदयास्त सम अनिवार्य हैं
काल से सब ग्रस्त ही हैं नाशमय सब कार्य हैं ॥६॥
आत्मा अमर है देह नश्वर, जानते हैं यह सभी
पड़ मोह-बन्धन में मनुज क्या मानते हैं, यह कभी ।
जगदीश अब तेरे बिना सुधि कौन ले इस काल में
हैं पड़े हम सब यहाँ संसार-माया-जाल में ॥७॥
हे ईश, अन्तिम विनय क्या स्वीकृत नहीं होगी कभी,
तव चरण में अर्पित रहे तन मन तथा धन जन सभी ।
जो चल बसा वह शान्त हो, जो है उसे भी शान्ति हो
सर्वत्र भीतर और बाहर सर्व शांति सशान्ति हो ॥८॥

हर्षदेव ओली

विविध विषय ।

१—हिन्दी में विज्ञान-विषयक पुस्तकों की आवश्यकता ।

प्रत्येक देश में प्रायः समय के अनुकूल ही पुस्तक-रचना हुआ करती है। जैसा समय आता है, साहित्य भी वैसा ही बनता है। हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों में एक समय था जब लोगों की रुचि श्रृङ्गाररस ही की ओर अधिक थी। तब वैसी ही पुस्तकें और वैसी ही कविताओं की क़द्र थी। पुरानी पुस्तकों के संस्करण यदि निकलते थे तो श्रृङ्गार-रस-प्रधान पुस्तकों ही के निकलते थे। ज़माने ने पलटा खाया तो जासूसी उपन्यासों का दौर-दौरा आया। जिधर देखो उधर ऐसे ही उपन्यास निकलने लगे। पुस्तकालयों में, वाचनालयों में, नवयुवकों की बैठकों में उन्हीं के आधिपत्य की दुन्दुभि बजने लगी। तरुण ही नहीं, अल्पवयस्क भी, ज़रूरी भी काम छोड़ कर, इन्हीं के मद से मत्त रहने लगे। इस कुरुचि से जो पिण्ड छूटा तो देश-भक्ति, जातीयता, असहयोग, साम्यवाद और चरखे ने और सब विषयों को बहुत कुछ दबा दिया। अब पुस्तकें निकलती हैं तो प्रायः इन्हीं विषयों की, ग़ज़लें, गाने और तराने छिड़ते हैं तो भी प्रायः इन्हीं विषयों के। समस्यापूर्तियाँ की जाती हैं या कवितायें लिखाई जाती हैं तो भी प्रायः इन्हीं विषयों की। समाचार-पत्रों और सामयिक पुस्तकों में तो इस प्रकार की कविताओं और लेखों का तूफ़ान सा आ रहा है। उपन्यासों और क़िस्से-कहानियों तक में राजनीति और देश-प्रीति के के दाँव-पेच दिखाये जाते हैं। भिन्न भाषाओं के उपन्यासों के अनुवाद की यदि ठहरती है तो ऐसे ही उपन्यास बहुत करके चुने जाते हैं जो इस समय की हवा के अनुकूल हों। मनुष्य की इस प्रवृत्ति को रोकना सम्भव नहीं। समय के अनुसार जैसे और बातें होती हैं वैसे ही साहित्य भी उसका अनुसरण करता है।

पर इस तरह की प्रवृत्ति से साहित्य में एकाङ्गी भाव आ जाता है—उसमें एकदेशीयता आ जाती है। यह एकाङ्गी-भाव हद से अधिक बढ़ जाय तो साहित्य को हानि पहुँ-चती है। उसके अन्यान्य अङ्ग अपुष्ट रह जाते हैं। किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही प्रकार के ज्ञान की विशेष चर्चा या अर्जना होने से और प्रकार के ज्ञानों की वृद्धि नहीं होती। जातीयता ही के नशे में यदि सभी चूर हो जायँगे तो और गुणों को वे ज़रूर ही भूल जायँगे। और, न भी भूलेंगे तो उनमें उन्नति तो ज़रूर ही न कर सकेंगे। देश या जाति के लिए यह बात अभीष्ट नहीं। उन्नति, कमोबेश, सर्वाङ्गीण होनी चाहिए।

सभी समझदार आदमियों की राय है, और उनकी यह राय सच भी है, कि पश्चिमी देशों ने जो इतनी उन्नति की है उसके कारणों में एक कारण विज्ञान का अनुशीलन भी है। विज्ञान ही की बदौलत वे कितनी ही बातों में अन्य देशों से बढ़ गये हैं। पर इस इतने महत्त्वशाली विज्ञान ही की ओर हम लोगों का दुर्लक्ष्य सबसे अधिक है। अँगरेज़ी भाषा में तो विज्ञान-विषयक अनन्त ग्रन्थ-राशि मौजूद है। भारत की बँगला, गुजराती और मराठी आदि कितनी ही प्रान्तीय भाषाओं में भी इस विषय की बहुत सी छोटी-मोटी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और होती जा रही हैं। पर जो हिन्दी राष्ट्र-भाषा होने का दावा कर रही है उसमें, बताइए, कितनी वैज्ञानिक पुस्तकें आज तक प्रकाशित हुई हैं। देहाती स्कूलों ही के नहीं, अँगरेज़ी के हाई स्कूलों के भी लड़कों को यह न मालूम होगा कि प्राणि-विद्या किस चिड़िया का नाम है। हमारे सामने नीम का पेड़ खड़ा है। पर हम नहीं जानते कि किन नियमों के अनुसार उसका पोषण होता है। वह बढ़ता है और पुराना हो जाने पर सूख जाता है। ईश्वर की सृष्टि में कोई चीज़ बेकार नहीं। कोई चीज़ ऐसी नहीं जो प्रकृति के नियमों के दायरे के बाहर हो। उन नियमों का ज्ञान प्राप्त करना मानों प्रकृति या परमेश्वर के नियमों का ज्ञान प्राप्त करना है। इन नियमों की ज्ञान-प्राप्ति से मनुष्य की स्वार्थ-सिद्धि भी होती है। उसे बहुत कुछ लाभ पहुँच सकता है। उस ज्ञान की बदौलत वह औरों को भी लाभ पहुँचा सकता है। अतएव, हिन्दी में, वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रकाशन की बड़ी ज़रूरत है।

जो लोग आज-कल तरह तरह के उपन्यास, तथा वर्तमान समय की रुचि के अनुसार और पुस्तकें, प्रकाशित करके मालामाल हो रहे हैं वे चाहें तो वैज्ञानिक पुस्तकें भी लिखा कर पढ़नेवालों की रुचि, धीरे धीरे, वैसी पुस्तकों की तरफ़ आकृष्ट कर सकते हैं। यदि वे एक पुस्तक-माला निकालें और साल में छोटी छोटी दो ही वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित कर दें तो पाँच वर्ष में दस वैज्ञानिक "प्राइमर" छप जायँ। एक पुस्तक में एक ही विज्ञान या विद्या की चर्चा रहे। विद्या से हमारा मतलब शास्त्र से है। प्राणि-शास्त्र, शरीर-शास्त्र, कीट-पतङ्ग-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र, ज्योतिष-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र आदि के स्थूल नियम यदि, सरल भाषा में, लिख दिये जायँ तो बहुत कुछ ज्ञान-वृद्धि हो सके। जो लोग केवल थोड़ी सी हिन्दी जानते हैं वे तो अभी यह भी नहीं जानते कि भूगर्भ-शास्त्र भी कोई शास्त्र है, और है तो उसमें किस बात का ज़िक्र है। कोई स्कूली छात्र यदि अपने पिता या बड़े भाई से पूछ बैठे कि पृथ्वी के भीतर क्या है, क्यों कहीं पानी नज़दीक और कहीं दूर निकलता है, क्या कारण है कि कहीं तो पृथ्वी के पेट से बालू निकलती है और कहीं चिकनी मिट्टी, तो सिवा चुप रहने या दो चार उलटी सीधी बातें सुना देने के और कुछ आशा नहीं की जा सकती। इस वैज्ञानिक युग में अपनी इस अज्ञानता को दूर करने की चेष्टा न करना कितने परिताप की बात है।

२—हिमालय के सबसे ऊँचे शिखर की खोज।

जो लोग धुन के पक्के हैं, जो श्रम से नहीं डरते, जो बड़े से भी बड़े भय से भीत नहीं होते, जो नई नई बातें जानने के सदा उत्सुक रहते हैं, जो साहसी हैं, जो हठप्रतिज्ञ हैं, और जो "असम्भव" शब्द का अस्तित्व ही नहीं स्वीकार करते वही सब कामों में सफल-मनोरथ होते हैं, वही औरों पर आधिपत्य करते हैं और वही लक्ष्मी के विलास-विभ्रम के क्रीड़ा-निकेतन हो सकते हैं। अमरीका को ढूँढ़ निकालनेवाले, उत्तरी ध्रुव तक पहुँचने की चेष्टा करनेवाले और अफ़रीका के घोर जङ्गलों में रह कर बन्दरों की भाषा सीखनेवाले ऐसे ही लोग थे। जो अत्यल्प ही से सन्तुष्ट है, जो घर से बाहर नहीं निकलना चाहता, जो ज्ञानवृद्धि की महिमा नहीं जानता उस अकर्मण्य के लिए इस कर्म्मशील युग में रहने का अधिकार नहीं।

अनन्त काल से हम लोगों की यह धारणा है कि हमारा हिमालय पृथ्वी के अन्यान्य सभी पर्वतों से अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँचा है। उसकी चोटियां सदा ही हिमाच्छादित रहती हैं। पुरानी से भी पुरानी पुस्तकों में उसकी गुण-गरिमा गाई गई है। यह गुणगान हम हज़ारों वर्षों से सुनते चले आ रहे हैं। परन्तु आज तक भारतवासियों में एक भी ऐसा साहसी और ज्ञान-पिपासु पुरुष नहीं उत्पन्न हुआ जिसने हिमालय के सर्वोच्च शिखरों का ज्ञान प्राप्त किया हो। यदि किसी ने दूर तक जाने का प्रयास भी किया है तो गङ्गोत्तरी, यमुनोत्तरी, मानसरोवर और कैलाश शिखर तक ही वह जा सका है। उसने वहां का जो हाल लिखा है वह भी एक तरह का क़िस्सा सा मालूम होता है। विज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण उसके वर्णन में वैज्ञानिक बातों का पता नहीं। विज्ञान-दृष्टि से किसी वस्तु की खोज करना और बात है और ऊपर ही ऊपर किसी चीज़ को देख कर उसका स्थूल वर्णन कर देना और बात है। बहुत समय हुआ, एक पञ्जाबी सज्जन हिमालय-प्रान्त में कुछ अधिक दूर तक पहुँच भी गये थे, पर उनका वहां तक का वर्णन भी अपूर्ण है और प्रायः अप्राप्य हो रहा है। भारतवासियों ने उनकी क़द्र भी नहीं की। और करें कैसे, वे इस प्रकार के भ्रमणों और इस प्रकार की खोजों का महत्त्व ही नहीं जानते। इस पञ्जाबी वीर का तो हम लोग नाम तक नहीं जानते, पर सर्वे डिपार्टमेंट (महकमा पैमायश) के मुलाज़िम, एवरिस्ट साहब, का नाम देहाती मदरसों के लड़कों तक के मुँह में विराजमान है। ये साहब हिमालय-प्रान्त की पैमायश करते करते उसके सर्वोच्च शिखर के पास पहुँच गये। देखा तो वह आसमान से बातें कर रहा था। उन्होंने यन्त्रों की सहायता से उसकी ऊँचाई की नाप-जोख की तो मालूम हुआ कि वह शिखर संसार के सभी पर्वतों के उच्चतम शिखरों से भी ऊँचा है। यह बात जब उन्होंने प्रकाशित की तब उनके देशवासियों तथा पश्चिमी देशों के अन्य विद्वानों ने उनकी इस खोज को इतने महत्त्व की समझा कि उस चोटी का नामकरण उन्हीं के नाम से कर दिया। तब से हिमालय के सर्वोच्च शिखर का नाम हुआ—एवरिस्ट। बस हमने अपने गौरीशङ्कर शिखर को भुला दिया और एवरिस्ट का पाठ पढ़ने लगे!

और और विद्याओं और विज्ञानों की चर्चा के लिए इँगलिस्तान में जैसे सभायें और समितियां हैं वैसे ही भूगोल-विज्ञान की वृद्धि के लिए भी हैं। उसके कितने ही सभासद् बहुत समय से यह चाहते हैं कि हिमालय के उच्च शिखरों का पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त किया जाय। आज तक योरप के कितने ही पर्य्यटक हिमालय के कितने ही अंशों की सैर कर चुके हैं और अपने पर्य्यटनों का वृत्तान्त भी प्रकाशित कर चुके हैं। पर उनके वर्णन पूरे सन्तोषजनक नहीं। उन्होंने हिमालय का सर्वाङ्गीण ज्ञान प्राप्त भी नहीं किया। इस कमी की पूर्ति के लिए गत वर्ष इँगलिस्तान से एक टोली हिन्दुस्तान आई। उसके ख़र्च का प्रबन्ध वहां की भूगोलसभा तथा अन्य लोगों ने किया। उसने एवरिस्ट शिखर की चोटी तक चढ़ने की चेष्टा की। पर पूरी कामयाबी न हुई। जाड़े आगये और उस टोली को बीच से ही लौट आना पड़ा। अब इस साल इस टोली के ही कुछ लोग, तथा कुछ और लोग भी, हिमालय पर दुबारा चढ़ने जा रहे हैं। गत वर्ष इन लोगों ने हिमालय-विषयक जो ज्ञान प्राप्त किया था उसके अनुभव से इनको पूरा पूरा विश्वास है कि वे इस बार पर्वत के ऊपर तक पहुँच जायँगे। वहां कौन कौन से जानवर और जीव-जन्तु रहते हैं और कितनी ऊँचाई तक पाये जाते हैं, कौन कौन सी वनस्पतियां और पेड़-पौधे वहां उगते हैं, खनिज पदार्थ कौन कौन और कहां कहां हैं, रास्ते कैसे हैं, आबोहवा कैसी है, ऊँचाई कहां पर कितनी है—इन्हीं बातों का ये लोग वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करेंगे और उसका विवरण प्रकाशित करेंगे। और, हम अकर्मण्य भारतवासी इसी का पाठ करके हिमालय का हाल जानेंगे। बहुत सम्भव है, हम उसे पढ़ें भी नहीं, और पढ़ेगा भी तो शायद एक लाख में कोई एक आध बिरला आदमी!

सो, जिस हिमालय की महिमा का बखान हमारे पोथी, पुराणों तक में है, जिस पर, सुनते हैं, देवताओं का निवास है या देवताओं का निवास था, और जो हमारेही देश की सीमा पर लाखों वर्ष से "पृथ्वी के मान-दण्ड के सदृश" स्थित है उसकी जांच पड़ताल कर रहे हैं ६००० मील दूर स्थित एक टापू के रहनेवाले! क्या यह बिलकुल ही असम्भव बात है कि भारतवासी स्वयं अपने देश के अज्ञात या अल्पज्ञात स्थानों की खोज करें?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि हम लोग भी वैज्ञानिकों का एक समुदाय सङ्गठित करके एक भैागोलिक समिति की संस्थापना करें और इस तरह की खोज के काम आरम्भ कर दें तो हिमालय के शिखरों, कन्दराओं और सरोवरों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यदि ऐसी खोज से मणि-मुक्ताओं का ढेर हाथ न लगे तो न सही, ज्ञान-प्राप्ति ही क्या किसी चिन्तामणि से कम समझी जा सकती है? और यदि किसी कन्दरा में थियासफ़िस्टों के किसी महात्मा के दर्शन होजायँ तो फिर कहना ही क्या है। बात यह है कि इस कर्म्म-प्रधान और विज्ञानसाधक युग में साहस, श्रम, खोज, दृढ़ता और ज्ञानलिप्सा की ज़रूरत है। बिना इन गुणों की उपार्जना के भारतवासी और देशवालों की समकक्षता करने का सच्चा दावा नहीं कर सकते। हमारे घर में क्या है, यह बताने के लिए हज़ारों कोस से विदेशियों का आना ही हमारे लिए क्या कम लज्जा की बात है!

३—हिन्दी-साहित्य की वर्त्तमान स्थिति।

मध्यप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के विगत अधिवेशन में सभापति की हैसियत से पण्डित रविशङ्कर शुक्ल ने जो भाषण दिया है वह हिन्दी-साहित्य-सेवियों के लिए विचारणीय है। आज-कल हिन्दी-साहित्य में जिन विषयों पर आन्दोलन हो रहा है उनकी अच्छी विवेचना आपने की है। हिन्दी-साहित्य की वर्तमान स्थिति पर आपने यह कहा है:—

जिस समय हम हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने की चर्चा करते हैं, उस समय हमारे मन में यह प्रश्न आप ही आप उठता है कि हिन्दी-साहित्य की इस समय कैसी अवस्था है और जिस समय यह प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता है, उस समय हमारी तुलनात्मक दृष्टि अन्यान्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की ओर जाती है। इस प्रश्न के उत्तर में हमें यह मुक्तकण्ठ से स्वीकार करना होगा कि हिन्दी-साहित्य का कलेवर उतना उन्नतिशील और पुष्ट नहीं जितना बङ्गाली तथा मराठी-साहित्य के सम्बन्ध में पाया जाता है। ये भाषायें हिन्दी से कई क़दम आगे बढ़ी हुई हैं और वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य में जितने नये और उत्तम ग्रन्थ देखने में आते हैं, वे अधिकांश में या तो बङ्गाली तथा मराठी ग्रन्थों के अनुवाद हैं या उनके आधार पर लिखे गये हैं। अनुवादों की आवश्यकता ज़रूर है, किन्तु इतना ही किसी भाषा के लिए गौरव और सन्तोष का विषय कदापि नहीं हो सकता।

हिन्दी में जो कुछ उत्तम साहित्य के नाम से भूषित होने के योग्य है, वह सब प्राचीन है। नये साहित्य के नाम पर इसमें केवल अनुवादों और छायानुवादों की भरमार है। हरिश्चन्द्र के बाद हिन्दी-संसार में फिर दूसरे हरिश्चन्द्र का जन्म आज तक न हुआ। माइकेल मधुसूदन के बाद द्विजेन्द्रलाल तथा रवीन्द्रनाथ का जन्म हो चुका, किन्तु प्रतीत होता है, कि हिन्दी के लिए तुलसी और सूरदास का काल सदा के लिए अतीत के गर्भ में लुप्त हो गया। हिन्दी-साहित्य-सेवियों में मुझे एक भी ऐसे सज्जन का नाम मालूम नहीं है, जो कवि की पदवी को सार्थक कर सकता हो। उच्च कोटि के उपन्यास-लेखकों का भी खेदजनक अभाव ही है। नाटक के नाम से हिन्दी का अङ्ग सूना पड़ा हुआ है। इतिहास, विज्ञान तथा राजनैतिक ग्रन्थों की चर्चा करना ही व्यर्थ है। प्रतीत होता है कि कदाचित् ये विषय ही हिन्दी-साहित्य को अज्ञात हैं। इस सन्तापजनक अभाव का एक-मात्र कारण केवल इतना ही है, कि हिन्दी में प्रौढ़ लेखकों की कमी है। जिन लोगों को ऊँची से ऊँची शिक्षा मिली है अर्थात् जिनके विचार प्रौढ़ हैं, वे प्रायः हिन्दी से उदासीनता तथा विरक्ति के भाव धारण किये हुए दिखाई देते हैं। मिथ्याभिमान तथा नासमझी के वशवर्ती होकर ऐसे लोगों ने अपनी मातृभाषा के स्थान पर प्रायः अँगरेज़ी को ही आसीन कर दिया है।"

आपके इस कथन में ज़रा भी अत्युक्ति नहीं है। हिन्दी-साहित्य के अभावों की ओर उसके शुभचिन्तकों का ध्यान जाना चाहिए। परन्तु प्रश्न यह है कि इन अभावों की पूर्ति किस प्रकार हो सकती है। सभापतिजी ने अँगरेज़ी के विद्वानों का ध्यान इधर आकृष्ट किया है। वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन का एक शुभ परिणाम यह हुआ है कि अब अँगरेज़ीदां भारतवासी अपनी मातृभाषा का कम अनादर करने लगे हैं। परन्तु निस्स्वार्थ भाव से सेवा करने की ओर अभी थोड़े ही लोगों की प्रवृत्ति हुई है। भगवान् अन्य लोगों को सुमति दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के आधुनिक साहित्य में मौलिकता का अभाव है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि मौलिक साहित्य उत्पन्न करने के लिए हमें साहित्य में उपयुक्त क्षेत्र स्थापित करना होगा। शुक्लजी का कथन है कि हिन्दी के लिए अब तो तुलसी और सूरदास का काल अतीत के गर्भ में लुप्त हो गया। सचमुच अब उनका ज़माना लौटने का नहीं। उन्हें जो करना था वे कर गये। अब हिन्दी-साहित्य के प्रेमी उनका उचित आदर करना ही सीखें। अस्तु। यहां हम एक प्रश्न पर विचार करना चाहते हैं। वह यह कि क्या कारण है कि सभी समय तुलसी और सूरदास उत्पन्न नहीं होते ? क्या महाकवियों की उत्पत्ति साहित्य में एक आकस्मिक घटना है जो ईश्वरीय शक्ति पर निर्भर है ? यदि यही बात हो तो शुक्लजी का विलाप करना व्यर्थ होगा।

यहां हम अन्य देशों के साहित्य पर ध्यान देते हैं। हम सर्वत्र देखते हैं कि कभी तो कला की बड़ी उन्नति हुई है, बड़े बड़े चित्रकार और कलाकोविद हुए हैं, और कभी कला का सर्वथा अभाव रहा है। इसका क्या कारण है। इतिहास के मर्मज्ञ विद्वानों का कथन है कि देश के समृद्धि-काल में कला का विकास होता है। परन्तु इससे हमें सन्तोष नहीं होता। यदि समृद्धि से ही कला का सम्बन्ध है तो क्या कारण है कि देश की समृद्धावस्था में भी सभी समय कला का विकास नहीं हुआ ? वर्तमान युग तो योरप के लिए समृद्धि-काल है। क्या कारण है कि अब रैम्ब्रैंट अथवा शेक्सपियर उत्पन्न नहीं होते ? आज-कल कला-कोविदों का आदर भी अधिक है। धन और कीर्ति दोनों उनके हाथ में हैं। तो भी अतीत युग में जैसे कला-कोविद हो गये वैसे अब क्यों नहीं होते ? हमारा यह कथन है कि जब किसी शताब्दी के पहले पचास वर्षों में सैकड़ों कवि और कलाकोविद हुए तब उसी शताब्दी के पिछले पचास वर्षों में क्यों न वैसे ही कवि और चित्रकार उत्पन्न हों। जब देश की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, जब देश उन्नति के पथ पर बराबर अग्रसर रहा, तब कला की ही उन्नति में व्यवधान कहां से आजाता है। हम तो यह कहते हैं कि पहले जैसे कवि उत्पन्न हुए पिछले समय में भी वैसे ही कवि हुए। भेद यही है कि पूर्ववर्ती कवियों को अपनी शक्ति को शीघ्र विकसित करने का अवसर मिला, किन्तु परवर्ती कवियों की शक्ति विकसित न हो सकी। इसका कारण क्या है ? जब कोई बाह्य कारण नहीं है तब हम यही कहेंगे कि यह सर्वसाधारण की कुरुचि का परिणाम है। जब जनता बाह्य सौन्दर्य्य ही पर मुग्ध है तब कवि अपनी शक्ति को नायिका के नख-शिख-वर्णन में ही लगा देगा। बिहारी की कविता में कौन ऐसी बात नहीं है जो कवित्व-दृष्टि से तुलसी अथवा सूर की रचना में विद्यमान है। बात यही है कि तत्कालीन समाज की रुचि विकृत होने के कारण कवि का आदर्श उच्च न हो सका। अतएव सबसे पहले हमारा यह कर्तव्य है कि हम समाज की रुचि को परिष्कृत करें। तभी मौलिक साहित्य के लिए उपयुक्त क्षेत्र भी तैयार होगा। यहां हम अनुवादकों का स्वागत करते हैं। परन्तु अनुवाद ऐसे ही ग्रन्थों का किया जाना चाहिए जिससे सद्भाव और सुरुचि का प्रचार हो। आधुनिक अँगरेज़ी साहित्य की सृष्टि अनुवादों से ही हुई है। उन्नीसवीं शताब्दी में ऐसा कोई भी प्रतिभाशाली लेखक नहीं हुआ है जिसने अनुवाद न किया हो। मतलब यह कि किसी भी प्रकार से हमें जनता में सद्विचार फैलाना चाहिए। तभी हमारे साहित्य की उन्नति होगी।

४—महाभारत का एक सचित्र संस्करण।

काव्य के समान चित्र-कला का भी उद्देश्य रसात्मक-भाव का विकास करना है। भावों का भाण्डार काव्य है, अतएव चित्र-कला के साथ काव्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस कला पर धर्म अथवा काव्य का प्रभाव नहीं पड़ा उस कला ने सफलता भी प्राप्त नहीं की। हिन्दू, बौद्ध और मुसलमानों की कलाओं में इसका यथेष्ट प्रमाण है। इन कलाओं पर धार्मिक ग्रन्थों और काव्यों का खूब प्रभाव है। यही नहीं, किन्तु उनका उपादान भी उन्हीं से सङ्ग्रहीत हुआ है। धर्म और काव्य की गति जिस ओर अग्रसर हुई है उसी ओर कला का रूप भी परिवर्तित हुआ है।

हिन्दू-कला पर सबसे अधिक प्रभाव रामायण और महाभारत का पड़ा है। हिन्दू-कला के प्रायः सभी विषय इन्हीं दो महाकाव्यों से लिये गये हैं। बौद्ध-धर्म का प्रभाव लुप्त हो जाने पर एलोरा के जो गुहामन्दिर निर्मित हुए उनमें महाभारत के वर्णित विषय जगह जगह तक्षण-कला द्वारा अङ्कित किये गये हैं। अन्यान्य स्थानों में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे चित्र पाये जाते हैं। बङ्गाल में विष्णुपुर नामक स्थान विशेष उल्लेखनीय है। वहां के कुछ मन्दिरों में रामायण और महाभारत के मृण्मय चित्र हैं। मुग़लकालीन चित्र-कला में भी इनका प्रभाव विद्यमान है। कभी पञ्जाब में कांगड़ा तथा अन्य स्थान चित्रकला के केन्द्र थे। वहां हज़ारों चित्रकार चित्र-निर्माण में निरत रहते थे। उनके अङ्कित चित्रों की संख्या अगण्य है। यद्यपि कितने ही चित्र अब नष्ट हो गये हैं और कितने ही अन्य स्थानों में भेज दिये गये हैं तो भी वहां के चित्र अभी निःशेष नहीं हुए हैं। कुछ समय पहले प्रवासी में वहीं के कुछ चित्र छापे गये थे। इन चित्रों का विषय रामायण और महाभारत के कथाभाग से सम्बन्ध रखता है। आज-कल भी अधिकांश चित्र रामायण और महाभारत के ही विषयों पर बनाये जाते हैं। औंध के श्रीमान् पन्तप्रतिनिधिजी ने रामायण की सम्पूर्ण कथा को चित्रों में अङ्कित किया है। वे चित्र रामायण के नाम से प्रकाशित भी हुए हैं। सरस्वती में उसका परिचय दिया जा चुका है। अब आपकी इच्छा महाभारत के भी चित्र बनाने की है। आपने इसी विषय पर भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट के जनरल में कुछ बातें लिखी हैं। उसका मर्म नीचे दिया जाता है।

सरस्वती के पाठकों को मालूम होगा कि भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट ने महाभारत का एक प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित करने का भार स्वीकार किया है। उसके लिए एक महाभारत कमेटी भी बन गई है। उसके सभापति औंध के श्रीमान् पंतप्रतिनिधि जी हैं। अब आपने यह प्रश्न उठाया है कि इस महाभारत के संस्करण के लिए चित्र कैसे तैयार किये जायँ। चित्राङ्कित व्यक्तियों की वेष-भूषा किस प्रकार हो और तत्कालीन दृश्य किस प्रकार दिखलाये जायँ। भारतवर्ष में प्राचीन कला के द्योतक जो नमूने मिलते हैं उनका समय ईसा के तीन सौ वर्ष पहले से लेकर एक सौ पचास वर्ष तक का है। उनकी जैसी वेष-भूषा है वह, जान पड़ता है, बहुत पहले भी प्रचलित थी। सात-आठ सौ वर्ष बाद भी वेष-भूषा की उसी प्रणाली का प्रचार रहा जैसे कि सांची, अजंटा, एलोरा आदि के चित्रों से विदित होता है। भारहुत में जो चित्र हैं, उन पर विदेशी प्रभाव नहीं है। वे ईसा के दो सौ पचास वर्ष पहले के हैं। यह माना जा सकता है कि एक हज़ार वर्ष तक वेष-भूषा की वही प्रणाली प्रचलित रही होगी। अतएव महाभारत के दृश्य अङ्कित करने में उनसे सहायता ली जा सकती है।

देखें महाभारत का यह सचित्र संस्करण कब तक प्रकाशित होता है।

५—जनता में शिक्षा-प्रचार।

वर्तमान समय के सभ्य संसार में भारत का भी स्थान है और इस समय सारे भूमण्डल पर पाश्चात्य सभ्यता का ही प्राबल्य है। अतएव अपनी मान-मर्यादा की रक्षा के लिए उसे सर्व प्रकार से मुस्तैद रहने की परमावश्यकता है। इसके लिए यह बात परमावश्यक है कि वह पूर्ण रीति से शिक्षित हो, नहीं तो संसार के सभ्य राष्ट्रों की दौड़ में वह अपना भाग नहीं ले सकेगा। और यदि भारत का ध्यान इस ओर समय बीत जाने के पहले आकृष्ट नहीं होगा तो उसका सर्वनाश अनिवार्य समझना चाहिए। अतएव इस सम्बन्ध में भारत को सजग करते हुए कनकरायन टी० पाल साहब ने सारे भारतवासियों को शिक्षित करने की आवश्यकता बतलाते हुए लिखा है—

देश काल का विरोध अब असम्भव हो गया है। उसके विरोध का परिणाम या तो यह होगा कि हमारा नाम ही संसार से मिट जायगा या बच बचा जायँगे तो बिलकुल ही निर्बल और परमुखापेक्षी। विरोध-भाव की आवश्यकता अब नहीं है। हम लोगों के अब केवल यही प्रश्न रह गये हैं। संसार के बलवान् राष्ट्रों से उनकी व्यापारिक या साम्पत्तिक समुन्नति के लिए सदा सर्वदा अपने आपको लुटाते रहें या उन्हीं के ढंग की नक़ल कर हम भी ठीक उनके जैसे हों या अपनी राष्ट्रीयता को समुचित रूप से सुरक्षित किये हुए स्वतन्त्र हिस्सेदार के रूप में संसार के कार्यक्षेत्र में प्रवेश करें और उसकी सुख-शान्ति की वृद्धि में उनके साथ साथ अपना भी साहाय्य प्रदान करें।

इस उत्तरदायित्व का भार ग्रहण करने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि सारा भारतीय समाज बच्चे से लेकर बुड्ढे तक आवश्यक शिक्षा-प्राप्त हो; और जिस ढंग से इस देश में शिक्षा का प्रचार होता आया है उसकी व्यवस्था देख कर यह आशा नहीं की जा सकती कि भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए तुरन्त प्रस्तुत हो जायगा। शिक्षा-प्रचार के ढँग को देखने से तो यह सिद्ध होता है कि यदि यह क्रम जारी रहा तो कई एक सदियों के बीत जाने पर भी भारत अपनी ज़िम्मेदारी न सँभाल सकेगा। बच्चे से लेकर बुड्ढे तक सबको शिक्षित बनाने के लिए विराट् आयोजन की आवश्यकता है। इसकी उपेक्षा करना अपने ही हाथ से अपने पैर में कुल्हाड़ी मारने के समान है। पाल साहब आगे लिखते हैं—

जब अमरीका ने हबशियों को ग़ुलामी से मुक्त किया था तब वे हम लोगों की अपेक्षा शिक्षा तथा साम्पत्तिक स्थिति में बहुत ही गिरे हुए थे। पीढ़ियों से ग़ुलाम होने के कारण उनमें आत्म-निर्भरता बिलकुल न रह गई थी। उनके अधःपतन का कारण केवल अविद्या ही न थी, किन्तु नैतिक अयोग्यता भी थी। परन्तु दो ही पीढ़ियों में वे शिक्षा और सम्पत्ति में श्वेताङ्गों की बराबर बहुत कुछ पहुँच गये हैं और इस समय अमरीका के हबशी संयुक्त-राज्य के प्रजातन्त्र के नागरिक के रूप में वहाँ सिर उठा कर चलते हैं। उन्होंने अपने नवयुवकों को ही स्कूलों में भेज कर इस स्थिति को नहीं प्राप्त किया था। हबशी समाज के वयस्क लोगों की शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध किया गया था।

जिन्हें हमारे देश की परम्परा का ज्ञान है वे इसे स्वीकार ही करेंगे कि प्रौढ़ की शिक्षा बिलकुल ही हम लोगों की योग्यता के अनुकूल है। यदि संसार के किसी देश में जीवन भर का उद्देश शिक्षा प्राप्त करना रहा है तो हमारा ही देश है। यहाँ का समाज शिक्षालय, और उसका उद्देश सेवाधर्म, रहा है। साहित्य, दर्शन और गणित लेखन-कला के प्रचलित होने के पहले ही यहाँ पूर्ण-रूप से समुन्नत हो गये थे। इस देश के लाखों निरक्षर अधिवासी धर्म की छोटी छोटी बातों का ज्ञान रखते हैं और उनका पालन करते हैं। पढ़ने और लिखने के साधनों से रहित होने पर भी यहाँ के लोगों को एक मुँह से दूसरे मुँह, पिता से पुत्र को और माता से कन्या को, ज्ञान बराबर प्राप्त हुआ है। गाँव में मन्दिर से कथा-कहानियाँ, कवितायें, काव्य, नीति के वचन और उच्च कोटि के भजन प्रचलित होते रहे हैं। बाज़ार का क्रय-विक्रय, लेन-देन, घटी-मुनाफ़ा आदि की गणना केवल ज़बानी ही होती आई है।

वास्तव में बात यह है कि यहाँ की सामाजिक सुविधायें तथा संस्थायें ही ऐसी हैं जिससे प्रौढ़ों की शिक्षा की परिपुष्टि आप ही आप हो जाती है। लेखक ने भी बताया है कि यह काम सहयोग-समितियों, नाटक-घरों, बाज़ारों, मेलों और ग्राम्य पाठशालाओं के द्वारा पूर्णरूप से सिद्ध हो सकता है। जिन सिद्धान्तों पर यहाँ के प्रौढ़ों की शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है वे लेखक की राय में दो हैं। एक तो भारतीय नागरिकों को इस प्रकार योग्य होना चाहिए जिसमें वे अपने समाज को संसार की राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति से परिचित होने में समर्थ कर सकें। दूसरे यह कि वे अपने जीवन में उपलब्ध अवसरों का पूर्ण उपभोग करने के अधिकारी हो जायँ।

यदि इस महान् उद्देश को सिद्ध करना है तो सर्व-साधारण, विश्वविद्यालय और सरकार, सभी को मिलकर काम करना चाहिए अन्यथा भारत की अवनति अनिवार्य है।

६—भारतीय पत्र-सञ्चालन की नीति।

हाल ही में सरकार ने प्रेस-सम्बन्धी क़ानूनों को रद करने के लिए एक प्रेस-कमिटी नियुक्त की थी। उसके सामने गवाही देने के लिए देश के प्रसिद्ध प्रसिद्ध सम्पादक बुलाये गये थे। प्रेस-सम्बन्धी क़ानूनों का प्रभाव यहाँ के पत्रों पर कैसा पड़ा है तथा उनके रद हो जाने पर उग्र विचार प्रकट करनेवाले पत्र किस प्रकार राह में रक्खे जा सकेंगे, इन बातों के सम्बन्ध में प्रेस-कमिटी ने ख़ासी जिरह भी की। जिन लोगों ने उसके सामने इस सम्बन्ध में अपने बयान दिये उनमें 'हिन्दू' के प्रसिद्ध सम्पादक मिस्टर कस्तूरी रङ्ग आयंगर और मिस्टर मैक कार्थी एम० एल० ए० ने पहले ही से यह शर्त करा ली थी कि हमारे बयान प्रकाशित न किये जायँ। इनके सिवा कई लोगों ने भी अपने साक्ष्य के कुछ अंशों को न प्रकाशित करने का वचन कमिटी से ले लिया। न मालूम, इन लोगों ने ऐसी कौन सी गोपनीय बातें अपने बयानों में कही हैं जिनका प्रकाशन इन्हें उचित नहीं जँचा। परन्तु जिन लोगों के बयान अख़बारों में प्रकाशित हुए हैं उनमें बाबू पाँचकौड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की साक्षी विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। उससे इस बात पर थोड़ा-बहुत प्रकाश पड़ता है कि यहां के प्रतिष्ठित पत्रों का सञ्चालन अब तक किस नीति पर होता रहा है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपना मत जिस तरह निर्भीक हो कर व्यक्त किया है उसके लिए वे सर्वथा प्रशंसा के पात्र हैं।

बाबू पांचकौड़ी बनर्जी लब्ध-प्रतिष्ठ और अनुभवी सम्पादक हैं। अतएव उनका कथन उपेक्षणीय नहीं हो सकता। वे गत २५,२६ वर्ष से सम्पादन-कार्य कर रहे हैं। कलकत्ते के कई एक अँगरेज़ी तथा बँगला पत्रों के प्रधान सम्पादक रह चुके हैं। उन्होंने 'सन्ध्या' जैसे विप्लववादी पत्र के सम्पादन-विभाग में सहकारी सम्पादक के रूप में काम किया है। इस समय वे 'बङ्गाली' के सम्पादक हैं। उन्होंने अपनी गवाही में कहा है कि जो विष-वमन अख़बारों में होता रहता है उसका एक-मात्र उद्देश व्यापार है। ऐसी दशा में यदि प्रेस की ज़ब्ती का हाल अधिकार न्यायालयों को प्राप्त रहे तो मुझे ज़रा भी एतराज़ नहीं है। पत्रों के आक्रमणों से देशी नरेशों की रक्षा होने के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि ब्रिटिश गवर्नमेंट को किसी नरेश की रक्षा का ध्यान न करना चाहिए जब कि वे चमचमाते हुए रुपयों से भरे हुए तोड़े लेकर बङ्गाल या संयुक्त-प्रान्तों में आते जाते हैं। हम लोग उनसे उधार पर सौदा नहीं करते। यदि वे हम लोगों से अपने सम्बन्ध में लेख लिखवाना चाहते हैं तो उन्हें हमको रुपये देने ही पड़ेंगे। गत ३१ वर्षों में मुझे बङ्गाल में यही अनुभव हुआ है। 'बाम्बे क्रानिकल' और 'इंडिपेंडेंट' के लेखों को उन्होंने सर्वथा निस्सार बताया और 'सर्वेंट' के सम्बन्ध में यह राय दी कि उसका भी एक-मात्र लक्ष्य व्यापार है।

यदि बनर्जी के कथनानुसार इस देश के पत्रों का सचमुच यही हाल है तो इससे बढ़कर परिताप की बात और कौन सी हो सकती है।

पुस्तक-परिचय।

१—ऐतिहासिक पुस्तकें।

(१) प्रारम्भ से ही हिन्दी-साहित्य में भारत के प्राचीन इतिहास की बहुत बड़ी कमी चली आती है। इसकी ओर आज तक पूरी तौर से किसी विद्वान् का ध्यान नहीं गया था। परन्तु प्रसन्नता की बात है कि यह कमी जोधपुर अजायबघर और पबलिक लाइब्रेरी के सुपरिन्टेंडेंट साहित्याचार्य पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ ने **भारत के प्राचीन राजवंश** नाम का इतिहास-ग्रन्थ लिख कर बहुत कुछ पूरी कर दी है। यह पुस्तक दो भागों में प्रकाशित हुई है। इनमें महाभारत के समय से लेकर भारत पर राज्य करनेवाले भिन्न भिन्न वंशों का सिलसिलेवार इतिहास संक्षेप में दिया गया है। इसकी रचना संस्कृत और प्राकृत पुस्तकों, चीनी यात्रियों के यात्रा-विवरणों, फ़ारसी-तवारीख़ों, प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों और सिक्कों आदि के आधार पर की गई है। जगह जगह फुट नोट देकर प्रमाण भी दे दिये गये हैं। यह ग्रन्थ नये ढंग से लिखा गया है। प्राचीन इतिहास के खोजियों को इस ग्रन्थ से बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। इस पुस्तक के प्रणयन में जो परिश्रम साहित्याचार्यजी ने किया है उसके लिए वे सर्वथा प्रशंसार्ह हैं।

इतिहास के अद्वितीय विद्वान् महामहोपाध्याय हरप्रसादजी शास्त्री और राय बहादुर पण्डित गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा ने इस ग्रन्थ की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। वास्तव में पुस्तक है भी बड़े महत्त्व की।

देवीप्रसाद (जोधपुर)

(२) **मराठों का उत्कर्ष**—'न्यायमूर्ति' रानाडे के Rise of the Maratha Power नामक प्रसिद्ध अँगरेज़ी ग्रन्थ का यह हिन्दी-भाषान्तर है। अनुवादक श्रीयुत भास्कर रामचन्द्र भालेराव हैं और यह तरुण-भारत-ग्रन्थावली कार्यालय, दारागंज, प्रयाग, से प्रकाशित हुआ है। इसमें सादी जिल्द बँधी है और इसका मूल्य १॥) है। पूर्वोक्त पुस्तक का एक हिन्दी-भाषान्तर पहले से ही मौजूद है। परन्तु इस भाषान्तर में दो निबन्धों को परिशिष्ट रूप में लगा देने से इसमें विशेषता आगई है और इसकी उपयोगिता भी बढ़ गई है। उन निबन्धों में से एक तो स्वयं रानाडे महोदय का ही लिखा है और दूसरा जस्टिस तैलङ्ग का है जिसे रानाडे महोदय ने अपने पूर्वोक्त ग्रन्थ के परिशिष्ट में सङ्कलित किया था। इसकी भाषा सरल और छपाई शुद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—रूस का पुनर्जन्म—रूस की राज्यक्रान्ति के सम्बन्ध में एक भी अच्छी पुस्तक अभी तक हमारे देखने में नहीं आई है। काशी के ज्ञानमण्डल ने हाल में इस विषय का जो ग्रन्थ प्रकाशित किया है वह भी सन्तोष-जनक नहीं है। उसकी पृष्ठ-संख्या १०६ और मूल्य ।॥=) है। इसका प्रणयन एक अँगरेज़ी पुस्तक के आधार पर हुआ है। रूस की राज्य-क्रान्ति वर्तमान काल की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस पुस्तक के संक्षिप्त विवरण से उसकी विशेषताओं का ज्ञान पाठकों को नहीं हो सकता। परन्तु जब तक इस विषय का कोई अच्छा ग्रन्थ हिन्दी में नहीं प्रकाशित होता तब तक इस विषय के प्रेमियों को Rebirth of Russia नामक अँगरेज़ी ग्रन्थ के इस सारांश को ही पढ़ कर अपनी मनस्तुष्टि करनी चाहिए। इस पुस्तक में रूस-साम्राज्य का एक भद्दा नक़शा भी दे दिया गया है। हम नहीं समझते कि पुस्तकों में ऐसे भद्दे नक़शे जोड़ देने से उनकी उपयोगिता में किस बात की वृद्धि हो जाती है।

३—नीति-ग्रन्थ ।

१—सदाचार-दर्पण—पाठशालाओं में धर्म की शिक्षा दी जानी चाहिए अथवा नहीं, इस पर विद्वानों में मत-भेद है। अधिकांश लोग धर्म-विहीन सदाचार की शिक्षा देना आवश्यक समझते हैं। विद्वानों का ख़याल है कि चरित्र-गठन के लिए किसी धर्म-विशेष की शिक्षा न देकर सिर्फ़ आचार-नीति सिखा देनी चाहिए। राय साहिब पण्डित रघुवरप्रसाद द्विवेदीजी ने विद्यार्थियों को आचार-नीति की शिक्षा देने के लिए यह पुस्तक लिखी है। मध्यप्रान्त में राय साहिब का बड़ा नाम है। जबलपुर की हितकारिणी हाई-स्कूल के आप हेड मास्टर हैं और यह कहना अत्युक्ति नहीं कि आप ही के कारण उस स्कूल की सुख्याति है। आपने कई वर्षों से हितकारिणी नामक हिन्दी की एक मासिक पत्रिका का योग्यता-पूर्वक सम्पादन किया। मध्यप्रदेश में इस पत्रिका का प्रचार भी अच्छा था। अब वह पत्रिका बन्द हो गई है। ऐसे विद्वान् और योग्य शिक्षक की लिखी हुई किताब अच्छी होनी ही चाहिए। पुस्तक की उत्तमता का एक प्रमाण यह है कि इसको मध्यप्रदेश के शिक्षा-विभाग ने स्कूलों के लिए स्वीकृत किया है। पुस्तक में जिन विषयों की विवेचना की गई है वे विद्यार्थियों के लिए अवश्य हितकर हैं। पुस्तक का मूल्य १॥) है। पुस्तक मिलने का पता है—मिश्रबन्धु कार्यालय, दीक्षितपुरा, जबलपुर।

२—समय-दर्शन—समय का सदुपयोग किस प्रकार किया जाना चाहिए, यही बात इस पुस्तक में समझाई गई है। लेखक ठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी० ए० हैं। आपने एक अँगरेज़ी पुस्तक के आधार पर इसकी रचना की है। पुस्तक छोटे छोटे चौदह प्रकरणों में विभक्त की गई है। उनमें जो उपदेश दिये गये हैं वे अमूल्य हैं। भाषा भी सरल और रोचक है। सुन्दर छपी हुई पुस्तक का मूल्य १=) है। हिन्दी-ग्रन्थ-भण्डार, नई सड़क, काशी को लिखने से यह पुस्तक मिलती है।

३—सफलता—यह पुस्तक कर्मक्षेत्र नामक एक बँगला ग्रन्थ के आधार पर लिखी गई है। पुस्तक में चार अध्याय हैं और उनमें शक्ति, संकल्प, साधना और सफलता के रहस्य समझाये गये हैं। जिन लोगों ने अपने जीवन में सफलता प्राप्त की है उनका वृत्तान्त भी दिया गया है। पुस्तक मनोरञ्जक है। भाषा भी अच्छी है। लेखक पण्डित शिवनारायण द्विवेदी हैं और प्रकाशक कन्नूजी माटूमल एण्ड संस हवेली हैदरकुली रंग देहली है। मूल्य ।॥) है।

४—सुधार—वेलनगञ्ज, आगरा से एक ग्रन्थमाला का प्रकाशन हो रहा है। नाम है सरस्वती-ग्रन्थ-माला। यह उसका तृतीय पुष्प है। लेखक कोई 'हितवादी' नामधारी व्यक्ति हैं। सम्पादक हैं पण्डित गौरीशङ्कर शुक्ल। इसमें समाज-सुधार का वर्णन है। भारतवर्ष की वर्तमान सामाजिक स्थिति पर विचार कर यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक ने अच्छे ढङ्ग से यह किताब लिखी है। १६३ पृष्ठों की किताब का मूल्य १॥।) है।

५—नारीधर्मदर्पणम्—इसके लेखक तथा प्रकाशक पण्डित मूलराजशर्मा, नागर स्यालकोट शहर हैं। मूल्य ।॥) है। पण्डितजी ने इससे नारियों को धार्मिक शिक्षा तो देने की चेष्टा की ही है, उनके गुप्त रोगों की चिकित्सा की भी योजना की है। पुनर्विवाह और मांस-मदिरा-भक्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भी आपने विचार किया है और स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने से हानियां भी बतलाई हैं। हम इतना ही कह सकते हैं कि पण्डितजी की विवेचना से हमें सन्तोष नहीं हुआ।

६—पुत्री उपदेश—इसका भी वही उद्देश है जो उपर्युक्त पुस्तक का है। हमारी समझ में यह पुस्तक उससे अच्छी है। इसके प्रकाशक और लेखक चिम्मनलाल वैश्य, तिलहर ज़िला शाहजहांपुर हैं। पुस्तक २०० पृष्ठों में समाप्त हुई है और मूल्य १) है।

७—हिन्दूधर्मदर्पणम्—यह भी पण्डित मूलराजजी की रचना है। मूल्य १) है। आपका कथन है कि हिन्दू-समाज में संस्कृत-विद्या और हिन्दू-धर्म का प्रचार कम होने के कारण उसके सिद्धान्त सर्वसाधारण के लिए बोध-गम्य नहीं हैं। आपने समर्थ होकर यह पुस्तक उनके लाभार्थ लिख दी है। अतएव आपको अनेक साधुवाद।

(३) हिन्दी के सामयिक पत्र और पत्रिकायें।

सन्तोष की बात है कि हिन्दी के सामयिक पत्र अच्छी उन्नति कर रहे हैं। कानपुर की प्रभा ने अब हिन्दी-साहित्य में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। कानपुर से ही एक दूसरा मासिक-पत्र प्रकाशित होता है। उसका नाम है संसार। उसमें प्रतिमास अच्छे अच्छे लेख और कवितायें निकलती हैं। मर्यादा पहले प्रयाग से प्रकाशित होती थी, अब बनारस से निकलने लगी। उसके रूप-रङ्ग में बिलकुल परिवर्तन हो गया है। परन्तु इससे उसकी शोभा बढ़ गई है, घटी नहीं। लेखों में राजनैतिक लेख विशेष महत्त्व-पूर्ण होते हैं। साहित्य-सम्बन्धी लेख भी विचार-पूर्ण होते हैं। दैनिक पत्रों में बनारस के आज ने अच्छा नाम पैदा किया है। खुशी की बात है कि अब उसका अर्धसाप्ताहिक संस्करण भी प्रकाशित होने लगा। दिल्ली से वैभव नामक एक नया दैनिक पत्र प्रकाशित हुआ है। हिन्दी के मासिकपत्रों में स्वार्थ का स्थान सबसे पृथक् है। अपने विषय का वह एक ही पत्र है। उसके सभी लेख विद्वत्ता-पूर्ण होते हैं। विषय गम्भीर होने पर भी भाषा सरल और रोचक होती है। हमें आशा है कि हिन्दी-साहित्य के प्रेमी उसका उचित आदर करेंगे।

नये पत्रों में समन्वय का नाम उल्लेख करने योग्य है। वह कलकत्ता (नं० २८, कालेज स्ट्रीट मार्केट) से प्रतिमास प्रकाशित होता है। छपाई सुन्दर है। वार्षिक मूल्य ३) है। इसका विषय आध्यात्मिक है, पर विषयों की विवेचना बड़ी सुन्दर रीति से की जाती है। कलकत्ता से ही पण्डित मातादीन पाठक के सम्पादकत्व में मारवाड़ी अग्रवाल नाम का एक नया मासिकपत्र प्रकाशित होने लगा है। इसकी छपाई बड़ी सुन्दर है। सभी लेख रोचक और महत्त्व-पूर्ण हैं। वार्षिक मूल्य ३) है। इसके प्रकाशक हैं श्रीयुत तुलसीराम सरावगी, सहकारी मन्त्री, अ० भा० मा० अ० महासभा, १६० हरिसन रोड, कलकत्ता। वर्धा से राजस्थान केसरी नाम का साप्ताहिक पत्र अच्छा निकल रहा है। इसके सम्पादक श्रीयुत सत्यदेव विद्यालङ्कार हैं। वार्षिक मूल्य ३॥) है। इसका विशेषाङ्क बड़ा सुन्दर निकला है। आर्यसमाज द्वारा सञ्चालित पत्रों में आर्यमित्र का अच्छा प्रचार है। अब इसके सम्पादक श्री धर्मेन्द्रनाथ तर्कशिरोमणि हैं। इसके ऋष्यङ्क में कई अच्छे लेख निकले हैं। कानपुर का धर्मप्रकाश नया पत्र है, परन्तु उसमें भी पठनीय सामग्री का अभाव नहीं है। हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों में छत्तीसगढ़ सबसे पिछड़ा प्रान्त है। हर्ष की बात है कि अब वहां से भी दो पत्र निकलने लगे हैं। रायपुर से कान्यकुब्ज नाम का एक मासिकपत्र प्रकाशित होता है। बिलासपुर से विकास नामक एक त्रैमासिक पत्र का प्रकाशन होता है। विकास में शिक्षा-सम्बन्धी लेख महत्त्व-पूर्ण होते हैं। सबसे अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि अब मद्रास से भी भारत-तिलक नामक एक हिन्दी-पत्र के प्रकाशन का प्रबन्ध किया गया है। सुनते हैं कि रंगून से भी एक पत्र निकलेगा। पण्डित भवानीदयालजी ने नैटाल से एक पत्र निकालने का विज्ञापन दिया है। हम इन सभी पत्रों की उन्नति चाहते हैं।

Published by: Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Ld., Allahabad.

Printed by: E. Hall, at the Belvedere Printing Works, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग २३, खण्ड १] जून १९२२—ज्येष्ठ १९७९ [संख्या ६, पूर्ण संख्या २७०

स्वर्गीय स्वामी ब्रह्मानन्दजी।

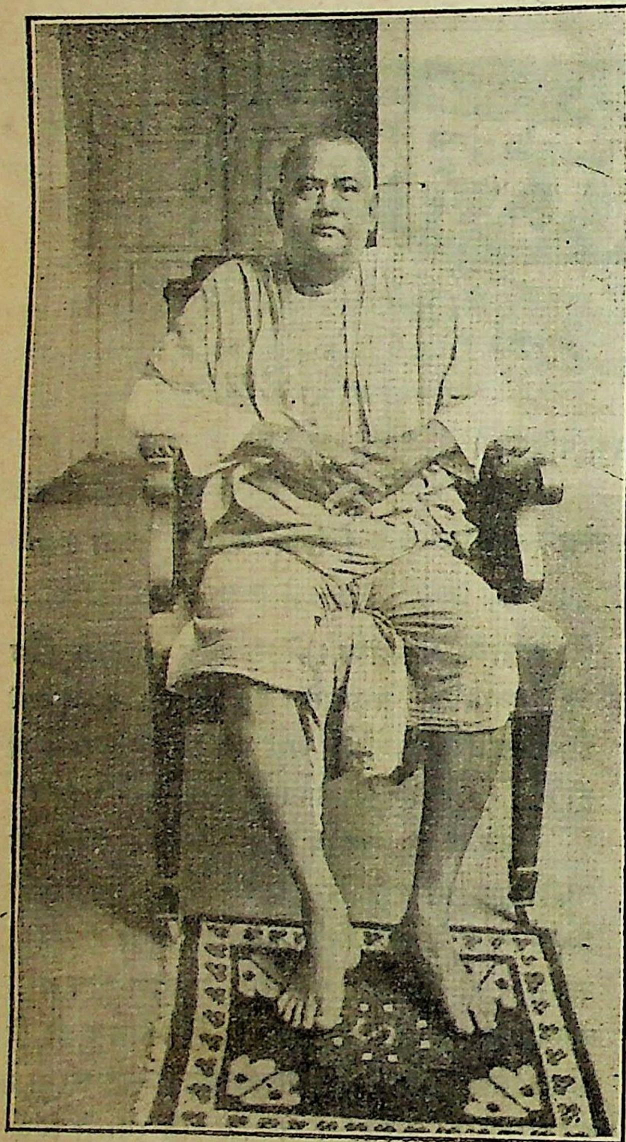
भारतवर्ष के धार्मिक आकाश के एक और दीप्तमान नक्षत्र का सहसा निपात हो गया। श्री रामकृष्ण सम्प्रदाय के अधिष्ठाता श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दजी ब्रह्म में लीन हो गये। यद्यपि आपकी अकस्मात् मृत्यु नहीं हुई, आपकी स्वास्थ्य-रक्षा की ओर लोग सदैव सतर्क रहते थे, तथापि किसी को यह ध्यान न था कि जो महापुरुष अपने शारीरिक कष्टों को योगाभ्यास से सहन कर रहे थे उनका इतनी शीघ्र देहावसान हो जायगा। स्वामीजी गत मार्च के महीने में हैज़े से पीड़ित हुए। उससे वे भली भाँति सँभलने नहीं पाये थे कि अतीसार ने आ घेरा। कलकत्ते के प्रख्यात डाक्टरों और कविराजों ने कुछ दिन की चिकित्सा के बाद रोग को असाध्य बतलाया। किन्तु मृत्यु के कुछ दिन पहले स्वामीजी यथावत् योगाभ्यास करने लगे और शारीरिक कष्टों को भूल गये। इसी अवस्था में ही गत १० एप्रिल को आपका शरीर छूट गया।

कलकत्ते के समीप २४ परगना ज़िले के वसीरहाट ग्राम में सन् १८६२ ईसवी को स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने जन्म लिया। आपके पिता एक धनी ज़मींदार थे। आपका पूर्व नाम राखाल घोष था। बाल्यकाल से ही आप स्वामी विवेकानन्दजी के स्नेही मित्र थे। तभी से आपकी प्रवृत्ति संन्यासमार्ग की ओर थी। उन दिनों राखाल बाबू स्वामी विवेकानन्द आदि १८ नवयुवकों के साथ दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में, जहाँ परमहंस श्रीरामकृष्णदेव अपनी तपस्या में मग्न रहते थे, जाया करते थे। इन्हीं लोगों ने पीछे से श्रीपरमहंसदेव जी का शिष्यत्व स्वीकार किया। राखाल, नरेन, बाबूराम,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगीन, नित्य निरञ्जन, सरत, शशि, हरी, गोपाल, काली, तारक, गंगाधर, शारदा, लाटू, तुलसी और सुबोध आदि पीछे से स्वामी ब्रह्मानन्द, विवेकानन्द, प्रेमानन्द, योगानन्द, निरञ्जनानन्द, शारदानन्द,



स्वामी ब्रह्मानन्दजी।

रामकृष्णानन्द, तुरियानन्द, अद्वैतानन्द, अभेदानन्द, शिवानन्द, अखण्डानन्द, त्रिगुणातीत आदि नामों से विख्यात हुए। इनमें से प्रत्येक संन्यासी ने अपना जीवन जन-समाज की सेवा में उत्सर्ग कर दिया। इनमें से स्वामी ब्रह्मानन्दजी परमहंसदेव के पहले शिष्य थे। आप श्रीरामकृष्ण के आत्मज्ञानी चेले कहे जाते थे।

पहली बार जब स्वामी ब्रह्मानन्दजी परमहंसदेव के दर्शनार्थ काली-बाड़ी गये तब परमहंसदेव ने आपको देखते ही बड़े आग्रह से अपने पास बुलाया। तब से आप प्रति दिन दक्षिणेश्वर के मन्दिर में जाने लगे। वहाँ परमहंसदेव के सत्सङ्ग से आपकी दिन प्रति दिन आत्मिक उन्नति होने लगी। तब से आपकी योग-पिपासा इतनी बलवती हो उठी कि परमहंसदेवजी के पास बैठने तथा ध्यान करने से आपकी तृप्ति न होती। घरवालों के बार बार समझाने पर भी आपने अपने गार्हस्थ सुख और मोह को तिलाञ्जलि देकर दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में ही रहना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में राखाल बाबू ने विरक्त रामकृष्णदेव के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। परमहंसदेव ने भी तरुण राखाल के गुणों का परिचय पाकर अपने शिष्यों में सबसे ऊँचे पद पर आपको नियत कर दिया और तब से परमहंसदेवजी आपको बाल-गोपाल कहने लगे। तब राखाल बाबू का नाम स्वामी ब्रह्मानन्द हो गया।

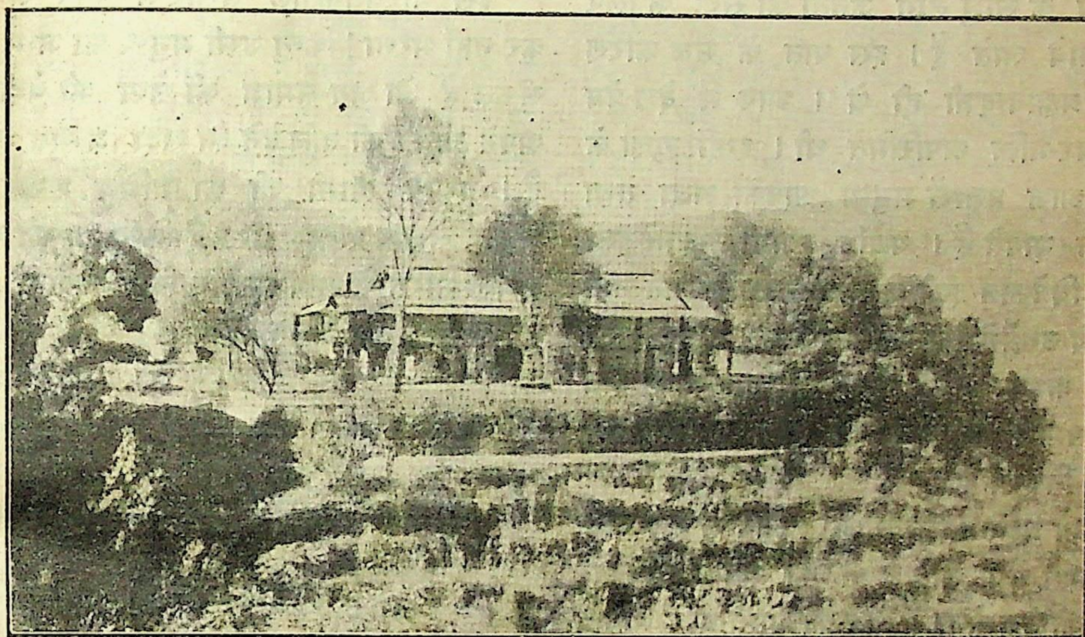
युवावस्था से ही स्वामीजी के हृदय में देश के आर्त जनों की सेवा का पवित्र भाव अङ्कुरित हो चुका था। आप समीपस्थ ग्रामों के दीन-दरिद्रों के प्रति सदा अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट किया करते थे। सारा जीवन काम करने पर भी आपके मन में जन-समाज की सेवा करने की इच्छा कभी पूरी न हुई। परमहंसदेव कहा करते थे कि बाल-गोपाल समाज की सेवा के लिए योग्य युवक है। अस्तु। परमहंसदेवजी की महासमाधि के बाद जब स्वामी विवेकानन्दजी पाश्चात्य देशों में वेदान्त का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचार कर धार्मिक विजय की पताका लिये अपने पाश्चात्य शिष्यगणों के साथ भारत को लौटे तब उन्होंने अपनी स्वाभाविक देश-सेवा की उमङ्ग में श्रीरामकृष्ण-सङ्घ को स्थापित कर आठ स्थानों में सेवाश्रम बनाना प्रारम्भ किया। यह बात स्वामी ब्रह्मानन्दजी के मन की हो गई। अतएव आप निष्काम कर्मक्षेत्र में उत्तीर्ण हो गये। तभी से स्वयं स्वामी विवेकानन्दजी ने आपको श्रीरामकृष्ण-सम्प्रदाय का समीप हुगली के किनारे एक आश्रम भी स्थापित कर दिया, जो बैलूर मठ के नाम से विख्यात है।

जान पड़ता है, स्वामी ब्रह्मानन्दजी का जन्म ही देश के दीन और पतित जनों की सेवा के लिए हुआ था। जीवन भर आपने भक्ति और श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा की। कोलम्बो से मायावती (अल्मोड़ा) पर्यन्त शायद कोई विख्यात स्थान होगा जहाँ श्रीरामकृष्ण-सम्प्रदाय का सेवा-श्रम न हो। इन



अद्वैत आश्रम।

अधिष्ठाता नियत कर दिया। मृत्यु के दिन तक स्वामी ब्रह्मानन्दजी समस्त कार्य दत्तचित्त होकर करते रहे। इस कार्य में लगे रहने पर भी आपका योगाभ्यास लेश-मात्र भी कम न हुआ, प्रत्युत दिन प्रति दिन बढ़ता ही गया। सम्प्रदाय के कार्य से जितना अवकाश प्राप्त होता उतना आप साधना ही में व्यतीत करते, साथ ही स्वामी विवेकानन्दजी के शिष्यों को प्रति दिन योगाभ्यास सिखाया करते थे। सम्प्रदाय के सभी साधुओं से आपका अपूर्व स्नेह होगया। कुछ दिनों के बाद आपने कलकत्ते के सेवाश्रमों से जन-समाज को जो लाभ पहुँच रहे हैं वे किसी से छिपे नहीं हैं। प्रारम्भ में इनका कार्य्यक्षेत्र परिमित था, किन्तु स्वामी ब्रह्मानन्दजी की असाधारण शक्ति से थोड़े ही काल में इनकी असामान्य उन्नति हुई। स्वामीजी का मूलमन्त्र यह था, जैसा कि वे अपने शिष्यगणों से कहा करते थे, कि विना भक्ति-पूर्वक सेवा किये कोई मनुष्य योगाभ्यास के उन्नति-पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता और न उसमें ईश्वर-भक्ति का विकास ही हो सकता है। इसी आदर्श को सम्मुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रख कर आपने सब सेवाश्रमों की उन्नति के लिए खूब प्रयत्न किया।

स्वामीजी के अपूर्व योगाभ्यास तथा असीम उत्साह से साधु-समाज में युगान्तर उपस्थित हो गया। इस सम्प्रदाय के सभी साधुगण आपका अनुकरण करने लगे। आज-कल देश में जहाँ कहीं दुर्भिक्ष, हैज़ा, प्लेग, बाढ़ आदि की आपत्ति आ जाती है वहाँ तन, मन, धन से रामकृष्ण-सम्प्रदाय के साधु लोग जनता की सेवा के लिए प्रवृत्त पाये जाते हैं। इस बात के मूल कारण स्वामी ब्रह्मानन्दजी ही थे। आप में देश-प्रेम और ईश्वर-भक्ति अपरिमित थी। इन्हीं गुणों के कारण आज हज़ारों मनुष्य आपको श्रद्धा तथा भक्ति से मानते हैं। यद्यपि स्वामी ब्रह्मानन्दजी स्वामी विवेकानन्दजी के समान जगद्विख्यात नहीं हैं तथापि उन्होंने देश की कम सेवा नहीं की है। आपका कथन था कि जिस मनुष्य के जन्म लेने से जन-समाज की सेवा नहीं होती उसका जन्म लेना ही निरर्थक है।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी निष्काम भाव से सब कार्य किया करते थे। आप अपने को स्वामी विवेकानन्दजी की देश-सेवा के बाग़ का माली-मात्र मानते थे। आप पहुँचे हुए योगी थे। आपको रोष तथा अभिमान छू तक नहीं गया था। आपने ध्यान और भक्ति के बल से योग की महत्ता खूब प्रकट की। आपका हृदय सत्यवादिता, तेजस्विता तथा भक्ति का आधार था। आपके उपदेश सदैव मर्म-स्पर्शी होते थे। आपके प्रेम तथा प्रोत्साहन से स्वामी विवेकानन्दजी के अनेक पाश्चात्य अनुयायी तथा शिष्यगण भारत की सेवा में प्रवृत्त हुए थे। पहली बार परिचय होते ही आप उनसे दीन भारतवासियों की सेवा करने का अनुरोध किया करते थे।

स्वामी जी का हृदय बड़ा कोमल और सरल था। आपका प्रेम सर्वदा निःस्वार्थ होता था। आपकी सहृदयता देख कर सैकड़ों दीन स्त्री-पुरुष आपके पास आते और अपना अपना दुःख सुनाते। आप भी उन लोगों के दुःख-निवारण का यथाशक्ति प्रयत्न किया करते थे। आपने कितने ही अनाथ रोगियों को मृत्यु का ग्रास होने से बचाया और कितने ही भग्न-हृदय नवयुवकों को कार्य-पथ प्रदर्शित किया।

इस परिवर्तनशील संसार में कौन जन्म ले कर नहीं मरता! किन्तु उसी मनुष्य का जन्म लेना सफल है जो जन-समाज की सेवा की वेदी पर अपने जीवन की बलि देने को सदा प्रस्तुत रहता है। यद्यपि स्वामी जी का पार्थिव शरीर इस असार संसार से चल बसा है किन्तु उनकी स्मृति समस्त भारत के अनाथों और विधवाओं के हृदय में चिरकाल तक अक्षत रहेगी।

हर्षदेव ओली

प्राचीन जैन-लेख-संग्रह।

[समालोचना]



एक समय था जब जैन-धर्म्म, जैन-संघ, जैन-मन्दिर, जैन-ग्रन्थ-साहित्य और जैनों के प्राचीन लेखों के विषय में खुद जैनधर्म्मावलम्बियों का भी ज्ञान बहुत ही परिमित था। साधारण जनों की तो बात ही नहीं, असाधारण जैनी भी इन बातों से बहुत ही कम परिचय रखते थे। इस दशा में और धर्म्म के विद्वानों की अवगति का तो कुछ कहना ही नहीं। वे तो इस विषय के ज्ञान में प्रायः बिलकुल ही कोरे थे। और, प्राचीन ढर्रे के हिन्दू-धर्म्मावलम्बी बड़े बड़े शास्त्री तक, अब भी नहीं जानते कि जैनियों का स्याद्वाद किस चिड़िया का नाम है। धन्यवाद है जर्मनी, और फ्रांस, और इँगलेंड के कुछ विद्यानुरागी विशेषज्ञों को जिनकी कृपा से इस धर्म्म के अनुयायियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीर्ति-कलाप की खोज की ओर भारतवर्ष के साक्षरं जनों का ध्यान आकृष्ट हुआ। यदि ये विदेशी विद्वान् जैनों के धर्म्म-ग्रन्थों तथा जैन-मन्दिरों आदि की आलोचना न करते, यदि ये उनके कुछ ग्रन्थों का प्रकाशन न करते, और यदि वे जैनों के प्राचीन लेखों की महत्ता न प्रकट करते तो हम लोग शायद आज भी पूर्ववत् ही अज्ञान के अन्धकार में ही डूबे रहते।

पश्चिमी देशों के पण्डितों की बदौलत ही अपने देश के जैन-विद्वानों को अपना घर ढूंढ़ने की बहुत कुछ प्रेरणा हुई। धीरे धीरे उनकी यह प्रेरणा ज़ोर पकड़ती गई। जैसे जैसे उन्हें अपने मन्दिरों के पुराने पुस्तकालयों में प्राचीन पुस्तकें मिलती गईं तैसे ही तैसे उनका उत्साह बढ़ता गया। फल यह हुआ कि किसी किसी जैनेतर पण्डित ने भी जैनों के ग्रन्थ-भाण्डार टटोलने आरम्भ किये। इस प्रकार अनेक प्राचीन पुस्तकें प्रकाशित हो गईं। इधर, भारतवर्ष में ही, कुछ विदेशी विद्वानों ने भी जैनियों के ग्रन्थों और प्राचीन लेखों के पुनरुद्धार के लिए कमर कसी। उनकी इस प्रवृत्ति और परिश्रम से भी जैन-साहित्य का कुछ कुछ पुनरुज्जीवन हुआ। अब तो इस काम में कितने ही जैन विद्वान् जुट गये हैं और एक के बाद एक प्राचीन ग्रन्थ प्रकाशित करते चले जा रहे हैं।

जैन-धर्म्मावलम्बियों में सैकड़ों साधु-महात्मा और सैकड़ों, नहीं हज़ारों, विद्वानों ने ग्रन्थ-रचना की है। उनकी इस रचना का बहुत कुछ अंश इस समय अप्राप्य है। कुछ तो अराजकता के कारण नष्ट हो गया, कुछ काल बली खा गया, कुछ कृमि-कीटकों के पेट में चला गया। तथापि जो कुछ बच रहा है उसे भी थोड़ा न समझना चाहिए। अब भी जैन-मन्दिरों में प्राचीन पुस्तकों के अनेकानेक भांडार विद्यमान हैं। उनमें अनन्त ग्रन्थ-रत्न अपने उद्धार की राह देख रहे हैं। ये ग्रन्थ केवल जैन-धर्म्म से ही सम्बन्ध नहीं रखते। इनमें तत्त्व-चिन्ता, काव्य, नाटक, छन्द, अलङ्कार, कथा-कहानी और इतिहास आदि से भी सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थ हैं, जिनके उद्धार से जैनेतर जनों की भी ज्ञान-वृद्धि और मनोरञ्जन हो सकता है। भारतवर्ष में जैनधर्म्म ही एक ऐसा धर्म्म है जिसके अनुयायी साधुओं (मुनियों) और आचार्य्यों में से अनेक जनों ने, धर्म्मोपदेश के साथ ही साथ, अपना समस्त जीवन ग्रन्थ-रचना और ग्रन्थ-संग्रह में ख़र्च कर दिया है। इनमें से कितने ही विद्वान्, बरसात के चार महीने तो, बहुधा केवल ग्रन्थ-लेखन ही में बिताते रहे हैं। यह इनकी इसी सत्प्रवृत्ति का फल है जो बीकानेर, जैसलमेर और पाटन आदि स्थानों में हस्त-लिखित पुस्तकों के गाड़ियों बस्ते अब भी सुरक्षित पाये जाते हैं।

मन्दिर-निर्माण और मूर्त्तिस्थापना भी जैन-धर्म्म का एक अङ्ग समझा जाता है। इसी से इन लोगों ने इस देश में हज़ारों मन्दिर बना डाले हैं और हज़ारों का जीर्णोद्धार कर दिया है। मूर्त्तियों की कितनी स्थापनायें और प्रतिष्ठायें की हैं, इसका तो हिसाब ही नहीं। उनकी गिनती तो शायद लाखों तक पहुँचे। पर वे इस काम में भी अपने साहित्य-प्रेम को नहीं भूले। मन्दिरों में इन लोगों ने बड़े बड़े लेख और प्रशस्तियाँ खुदवा दी हैं। उनमें से कोई कोई लेख इतने बड़े हैं कि उन्हें छोटे मोटे खण्ड-काव्य ही कहना चाहिए। यहाँ तक कि मूर्त्तियों तक में उनके प्रतिष्ठापकों और निर्म्माताओं के नामनिर्देश आदि के सूचक छोटे छोटे लेख पाये जाते हैं। यदि इन सबका संग्रह प्रकाशित किया जाय तो शायद महाभारत के सदृश एक बहुत बड़ा ग्रन्थ हो जाय। मन्दिरों और मूर्त्तियों के ये प्राचीन लेख इतिहास की दृष्टि से बड़े ही महत्त्व के हैं। इनमें उस समय के राजाओं, राजकुमारों, मन्त्रियों, बादशाहों, शाहज़ादों आदि का भी, सन्-संवत्-समेत, उल्लेख है और निर्म्माताओं तथा उद्धारकों की भी वंशावली आदि है। इसके सिवा जैनसंघों और जैनाचार्य्यों आदि की वंशपरम्परा के साथ और भी कितनी ही बातों का वर्णन है। जैनों के कोई कोई तीर्थ ऐसे हैं जहाँ इस प्रकार के प्राचीन लेख अधिकता से पाये जाते हैं। पर तीर्थों ही में नहीं, छोटे छोटे गांवों तक के मन्दिरों में प्राचीन लेख देखे जाते हैं। इन लेखों में जैन साधुओं के कार्य्यकलाप का भी वर्णन मिलता है। किस साधु या किस मुनि ने कौन सा ग्रन्थ बनाया और कौन सा धर्म्म-वर्द्धक कार्य्य किया, ये बातें भी अनेक लेखों में निर्दिष्ट हैं। अकबर इत्यादि मुग़ल-बादशाहों से जैन-धर्म्म को कितनी सहायता पहुँची, इसका भी उल्लेख कई लेखों में है।

जैनों के इस तरह के सैकड़ों प्राचीन लेखों का संग्रह,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादन श्रौर आलोचन विदेशी और कुछ स्वदेशी विद्वानों के द्वारा हो चुका है। उनका अँगरेज़ी-अनुवाद भी, अधिकांश में, प्रकाशित हो गया है। पर किसी स्वदेशी जैन पण्डित ने इन सबका संग्रह, आलोचनापूर्वक, प्रकाशित करने की चेष्टा नहीं की थी। महाराजा गायकवाड़ के कृपा-कटाक्ष की बदौलत पुरानी पुस्तकों के प्रकाशन का जो कार्य्य बड़ौदे में, कुछ समय से, हो रहा है उसके कार्य्य-कर्त्ताओं ने भी इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, यद्यपि जैनों के कितने ही प्राचीन मन्दिर, लेख और ग्रन्थ बड़ौदा-राज्य में विद्यमान हैं। इस काम में अब हाथ लगाया है एक साधु—मुनि जिनविजय—ने। गुजरात-विद्यापीठ ने, अहमदाबाद में, एक गुजरात-पुरातत्त्व-संशोधन-मन्दिर की संस्थापना की है। मुनि महाशय उसी मन्दिर के आचार्य्य हैं। आपका पता है—हलीस ब्रिज, अहमदाबाद। यद्यपि भारत में जैन-ग्रन्थ और जैन-मन्दिर थोड़े बहुत सब कहीं पाये जाते हैं, तथापि दक्षिणी भारत, गुजरात और राजपूताने में ही उनका आधिक्य है। क्योंकि जैनधर्म्म का प्राबल्य उन्हीं प्रान्तों में रहा है और अब भी है। अतएव अहमदाबाद में ही इस प्रकार के संशोधन-मन्दिर की स्थापना होना सर्वथा समुचित है। इंडियन ऐंटिकरी, इपी-ग्राफिआ इंडिका, सरकारी गैज़ेटियरों और आर्कियालाजिकल रिपोर्टों तथा अन्य पुस्तकों में जैनों के कितने हीं प्राचीन लेख प्रकाशित हो चुके हैं। बूलर, कौसेंस, किर्स्टे, विलसन, हुल्ट्श, केलटर और कीलहार्न आदि विदेशी पुरातत्त्वज्ञों ने बहुत से लेखों का उद्धार किया है। पर इन पुस्तकों के लेखकों से कहीं कहीं प्रमाद हो गये हैं। अतएव पुराने प्रमादों के दूरीकरण और समस्त प्राचीन लेखों के प्रकाशन के लिए ऐसे संशोधन-मन्दिर की बड़ी आवश्यकता थी। सन्तोष की बात है, यह आवश्यकता, इस तरह, दूर हो गई।

इस संशोधन-मन्दिर के कार्य्यकर्त्ताओं ने "प्राचीन जैन-लेख-संग्रह" नाम का एक ग्रन्थ निकाला है। उसका दूसरा भाग हमारे सामने है। पहला भाग हमारे देखने में नहीं आया। वह शायद कभी पहले निकल चुका है। दूसरा भाग बहुत बड़ा ग्रन्थ है। आकार भी बड़ा है। पृष्ठ-संख्या आठ सौ से कुछ कम है। छपाई और काग़ज़ अच्छा और जिल्द बड़ी सुन्दर है। मूल्य ३॥) है। इसके संग्राहक और सम्पादक हैं, पूर्वोक्त मुनि जिनविजय जी; और प्रकाशक है, श्रीजैन-आत्मानन्द-सभा, भावनगर। सूचियों आदि को छोड़ कर पुस्तक मुख्यतया दो भागों में विभक्त है। पहले भाग में जैनों के ५५७ प्राचीन लेखों की नक़ल है। ये लेख देवनागरी के मोटे टाइप में छपे हैं। लेखों की भाषा अधिकांश संस्कृत है। दूसरे भाग के ३४४ पृष्ठों में पहले भाग के लेखों की आलोचना है। यह भाग गुजराती भाषा में है और गुजराती ही टाइप में छपा है। आरम्भ की भूमिका आदि भी गुजराती ही में है।

जैनियों के दो सम्प्रदाय हैं—एक दिगम्बर, दूसरा श्वेताम्बर। दिगम्बर-सम्प्रदाय का विशेष दौरदौरा दक्षिणी भारत में ही रहा है और अब भी है। श्वेताम्बर-सम्प्रदाय का अधिक प्रचार पश्चिमी भारत और राजपूताने में है। इस पुस्तक में, इसी से, अधिकांश श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के ही लेखों का संग्रह किया गया है, क्योंकि ये सारे लेख पश्चिमी भारत और राजपूताने से ही सम्बन्ध रखते हैं। जैनों के प्राचीन लेख तीन प्रकार के हैं—

(१) पत्थर की पटियों पर खोदे हुए लेख
(२) मूर्तियों पर खोदे हुए लेख
(३) ताम्रपत्रों पर खोदे हुए लेख

इस पुस्तक में जिन लेखों का संग्रह है वे पत्थर की पटियों और पत्थर ही की मूर्तियों पर उत्कीर्ण लेख हैं। धातु की मूर्तियों पर भी हज़ारों लेख पाये जाते हैं; पर वे छोड़ दिये गये हैं। साथही ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण लेखों का भी समावेश नहीं किया गया। यह छोड़ा-छाड़ी करने पर भी लेखों की संख्या पाँच सौ के ऊपर पहुँच गई है। इनमें से कितने ही लेख बहुत बड़े हैं।

आज तक यद्यपि सैकड़ों—किम्बहुना इससे भी अधिक—जैन-लेख प्रकाशित हो चुके हैं। पेरिस (फ़्रांस) के एक फ़्रेंच पण्डित, गेरिनाट, ने अकेले ही, १९०७ ईसवी तक के, कोई ८५० लेखों का संग्रह प्रकाशित किया है। पर उसमें श्वेताम्बर और दिगम्बर, दोनों सम्प्रदायों के लेखों का सन्निवेश है। तथापि हज़ारों लेख अभी ऐसे पड़े हुए हैं जो प्रकाशित नहीं हुए। मुनि महाशय ने, अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत पुस्तक में, भिन्न भिन्न पुस्तकों और रिपोर्टों से भी अपने मतलब के लेख उद्धृत किये हैं. और स्वयं अपनी खोज से भी सैकड़ों नये नये लेखों का समावेश किया है। उदाहरणार्थ, आबू के लेखों की संख्या २०८ है। पर उनमें से केवल ३२ लेख एपिग्राफिआ इंडिका के आठवें भाग में प्रकाशित हो चुके हैं। बाक़ी के सभी लेख इस पुस्तक में पहले ही पहल छापे गये हैं। यही बात औरों के विषय में भी जाननी चाहिए।

पुस्तक के पहले भाग में संख्या-सूचक अङ्क, यथाक्रम, देकर लेख रक्खे गये हैं। दूसरे भाग में उसी क्रम से लेखों की समालोचना की गई है। कौन लेख कहाँ मिला है, किस समय का है, पहले कभी प्रकाशित हुआ है या नहीं, उससे उस समय की कौन कौन ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हो सकती है, उस समय विशेष करके उस प्रान्त की राजकीय और सामाजिक स्थिति कैसी थी, जैन-संघों की स्थिति कैसी थी, किस संघ की परम्परा में कौन आचार्य्य कब हुआ, इन सब बातों का विचार आलोचनाओं में किया गया है। उल्लिखित साधुओं और आचार्य्यों की शिष्य-मण्डली में कौन कौन व्यक्ति नामी हुआ और उसने किस किस ग्रन्थ की रचना की, इसका भी उल्लेख किया गया है। पूर्व-प्रकाशित लेखों के सम्पादकों की भूलों का भी निदर्शन किया गया है और यह भी दिखलाया गया है कि पुस्तकस्थ लेखों में निर्दिष्ट घटनाओं और प्रसिद्ध पुरुषों के अस्तित्व-समय के जो उल्लेख अन्यत्र मिलते हैं उनसे इन लेखों में किये गये उल्लेखों से कहाँ तक मेल है। यदि कहीं मेल नहीं, तो उल्लिखित सन्-संवतों में से कौन सा सन्-संवत् अधिक विश्वसनीय है। सबसे पुराना लेख इस पुस्तक में नम्बर ३१८ है। उसका प्राप्ति-स्थान हस्तिकुण्डी और समय विक्रम-संवत् ९९६ है। इसी तरह सबसे पिछला लेख नम्बर ५५६ है। वह संवत् १९०३ का है और अहमदाबाद में मिला है। इस प्रकार विक्रम की दसवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक के—कोई एक हज़ार वर्ष तक के—लेखों का सङ्ग्रह इस पुस्तक में है। इससे, पाठक, इस सङ्ग्रह के महत्त्व का अनुमान अच्छी तरह कर सकेंगे। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी के लेखों की संख्या औरों से अधिक है। उस समय जैन-धर्म्म बड़ी उन्नत दशा में था। अनेक राजा, महाराजा, अमात्य और सेठ-साहूकार उस समय इस धर्म्म के अनुयायी हो गये हैं। उन्होंने अनन्त मूर्त्तियों, मन्दिरों और प्रासादों की संस्थापना की और बहुतों का जीर्णोद्धार भी किया।

इस सङ्ग्रह में सबसे अधिक महत्त्व के वे लेख हैं जिनका सम्बन्ध शत्रुञ्जय-तीर्थ, गिरिनार-पर्व्वत और अर्बुदगिरि अर्थात् आबू से है। और भी कितने ही पुराने नगरों, गाँवों और तीर्थों के लेख ऐतिहासिक सामग्री से परिप्लुत हैं या उससे सम्पर्क रखते हैं। तथापि उल्लिखित तीनों स्थानों के लेख महत्ता में सबसे अधिक हैं। शत्रुञ्जय तीर्थ के लेखों की संख्या ३८, गिरिनार-पर्वत के लेखों की २५ और आबू के लेखों की २०८ है। इस प्रकार इन तीन जगहों के लेखों की संख्या २७१ हुई। अतएव कुल ५५७ में २८६ लेख और स्थानों के हैं और बाक़ी इन्हीं तीनों जगहों के हैं।

जैनियों का शत्रुञ्जय-तीर्थ गुजरात के पालीताना नामक स्थान के पास है। उसका १२ नम्बर का शिला-लेख बड़े मार्के का है। उसमें ६८ श्लोक हैं। इस तीर्थ में मूलमन्दिर नाम की एक इमारत है। खम्भात (बन्दर) के रहनेवाले सेठ तेजपाल सौवर्णिक ने, १६५० संवत् में, उसका जीर्णोद्धार किया था। यह लेख उसी जीर्णोद्धार से सम्बन्ध रखता है। तेजपाल अमीर आदमी था। विख्यात जैन विद्वान् हीरविजय सूरि के उपदेश से उसने यह उद्धार कराया था। लेख में उद्धारकर्त्ता के वंश आदि का वर्णन तो है ही, हीरविजय सूरि के पूर्ववर्ती आचार्य्यों और उनके शिष्यों का भी वर्णन है। ये वही हीरविजय हैं जिनको अकबर ने गुजरात से सादर बुला कर उनका सम्मान किया था और उनकी प्रार्थना पर साल में कुछ दिनों तक के लिए प्राणिहिंसा बन्द कर दी थी। जज़िया नामक कर भी माफ़ कर दिया था। इस लेख में हीरविजय सूरि के विषय में लिखा है—

देशाद् गूर्जरतोऽथ सूरिवृषभा आकारिताः सादरं
श्रीमत्साहिअकब्बरेण विषयं मेवातसंज्ञं शुभम् ॥

× × × ×

यदुपदेशवशेन मुदं दधन् निखिलमण्डलवासिजने निजे ।
मृतधनञ्च करञ्च सुजीजिआ-भिधमकब्बरभूपतिरत्यजत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे यह भी सूचित हुआ कि किसी के मर जाने पर उसका धन जो ले लिया जाता था उसका लेना भी अकबर ने बन्द कर दिया।

कई वर्ष पूर्व हीरविजय सूरि का विस्तृत चरित सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। उसमें भी इन बातों का वर्णन है। इस लेख का सारांश लिखने में सम्पादक महाशय ने एक जगह लिखा है—"अने पोतानी पासे जे म्होटो पुस्तक भन्डार हतो ते सूरिजी ने समर्पण कर्य्यो"। पर मूल लेख से यह बात साबित नहीं होती। उसमें तो सिर्फ़ इतना ही लिखा है कि

यद्वाग्भिर्मुदितश्चकार करुणास्फूर्जन्मनाः पौस्तकं
भाण्डागारमपारवाङ्मयमयं वेश्मेव वाग्दैवतम् ॥

इसका अन्वय इस प्रकार हो सकता है—"(यः अकब्बरः) अपारवाङ्मयमयं पौस्तकं भाण्डागारं, वाग्दैवतं वेश्मेव, चकार"। अर्थात् जिस अकबर ने अपार वाङ्मयमय पुस्तकागार, सरस्वती के घर के सदृश, (निर्म्माण) किया। इससे इतना ही सूचित होता है कि अकबर ने हीरविजय सूरि की आज्ञा या प्रार्थना से कोई पुस्तकालय खोला, यह नहीं कि उसने अपना पुस्तक-संग्रह सूरिजी को दे डाला।

जीर्णोद्धार किये गये इस मन्दिर की प्रतिष्ठा सेठ तेजपाल ने, संवत १६५० में, हरिविजय सूरि से कराई। खम्भात से वह वहाँ खुद आया और प्रतिष्ठापन-कार्य्य का सम्पादन किया। यथा—

शत्रुञ्जये गगनबाणकलामितेऽब्दे
यात्रां चकार सुकृताय स तेजपालः।
चैत्यस्य तस्य सुदिने गुरुभिः प्रतिष्ठा
चक्रे च हीरविजयाभिधसूरिसिंहैः ॥

विक्रम-संवत् की तेरहवीं शताब्दी में गुजरात के अणहिलपुर (वर्तमान पाटन) नगर में चौलुक्यवंशी वीरधवल नामक राजा राज्य करता था। वह बड़ा पण्डित था और सुकवि भी था। उसकी रची हुई कितनी ही पुस्तकों का पता चला है। कुछ शायद प्रकाशित भी हो गई हैं। उसका प्रधान सचिव था वस्तुपाल। उसके एक भाई का नाम था तेजपाल। पर यह तेजपाल खम्भात-निवासी सेठ तेजपाल नहीं। वस्तुपाल तो वीरधवल का महामात्य था और साथही महाकवि भी था, महादानी भी था और महाधार्मिक भी था। उसका भाई धवलका नगर (वर्तमान धोलका) में मुद्राव्यापार अर्थात् रुपये पैसे का रोज़गार करता था। वह शायद गुर्जर-नरेश का अमात्य भी था। इन दोनों भाइयों ने गिरिनार पर्व्वत पर कितने ही मन्दिर बनाये और लम्बे लम्बे लेख खुदवा कर अपने कीर्ति-कलाप का उल्लेख कराया। गिरिनार के लेखों में से पहले ६ लेखों में इन दोनों भाइयों के वंशादि तथा कार्य्यों का विस्तृत वर्णन है। इन लेखों में से कुछ लेख तो डाक्टर जेम्स बर्जेस ने पहले पहल प्रकाशित किये थे। पर पीछे से सभी लेख एक और अँगरेज़ी-पुस्तक (The Revised Lists of Antiquarian Remains in the Bombay Presidency, Vol., VIII) में प्रकाशित हुए हैं। "गिरिनार इन्सक्रिप्शन्स" नामक पुस्तक में भी ये छपे हैं। पर मुनिवर जिनविजयजी का कहना है कि उनके अँगरेज़ी-अनुवाद में बहुत भूलें रह गई हैं। उनका निरसन आपने अब अपनी इस पुस्तक में कर दिया है और टीका-टिप्पणियों तथा आलोचनाओं के द्वारा उनका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत बढ़ा दिया है।

विक्रम-संवत् १२८८ के एक शिला-लेख में वस्तुपाल की दानशीलता का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

भित्वा भानुं भोजराजे प्रयाते
श्रीमुञ्जेऽपि स्वर्गसाम्राज्यभाजि।
एकः सम्प्रत्यर्थिनां वस्तुपाल—
स्तिष्ठत्यश्रुस्पन्दनिष्कन्दनाय ॥४॥
पुरा पादेन दैत्यारेर्भुवनोपरिवर्तिना
अधुना वस्तुपालस्य हस्तेनाधः कृतो बलिः ॥८॥

अर्थात् भोज परलोक पधारे, मुञ्ज ने भी स्वर्गसाम्राज्य पाया। अब वैसा कोई नहीं रहा। अब तो अर्थिजनों की अश्रुधारा पोंछने के लिए बस अकेला वस्तुपाल ही है। सतयुग में विष्णु भगवान् ने अपना पैर ऊपर को बढ़ा कर बलि को पाताल भेज दिया था। इस समय, कलियुग में, वस्तुपाल ने अपने हाथ से उस बेचारे को नीचे कर दिया।

गिरिनारवाले वस्तुपाल के इन लेखों में गद्य भी है और पद्य भी। रचना सरस और सालङ्कार है। ये लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुपाल और तेजपाल के बनवाये गिरिनार के जैन-मन्दिरों में शिला-फलकों पर खुदे हुए हैं। वस्तुपाल जैन-धर्म्म का पक्का अनुयायी था। उसने उसके उत्कर्ष के लिए असंख्य धनदान किया। उसके खुदवाये हुए लेखों में जैन-कवियों ने उसके गुणों की बड़ी प्रशंसा की है।

इतिहास की दृष्टि से आबू-पर्वत के जैन-मन्दिरों में खुदे हुए लेख बड़े महत्त्व के हैं। उनमें चालुक्य और परमारवंशी राजाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन है। ये लेख बड़े बड़े हैं। इनकी संख्या २०८ है। इनमें से ६८ लेख अकेले एकही मन्दिर में हैं। इस मन्दिर का नाम है—"लूणसिंह वसहिका"। आबू के प्राचीन लेखों में से कुछ लेख तो भिन्न भिन्न कई पुस्तकों में पहले भी प्रकाशित हो चुके हैं। पर सब लेख कहीं नहीं छपे। वे अब पहली ही बार इस पुस्तक में संगृहीत हुए हैं। आबू में भी गिरिनार की तरह पूर्वोक्त बन्धुद्वय, वस्तुपाल और तेजपाल, की तूती बोल रही है। ये दोनों भाई आबू में भी अतुल धन खर्च करके मन्दिरों का निर्म्माण और मूर्त्तियों की संस्थापना कर गये हैं। इन मन्दिरों की कारीगरी ग़ज़ब की है। बड़े बड़े इञ्जीनियर और शिल्प-कलाकुशल लोग भी इन्हें देख कर हैरत में आजाते हैं। इन लेखों की कोई कोई कविता बड़ी ही हृदयहारिणी है। उसके दो एक उदाहरण लीजिए—

तस्यानुजो विजयते विजितेन्द्रियस्य
सारस्वतामृतकृताद्भुतहर्षवर्षः।
श्रीवस्तुपाल इति भालतलस्थितानि
दौःस्थ्याक्षराणि सुकृती कृतिनां विलुम्पन्॥

अर्थात् वस्तुपाल अमृतवर्षी कवि है और विद्वानों के भालतल पर लिखे गये दुरक्षरों को मिटानेवाला है।

अन्वयेन विनयेन विद्यया विक्रमेण सुकृतक्रमेण च।
क्वापि कोऽपि न पुमानुपैति मे वस्तुपालसदृशो दृशोः पथि॥

अर्थात् वंश, विनय, विद्या, विक्रम और पुण्य के सम्बन्ध में वस्तुपाल की बराबरी करनेवाला कोई नहीं। वस्तुपाल की पत्नी ललितादेवी और पुत्र जैत्रसिंह की भी प्रशंसा में कितनी ही उक्तियाँ हैं। इसी तरह उसके भाई तेजपाल का भी खूब गुण-गान किया गया है।

मारवाड़ में मेड़ता नामक नगर से १४ मील पर एक गाँव है—केकिन्द। वहाँ पार्श्वनाथ के मन्दिर में जो शिला-लेख है उसमें राष्ट्रकूट अर्थात् राठौड़-वंश के कितने ही राजाओं का वर्णन है। यथा—मालदेव, उदयसिंह और सूरसिंह। ये सब मरुदेश ही के नरेश थे। उदयसिंह के विषय में लिखा है—

राज्ञां समेषामयमेव वृद्धो वाच्यस्तदन्यैरथ वृद्धराजः।
यस्येति शाहिर्विरुदं स दद्यादकब्बरो बब्बरवंशहंसः॥१२॥

अर्थात् बाबरवंश के राजहंस अकबर ने यह आज्ञा दी कि उदयसिंह को लोग वृद्धराज कहा करें, क्योंकि वे सब नरेशों में वयोवृद्ध हैं। उदयसिंह के बेटे सूरसिंह की तारीफ़—

राज्यश्रियां भाजनमिद्धधामा प्रतापमन्दीकृतचण्डधामा
सपत्ननागावलिनाशसिंहः पृथ्वीपती राजति सूरसिंहः॥१४॥
सुरेषु यद्वन्मघवा विभाति यथैव तेजस्विषु चण्डरोचिः।
न्यायानुयायिष्विव रामचन्द्रस्तथाधुना हिन्दुषु भूधवोऽयम् १६

पिछले पद्य में "हिन्दुषु" पद ध्यान में रखने लायक़ है।

अच्छा तो इस उपयोगी और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का इतना ही परिचय बहुत हो गया। जो लोग गुजराती नहीं जानते, पर संस्कृत के प्राचीन लेखों और पुस्तकों के प्रेमी हैं, वे भी इस पुस्तक के अवलोकन और सङ्ग्रह से लाभ उठा सकते हैं। और नहीं तो, इसके कितने ही लेखों के सरस पद्यों से अपना मनोरञ्जन अवश्य ही कर सकते हैं।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

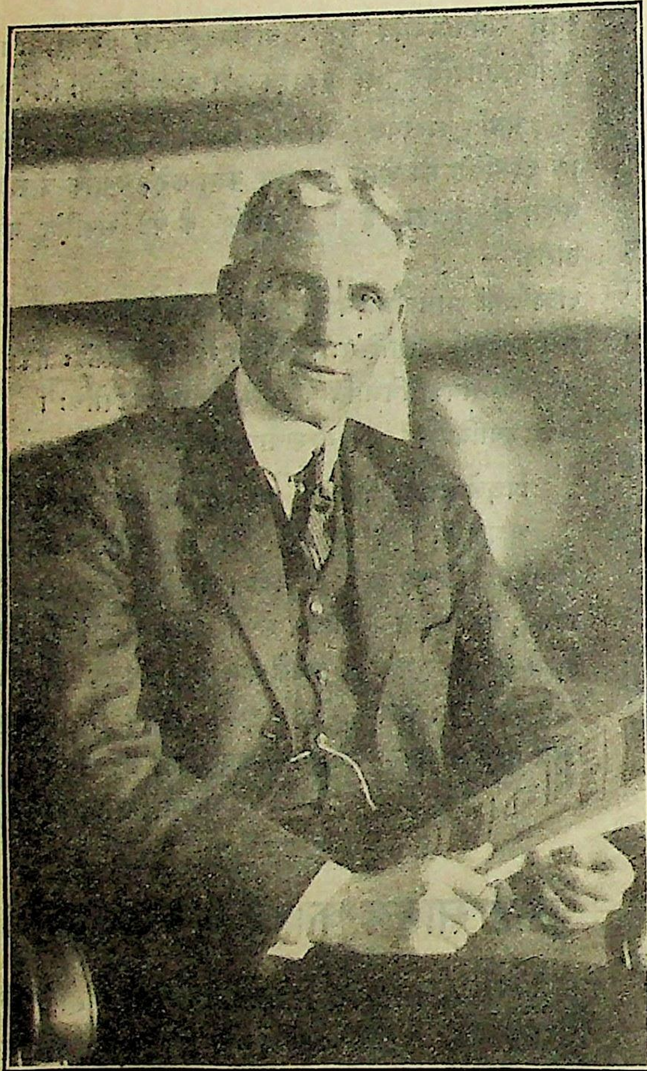
फ़ोर्ड साहब का जीवन-वृत्तान्त।

सरस्वती के पाठक भूल न गये होंगे कि हमने मांचेस्टर से फ़ोर्ड-मोटर-कम्पनी का कुछ विवरण उनके मनोविनोद के लिए दिया था। आज हम फ़ोर्ड साहब का जीवन-वृत्तान्त और उनकी सफलता के सम्बन्ध में यहाँ कुछ लिखते हैं। संसार में उद्यमी पुरुष अपने जीवन को किस प्रकार सफल बना लेते हैं, यह इनके जीवन से भली भाँति समझ में आ सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३० जुलाई १८६३ को हैनरी फ़ोर्ड का जन्म अमरीका के मिशिगन स्टेट के एक छोटे से गाँव में हुआ। उनके पिता का नाम विलियम फ़ोर्ड था। उनके पास कोई ३०० एकड़



मिस्टर हेनरी फ़ोर्ड।

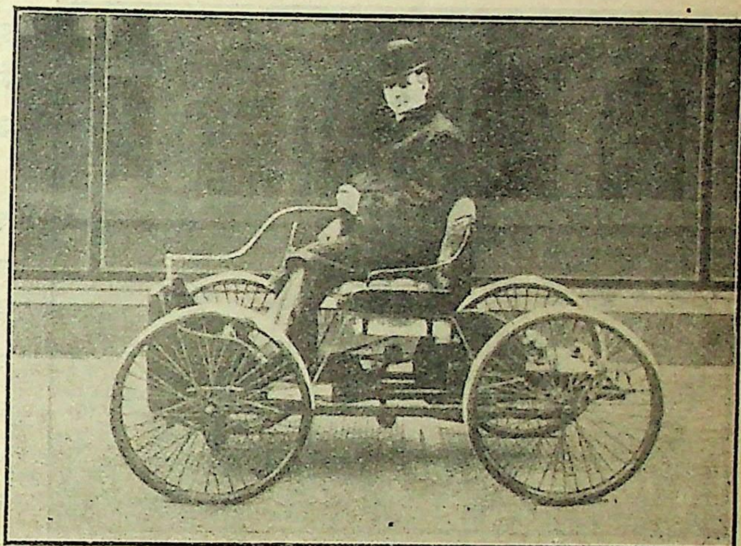
ज़मीन थी और उसी को जोत बोकर वे अपना जीवन-निर्वाह करते थे। हैनरी अपने पिता के दूसरे पुत्र थे। उनका बाल्यकाल बिलकुल सामान्य लड़कों की भाँति व्यतीत हुआ। कोई विशेष चमत्कार या अलौकिक बुद्धि का प्रकाश उस अवस्था में नहीं प्रतीत होता था। एक विशेषता अवश्य थी। वह यह कि जब दूसरे लड़के अपना सारा समय खेल-कूद में लगाते थे तब वे गाँव के लोहार की भट्टी पर काम करते और उसके प्रत्येक काम में अत्यन्त उत्साह दिखाते। उस समय उनकी बड़ी अभिलाषा थी कि लुहार उन्हें लोहा गरम करके पीटने का काम दे। बाल्यकाल में ही एक विचित्र घटना हुई जिससे उनके विस्तृत विचारों का परिचय मिलता है। एक दिन रविवार को उनके पिता ने कहा कि तुम मेरे साथ गिरजाघर चलो। बालक फ़ोर्ड ने कहा कि मैं गिरजा नहीं जाऊँगा। यदि वहाँ ईश्वर का ध्यान हो सकता है तो क्या कारण है कि इस खुले मैदान में, जहाँ परमात्मा की सारी अलौकिक वस्तुएं उसका गुण-गान कर रही हैं, उसका ध्यान नहीं लग सकता। पिता की आज्ञा से विवश होकर उन्हें गिरजा जाना पड़ा। परन्तु उन्हें वहाँ बैठे बहुत देर न हुई थी कि उनके एक मित्र ने संकेत किया कि बाहर आओ, मैं तुम्हें एक नई वस्तु दिखलाऊँगा। बस, अवसर पाते ही वे गिरजे से उठ भागे और मित्र को साथ लेकर बाहर निकल गये। उनके मित्र ने उन्हें एक घड़ी दिखाई। वह एक छोटी जेबी घड़ी थी। उसे देख कर वे चकित हो गये। उनकी इच्छा हुई कि उसे खोल कर देखें। घड़ी खोलने के लिए पेचकस की आवश्यकता हुई। चट से एक कील को कूट और घिस कर पेचकस बनाया और उसके सब पुर्ज़े खोल डाले। जब उनके मित्र को मालूम हुआ कि उसकी घड़ी के पुर्ज़े पुर्ज़े अलग कर दिये गये हैं तब वह बड़ा क्रुद्ध हुआ। फ़ोर्ड ने कहा, घबराओ मत। मैंने खोला है, मैं ही सब ठीक कर दूँगा। वे सारी दोपहरी उस घड़ी के सुधारने में लगे रहे और अन्त में वह ठीक हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कूल में फ़ोर्ड का मन बिलकुल न लगता था। स्कूल की पढ़ाई में इनका बिलकुल विश्वास न रहा। ये यही सोचा करते कि किस प्रकार इस पढ़ाई से बचें। अन्त में स्कूल में ही एक लोहार की दूकान खोली और अपना काम शुरू कर दिया। इनको एक धुन समा गई कि किसी न किसी प्रकार (Steam engine) स्टीम एंजिन बनाना चाहिए। दिन रात अपने छोटे कारख़ाने में बैठ कर ये उसी को पूरा करने का यत्न किया करते। अभी बचपन की उम्र से निकलने भी न पाये थे कि इनके सिर पर वज्रपात हो गया। इनकी मा इन्हें १६ बरस का छोड़ कर परलोक सिधारी। इस घटना से इनका मन बहुत ही उदास हुआ। पढ़ने पढ़ाने में बिलकुल चित्त न लगता था। दिन भर लोहार की दूकान पर ही बैठे रहा करते। इसी प्रकार दो साल और इधर उधर घूमने में व्यतीत हुए। इसी बीच में इनके हाथ कुछ समाचारपत्रों के अङ्क लग गये। इनमें डिट्रायट (Detroit) के बड़े बड़े कारख़ानों का वर्णन था। उन लेखों को पढ़ कर इन्होंने निश्चय कर लिया कि इस गाँव को छोड़ कर डिट्रायट जाकर किसी कारख़ाने में नौकरी करेंगे। एक दिन, स्कूल जाने के बहाने ये घर से निकले और रेल पर चढ़ कर डिट्रायट भाग गये। वहाँ एक एंजिन के कारख़ाने में प्रति सप्ताह २½ डालर पर नौकरी कर ली और यह विचार किया कि मैं लोकोमोटिव इंजीनियर हो जाऊँगा। नौकरी तो मिल गई, किन्तु रहने को किराये का घर लेने की चिन्ता हुई। बड़ी कठिनता से एक घर ३½ डालर प्रति सप्ताह पर मिला, परन्तु बड़ी कठिन समस्या यह हुई कि व्यय आय से अधिक हो गया। इस प्रकार गुज़र नहीं हो सकती थी। दो दिन तक शाम के काम की खोज में रहे। अन्त में एक घड़ीसाज़ की दूकान में चार घण्टे रोज़ का काम मिल गया और इस तरह दो डालर प्रति सप्ताह और मिलने लगे।

जब से फ़ोर्ड घर छोड़ कर भागे थे तब से उनके पिता को बड़ी फ़िक्र थी कि लड़का कहाँ भाग गया। पता लगाते लगाते उन्होंने इन्हें डिट्रायट में आ पकड़ा। धमकाया और वापस चलने को कहा। पर फ़ोर्ड ने कहा—वहाँ मेरी इच्छा के अनुकूल कुछ नहीं है। खेत का काम है, उसमें मेरा जी नहीं लगता और स्कूल में बहुत सी अनुपयोगी बातें पढ़ाई जाती हैं। वहाँ इंजन बनाना तो कोई सिखाता ही नहीं। मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा। अन्त में इनके पिता निराश होकर घर लौट गये। फ़ोर्ड साहब अब सुबह सात से शाम को छः बजे तक वर्क-शाप में काम करते थे। फिर छः से ग्यारह तक घड़ीसाज़ के यहाँ काम करते। इस तरह इनका निर्वाह होता। एक साल के बाद इन्होंने एक दूसरे कारख़ाने में नौकरी कर ली और घड़ी-

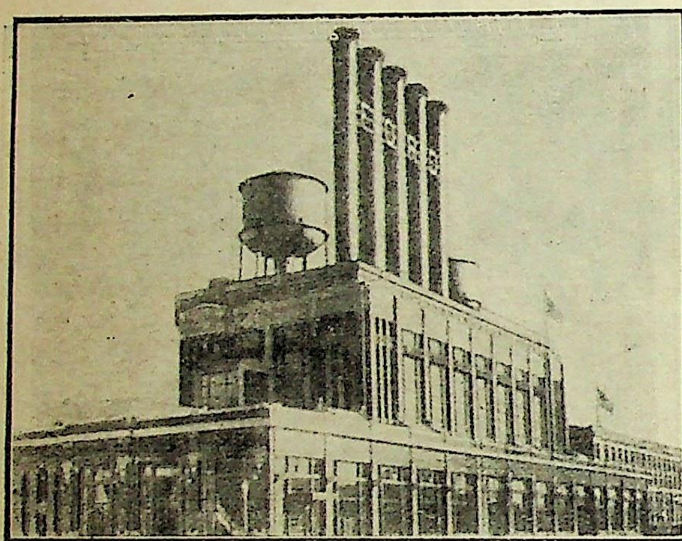


अपनी पहली गाड़ी पर फ़ोर्ड साहब।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साज़ी का काम छोड़ दिया। नये काम पर गये बहुत दिन न हुए थे कि पिता की बीमारी का पत्र आया जिससे विवश हो कर इन्हें घर जाना पड़ा। यहाँ वृद्ध पिता के अत्यन्त अनुरोध से इन्हें घर ही पर रहना पड़ा। ये ३ साल तक खेती का काम करते रहे और इसी बीच में क्लाराब्रेंड नाम की युवती से इनका विवाह हो गया। अब इन्हें फिर डिट्रायट के कारख़ानों ने चैन न लेने दिया। बन्धु-बान्धवों के मना करने पर भी ये घर छोड़ कर डिट्रायट फिर



वर्तमान फ़ोर्ड का कारख़ाना।

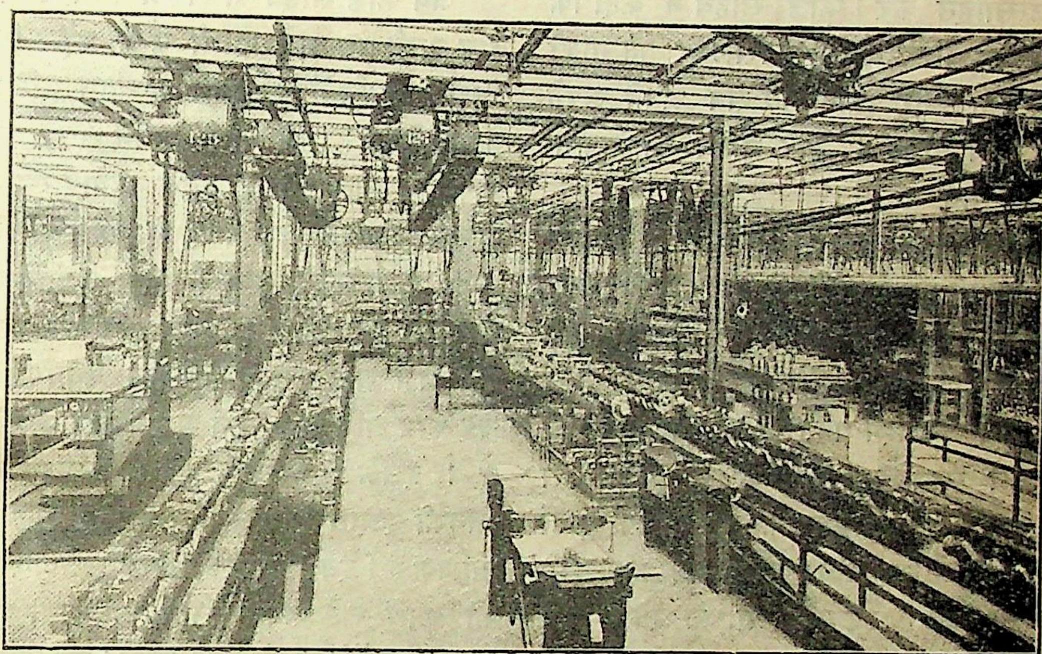
गये। वहाँ एक छोटा मकान किराये पर लिया। वहीं अपनी धर्मपत्नी को छोड़ कर ये काम की तलाश में चले। एडिसन एलेक्ट्रिक लाइटिंग एण्ड पावर कम्पनी के यहाँ ४५ डालर माहवार पर नियुक्त हो गये। ६ मास के अन्दर ही इनका वेतन बढ़ कर १५० हो गया और मेकेनिक विभाग के मैनेजर (Manager) हो गये। कुछ पैसा एकत्र होने के बाद इन्होंने ज़मीन का एक छोटा सा टुकड़ा ख़रीद लिया, इसमें अपना एक छोटा सा कारख़ाना खोल दिया। दिन में एडिसन कम्पनी में काम करते और रात में अपना कारख़ाना चलाते। इनकी इच्छा थी एक ऐसा गैसोलीन एंजिन बनाया जाय जो आकार में तो छोटा हो पर काम उतना ही दे जितना स्टीम एंजिन देता है। एडिसन प्रान ने एक पाइप बेकार समझ कर फेंक दिया था। ये उसे उठा लाये और उससे सिलिंडर, नल का काम निकला। इस एंजिन के बनाने में दो साल लग गये। जब यह छोटा एंजिन तैयार हो गया तब बहुतों ने उसकी तारीफ़ की, पर अन्त में सबने यही कहा कि चीज़ तो अच्छी है, परन्तु इसके बनाने में लाखों रुपये की आवश्यकता है। उतना पैसा कौन देगा। फ़ोर्ड साहब इसका जवाब यही दिया करते थे कि मेरा काम बनाना है, रुपया स्वयं आ जायगा। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही।

कुछ समय के बाद फ़ोर्ड साहब अपनी स्त्री को घर भेजने के लिए लाचार हुए। अतएव वे स्त्री को उसके मायके छोड़ आये और स्वयं घर का सब प्रबन्ध करने लगे। स्वयं अपना भोजन तैयार करना, फिर दिन भर कारख़ाने में काम करना और रात को आकर अपने परीक्षण-कार्य में व्यस्त रहना साधारण बात नहीं है। दोनों समय भोजन बनाने में कष्ट प्रतीत होने लगा। तब केवल एक ही बार खाना पकाते, रात को एक दूकान पर जाकर कुछ थोड़ा खा आया करते। कुछ दिनों में उनका परीक्षण सफल हो गया और एक सिलिंडर की मोटरकार उनके वर्कशाप में तैयार हो गई। अब तो रोज़ शाम को उसी पर बैठ कर अपने मित्र के भोजनालय में जाया करते और उसे भी बैठा कर घुमा लाया करते। कुछ दिनों में इस मोटरकार से भी जी भर गया। सोचा कि यदि दो सिलेंडर की मोटर होती तो अच्छा था। इस विचार ने उन्हें अब दूसरी समस्या में उलझा दिया। अब उनके वर्कशाप में दो सिलेंडर की कार का परीक्षण प्रारम्भ हुआ। आठ साल तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे इस परीक्षण में जुटे रहे। १६०१ के वसन्त में उनकी दो सिलेंडर की कार तैयार होगई। फ़ोर्ड साहब अपनी इस दो सिलेंडर की कार पर चढ़ कर डिट्रायट की गलियों में घूमने लगे। कोई इसकी प्रशंसा करता, कोई इस छोटी सी कार पर इन्हें बैठा देख कर हँसी उड़ाता। पर उन्हें ऐसा कोई भी न मिला जो उन्हें उत्साहित करता। कई धनपतियों से मिले, परन्तु रुपये के प्रश्न पर सब मौन धारण कर लेते। तब फ़ोर्ड साहब ने सोचा कि जब इस पर फ़ोर्ड ने फ़ैक्टरी की नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया और दिन रात मोटर-दौड़ की तैयारी में लग गये। १६०२ में इनकी यह मोटर तैयार होगई। काफ़ीजिम ने उस कार को बहुत पसन्द किया। प्रतिभाशाली फ़ोर्ड के मन में अब और विचार समाया। वे कहने लगे यदि चार सिलेंडर की कार बने तो और भी अच्छा है। परन्तु समय थोड़ा रह गया था, रेस तक चार सिलेंडर की कार नहीं बन सकती थी। दौड़ में आप प्रथम



फ़ोर्ड के कारख़ाने का भीतरी दृश्य।

तक जनता के आगे कोई विशेष चमत्कार नहीं रक्खा जायगा तब तक किसी से रुपये मिलने की आशा नहीं है। इसी विचार से इनको एक युक्ति सूझी, इन्होंने सोचा कि अगले साल मोटरों की दौड़ होनेवाली है। यदि उसमें सम्मिलित होकर कुछ सफलता प्राप्त कर सकें तो धनी लोगों का चित्त इधर आकृष्ट हो सकता है। यह विचार इन्होंने अपने मित्र काफ़ीजिम के सम्मुख रक्खा। उसने इनको ख़ूब प्रोत्साहन दिया और द्रव्य देने का भी वचन दिया। आये। अब तो सब समाचारपत्रों में इनका और इनकी मोटर का विस्तृत समाचार छपने लगा, जिससे कई धनपतियों की दृष्टि इधर फिरने लगी। बहुतों ने रुपये देने का वादा भी किया और मोटर फ़ैक्टरी चलाने का निश्चय भी किया; परन्तु सबका कहना यह था कि फ़ैक्टरी हमारी हो, फ़ोर्ड साहब उसमें काम करें क्योंकि रुपया हमारा है। मिस्टर फ़ोर्ड का तो विचार भर है, मुख्य वस्तु धन तो हमारा ही लगता है। पर फ़ोर्ड साहब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर सहमत न हुए। वे कहने लगे कि वास्तव में मुख्य बात विचार है, धन तो गौण वस्तु है। यदि फ़ैक्टरी मेरे हाथ में नहीं होगी तो मैं सम्मिलित नहीं होऊँगा। इस पर धन न मिल सका और फ़ैक्टरी भी न क़ायम हो सकी। तो भी दो तीन आदमी जैसे टामकूपर, कजन, जिनका लोहे के सामान का स्टोर था, और सी० एच० विलस, जो ड्राफ्टमेन था, इनके साथ रहे। सबने मिल कर सलाह की कि हर एक अपने अपने मित्रों को इस कार्य में सम्मिलित होने के लिए उत्साहित करें। फ़ोर्ड साहब ने कहा कि अगली रेस के लिए मैं चार सिलेंडर की गाड़ी तैयार करता हूँ और उस समय सब अपने अपने मित्रों को लावें और उन्हें उस मोटर की उपयोगिता का अनुभव करावें।

अगली रेस से पहले गाड़ी तैयार होगई। कूपर और फ़ोर्ड गाड़ी पर सवार हुए और उसका निरीक्षण करने के लिए उसको चलाया। गाड़ी ने एक-दम इतना वेग धारण किया कि दोनों उस पर चढ़ने से घबराने लगे। अब प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि इसे दौड़ में कौन चलावेगा। फ़ोर्ड कूपर से कहता था कि तुम चलाना और कूपर कहता था कि तुम्हीं चलाना। अन्त में यह निश्चय हुआ कि एक आदमी को, जिसका नाम ओल्ड फ़ीड था, चलाने के लिए तैयार कर लेंगे।

काम सब तैयार था। रेस के दिन कूपर, कजन और विलस सब अपने अपने मित्रों को ले कर रेस के मैदान में पहुँचे। रेस प्रारम्भ हुई। फ़ोर्ड साहब का मोटर प्रथम आया, दूसरे नम्बर की मोटर में और इसमें आधे मील का अन्तर था। इस बड़ी विजय ने बहुत लोगों को फ़ोर्ड के कार्य की ओर झुकाया।

शीघ्र ही मोटर-कम्पनी की स्थापना हुई। इसमें मिस्टर फ़ोर्ड वाइस प्रेसीडेंट और मास्टर मैकेनिक बनाये गये। उनका वेतन १५० डालर नियत किया गया। फ़ैक्टरी बहुत सफलता के साथ चल निकली, परन्तु इसकी बाल्यावस्था में ही आपस में सबका मतभेद होगया। फ़ोर्ड चाहते थे कि कार जहाँ तक हो सस्ती बनाई जाय, जो सब जनता के उपयोगी हो। परन्तु अन्य साथियों का विचार था कि कार जहाँ तक हो बहुमूल्य बनाई जायँ, जिससे प्रत्येक कार पर बहुत लाभ हो। यह मतभेद यहाँ तक बढ़ा कि प्रत्येक को फिर अलग होना पड़ा। फ़ोर्ड साहब ने अपनी फ़ैक्टरी खोली।

जब फ़ोर्ड साहब ने अपनी स्वतन्त्र फ़ैक्टरी की नींव डाली तब उन्हें साथी ढूँढ़ने पड़े। निस्सन्देह उन्होंने साथियों के चुनने में बहुत बुद्धिमानी से काम लिया। इनके साथी अपने अपने विषय में पूर्ण निष्णात थे। इनके व्यापारविभाग के चलानेवाले कजन ब्रदर्स थे, जो आज-कल डिट्रायट शहर के करोड़पति हैं। इनके इंजीनियर डाज ब्रदर्स थे, जिन्होंने बाद में स्वतन्त्र रीति से व्यवसाय कर डाज मोटर का कारख़ाना स्थापित किया। यह कार आज-कल बहुत अच्छी कार समझी जाती है। इसके अतिरिक्त इनके सलाहकार वे थे जिनकी इज़्ज़त आज सारे युनाइटेड स्टेट्स में सबसे अधिक है। इनके दूसरे इंजीनियर सी० एच० विलस भी आगे चल कर स्वतन्त्र व्यवसायी हुए और अपनी उन्होंने अलग कार बनाई। इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि फ़ोर्ड साहब में मनुष्यों के चुनने की अच्छी योग्यता थी। यदि फ़ोर्ड के साथ काम करनेवाले ये साथी न होते तो सम्भवतः उनको इतनी सफलता भी प्राप्त न होती।

कुछ समय के बाद फ़ोर्ड साहब को एक बड़ी भारी आपत्ति का सामना करना पड़ा। जब यह विपत्ति आई तब लोगों ने समझ लिया कि बस मिस्टर फ़ोर्ड के व्यापार की इतिश्री हो चुकी। उनके मोटर के आविष्कृत होने के पहले एक आदमी ने एक विशेष पुरज़े पर पेटन्ट लिया था। अतएव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई मनुष्य कार में गैसोलीन का प्रयोग नहीं कर सकता था और फ़ोर्ड ने अपनी मोटर में गैसोलीन प्रयोग किया था। जब यह मोटर बाज़ार में आया और अपने हलकेपन, सस्ती होने की वजह से सर्वप्रिय होने लगा तब उस मनुष्य ने उनको नोटिस दिया कि या तो वे गैसोलीन का प्रयोग करने के कारण कार पर रायल्टी दें, अन्यथा गैसोलीन का प्रयोग न करें। दोनों दशाओं में फ़ोर्ड साहब की हानि थी। उन्होंने कहा कि न तो रायल्टी दूँगा, न गैसोलीन का प्रयोग ही बन्द हो गया कि फ़ोर्ड का कारख़ाना डूब जायगा। हाई कोर्ट के निश्चय ने सहसा सबको चकित कर दिया, फ़ैसला फ़ोर्ड साहब के पक्ष में हुआ। इस विजय ने फ़ोर्ड को बड़ी सहायता पहुँचाई। इनका विपक्षी पागल होकर कुछ ही दिनों में मर गया।

फ़ोर्ड का कारख़ाना।

इस संक्षिप्त विवरण के बाद हम यहाँ यह बतलाना चाहते हैं कि फ़ोर्ड के कारख़ाने का रंग-ढंग,



कारख़ाने का भीतरी दृश्य।

करूँगा। यह मामला कोर्ट में गया और वहाँ से हाईकोर्ट तक पहुँचा। इनका विपक्षी एक धनिक था। उसने अनन्त धनराशि इस केस के जीतने में ख़र्च कर दी। डिट्रायट की गली गली में इश्तिहार लग गये थे कि जो कोई फ़ोर्डकार ख़रीदेगा उसे रायल्टी देनी होगी, अन्यथा उस पर मामला चलाया जायगा। एक-दम फ़ोर्ड मोटरकार की बिक्री बन्द हो गई। अब सबको सोलह आने निश्चय

आकार-परिमाण कैसा है। इस बड़ी फ़ैक्टरी का क्षेत्रफल ३५० एकड़ है। इसमें काम करनेवाले मज़दूरों की संख्या ५० हज़ार है। प्रत्येक मज़दूर को प्रति दिन आठ घंटे काम करने के बाद ६ डालर मिलते हैं। छः से कम किसी को नहीं मिलते (एक डालर प्रायः तीन रुपये के बराबर होता है) इस फ़ैक्टरी से प्रति दिन चार हज़ार कार तैयार होकर बाहर निकलती हैं। आगे जो ब्यौरा दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

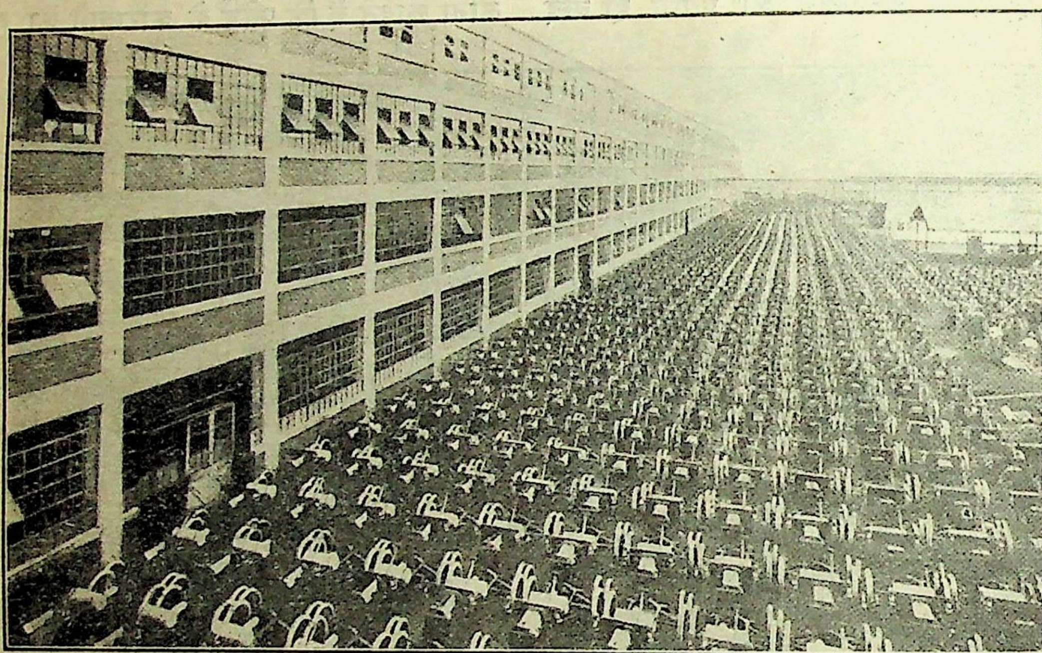
गया है उससे ज्ञात होगा कि प्रति वर्ष कितना सामान ख़र्च होता है।

६,३४,३७५ टन स्टील
८,१८,७५,००० वर्गफुट रबर का कपड़ा
३७,५०,००० लैम्प
७२,८१,५०० वर्गफुट शीशे की चद्दरें
१७,२५,००,००० फुट ताँबे की नली
१,७६,५०,००० पौंड स्टील मैग्नीटो के लिए
४३,००० मील तार मैग्नीटो के लिए

कोई बारह लाख चालीस हज़ार मोटरकार तैयार होती हैं। पाठक अन्य बातों का हिसाब स्वयं लगा सकते हैं।

इस कारख़ाने की विशेषतायें।

(१) इस फ़ैक्टरी का प्रत्येक विभाग स्वयं पूर्ण है, किसी दूसरे पर आश्रित नहीं है। प्रत्येक मुख्य विभाग में कई दूसरे विभाग हैं, जैसे Heat treatment Department, Grinding, Fordging, और



एक दिन का काम।

१,२५,००,००० वर्गफुट galvanized metal sheet गैस टैंक के लिए
६,६७,२५,००० वर्गफुट धातु की चादर गार्ड के लिए और पंखों के लिए
३,८७,५०,००० फुट नल
१,००,००,००० गैलन तेल Heat treatment के लिए
२,५,०००० टन कोयला जलाने को गैस पैदा करने के लिए।

एक दिन में चार हज़ार के हिसाब से साल में

Inspection—यद्यपि इस प्रकार के प्रबन्ध करने में फ़ोर्ड ने बड़ी उदारता से द्रव्य व्यय किया, परन्तु कार्य बहुत ही सुगम हो गया है और शीघ्रता से सम्पादित होता है।

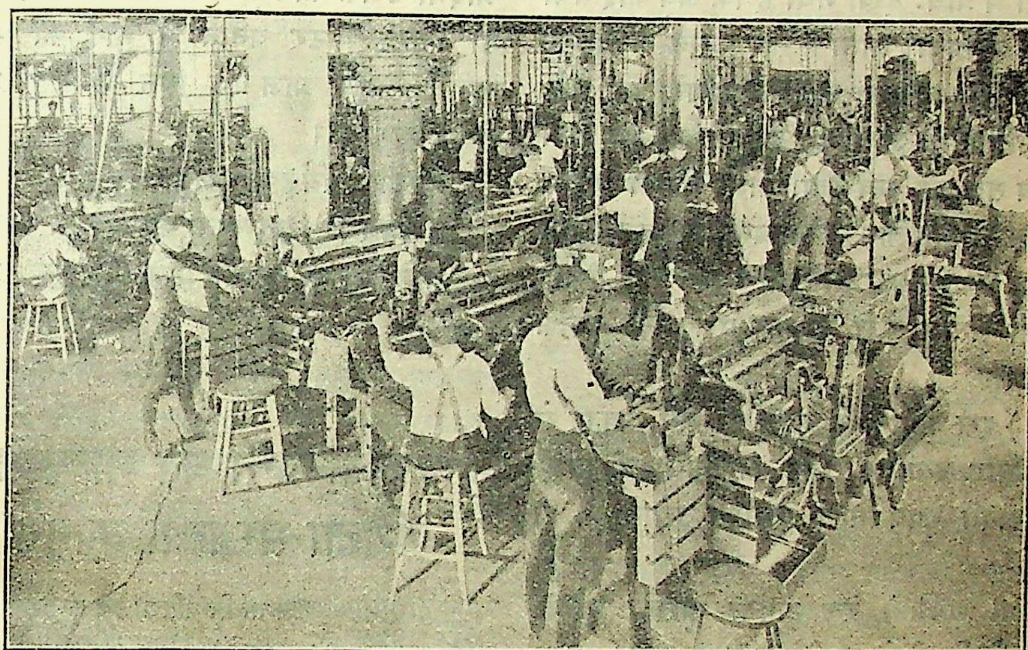
(२) कन्वेयर सिस्टम यहाँ की सबसे मुख्य विशेषता है। इसमें तीन प्रकार के कन्वेयर हैं जो सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं। एक तो उन सब हिस्सों को ले जाता है जिसका सम्बन्ध गाड़ी से है, दूसरे और तीसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्वेयर अन्य सामानों को सारी फ़ैक्टरी में बाँटते हैं। इस प्रबन्ध द्वारा बड़े भारी भारी सामान आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाये जाते हैं।

(३) मज़दूरों की आर्थिक दशा उन्नत करना। फ़ोर्ड साहब का विचार है कि मज़दूर तब तक काम नहीं कर सकते जब तक उनकी आर्थिक दशा न



लड़के काम सीख रहे हैं।

सुधरे। इसलिए यहाँ सबसे अधिक मज़दूरी दी जाती है। अन्य कोई फ़ैक्टरी इतनी तनख़्वाह नहीं देती। इसके अतिरिक्त यहाँ बोनस सिस्टम प्रचलित है, जिससे साल के अन्त में मज़दूरों को लाभांश मिलता है। एक Investigation department है, जो मज़दूरों की दशा की पड़ताल करता रहता है। जैसे, मज़दूरों की घरेलू दशा कैसी है, शराबख़ोरी इत्यादि बुरे कामों में तो वे पैसा नहीं ख़र्च करते। ऐसी अवस्था में उन्हें बोनस नहीं मिलता।

(क) मज़दूरों की सहूलियत के लिए स्टोर-भाण्डार खोले गये हैं, जहाँ सस्ता सामान मिलता है।

(ख) इसमें प्रायः संसार के सभी देशों के आदमी काम करते हैं।

(ग) प्रत्येक विभाग में लेटरबक्स हैं, जहाँ प्रत्येक मनुष्य अपनी सम्मति लिख कर डाल सकता है।

(घ) मज़दूरों के मनोविनोद के लिए भी उपयुक्त स्थान हैं।

(४) इस कम्पनी की बहुत बड़ी विशेषता यह है कि प्रत्येक विभाग का मुखिया (Head) स्वयं इस कम्पनी का शिक्षा-प्राप्त युवक होता है। इस काम के लिए शिल्प-सम्बन्धी स्कूल खुले हुए हैं। वहाँ मज़दूरों को उस विभाग के सम्बन्ध में शिक्षा दी जाती है जिसमें वह काम कर रहा है या करना चाहता है। विदेशी मजदूरों के लिए अँगरेज़ी पढ़ाने के क्लास हैं, औज़ार बनाने की शिक्षा के लिए पृथक् श्रेणी है। एक बड़ी रसायनशाला भी है, जिसमें लाखों डालर हर साल ख़र्च किये जाते हैं।

फ़ोर्ड साहब की यह नीति है कि किसी विभाग का मुखिया कहीं बाहर से न लेना पड़े। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं कि इस प्रकार मुखिया विदेश से बुलाने से या बाहर से लेने से फ़ैक्टरी का अधःपतन होता है। यहाँ इस प्रकार प्रबन्ध किया गया है कि यदि किसी कारण मुखिया काम न करे तो काम बन्द नहीं हो सकता, उसके नीचे का आदमी सब प्रक्रियाओं को समझता है। मुखिया कोई भी काम अपने सहायक से छिपा कर नहीं कर सकता।

भारत में प्रायः देखा गया है कि जब कोई नया कारखाना चलाया जाता है तब उसके सञ्चालकों से अध्यक्ष का पद किसी जापानी, अँगरेज़ या अमेरिकन को दे दिया जाता है। इसका फल यह होता है कि जब तक वह बना रहा, काम चलता रहा। जहाँ वह काम छोड़ कर चलता बना, बस कारखाना बन्द हुआ, क्योंकि कारखाने का रहस्य कोई दूसरा सीख नहीं पाता। ऐसे दृष्टान्त एक नहीं, अनेक मिलते हैं।

(६) इस कम्पनी ने अपने को सब प्रकार से सुरक्षित और स्वतन्त्र रखने के लिए बड़ी बुद्धिमत्ता से अपने रुपये निम्न लिखित उद्योगों में ही लगाये हैं—

(क) (Rail works) रेल अपनी ख़रीदी हुई है, जिससे किसी के अधीन न रहना पड़े।

(ख) इनको लकड़ी की आवश्यकता होती है तो बड़े बड़े जंगल ख़रीद लेते हैं।

(ग) काग़ज़ बनाने के लिए पेपर-मिल है।

(घ) कोयले और लोहे की अत्यन्त आवश्यकता होती है, इसलिए कोयले और लोहे की अपनी खानें हैं।

(ङ) शीशा बनाने के कारखाने स्वयं फ़ोर्ड कम्पनी के चल रहे हैं।

(च) प्रकाश करने के लिए बिजली, जलाने के लिए गैस, इन्हें दूसरों से ख़रीदनी नहीं पड़ती—

ये सब काम बड़ी दूरदर्शिता के हैं। यदि आज कोई वस्तु, जैसे सीसे की प्लेट, ये दूसरे से ख़रीदते होते और यदि किसी कारण वह कम्पनी इन्हें देना बन्द कर देती तो कारखाना बन्द हो जाता या मँहगा ख़रीदना पड़ता।

पाठकगण, आपने देख लिया कि निस्सहाय बालक फ़ोर्ड ने आज चमत्कारपूर्ण कार्य का विस्तार कैसे किया है! कहाँ फ़ोर्ड के कारखाने में सिवा फ़ोर्ड के दूसरा कोई और न था, कहाँ आज ५० हज़ार आदमी उसके कारखाने में काम कर रहे हैं। कहाँ तो पहली मोटर बनाने में फ़ोर्ड को आठ साल लगे थे, कहाँ आज एक दिन में हज़ारों मोटरें तैयार होती हैं।

किसी ने बिलकुल ठीक कहा है।

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सिंहस्य सुप्तस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

एस० बहादुर

संयुक्त-प्रान्त का माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी क़ानून।



कलकत्ता-विश्वविद्यालय-कमीशन बङ्गाल के स्कूलों और कलकत्ता-विश्वविद्यालय के रोगों की जाँच करने के लिए बैठा था। नुसख़ा ५ मोटी मोटी किताबों में लिखा गया। बङ्गाल में अभी उस पर विचार ही हो रहा है। पर संयुक्त प्रान्त में उसके अनुसार इलाज भी शुरू हो गया। जो रोग बङ्गाल की शिक्षा में है उसके कुछ निदान यहाँ भी पाये जाते हैं। परन्तु कहाँ तक वह नुसख़ा, जो बङ्गाल के लिए लिखा गया, संयुक्त-प्रान्त के लिए कारगर हो सकता है, यह हम नहीं कह सकते। सरस्वती के डाक्टरों ने इस प्रान्त की तो कोई जाँच ही नहीं की। अस्तु, हमारे प्रान्त के गवरनर महोदय तथा उनके मन्त्रिगणों ने यही समझा कि यहाँ भी वही मर्ज़ है। कलकत्ता-कमीशन की सिफ़ारिश के अनुसार सुधार शुरू हो गया। कमीशन ने residential और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

teaching विश्वविद्यालयों के लिए सिफ़ारिश की। दो विश्वविद्यालय अलीगढ़ तथा बनारस में थे ही। एक लखनऊ में भी स्थापित किया गया। इलाहाबाद-विश्वविद्यालय को भी अपनी केंचुल बदलनी पड़ी। उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में सरकार और उसकी व्यवस्थापक सभाओं को जो कुछ करना था सो वे कर चुकीं।

कलकत्ता-कमीशन ने इंटरमीजियेट अर्थात् एफ़० ए० दरजों को विश्वविद्यालय के अन्दर रखना मुनासिब नहीं समझा। उसने यह सिफ़ारिश की कि ये दरजे हाई स्कूलों के साथ शामिल कर दिये जायँ। प्रान्तीय सरकार ने विश्वविद्यालयों के क़ानून बनाते वक्त यह तय कर दिया कि इन दरजों का विश्वविद्यालय से कोई सम्बन्ध न रहे और साथ ही साथ एक नया क़ानून बना दिया जिसके अनुसार ऐसे स्कूलों का प्रबन्ध किया जायगा जिनमें अँगरेज़ी मिडल, हाई, या एफ़० ए० दरजे होंगे। इस क़ानून का नाम इंटरमीजियेट एज्यूकेशन ऐक्ट है। इस लेख में इस क़ानून की आलोचना नहीं करना है। दोष दिखाने से अब कोई विशेष लाभ नहीं। लेख का तात्पर्य केवल इसका समझना है और यह विचार करना है कि इसके अनुसार बने हुए बोर्ड के सामने कौन कौन प्रश्न उपस्थित होंगे और उनको हल करने का कौन उचित ढङ्ग होगा।

क़ानून के अनुसार हाल ही में एक बोर्ड क़ायम होगा। उसका नाम होगा बोर्ड आफ़ हाई स्कूल ऐंड इंटरमीजियेट एज्यूकेशन। उसका सङ्गठन इस प्रकार होगा।

प्रान्त के डाइरेक्टर साहब सभापति। दो इंटरमीजियेट कालेजों के प्रधानाध्यापक, सरकारी हाई स्कूल के हेड मास्टर, एक इञ्जीनियर, एक कृषि के विद्वान्, एक डाक्टर, एक ट्रेनिङ्ग कालेज के अध्यापक, एक व्यवसाय तथा शिल्प के प्रतिनिधि, एक महिला स्त्री-शिक्षा के लिए, और यदि सरकार चाहे तो तीन और महाशय। ये सब मिनीस्टर द्वारा नियुक्त किये जायँगे। बाक़ी चुने हुए होंगे—चार ग़ैर सरकारी इंटरमीजियेट कालेजों के प्रधान अध्यापकों की तरफ़ से, दो ग़ैर सरकारी हाई स्कूलों के हेड मास्टरों की तरफ़ से, तीन लेजिस्लेटिव कौंसिल की तरफ़ से, एक सदस्य अपर इंडिया चैम्बर आफ़ कामर्स और यूनाइटेड प्राविंसेज़ चैम्बर आफ़ कामर्स की तरफ़ से, एक ताल्लुक़दार ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन की तरफ़ से, और एक ज़मींदार आगरा लैंड होल्डर्स एसोसियेशन की तरफ़ से। प्रान्तिक विश्वविद्यालयों की तरफ़ से क़रीब ८ सदस्य। कुल ३० से ३३ तक होंगे। ये तीन बरस के लिए नियुक्त होंगे। बोर्ड के निम्न-लिखित अधिकार होंगे।

(१) इंटरमीजियेट हाई और मिडिल दरजों के लिए कोर्स मुक़र्रर करना।

(२) परीक्षा लेना और डिप्लोमा इत्यादि देना।

(३) बोर्ड की परीक्षाओं के लिए संस्थाओं को मंज़ूरी देना।

(३) इन संस्थाओं में ख़र्चे के सम्बन्ध में राय देना।

इन कार्यों के लिए बोर्ड की पृथक् पृथक् कमेटियाँ होंगी। ये कमेटियाँ आवश्यकतानुसार अपनी तादाद के एक तिहाई की हद तक अन्य महाशयों को भी अपना मेम्बर बना सकेंगी।

एक्ट की शर्तों के अन्दर बोर्ड को अपने क़ानून बनाने का भी हक़ होगा। बोर्ड किन शर्तों पर नये दरजों के लिए मंज़ूरी देगा, किन शर्तों पर वह उनको मदद देगा और क्या कोर्स होंगे—इन सब विषयों पर क़ानून बनाने का उसे अधिकार होगा।

सारांश यह कि बोर्ड मुक़र्रर होने के बाद उसके हाथ में बहुत लम्बे चौड़े अधिकार रहेंगे। मन चाहे स्कूल-लीविङ्ग परीक्षा ख़तम कर दे, मन चाहे क़ायम रक्खे। मन चाहे इंटरमीजियेट के लिए एक वर्ष का कोर्स रक्खे, मन चाहे दो वर्ष का। मन चाहे मिडिल की परीक्षा भी ले। मन चाहे अँगरेज़ी शिक्षा का माध्यम शुरू से आख़िर तक कर दे। मन चाहे मातृ-भाषाओं का पक्षपाती हो जाय, मन चाहे स्कूलों को इंटरमीजियेट दरजे खोलने का सुभीता कर दे, मन चाहे उनके मार्ग को कठिन कर दे। पर बोर्ड की क्या नीति होगी यह सब उसके सङ्गठन पर निर्भर है। अधिकतर उसके चुने हुए सदस्य ही होंगे। आशा है कि जिनको चुनने का अधिकार होगा वे बहुत जान-बूझ कर अपने प्रतिनिधि चुनेंगे। इस प्रान्त की माध्यमिक शिक्षा का भार उसकी योग्यता, स्वतन्त्रता और शिक्षा-वत्सलता ही पर निर्भर है।

बोर्ड के सामने सबसे कठिन प्रश्न जो होंगे उनमें से कुछ ये हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) मिडिल, हाई स्कूल और इंटरमीजियेट कक्षाओं में कौन कौन विषय पढ़ाये जायँ और किस माध्यम में।

(२) किन शर्तों पर वर्तमान हाई स्कूल अपने यहाँ इंटरमीजियेट दरजे खोल सकेंगे।

(३) इंटरमीजियेट की पढ़ाई एक वर्ष की हो या दो वर्ष की।

सरलता तो इसी में है कि जो ढङ्ग चला आ रहा है थोड़ा बहुत उलट फेर कर वही क़ायम रक्खा जाय। कालेज से दो दरजे निकाल लिये; स्कूल के दो ऊँचे दरजों में मिला दिये और इंटरमीजियेट कालेज तैयार कर दिया। इंटरमीजियेट दरजे और सब दरजों के साथ शामिल कर दिये और जो युनीवर्सिटी का कोर्स था उसमें कुछ थोड़ा बहुत रद्दोबदल कर दिया। यदि इतना ही हो तो बोर्ड के सामने कुछ काम ही नहीं। विश्वविद्यालय के सिर पर इन दरजों का भार न रहा, किसी बोर्ड पर ही सही। इंटरमीजियेट दरजे न कालेज के साथ रहे, स्कूल के साथ ही सही। परन्तु यदि सुधार करना है तो सरल राह से काम न चलेगा।

प्रथम प्रश्न जो उसको हल करना है वह यह है कि शिक्षा का माध्यम क्या हो। यदि इस युग में भी इस बात पर ज़ोर रहा कि लड़कों को अँगरेज़ी लिखने, पढ़ने तथा उसके साहित्य समझने की ख़ूब लियाक़त हो, तब तो यही होना है कि अँगरेज़ी की किताबों की तादाद बढ़ा दी जायगी, अँगरेज़ी भाषा शिक्षा की माध्यम रहेगी। लड़के अँगरेज़ी बोलना तो सीख जायँगे। परन्तु विषय का ज्ञान जैसा अब है उससे अच्छा न होगा।

परन्तु यदि युवकों को देश-सेवा के योग्य बनाना है, यदि उन्हें इस योग्य बनाना है कि वे देश की आर्थिक उन्नति भी कर सकें, उन विषयों का भी ज्ञान प्राप्त कर सकें जिनकी धनोपार्जन करने में परम आवश्यकता है तो अँगरेज़ी पर ज़ोर देने से काम न बनेगा। अँगरेज़ी की लियाक़त बढ़ाने के लिये अँगरेज़ी का कोर्स बढ़ा दीजिए। परन्तु अन्य विषय मातृ-भाषा ही द्वारा पढ़ाइए। कठिनाइयाँ कहने सुनने की हैं; आवश्यक किताबों के बनने में देर न लगेगी। भाषा का कोई प्रश्न नहीं। मिश्रित हो। विज्ञान-सम्बन्धी शब्द अँगरेज़ी में हों; लिपि देवनागरी हो, भाषा बोलचाल की हिन्दुस्तानी हो। मतलब विषय समझने और समझाने से है।

अँगरेज़ी के सिवा और कौन विषय पढ़ाये जायँ? इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिए कि इस देश का जल-वायु उष्ण-प्रधान है। हमारे यहाँ वर्ष में ६ महीने ही काम करने के होते हैं। इसलिए हम योरपीय देशों की पाठ्य-प्रणाली का अनुकरण यहाँ नहीं कर सकते। जहाँ बालकों के दिमाग़ की हमें फ़िक्र है वहाँ और उससे अधिक हमको उनके स्वास्थ्य की फ़िक्र है। चाहे जितने बढ़िया होस्टल बनाइए, चाहे जितना बढ़िया भोजन बालकों को दीजिए, परन्तु किताबों और विषयों का बोझ बढ़ा दीजिए। परीक्षाएँ ज़्यादा और कड़ी कर दीजिए। लड़के पिस जायँगे। स्वास्थ्य और भी अधिक ख़राब हो जायगा। इसलिए शिक्षा-सुधारकों से हमारा अनुरोध है कि जहाँ वे विश्वविद्यालय-कमीशन के अन्य सिफ़ारिशों पर ध्यान देते हैं, वहाँ वे बङ्गाली नवयुवकों के शोचनीय स्वास्थ्य के चित्त की ओर भी ध्यान दें।

हम विषय-व्यक्त योग्यता बढ़ाने के विरोधी नहीं हैं। परन्तु हम यह नहीं चाहते कि हमारे युवकों का दिमाग़ पंसारी का थैला बना दिया जाय। इस समय एफ़०ए०, एस० एल-सी० पास युवक के दिमाग़ में साइंस, अँगरेज़ी, इतिहास, हिन्दी, भूगोल, हिसाब तक ६ विषयों का कच्चा पक्का ज्ञान भरा रहता है। उनमें से बहुत कुछ ज्ञान तो सिर्फ़ परीक्षा देने के लिए है। जीवन में उसकी कोई आवश्यकता नहीं। इंटरमीजियेट में भी चार विषय से कम नहीं हैं। यदि सुधार ही करना है तो हमारा प्रस्ताव यह है कि परीक्षा के विषय घटा दिये जायँ और विषयगत योग्यता बढ़ाने का प्रयत्न किया जाय। सिर्फ़ अँगरेज़ी और मातृ-भाषा अनिवार्य विषय रहें और पर्याय विषयों की विस्तृत सूची से एक या दो चुन लिये जायँ। ये विषय वे हों जिनकी आवश्यकता विद्यार्थी को इंटरमीजियेट कालेज से निकलने के बाद पड़े। यदि कृषि में जाना हो तो कृषि और रियासत का प्रबन्ध जङ्गलात के लिए बाँटेगी, डाक्टरी के लिए वनस्पतियों और धातुओं का रसायन और संस्कृत या फ़ारसी सिविल इञ्जीनियरिङ्ग के लिए हिसाब और ड्राइङ्ग, एलेक्ट्रिकल इञ्जीनियरिङ्ग और मिकैनिकल तथा टेक्स्टाइल इञ्जीनियरिङ्ग के लिए फ़िज़िक्स और केमिस्ट्री, सरकारी नौकरी करना हो तो बुक कीपिङ्ग टाइप राइटिङ्ग; इत्यादि;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क़ानून पढ़ना हो तो तर्क और संस्कृत तथा फ़ारसी; राजनीति में भाग लेना हो तो इतिहास और अर्थशास्त्र; योरप की सैर करना हो तो फ़्रेञ्च और जर्मन—तात्पर्य यह कि जीवन के जिस क्षेत्र में जाना हो उसके अनुसार पर्याय-विषय लिये जायँ।

दूसरा प्रश्न यह है कि किन शर्तों पर वर्तमान हाई स्कूल इंटरमीजियेट दरजे खोल सकेंगे। चिन्तामणिजी जहाँ जाते हैं वहाँ के हाई स्कूल उनकी सेवा में यही प्रार्थना करते हैं कि उन्हें इंटरमीजियेट दरजे खोलने का अवसर दिया जाय। चिन्तामणिजी इस सम्बन्ध में उनको दिलासा देते रहते हैं कि उन हाई स्कूलों के पद में कोई कमी नहीं आने पायेगी, जिनमें इंटरमीजियेट दरजे न खुलेंगे; परन्तु उन हाई स्कूलों के सञ्चालक जानते हैं कि सरकार चाहे कुछ न करे सर्वसाधारण में उनका दरजा अवश्य घट जायगा। हाई स्कूलों के ऊँचे दरजों में वही विद्यार्थी पहुँचेंगे जिन्हें इंटरमीजियेट कालेजों में जगह न मिलेगी। इसलिए हमारा प्रस्ताव है कि उन हाई स्कूलों के मार्ग में अधिक कठिनाइयाँ न डाली जायँ जो अपने यहाँ इंटरमीजियेट दरजे खोल सकें। सिर्फ़ एक अलग इमारत ही बनाने से और उसमें हाई और इंटरमीजियेट सेक्शन के लड़कों को बैठाने से ही योग्यता तथा चरित्र-बल में फ़र्क न पड़ जायगा। अभी सरकारी नीति तो यही मालूम होती है कि एस० ल० सी और इंटरमीजियेट दरजे एक अलग इमारत में हों। हम यह नहीं चाहते कि जहाँ अलग इमारत बनाना मुमकिन भी हो वहाँ भी इंटरमीजियेट दरजे एक ही इमारत के अन्दर रक्खे जायँ। परन्तु इतना हमारा अवश्य अनुरोध होगा कि उन स्कूलों को भी इंटरमीजियेट दरजे खोलने का अवसर दिया जाय जो अपनी बनी बनाई इमारत के अन्दर ही इन दरजों को खोल सकें। ऊपराचढ़ी होने दीजिए। देखिए, शुद्ध इंटरमीजियेट कालेज से योग्य और चरित्रवान् विद्यार्थी निकलते हैं या इंटरमीजियेट स्कूल से।

दूसरी शर्त यों बाधक हो सकती है कि आप इन दरजों के अध्यापकों को उतनी ही तनख़्वाह दीजिए जितनी कि सरकारी इंटरमीजियेट कालेजों में पी० ई० एस० के अध्यापकों को मिलती है। और साथ ही साथ हम आपको सहायतार्थ उतना ही वार्षिक देंगे जितना कि आप चन्दे से जमा कर सकें। मतलब यह कि सरकारी कालेजों में जो हमने ठाठ बाट रक्खा है वही आप भी कर सकें तब तो इंटरमीजियेट दरजे खोलने की हिम्मत कीजिए नहीं तो जैसे बने अपने हाई स्कूल ही को क़ायम रखने की तजवीज़ कीजिए। इस शर्त का बन्धन रखना ठीक नहीं। हाँ, यह क़ानून बनाया जा सकता है कि इंटरमीजियेट दरजों को पढ़ाने के लिए एम० ए० से कम योग्यता के अध्यापक न हों। इतना आप समझ लीजिए कि योग्य अध्यापक हों, इसकी आवश्यकता नहीं कि ग़ैर सरकारी संस्थाओं में उनको वेतन भी उसी तरह से दिया जाय। और यदि आप उतनी सहायता दें तो इसमें भी कोई हर्ज नहीं।

तीसरा प्रश्न यह हल करना है कि कौन कौन परीक्षाएँ हों, कब हों, और कितने अन्तर पर हों। लोग समझते हैं कि स्कूललीविङ्ग रहेगा और उसके दो वर्ष बाद इंटरमीजियेट की परीक्षा होगी। यह हम कह सकते हैं कि सरकारी नेताओं का यही विचार है, परन्तु यह नहीं कह सकते कि बोर्ड क्या निश्चय करेगा। अतएव हम अपने विचार इस प्रश्न पर प्रकट करने का साहस करते हैं।

यदि लखनऊ तथा अन्य विश्वविद्यालय अपनी नीति बदल सकें तो फिर हम उनसे यही अनुरोध करेंगे कि वे विश्वविद्यालय में डिग्री-कोर्स तीन वर्ष का रक्खें और इंटरमीजियेट एक वर्ष का। स्कूललीविङ्ग परीक्षा के एक वर्ष पश्चात् इंटरमीजियेट परीक्षा के लिए अनुमति हो। यदि यह न हो सके तो तीसरे से एस० एल० सी तक आठ की जगह सात दरजे कर दिये जायँ और इंटरमीजियेट की मियाद २ वर्ष की रहे। तात्पर्य यह है कि जितने समय में अब विद्यार्थी विश्वविद्यालय के स्नातक होते हैं उतने ही समय में, इस परिवर्तन के बाद भी होते रहें। हम केवल इस सिद्धान्त पर अटल हैं कि डिग्री-कोर्स विश्वविद्यालय में ३ वर्ष का रहना चाहिए। यदि आप स्कूल में एक वर्ष बढ़ावें तो बहुत अच्छा। मियाद उतनी ही रहेगी। यदि आप दो वर्ष बढ़ायें तो भी हम एक वर्ष अधिक पढ़ने के लिए तैयार हैं, परन्तु हमारे और सरकार के ख़र्च का ख़याल रख लीजिएगा।

डिग्री की मियाद बढ़ाने के पक्षपातियों का विचार है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि इस तरह वे स्नातकों को अधिक योग्य बना सकेंगे। यह ठीक है। परन्तु हमारा यह भी निवेदन है कि यदि मातृभाषाएँ शिक्षा का माध्यम बनाई जायँगी तो बालकों में भाषा के समझने में कठिनाई की जो कमी होगी उसकी जगह विषय-व्यक्त योग्यता की तो वृद्धि होगी। समय उतना ही लगेगा, योग्यता अधिक होगी।

परीक्षाओं की तादाद के विषय में हमें यह कहना है कि यद्यपि हम प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के विरोधी अवश्य हैं तथापि हम यह नहीं चाहते कि एस० एल० सी० की परीक्षा ही उड़ा दी जाय। परीक्षा-प्रणाली के सुधार की आवश्यकता है। जैसे अँगरेज़ी और साइंस के ज़बानी तथा प्रैक्टिकल परीक्षा में हेड मास्टर की राय पर ध्यान दिया जाता है वैसे अन्य विषयों में भी हेडमास्टर की राय ली जाय। परीक्षा वर्ष में दो बार हो। जो जिस विषय में अनुत्तीर्ण हो, कुछ शर्तों के अन्दर, उसको उसी विषय में परीक्षा देने का अवसर मिले। प्रत्येक विषय पर लिखे हुए पर्चे हों और ज़बानी परीक्षा भी हो। खेल, कूद, व्यायाम और स्वास्थ्य, इनका भी सार्टिफ़िकट में उल्लेख हो। सारांश यह कि परीक्षा जहाँ तक बने पूर्ण हो और भाग्य को अपनी टाँग अड़ाने का मौक़ा कम मिले।

इस प्रान्त ही की नहीं, भारतवर्ष की माध्यमिक शिक्षा का भविष्य भावी बोर्ड के हाथ में है। इस प्रान्त में जो कुछ उसे करना है, करेगा ही। उसका अनुकरण दूसरे प्रान्त भी करेंगे। इसलिए उन सज्जनों पर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है जिनके हाथ में बोर्ड का सङ्गठन होगा। आशा है कि उनके चुनाव में कोई ग़लती न होगी।

अध्यापक

एक वैज्ञानिक का दुष्कर कार्य्य।

विज्ञान मनुष्य की अजेय शक्ति है। इसके सामने सभी विघ्न-बाधायें दूर हो जाती हैं, प्रकृति हार मानती है, और असम्भव भी सम्भव हो जाता है। इसके प्रभाव से मनुष्य-जाति का जो उपकार हुआ है और हो रहा है वह अकथनीय है। इससे मनुष्यों ने अपने ज्ञानक्षेत्र को विस्तृत करने के लिए जो सहायता ली है वह अवर्णनीय है। वर्तमान समय में इसी बल के सहारे मनुष्य, मङ्गल-ग्रह-विषयक हमारी जिज्ञासा को समाधान करने का उपाय कर रहा है। इसके पूर्व ऐसा उपाय किसी से नहीं बन पड़ा था। इस उपाय से मङ्गल-ग्रह और हमारी दृष्टि के बीच केवल डेढ़ मील का अन्तर रह जायगा। अब तक मनुष्य जो बातें, दूरबीन से देख कर और बेतार के तार-यन्त्र में अपना कान लगा कर देख-सुन नहीं सका था वह इससे स्पष्ट हो जायगा। लोग जान लेंगे कि मङ्गलग्रह जीवित है या मृत। उसके सम्बन्ध में नाना प्रकार की जो कल्पनाएँ की गई हैं उनकी भी सत्यता का निर्णय हो जायगा। अच्छा तो उस अनुसन्धान का मर्म सुन लीजिए जिससे अघटित घटना होने की सम्भावना है। आज-कल इसकी चर्चा सामयिक पत्रों में ख़ूब हो रही है। नीचे जो कुछ लिखा जाता है वह एक अँगरेज़ी पत्र का सारांश-मात्र है।

ऐसे तो लोग मङ्गलग्रह का नाम प्राचीन काल से जानते हैं; परन्तु तत्सम्बन्धी यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने का उद्योग पहले पहल ज्योतिर्विद् गेलीलियो ने, सन् १६१० ईसवी में, किया और यह पता लगाया कि उसका आकार पूर्णवृत्त नहीं है। तब से लेकर आज तक उसके सम्बन्ध में प्रति वर्ष नई नई खोजें हो रही हैं।

एक बार एक ज्योतिषी ने मङ्गलग्रह के धरातल पर चिह्न देख कर प्रवाहित धारा की कल्पना की। इस छोटी सी धारा को उपन्यास-लेखकों ने बेतरह बढ़ाया और उसको चित्रित करने के लिए अपने उपन्यास के हज़ारों पन्ने रँग डाले। इस बात का उदाहरण खोजना हो तो स्विफ्ट साहब-कृत ग्यूलीभर की यात्रा पढ़िए। उसमें लिखा है कि लिल्लीपुट के ज्योतिषियों ने दो चन्द्रमाओं को मङ्गलग्रह की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिक्रमा करते देखा है। यद्यपि उस समय के ज्योतिषियों को यह पता नहीं लगा था कि मङ्गलग्रह का भी कोई उपग्रह है तो भी स्विफ्ट साहब ने मन के उमङ्ग में आकर यह लिख ही दिया। मनुष्य की कल्पना निरर्थक नहीं होती, इसी सिद्धान्त के अनुसार अगस्त सन् १८७७ ईसवी में अमरीका के एक प्रोफ़ेसर साहब के खोज-बल से स्विफ्ट महाशय की चन्द्रमावाली काल्पनिक कथा भी सत्यता में परिणत होगई और यह प्रकट हो गया कि मङ्गलग्रह के समीप का चन्द्रमा रात में दो बार उसके चारों ओर घूम आता है और दूसरा, जो उससे कुछ दूरी पर है, दो रात दिन में उसकी एक परिक्रमा करता है।

मङ्गलग्रह के बादलों के विषय में लोग बहुत काल से अभिज्ञ हैं। उन्हें यह भी बहुत दिनों से मालूम है कि वहाँ के मेरु प्रदेशों का बर्फ़ ग्रीष्म-काल में पिघल जाता और हिम-ऋतु में पुनः आ जमता है; जैसा कि पृथ्वी के ध्रुवों पर हुआ करता है। उसका धरातल स्पष्ट दिखाई पड़ने के कारण उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया कि उसके वायु-मण्डल में घनता नहीं है और जब उसके धरातल का वर्ण लाल था तब वहाँ कितने धुँधले और काले धब्बे देख कर यह कह दिया कि ये जल-थल के सूचक चिह्न हैं। इसके अनन्तर ज्योतिषियों ने यह पता लगाया कि मङ्गलग्रह चौदह करोड़ मील की दूरी से सूर्य भगवान् की परिक्रमा करता है। उसका वर्ष हमारे ६८७ दिन के बराबर और दिन-मान हमारे एक दिन और ३७ मिनट के समान होता है। उसका परिमाण पृथ्वी से छोटा है अर्थात् पृथ्वी के $\frac{1}{7}$ भाग के बराबर है, और उसका व्यास ४७६७ मील है। फिर लोगों ने उसका वज़न निकाला और यह सिद्ध किया कि उसकी तोल पृथ्वी की तोल का दशांश है। इससे उन्हें यह भी पता लगा कि उसके धरातल के आकर्षण का खिँचाव गुरुत्वाकर्षण के खिँचाव के $\frac{2}{5}$ के बराबर है; अर्थात् पृथ्वी पर जिस मनुष्य का वज़न ७५ सेर है उसका वज़न मङ्गल-ग्रह पर केवल ३० सेर होगा और वहाँ वह आठ फ़ुट ऊँची दीवार उतनी सुगमता से कूद सकता है जैसा कि वह पृथ्वी पर दो फ़ुट की ऊँची बाड़ी लाँघ सकता है। जब ऐसी बात है तब तो भारतवर्ष का हाथी भी मङ्गल-ग्रह पर उतनी फ़ुर्ती से छलाँग भरेगा जैसा कि व्याधा को देख कर हरिण चौकड़ी भरता है।

मङ्गल-ग्रह-विषयक ये सम्पूर्ण अनुसन्धान प्रोफ़ेसर ग्यूभानी साहब की खोज के सम्मुख तुच्छ प्रतीत होते हैं। उक्त महाशय ने सन् १८७७ ईसवी में मिलन के मानमन्दिर में मङ्गल-ग्रह को खूब ध्यान से देखा और जो कुछ वहाँ उन्हें दिखाई दिया उन सबको उन्होंने नक़शे में अङ्कित किया। मङ्गल-ग्रह में खिँची हुई रेखाओं को देख कर उन्होंने अनुमान किया कि ये चिह्न नहर के हैं। परन्तु उन्होंने यह नहीं बतलाया कि ये नहरें प्राकृतिक हैं या कृत्रिम। इस अनुसन्धान से ज्योतिषियों के मन में कल्पना की नवीन नवीन तरङ्गें उठने लगीं और वे सब इस प्रश्न के हल करने में जुट गये कि क्या मङ्गल-ग्रह-निवासी इञ्जीनियर हैं? बहुत ज्योतिषी इस प्रश्न से उकता कर यह ढिंढोरा पीटने लगे कि उन रेखाओं को नहर कहना, निरर्थक कल्पना-मात्र है। कितनों ने यह कह कर इस प्रश्न से अपना पिण्ड छुड़ाया कि मङ्गल-ग्रह के धरातल पर कोई रेखा नहीं खिँची है और जो दीखता है वह नेत्र-भ्रम या दूरबीन के लेन्स (शीशा) के दोष के कारण है।

ज्योतिषियों की इन ऊटपटांग बातों से अमरीका के प्रोफ़ेसर लोवेल साहब को सन्तोष नहीं हुआ। वे रेखाओं के विषय में वर्षों तक विचार करते रहे। अन्त में उन्होंने बताया कि रेखाएँ वास्तव में नहर ही हैं; जैसा कि ग्यूभानी साहब कह चुके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। उनकी उत्पत्ति स्वाभाविक रीति से नहीं हुई है; परन्तु वहाँ के निवासियों की बुद्धिमत्ता, योग्यता और कार्य-कुशलता से हुई है। उन्होंने यह भी कहा कि जब मेरुओं के ऊपर का बर्फ़ ग्रीष्म-काल में पिघलता है तब पानी नहरों द्वारा प्रवाहित होता है; जिससे तटस्थ खेतों की सिँचाई होती है और फ़सल ख़ूब होती है। यही कारण है कि ये रेखाएँ ग्रीष्म-काल में चौड़ी और काली दिखाई पड़ती हैं और हिम-ऋतु में इसके विपरीत नज़र आती हैं। धरातल पर दीखनेवाले लाल रङ्ग के स्थानों के विषय में उन्होंने यह निश्चय किया कि ये मरुस्थल हैं।

प्रोफ़ेसर लोवेल ने अपने सिद्धान्तों को जैसी बुद्धिमत्ता से समझाया वैसा उनके पहले किसी से समझाते नहीं बना था। इसी से उनका कथन सबको मान्य हो गया। परन्तु ज्योतिषियों ने उनकी बातों को बिना परीक्षा किये मान लेना उचित नहीं समझा। इसलिए उन्हें प्रोफ़ेसर साहब के कथन को सत्य प्रमाणित करने या झूठ ठहराने की आवश्यकता सूझी। उन्होंने वैज्ञानिकों को एक ऐसी बड़ी दूरबीन बनाने की राय दी जिसमें से मङ्गल-ग्रह बहुत ही समीप दिखाई पड़े और उसके धरा-तल का सारा रहस्य खुल जाय। परन्तु वैज्ञानिकों ने ऐसा वृहत् यंत्र बनाना अपनी शक्ति से परे और असम्भव समझा, क्योंकि इस यन्त्र के लिए जैसा शीशा उन्हें तैयार करना होगा उसका व्यास कम से कम पचास फ़ुट रहेगा। आज तक उन्होंने जो बड़े से बड़ा शीशा तैयार किया है वह १०१ इञ्च व्यास का है। यदि उन्होंने वैसा शीशा बना भी लिया तो उसके लिए एक हज़ार फ़ुट की लम्बी नली बनाना उन्हें असाध्य जँचा।

परन्तु एक महाशय असम्भव, असाध्य आदि शब्द सुन कर बेतरह चिढ़ गये। यद्यपि उस समय आपको असम्भव को सम्भव में, और असाध्य को साध्य में परिणत करने की युक्ति नहीं सूझी तथापि आप चिढ़ने से बाज़ नहीं आये और मङ्गलग्रह की सारी ख़ूबियाँ जानने के लिए अपनी ज़िद पर अड़े ही रहे। आपका नाम डेबिडटाड है। आप एमहर्स्ट कालेज में प्रोफ़ेसर हैं। आपने सूर्य की दूरी का माप निकालने में प्रशंसनीय कार्य किया है। इतना ही नहीं, किन्तु नेपच्यून ग्रह के परे एक और ग्रह के अस्तित्व की जो चर्चा चली है उसका भी पता लगाने में आपने ख़ूब परिश्रम किया है।

बृहत् दूरबीन यन्त्र बनाने की युक्ति सोचते सोचते एक दिन आपके मन में यह विचार आया कि जब पचास फ़ुट व्यास का शीशा बनाना अत्यन्त परिश्रम, ख़र्च और जोखिम का काम है तब द्रव पारे ही से शीशा क्यों न बनाया जाय। उसका धरातल अन्यान्य पदार्थों से अधिक चिकना और प्रकाशवान् होता है। यह सच है कि जब माउन्ट विलसन की दूरबीन का शीशा, जो वज़न में ४½ टन है और व्यास में केवल १०१ इंच है, आठ वर्ष में तैयार हुआ तब पचास फ़ुट व्यास का शीशा, जो वज़न में क़रीब २७ टन के रहेगा, निःसन्देह ४८ वर्ष में तैयार होगा। इसके अतिरिक्त बहुत बड़ा होने के कारण यदि बनाते समय वह थोड़ा भी टूट फूट गया तो वर्षों की मिहनत पर पानी फिर जायगा। इसलिए आपने एक बड़े कटोरे में पारा भर कर उसे एक ऐसे कटोरे में रक्खा जिसमें चुम्बक लगा हुआ था। जब आप बाहरी कटोरे को घुमाने लगे तब चुम्बक के कारण भीतरी कटोरा आप से आप घूमने लगा और उसका पारा किनारे पर ऊपर उठ आया जिससे उसका मध्य भाग खोखला सा बन गया और उसका आकार दूरबीन के शीशे के समान दीखने लगा।

इस उपाय से बृहत् दूरबीन यन्त्र के शीशे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्या तो आपने हल कर ली। अब रहा उसके लिए एक हज़ार फुट की लम्बी नली बनाना। कल्पना ने यहाँ भी आपको सहायता दी। पहले तो आपका विचार हुआ कि उपयुक्त नली किसी धातु की बनवा लेंगे, परन्तु मन में यह ख़याल आते ही कि वैसी बड़ी नली जब भूमि पर खड़ी की जायगी तब वायु के झोंके से वह इधर उधर हिलेगी और हिलने के कारण निरीक्षक को उसमें से कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। आपने अपना विचार बदल डाला और किसी खदान के मार्ग को इच्छित नली का स्वरूप देने का इरादा किया। परन्तु मङ्गल-ग्रह को देखने के लिए किसी भी खदान के रास्ते से नली का काम नहीं निकल सकता; क्योंकि वह इच्छित दिशा की ओर घुमाया फिराया नहीं जा सकेगा। इस हेतु आप एक ऐसे खदान का मार्ग ढूँढ़ने लगे जिसके ठीक ऊपर से होकर सन् १९२४ ईसवी में मङ्गल-ग्रह निकलनेवाला हो। ध्यान रहे कि १९२४ के साल में मङ्गल-ग्रह पृथ्वी के अत्यन्त समीप आने को है। ऐसा अवसर ७०० वर्ष के पश्चात् आया करता है। बहुत खोज ढूँढ़ करके जब आप थक गये तब आप सफल-मनोरथ हुए। चिली प्रान्त में आपको अपनी इच्छा के अनुसार खदान का रास्ता मिल गया। इस मार्ग की गहराई बारह सौ फुट और चौड़ाई पचास फुट से कुछ ही अधिक है। आप इस मार्ग को नली के समान गोल बनवा कर उसमें प्रकाशवान् शुभ्र धातु के पतरे मढ़वावेंगे। आपने हिसाब लगा कर बतलाया है कि इसी मार्ग के ठीक ऊपर से मङ्गल-ग्रह कई बार निकलेगा।

अब पाठकगण समझ गये होंगे कि प्रोफ़ेसर टाड साहब किस युक्ति से खदान के मार्ग को दूरबीन की नली का स्थान देनेवाले हैं। वे शीशे के बदले में पारा भरा हुआ पचास फुट व्यास का जो बृहत् कटोरा काम में लाना चाहते हैं उसे वे खानिमार्ग की तली में रक्खेंगे जहाँ पर वह यन्त्र द्वारा गोल घुमाया जायगा। धन्य है आपका साहस और बुद्धि!

इस युक्ति से प्रोफ़ेसर साहब ने भीमकाय दूरबीन बनाने और मङ्गल-ग्रह का रहस्य जानने का निश्चय तो कर लिया; परन्तु उनका यह विचार उनके साथियों को ठीक नहीं जँचा। उन्होंने कहा कि जब ऐसे बृहत् दूरबीन में से मङ्गल-ग्रह देखा जायगा तब वह देखनेवाले को डेढ़ मील के अन्तर पर दिखाई देगा। ऐसी दशा में वह धुँधला भी इतना होगा कि उसकी देखने योग्य वस्तुएँ—नहर, वनस्पति, बर्फ़, पर्वत, घाटी आदि—स्पष्ट दृष्टि-गोचर नहीं हो सकेंगी। इसके अतिरिक्त उसकी चाल भी प्रति मिनट दस मील के हिसाब से रहेगी। तब वहाँ का दृश्य देखना असम्भव है।

इस कठिनाई को हल करने के लिए टाड साहब ने छाया-चित्रण का सहारा लिया। परन्तु जब उन्होंने देखा कि साधारण छाया-चित्रण यन्त्र से शीघ्रगामी मङ्गल-ग्रह की तसवीर नहीं ली जा सकेगी तब उन्होंने एक असाधारण छाया-चित्रण यन्त्र और उसके लिए ख़ास प्लेट का आविष्कार किया। उनका यह यन्त्र दस मील प्रति मिनट की चाल से चलनेवाले ग्रह की तसवीर वैसा ही स्पष्ट उतार लेगा, जैसा कि साधारण छुपा केमरा दौड़ते हुए मनुष्य की तसवीर ले लेता है। जिस समय मङ्गल-ग्रह खदान के मार्ग पर से होकर निकलेगा उस समय उसकी परछाईं खानिमार्ग की तली में रक्खे हुए पारे के शीशे पर पड़ेगी। फिर वहाँ से उसका प्रतिक्षेप मार्ग के भीतर ऊँचाई पर लगे हुए काँच के घनक्षेत्र (प्रिज़्म) पर पड़ेगा। अन्त में प्रतिक्षेप की प्रतिच्छाया प्रिज़्म के सम्मुख रक्खे गये छाया-चित्रण यन्त्र में पड़ेगी जहाँ उसकी तसवीर ज्यों की त्यों उतर आयगी। इसे कहते हैं कठिनाइयों का पहाड़ तोड़ना। अब तक जिस बात को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-दृष्टि नहीं देख सकी थी उसे टाड साहब ने कृत्रिम, परन्तु जीवित-तुल्य, आँख से दिखा देने का प्रबन्ध कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि ज्ञान की खोज में साधारण बात भी क्लिष्ट हो जाती है और प्रकृति पग पग में बाधा पहुँचाने लगती है जिससे अन्त में मनुष्य असफल हो जाता है। इससे सम्भव है कि टाड साहब को अपना महत्त्व-पूर्ण कार्य सफल करने में फिर भी किसी अड़चन से सामना करना पड़े। परन्तु उनका दावा है कि वे अब असफल होंगे ही नहीं। उनके इस साहस पर विचार करने से हमें भी ऐसा प्रतीत होता है कि अब आकाशमण्डल के ग्रहों का रहस्य कहीं छिप नहीं सकता। यहाँ यह बतला देना उचित होगा कि टाड साहब को आकाश के जीवित ग्रह में सैर करने और ज्योतिष-संसार में हलचल मचाने के कार्य में पेरिस-निवासी मेक एफ़ी साहब सहायता दे रहे हैं।

यदि मङ्गलग्रह में जैसा कि लोगों का विश्वास है नहर और वनस्पति, पानी और बर्फ़, बादल और बर्फ़ के तूफ़ान होंगे, तो टाड साहब की कृपा से हम उन सबको वैसा ही देख सकेंगे जैसा कि पहाड़ पर खड़ा हुआ कोई मनुष्य अपने आसपास के दृश्यों का अवलोकन कर सकता है। टाड साहब का यह कृत्य दीखता तो है आश्चर्यजनक, परन्तु वह निःसार कल्पना नहीं है। वह प्रयोगात्मक विज्ञान की भित्ति पर स्थित है। उसकी उत्पत्ति, एक बुद्धिमान् ज्योतिषी के मस्तिष्क से हुई है।

अब तक आकाशमण्डल के ग्रहों की जितनी तसवीरें ली गई हैं वह सब मानमन्दिर के ऊँचे स्तूप पर से ली गई हैं, जिससे पृथ्वी के वायु-मण्डल की घनता के कारण उसकी स्पष्टता में अन्तर न पड़ने पाये। परन्तु यह दूरबीन पृथ्वी के गर्भ में १२०० फ़ुट की गहराई में स्थित रहेगी। इससे मङ्गल-ग्रह की छाया पृथ्वी के सम्पूर्ण वायु-मण्डल से होकर आएगी। ऐसी दशा में तसवीर की स्पष्टता में अन्तर पड़ना सम्भव है। इसके लिए टाड साहब ने कौन सी युक्ति सोच रक्खी है, इसका पता अभी नहीं लगा है। हाँ, मङ्गल-ग्रह के वायुमण्डल के कारण तसवीर में फ़र्क़ नहीं पड़ सकता, क्योंकि ज्योतिषियों के मतानुसार वहाँ के वायुमण्डल की घनता हिमालय की चोटी पर के वायुमण्डल की घनता के आधे के बराबर है।

इस यन्त्र की सफलता पर वहाँ की नहरों, झीलों, मरुस्थलों आदि का रहस्य खुलना अवलम्बित तो है ही, इसके अतिरिक्त वहाँ के उस प्रकाश का भी भेद प्रकट हो जायगा जो एक समय ग्रह के छोर पर दिखाई दिया था और जिसे देख कर ज्योतिषियों ने कल्पना की थी कि मङ्गल-ग्रह-निवासी हमारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए आग जला रहे हैं। वास्तव में बात वैसी नहीं है; क्योंकि पृथ्वी के लोगों का ध्यान खींचने के लिए, मङ्गल-ग्रह-वासियों को सैकड़ों मील लम्बा चौड़ा जङ्गल जलाना होगा। इस बात को असम्भव सिद्ध करके वर्तमान काल के ज्योतिषियों ने उस प्रकाश का कारण वहाँ के पर्वत-शिखरों पर के बर्फ़ या बादल पर पड़नेवाली सूर्य-किरणों का प्रतिक्षेप कहा है। प्रोफ़ेसर लोयेल ने यह भी कह दिया है कि ये बादल पानी के भाफ से नहीं बने हैं परन्तु इनकी उत्पत्ति धूलकण से हुई है। जो हो, अब तो एक वर्ष में मङ्गल-ग्रह-विषयक काल्पनिक बातों की इतिश्री होनेवाली है, फिर तो अपरीक्षित बातें लिखने की आवश्यकता ही नहीं रह जायगी।

वनमालीप्रसाद शुक्ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

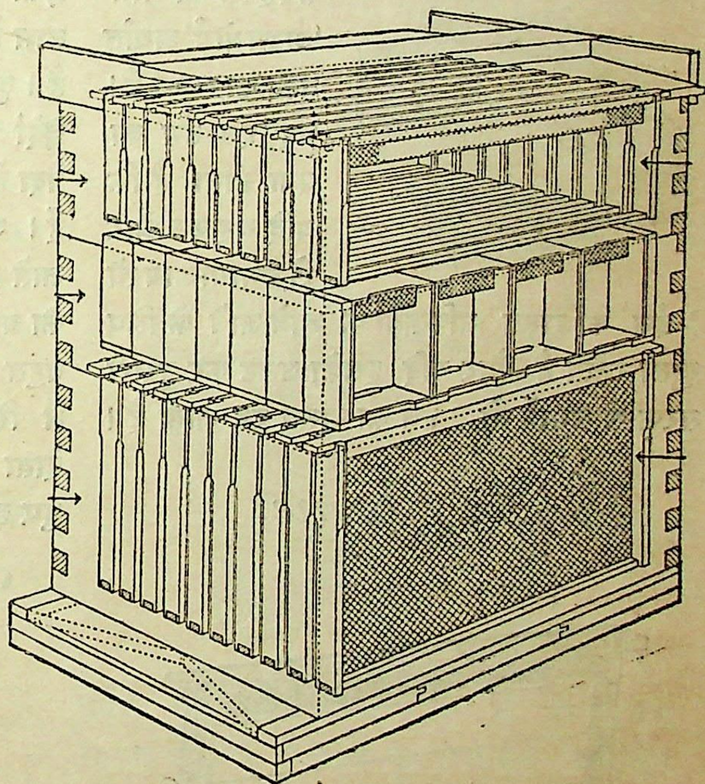
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरीका में शहद की मक्खियाँ।



शहद की मक्खियाँ प्रत्येक मनुष्य ने देखी होंगी, परन्तु ऐसे मनुष्य बहुत कम हैं जो उनके स्वभाव से परिचित हों और यह तो किसी के ध्यान में भी न आया होगा कि वे भी दूसरे जानवरों की भाँति पाली जाती हैं। अमरीकावाले शहद की मक्खियों को पालते हैं। जैसे यहाँ दूध और मक्खन के डेरी फ़ार्म खुलने लगे हैं वैसे ही अमरीका में उनके बड़े बड़े कारख़ाने हैं। वहाँ से प्रति वर्ष हज़ारों मन शहद दूसरे देशों को भेजा जाता है। इस लेख में यह बतलाया जायगा कि शहद की मक्खियों का स्वभाव कैसा होता है और वे किस प्रकार अमरीका में पाली जाती हैं और कितनी कम पूँजी और मेहनत से यह काम उस देश में होता है।

यदि हम किसी छत्ते का निरीक्षण करें तो उसके भीतर हमें तीन प्रकार की शहद की मक्खियाँ मिलेंगी—(१) मादा मक्खी। इसको रानी कहते हैं। छत्ते भर में यह एक ही होती है। यही अंडे देती है। (२) नर मक्खी। अँगरेज़ी में इसको 'ड्रोन' कहते हैं। (३) काम करनेवाली मक्खियाँ। इन्हें अँगरेज़ी में 'वर्करबी' कहते हैं। छत्ते में इन्हीं की संख्या अधिक होती है। ये छत्ता बनातीं, अंडों की देख भाल करतीं और शहद इकट्ठा करती हैं। नर मक्खी कुछ काम नहीं करती। वह केवल शहद खाकर इधर उधर घूमा फिरा करती है। वह रानी मक्खी के काम एक बार आता है। जब रानी गर्भवती हो जाती है तब वह मर जाता है। जब तक रानी जीवित रहती है तब तक वह हर फ़सल पर अंडे देती रहती है। जितनी मक्खियाँ एक छत्ते में होती हैं वे सब एक ही मक्खी की सन्तान होती हैं। इसलिए स्वभावतः वे सब रानी के साथ रहती हैं। यदि रानी उड़ जाय तो वे भी उसके साथ उड़ जाती हैं या जहाँ उनका पालनेवाला रानी को ले जाकर बिठला दे तो वे सब वहाँ जा जमा होती हैं और अपने काम में लग जाती हैं रानी की उम्र लगभग ३ या ४ साल की होती है, पर काम करनेवाली मक्खियों की उम्र केवल ३ या ४ महीने की होती है। ये मक्खियाँ इटली और अमरीका में



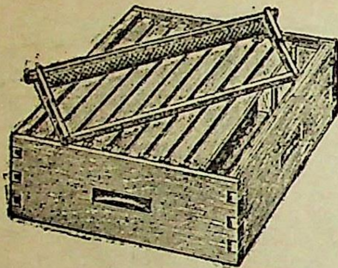
बहुत बिकती हैं। रानी मक्खी गर्भवती बेची जाती है और काम करनेवाली मक्खियाँ तोल कर बिकती हैं।

शहद की मक्खियों के पालने के लिए नये प्रकार का जो सन्दूक आज-कल अमरीका में प्रचलित है उसे

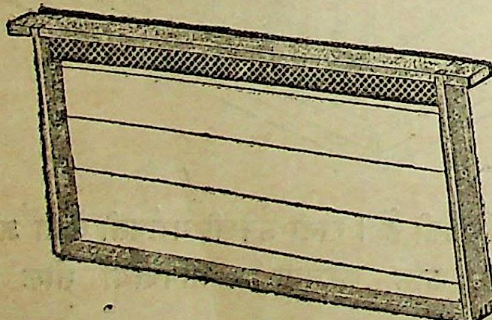
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँगरेज़ी में टेन फ़्रेम हाइव (Ten frame hive) कहते हैं। जिस प्रकार का छत्ता चित्र नम्बर १ में दिखाया गया है उसका नाम 'डवटेल्ड टेन फ़्रेम हाइव' (Dovetailed 10 frame hive) है। प्रचलित बक्स का यही आम नमूना है। इसके एक ओर की लकड़ी हटा कर यह चित्र लिया गया है जिसमें उसके भीतर का भाग देख पड़े। इसके प्रत्येक भाग की लम्बाई-चौड़ाई नियत है। इसलिए किसी भी कम्पनी से इसका कोई भी भाग ख़रीदा जा सकता है। सन्दूक़ के फ़िट करने में किसी प्रकार की असुविधा न होगी। इसके नीचे के हिस्से का नाम 'बाटम बोर्ड' अर्थात् तली का तख़्ता है। यह इस ढंग का बना होता है कि यदि यह एक ओर से लगाया जाय तो ३/८ इंच का रास्ता मक्खियों के आने-जाने के लिए खुला रहता है और यदि इसको उलट कर दूसरी तरफ़ से लगावें तो ७/८ इंच का रास्ता रह जाता है।



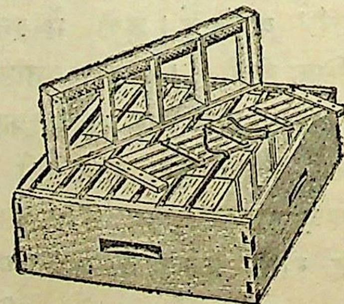
Brood Frame



इस तली के तख़्ते के ऊपर जो हिस्सा दिखाई देता है उसका नाम ब्रूड चेम्बर (Brood chamber) है। इसमें लकड़ी के चौखटे लगे हुए हैं। इन चौखटों में मक्खियाँ अपना छत्ता बनाती हैं। एक सन्दूक़ में इस प्रकार के १० चौखटे होते हैं। ये दसों चौखटे अलग अलग रक्खे रहते हैं जिसमें आवश्यकता पड़ने पर पालनेवाला उनमें से किसी एक को आसानी से निकाल कर देख सके और यदि वह ख़राब हो गया है तो उसकी जगह दूसरा चौखटा रख सके।

नम्बर २ चित्र लकड़ी के उसी चौखटे का है। ऊपर के भाग में जो जाली सी देख पड़ती है वह मोम की चादर है। इस पर मक्खी के छत्ते का ठप्पा खुदा हुआ है। मक्खियाँ अपना छत्ता इस पर बनाना शुरू करती हैं। इससे यह लाभ होता है कि छत्ता सीधा और साफ़ बनता है। दूसरा यह लाभ है कि इस ठप्पे पर बनाये हुए छेदों में काम करनेवाली मक्खियाँ अधिकतया पैदा होती हैं और नर मक्खी बहुत कम पैदा होती हैं। जाली की मज़बूती के लिए तार भी लगाये जाते हैं। इस मोम की जाली के कारण मक्खियों को बहुत कम परिश्रम करना पड़ता है और छत्ता बहुत जल्दी बन जाता है। सन्दूक़ के इस हिस्से में सिर्फ़ अण्डे रहते हैं। इसमें शहद बहुत कम होता है। यह चौखटे और मक्खियों के बनाये हुए छत्ते वर्षों काम देते हैं। चित्र नं० १ में ब्रुड-

COMB HONEY SUPER



चैम्बर के ऊपर जो दो हिस्से देख पड़ते हैं उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम सपर है। ये दो भाँति के होते हैं। नीचे के सपर को कोमहनी सपर (Comb Honey Supper) कहते हैं। इसका यह नाम इसलिए रक्खा गया है कि इसका शहद छत्तों में ही बेचा जाता है। दूसरी भाँति के 'सपर' को अँगरेज़ी में शैलो एक्सट्रेक्टिङ्ग सपर (Shallow Extracting Supper) कहते हैं। इसमें का शहद अलग निकाल कर बेचा जाता है। एक्सट्रेक्टिंग सपर और ब्रुड चैम्बर में केवल इतना भेद है कि पहले की ऊँचाई दूसरे से आधी के लगभग होती है। कोम सपर की अपेक्षा कारखाने-वाले एक्सट्रेक्टिंग सपर को ही काम में लाते हैं क्योंकि उसके छत्ते के छेद खोल कर शहद निकाल लिया जाता है और छत्ता जैसा का तैसा बना रहता है। मक्खियों को भी शहद रखने के लिए नया छत्ता बनाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। वे उन्हीं ख़ाली छेदों में फिर शहद भरना शुरू कर देती हैं। सबसे ऊपर ढकना होता है। चित्र नम्बर ३ और ४ एक्सट्रेक्टिंग सपर और कोमहनी सपर के हैं।

दस्ताने और पर्दे।

प्रत्येक मक्खी पालनेवाले और मुख्यतः नौसिखियों के लिए कुछ चीज़ों की बहुत आवश्यकता रहती है।

BEE GLOVES



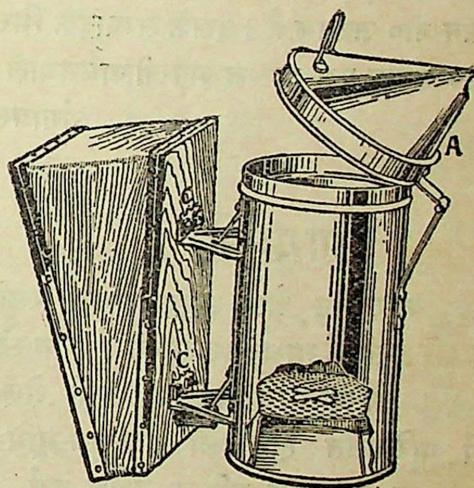
सन्दूक़ खोलने के पहले दस्ताने पहने जाते हैं और मुँह पर एक प्रकार की जाली डाली जाती

BEE VEIL



है। इनके सिवा एक में धुआँ करने के लिए एक स्मोकर की आवश्यकता पड़ती है। इसमें पत्ते

SMOKER



वग़ैरः रख कर धौंकनी देते हैं और उसे सन्दूक़ के नीचे के तख़्ते के पास लगा देते हैं। धौंकनी बराबर चलाते रहने से जब ख़ूब धुआँ निकलने लगता है तब सन्दूक़ का ढकना उठा दिया जाता है और फिर सपर को उठा कर ढकने को ब्रूडचैम्बर पर रख देते हैं और सपर को दूसरे तख़्ते पर रख कर ऊपर से दूसरा ढकना लगा देते हैं। इस ढकने के बीच एक छेद होता है जिसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक क़िस्म का ऐसा खटका लगा रहता है जिसमें से होकर जो मक्खी बाहर निकल जाती है वह फिर वापस नहीं आ सकती। इस तरह दो तीन घंटे में सपर (Supper) मक्खियों से बिलकुल ख़ाली हो जाता है और मक्खियाँ ब्रुडचैम्बर में चली जाती हैं। अमरीका में एक छत्ते में १५ सेर के लगभग शहद निकलता है। वहाँ मक्खी पालने के सामान की ख़ूब बिक्री होती है। जी० बी० लुइस कम्पनी, वाटरटाउन, विसकनसन (G. B. Lewis Company Watertown, Wisconsin लाखों की संख्या में ये सन्दूक़ बनाती हैं और सैकड़ों मन मोम की चादर बना कर उस पर ठप्पा छाप कर छत्ते में लगाने के लिए बेचती है। वहाँ इस विषय के कई सामयिक पत्र भी निकलते हैं। उनमें से सबसे अधिक पुराना और प्रसिद्ध अमरीकन बी० जरनल है। इसके सम्पादक मिस्टर सी० पी० डडन्ट एक प्रसिद्ध मक्खी पालनेवाले हैं।

गंगाप्रसाद

रणथम्भोर।

जयपुर-स्टेट और मथुरा-नागदा रेलवे के सवाई माधवपुर नामक जंक्शन स्टेशन के अति समीप ऊँची ऊँची श्रेणी के रूप में परिवर्तित होनेवाली उच्च-सम-भूमि के वक्षस्थल पर भारत का प्रसिद्ध दुर्भेद्य दुर्ग 'रणथम्भोर' स्थित है। कहते हैं कि इस दुर्जय दुर्ग का बनानेवाला कोई मानवरूपधारी भारत का महा बुद्धिमान् देवता था। इस क़िले के बनाने में उस शिल्पज्ञ-शिरोमणि ने मौजूदा ज़माने की हालत के सिवा सैकड़ों वर्ष पीछे और सैकड़ों वर्ष आगे की शान्ति, उपद्रव और सम्पत्ति-विपत्ति की अनेक घटनाओं का तारतम्य अच्छी तरह सोच-समझ कर इस अपूर्व क़िले का निर्माण किया था। पहाड़ के जिस भाग पर इस क़िले की पीठ है वह सामरिक दृष्टि से उपयुक्त होने के सिवा दृढ़ और विलक्षण भी है। हाथी-घोड़ा, ऊँट, रथ और रेल आदि की सवारी में अथवा पैदल चलते हुए दूर से यह क़िला शिव पर रक्खे हुए बिल्वपत्रों की भाँति पहाड़ के मस्तक पर रक्खा हुआ दीखता है। किन्तु ज्योंही हम इसके अन्दर जाते हैं त्योंही पहाड़ के प्राकार-स्वरूप शिखर ऊँचे हो जाते हैं और यह उनके अन्दर रक्खा हुआ सा नीचा रह जाता है। यही कारण है कि बाहर से शत्रु की गगनभेदी गर्जना करनेवाली तोपों की भीषण गोलावृष्टि से भी यह अचलेश्वर के अचल बिल्वपत्रों की भाँति सदा निश्चल और निरापद रहा है।

पहाड़ के ऊपर और क़िले के भीतर चारों ओर कई एक ऐसे पेचदार नाले बने हुए हैं जिनमें वर्षा का जल एकत्र होता है। इनमें से कुछ तो पहाड़ के भीतर किसी अलक्षित स्थान में जाकर समाप्त हो जाते हैं और कुछ का जल किसी अज्ञात स्थान में जाकर इकट्ठा होता है और क़िलेवालों के काम आता है। अनावृष्टि के समय क़िलेवाले इन्हीं के छोटे छोटे स्रोतों से पानी प्राप्त करते हैं। जब वे कभी किसी बलवान् शत्रु से कई वर्षों तक घिरे रहने पर भी उसे पराजित न कर सकते हों या उन्हें युद्धोपकरण की कमी होने लग गई हो तब वे इनके पेंदे की आड़ हटा देते हैं जिससे अतिवृष्टि की बाढ़ से बह जानेवाले गाँवों की भाँति शत्रु की सेना इसके जल से सहज ही में बहा दी जाती है। किन्तु ये नाले और इनकी आड़ें सर्वथा अज्ञात रहती हैं। इसके सिवा आड़ का हटा देना दुस्साध्य ही नहीं, असाध्य भी है। कहते हैं कि अलाउद्दीन को पराजित करने के लिए हमीर ने ऐसे ही नाले से सहायता ली थी। अस्तु ऐसे नालों के अतिरिक्त इस क़िले में बाँध, तालाब, टाँके, नाले और झरने भी बहुत हैं। इनसे हज़ारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशु-पक्षियों और मनुष्यों को यथेच्छ पानी प्राप्त होता रहने के सिवा खेती बारी में भी काम आता है। यों तो इस पहाड़ में चौरासी घाटियाँ अर्थात् पहाड़ी मार्ग हैं, परन्तु क़िले में प्रवेश करने के लिए केवल एक ही मार्ग है जिसके द्वारा उसकी चोटी पर पहुँचते हैं। क़िले के चारों ओर पहाड़ों के ऊँचे ऊँचे शिखर खड़े हुए हैं और ऊपर जाने पर पहाड़ी दीवारें ऐसी सीधी हो गई हैं कि सीढ़ियों के बिना उन पर चढ़ना असम्भव है। रास्ते में लगातार चार दरवाज़े हैं और पहाड़ की ठीक चोटी पर क़रीब एक मील लम्बा और उतना ही चौड़ा मैदान है। क़िले के बहुत चौड़े आसार की दीवारों से बना हुआ दुहरा परकोटा है। पहाड़ की ऊँचाई एवं मज़बूती से परकोटा बहुत सुदृढ़ हो गया है। पहाड़ के ऊपर चढ़ कर यदि चारों ओर दृष्टि दौड़ाई जाय तो जहाँ तक दृष्टि पहुँचेगी वहाँ तक बुर्ज और मोर्चे ही मोर्चे दृष्टिगत होंगे। पहले इन मोर्चों में कई जगह ऐसे यन्त्र लगे हुए थे जिनसे सैकड़ों मन वज़न के पत्थर के ढोंके सहज ही में शत्रु की सेना पर बहुत दूर तक फेंके जा सकते थे। परकोटे के भीतर दुर्गाध्यक्षों के महल और दुर्ग-रक्षक सेना के सिपाहियों के बहुतेरे मकान बने हुए हैं। वहीं एक मुसल्मान पीर की मसजिद और मकबरा भी बना हुआ है। यह क़िला भीषण तोपों की मार सहने में जिस भाँति पहले समर्थ था उसी भाँति इस समय अपनी जर्जरावस्था में भी समर्थ है। पर्वत-मालाओं से परिवेष्टित रहने के कारण यह दुर्ग चारों ओर से पूर्णतया सुरक्षित है। इसकी उदरदरी के भीतर अन्न-भाण्डार, शस्त्रागार, बारूदघर, गोलों के ढेर, सनसूत्रादि के समूह और निधि-पूर्ण ख़ज़ानों के आवश्यक स्थान भी यथोचित संख्या में बने हुए हैं। एक स्थान में पत्थर का एक बड़ा भारी मस्तक और लोहे की एक भारी गदा भी है। ये दोनों वस्तुएँ हमीर जैसे वीर की विपुल वीरता को अब भी बतलाती हैं।

यद्यपि गढ़ तो चित्तौर गढ़ और सब गढ़ैया कहते हैं, तथापि चित्तौर के साथ उसका चितचोर रणथम्भोर उसका भाई कहा जाय तो ठीक ही है। हाँ, इतना अवश्य है कि चित्तौर अपने आरम्भ काल से लेकर आज पर्यन्त कोई दो-चार ही अन्य नरेशों के आश्रय का स्थान हुआ है, किन्तु रणथम्भोर इधर उधर के कई एक महिमान्वित महीपतियों के अधिकार में कई बार रहा है और कई एक को कई बार आश्रयविहीन बना कर आप अकेला भी रह चुका है। ऐसी घटनायें कब कब हुई हैं, यह यहाँ संक्षेप में प्रकाशित कर देना आवश्यक है।

किसने कब रणथम्भोर का निर्माण कर अपने प्रताप की धवल-ध्वजा फहराई थी इसका पता कुछ भी नहीं है। परन्तु पृथ्वीराज के राजत्व-काल में यह क़िला मौजूद था और उसके पोते गोविन्दराज ने इसको अपनी राजधानी बनाया था। गोविन्दराज का पुत्र बलहन हुआ और बलहन के दो पुत्र हुए, प्रह्लाद और बलभद्र। प्रह्लाद के पुत्र का नाम वीरनारायण था। हमीर वीरनारायण का पुत्र था। उसने रणथम्भोर को राजधानी बनाया। इसकी प्रसिद्धि सबसे पहले वीर-केशरी राव हमीर देव की राजधानी होने से हुई है। राव हमीर के राजत्वकाल में इस दुर्ग की अपरिमित सम्पत्ति और दुर्जेयता का प्रमाण लोगों को पूर्णतया मिल गया था।

सबसे पहले संवत् १२६७ में दिल्ली के गुलाम बादशाह शमसुद्दीन अल्तमश ने रणथम्भोर पर अधिकार किया। उसके पीछे खिलजी बादशाह जलालुद्दीन ने संवत् १३४८ में चढ़ाई करके उसे लेना चाहा, किन्तु ले न सका। फिर उसके भतीजे अलाउद्दीन ने उस पर चढ़ाई कर अपने अधिकार में किया। बात यह हुई थी कि उसके एक राज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रोही सरदार मीरमुहम्मद मुग़ल को सं० १३५४ में रणथम्भोर के तत्कालीन अधिपति राव हमीर ने अपनी शरण में रख लिया था। इस पर अलाउद्दीन ने संवत् १३५६ में अपने प्रधान मन्त्री अशरफ़ख़ाँ को रणथम्भोर विध्वंस करने के लिए भेजा। परन्तु वह पराजित होकर लौट गया। तब संवत् १३५७ में अपरिमित युद्ध-सामग्री और सेना-दल लेकर स्वयं अलाउद्दीन रणथम्भोर पर चढ़ आया और उसे घेर कर महीनों तक उस पर गोलावृष्टि करता रहा। अन्त में हमीर के मरने पर उसका अधिकार क़िले पर हुआ। यह वृत्तान्त ऐतिहासिक ग्रन्थों में कई प्रकार से पाया जाता है। जो कुछ हो, रणथम्भोर के इतिहास में यह युद्ध अद्वितीय गिना जाता है। इस युद्ध पर "हमीरहठ" आदि कई एक काव्य-ग्रन्थ निर्मित हुए। "तिरिया तेल हमीरहठ चढ़े न दूजी बार" अथवा—"मुञ्चति मुञ्चति कोपं भजति च भजति प्रकम्पमरिवर्गम्। हम्मीर-वीर खड्गे त्यजति च त्यजति क्षमामाशु॥" जैसी सूक्तियाँ रणथम्भोर के अधिपति राव हमीर के सम्बन्ध में ही कही गई हैं।

रणथम्भोर में अलाउद्दीन का आधिपत्य हो जाने पर पीछे संवत् १३६६ के बाद वह महम्मद ख़िलजी के हाथ में रहा। किन्तु जब ख़िलजी चित्तौर के राना की क़ैद में पड़ गया तब उसने रणथम्भोर और कई लाख रुपये देकर अपनी स्वाधीनता मोल ली। तब यह चित्तौर के राना हमीर को मिला। एक जगह यह भी लिखा है कि कुछ ही दिन पीछे यह दुर्ग फिर पठानों के हाथ में चला गया था। किन्तु संवत् १४५७ के अन्त में जब तैमूर ने भारत पर चढ़ाई की तब यह क़िला पठानों के हाथ से निकल कर फिर चित्तौरवालों के अधिकार में चला गया। राना संग्रामसिंह की मृत्यु के बाद जब उनकी अनेक रानियों में से एक रानी ने अपने पुत्र को चित्तौर का सिंहासन प्राप्त करा देने की कामना से रणथम्भोर का क़िला बाबर को दे दिया तब यह फिर मुसलमानों के हाथ में चला गया। जब हुमायूं ने सूर घराने के पठानों को युद्ध में पराजित कर अपना अधिकार दिल्ली पर फिर जमाया तब संवत् १६०० के आरम्भ में बूँदी राजवंश की कनिष्ठ शाखा के सावन्तसिंह सामन्त के प्रयत्न और बेदला के तत्कालीन चौहान सामन्त की सहायता से पठान दुर्गाध्यक्षों से रणथम्भोर फिर छीन लिया गया और इस बार वह बूँदी के राव सुरजनसिंह को मिला। इसके पीछे संवत् १६२०--१६२४ के लगभग इस क़िले को लेने के लिए सम्राट् अकबर ने उसका घेरा डाला, किन्तु बूँदी के वीर राव सुरजन के असीम बल-विक्रम के सामने सम्राट् की दाल न गल सकी। वह बहुत दिनों तक इसकी अभेद्य दीवारों को तोड़ता रहा, पर कृतकार्य न हो सका। तब उसने आमेर के महाराजा मानसिंह को इस विषय में प्रयत्न करने के लिए कहा। उन्होंने राव सुरजन को चित्तौर की अनुगतयता छुड़ाने और मान-वृद्धि के अनेक मार्ग मिलने आदि के सुभीते दिखा कर उनको इस विषय में अनुकूल कर लिया। राव राजा सुरजन ने अपनी कुल-मर्यादा की मान-वृद्धि एवं स्वाधीनता की रक्षा के लिए दस शर्तें लिखवा कर रणथम्भोर का क़िला अकबर को अर्पण कर दिया। इसके पीछे संवत् १८१३-१४ के लगभग जब अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण और अत्याचारों से मुग़ल-वंश का पराभव हो रहा था उस समय मरहटे भी उसको हड़पने के लिए कई बार समुद्यत हुए थे। जयपुर से अभीष्ट अर्थ-प्राप्ति कर जब जनकूजी सेंधिया वापस लौटने लगे तब उसने भी इसको लेना चाहा था। किन्तु क़िलेवालों की दृढ़ता से वह इस सच्चे रणस्तम्भ को हिला भी न सका। लगातार तीन वर्ष तक इस प्रकार हमले होते रहने और दुर्गाध्यक्षों के दिल्ली को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई बार सहायता के लिए लिखने पर भी जब कुछ उत्तर न मिला तब उन्होंने जयपुर के तत्कालीन महाराज माधवसिंह को अर्पित कर दिया। पर उन्होंने उसे मरहटों के अधिकार में न जाने दिया। तब से वह अब तक जयपुर के ही अधिकार में है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि रणथम्भोर की कैसी स्थिति रही है। इसी के साथ इसकी साम्पत्तिक स्थिति और दुर्ग-रक्षकों के शौर्य के भी दो एक उदाहरण यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। लेख के आरम्भ में लिखा गया है कि इसमें दुर्गाध्यक्षों के महल और दुर्ग-रक्षकों के मकान बने हुए हैं। दुर्गाध्यक्ष दुर्गस्वामी के प्रतिनिधि होते हैं। दुर्ग-रक्षक-सेना उन्हीं के आधिपत्य में रहती है। ये लोग शरीर में प्राण रहते तक शत्रु को दुर्ग में सहज ही प्रवेश नहीं करने देते हैं। प्राचीन समय में दुर्गाध्यक्ष अपने दल-बल-सहित प्रायः दुर्ग ही में रहते थे, किन्तु अब वे राजा की राजधानी में रहते हैं। इन लोगों की कर्तव्य-परायणता के अनेक उदाहरण राजपूताने के इतिहास में मिलते हैं। चित्तौरगढ़ के रक्षक वीरवर जयमल और पुत्ता की वीरता का हाल सबको मालूम है। उन्होंने प्राण रहते हुए तक मुग़लों को क़िले में घुसने नहीं दिया था। जब मरहटों ने रणथम्भोर पर चढ़ाई की और तीन वर्ष तक उसे घेरे पड़े रहे तब दुर्गाध्यक्षों ने आवश्यक सामग्री चुक जाने और दिल्ली से कुछ मदद न मिलने पर भी बहुत समय तक लड़ाई जारी रक्खी और किसी भाँति क़िला मरहटों को नहीं दिया। जब दुर्गाध्यक्ष क़िले को जयपुर राज्य को अर्पित करने को तैयार हुए तब जयपुर-नरेश ने चौमूँ के ठाकुर जोधसिंह और बगरू के ठाकुर गुलाबसिंह आदि को अपना दुर्गाध्यक्ष बना कर मरहटों का मुँह मोड़ने को भेजा। इधर इनकी सेना रातों रात चल कर प्रभात होने से पहले ही क़िले में जा घुसी उधर गुलाबसिंह तथा जोधसिंह ने थोड़ी सेना लेकर मरहटों को मार्ग ही में पराजित कर दिया। "नाथावतवंशभास्कर" आदि से मालूम होता है कि चौमूँ के ठाकुर जोधसिंह नाथावत के पुत्र, सामोद के षोडशवर्षीय सुकुमार रावल रामसिंह ने इस युद्ध में अपनी वीरता का चूड़ान्त परिचय दिया था। शरीर से उनका शिर अलग उड़ जाने पर भी वे बहुत देर तक मरहटों का संहार करते रहे। यह घटना संवत् १८१६ मार्गशीर्ष शुक्ल १४ रविवार को हुई। पिता पुत्र की ऐसी अनुपम सेवाओं के पारितोषिक में जयपुर के भूतपूर्व स्वर्गीय महाराज माधवसिंह ने चौमूँवालों को वंशपरम्परा के लिए रणथम्भोर की क़िलेदारी प्रदान की थी। सुना है कि ठाकुर कृष्णसिंह के समय में वर्तमान महाराज माधवसिंह ने उनसे रणथम्भोर की क़िलेदारी ले ली है।

आरम्भ में इस क़िले की साम्पत्तिक स्थिति कैसी थी। इसका कोई प्रमाण नहीं प्राप्त है, परन्तु अनुमान से विदित होता है कि जलालुद्दीन और अलाउद्दीन जैसे बलवान् पठान बादशाहों से लगातार बारह वर्ष तक लड़ते रहने पर भी क़िले में किसी वस्तु का अभाव नहीं हुआ था। दुर्ग के घिरे रहने पर हमीर को कभी बाह्य वस्तु की आवश्यकता नहीं हुई। कहा जाता है कि बाबर के समय में इसकी आमदनी बीस लाख नौ टके अर्थात् दो लाख रुपये के लगभग वार्षिक थी। जब अकबर ने इसमें पदार्पण किया तब इसकी वार्षिक आमदनी के सिवा इसकी आभ्यन्तरिक संपत्ति देख कर वह दंग रह गया। उस समय रणथम्भोर में अलसी और गेहूँ आदि अन्नों के यथास्थान सैकड़ों ढेर लगे थे। सैकड़ों घड़ों में तेल और शहद भरे हुए थे। अपरिमित बारूद के भण्डार यथास्थान सुरक्षित थे। छोटे-बड़े सब प्रकार के गोलों के पहाड़ लगे हुए थे। अपरिमित रुई और सन के ढेर जमा थे। सुसज्जित अस्त्र-शस्त्रों से अनेक मकान परिपूर्ण थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके सिवा सोना चाँदी तथा जवाहरात के ख़ज़ाने भी खाली नहीं थे। जब महाराजा माधवसिंह के आधिपत्य में यह क़िला आया तब से लेकर अब तक इसकी साम्पत्तिक स्थिति कैसी रही इसका कुछ भी पता नहीं। परन्तु अनुमान से यह कहा जा सकता है कि इस प्रसिद्ध क़िले की दशा इस समय अवश्य ही शोचनीय हो रही है। इसके जीर्ण-शीर्ण और विदीर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्गों को पूर्ववत् बना देने में हज़ारों ही नहीं लाखों रुपये लगाये जायँ तो भी यथावत् होना असम्भव है।

हनूमान शर्मा

साहित्य-सुमन।

१—आधुनिक साहित्य का आदर्श।

आधुनिक साहित्य की एक विशेषता उसका आदर्श है। वर्तमान साहित्य के आदर्श से उन सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया जा रहा है जिनके कारण सर्वत्र अशान्ति फैली हुई है। कुछ विद्वानों का कथन है कि आधुनिक पाश्चात्य साहित्य में रोमेंटिक युग का अन्त होगया और अब रियलिस्टिक साहित्य का आरम्भ हुआ है। योरप के आधुनिक साहित्य में तीन आदर्श स्वीकृत किये गये हैं:—रियलिस्ट, आइडियालिस्ट और रोमेंटिसिस्ट। पहले हम इनका मतलब बतला देना चाहते हैं। संसार में जो घटनाएँ प्रतिदिन होती हैं उनका यथार्थ चित्रण करना रियलिस्ट कला-कोविदों का काम है। ऐसे लेखकों की रचना पढ़ते समय यही जान पड़ता है मानो हमने यह दृश्य स्वयं कहीं देखा है। यही नहीं, किन्तु उसके पात्रों के चरित्र में हम अपने परिचित व्यक्तियों के जीवन का सादृश्य देख लेते हैं। ऐसे लेखकों में ज़ोला नामक एक फ्रेंच लेखक का स्थान सर्वोच्च माना गया है। आइडियालिस्ट लेखक एक आदर्श-चरित्र के उद्भावन की चेष्टा करते हैं। संसार की घटनाओं में वे भाव का ऐसा समावेश करते हैं कि उससे एक अपूर्व चित्र फूट पड़ता है। यह चित्र पाठकों की कल्पना पर प्रभाव डालता है। वे अपने अनुभव-द्वारा कवि के आदर्श की उच्चता स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे लेखक सत्य का बहिष्कार नहीं करते। वे संसार की दैनिक घटनाओं से ही अपनी कथा के लिए उपादान का संग्रह करते हैं। परन्तु उनकी कृति में घटनाओं का ऐसा विन्यास किया जाता है कि पाठक उसे प्रत्यक्ष देखने की इच्छा करें। पाठकों के मन में यही भाव उदित होता है कि हमने ऐसा देखा नहीं है, परन्तु देखना अवश्य चाहते हैं। विक्टर ह्यूगो इसी श्रेणी के लेखक हैं। रोमेंटिक साहित्य-कल्पना की सृष्टि है। वह प्रकृति से अतीत है। बैलजक की रचना में कल्पना की ऐसी लीला दृष्टिगोचर होती है। आधुनिक नाट्य-साहित्य में समाज के यथार्थ चित्रण का खूब ख़याल रक्खा जाता है। ऐसे नाटकों का आरम्भ इबसन ने किया है। उनमें सामाजिक जीवन का यथेष्ट परिपाक हुआ है। तो भी उनमें समाज के भविष्य विकास का आभास पाया जाता है। तब जो लोग यह कहते हैं कि आधुनिक साहित्य में रियलिज़्म की प्रधानता है

नोट—उपर्युक्त घटनाओं का उल्लेख टाडराजस्थान, इतिहास राजस्थान, इतिहास-तिमिर-नाशक, इतिहास-समुच्चय, वंशभास्कर, उमेदसिंहचरित्र, बक़ाया राजस्थान, भारतीय चरिताम्बुधि और मदनकोश आदि ग्रन्थों के आधार पर किया गया है। किन्तु कई एक घटनाओं के संवतों में एक दूसरे से बड़ा भेद पाया जाता है। अतः इस अन्तर को दूर करना यहाँ असम्भव हो गया है। अतएव पाठकवर्ग इसका ध्यान रक्खें।

लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी बात स्वीकृत नहीं की जा सकती। बात यह है कि जिस प्रकार वर्तमान युग में राष्ट्रीय जीवन भूत, भविष्य और वर्तमान को एकत्र कर अग्रसर हो रहा है, जिस प्रकार वह अतीत को वर्तमान में सञ्जीवित कर उसको भविष्य की ओर ठेल रहा है, उसी प्रकार साहित्य में भी सभी आदर्शों को एकत्र करने की चेष्टा की जा रही है। आधुनिक साहित्य का मुख्य उद्देश्य यही जान पड़ता है कि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की रक्षा कर समाज के साथ उसका सम्बन्ध स्थापित कर दे। वर्तमान काल की सभ्यता के अन्धकारमय भाग पर पर्दा डालने की चेष्टा अवश्य नहीं की जाती। पर उसी के साथ यह बात भी प्रकट कर दी जाती है कि वह ज्योतिर्मय किस प्रकार हो सकता है।

आज-कल मनुष्यों के मानसिक भावों में एक बड़ा परिवर्तन होगया है। पहले की तरह देश-काल में आबद्ध हो ये सङ्कीर्ण नहीं हो गये हैं। उनमें यथेष्ट स्वतन्त्रता आ गई है। पहले मनुष्यों की जैसी प्रवृत्ति थी, उनमें प्रेम, घृणा आदि भावों में जैसा सङ्घर्षण होता था, उन्हीं की लीला हम शेक्सपीयर आदि नाटक-कारों की रचनाओं में देखते हैं। परन्तु अब वह बात नहीं। आज-कल युवावस्था की उद्दाम वासना और प्रेम को व्यक्त करने के लिए हमें 'रोमियो जूलियट' अथवा 'एनटोनीक्लियोपेट्रा' की सृष्टि नहीं करनी होगी। उनसे हमारा काम भी नहीं चलेगा। आज-कल मनुष्य की भोग-लालसा के साथ ही एक सौन्दर्य-वृत्ति है, जिसमें समाज-बोध और अध्यात्म-बोध का मिश्रण होगया है। उनके हृदय का आवेग रोमियो अथवा ओथेलो के समान सरल नहीं, वह बड़ा जटिल होगया है। क्राइम एंड पनिशमेंट नामक उपन्यास में एक खूनी का चरित्र अङ्कित किया गया है। अन्त तक यह नहीं जान पड़ता कि वह खूनी दानव है कि देवता। उसमें विपरीत भावों की अभिव्यक्ति इस तरह हुई है कि यदि उसे हम हत्याकारी भी मानें तो भी उसमें हमें दिव्य भावों की प्रधानता मालूम पड़ेगी। जार्ज मेरेडिथ के 'दी इगोइस्ट' नामक उपन्यास का नायक सचमुच कैसा था यह न तो यह जान सका न उसके साथी ही जान सके। उपन्यास भर में उसके चरित्र की इसी जटिलता का विश्लेषण किया गया है। रवीन्द्र बाबू के 'घरे बाहिरे' नामक उपन्यास में सन्दीप जैसा इन्द्रिय-परायण है वैसा ही स्वदेश-वत्सल और वीर भी है। ईब्सन, मेटरलिंक अथवा रवीन्द्रनाथ की कुछ प्रधान नायिकाओं के चरित्र ऐसे अङ्कित किये गये हैं कि जब हम अपने संस्कारों के अनुसार उन पर दृष्टिपात करते हैं तब हम उनके चरित्र में हीनता देखते हैं, परन्तु सत्य की ओर लक्ष्य रखने से यही कहना पड़ता है कि हम उन पर अपनी कोई सम्मति नहीं दे सकते।

वर्तमान युग को विद्वान् 'डिमाक्रेटिक' लोकतन्त्र का युग कहते हैं। सर्वत्र सभी विषयों की नाना प्रकार से परीक्षा होरही है। आज-कल जैसे सामाजिक और राष्ट्रीय तत्त्व साहित्य में स्थान पा रहे हैं उसी तरह वैज्ञानिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्त्व भी साहित्य के अङ्गीभूत हो रहे हैं। अब रस और तत्त्व का सम्मिलन होगया है। गेटी और शिलर ने अपने समय में तत्त्वों को कला के रसरूप में परिणत किया था। अन्य युगों की अपेक्षा वर्तमान युग में साहित्य का अधिकार-क्षेत्र बढ़ गया है। आधुनिक साहित्य में आध्यात्मिक काव्य, नाटक और उपन्यासों की रचना से यही बात प्रकट होती है।

२—विश्व-साहित्य।

संसार में मनुष्यों को सबसे पहले आत्म-रक्षा की चिन्ता करनी पड़ती है। आत्म-रक्षा के ही भाव से प्रेरित होकर उसे अपनी उन्नति करनी होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि वह अपनी उन्नति न करे तो वह अपनी रक्षा भी नहीं कर सकेगा। काल का प्रवाह मनुष्य को उन्नति के पथ पर अग्रसर कराता है। यदि मनुष्य काल के साथ नहीं जा सका तो वह नष्ट भी हो जायगा। अतएव यह तो निश्चित ही है कि सभी लोगों को अपनी स्थिति के लिए और अपनी उन्नति के लिए प्रयास करना पड़ता है। इसी प्रयास से मनुष्यों में पारस्परिक सङ्घर्षण होता है। कुछ लोग दूसरों की उन्नति को अपनी उन्नति के लिए विघ्नस्वरूप समझ कर उन्हें अवनत करने की चेष्टा करते हैं। तभी हिंसा का भाव उनमें उत्पन्न होता है। मनुष्यों में जिघांसा का भाव इतना प्रबल होगया है कि जीवन अब सङ्ग्राम समझा जाता है। इस युद्धभूमि में वही कृतकृत्य समझा जाता है जो दूसरों को नष्ट कर उनके नाश की भित्ति पर अपनी उन्नति का निर्माण करता है। परन्तु सच पूछो तो मनुष्य प्रेम के बल से आत्मरक्षा कर सकता है और उसी से उसकी उन्नति भी हो सकती है। पारस्परिक सङ्घर्षण से नहीं, किन्तु पारस्परिक सहायता से ही मानव-समाज की स्थिति है। समाज की प्रारम्भिक अवस्था में केवल आत्मीयों के प्रति मनुष्य की आकृष्टि होती है। क्रमशः उसकी यह आकृष्टि बढ़ती जाती है। अन्त में वह एक बृहत् समाज में व्याप्त हो जाती है। पहले जो भाव एक परिवार में बद्ध था वह अब देशव्यापी होगया। पहले देश की सीमा एक क्षुद्र युद्ध-भूमि-खण्ड में परिमित थी। अब देश का क्षेत्र अधिक व्यापक होगया है। सौ वर्ष पहले जो एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे वही अब एक लक्ष्य को सामने रख कर एक ही पथ पर चल रहे हैं। जो लोग पहले देश के शत्रु समझे जाते थे वही अब देशवासी हो गये हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या मनुष्य का प्रेम एक देश में ही चिरकाल तक आबद्ध रहेगा। देश कितना ही बड़ा क्यों न हो, वह सीमाबद्ध ही है। परन्तु मनुष्य का प्रेम असीम है। इसी लिए अब हम देख रहे हैं कि प्रेम का भाव देश की सीमा का उल्लङ्घन कर मनुष्य-मात्र के प्रति आकृष्ट हो रहा है।

यह कहना बड़ा सरल है कि हम सभी मनुष्य हैं, यह समस्त वसुधा ही एक कुटुम्ब है। परन्तु इस भाव को हृदय में जागृत कर उसको कार्य-रूप में परिणत करना कठिन है। उसका कारण यह है कि अभी तक मनुष्य हिंसा के भाव को दूर नहीं कर सका है। वर्तमान युग में मनुष्य-मात्र की स्वाधीनता और समानता की शिक्षा सभी दे रहे हैं। सभी देश और राष्ट्र न्याय की घोषणा कर मनुष्य-जाति के पारस्परिक विद्वेष को दूर करना चाहते हैं। तो भी वर्तमान काल में जो अशान्ति फैली हुई है उसका कारण असमानता, पराधीनता और जातिगत विद्वेष है। अपने स्वार्थ-साधन के लिए दूसरों को पददलित करने में ही कितने लोग विश्व-प्रेम का स्वप्न देख रहे हैं। राजनैतिक क्षेत्र में अभी तक व्यक्ति, राष्ट्र और समाज की प्रतिद्वन्द्विता भी विद्यमान है। परन्तु साहित्य के स्वरूप में स्थिर रूप से एक परिवर्तन हो रहा है। साहित्य का क्षेत्र इतना व्यापक हो रहा है कि उसका प्रभाव अब विश्व-व्यापी हो गया है। देश और काल की सीमा अब उसको बद्ध नहीं कर सकती। यह सच है कि अभी तक साहित्य में राष्ट्रीयता की प्रधानता है और कुछ लोगों के राष्ट्रीय-भाव बड़े सङ्कुचित हैं। तो भी अब साहित्य में अनुदारता का भाव लुप्त हो रहा है। मनुष्यों के व्यक्तित्व की पूरी रक्षा की जाती है और उसी के आधार पर सामाजिक और राष्ट्रीय अधिकारों की आलोचना की जाती है। यहाँ हम इस दृष्टि से आधुनिक साहित्य पर विचार करना चाहते हैं।

सभी देशों के साहित्य की एक विशेषता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है। उस विशेषता का कारण उन देशों की धार्मिक, नैतिक और राजनैतिक अवस्थाएँ हैं। हमें स्मरण रखना चाहिए कि ये अवस्थाएँ सर्वदा एक ही स्वरूप में स्थित नहीं रहतीं। उनके स्वरूप में सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। तो भी उनमें एक ऐसी मूलगत भावना विद्यमान रहती है जिसके कारण एक देश की अवस्था दूसरे देश की अवस्था से पृथक् की जा सकती है। उदाहरण के लिए हम उन देशों की अवस्थाओं पर विचार करें जिनमें एक ही धर्म, एक ही भाषा और एक ही समाज-नीति प्रचलित है। हम देखेंगे कि सभी बातों में समान होने पर भी उन देशों में एक ऐसा वैषम्य विद्यमान है जो किसी प्रकार नष्ट नहीं किया जा सकता। यह वैषम्य साहित्य में भी दृष्टिगोचर होता है। इँग्लैंड में इरविंग की सम्भावना नहीं हो सकती और न अमरीका में डिकन्स की। इसका कारण देश की स्थिति है। जो देश एक दूसरे से सभी बातों में भिन्न हैं उनके साहित्य का रूप तो विलक्षण होगा ही। उनमें समानता केवल उन्हीं भावों की होगी जो मनुष्य-जाति से सम्बन्ध रखती है। आधुनिक साहित्य में सभी देश अपनी अपनी विशेषताओं को स्थिर रख कर भी सम्मिलित हो रहे हैं। इस तरह एक ऐसे विश्व-साहित्य का निर्माण हो रहा है जिसमें राष्ट्रीय भावों की उपेक्षा नहीं की जाती और न किसी देश की विशेषता ही लुप्त होने पाती। जर्मनी के प्रसिद्ध कवि गेटी ने एक बार एक ऐसे ही विश्व-साहित्य की कल्पना की थी। वह इसी साहित्य के द्वारा विभिन्न देशों और राष्ट्रों को एकता के सूत्र में गूँथ कर वसुधैव कुटुम्बकं के मूल मन्त्र का प्रचार करना चाहते थे। गेटी का यह अभीष्ट एक प्रकार से सिद्ध होगया है। विद्वानों का कथन है कि जर्मन-भाषा में सभी देशों का साहित्य विद्यमान है।

कहना नहीं होगा कि विश्व-साहित्य के निर्माण के लिए अनुवादों की आवश्यकता है। कुछ लोग अनुवादों को बिलकुल महत्त्व नहीं देते। उनकी राय है कि अनुवादों से साहित्य की हीनता सूचित होती है। हम इसे स्वीकार नहीं करते। हमारा विश्वास है कि ज्ञान का विकास तभी होता है जब एक देश दूसरे से ग्रहण करता है। अनुवादों के द्वारा ज्ञान का आदान-प्रदान बड़ी सुगमता से हो जाता है। उन्हीं के द्वारा साहित्य का कार्यक्षेत्र व्यापक हो जाता है। अनुवाद का कार्य सैकड़ों वर्षों से हो रहा है। प्राचीन काल में ग्रीस, रोम, चीन, अरब और भारतवर्ष के भी साहित्य में ऐसे कितने ही उदाहरण मिलते हैं जिनसे यह प्रमाणित किया जा सकता है कि अनुवादों के द्वारा विभिन्न विषयों के ज्ञान का कितना आदान-प्रदान हुआ। इन अनुवादों से ज्ञान का केवल प्रचार ही नहीं हुआ, किन्तु उसकी वृद्धि भी हुई। अनुवादों के ही आधार पर मौलिक साहित्य की रचना होती है। आधुनिक साहित्य में भी आप मौलिकता वहीं पावेंगे जहाँ श्रेष्ठ ग्रन्थों के अनुवाद होते हैं। अँगरेज़ी में कालेरिज, शैली और कारलाइल श्रेष्ठ अनुवादक माने गये हैं। आज-कल तो पाश्चात्य-साहित्य में अनुवादित ग्रन्थों की ऐसी वृद्धि हो रही है कि हम उसका अनुमान ही नहीं कर सकते। इन ग्रन्थों का प्रचार भी खूब हो रहा है। सरस्वती के पाठकों को शायद मालूम होगा कि पाश्चात्य देशों में रवीन्द्रनाथ के कितने ही ग्रन्थों की लाखों प्रतियाँ बिक गई हैं। इससे यह साफ़ सिद्ध होता है कि पाश्चात्य देश समस्त विश्व की भावनाओं को ग्रहण करने के लिए कितना उत्सुक है।

हिन्दी के समान अनुन्नत साहित्य में भी अनुवादित ग्रन्थों का अभाव नहीं है। यह सच है कि हिन्दी के अनुवादक ग्रन्थों की महत्ता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार न कर जिस किसी का अनुवाद कर डालते हैं। कुछ समय से बँगला-साहित्य की ओर इन अनुवादकों का इतना अनुराग हो गया है कि वे बँगला के सभी औपन्यासिकों को प्रसिद्ध लेखक मान कर उनकी रचनाओं का अनुवाद लिख डालते हैं। ऐसे लेखकों में यह विवेचना करने की शक्ति नहीं कि श्रेष्ठ ग्रन्थकार कौन होता है? श्रेष्ठ ग्रन्थकार वही है जो सर्वसाधारण की भावनाओं को अपनी रचना में व्यक्त कर सकता है, जो किसी सभ्यता की अन्तरात्मा को प्रत्यक्ष कर दिखाता है। जन-साधारण से हमारा मतलब तत्कालीन समाज से नहीं है। कितने ही लेखक ऐसे हैं जो अपने समय में लोकप्रिय हो गये हैं, जिन्होंने अपने समकालीन लोगों के साथ गला फाड़ कर स्वर में स्वर मिलाया है। परन्तु वे श्रेष्ठ ग्रन्थकार नहीं हैं। यदि यही बात होती तो किपलिंग आधुनिक अँगरेज़ी साहित्य में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थकार समझा जाता। जो ग्रन्थकार सभी समय लोक-प्रिय हो सकता है, जिसकी रचना को सभी समय में लोग अपना सकते हैं, वही यथार्थ में श्रेष्ठ ग्रन्थकार है, और उसी की रचनाओं का अनुवाद होना चाहिए। तभी किसी साहित्य में सद्भावों का प्रचार हो सकता है और तभी उसकी उन्नति भी हो सकती है।

विश्व-साहित्य के लिए अनुवादों की आवश्यकता तो है ही, परन्तु अनुवादों के साथ ही भिन्न भिन्न देशों के राष्ट्रीय और धार्मिक साहित्य की भी विवेचना-पूर्ण आलोचना होनी चाहिए। जब तक हम किसी देश के प्राचीन साहित्य से अवगत नहीं हैं तब तक हम उसके राष्ट्रीय विकास को समझ ही नहीं सकते। भिन्न भिन्न राष्ट्रों में सद्भाव फैलाने के लिए यह आवश्यक है कि लोग एक दूसरे को अच्छी तरह पहचान सकें। पाश्चात्य साहित्य में प्राचीन साहित्य की पर्यालोचना एक आवश्यक अङ्ग है। अब योरपीय विद्वान् केवल ग्रीस, रोम अथवा असीरिया के ही प्राचीन साहित्य का अध्ययन नहीं करते। वहाँ अब सभी देशों के साहित्य का अनुशीलन किया जाता है। असभ्य जातियों की भाषा और कथाओं की भी उपेक्षा नहीं की जाती। कुछ समय से भारतीय साहित्य की ओर उनका ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। भारत के कितने ही अलभ्य ग्रन्थों का सङ्ग्रह वहाँ के पुस्तकालयों में है। डेनमार्क में पालीभाषा के कितने ही विद्वान् हैं। रैस्क नामक एक विद्वान् की बदौलत कापेन हेगन में पाली-ग्रन्थों का बड़ा ही अच्छा सङ्ग्रह है। नेपाल में बौद्धधर्म के कितने ही ग्रन्थरत्न हैं। Hodgson नामक एक विद्वान् ने ऐसे ही ग्रन्थों का एक अच्छा सङ्ग्रह पेरिस में भेज दिया। उसका फल यह हुआ कि पेरिस में बौद्धधर्म की अच्छी चर्चा हो रही है। बूलर ने बर्लिन में जैन (श्वेताम्बर) साहित्य के कोई पाँच सौ हस्त-लिखित ग्रन्थ भेजे थे। आज-कल जर्मनी जैन-दर्शन-शास्त्र का केन्द्रस्थल हो गया है। कोलब्रुक और विलसन के कारण इँगलैंड में भी भारतीय पुरातत्त्व का अध्ययन करने की अच्छी सामग्री है। मतलब यह कि अन्य देशों की ज्ञान-राशि को सञ्चित करने का प्रयास खूब किया जा रहा है। इसका फल यह होता है कि अब लोग इतिहास के कार्यक्षेत्र को खूब बढ़ाते जा रहे हैं। पुरातत्त्व-विज्ञान और नृतत्त्वशास्त्र ने इतिहास का लक्ष्य ही बदल दिया है। पहले लोग राजनैतिक उत्थान-पतन ही पर दृष्टि रखते थे, अब मनुष्य-जाति के विकास पर ध्यान देते हैं। भिन्न भिन्न धर्मों की आलोचना से अब धार्मिक असहिष्णुता कम हो गई है। साहित्य में नये नये विज्ञानों और भावों की सृष्टि होने से भाषा में भी बड़ा परिवर्तन हो रहा है। विदेशी शब्दों के ग्रहण करने में कोई भी सङ्कोच नहीं करता। इन्हीं सब-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातों को देख कर कुछ समय पहले ब्राइस ने यह कहा था कि आज-कल जितनी जातियाँ, भाषाएँ और धार्मिक सम्प्रदाय हैं उनका क्रमशः लोप हो जायगा और कुल दस पन्द्रह मुख्य मुख्य राष्ट्र और धर्म रह जायँगे। कुछ भी हो, इसमें तो सन्देह नहीं कि आधुनिक साहित्य राष्ट्रीय भावों की अपेक्षा विश्वभावना की ओर अधिक अग्रसर हो रहा है।

मनोहरलाल श्रीवास्तव

चारु चयन।

१—अपनी भूल।

(१)

हमारी भूल अब निर्मूल होगी,
सुकृति-दात्री प्रकृति अनुकूल होगी।
हुआ अब आत्म का अवबोध सच्चा,
रहा अब एक बच्चा भी न कच्चा॥

(२)

नहीं अब दुर्जनों में प्रीति होगी,
हटें हम क्यों, उन्हीं को भीति होगी।
हमें प्रतिबन्ध का प्रतिकार सूझा,
हमें अपकार का उपचार सूझा॥

(३)

उठेंगे शीघ्र, बे सुध गिर गये थे,
अविद्या से निरे हम घिर गये थे।
खलों को हम भलों सम मानते थे,
सुजन को दुर्जनों सम जानते थे॥

(४)

हुआ विश्वास बक में हंस का था,
हुआ साम्राज्य मानो कंस का था।
वृथा सोते रहे भ्रम-रात में हम,
पड़े थे घातकों की बात में हम॥

(५)

निराशा छा गई थी शुद्ध मन में,
हुआ था क्रोध भी अवरुद्ध तन में।
हमें अब तक किसी ने भी न पूछा,
करें क्या हो रहा है हाथ छूछा॥

(६)

खुली अब आँख लाखों देख लेवें,
हमारे रोष को मत दोष देवें।
न अब प्रतिकूल के अनुकूल होंगे,
जिन्हें हम फूल थे, अब शूल होंगे॥

(७)

ज्वलन ज्यों राख में रहता छिपाया,
स्वबल को उस तरह हमने दबाया।
हमें क्यों हो गई थी भ्रान्ति भारी?
हुई अब शान्ति ही उत्क्रान्तिकारी॥

(८)

छली हम क्यों बने खुल कर चलेंगे,
जलें खल, लख उन्हें हम क्यों जलेंगे।
हमें कुछ भी किसी से भी न भय है,
सदा से सत्य की होती विजय है॥

(९)

वृथा नीचे रहे हम दग समूचे,
चढ़े थे नीचतर इस हेतु ऊँचे।
कटेगी शृङ्खला अब दीनता की,
हमें सुध बुध न थी स्वाधीनता की॥

(१०)

हमारा जो रहा होगा हमारा,
कसेंगे क्यों नहीं कण्टक किनारा?
रही थी एकता की नेक देरी,
बजेगी शीघ्र जय-भेरी घनेरी॥

(११)

नहीं हम देश को कम चाहते थे,
नहीं अन्याय को हम चाहते थे।
प्रलोभन में पड़े भूले हुए थे,
बने सेवक रहे फूले हुए थे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२)

गई वह धारणा भ्रम की रही जो,
हुई अब धारणा श्रम की रही जो।
हुई है प्रेरणा प्रभु की जगे हैं,
स्वयं सत्कार्य में निर्भय लगे हैं ॥

(१३)

कभी अब चूकनेवाले नहीं हैं,
वृथा हम भूकनेवाले नहीं हैं।
करेंगे काम हो निष्काम ऐसे,
लखें तो रोकता है कौन कैसे ?॥

(१४)

*शमन का भी किसी विधि से शमन हो,
दमन के दुर्गमन का भी दमन हो।
पतन से भी पतन क्यों हो हमारा ?
वतन पर का वतन क्यों हो हमारा ?॥

(१५)

अजर हम हैं अमर हम हैं मरें क्यों ?
भ्रमर हैं सत्य-वारिज के डरें क्यों ?
रहें हम भीरु क्यों वरवीर हो के ?
रहें श्रम से भरे क्यों धीर हो के ? ॥

रामचरित उपाध्याय

२—हिन्दी के विभक्ति प्रत्यय।

परम सन्तोषका विषय है कि अब धीरे धीरे हिन्दी-भाषाके उन लेखकोंकी संख्या बढ़ती जाती है जो हिन्दीमें विभक्ति प्रत्ययोंको प्रकृतिके साथ मिला कर लिखनेके पक्षपाती हैं। मोह, अविवेक, हठ, दुराग्रह, स्वार्थ और निजी असुविधाके कारण जिन अनुचित रीतियोंका समर्थन किया जाता है, उनका समय पाकर, क्षय अवश्य ही हो जाता है। यह बात निर्विवाद है कि हिन्दीमें गद्य लेख लिखनेकी प्रथाका अधिकतर प्रचार विदेशियों द्वारा किया गया है। राधिका, पताका, जलसा आदि शब्द पद हैं (विभक्तिसहित शब्द पद कहा जाता है) वा केवल शब्द हैं आदि बातोंका निश्चय विदेशी लोग सहसा नहीं कर सकते थे। अतः उन्हें विवश हो हिन्दीके विभक्ति प्रत्ययोंको प्रकृतिसे अलग लिखनेकी प्रथा प्रचलित करनी पड़ी। उस प्रथाके अनुसार जिन भारतीय बालकोंको आबाल्यात् शिक्षा दी गई, वे आगे चलकर जब नामी विद्वान् हुए तब उन्हें यही सूझी कि वे लोग अपनी आदतको बनाये रखनेका यत्न करें। उस यत्नकी सफलता के लिए उन लोगोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार युक्तियां लगाकर विभक्ति प्रत्ययोंको प्रकृतिसे अलग लिखनेकी प्रथाका समर्थन किया। किसीने लिखा कि हिन्दीकी स्वतन्त्रता स्थापित करनेके लिए यह आवश्यक है कि उसमें विभक्ति प्रत्यय, प्रकृतिसे अलग लिखे जायँ और किसीने लिखा कि हिन्दीके विभक्ति प्रत्यय, प्रत्यय ही नहीं हैं किन्तु वे स्वतन्त्र शब्द हैं; इत्यादि इत्यादि। परिणाम यह हुआ कि हिन्दीके लेखक दो दलमें विभक्त हो गये। एक दल प्रत्ययोंको प्रकृतिसे अलग लिखने लगा और दूसरा दल उन्हें मिलाकर लिखने लगा। जिस समय प्रथम प्रथम इस विषयपर वादानुवाद किया गया था, उस समय विभक्ति प्रत्ययोंको प्रकृतिसे अलग लिखनेवालोंकी संख्या अधिक थी। पर तब से ज्यों ज्यों समय बीतता गया और हिन्दीके विद्वान् लेखकोंको उक्त विषयपर विचार करनेका अवकाश मिलता गया त्यों त्यों विभक्ति प्रत्ययोंको प्रकृतिके साथ मिलाकर लिखनेवालोंकी संख्या बढ़ती ही गई और नित उठ वह बढ़ती ही जाती है। अनुभवी विद्वानोंने बहुत उचित कहा है "सत्यमेव जयते नानृतम्" अर्थात् सत्यकी ही विजय होती है झूठकी नहीं।

आज-कल एक तीसरा दल और उत्पन्न हो गया है। यह दल उदासीन दल कहा जा सकता है। क्योंकि इस दलके लोग प्रायः कहा करते हैं कि विभक्ति प्रत्ययोंको अलग लिखनेसे न तादृश हानि ही है और मिला कर लिखनेसे न वैसा कुछ लाभ ही है। अपनी जन्म-भाषाको सर्वाङ्ग सार्थक पुष्ट तथा सुन्दर बनानेमें जो लोग उक्त प्रकार उदासीनता और उपेक्षा प्रदर्शित किया करते

---

*शमन = यमराज।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, उनकी भाषा अन्य उन्नत भाषाओंकी समकक्षिणी होनेमें यदि पिछड़ी रहे तो आश्चर्य ही क्या है? यह सौभाग्य अकेली हिन्दी-भाषाको ही प्राप्त है कि वह जैसी बोली जाती है वैसी ही लिखी जाती है और जैसी लिखी जाती है वैसी ही सुविधाके साथ पढ़ी भी जाती है। विभक्ति प्रत्ययोंको प्रकृतिसे अलग लिखनेके कारण उसकी यह उत्तमता नष्ट हो जाती है। 'राम ने रावण को मारा' इस वाक्य में जिस प्रकार अकेले 'रा' वा 'म' वा 'ने' सार्थक नहीं हो सकता, ठीक उसीं प्रकार 'राम' तथा 'ने' भी सार्थक नहीं हो सकते। उक्त अक्षर-समूह तभी सार्थक होगा जब वह 'रामने' लिखा जायगा। जब वाक्यमें सार्थक पदके बोले जानेकी ही आवश्यकता है तब उसके उसी प्रकार लिखे जानेकी आवश्यकता क्यों नहीं है? हम समझते हैं कि इस प्रश्नका उत्तर प्रत्येक हठहीन विवेकी पुरुष यही देगा कि जो सार्थक पद जैसा बोला जाता है वह वैसाही लिखा भी जाना चाहिए।

जो लोग भाषाकी उत्तमतापर ध्यान दिये बिना असावधानीसे बातचीत किया करते हैं वे लोग प्रायः 'घर में ही' के स्थान पर, 'घर ही में' और 'मुझसे तक' के स्थानमें 'मुझतकसे' कहा करते हैं। इन पदोंके अर्थमें कोई विशेषता नहीं है। अर्थात् जो अर्थ 'घर में ही' पदका है वही अर्थ 'घर ही में' पदका भी है। ऐसी अवस्था में व्याकरणके अनुसार जो पद शुद्ध माना जाता है वही क्यों न लिखा जाय। व्याकरणके अनुसार 'घर में ही' पद शुद्ध है अतः वही लिखा जाना चाहिए।

बहुतसे सज्जन कहा करते हैं कि वैयाकरण लोग प्रयोगके अनुसार नियम बनाया करते हैं। जब 'घर ही में' और 'मुझ तक से' बोलनेकी प्रथा प्रचलित है तब वे उसी प्रकार क्यों नहीं लिखे जाने चाहिए? उनके उसी प्रकार लिखे जानेसे उनकी व्याख्या करनेमें सुविधा होती है। जो सज्जन इस युक्तिके सहारे विभक्ति प्रत्ययोंको अलग लिखनेका समर्थन करते हैं उन्हें समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार 'अलगको' 'अगल' 'मतलबको' 'मतबल' और 'रामलालजीको' 'रामजी लाल' कहनेवालोंका अनुकरण कर—उनकी बोलचालको प्रयोग मान कर कोई लेखक अपने लेखमें 'अगल' 'मतबल' और 'गोविन्दजी-लाल' शब्दका प्रयोग नहीं करता उसी प्रकार 'घर ही में' आदि शब्दोंका प्रयोग-बलपर प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। व्याकरणके नियमके अनुसार 'घर में ही' पद शुद्ध होता है अतः वह वैसा ही लिखा जाना चाहिए।

काशीकी नागरीप्रचारिणी सभाके अनुरोधसे, पण्डित कामताप्रसादजी गुरुने, अनुमानतः पन्द्रह बीस वर्ष-पर्य्यन्त हिन्दी-भाषाके वर्तमान प्रयोगोंपर मनन और विचार कर 'हिन्दी का व्याकरण' नामक एक बृहत् ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थको उक्त सभाके अग्रेसर सभ्योंने एक-स्वरसे स्वीकृत किया है। इस विद्वज्जन समादृत व्याकरण ग्रन्थके प्रणेता इस विषयमें लिखते हैं (मेरी समझ में विभक्तियोंको मिला कर लिखना ही उपयुक्त जान पड़ता है।) आशा है कि काशीकी नागरीप्रचारिणी सभा गुरुजीकी उक्त सम्मतिका आदर कर अपने सभ्योंको गुरुजीकी सम्मतिका अनुकरण करनेका परामर्श देगी। मध्य-प्रदेशके कई नामी लेखक विभक्ति प्रत्ययोंको केवल इसी लिए अलग लिखा करते हैं कि वे उसके (उक्त सभाके) शिष्य होने के सम्मान-भोगी हैं।

हिन्दीके ग्रन्थकारोंके चिरपरिचित और उनके सम्मानभाजन राय साहिब पण्डित रघुवरप्रसादजी द्विवेदी, बी० ए०, लिखते हैं, कि मैं इन दोनोंको मिलाकर लिखना ही अच्छा समझता हूँ। जब सर्व्वनामोंके रूपोंके साथ ये (विभक्तियां) मिला दी जाती हैं तो संज्ञा-शब्दोंके साथ क्यों न मिलाई जायँ? प्रश्न है केवल अभ्यासका सो दूषित अभ्यास-प्रणालीको त्यागना कोई कठिन बात नहीं है। × × ×

पाठकगण, यहां तक ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे आपको विद्वज्जन-समादृत पण्डित कामताप्रसादजी गुरु वैयाकरणकेसरी तथा रायसाहिब पण्डित रघुवरप्रसादजी द्विवेदी, बी० ए० हेडमास्टर हाई स्कूलकी सम्मति विदित हो चुकी होगी। उक्त सज्जनोंकी स्पष्ट सम्मति यही है कि हिन्दीके विभक्ति प्रत्यय प्रकृतिसे मिला कर ही लिखे जायँ। पण्डित कामताप्रसादजी गुरुने अपने विभक्ति-संयोग नामक लेख में लिखा है कि हिन्दीमें जब तक विभक्ति प्रत्यय प्रकृतिसे मिलाकर नहीं लिखे जायँगे तब तक हिन्दी-भाषाकी कारक-प्रणाली दूषित बनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगी। अब यह बात हिन्दीके हितचिन्तक विद्वानोंके अधीन है कि ज़िस भाषाको वे समूचे भारतकी राष्ट्र-भाषाका पद दे रहे हैं उसकी कारक-प्रणालीको चाहें तो वे निर्दोष बनावें वा सदोष रहने दें। आशा है कि कमसे कम सामयिक पत्रोंके सम्पादकगण तथा लेखकगण हमारे इस लेखपर विचार कर अपने अपने पत्रों तथा लेखोंमें विभक्ति प्रत्ययोंको प्रकृतिसे मिला कर लिखनेकी प्रथाको प्रचलित कर देंगे। विभक्ति प्रत्ययोंको मिलाकर लिखनेकी प्रथा प्रचलित हो जानेके पश्चात् अखरौटी विषयक प्रश्नपर विचार किया जायगा। जो सज्जन भाषा-सुधारको सब सुधारोंका मूल कारण मानते हैं वे लोग हमारी इस प्रार्थनाको असमयोचित कहकर टाल देनेकी उपेक्षा नहीं करेंगे; किन्तु इस ओर पूरा पूरा ध्यान देकर भारतकी राष्ट्र-भाषाको दोषमुक्त करनेके पुण्य-भाजन बननेके यशको अवश्य ही प्राप्त करेंगे।

गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री

३—संसार का रेल-विवरण।

जब तक कोई साधन सुलभ बना रहता है तब तक, वह चाहे कितना ही आवश्यक क्यों न हो, हम उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं देते। पर ज्योंही परिस्थिति बदल जाती है, जो हमको सहज ही मिला करता था उसका मिलना कठिन या असम्भव हो जाता है, हम उसके विषय में एक सौ एक बातें जानने को व्यग्र हो उठते हैं। आज से दस बरस पहले के पत्रों की फ़ाइलें उठा कर देखिए कि उनमें रेलवे-विषयक बातों को कितना स्थान दिया जाता था। अवश्य ही आज की तुलना में आप उसे कम, बहुत कम, कहेंगे। पर अवस्था में यह परिवर्तन कैसे हुआ? आप स्वीकार करेंगे कि इसका एक-मात्र कारण महासमर था। एक दिन हमने बिस्तर से उठ कर सुना कि आज से मुसाफ़िर-गाड़ियाँ दस के बदले पाँच ही दौड़ेंगी; दूसरे दिन मालूम हुआ कि कोयले की खानों को अब 'वैगनों' के लिए महीनों की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। तीसरे दिन रेलवे एजन्टों ने भाड़ा बढ़ जाने की सूचना निकाली, और चौथे दिन मालिकों तथा मजूरों का वह महाभारत शुरू हुआ जिसका शान्ति-पर्व्व अभी न मालूम कितनी दूर है! फिर क्योंकर यह समस्या, क्षण भर के लिए भी, हमारे विचार-वृत्त से बाहर जा सकती थी?

आनेवाले दिनों में भी, इस विषय की आलोचना-प्रत्यालोचना में बहुत कुछ काग़ज़ और स्याही ख़र्च होनेवाली है। 'ऐक्वर्थ रेलवे कमिटी' की मत-भेदात्मक रिपोर्ट कुछ समय से जनता के सामने है, पर सरकारी निर्णय होना बाक़ी ही है। हाल में भारत-सचिव रेलों की मद में ख़र्च करने के लिए पाँच करोड़ पौण्ड तक क़र्ज़ लेने की इजाज़त पार्लमेंट से ले चुके हैं—जानी हुई बात है कि जब जब माल ख़रीदने का सवाल उठेगा तब तब भारत के हित और ब्रिटिश पूँजीपतियों के स्वार्थ का एक बार मल्ल-युद्ध हुए बिना न रहेगा। जिस 'स्वदेशी रेलवे-नीति' की पुकार अभी से सुनने में आ रही है उसकी पृष्ठ-पोषकता भी दिन-दिन बढ़ती ही जायगी।

स्वभावतः, हाल में अपने देश की रेलों के सम्बन्ध में अँगरेज़ी-पत्रों में, बहुत कुछ लिखा-पढ़ी हुई है। साथ ही मानना पड़ेगा कि इस विषय की तुलनामूलात्मक आलोचना की ओर हमारे रेलवे-पण्डितों का ध्यान बहुत कम गया है। नीचे कुछ अङ्क प्रकाशित किये जाते हैं, जो, आशा की जाती है, तिमिर के हृदय पर तेज के एक छोटे-मोटे तीर का काम करेंगे। इनके सम्बन्ध में यहाँ एक-दो बातें कहने की आवश्यकता है। इनकी प्रामाणिकता इस बात में है कि ये एक जगद्विख्यात अन्तर्राष्ट्रीय संस्था-द्वारा सङ्गृहीत किये गये हैं; पर इतना ध्यान रखना होगा कि रूस के आँकड़े १९१० तक के ही हैं और जर्मनी तथा फ्रान्स के १९१४ तक के। एक बात और है। केवल संख्या से परिस्थिति की यथार्थता का ज्ञान नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ, अमेरिकन यञ्जिनों का आकार-प्रकार, उनकी ताक़त ब्रिटिश-यञ्जिनों से साधारणतः दूनी और कभी कभी तिगुनी होती है; ऐसी हालत में जहाँ उनकी संख्या ६८,२१२ बताई गई है वहाँ, ब्रिटेन की तुलना में, उन्हें १,५०,००० के लगभग समझना अधिक उचित होगा।

संसार के मुख्य मुख्य देशों का रेल-विवरण इस प्रकार है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	संयुक्त-राज्य (अमेरिका)	ग्रेट-ब्रिटन	फ्रांस	जर्मनी
विस्तार, माइलों में	२,५६,५७२	२३,७२४	२५,३७८	३८,८६६
यञ्जिन	६८,५९२	२४,१६२	१४,३४४	३५,०२५
मुसाफ़िर-गाड़ियां	५६,२९०	५४,८५३	३१,८२४	८७,८७३
माल-गाड़ियां	२४,५६,६०७	७,८१,५१८	३,७०,८०६	६,९२,०५३
पूँजी, डालर में (१ डालर = ३=))	२०,९८,७९,२१,०००	६,५३,१७,५१,०००	३,८९,५४,८४,०००	५,०४,५६,४१,०००
कर्मचारी	२०,७२,९७१	७,६३, ३५९	४,५९,३०८	८,२०,४६१
कितने लोगों ने सफ़र किया	१,२५,३३,९६,०००	१,५६,६८,३४,०००	५४,१३,४२,०००	१,७९,७१,८८,०००
कितना माल ढोया गया, टन में—	२,३०,५१,९०,०००	३१,७८,७७,०००	२०,८०,१८,०००	६२,४०,५७,०००

	इटली (केवल सरकारी लाइनें)	रूस	भारतवर्ष	कनाडा
विस्तार, माइलों में	८,९५३	४८,४२६	३६,७३५	३९,१९६
यञ्जिन	५,२२०	१९,९८४	९,०६८	५,७५६
मुसाफ़िर-गाड़ियां	१०,०२४	२०,०४३	२४,७०४	६,३७६
माल-गाड़ियां	१०,३,११७	४,५०,२७३	१,९६,७४७	२,०९,२४३
पूँजी, डालर में (१ डालर = ३=))	१,३३,४९,२८,०००	३,५०,८६,७५,०००	१,८५,४३,४०,०००	२,६१,५१,०२,०००
कर्मचारी	१,५४, ८५६	७,७१,९३८	७,११,६९०	१,८४,९२,५५,१२,०६,-०००
कितने लोगों ने सफ़र किया	८,२४,०२,०००	१९,५०,१७,०००	५३,३१,८०,०००	
कितना माल ढोया गया, टन में—	४,१०,९९,०००	२५,८३,३९,०००	८,७६,३०,०००	१२,७३,८८,०००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—नाटक-रचना श्रौर अभिनय पर एक नाटककार की सम्मति।

सार्दु फ्रांस का एक प्रसिद्ध नाटककार था। उसने ५४ वर्षों के समय में कोई ७० पुस्तकें लिखीं। वह स्टेज (नाट्यशाला) का मैनेजर भी था। इस कार्य में भी उसने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की। मृत्यु के कुछ दिन पहले उससे नाटक-रचना श्रौर नाट्यशाला के सम्बन्ध में कुछ बातें पूछी गईं। उत्तर में उसने जो कुछ कहा वही यहां, प्रश्नोत्तर रूप में, सङ्कलित किया गया है।

सार्दु स्वयं किस प्रकार नाटकों की रचना करता था, इसका वर्णन उसने इस तरह किया है:—

मैं किस प्रकार नाटक-रचना करता हूँ? इस प्रश्न का उत्तर देना बड़ा कठिन है। पहले मैं नाट्य-विषय को कहानी की तरह लिख लेता हूँ। यद्यपि मैंने नाटक-रचना में ही जीवन उत्सर्ग कर दिया है, तथापि मैं उपन्यास-प्रणेता को श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। बैलज़ैक (Balzac) मेरी दृष्टि में, शेक्सपियर की तरह श्रादरणीय है। कहानी के रूप में लिख लेने के बाद मैं उसे नाटक का रूप देता हूँ। मैं एक स्थान में बैठ कर एक अङ्क लिख लेता हूँ, फिर समस्त दृश्य ही लिख कर सेक्रेटरी को दे देता हूँ। बिना दस-ग्यारह बार संशोधन किये मुझे सन्तोष नहीं होता। मैं जिस समय लिखता हूँ उस समय प्रत्येक चरित्र को कल्पना द्वारा स्पष्ट देख लेता हूँ। मैं दूसरे नाटककार की बात नहीं कह सकता, पर मुझे तो प्रत्येक दृश्य प्रत्यक्ष घटना सा जान पड़ता है।

आप दिन के किस समय में कार्य करना अच्छा समझते हैं?

मैं प्रातःकाल ही लिखा करता हूँ। रात में काम करना मुझे पसन्द नहीं। मेरा ख़याल है कि उस समय मस्तिष्क विशेष उत्तेजित अथवा अवसन्न रहता है। एक नाटक की रचना में मुझे तीन से चार महीने तक समय लगता है। इस प्रकार के परिश्रम के कार्य मैं देहातों में ही कर सकता हूँ। वहीं मैं शान्तचित्त रहता हूँ। जिस समय मैं 'मार्ली' में रहता हूँ तब वहां तीन बजे तक किसी दर्शक से नहीं मिलता; उसी समय कुछ दिनों में मेरी रचना एक प्रकार से पूर्ण हो जाती है। उसके बाद मैं अपने मित्रों से मिलता हूँ।

आप क्या नाटक का कथा-भाग इतिहास या वास्तविक जीवन से सङ्ग्रह करते हैं—अथवा साधारणतः आपके मन में जो भाव उदित होते हैं उन्हीं से कथा की रचना करते हैं?

इतिहास की किसी विशेष घटना श्रौर अपने जीवन की तुच्छ एक घटना, सभी विषयों से मैं अपनी रचना के उपादानों का सङ्ग्रह करता हूँ। कार्य श्रौर परम्परा-घटना-वैचित्र्य पर मैं विशेष लक्ष्य रखता हूँ। मेरा विश्वास है कि सिर्फ़ प्रतिभा के बल से ऐसे विषय प्रस्तुत नहीं होते जो चिरकाल तक लोक-मनोरञ्जन के लिए समर्थ हो सकें। मान लीजिए, मैंने आज एक सुन्दर नाटक के नायक की कल्पना कर ली। नाम लिख कर रख दिया। उसके बाद उस नायक के चरित्र को पल्लवित करने के लिए मुझे उसके सम्बन्ध में अनेक बातें सोचनी पड़ेंगी जैसे, उसका निवास, उसका समाज, उसका काल—इसके लिए मैं इतिहास अथवा किसी समाचार-पत्र से भी मसाला ले लूँगा।

आप क्या अपनी रचना में इतिहास के विरुद्ध नहीं चलते?

मैं सामान्य घटना को भी इतिहास के विरुद्ध नहीं करता, श्रौर इसके लिए मैं विशेष परिश्रम करता हूँ। बाल्यकाल से मैं इतिहास का अध्ययन करता आ रहा हूँ। ऐतिहासिक नाटक की रचना करने के पूर्व मैं उस समय की समूची पुस्तकावली का अध्ययन करता हूँ। मेरी स्मरण-शक्ति अच्छी है। इसके लिए मैं सौभाग्यवान् हूँ। नाटक प्रकाशित होने के बहुत दिनों के बाद भी कौन घटना कहां से गृहीत श्रौर परिकल्पित हुई है उसे मैं दिखा सकता हूँ। मेरे Theodora नामक नाटक का अभिनय होने पर समालोचकों ने यह आपत्ति की कि उस समय वर्त्तमान सभ्ययुग के अस्त्र-समूह व्यवहृत नहीं होते थे। मैंने तुरन्त ही अनेक ग्रन्थों से प्रमाण उद्धृत कर उनकी भूलें बतला दीं। उस समय समालोचक-वर्ग ने अपनी भूल स्वीकार की।

आपके नाटक खेले जाने के समय, मालूम होता है, आप ही सब प्रबन्ध करते हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय ही। सम्पूर्ण दृश्य ही मैं स्वयं अपने निरीक्षण में तैयार कराता हूँ।

रङ्ग-मञ्च पर यथार्थ दृश्य दिखलाने के विषय में आपकी क्या राय है?

इस सम्बन्ध में बहुतेरी व्यर्थ बातें सुनी जाती हैं। आधुनिक नाटककारगण समझते हैं कि उन्होंने ही इसका आविष्कार किया है। मैंने ही पहले पहल रङ्गमञ्च पर (Love Scene) प्रेम-दृश्य का अभिनय प्रदर्शित कराया। समालोचकों ने पाण्डुलिपि पढ़ कर आपत्ति की। मैंने उनसे कहा—आप लोग देखें, मैं किस प्रकार इसका अभिनय कराता हूँ। सारे पेरिस में आन्दोलन मच गया। अभिनय के दिन रङ्गमञ्च पर तिल धरने की भी जगह न रही। आज-कल यह अति साधारण घटना प्रतीत होती है। उस समय वास्तव में रङ्गमञ्च बुरी तौर से सजाया जाता था। अब हत्याद्वारा रङ्गमञ्च कलङ्कित नहीं किया जा सकता, इस प्रकार की अप्रीतिकर घटना नेपथ्य (अन्तर पट के भीतर) में ही सङ्गठित होती है। रेशीन अथवा कार्नील नामक नाटककारों ने कभी रङ्गमञ्च पर हत्या-दृश्य नहीं दिखाया। जिस समय मेरार्थियोडोरा नाटक अभिनीत हो रहा था उस समय रङ्गमञ्च पर गिलोटाइन (फ्रांस का एक यन्त्रविशेष जिससे लोग मारे जाते थे।) पर मारे गये व्यक्तियों की लाश ढोने के लिए गाड़ी नहीं व्यवहृत की गई थी। मैंने नाट्यशाला की ग्लानिकर दृश्यावली को निकाल बाहर किया। मैंने ही पहले-पहल रङ्गमञ्च पर प्राकृतिक दृश्य दिखलाया और मेरे ही अभिनेतागण रङ्गमञ्च पर चुरुट पीते हैं।

मालूम होता है, आप पोशाक, परिच्छद और दृश्य सजाने पर विशेष लक्ष्य रखते हैं?

निश्चय ही ये सब अत्यन्त प्रयोजनीय हैं। अपने नाटक के प्रत्येक अभिनेता के परिच्छद की ओर मैं विशेष लक्ष्य रखता हूँ। मैं रङ्गमञ्च के ऊपर जिस प्रकार की चीज़ रखना चाहता हूँ पहले ही से उसकी कल्पना कर रखता हूँ। प्रत्येक दृश्य किस प्रकार होगा, यही क्यों, कुर्सी और बिस्तर आदि तक किस प्रकार के होंगे, पात्र किस तरह बैठेगा, मैं सब ठीक कर रखता हूँ। ऐतिहासिक नाटकों में इन बातों को ठीक करना बड़ा कठिन है। जिस समय मेरे नाटक का रिहर्सल होता है उस समय मैं थियेटर में ही रहता हूँ। नाटक के प्रत्येक अभिनेता की कार्य्य-प्रणाली मैं पहले से ही स्थिर कर देता हूँ। कोई कितना बड़ा अभिनेता क्यों न हो, कौन बात किस प्रकार कहनी होगी, मैं उन्हें इसका अवश्य निर्देश कर देता हूँ। नाटककार यदि साथ में रह कर अभिनेता को शिक्षा दें, तभी अभिनय अच्छा होता है। पर सभी नाटककार स्टेज मैनेजर नहीं होते। कुछ बड़े बड़े नाटककार यह भी नहीं जानते कि किस प्रकार उनके नाटक रङ्गमञ्च पर खेले जा सकते हैं।

जान पड़ता है कि आप किसी हास्य-रसिक अभिनेता को स्वेच्छानुसार अपने चरित्र का अभिनय करने नहीं देते।

वह अभिनेता के ऊपर निर्भर है।

आप किसी नये नाटक-रचना के समय किसी अभिनेता के लिए विशेष भाव से किसी चरित्र की सृष्टि करते हैं क्या? जिस समय आप La Toxa लिखते थे उस समय क्या "साराबार्नार्ड" के लिए कोई चरित्र विशेष भाव से लिखा गया था?

नहीं, मैं इस प्रकार किसी चरित्र की सृष्टि नहीं करता। यह ठीक है कि एक उत्तम अभिनेता के सहारे नाटक अच्छा खेला जाता है। किन्तु मैं सभी अभिनेताओं पर समान दृष्टि रखता हूँ—La Toxa और Fedora दोनों ही के चरित्र को मैंने किसी एक अभिनेत्री के लिए नहीं लिखा था—बात यह है कि अभिनेत्रीगण ही इन दोनों चरित्रों को वे अपना चरित्र कर लेती हैं।

आपने क्या कभी उपन्यास-रचना की चेष्टा की है?

मैंने एक बार एक उपन्यास लिखा था; किन्तु पीछे समझ लिया कि उपन्यास-रचना और नाटक-रचना में भेद है। नाटक करुणा, हास्य, भयानक आदि समस्त रसों का केन्द्र होता है। पृथ्वी के जो दृश्य-समुदाय मलिन और अज्ञात हैं उन्हें दिखाने में मुझे बड़ा आनन्द होता है। Fedora के प्रत्येक चरित्र ही एक दिन जीवित थे।

कोई कोई समझते हैं, नाट्य-रचना सामान्य परिश्रम से ही सम्पादित हो सकती है—यह उनकी भूल है। नाटककार को खूब परिश्रम से उपादानों का सङ्ग्रह करना पड़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—इस परिश्रम का पुरस्कार हज़ारों दर्शकों का हृदयो-स्थित आनन्द-रव है।

ठाकुर नन्दकिशोरसिंह 'विशारद'

——

५—श्वेताङ्गों की संसार-व्यापी प्रभुता।

इस समय सारे भूमण्डल पर गोरों की प्रभुता व्याप्त है। योरप के बाहर अमरीका और आस्ट्रेलिया को उन्होंने अपना घर बना लिया है और यही हाल अफ़्रीका का भी है। परन्तु अफ़्रीका में वहाँ के मूल निवासियों की अपेक्षा उनकी संख्या नगण्य है। अब रह गया सभ्यता का मूल स्थान एशिया, सो उसका भी अधिकांश भाग उन्हीं के क़ब्ज़े में है। मुतलब यह कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सारे भूमण्डल पर गोरों का ही आधिपत्य है। भूमण्डल के सारे भूभाग का क्षेत्र-फल ५,३०,००,००० वर्ग-मील के लगभग है। इसमें ४,७०,००,००० वर्ग-मील भूमि अकेले गोरों के अधिकार में है। अवशिष्ट ६०,००,००० वर्ग-मील भूमि संसार की दूसरी स्वतन्त्र जातियों के क़ब्ज़े में रह गई है। इसमें ४०,००,००० वर्ग-मील भूमि चीनी और जापानियों के हाथ में है। बाक़ी २०,००,००० वर्ग मील भूमि में मुसलमान तथा और दूसरे लोग ज्यों त्यों कर अपनी स्वाधीनता बनाये हुए हैं। परन्तु गत महायुद्ध के फल-स्वरूप इस अवशिष्ट भू-भाग का भी एक बड़ा अंश गोरों के अधिकार में चला गया है। अतएव यह कहना कि इस समय सारे संसार पर गोरे लोग अबाध रूप से शासन कर रहे हैं, किसी प्रकार अत्युक्ति नहीं है। बेसिल मैथूज़ नामक एक विद्वान् ने श्वेताङ्गों की इस विश्व-व्यापी प्रभुता पर अपनी जो सम्मति दी है वह नीचे दी जाती है।

गोरों की इस संसार-व्यापी प्रभुता का सूत्रपात पन्द्रहवीं सदी के अन्तिम भाग में हुआ था। परन्तु उसका वास्तविक अस्तित्व सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ हो जाने पर भी नहीं हो सका था। उस समय अमरीका के अधिकांश भाग पर वहाँ के मूल-निवासियों का ही आधिपत्य था। केवल उसके समुद्री किनारे के कुछ ही भाग पर गोरों के उपनिवेश क़ायम हो सके थे। यही हाल अफ़्रीका का भी था। आस्ट्रेलिया तथा प्रशान्त महासागर के अधिकांश द्वीप उन्हें पूर्णतया अज्ञात थे। उस समय उनकी शक्ति योरप में ही सीमाबद्ध थी। अरबी तथा तुर्क उन्हें दक्षिण तथा दक्षिण पूर्व की ओर आने ही नहीं देते थे और पूर्व में उद्दण्ड मङ्गोल जाति का पूर्ण प्रभाव स्थापित था। परन्तु योरप में विज्ञान की समुन्नति के कारण अभूतपूर्व परिवर्तन सङ्घटित हुआ। फलतः सत्रहवीं सदी से उनकी समुन्नति जो शुरू हुई वह दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई। यहाँ तक कि अब उनकी प्रभुता सारे भूमण्डल पर स्थापित हो गई है।

गत योरपीय महाभारत के सङ्घटित हो जाने से योरप के राजनीतिज्ञों के सम्मुख अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ है कि संसार की सुख-शान्ति के लिए क्या यह अनिवार्य है कि गोरों की प्रभुता संसार व्यापी बनी रहे? तीन चार सदियों के घोर परिश्रम से जो प्रभुता प्राप्त हुई है वह क्या अधिक समय तक स्थिर न रह सकेगी? इनका उत्तर सरलता से नहीं दिया जा सकता। तो भी यह सच है कि गोरों की शक्ति और अजेयता का भ्रम रूस-जापान-युद्ध में ही दूर हो गया था। गत योरपीय महाभारत में यह बात भी सिद्ध हो गई कि स्वयं गोरों में आपस में ही संसार-व्यापी प्रभुता के लिए घोर प्रतिद्वन्द्विता विद्यमान है। इस गृह-युद्ध का यह फल हुआ कि गोरों की शक्ति छिन्न भिन्न हो गई और संसार के प्रभुओं का अस्तित्व मिट जाने से बाल बाल बच गया है। यदि संसार की भिन्न भिन्न जातियाँ गत युद्ध में भाग न लेतीं, तो भूमण्डल के नक़शे में कैसे कैसे परिवर्तन होते, यह अनुमान करना सरल कार्य नहीं है। योरप के युद्ध-क्षेत्र में तथा अन्यत्र जो विशाल सेनायें समवेत हुई थीं उनमें संसार की सारी जातियों ने योगदान दिया था। अमरीका के रेड इंडियन, अफ़्रीका के हबशी, प्रशान्त महासागर के द्वीपनिवासी, तुर्क, अरबी, भारतीय, मलाई, चीनी और जापानी आदि सभ्य, अर्द्ध सभ्य और असभ्य, सभी जातियों ने योरप के महाभारत में साहाय्य प्रदान किया था। यद्यपि यह बात बिलकुल सच है कि इनमें से अधिकांश जातियाँ पराधीनता के कारण युद्ध में भाग लेने को विवश हुई थीं तो भी मित्र-शक्तियों की ओर से उन्हें बहुत भारी प्रलोभन दिया गया था। वह प्रलोभन स्वभाग्य-निर्णय का था। परन्तु युद्ध की समाप्ति के बाद स्वभाग्य-निर्णय की बात हवा में उड़ गई। अतएव भिन्न भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराधीन जातियों में गोरे प्रभुओं के विरुद्ध घोर असन्तोष की अवतारणा हुई है। इनमें से कई एक ने अपने अपने देशों में विकट आन्दोलन खड़े किये हैं। भारत का स्वराज्य-आन्दोलन, मिस्र की स्वाधीनता का प्रश्न, ऐसे ही आन्दोलनों में से हैं। इनके सिवा अफ्रीका के हबशियों की स्वतन्त्रता का जो आन्दोलन अमरीका के हबशियों ने उठाया है वह भी अपने ढङ्ग का एक ही है। अरबों और तूरानियों के ऐक्य आन्दोलन भी उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखे जा सकते हैं। ये सब आन्दोलन संसार की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को दिन प्रति दिन जटिल ही करते जाते हैं। गोरों की संसार-व्यापी प्रभुता-सम्बन्धी उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर इन्हीं कुछ बातों की मीमांसा पर निर्भर करता है।

गिरिजाशङ्कर वाजपेयी

६—जला गांहांणी वार्त्ता।

पंजाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी के लिए जो हस्त-लिखित पुस्तकें (MSS.) मैंने सन् १९१७ में खरीदी थीं उनमें मुझे एक छोटी सी पुस्तक मिली थी। उसका नाम 'जलागांहांणी वार्त्ता' है। इसके ४६ पत्र हैं। वे ४$\frac{3}{4}$ इञ्च लम्बे और ४$\frac{1}{4}$ इञ्च चौड़े हैं। एक पृष्ठ पर १२ से १५ तक सतरें हैं। इसकी लिपि के कितने ही अक्षर जैन-लिपि के हैं जैसे कि अ, इ, उ, ओ, छ, झ, ढ, दु, दू, भ, हु, हू, अक्षर और १२३ अङ्क। इसकी भाषा एक प्रकार की 'मारवाड़ी' है। यह पुस्तक गद्य में है, परन्तु बीच बीच में दोहे भी हैं। इसका परिचय कराने के लिए यहाँ प्रारम्भ और अन्त के अवतरण उद्धृत किये जाते हैं—

प्रारम्भः—अथ जलागांहांणी री वारता लिष्यते।

बेटा कुलहनसीब दा, जास गांहांणी माय।
जिसकी औरत बूबनां, सो मुमनां सुहाइ[1]।

अन्तः इति श्री जलागांहांणी वार्त्ता संपूर्ण, लिपतं नेमबीजै,

संवत् १८२३ का बीरपे मीती पोस सुदि ११॥ सबाई रामजी की पोथी लिखी छैः॥

(१) इस दोहे की भाषा में मारवाड़ी अंश बहुत कम है।

पुस्तक के आरम्भ में मङ्गलाचरण का अभाव है, अतएव यह कहना कि ग्रन्थकर्ता किस सम्प्रदाय का था कठिन है। पर पुस्तकान्त में शिव और पार्वती का उल्लेख होने से यह अनुमान में आता है कि वह शैव रहा होगा। यह प्रति किसी जैन यति की है। यह बात जैन-लिपि के अक्षरों तथा "नेमबीजै" नाम से ज्ञात होती है।

इस पुस्तक की कथा अप्रसिद्ध है। परन्तु वह अत्यन्त ही सरस है और इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली प्रतीत होती है। मैंने इसकी कथा के सम्बन्ध में भारत की अनेक भाषाओं के वेत्ता सर जार्ज ग्रियर्सन् से लिखा पढ़ी की। उन्होंने लिखा है कि हमें ऐसी कोई कथा मालूम नहीं है और मुझे प्रेरणा की है कि मैं इस कथा को इंडियन एंटिक्वेरी में प्रकाशित कर दूँ। मारवाड़ी-साहित्य के ज्ञाता पण्डित रामकर्णजी ने भी लिखा है कि हमने यह कथा नहीं सुनी है।

इस कथा को इण्डियन एंटिकुअरी, में प्रकाशित करने के पहले मैं उचित समझता हूँ कि इसे सरस्वती द्वारा हिन्दी के पाठकों के सम्मुख उपस्थित करूँ। यदि किसी सज्जन को इस कथा के विषय में कुछ मालूम हो तो वे मुझे सीधा या "सरस्वती" द्वारा सूचना देने की कृपा करें।

कथा-सार।

सुलतान मृगतमायची ठठाभखर का बादशाह था। उसकी गांहांणी नाम की बहन का विवाह बलख़ के बादशाह कुलहनसीब से हुआ था। गांहांणी के दो पुत्र हुए। उनके नाम थे शाह थेभो और शाह जलाल। वे अभी बालक ही थे कि कुलहनसीब की मृत्यु होगई और उसके राज्य में "भोम्यां" का ज़ोर हो गया। इस दशा में गांहांणी अपने दोनों पुत्रों को लेकर अपने भाई मृगतमायची के पास आ गई। मृगतमायची ने अपने भानजों को दोहज़ारी का मनसब दिया। जलाल चतुर और बुद्धिमान् था। अतएव बादशाह ने प्रसन्न होकर २०००) रुपया मासिक उसके ख़र्च के लिए नियत कर दिया। अब तो जलाल ख़ूब गुलछर्रे उड़ाने लगा। दिन-रात अतर-फुलेल में डूबा रहता था।

जब जलाल १२ बरस का हुआ तब उसने मृगतमा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यची से प्रार्थना की कि मैं बादशाह कुलहनसीब का पुत्र हूँ, २०००) रुपया से मेरी गुज़र नहीं चलती। आप मेरा मनसब बढ़ा दें, मैं हर तरह आपकी सेवा करने को तैयार हूँ। मृगतमायची के दिल में यह बात लग गई। उसने जलाल को सात हज़ारी मनसब दे दिया।

अब जलाल दिन-रात विषय-वासनाओं में लिप्त रहने लगा। वह बड़े उदार स्वभाव का था, सैकड़ों रुपये ग़रीब लोगों में बांट देता। इससे जलाल की कीर्त्ति देश-देशान्तरों में फैल गई।

सिन्ध समद में भवँर नाम के बादशाह का राज्य था। उसकी बेगम "जचन" जाति की थी। उसका नाम "जंदणी" था। इस बेगम के दो लड़कियां पैदा हुईं—मूमना और बूबना। बूबना छोटी थी, किन्तु बड़ी चतुर और बुद्धिमान थी। जब वे दोनों बहनें युवा हुईं तब बादशाह को उनके विवाह की चिन्ता हुई। उसके मन्त्रियों ने सलाह दी कि बूबना की शादी जलाल से होनी चाहिए, क्योंकि वे दोनों पूरे छैल हैं और सब प्रकार एक दूसरे के योग्य हैं। मूमना का सम्बन्ध मृगतमायची से करना चाहिए। वह उस के योग्य है। बादशाह ने इस बात को पसन्द किया और मूमना और बूबना का सम्बन्ध ठीक कर आने के लिए उसने मृगतमायची के पास अपने दूत भेजे।

तब मृगतमायची के पास दूत पहुँचे तब उसने कहा कि बूबना का डोला मुझे देदो और मूमना का विवाह जलाल से कर दो। भवँर के दूतों ने सोचा कि मृगतमायची बड़ा शक्ति-शाली है, इसे नाराज़ करना अच्छा नहीं। उन्होंने भवँर की आज्ञा के बिना ही बूबना का सम्बन्ध मृगतमायची से और मूमना का सम्बन्ध जलाल से कर दिया। जब बरात भवँर के घर पहुँची तब उसे पता लगा कि दूतों ने बूबना की सगाई मृगतमायची से कर दी। वह दूतों पर बहुत कुपित हुआ और लाचार होकर उसे बूबना की शादी मृगतमायची से और मूमना की शादी जलाल से करनी पड़ी। शादी के दिनों में ही जलाल की दृष्टि बूबना पर पड़ गई थी। वह देखते ही उस पर मोहित हो गया। बूबना भी जलाल को चाहने लगी।

मृगतमायची के राज-महलों में बूबना के पहुँच जाने पर भी जलाल उसके पास आया जाया करता, परन्तु इस काम में उसे बड़ी कठिनाइयां झेलनी पड़ती थीं, जैसा कि नायकों को प्रायः करना पड़ता है। कभी बूबना रस्सी द्वारा जलाल को ऊपर खींच लेती, कभी जलाल बूबना की मालिन के फूलों के टोकरे में छिपकर राजमहल में चला जाता। सारांश यह कि जलाल किसी न किसी प्रकार बूबना के महल में पहुँच जाता।

बूबना की सौतों ने मृगतमायची से इस बात की शिकायत की कि जलाल सदा बूबना के महलों में आता है। मृगतमायची ने कई बार परीक्षा की, परन्तु वह जलाल पर सन्देह न कर सका। पर जब सौतों ने बार बार इस बात की शिकायत की तब मृगतमायची को सन्देह हो गया और वह जलाल के मारने का उपाय सोचने लगा।

दैवयोग से परगनह उच (सिन्ध का एक हिस्सा) पर 'जोहिया' लोगों ने आक्रमण किया। मृगतमायची ने जलाल को थोड़ी सी फ़ौज देकर उसे जोहियों से लड़ने के लिए भेजा। मृगतमायची का ख़याल था कि जलाल युद्ध में मारा जायगा, परन्तु जलाल जोहियों को जीत कर लौट आया और आते ही सर्वप्रथम बूबना से मिलने गया। अब मृगतमायची को जलाल के दोष का निश्चय हो गया। उसने अपने मन्त्रियों से जलाल के मारने का उपाय पूछा। उन्होंने सोच कर कहा कि और सब उपाय व्यर्थ हैं, जलाल और बूबना का ऐसा घनिष्ठ प्रेम है कि यदि वे एक दूसरे को मरा सुनेंगे तो झट प्राण त्याग देंगे॥

तब मृगतमायची जलाल को साथ लेकर शिकार को गया। लौट कर उसने शहर में यह बात प्रसिद्ध कर दी कि जलाल को सिंह ने खा लिया। यह सुनते ही बूबना के प्राण निकल गये। जब शिकार से वापस आकर जलाल ने बूबना को मरा सुना तब उसी दम उसकी भी मृत्यु हो गई।

मृगतमायची ने उन दोनों को एक ही क़ब्र में दफ़न करवाया। एक दिन शिव और पार्वती क़ब्र के पास से जा रहे थे। पार्वती ने क़ब्र पर भौंरों को गूँजते देख कर शिव से उसका कारण पूछा। शिव ने कहा कि इस क़ब्र में जलाल और बूबना दफ़न हैं। वे दोनों ही पूरे छैल थे। सदा अतर-फुलेल लगाये रहते थे। अब मर जाने पर भी उनकी क़ब्र में से ऐसी सुगन्धि आती है कि भौंरे मस्त होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुञ्जार करते फिरते हैं। इस पर पार्वती ने शिव से कहा कि मैं इन दोनों को जीवित देखना चाहती हूँ। शिव ने बहुतेरा समझाया कि यह ठीक नहीं है, परन्तु पार्वती न मानी। आख़िर, शिव ने जलाल और बूबना को जीवित कर दिया। उन्हें देख कर पार्वती बोली कि ये तो अभी जवान हैं। अभी इनकी मृत्यु न होनी चाहिए। शिव ने उन्हें जीवित ही रहने दिया और कहा कि आज से तीसरे दिन मृगतमायची मर जायगा। फलतः मृगतमायची तीसरे दिन मर गया और मन्त्रियों ने सलाह कर जलाल को राज-सिंहासन पर बिठला दिया। अब जलाल और बूबना हँसी खुशी के साथ रहने लगे।

बनारसीदास जैन

६—मोती की कथा।

समुद्र से मोती निकालना, उसे खोलना और जांचना इतना भयानक व्यापार है कि पूर्व-काल में यह काम गुलामों से लिया जाता था। परन्तु आज-कल यह सब काम मोती निकलने के स्थान के मूलनिवासी कर लेते हैं। संसार के अनेक स्थानों में मोती पाया जाता है। परन्तु सबसे अधिक मूल्यवान् मोती लङ्का के उत्तर मनार खाड़ी में बहुतायत से होता है। वहां आधे मार्च के बाद मोती निकालने का कार्य प्रारम्भ होता है और चार-पांच सप्ताह में समाप्त हो जाता है।

कार्य शुरू करने के पहले लङ्का के सरकारी अफ़सर खाड़ी में जाकर सीपों की परीक्षा करते हैं। जब उन्हें यह विश्वास हो जाता है कि वहां मोती की अधिकता है तब वे लङ्का और हिन्दुस्तान के लोगों को इस बात की सूचना देते हैं कि अमुक स्थान में अमुक तिथि से मोती निकालने का कार्य प्रारम्भ होगा। इस सूचना का फल आश्चर्य-जनक होता है। जो स्थान थोड़े दिन पहले मरुस्थल के समान निर्जन था वही उद्योग का भवन बन जाता है। वहाँ केवल एक मास के लिए सरकारी दफ़्तर, मुला-ज़िमों के निवासस्थान, कचहरी, जेल, कोठे, बाज़ार, दूकानें और कुलियों की झोपड़ियां बन जाती हैं।

शुरू मार्च से ही मछुओं की किश्तिओं का बेड़ा खाड़ी पर नृत्य करने लग जाता है और पर्व आते ही गोताखोरों का कर्म-काण्ड भी प्रारम्भ हो जाता है। प्रत्येक नाव पर प्रायः बीस मनुष्य सवार रहते हैं, जिनमें आधे नाव खेते हैं और आधे समुद्र में ग़ोता लगाते हैं। प्रातःकाल तोप की आवाज़ सुन पड़ने पर सब नावें निश्चित स्थान पर जा पहुँचती हैं। प्रत्येक नाव के डुबकी लगानेवालों का दल दो भागों में बँटा रहता है। एक दल के बाद दूसरा दल बारी बारी से ग़ोता लगाता और सुस्ताता है। यहाँ यह भी बता देना उपयुक्त होगा कि ग़ोताखोर केवल व्याघ्र-चर्म ही पहने रहते हैं और सीप भरने के लिए जालीदार थैली अपने हाथ में लिये रहते हैं।

ग़ोताखोर बड़ी अनोखी रीति से डुबकी मारता है। जिस रस्से के सहारे वह समुद्र-तल में जाता है उसके छोर पर पचीस-तीस सेर का पत्थर बँधा रहता है। उस पर वह दाहने पांव से खड़ा होता है और दाहने हाथ से रस्से को मज़बूती से पकड़ कर बांयें हाथ से अपनी नाक बन्द कर लेता है। यह सब हो चुकने के अनन्तर रस्सा ढीला जाता है और ग़ोताखोर पत्थर के बोझ के कारण समुद्र की तली में बड़ी शीघ्रता से जा पहुँचता है। वहां वह चालीस-पचास सेकंड तक ठहरता है और इतनी ही देर में जो कुछ सीप उसके हाथ लग जाती हैं उन सबको थैले में भर कर रस्सा ऊपर खींचा जाने के लिए अपने साथियों को सङ्केत करता है। जब वह नाव पर चढ़ आता है तब अपनी थैली ख़ाली करता है और एक मिनिट सुस्ता कर ग़ोता लगाने के लिए फिर तैयार हो जाता है। कहते हैं कि प्रवीण ग़ोताखोर अस्सी सेकंड तक पानी के भीतर रह सकता है। परन्तु ऐसे मनुष्य बिरले होते हैं। अलबत्ता अपनी बारी भर में पचास दफ़े ग़ोता लगानेवाले मनुष्य बहुतायत से मिलते हैं। जब एक दल ग़ोता लगाता रहता है तब दूसरा नाव पर बैठे बैठे सीपों को स्वच्छ करता और छांटता रहता है।

बारह बजते ही सब नावें किनारे पर आ लगती हैं। उस समय ग़ोताखोर बहुत थके हुए दिखाई पड़ते हैं। हर एक नाव का माल सरकारी कोठे में लाया जाता है और वहां वह घास की चटाई पर फ़ैलाया जाता है। फिर प्रत्येक खेप के तीन बराबर बराबर भाग किये जाते हैं। इनमें से दो भाग बतौर लगान के सरकार ले लेती है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा भाग गोताख़ोरों को दिया जाता है। ये लोग संसार के भिन्न भिन्न भाग से आये हुए व्यापारियों के हाथ अपने हिस्से की सीपी बेंच देते हैं। सरकार भी लगान में मिले हुए माल को नीलाम कर देती है, जिससे उसे ख़ासी आमदनी हो जाती है।

व्यापारी लोग पहले सीपी को जलपूर्ण पुरानी नाव या गड़े में डाल कर सड़ाते हैं। जब वह ख़ूब सड़ जाती हैं तब उसमें से मोती अलगाते हैं। जो मोती सीप के कोमल भाग में रहता है और जिसका आकार बिलकुल गोल होता है वह बहुत क़ीमती माना जाता है। परन्तु मोती बहुधा सीप के कड़े भाग में ही लगा हुआ मिलता है। कई एक मोती सीप से ऐसे जुड़े रहते हैं कि उन्हें निकालने के लिए चिमटी का उपयोग करना पड़ता है।

मोती निकालने का कार्य जितना ही उत्साहवर्धक है उतना ही भयानक भी है। पानी में डूब जाने और श्वासोच्छ्वास की कठिनाई के अतिरिक्त भिन्न भिन्न प्रकार के भयङ्कर समुद्रीय जीव-जन्तुओं का सामना हो जाने का बहुत भय रहता है। ऐसे जीव-जन्तुओं के आक्रमण से बचने के लिए कोई कोई गोताख़ोर भाला लेकर समुद्र में पैठते हैं। परन्तु साधारणतः उन लोगों का यह विश्वास है कि मन्त्र-तन्त्र जाननेवाले समुद्रीय उत्पातों से उनकी रक्षा कर सकते हैं। इसी विश्वास के कारण वे लोग मन्त्र जाननेवाले को अपने सङ्ग नाव में बिठा कर ले जाते हैं और जब तक वह डुबकी लगाने के स्थान को मन्त्र-बल से बाँध नहीं देता तब तक कोई गोताख़ोर समुद्र में पैठने का साहस नहीं करता।

कभी कभी गोताख़ोरों को सीप से मुक़ाबिला करना पड़ जाता है। इस विषय की एक कथा है। वह इस प्रकार है :—आस्ट्रेलिया के समुद्री-तट पर एक गोताख़ोर ने डुबकी लगाई और सीप के लिए भूमि को टटोलने लगा। इतने में उसकी अँगुलियां एक बड़े घोंघे के खुले मुँह के भीतर जा पड़ीं। उस घोंघे ने इस अपमान के बदले में उस मनुष्य की अँगुलियों को बड़ी ज़ोर से धर दबाया और उसके हज़ार प्रयत्न करने पर भी उसने उन्हें नहीं छोड़ा। घोंघा एक चटान से चिपका हुआ था, अतः उसे खींच लाना मनुष्य की शक्ति के बाहर था। दोनों में बड़ी देर तक लड़ाई होती रही, परन्तु उसका परिणाम मनुष्य के पक्ष में बहुत बुरा हुआ। इस युद्ध में वह इतना थक गया कि बेहोश होकर नीचे गिर पड़ा। उस दिन से वह पानी के बाहर फिर नहीं निकला।

चीनियों में यह प्रथा है कि वे प्रायः सीप को खोल कर उसमें भगवान् बुद्ध की छोटी सी मूर्ति रख देते हैं और उसे समुद्र में डाल देते हैं। जब कभी वह फिर से गोताख़ोरों के हाथ लग जाती है तब उसके भीतर की मूर्ति प्रकाशमान पदार्थ से मढ़ी हुई मिलती है। ऐसी मूर्ति की क़ीमत बहुत होती है और उसे धनी लोग शोभा के लिए ख़रीदते हैं। कहा जाता है कि जिस घर में वह मूर्ति रहती है उसमें रहनेवालों पर जादू-टोने का असर नहीं होता। परन्तु इस बात की सत्यता में सन्देह जान पड़ता है।

(सङ्कलित)

वनमालीप्रसाद शुक्ल

विविध विषय।

१—हिन्दू-विश्वविद्यालय में देशी भाषायें और उनका साहित्य।



मनी में यदि उच्च शिक्षा अँगरेज़ी भाषा के द्वारा, इँगलिस्तान में हिन्दुस्तानी भाषा के द्वारा, फ़्रांस में तुर्की भाषा के द्वारा, अमरीका में रूसी भाषा के द्वारा और जापान में सिंहली भाषा के द्वारा दी जाने का केवल उपक्रम या प्रस्ताव किया जाय तो ऐसे उपक्रम या प्रस्ताव की सचाई पर ही किसी को विश्वास न हो और यदि हो भी तो प्रस्ताव-कर्त्ता पागल ज़रूर समझा जाय और लोग उसके प्रस्ताव को बहुत बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से देखें। यदि उसका यह कार्य्य अग्रसर होता देख पड़े तो प्रतिकूल आलोचनाओं का तूफ़ान आ जाय और वह प्रस्ताव बात की बात में उड़ा दिया जाय। ऐसे अस्वाभाविक कार्य का प्रस्ताव ही न टिकने पावे, उसके अनुसार कारखाई होने की कथा तो दूर रही। देशी छोड़ कर विदेशी भाषा के सहारे शिक्षा देना सर्वथा अप्राकृतिक है। परन्तु अप्राकृतिक और अस्वाभाविक घटनाओं के आकर अभागे भारत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही बात हो रही है। यहाँ अँगरेज़ों की विलायत, इँगलिस्तान, की भाषा के द्वारा शिक्षा दी जाती है। इसका कारण यह है कि यहाँ राज्य अँगरेज़ों ही का है।

जिस समय बनारस के हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना का विचार उसके संस्थापकों के हृदय में उद्भूत हुआ और चन्दा वसूल करने के लिए उसके उद्देश आदि का विवरण प्रकाशित किया गया उस समय भारतवासियों को यह वचन दिया गया कि इस विद्यालय में उच्च शिक्षा देशी भाषाओं के द्वारा भी दी जायगी; पाठ्य-क्रम में इन भाषाओं और इनके साहित्य को भी स्थान मिलेगा। विश्वविद्यालय के अस्तित्व में आ जाने पर उसके अधिकारी इस पूर्वनिर्दिष्ट अभिवचन की पूर्ति न कर सके। इस कारण वे कठोर उपालम्भ के भाजन हुए; उन्हें बड़ी कड़ी आलोचनायें सुननी पड़ीं। परन्तु वह सब उन्होंने शान्त-चित्त होकर सुन लिया। इस नये, और इस देश के लिए इस अभूतपूर्व, काम में जिन विघ्नों और बाधाओं का सामना करना था उनमें प्राबल्य की बहुत विशेषता थी। अतएव सहसा उन पर पूरी विजय-प्राप्ति न हो सकी। इतना अवश्य हुआ कि एफ़० ए० और बी० ए० की पढ़ाई में स्वदेशी भाषाओं के अनुवाद-विषय को जगह मिल गई और परीक्षा में एक परचा अनुवाद का भी रक्खा गया। यह क्रम कई साल तक जारी रहा।

ख़ुशी की बात है कि विश्वविद्यालय ने अब इसके आगे भी क़दम बढ़ाया है। कई महीने हुए, उसके अधिकारियों ने यह विचार किया कि आगे से एफ़० ए० और बी० ए० क्लासों में देशी भाषाओं और उनके साहित्य की पढ़ाई को भी ऐच्छिक-रूप से स्थान मिले तो अच्छा हो। अर्थात् इन क्लासों में पढ़नेवाले जो छात्र इच्छा करें वे अपनी देशभाषा और साहित्य के विषय का भी अध्ययन कर सकें। साथ ही एम० ए० क्लास के जो छात्र देशी भाषाओं और उनके साहित्य के अध्ययन में आचार्य्य-पद प्राप्त करना चाहें वे भी वैसा कर सकें। अर्थात् आज-कल छात्र जैसे संस्कृत, अरबी और फ़ारसी में एम० ए० होते हैं वैसे ही देश की प्रचलित भाषाओं में भी हो सकें। यह विचार अब निश्चय में परिणत हो गया है। सिनेट ने पढ़ाई के क्रम—पाठ्यविषय आदि—की मन्ज़ूरी भी दे दी है। सिर्फ़ "विज़िटर" महाशय की मन्ज़ूरी मिलना है. सो मिल ही जायगी। पढ़ाई का क्रम अब आगे, इसी जूलाई से, कुछ कुछ इस प्रकार होगा—

एफ़० ए० की परीक्षा में तीन परचे रहेंगे। एक परचा पद्य-विषयक होगा, दूसरा गद्य-विषयक। तीसरा होगा अनुवाद का। उसके अनुसार अँगरेज़ी भाषा से देशी भाषाओं में और देशी से अँगरेज़ी भाषा में अनुवाद करना पड़ेगा।

बी० ए० की परीक्षा में भी वही और उतने ही परचे रहेंगे जो और जितने एफ़० ए० की परीक्षा में रहेंगे। हाँ, जो छात्र बी० ए० में विशेष पारदर्शिता दिखाना अर्थात् नामवरी हासिल करना चाहेंगे उन्हें किसी ग्रन्थकार-विशेष के ग्रन्थ आदि का भी ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा। अतएव उनकी उस विषय की परीक्षा के लिए एक और (चौथा) परचा भी रहेगा।

एम० ए० की परीक्षा में सब मिला कर दस परचे होंगे। यथा—

(१), (२), (३) तीन परचों का सम्बन्ध पाठ्य-पुस्तकों से रहेगा।

(४) एक परचा गृहीत भाषा और उसके इतिहास से सम्बन्ध रक्खेगा।

(५) एक परचे में किसी उच्च-कोटि के साहित्य विषय पर निबन्ध लिखने की सूचना रहेगी।

(६) अनुवाद का भी एक परचा रहेगा।

(७) समालोचना के पूर्वी और पश्चिमी सिद्धान्तों के ज्ञान की जाँच के लिए एक परचा होगा।

(८) गृहीत से भिन्न किसी अन्य स्वदेशी भाषा के ज्ञान का परीक्षक भी एक परचा रहेगा।

(९) अपने देश की भाषाओं के तुलना-मूलक शास्त्र के विषय में एक परचा होगा।

(१०) किसी काल-विशेष के साहित्य या किसी ग्रन्थकार-विशेष से सम्बन्ध रखनेवाला भी एक परचा रहेगा।

पढ़ाई के ये विषय ख़ूब सोच-समझ कर विचारपूर्वक रक्खे गये हैं। जो लोग ये सब विषय पढ़ कर एम० ए० होंगे वे निःसन्देह अपने विषय के अच्छे ज्ञाता होंगे। उन्हें परिश्रम भी यथेष्ट करना पड़ेगा—अँगरेज़ी, फ़ारसी, अरबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और संस्कृत में एम० ए० होनेवालों की अपेक्षा शायद कुछ ही कम श्रम करना पड़े। "कुछ ही कम" हम इसलिए कहते हैं कि अपनी मातृ-भाषा और उसके साहित्य के अध्ययन में थोड़ा बहुत सुभीता ज़रूर रहता है। अतएव श्रम कुछ कम अवश्य पड़ता है। परन्तु यह कोई दोष नहीं। श्रम कम पड़ कर भी यदि विषय का चूडान्त ज्ञान हो जाय तो फिर क्या कहना है। सोने में सुगन्ध आगई समझना चाहिए।

आशा है, हिन्दू-विश्वविद्यालय विपक्षियों की इस दलील को अब अच्छी तरह भ्रान्त सिद्ध कर देगा कि देशी भाषाओं में उच्च शिक्षा देने के लिए पाठ्य-पुस्तकें ही नहीं मिल सकतीं। हाँ, एक बात हमें कहना है। वह यह कि एम० ए० क्लास के छात्रों को पढ़ाने के लिए सुयोग्य अध्यापक रखने होंगे। जिनमें हमादानी अधिक और विद्यादानी कम हैं उनसे काम न चलेगा। अँगरेज़ी और संस्कृत के यथेष्ट ज्ञाता होकर जो लोग प्राकृत और कुछ अरबी-फ़ारसी का भी ज्ञान रखते होंगे वही तुलनामूलक भाषा-शास्त्र अच्छी तरह पढ़ा सकेंगे।

इस उच्च शिक्षा के लिए अभी अपने प्रान्त की प्रधान भाषा हिन्दी ही चुनी गई है। कालान्तर में, आवश्यकतानुसार, अन्य भाषाओं का भी प्रवेश होने की सम्भावना है।

२—नगरों में अनिवार्य शिक्षा देने का विचार।

मानसिक और शारीरिक कष्टों का सबसे प्रबल कारण अशिक्षा अथवा निरक्षरता है। पढ़े-लिखे आदमी में ज्ञान और बुद्धि-विकास की मात्रा जितनी रहती है, अपढ़ में उतनी नहीं। साक्षर होने से ज्ञानाधिक्य की सहायता से, मनुष्य कितने ही रोगों से बच सकता है; अपढ़ों की अपेक्षा अधिक धनोपार्जन कर सकता है; विपत्ति के बादल घिर आने पर उनसे वह अपना बचाव भी अधिक कर सकता है। बात यह है कि—"विद्याविहीनः पशुः"। अपढ़ आदमी मनुष्य नहीं, पशु के सदृश है। इस पशुत्व से बचने, और सुखचैन से रहने के अधिक साधन प्रस्तुत कर सकने, के लिए शिक्षा-प्राप्ति और विद्योपार्जन की आवश्यकता मनुष्य-मात्र के लिए है।

परन्तु शिक्षा की कमी होने के कारण भारतवासियों में पशुत्व ही अधिक है, मनुष्यत्व कम। इसी से गोखले आदि के सदृश कितने ही महानुभावों ने आज तक प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य करा देने के लिए गवर्नमेंट पर बार बार दबाव डाला है। यह दबाव उस पर अब तक डाला जा रहा है। अपने प्रान्त में इसका कुछ फल भी होने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। म्यूनीसिपैलिटियों के लिए इस विषय का एक क़ानून भी बन गया है।

जनवरी १९२१ में गवर्नमेंट ने अपने प्रान्त के म्यूनीसिपल बोर्डों के सामने एक तजवीज़ पेश की। उसने कहा—कहो, अपने स्कूलों में अनिवार्य शिक्षा जारी कराना चाहते हो या नहीं? चाहते हो तो मुफ़स्सिल तौर पर यह बताओ कि उसका प्रबन्ध किस तरह करोगे? कितना अधिक ख़र्च दे सकोगे? कौन कौन नई बातें करनी होंगी और उन्हें करने के लिए तुम कहाँ तक तैयार हो?

उत्तर में ३२ म्यूनीसिपल बोर्डों ने अनिवार्य शिक्षा देने—अर्थात् ६ से ११ वर्ष तक के बच्चों को ज़बरदस्ती मदरसों में भरती करने—के विषय में अपनी रज़ामन्दी ज़ाहिर की। पर ये बोर्ड ख़र्च वग़ैरह की तफ़सील ठीक ठीक न बता सके; किसी ने किसी सिद्धान्त का अनुगमन किया, किसी ने किसी का। तब लाचार होकर गवर्नमेंट ने अपने शिक्षा-विभाग के अफ़सरों से कहा कि बोर्डों के भरोसे बैठे रहना ठीक नहीं। जो बातें गवर्नमेंट जानना चाहती है वे तुम्हीं बताओ तो काम चले। ख़याल इतना ही रहे कि सबके लिए सिद्धान्त एक ही रहे और उसी को आँख के सामने रख कर सिफ़ारिशें की जायँ।

शिक्षा-विभाग के लिए यह कौन बड़ी बात थी। ऐसी ऐसी तजवीज़ें पेश करना और उन्हें कार आमद करने के लिए रास्ता बताना उसके बायें हाथ का खेल है। उसके अफ़सरों ने गवर्नमेंट की आज्ञा का पालन कर दिया। उनके वक्तव्य का सारांश सुन लीजिए—

(१) जिन नगरों और क़सबों में म्यूनीसिपल बोर्ड हैं वहाँ अभी कोई ८० फ़ी सदी बच्चों को स्कूल जाना पड़ेगा। बाक़ी २० फ़ी सदी में से कुछ तो मुस्तसना कर दिये जायँगे और कुछ म्यूनीसिपैलिटी के स्कूलों में न जाकर अँगरेज़ी स्कूलों में भरती होंगे।

(२) अनुमान यह है कि १९२२–२३ ईसवी में ७५ फ़ी सदी को, १९२३–२४ में ९० फ़ी सदी को, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९२४–२५ में १०० फ़ी सदी बच्चों को ज़बरदस्ती स्कूल भेजना पड़ेगा ।

(३) ख़र्च वग़ैरह का जो तख़मीना किया गया है उसमें यह मान लिया गया है कि हर प्रारम्भिक मदरसे में १५० लड़के पढ़ेंगे और हर ३० लड़कों के लिए एक मुदर्रिस रखना पड़ेगा । मुदर्रिसों को वही तनख़्वाह देनी पड़ेगी जो डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मुदर्रिसों को दी जाती है । अध्यापन-कार्य की शिक्षा जिन्होंने नहीं पाई उन्हें कम से कम १४) महीना तनख़्वाह मिलेगी ।

(४) अध्यापन-कार्य की शिक्षा के लिए अधिक ट्रेनिङ्ग क्लासें खोलनी पड़ेंगी जिससे किसी के छुट्टी जाने, मुलाज़िमत छोड़ने या मर जाने पर काम न रुके । जितने मुदर्रिस नये रक्खे जायँगे उनमें से आधे मुदर्रिसों को ट्रेनिङ्ग क्लासों में अध्यापन-कार्य सीखना पड़ेगा ।

(५) जो मुतफ़र्रिक ख़र्च हर साल करना पड़ेगा उसका अनुमान नीचे लिखे अनुसार है—

(क) हर प्रारम्भिक मदरसे के नौकरों के लिए १००, साल ।

(ख) हर प्रारम्भिक मदरसे के मकान के सालाना किराये के लिए ३०) जब तक नई इमारत न बन जाय ।

(ग) हर नये मुदर्रिस के मुतफ़र्रिक ख़र्च के लिए, जिसमें काग़ज़, क़लम, दावात और इनाम भी शामिल हैं, २०) साल ।

(घ) हर ट्रेनिङ्ग क्लास के मुतफ़र्रिक ख़र्च के लिए २००) साल ।

(६) जो अफ़सर मदरसों की निगरानी करेंगे उनकी तनख़्वाह और मुतफ़र्रिक् ख़र्च का अनुमान नीचे लिखे अनुसार समझिए—

(क) २० या २० से कम मदरसों की म्यूनीसिपैलिटियों के अफ़सर की तनख़्वाह ५०) महीना और ख़र्च २४०) साल ।

(ख) २१ से ५० तक मदरसोंवाली म्यूनीसिपैलिटियों के अफ़सर की तनख़्वाह ७५) महीना और ख़र्च ३००) साल ।

(ग) ५० से ऊपर मदरसोंवाली म्यूनीसिपैलिटियों के अफ़सर की तनख़्वाह १००) महीना और ख़र्च ४२०) साल ।

(७) इसके सिवा शुरू शुरू में और भी कुछ ख़र्च पड़ेगा । यथा—

(क) जो लड़के नये भरती होंगे उनमें से फ़ी लड़के के लिए टाट, काला तख़्ता और चित्रलिपि आदि का ख़र्च ३) के हिसाब से पड़ेगा । यह बात आरम्भिक मदरसों की हुई । ट्रेनिङ्ग क्लासों का आरम्भिक ख़र्च होगा कोई २००) ।

(ख) हर प्रारम्भिक स्कूल की इमारत का ख़र्च होगा कोई ७ हज़ार रुपया । इस ख़र्च में ज़मीन की क़ीमत शामिल नहीं ।

यह हुआ शिक्षा-विभाग के अफ़सरों का लगाया हुआ तख़मीना और उनकी बताई हुई तफ़सील । इस पर गवर्नमेंट की आज्ञा है कि अगर इतने रुपये के लिए उसके ख़ज़ाने में गुंजायश हो और क़ानूनी कौंसिल उसे ख़र्च करने की मञ्ज़ूरी भी दे दे तो वह म्यूनीसिपैलिटियों में अनिवार्य शिक्षा जारी करने के लिए तैयार है । इस निमित्त जितना ज़ायद ख़र्च पड़ेगा उसका दो तिहाई वह देगी । इसके सिवा मुदर्रिसों को कम से कम तनख़्वाह देने के जो निर्ख़ हैं उनके अनुसार तनख़्वाह देने के लिए जितना रुपया अधिक ख़र्च होगा वह भी गवर्नमेंट देगी । शर्त यह है कि उसे कुल ख़र्च ६० फ़ी सदी से अधिक न करना पड़े । मतलब यह कि १००) में ६०) गवर्नमेंट देने को तैयार है । बाक़ी ४०) म्यूनीसिपैलिटी दे ।

गवर्नमेंट की इस उदारता के लिए धन्यवाद । आशा है, ऐसी एक भी म्यूनीसिपैलिटी न निकलेगी जो फ़ी सदी ४०) भी अधिक ख़र्च न कर सके । और यदि कोई निकल भी आवे तो समझना चाहिए कि उसके मेम्बरों ने अपने कर्तव्यपालन की गुरुता नहीं समझी । अतएव वे मेम्बरी के योग्य ही नहीं ।

३—कविता की परीक्षा ।

अँगरेज़ी के एक पत्र में बड़े और छोटे कवियों में यह भेद बतलाया गया है कि प्रायः कला का नैपुण्य छोटे कवियों ही में अधिक प्रदर्शित होता है । कला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की दृष्टि से जो रचना पूर्ण प्रतीत होती है उसकी महत्ता के विषय में लोगों को सन्देह होने लगता है। यह सच है कि कविता स्वयं एक कला है और भाव की अभिव्यक्ति के लिए सभी कलाओं को एक निर्दिष्ट पथ से जाना पड़ता है। साहित्य-शास्त्र के मर्मज्ञों ने कविता के लिए जो नियम निर्धारित किये हैं उनका एक-मात्र उद्देश यही है कि कवित्व-कला का पूर्ण विकास हो। परन्तु जब कवि उन्हीं नियमों के अनुधावन में अपनी शक्ति लगा देता है तब हमें यही सन्देह होता है कि कहीं इस कवि की कला निष्प्राण तो नहीं है। बात यह है कि हम कवियों से यही आशा रखते हैं कि उनकी कला का आधार मनुष्य-संसार हो, उसमें मानव-जीवन की यथार्थ समीक्षा की गई हो। टेनीसन और ब्राउनिङ्ग अँगरेज़ी के दो प्रसिद्ध कवि हैं। टेनीसन की कृति में कला का जो नैपुण्य है वह ब्राउनिङ्ग की रचना में नहीं है, परन्तु उसके साथ ही ब्राउनिङ्ग ने मानव-जीवन की जैसी समीक्षा की है वैसी समीक्षा हम टेनीसन की कविता में नहीं पाते। टेनीसन अपने जीवन-काल में बड़े लोक-प्रिय रहे, परन्तु ब्राउनिङ्ग की लोक-प्रियता अब बढ़ रही है। कला की सार्थकता मानव-जीवन की सम्पूर्णता को व्यक्त करने में है। परन्तु कला जीवन से पृथक् हो गई है। फल यह हुआ है कि कला के उत्कर्ष से कविता का उत्कर्ष नहीं माना जा सकता।

बिहारी की रचना में जो कला-नैपुण्य है वह कदाचित् हिन्दी के दो ही एक कवियों में होगा। थोड़े ही शब्दों में अपने भाव को उन्होंने ऐसी अच्छी रीति से व्यक्त किया है कि वर्णित विषय का चित्र सा खिँच जाता है। जो बात लोग लम्बे लम्बे छन्दों में नहीं कह सके उसको उन्होंने एक छोटे से दोहे में कह दिया। यह तो सभी स्वीकार करेंगे। परन्तु क्या उन्होंने मानव-जीवन की सूक्ष्म आलोचना की है? घड़ी भर के लिए हम बिहारी के रस-चमत्कार और कला-कौशल पर ध्यान न देकर उनके वर्णित विषय पर विचार करेंगे। पाठकगण पहले एक समृद्धिशाली नगर की कल्पना कर लें जहाँ बड़ी बड़ी इमारतें हैं। उनके साथ एक उद्यान भी अवश्य होना चाहिए। घर का भीतरी भाग खूब सजा हुआ है। कमरों में झाड़-फ़ानूस लगे हैं। कपूर, चन्दन और गुलाब-जल का छिड़काव होता है। यही बिहारी के नायक और नायिकाओं का निवासस्थान है। बिहारी की नायिकाएँ ऐसा बारीक कपड़ा पहनती हैं कि उनके भीतर झिलमिली की अपार ज्योति झलकती है मानो समुद्र में पत्तों सहित कल्प-वृक्ष की शाखा शोभा दे रही है। भाल पर बिन्दी लगाये, मुँह में पान खाये, सिर के बालों में फुलेल और आँखों में काजल लगाये ये सेनजुही की वाटिका में घूमती रहती हैं। ये इतनी सुकुमार हैं कि इनके पैर धोते समय नाइन फफोले पड़ जाने के डर से अपना हाथ तलुवों में नहीं छुआ सकती। गुलाब के झाँवा से पैर का तलुआ रगड़ा जाता है। ऐसी नायिकाओं के साथ नायक बैठ कर मदिरा पिया करते हैं। इन नायकों में कोई तो पतङ्ग उड़ाने के बड़े शौकीन हैं और कोई कबूतरबाज़ हैं। कर्तव्य-ज्ञान से सभी विमुख हैं। इन्हें लोगों की चरित्र-चर्चा बिहारी के दोहों में की गई है। जहाँ शृङ्गार-रस का आधिक्य वर्णित हुआ है वहाँ स्वयं वृंदावन विहारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आ गये हैं। इन कबूतरबाज़ों के साथ श्रीकृष्णचन्द्रजी की मूर्ति देख कर हम तत्कालीन धार्मिक अवस्था का अनुमान कर सकते हैं।

कुछ विद्वानों ने ऐसी ही रचनाओं में भक्तिवाद की पराकाष्ठा देखी है। धर्म-साधना की गति दो ओर है, शक्ति की ओर और रस की ओर। शक्ति की ओर साधना की गति होने से मनुष्य के हृदय में एक दृढ़ विश्वास-बल उत्पन्न होता है। जिससे वह अपने को किसी अवस्था में निराश्रय नहीं समझता। जब धर्म के चरम लक्ष्य का मिलन ईश्वर से हो जाता है तब साधना की गति रस की ओर हो जाती है। हृदय के रस-पूर्ण होने से यह मिलन सम्भव है। परन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि भक्ति-रस अथवा प्रेम-रस में जो भाव सम्भोग की ओर है उसकी ओर चित्त को प्रेरित करने से दुर्बलता और विकार उत्पन्न होते हैं। मनुष्यत्व दुर्मति को प्राप्त हो जाता है। प्रेम का लक्षण भोग नहीं, त्याग है। प्रेम का यथार्थ लक्षण यह है कि वह दुख को स्वीकार कर लेता है। दुख और त्याग में ही प्रेम की सार्थकता है। उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थ परिचय सेवा और कर्म में मिलता है, भावावेश में नहीं। जब तपस्या द्वारा प्रेम का परिपाक होता है तभी उसका रूप विशुद्ध होता है। हिन्दी में ऐसे भक्त कवियों का अभाव नहीं है जिन्होंने प्रेम का विशुद्ध रूप वर्णित किया है। पर अधिकांश कवियों में बिहारी के समान शक्ति की अपेक्षा कला ही की प्रधानता है। उनका आसन उन कवियों से अवश्य नीचा रहेगा जिन्होंने जीवन का यथार्थ रहस्य बतला दिया है।

४—भारत के उद्योग-धन्धे।

सन् १९१९ के अन्त में भारत के बड़े बड़े कारख़ानों में काम करनेवालों के जो अङ्क डिपार्टमेंट आव् स्टेटिस्टिक्स ने प्रकाशित किये हैं वे यहाँ ब्योरेवार उद्धृत किये जाते हैं।

सब प्रकार के कारख़ानों में काम करनेवालों की उपस्थिति औसत हाज़िरी के हिसाब से १३,६७,१३६ थी और कुल कारख़ाने ५,३१२ थे। इनमें १,२३,६७५ आदमी सरकारी कारख़ानों में काम करते थे।

बङ्गाल में कारख़ानों की संख्या दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा सबसे अधिक है। अतएव काम करनेवाले लोगों की भी संख्या वहीं अधिक होनी चाहिए। बंगाल में १००० कारख़ाने हैं और उनमें ४,३२,५१५ आदमी काम करते हैं। इसके बाद बम्बई का नम्बर आता है। वहाँ ९५४ कारख़ाने हैं और उनमें ३,१२,७४१ आदमी काम करते हैं। तीसरा नम्बर मदरास और चौथा ब्रह्मदेश का है। फिर बिहार और उड़ीसा, संयुक्त-प्रान्त, मध्यप्रान्त और पञ्जाब का नम्बर है। देशी राज्यों में ६४० कारख़ाने और उनमें ८६,५९२ आदमी काम करते हैं।

रुई कातने और बुनने के कारख़ानों में ही अधिक काम करनेवाले नियुक्त हैं। ३,०७,००० से ऊपर लोग इन कारख़ानों में काम करते हैं। २.७६,००० से अधिक लोग जूट की मिलों में काम करते थे। परन्तु सबसे अधिक संख्या रुई ओटने के कारख़ानों की थी। इनकी संख्या १९४० थी।

भिन्न भिन्न प्रान्तों में जो प्रधान औद्योगिक कारख़ाने कम्पनियों तथा भिन्न भिन्न व्यक्तियों के अधिकार में थे उनका ब्योरा इस प्रकार है:—

रुई की २८२ मिलों में से (इनमें रुई कातने और बुननेवाले कारख़ाने भी शामिल हैं। ऐसे कारख़ाने मिल नहीं कहलाते हैं।) १८२ बम्बई-प्रान्त में हैं। इनमें काम करनेवालों की कुल संख्या २,०६,८३० है। इसके बाद मदरास का नम्बर है। वहाँ २१ मिलें हैं, जिनमें २५,२७६ आदमी काम करते हैं। संयुक्त-प्रान्त में १७ मिलें हैं। इनमें काम करनेवालों की संख्या १५,६१४ है। मध्यप्रान्त और बरार में १३ मिलें और काम करनेवालों की संख्या १४,६२१ है। बङ्गाल में मिलों की संख्या १२ है और उनमें १२,०७३ आदमी काम करते हैं।

लगभग सारी जूट-मिलें बङ्गाल में ही हैं। देश भर में कुल ७५ जूट-मिलें हैं। इनमें ७१ मिलें अकेले बङ्गाल में हैं। वहाँ २,७२,३१३ आदमी हैं। अवशिष्ट ४ मिलों में से तीन मिलें मदरास और १ संयुक्त-प्रान्त में है। मदरास की मिलों में २,८३३ आदमी और संयुक्त-प्रान्त की मिल में ४९७ आदमी काम करते हैं।

रुई ओटनेवाली मिलों की तालिका इस प्रकार है:—

ऐसी मिलें बम्बई में ५५९ हैं और उनमें ३६,५०० आदमी काम करते हैं। मध्यप्रदेश और बरार में ४१५ मिलें हैं और उनमें काम करनेवालों की संख्या २९,३३५ है। संयुक्तप्रान्त में १३२ मिलें हैं, जिनमें १२,०७४ आदमी काम करते हैं। मदरास में १४६ मिलें हैं और उनमें काम करनेवालों की संख्या १३,६६३ है। पञ्जाब में १८९ मिलें हैं। इनमें १२,९६१ आदमी काम करते हैं। मध्यभारत में १६४ मिलें हैं और उनमें १०,६६३ आदमी काम करते हैं। हैदराबाद-राज्य में १५१ मिलें हैं जिनमें ८,५५८ आदमी काम करते हैं। बड़ौदा में ८० मिलें हैं। इनमें काम करनेवालों की संख्या ४,५०९ है।

इञ्जीनियरी के कारख़ानों की संख्या बङ्गाल में में सबसे अधिक है। (इन्हीं के अन्तर्गत बिजली-सम्बन्धी कारख़ाने, लोहे और पीतल के कारख़ाने, जहाज़ी काम करने के कारख़ाने हैं) बंगाल में इञ्जीनियरी के १०५ कारख़ाने हैं, इनमें ३२,००४ आदमी काम करते हैं। इसके बाद बम्बई (२४ कारख़ाने, जिनमें ६२७१ आदमी हैं), बिहार और उड़ीसा (१६ कारख़ाने, जिनमें ५,९८९ आदमी हैं) ब्रह्मदेश (२१ कारख़ाने, जिनके २,५६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी हैं), मदरास (९ कारख़ाने, जिनमें १,४०७ आदमी हैं) और संयुक्तप्रान्त (७ कारख़ाने, जिनमें १,१७९ आदमी हैं) के नम्बर आते हैं। इनके सिवा रेलवे और ट्राम्वे के ७७ कारख़ाने और १० डकयार्ड हैं।

चावल की मिलों की अधिक संख्या ब्रह्मदेश (३३६ मिलें जिनमें ३२,३८८ आदमी काम करते हैं) और मदरास (१३३ मिलें, जिनमें ७,६६४ आदमी करते हैं) में है। बङ्गाल में केवल १०८ मिलें हैं। इनमें काम करनेवालों की संख्या ४,२०३ है।

२११ जूट प्रेसों में से १७६ बङ्गाल में हैं। इनमें ३०,७४३ आदमी काम करते हैं। बाक़ी प्रेसों में से २६ प्रेस बिहार और उड़ीसा तथा मदरास में ४ हैं। बिहार और उड़ीसा के प्रेसों में काम करनेवालों की संख्या १४७० है और मदरास की २८२।

छापाख़ानों की संख्या १२० और उनमें काम करनेवालों की १८,८३३ है। बङ्गाल में २१ छापाख़ाना हैं। इनमें ४,७७६ आदमी काम करते हैं। बम्बई में २९ हैं जिनमें ४,९८८ आदमी काम करते हैं। मदरास में भी २९ हैं और उनमें ४,०८७ आदमी हैं।। संयुक्त-प्रान्त में १० हैं। इनमें १,७४३ आदमी नियुक्त हैं।

टाइल और ईंट के कारख़ाने बङ्गाल (१०७ कारख़ाने और उनमें ९२९३ आदमी हैं) मदरास (३१ कारख़ाने और उनमें ४,४५५ आदमी हैं), संयुक्तप्रान्त (३२ कारख़ाने और उनमें ३,७०५ आदमी हैं), और पञ्जाब में (२३ कारख़ाने और उनमें १३८० आदमी हैं, हैं।

अस्त्र-शस्त्र तथा गोली बारूद तैयार करने के कारख़ानों की संख्या (जिसमें युद्ध-सामग्री तैयार करने के कारख़ाने, तोप चर्बी के कारख़ाने आदि शामिल हैं) १६ हैं। ये सब गवर्नमेंट के अधिकार में हैं और इनमें २६,६०७ आदमी काम करते हैं।

बिहार और उड़ीसा में लोहा निकालने का एक कारख़ाना है। इसमें २०,८०६ आदमी काम करते हैं।

टैनरी और चमड़े के कारख़ाने मदरास (५५ कारख़ाने जिनमें ५,५७९ आदमी हैं) संयुक्तप्रान्त (१० कारख़ाने जिनमें ५,८२३ आदमी हैं), बम्बई (१५ कारख़ाने जिनमें १,१२८ आदमी हैं) और बङ्गाल (१८ कारख़ाने जिनमें १,०८९ आदमी हैं) में हैं।

लकड़ी चीरने का काम ब्रह्मदेश में ख़ूब होता है। वहाँ १०८ मिलें हैं और उनमें ९,९९२ आदमी काम करते हैं। इसके सिवा आसाम (१५ मिलें, जिनमें २,०१८ आदमी हैं) बम्बई (४ मिलें जिनमें ७१८ आदमी हैं) और मदरास (४ मिलें जिनमें ७०७ आदमी हैं) में भी यह काम होता है।

पत्थर के कारख़ाने मुख्यतः बिहार और उड़ीसा (४२ कारख़ाने जिनमें ५,४४७ आदमी हैं), मध्यभारत (२ कारख़ाने जिनमें २,८६१ आदमी हैं), राजपूताना (३ कारख़ाने जिनमें २,२५३ आदमी हैं) और संयुक्त-प्रान्त (८ कारख़ाने जिनमें १,५७० आदमी हैं) में हैं।

ब्रह्मदेश और आसाम में पेट्रोलियम निकलता है। अतएव उसके साफ़ करनेवाले कारख़ाने भी वहीं हैं। सात कारख़ाने ब्रह्मदेश में हैं, जिनमें १३,०१८ आदमी काम करते हैं और एक कारख़ाना आसाम में है, जिसमें ५९० आदमी हैं।

शक्कर के कारख़ाने केवल तीन प्रदेशों में हैं—मदरास, बिहार और उड़ीसा, तथा संयुक्त-प्रान्त मदरास में ९ कारख़ाने हैं। इनमें ३६१० आदमी काम करते हैं। बिहार और उड़ीसा में २१ कारख़ाने हैं। इनमें ३,१४१ आदमी काम करते हैं। संयुक्त-प्रान्त में १४ कारख़ाने हैं। इनमें २,८३१ आदमी काम करते हैं।

ऊन के कारख़ानों में से (जिनमें दरी और शाल बुनने के कारख़ाने भी शामिल हैं) ५ कारख़ाने, जिनमें ४,५५० आदमी काम करते हैं, संयुक्त-प्रान्त में, ८ कारख़ाने, जिनमें ३,०८५ आदमी काम करते हैं, पञ्जाब में और ९ कारख़ाने, जिनमें २,३३० आदमी काम करते हैं कश्मीर राज्य में हैं।

तेल की मिलें मुख्यतः बङ्गाल (८४ मिलें जिनमें ३,४७० आदमी हैं) और ब्रह्मदेश (१८ मिलें जिनमें १,१५० आदमी हैं) में ही हैं।

अबरक निकालने के कारख़ाने केवल बिहार और उड़ीसा में हैं। इन कारख़ानों की संख्या, जिनमें ८,६७१ आदमी काम करते हैं, कुल १९ हैं।

रेशम के कारबार का केन्द्र बङ्गाल है। वहाँ ६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारख़ाने हैं, जिनमें ३६७० आदमी काम करते हैं। इसके सिवा काश्मीर राज्य में २ कारख़ाने हैं, जिनमें २९९९ आदमी काम करते हैं। बम्बई में दो मिलें हैं, जिनमें १२९४ आदमी काम करते हैं।

केरोसीन को पीपों में भरने और उन्हें पैक करने के जो २२ कारख़ाने हैं उनमें ७०१५ आदमी हैं। इनमें ८ बङ्गाल में जिनमें ३४२० आदमी, ७ बम्बई में जिनमें २३४१ आदमी और ७ मदरास में जिनमें १२५४ आदमी काम करते हैं।

तम्बाकू के १९ कारख़ानों में से ४ बिहार और उड़ीसा में हैं जिनमें २६९३ आदमी काम करते हैं, एक बङ्गलोर में है जिसमें १५०१ आदमी काम करते हैं, तीन मदरास में जिनमें ११८५ आदमी और ८ बङ्गाल में हैं जिनमें ११५० आदमी काम करते हैं।

क़रीब क़रीब लाख के सारे कारख़ाने बिहार और उड़ीसा (५५ कारख़ाने जिनमें ३४६१ आदमी हैं) और संयुक्तप्रान्त (२४ कारख़ाने जिनमें २२६० आदमी हैं) में हैं।

काग़ज़ की मिलें मुख्यतः बङ्गाल (३ मिलें जिनमें ४४७९ आदमी हैं) और बम्बई (३ मिलें जिनमें ६०० आदमी हैं) में हैं।

रस्सी बनाने के जो ३२ कारख़ाने हैं उनमें ६०८५ आदमी नियुक्त हैं। इनमें १३ कारख़ाने ट्रावनकोर राज्य में हैं जिनमें २५६८ आदमी काम करते हैं। मदरास में ६ कारख़ाने हैं और उनमें १९२३ आदमी काम करते हैं। बङ्गाल में ११ कारख़ाने हैं और उनमें ११३९ आदमी काम करते हैं।

आटे की मिलें बम्बई (१३ मिलें जिनमें १४३१ आदमी हैं), बङ्गाल (९ मिलें जिनमें १२५४ आदमी हैं) और पञ्जाब (१० मिलें जिनमें ९०२ आदमी हैं) में हैं।

लगभग रबर के सारे कारख़ाने मदरास के देशी राज्यों में हैं। उनकी संख्या ११ और उनमें काम करनेवालों की संख्या ५४३१ है।

मिट्टी के बर्तन बनाने के कुल १२ कारख़ाने हैं। इनमें ३ बिहार और उड़ीसा में हैं, जिनमें १९४४ आदमी काम करते हैं। ४ कारख़ाने बङ्गाल में हैं और उनमें १७१४ आदमी काम करते हैं। मध्य-प्रान्त और बरार में ३ हैं, जिनमें ११६६ आदमी काम करते हैं।

दूसरे प्रकार के मुख्य मुख्य व्यवसायों का ब्योरा इस प्रकार है:—

७ ताला और चाकू के कारख़ाने हैं, जिनमें १०६८ आदमी काम करते हैं। ४६ मेटलवर्क्स हैं, जिनमें २३२७ आदमी काम करते हैं। १९ शराब की भट्टियाँ हैं और उनमें २३०७ आदमी काम करते हैं। १५ काफ़ी के कारख़ाने हैं और उनमें ४०६६ आदमी काम करते हैं। १५ भट्टियां हैं और उनमें १४४५ आदमी काम करते हैं। १७ बर्फ़ तथा पानी बनाने के कारख़ाने हैं जिनमें १२६३ आदमी काम करते हैं। १३ केमिकल वर्क्स हैं और उनमें २९३३ आदमी काम करते हैं। २३ रङ्ग के कारख़ाने हैं और उनमें ३८४२ आदमी काम करते हैं। ३ रँगसाज़ी के कारख़ाने हैं, जिनमें १२३० आदमी काम करते हैं। १५ हड्डी पीसने की मिलें हैं, जिनमें २१७७ आदमी काम करते हैं। ३१ कोच बनाने के कारख़ाने हैं और उनमें ४२६७ आदमी काम करते हैं। ११ कार्पेन्टरी के वर्कशाप हैं और उनमें ११३० आदमी काम करते हैं। १० शीशे के कारख़ाने हैं और उनमें १४२२ आदमी काम करते हैं।

ख़ान, बिजली पैदा करने तथा उसके संग्रह के कारख़ानों, नील की कोठियों और चाय तथा काफ़ी के बागानों की कोठियों के विवरण यहां नहीं दिये गये हैं।

५—संयुक्तप्रान्त के डिस्ट्रिक्ट बोर्डों का वार्षिक विवरण।

डिस्ट्रिक्ट बोर्डों का १९२०-२१ का जो वार्षिक विवरण प्रकाशित हुआ है उसके पढ़ने से मालूम होता है कि इन डिस्ट्रिक्ट बोर्डों ने गत वर्ष कौन कौन से काम किये। इस साल तो इनमें कुछ परिवर्तन नहीं किया गया है, परन्तु लेजिस्लेटिव कौन्सिल में एक बिल पेश हो गया है जिससे अब कुछ हेरफेर होने की सम्भावना है। अभी वह बिल विचाराधीन है। गत वर्ष की तरह इस साल भी मेम्बरों की उपस्थिति असन्तोषजनक रही। कितने ही मेम्बर एक भी अधिवेशन में उपस्थित नहीं थे। ऐसे लोग मेम्बरी से हटाये भी गये। तहसील कमेटियों में थोड़ी-बहुत उन्नति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई है। कानपुर बोर्ड के सभापति की राय है कि बोर्ड के कितने ही मेम्बर अलग अलग तो अच्छा काम करते हैं परन्तु बोर्ड के अधिवेशनों में उपस्थित होकर काम करने की ओर उनकी प्रवृत्ति नहीं है। गत वर्ष इनकी आमदनी १२७.६० लाख रुपये थी। इस साल वह घट कर ११२.८१ लाख रुपये रह गई। परन्तु ख़र्च बढ़ गया। पहले साल १४०.४२ लाख रुपये ख़र्च हुए थे। इस साल १५२.१३ लाख रुपये ख़र्च हुए। ख़र्चे का ब्योरा देखिए।

काम	ख़र्च (लाख में)
ऐडमिन्सट्रेशन	५.६६
पुलीस	३.००
शिक्षा	६२.७६
चिकित्सा	१८.००
विज्ञान-सम्बन्धी	४.१३
सिविल-वर्क्स	५५.०४
दूसरे काम	१.१६

इस साल भी शिक्षा के कामों में अधिक ख़र्च हुआ। इसके भी ख़र्च का ब्योरा देखिए।

ट्रेनिङ्ग और स्पेशल स्कूल	६'३७
मिडिल स्कूल	८.५६
प्राइमरी स्कूल	४३.६५
सहायता के लिए ग्रांट	२.५२
स्कालरशिप	१.२४

बोर्ड के स्कूलों की संख्या-वृद्धि हुई है। गत वर्ष उनकी संख्या ११,७३७ थी। इस साल १२,५११ हो गई। परन्तु सहायता-प्राप्त स्कूलों की संख्या घट गई। पहले ऐसे २४६० स्कूल थे। इस साल हैं २,४५२। इन स्कूलों में पढ़नेवाले छात्रों की संख्या ८,२१,१३६ है। आबादी के हिसाब से ४ फ़ी सदी लड़के शिक्षा पा रहे हैं। लड़कियों की शिक्षा में कुछ उन्नति ज़रूर हुई है। हरदोई ज़िला में इनकी शिक्षा की स्थिति सन्तोषजनक मानी गई है। परन्तु उन्नाव, सीतापुर, लखनऊ और खेरी ज़िलों में अभी लड़कियों की शिक्षा की गति मन्द है।

देहातों की स्वास्थ्य-रक्षा की ओर इस साल भी कम ध्यान दिया गया। इस काम के लिए सरकार से जिन ज़िलों को रुपये मिले उनमें सब रुपये ख़र्च नहीं किये गये। अधिकांश डिवीज़नों में इस काम के लिए कम ख़र्च किये गये। आगरा में गत वर्ष की अपेक्षा अवश्य कुछ अधिक ख़र्च किया गया। भ्रमणकारी औषधालयों से अवश्य अच्छा लाभ हुआ।

डिस्ट्रिक्ट गज़टों का अच्छा प्रचार नहीं हो सका। कितने ही ज़िलों में उनसे हानि उठानी पड़ी। इसलिए वे बन्द कर दिये गये। जहाँ अब भी ऐसे गज़ट प्रकाशित होते हैं वहाँ भी उनकी दशा अच्छी नहीं है। गवर्नमेंट की राय है कि जब ऐसे गज़टों का प्रचार न हो तब उनके प्रकाशन से क्या लाभ।

कुछ स्कूलों में अब पुस्तकालयों की आवश्यकता होने लगी है। लोग उनकी उपयोगिता समझने लगे हैं। परन्तु सर्वत्र यही हाल नहीं है। लखनऊ बोर्ड के मिडिल स्कूलों में जो पुस्तकालय हैं उनसे छात्रों ने लाभ उठाया। परन्तु सीतापुर के बारह प्राइमरी स्कूलों में पुस्तकालयों से अधिक लाभ नहीं उठाया गया।

६—जापान के नाटक।

यह तो पाठकों को मालूम ही होगा कि हमारे देश से प्रिंस आफ़ वेल्स जापान चले गये। वहाँ आपकी अच्छी अभ्यर्थना की गई। ख़ूब आदर-सत्कार हुआ। टोकियो की म्युनीसिपैलटी ने इम्पीरियल थियेटर में आप ही के लिए एक अभिनय कराया था। उस अवसर पर प्रिंस आफ़ वेल्स के साथ जापान के सम्राट् और राजकुमार आये थे। यह पहला ही अवसर है कि इस तरह का अभिनय देखने के लिए जापान के उच्च कुल के भी व्यक्ति आये। नीचे जापान की नाट्यशाला का कुछ परिचय दिया जाता है।

जापान के नाटकों के दो विभाग किये जा सकते हैं, एक का नाम 'नो' है और दूसरे का काबुकी। नो नाटकों को हम साहित्यिक नाटक कह सकते हैं और काबुकी को लौकिक। इन दोनों तरह के नाटकों में जापानियों की विशेषता लक्षित होती है। पाश्चात्य विद्वानों की राय है कि ग्रीक साहित्य के वियोगान्त नाटकों के मूल-स्वरूप से जापान के साहित्यिक नाटकों का बहुत कुछ सादृश्य है। कुछ बातों में भिन्नता अवश्य है; तो भी इन दोनों की परस्पर समता देख कर आश्चर्य होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भव है यदि कोई भारतीय विद्वान् इन नाटकों के साथ संस्कृत के नाटकों की तुलना करे तो वह और भी अधिक समता देखे, क्योंकि संस्कृत-नाटकों की तरह इनमें भी गद्य-पद्य का मिश्रण है और यत्र तत्र कुछ गान भी हैं। नो नाटकों का सम्बन्ध जनता से उतना नहीं जितना कि उच्च श्रेणी के लोगों से है। कदाचित् ऐसे नाटकों के लेखकों की यही धारणा थी कि 'आपरितोषाद् विदुषां' प्रयोग-विज्ञान की सार्थकता नहीं है। काबुकी नाटक सर्वसाधारण के लिए हैं। विद्वानों की राय है कि नो नाटकों के अभिनयों की व्यवस्था उच्च श्रेणी के ही लोग करते थे परन्तु सर्वसाधारण के ही सामने उनका खेल किया जाता था। इन नाटकों में धार्मिक भावों की प्रधानता है। बौद्ध-धर्म ही उनका प्राण है। कुछ समय पहले लोगों का यह विश्वास था कि बौद्ध पुरोहितों ने ही उनकी रचना की है। परन्तु यह बात नहीं है। एक तरह से अभिनेता ही उसके लेखक माने जा सकते हैं।

यह देखा गया है कि सभी देश की प्रचलित प्राचीन गाथाओं में समता है। एक विद्वान् ने अभिज्ञान-शाकुन्तल की कथा से बिलकुल मिलती-जुलती एक कथा ग्रीक साहित्य उद्धृत की थी। जापानी नाटकों में भी हम हेमलेट, सार्लेन, एन्ड्रोमेडास, अथवा हारून अल रशीद को जापानी वेश में देख सकते हैं। उनकी बातें भी वही हैं और काम भी वैसे ही हैं। जो भिन्नता है वह देश और काल के कारण। बात यह है कि देश और काल के व्यवधान से विभक्त हो जाने पर भी मानव-जाति एक ही है और उसकी मूल-भावनाएँ सर्वत्र एक ही रूप में विद्यमान रहती हैं। अतएव जिन कथाओं में मनुष्यत्व का सच्चा स्वरूप प्रदर्शित किया जाता है उनमें परस्पर भिन्नता कैसे हो सकती है? हेमलेट शेक्सपियर के द्वारा डेनमार्क का राजकुमार बनाये जाने पर भी मनुष्यत्व के कुछ विशेष गुणों से युक्त एक व्यक्ति-मात्र है जिसका अस्तित्व सभी देशों और सभी कालों में सम्भव है। एक विशेष स्थिति में रहने से कोई भी मनुष्य हेमलेट हो सकता है।

काबुकी नाटकों की अपेक्षा नो नाटक अधिक प्राचीन हैं। कोई तीन सौ साल पहले काबुकी नाटकों की सृष्टि हुई। आरम्भ ही से ये नाटक बड़े लोक-प्रिय हुए। अपनी लोक-प्रियता के कारण ये विद्वानों की दृष्टि में हेय हो गये। विद्वानों ने नो नाटकों को अपना लिया और काबुकी नाटक अशिक्षित जनता के लिए ही उपयुक्त समझे गये। काबुकी नाटकों का प्रचार बढ़ता ही गया। इधर विद्वानों की घृणा भी उस पर बढ़ती गई। इन नाटकों के अभिनय में पहले स्त्रियां भी सम्मिलित होती थीं। परन्तु इससे अनाचार फैलने की सम्भावना देख कर यह आज्ञा प्रचलित की गई कि स्त्रियां अभिनय कर ही नहीं सकतीं। तब पुरुष ही स्त्रियों का अभिनय करने लगे। ऐसे नटों से भी काबुकी नाटकों का प्रचार बढ़ता ही गया। तब उच्च श्रेणी के लोगों ने इन नाटकों को नष्ट करना ही उचित समझा। ये नट बड़े नीच समझे जाने लगे। उनकी गणना दुराचारियों में की जाती थी। वे दण्डनीय भी थे। यह सब होने पर भी जनता इन नटों को आश्रय देती थी और ये अपनी कला की उन्नति ही करते थे। जब जापान का सम्पर्क पाश्चात्य देशों से हुआ तब जापान के शासक-वर्ग ने देखा कि पाश्चात्य देशों में नाट्य-कला का बड़ा आदर है और नट बड़े प्रतिष्ठित समझे जाते हैं। तब नाटकों पर से जापान के शासकों की घृणा कम होने लगी। स्वयं सम्राट् मेजी ने एक अभिनय देखा। उस समय अमरीका और योरप के कितने ही विद्वान् उपस्थित थे। उन्होंने जापानी नाट्य-कला की बड़ी प्रशंसा की। तब से जापान के विद्वानों ने इन नाटकों की ओर ध्यान दिया है। नटों पर से अभी तक उनकी अश्रद्धा बिलकुल ही नहीं हट गई है। टोकियो का इम्पीरियल थियेटर खूब अच्छा बना है। यहाँ जापानी नाटक तो खेले ही जाते हैं, योरप और अमरीका की भी कम्पनियाँ आकर अपना खेल दिखलाती हैं। अभी तक जापान के वर्तमान सम्राट् और राजकुमार कभी किसी नाटक को देखने के लिए नहीं गये। जब जापान के राजकुमार लन्दन गये थे तब उन्होंने अवश्य वहाँ अभिनय देखे। पेरिस में उन्होंने एक अमेरिकन नट का आदर भी खूब किया। परन्तु जापान की किसी भी नाट्यशाला अथवा नट का आदर नहीं किया गया था। प्रिंस आफ़ वेल्स के आगमन पर जापान के सम्राट् और राजकुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक देखने गये। इससे आशा की जा सकती है कि अब वहाँ नाटकों का अधिक आदर होने लगेगा और नाट्य-कला की उन्नति भी अच्छी होगी।

७—पशु-चिकित्सा की चर्चा।

पशु-चिकित्सा की शिक्षा-सम्बन्धिनी जो व्यवस्था इस देश में अभी तक प्रचलित है उसके प्रदर्शन-स्वरूप कलकत्ता, लाहोर, बम्बई और मदरास में कालेज स्थापित हैं। इनके सिवा संयुक्त-प्रान्त के मुक्तेश्वर नामक स्थान में तत्सम्बन्धिनी एक प्रयोगशाला भी खुली है। परन्तु इस शिक्षा के प्रचार में इन संस्थाओं से सन्तोषजनक फल नहीं हुआ है। सरकार ने भी इस बात को स्वीकार किया है। इसी से उसने हाल ही में एक सभा करके पशु-चिकित्सा की शिक्षा-वृद्धि के लिए विचार किया। उस सभा में उपर्युक्त कालेजों के सब प्रधानाध्यापक सम्मिलित हुए थे। इनके सिवा संयुक्त-प्रान्त की सरकार के पशु-चिकित्सा-सम्बन्धी-परामर्श-दाता और मुक्तेश्वर की प्रयोगशाला के डायरेक्टर जे० टी० एडवर्डस साहब भी बुलाये गये थे।

इस सभा में पशु-चिकित्सा की शिक्षा-सम्बन्धिनी अनेक बातों पर खूब वादानुवाद हुआ। इसके बाद उसके लिए एक संशोधित पाठ्यक्रम तैयार किया गया। इसके अनुसार पशु-चिकित्सा की पढ़ाई का समय ४ वर्ष निश्चित हुआ। सभा में यह भी निर्णय हुआ कि एक 'सेंट्रल एडवाइज़री बोर्ड आव् स्टडीज़' स्थापित किया जाय। इसका काम शिक्षा के सम्बन्ध में विचार करना तथा तत्सम्बन्धी मुख्य मुख्य प्रश्नों पर रिपोर्ट देना होगा। तीसरे और चौथे वर्ष की शिक्षा के लिए ब्योरेवार पाठ्यक्रम नियत करने के लिए यह निश्चय हुआ कि जो पाठ्यक्रम लाहोर के वेटिरिनेरी कालेज में प्रचलित है वही कुछ संशोधन कर देने के बाद पर्याप्त होगा। यूनीवर्सिटी की डिग्री (बी० एस-सी० वेट०) प्राप्त करने के लिए भी उससे पूरा काम निकल जायगा। शिक्षकों की संख्या-वृद्धि के लिए भी प्रस्ताव स्वीकार किये गये। इसके कालेज विश्वविद्यालयों में शामिल कर दिये जाने के लिए भी ज़ोर दिया गया।

सभा में इस बात पर भी विचार हुआ कि जिन विद्यार्थियों ने यूनीवर्सिटी की डिग्री प्राप्त कर ली हो वे भारत में ही पोस्ट ग्रेजुएट का पाठ्यक्रम समाप्त कर चुकने के बाद इम्पीरियल सर्विस में नियुक्ति के लिए उम्मेदवार समझे जायँ। मुक्तेश्वर में पोस्ट ग्रेजुएट के पाठ्यक्रम की शिक्षा देने के लिए जो योजना मिस्टर एडवर्ड्स ने उपस्थित की उस पर भी थोड़ा-बहुत विचार हुआ। परन्तु विचार करने के लिए पर्याप्त समय न मिलने के कारण सदस्यों ने उस पर अपनी सम्मति प्रकट करना अस्वीकार किया। परन्तु उन्होंने इस सम्बन्ध में इतनी सम्मति अवश्य दी कि जब तक इस योजना पर विचार होता रहे तब तक प्रान्तिक अधिकारियों को इँगलेंड भेजने का प्रस्ताव स्थगित किया जाय और इस बीच में एडवर्ड्स साहब की योजना प्रान्तिक सरकारों के समक्ष शीघ्र विचार करने के लिए उपस्थित की जाय।

सभा के उपर्युक्त परामर्शों पर भारत सरकार विचार कर रही है। वह प्रान्तिक सरकारों से परामर्श कर लेने के बाद अपनी सम्मति देगी। देखें, भारतीयों के लिए चिकित्सा-शास्त्र के इस उपयोगी और आवश्यक अङ्ग के शिक्षा की उचित व्यवस्था इस देश में कब तक कार्य में परिणत होती है।

पुस्तक-परिचय।

१—दो पुस्तकें।

भोजव्याकरणम्—विक्रम-संवत् १६९८ में, देहली-प्रान्त में, जैन-धर्म्म के आचार्य्य श्री कल्याणसागर सूरि धर्मोपदेश करते थे। कच्छ देश में कोई धर्म्माचार्य नहीं, यह सुन कर वे उस देश को गये। वहाँ, उस समय, भूज-नगर में भारमल्ल नामक राजा राज्य करता था। उसके लड़के का नाम था भोज या भोजमल्ल। उधर कल्याणसागर सूरि के पट्टशिष्य उपाध्याय विनयसागर थे। जब भोज राजा हुआ तब उसने विनयसागर से प्रार्थना की कि आप एक ऐसा व्याकरण बना दीजिए जिसे लोग आसानी से याद कर लें और व्याकरणज्ञ हो जायँ। राजा की इस आज्ञा या प्रार्थना को मान कर उपाध्यायजी ने जिस व्याकरण की रचना की वही यह भोज-व्याकरण है। इसे शाह उमरसी रायसी की विधवा, सेठानी जेतबाई, ने अपने खर्च से, निर्णय-सागर प्रेस में, छपा कर प्रकाशित किया है। डाक-खर्च भेजने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक मुफ़ मिलती है। मँगाने का पता—उमरसी रायसी का बखार, भात बाज़ार, मांडवी, बंबई, पोस्ट बाक्स ३।

पुस्तक पत्रानुमा छपी है। पत्रों की संख्या ७६ है। टाइप है तो देवनागरी, पर विशेष प्रकार का है—उस प्रकार का जिसमें कभी कभी जैनियों के धर्म्म-ग्रन्थ छपते हैं। पुस्तक साद्यन्त संस्कृत-पद्य में है। यह तीन वृत्तियों या अध्यायों में विभक्त है। विशेषकर अनुष्टुप्-छन्द में लिखी गई है। परन्तु बीच बीच आर्य्या, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्र-वज्रा और शार्दूल-विक्रीडित आदि वृत्तों का भी प्रयोग किया गया है। इसका कर्त्ता बड़ा वैयाकरण था और साथही कवि भी था। उसने सारे पाणिनीय व्याकरण का मुख्यांश, थोड़े ही में, बड़ी योग्यता से व्यक्त किया है। सूत्रों के रटने की अपेक्षा इस पुस्तक के पद्य अपेक्षा-कृत सरलतापूर्वक कण्ठ किये जा सकते हैं। नीचे जो पद्य-टीकायें दी गई हैं उनसे इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। इसके पद्यों का एक नमूना नीचे दिया जाता है। इष्णु-प्रत्यय के उदाहरण—

अलङ्करिष्णुश्च निराकरिष्णुर्ग्रसिष्णुरेवं प्रजनिष्णुरेव
अपत्रपिष्णुः पुनरुत्पचिष्णुर्वर्मिष्णुवर्द्धिष्णुचरिष्णवश्च ॥
तथोत्पतिष्णुः पुनरुत्पदिष्णुर्भविष्णुरोचिष्णुसहिष्णवश्च
भ्राजिष्णुरेवं पुनरुन्मदिष्णुर्य्यलोपतात्रैव चकारयिष्णुः ॥

सारी पुस्तक भोजभूप को सम्बोधन करके लिखी गई है। पुस्तकान्त में पुस्तक-कर्त्ता ने लिखा है—

श्रीधर्म्ममूर्तिपदमानसराजहंसः
कल्याणसागरगुरुर्जयताद्धरायाम् ।
शिष्यः समग्रनृपचित्तविनोदकारी
यस्यास्ति सद्विनयसागरनामधेयः ॥
श्रीभारमल्लतनयो भुवि भोजराजो
राज्यं प्रशास्ति रिपुवर्जितमिन्द्रवद्यः ।
तस्याज्ञया विनयसागरपाठकेन
संगुम्फितात्र रुचिराशु तृतीयवृत्तिः ।

अपने को समग्र-नृपचित्तविनोदकारी लिखना विनय-सागर के लिए कोई दोष की बात नहीं। यदि आप चित्त-विनोदकारी न होते तो भोजराज की कृपा आप पर कैसे होती। अपनी पुस्तक या वृत्ति को रुचिरा कहना भी विशेष आक्षेपयोग्य नहीं, क्योंकि वह अधिकांश में सच-मुच ही वैसी है।

वाल्मीकि-रामायण—यतिवर अखण्डानन्द ने "भिक्षु" होकर भी करोड़पतियों को मात कर दिया। बम्बई और अहमदाबाद के जिस "सस्तुं-साहित्य-वर्धक मण्डल" के आप सर्वस्व हैं उसने आपके परोपकारव्रत, श्रमशीलत्व, सततोद्योग और विद्याभिरुचि की बदौलत बड़े बड़े ग्रन्थों को भी, गुजराती भाषा में, कौड़ी मोल कर दिया। यह कार्य्यालय श्रीमद्भागवत, देवीभागवत, योगवाशिष्ठ आदि ग्रन्थों के गुजराती-भाषा-बद्ध भाषान्तर पहले ही प्रकाशित कर चुका था। अब उसने वाल्मीकि-रामायण का भी गुज-राती-अनुवाद छाप कर सुलभ कर दिया। प्रस्तुत पुस्तक उसने दो बड़ी बड़ी जिल्दों में निकाली है। दोनों की पृष्ठ-संख्या कोई १४०० है। हर पृष्ठ में दो कालम हैं। काग़ज़ खूब मोटा और टाइप बड़ा है। पुस्तक पर बड़ी सुन्दर पुष्ट जिल्द चढ़ी है। पुस्तक में कई चित्र भी हैं। इतने पर भी मूल्य, दोनों जिल्दों का, केवल ६) है। एक उदारहृदय सज्जन ने इस पुस्तक के लिए एक-दम ६००) दे दिया। इसी से इसका मूल्य और भी कम हो गया। यह भाषान्तर परलोकवासी नरहरि मगनलाल शास्त्री का किया हुआ है। प्रति-सर्ग के आद्यन्त का मूल श्लोक संस्कृत में वैसा ही देकर, शास्त्रीजी ने यह अनुवाद बड़ी योग्यता से किया है। कई जगह हमने अनुवाद को मूल-संस्कृत से मिला कर देखा तो ठीक पाया। इस अनुवाद में एक खूबी यह भी है कि इसकी भाषा, जो गुजराती है, बड़ा सरल, सुन्दर और बामुहावरा है। पुस्तकारम्भ में रामायण का माहात्म्य, वाल्मीकि का वृत्तान्त और रामायण के समय की स्थिति का विवेचन है। पिछला विवेचन विद्वद्वर चिन्तामणि विनायक वैद्य के एक मराठी ग्रन्थ के आधार पर किया गया है। इसके सिवा रामायण के समय की अयोध्या नगरी का उल्लेख तथा रामायण के विषय में जानने योग्य और भी अनेक बातों की आलोचना जोड़ दी गई है। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने रामायण पर जो विचार प्रकट किये हैं उनका भी समावेश एक लेख में किया गया है। इन विवेचनों और लेखों आदि से इस भारतीय ग्रन्थरत्न की आभा और भी अधिक होगई है। यह गुज-राती भाषा से अभिज्ञ जनों के सर्वथा संग्रह करने योग्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—हिन्दी के नये उपन्यास और नाटक।

प्रेमाश्रम—प्रेमचन्दजी का नया उपन्यास है, अभी हाल में प्रकाशित हुआ है। ६५५ पृष्ठों में यह पूरा हुआ है। अच्छे टाइप में अच्छे काग़ज़ पर यह छपा है। खद्दर की सुन्दर जिल्द बँधी है। कलकत्ते (१२६ हरिसन रोड) की हिन्दी-पुस्तक-एजंसी ने इसे प्रकाशित किया है। मूल्य ३॥) है। हमारी समझ में प्रेमचन्दजी की विशेषता यह है कि उनके सभी पात्र मनुष्य होते हैं। न तो उनमें कोई अद्भुतकर्मा संन्यासी होता है और न कोई दिव्यशक्ति-सम्पन्न महात्मा रहता है। अधिकांश लेखक अपनी सम्मति को सर्वोपरि मान कर एक निश्चित आदर्श के अनुसार अपने पात्रों की सृष्टि करते हैं। प्रेमचन्दजी की रचना में हम यह बात नहीं पाते। वे अपने पात्रों को स्वच्छन्द चलने देते हैं और जो परिणाम होता है उसे पाठक स्वयं देख लेते हैं। इसमें पति-पत्नी का प्रेम वर्णित है, उद्दाम वासना का भी चित्र है, किसानों की दुर्दशा का वर्णन है, ज़मींदारों के द्वारा किये गये उत्पीडन की चर्चा है, परन्तु भाषा सर्वत्र संयत है। लेखक को अपने उत्तरदायित्व का पूरा ज्ञान है। आज-कल के उपन्यास-लेखकों की तरह उन्होंने न तो कहीं औपन्यासिक प्रेम का वर्णन किया है और न औपन्यासिक अत्याचारों का। इसमें समाज का यथार्थ चित्रण है। कथा बड़ी हृदय-ग्राहिणी है। हमें विश्वास है कि हिन्दी-साहित्य के प्रेमी इसका उचित आदर करेंगे।

इलाहाबाद के वेलवेडियर प्रेस ने दो शिक्षा-प्रद उपन्यास भेजने की कृपा की है। आज-कल हिन्दी में स्त्रियों के लिए जो शिक्षा-प्रद उपन्यास प्रकाशित होते हैं उन्हें पूरा पढ़ लेना ज़रा धैर्य्य का काम है। हमें सन्तोष है कि वेलवेडियर प्रेस की ये दोनों किताबें मनोरञ्जक हैं। पहली किताब का नाम है **करुणा देवी**। श्रीयुत मणिराम शर्मा जी ने इसकी रचना की है। पृष्ठ-संख्या १५० और मूल्य ॥=) है। कथा में कोई नवीनता नहीं है। देवरानी-जेठानी और सास-बहू का झगड़ा है। करुणा ने अन्त में अपने सद्गुणों से सबको वशीभूत कर लिया। चलो, छुट्टी हुई, नहीं तो शायद उपन्यास पूरा ही न होता। भाषा अच्छी है, किताब के पढ़ने में मन लग जाता है। गृहिणी के योग्य शिक्षायें तो सर्वत्र मिलती हैं। दूसरी किताब है **महारानी शशिप्रभा देवी**। माधवप्रसाद स्टेशन ग पर रेल छूट गई। इधर रेल का छूटना हुआ, उधर औ न्यासिक घटना का आरम्भ। माधवप्रसाद स्वयं इस घ से चकित था और पाठक भी चकित होंगे, क्योंकि रेल जाने का मौक़ा तो प्रायः सभी पाठकों को पड़ा होगा, शायद ही किसी महाराज ने आकर उन्हें कन्या-दान वि होगा। माधवप्रसाद को पाठक सौभाग्यशाली समझेंगे, वह बेचारा इस विवाह से आफ़त में पड़ गया क्यों उसने तो पहले ही एक कन्या को मन दे डाला था। इसी घटना-चक्र में पड़ कर माधवप्रसाद ने बड़ी तकलीफ़ें झेलीं। अन्त में वह शशिप्रभा के गुणों पर मु हुआ। तब कथा की समाप्ति हुई। मूल्य १।) है। हिं के प्रेमी पाठकों को एक बार इन उपन्यासों का करना चाहिए।

श्रीसूर्यनारायणसिंह (पो० सीखड़, ज़ि० मिर्ज़ापु ने **सरोजवाला** नामक एक प्रसिद्ध बँगला उपन्यास अनुवाद किया। बँगला में इस उपन्यास की चाहे जै प्रसिद्धि हो, पर हिन्दी में तो यह किसी काम का नहीं उपर्युक्त दो उपन्यास इससे कहीं अच्छे हैं। इसमें पुरानी बातों का पिष्ट-पेषण हुआ है। पढ़ते पढ़ते जी जाता है। १२७ पृष्ठों की पुस्तक का दाम ॥) है। ले से प्राप्य।

कुछ समय पहले हमने सूर्यकुमारी पुस्तक-माला के ग्रन्थों का परिचय दिया था। उनमें से एक श्रीयुत राखा दास वन्द्योपाध्याय का करुणा नामक उपन्यास था। उ का एक दूसरा उपन्यास **शशांक** अभी हाल प्रकाशित हुआ है। अनुवादक पण्डित रामचन्द्र शु पुस्तक के प्रारम्भ में एक भूमिका है। उसमें उपन्य कथा-भाग की पुष्टि ऐतिहासिक प्रमाणों और सम्भावन के द्वारा की गई है। इतिहास में शशांक कट्टर शैव, बौद्ध-विद्वेषी और विश्वासघाती प्रसिद्ध है। उपन्यासकार ने उनका चरित्र निर्दोष अंकित किय अनुवादक महोदय का कथन है कि इस उपन्यास में जिस रूप में दिखलाये गये हैं वही उनका सच्चा रूप बाणभट्ट की आख्यायिका और कट्टर बौद्धयात्री के या विवरण में शशांक के साथ अन्याय किया गया है। सम है, आप ही का कथन सच हो। आपकी यह भी रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यासकार का काम ही यही है कि वह इतिहास के छोड़ी हुई बातों का अपनी कल्पना द्वारा उपयोग सजीव चित्र खड़ा करे। इसमें सन्देह नहीं कि शशांक कालीन सामाजिक जीवन का चित्र अङ्कित किया गया रन्तु उपन्यास के कथा-भाग में शिथिलता अवश्य आ। रोहिताश्वगढ़ के जिस यशोधवलदेव का प्रताप स में वर्णित हुआ है वे पहले क्यों दरिद्रता से ग्रस्त ार फिर कैसे प्रतापशाली होगये, इसका कारण में नहीं आता। जब वे जानते थे कि पाटलिपुत्र ही से उनकी दुरवस्था का अन्त हो सकता था तब उन्होंने यह बात क्यों न सोची। मुफ़्त क्यों यह भोगते रहे कि उन्हें अन्त में अपनी स्वर्गीया पत्नी का स्वरूप अलङ्कार बेचना पड़ा। प्रायः सभी पात्रों रित्र में ऐसी अनेक बातें हैं जिनसे पाठकों को यह ह हो सकता है कि कथाभाग में घटना-वैचित्र्य लाने प्रयास किया गया है। तो भी कथा चित्ताकर्षक है। ास के अन्तिम भाग में अनुवादक महोदय ने अपनी से कथा में परिवर्तन कर दिया है। जान पड़ता है कि वादक महोदय को अपनी भी कला-कुशलता लाना अभीष्ट था, नहीं तो परिवर्तन की ऐसी ज़रूरत थी। पुस्तक का मूल्य तीन रुपया है। प्रकाशक— ी की नागरी-प्रचारिणी सभा है।

पण्डित बदरीनाथ भट्ट जी के दो नाटकों का हिन्दी में प्रचार हुआ। अभी हाल में आपने दो नाटक े हैं। **बेन-चरित्र नाटक और तुलसीदास**। लेखक नानुसार बेन-चरित्र नाटक में अराजकता के भीषण ास तथा बेरोक राज-सत्ता की भयावनी अठखेलियाँ फिर उसका अन्त दर्शाने की चेष्टा की गई है। कहने लिए तो कहानी पुरानी है, पर लेखक ने उसको ऐसी नई क पहना दी है कि वह पहचानी नहीं जा सकती। जकल भारतवर्ष में राजनैतिक उथल-पुथल की धूम है, लिए हिन्दी-पाठकों को इससे मनोरञ्जन अवश्य होगा। का कथा-भाग है भी अच्छा। हँसने हँसाने की बातों भी कमी नहीं है। परन्तु यदि हम इस नाटक के किसी पात्र के चरित्र में मनुष्यत्व का यथार्थ रूप देखना चाहें हमें निराश होना पड़ेगा। बेन को हम नरपिशाच नहीं कहेंगे। वह हमारी समझ में एक बहका हुआ लड़का है जिसे अपनी गुड़ियों के तोड़ने-फोड़ने में ही आनन्द आता है। किसी भी पात्र की भाषा में गम्भीरता नहीं है। पुलस्त्य और भृगु भी वही भाषा बोलते हैं जो जुगना और जखीग के मुँह से निकलती है। पुस्तक का मूल्य १।) है। तुलसीदास में कोई नवीनता नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजी के विषय में जो कथायें प्रसिद्ध हैं उन्हीं का वर्णन किया गया है। सरसता लाने के लिए जिन नये पात्रों की कल्पना की गई है उनसे कथा का गौरव घटा है, बढ़ा नहीं। मूल्य १।) है। प्रकाशक रामप्रसाद एन्ड ब्रदर्स आगरा हैं।

काशी के हिन्दी-ग्रन्थ-भाण्डार ने **जङ्गली रानी** नाम की एक किताब समालोचनार्थ भेजी है। उसमें चार कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ गल्पमाला में प्रकाशित हो गई हैं और इनके लेखकों को प्रकाशक द्वारा स्वर्ण-पदक और रौप्य-पदक मिले हैं। कहानियाँ बुरी नहीं हैं। घड़ी भर मन बहलाने की अच्छी सामग्री है। मूल्य ॥=) आना है।

हमारे देश के वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन ने उपन्यास-लेखकों को कथा की अच्छी सामग्री देदी है। अभी तक कितनी ही छोटी छोटी कहानियाँ प्रकाशित हो गई हैं। दो-चार उपन्यास भी निकल गये हैं। अभी हाल में दो उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। एक है **भारत-रहस्य**। दूसरे लेखक श्री जगदम्बाप्रसाद वर्मा ने महात्मा गांधीजी की लड़ाई का हाल क़िस्से में बयान किया है। दूसरा उपन्यास **खरा सोना** है। इसे जगदीश झा 'विमल' ने लिखा है। कहानी ही तो है, पढ़ने में मन लग जाता है। भारत-रहस्य का मूल्य ॥) है और मिलने का पता—भारत-रहस्य कार्यालय, श्यामपुर, डाकख़ाना मेडारा, ज़िला इलाहाबाद। खरा सोना को श्रीयुत महादेवप्रसाद झुंझुनूवाला, ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता, ने प्रकाशित किया है। मूल्य १) है।

३—जीवन-चरित्र।

१—**गेरीबाल्डी**—लेखक, श्रीइन्द्र विद्यावाचस्पति, प्रकाशक, साहित्य-परिषद् गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी और मूल्य १।) है। इसमें गेरीबाल्डी के जीवन का परिचय तथा इटली की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति में काम करनेवाले नेताओं का समुचित वर्णन किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। लेखक ने इसके लिखने में परिश्रम किया है और वे अपने उद्देश में सफल भी हुए हैं। इसमें केवल गेरीबाल्डी के जीवन का ही परिचय नहीं है, किन्तु उस समय की इटली के आवश्यक इतिहास का भी वर्णन आगया है। इसकी लेखन-शैली भी मनोरञ्जक है। इसमें गेरीबाल्डी के सिवा तत्कालीन इटली के दूसरे प्रसिद्ध देशभक्तों के भी चित्र यथास्थान दे दिये गये हैं। सारांश, पुस्तक अच्छी और पढ़ने योग्य है।

२—**महात्मा गान्धी**—लेखक, श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा, प्रकाशक, गांधी-हिन्दी-पुस्तक-भंडार, कालबा देवी, बम्बई, और मूल्य ४॥) है।

महात्मा गान्धी के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें अभी तक हिन्दी में प्रकाशित होगई हैं। यह भी एक वैसी ही किताब है। इसमें कोई नवीनता नहीं है। पुस्तक दो खण्डों में विभक्त है। पहले खण्ड में महात्माजी का जीवन-परिचय १८७ पृष्ठों में दिया गया है। इसके पहले १३ पृष्ठों में गुजरात के प्रसिद्ध जौहरी श्रीमद् राजचन्द्र का, जिन्हें महात्माजी टालस्टाय और रस्किन से भी बढ़ा चढ़ा मानते थे, संक्षिप्त परिचय दिया गया है। यही एक नई बात है जो अब तक महात्मा गान्धी से सम्बन्ध रखनेवाली किसी हिन्दी-पुस्तक में देखने में नहीं आई है। इस खण्ड के अन्त में दो परिशिष्ट लगा दिये गये हैं। एक में महात्माजी का फ़ीनिक्स का ट्रस्टडीड और दूसरे में उनके सम्बन्ध की कुछ स्मरणीय घटनाओं का उल्लेख है। यदि यह पिछला परिशिष्ट जीवन-परिचय में ही शामिल कर दिया जाता तो 'जीवन-परिचय' की मनोरञ्जकता भी बढ़ जाती, साथ ही इन घटनाओं का यथास्थान उपयोग हो जाता। परिशिष्ट में, इनका उपयोग तभी उचित था यदि ये 'कुछ' न होतीं। इसके दूसरे खण्ड में महात्माजी के लेखों तथा व्याख्यानों का सङ्ग्रह है। इनकी संख्या १७१ और ५८५ पृष्ठों में ये सब आये हैं। इनमें से अधिकांश क्या लगभग सब लेख और व्याख्यान महात्माजी के भारत में आ बसने के बाद के ही हैं। ये लेख समय समय पर 'यंग इंडिया' तथा दूसरे पत्रों में प्रकाशित हुए थे। वहीं से इनका सङ्ग्रह हुआ। लेखों तथा व्याख्यानों का सङ्ग्रह किसी विशेष क्रम अनुसार नहीं किया गया है। इससे 'सङ्ग्रह' में विशृङ्खलता प्रकट होती है।

३—**शिवाजी**—लेखक, श्रीयुत ताराचरण अग्निहो[त्री] बी० ए०, प्रकाशक, रामप्रसाद एण्ड ब्रदर्स, आगरा और मूल्य १।) है।

यह इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण है। इस[के] ... इसके सम्पादक श्यामाचरण राय, बी० ए०, एम० आ[र०] ए० एस०, एफ० आर० ई० एस० ने इसका संशो[धन] किया है, परन्तु इसकी विशेषता उसी व्यक्ति को मा[लूम] हो सकती है जिसने इसका पहला संस्करण पढ़ा है। प्रस्तुत पुस्तक में शिवाजी का चरित्र सरल भाषा [में] वर्णित हुआ है, पर व्याकरण की भूलों से यह न बच सकी।

४—**वेदज्ञ मैक्समूलर**—लेखक, श्रीयुत सुरे[न्द्र]नाथ तिवारी और मूल्य ।=) है।

इसमें मैक्समूलर के जीवन का परिचय है। मैक्समूलर संस्कृत भाषा विशेषकर उसके वैदिक-साहित्य [के] पूर्ण पण्डित माने जाते हैं। हिन्दी में उनकी अभी तक [कोई] जीवनी नहीं थी। आलोच्य पुस्तक इस सम्बन्ध की पह[ली] पुस्तक है। यदि इसमें इस बात की भी विवेचना कर[दी] गई होती कि उन्होंने संस्कृत-साहित्य के सम्बन्ध में क[िन] से सिद्धान्त निश्चित किये और उन सिद्धान्तों की आलोच[ना] भी की गई होती तो इसकी उपयोगिता और भी अ[धिक] हो जाती।

५—**कार्नेगी**—लेखक, श्रीयुत उमरावसिंह कारुणि[क] बी० ए०, प्रकाशक—ज्ञानप्रकाश मन्दिर, पो० मा[छरा] (मेरठ) और मूल्य ॥=) है।

अमरीका के प्रसिद्ध धनकुबेर एन्ड्रू कार्नेगी के जी[वन] का परिचय इस पुस्तक में लिखा गया है। इनका जी[वन] चरित शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक है। पुस्तक सजिल्द और सुन्दर टाइप तथा अच्छे काग़ज़ पर छपी है।

Published by: Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Ld., Allahabad.

Printed by: E. Hall, at the Belvedere Printing Works, Allahab[ad]

112884

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

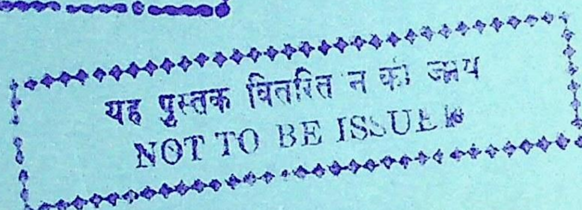
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112888







CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

